रचयिता:
डॉ॰ गेंदनलाल शास्त्री

ज्योतिर्विज्ञान-अनुसन्धान संस्थान
मेरठ-२ (उ॰प्र॰)

3-5

व्यक्तिगत

विद्वत्प्रवर श्री राममूर्ति शास्त्री पौराणिक
भूतपूर्व पुराणविभागाध्यक्ष
गोयनका संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी
के
करकमलों में सादरसप्रेम
भेंट

डा. गेंदनलाल शास्त्री

आर्षवर्षावायुविज्ञानम्

राष्ट्र के प्रत्येक जिला और तहसील में वर्षावायु और अन्नादि के
पैदावार की स्थिति कब कैसी रहेगी, वृक्षों, पौधों, अन्नों के
विविध रोगों की अल्पव्ययसाध्य चिकित्सा कैसे होगी,
ब्रह्माण्डीय गणित से चन्द्रादि ग्रहलोकों की
यात्राओं का वैज्ञानिक ढंग से खण्डन,
आदि इस ग्रन्थ की विशेषतायें
पठनीय हैं।

राष्ट्रियपुरस्कारप्राप्त - डा० श्री गेंदनलाल शास्त्रि-विरचितम्
ग्रन्थकारकृतया "सुन्दरी" हिन्दीटीकया विभूषितम्

केन्द्रीयसरकारतः-आर्थिकसहयोगेन
ग्रन्थरचनाकारेणैव
ज्योति - विज्ञान - अनुसन्धान - संस्थान,
कागजी बाजार, मेरठतः (उत्तरप्रदेश - भारततः)

प्रकाशितम्

शिक्षा तथा समाजकल्याण मन्त्रालय,
भारतसरकार से प्रदत्त आर्थिक सहायता से प्रकाशित

प्रथमसंस्करणम्

वैक्रमाब्दाः २०३६ | ईसवीयाब्दाः १९७९

केन्द्रीयसरकारतः निर्धारितमूल्यम्...... ४४ रूपये मात्र

प्रकाशकः—
डा० गेंदन लाल शास्त्री
निदेशकः—
ज्योति - विज्ञान - अनुसन्धान - संस्थान,
कागजी बाजार- मेरठ - २ (उ० प्र० भारत)
फोन नं० ७३०२०

डा० गेंदनलाल शास्त्री
ज्यौतिषविभागाध्यक्षः—
श्री बिल्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय,
मेरठ (उ० प्र० भारत)

पुस्तक प्राप्तिस्थान—
ज्योति - विज्ञान - अनुसन्धान - संस्थान,
कागजी बाजार मेरठ-२ (उ० प्र० भारत)

मुद्रकः—
पुनीत प्रेस,
भवानीनगर - मेरठ - २ (उ० प्र०)

(१)
विद्वानों की प्रस्तावना और सम्मतियाँ

संस्कृतवाङ्मय का अपार पारावार असंख्य ग्रन्थरत्नों से समुज्ज्वल है। गवेषक उसकी गवेषणा में अनवरत प्रयत्नशील हैं। विविध विषयों के अश्रुतपूर्व ग्रन्थरत्नों के हस्तलेख अब भी प्राप्त होते जा रहे हैं। अप्रकाशित विपुल संस्कृतवाङ्मय के प्रकाशन के लिए शताब्दियाँ अपेक्षित हैं। प्रकाशित संस्कृतवाङ्मय भी इतना पुष्कल है कि उसके पर्यालोडन और यथायथ अनुशीलन के लिए अनुसन्धाननिष्णात प्रतिभाशाली विद्वानों की अपेक्षा है, पौराणिक वाङ्मय का समग्र दृष्टिकोणों से परिशीलन नहीं हो सका है। यह भारतीय संस्कृति का विश्वकोष है। अष्टादश विद्याओं का निधान है। इसमें निहित विद्याओं का तुलनात्मक अनुशीलन उन उन शास्त्रों के साथ करने से अनेक नूतन उपलब्धियाँ प्रकाश में आयेंगी। ज्यौतिष, आयुर्वेद, कृषि इत्यादि शास्त्र प्राचीन भारत के विज्ञान हैं। यद्यपि भारतीय अनेक विद्याओं को पाश्चात्य विज्ञानों ने प्रभावित करके उन्मूलितप्राय कर डाला है, तथापि उनका वह झञ्झावात ज्यौतिष आयुर्वेद, संगीत, योग इत्यादि भारतीय विज्ञानों को उन्मूलित करने में कृतकार्य नहीं हो सका।

भारतीयकृषि प्रधानतया देवमातृक रही आयी है। विज्ञानप्रधान आधुनिक युग में यद्यपि अनेक साधनों का विकास हो चुका है, तथापि भारतीयकृषि अब भी वृष्टि पर आश्रित है। प्राचीन भारतवर्ष में वृष्टि के लिए जिन उपायों का अवलम्बन लिया जाता था, उनका आश्रय लिए विना कृषि का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकेगा,। सम्पूर्णानन्द (वाराणसेय) संस्कृत विश्वविद्यलय के भूतपूर्व उपकुलपति डॉ० श्री सुरेन्द्र नाथ शास्त्री की दृष्टि इस ओर आकृष्ट हुई थी। उनकी प्रेरणा से ज्यौतिर्विद्या के प्रकाण्ड विद्वान् डॉ० गेंदनलाल शास्त्री "आर्षवर्षा-वायुविज्ञान" के अनुसन्धान में प्रवृत्त हुए। उनके सात वर्षों के अनवरत परिश्रम का परिणाम उनका यह गवेषणाप्र बन्ध है। डॉ० श्री गेंदनलाल शास्त्री का संस्कृतभाषा के गद्य पद्य लेखन पर अधिकार है। विषय को यत्र - तत्र सरल बनाने के लिए इन्होंने स्थान-स्थान पर स्वरचित पद्यों का भी प्रयोग किया है।

इस गवेषणाप्रबन्ध में वेद, पुराण, व्याकरण, ज्यौतिष, आयुर्वेद, कोष इत्यादि विद्याओं के मन्थन से वर्षावायुविज्ञान के विषय में बहुमूल्य निष्कर्ष निकाले गये हैं। प्रसङ्गतः पृथिवी के चलाचलत्व के विषय में वैज्ञानिक, वैदिक तथा पौराणिक महत्व-पूर्ण सामग्री के परिप्रेक्ष्य में आर्यभट्ट, लल्लाचार्य, भास्करासार्य एवं कमलाकर भट्ट के सिद्धान्तों की वैदुष्यपूर्ण समालोचना की गयी है। वर्षावायुविज्ञान में नक्षत्रविज्ञान की विशेषता और उपयोगिता बताते हुए श्री शास्त्री ने चन्द्रलोक के विषय में अनितरसाधारण विचार प्रस्तुत किये हैं। इस प्रसङ्ग में इन्होंने वर्तमान विज्ञान के चन्द्रलोकगमन के प्रयत्नों की समीक्षा गणितीय पद्धति से की है। समाचारपत्रों में समय-समय पर

प्रकाशित आँकड़ों के समाकलन का उपयोग सूझ-बूझ के साथ किया गया है। गवेषणा-प्रबन्ध में प्रयुक्त संपूर्ण सामग्री को देखने से विदित होता है कि श्रीशास्त्री ने इसका संकलन कितनी सतर्कता और दत्तावधानता से किया है। अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातख, पाताल इत्यादि लोकों, समुद्रों तथा पर्वतों की स्थिति की स्पष्टता के लिए गवेषणाप्रबन्ध में अनेक चित्रों (डायग्रामों) को संलग्न कर देने से इसका महत्व और अधिक बढ़ गया है।

"आर्षवर्षा-वायुविज्ञानम्" नामक गवेषणाप्रवन्ध के लेखक के प्रशंसनीय प्रयत्न का मूल्याङ्कन कर सम्पूर्णानन्द (वाराणसेय) संस्कृत विश्वविद्यालय ने श्री शास्त्री को सन् १९७४ में विद्यावारिधि (पी- एच्० डी०) की उपाधि से समलङ्कृत किया है। श्रीशास्त्री ने लोक में अधिकाधिक प्रचार की दृष्टि से इसके संस्कृत मूल का हिन्दी अनुवाद कर श्लाघनीय कार्य किया है।

प्राचीनकाल में वैज्ञानिक विषयों के लेखन में भारद्वाज की ख्याति रही है। उनके द्वारा विरचित "यन्त्र सर्वस्वम्" नामक विशाल ग्रन्थ के १०१ अधिकरणों में से केवल दो अधिकरण (द्वितीयपूर्ण नहीं)सम्प्रति प्राप्त हो सके हैं। अन्तरिक्ष विज्ञान पर उनका "भारद्वाज संहिता" ग्रन्थ भी प्रसिद्ध है। भारद्वाज की उसी वंशपरम्परा में विद्यमान डॉ० श्री गेंदनलाल शास्त्री द्वारा विरचित इस "आर्षवर्षा-वायुविज्ञानम्" का विद्वन्मण्डली में पर्याप्त समादर होगा, ऐसा मुझे विश्वास है। भगवान् काशी विश्वनाथ से प्रार्थना है कि वे श्रीशास्त्री को दीर्घायुष्ट्व प्रदान करें ताकि वे संस्कृतवाङ्मय को अन्य समुज्ज्वल रत्नों से समृद्ध कर सकें।

बी ३/११५, शिवाला,
वाराणसी

डा० भागीरथप्रसाद त्रिपाठी "वागीश शास्त्री"
निदेशक
अनुसन्धान संस्थान
सम्पूर्णानन्द संस्तृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

(२)

डा० श्री गेंदनलाल शास्त्री के शोधग्रन्थ "आर्षवर्षा-वायुविज्ञान" को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। इधर पावस अर्थात् वर्षा वायु की विचित्र गति के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों में बहुत ऊहापोह हो रहा है। प्राचीन ज्यौतिष के अनुसार यह पावस सूर्य और चन्द्र से प्रेरित होता है, किन्तु इस सिद्धान्त के अनुसार पावस की जो गतिविधि होनी चाहिये उसे आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा खोजे गये पाषाणमय प्रत्यक्ष चन्द्रमा से सञ्चालित मानने पर व्यतिक्रम दिखाई देता है, और वर्षा वायु की वास्तविक गतिविधि का निदान इससे नहीं होता है। आधुनिक विज्ञान से इस प्रसंग में प्राचीन ज्यौतिष का विरोध उपस्थित हो जाता है। इस विरोध का समाधान अभी तक नहीं हो सका था। प्रस्तुत ग्रन्थकार ने प्राचीन ज्यौतिष में निरूपित चन्द्रमा का वास्तविक स्वरूप परिभाषित करके उससे प्रसूत होने वाली प्रेरणाओं से वर्षा वायु की वास्तविक गतियों की व्याख्या की है, विद्वान् लेखक ने प्राचीन ज्यौतिषशास्त्र में वर्णित वास्तविक चन्द्रमा का प्रतिपादन करके, आधुनिक वैज्ञानिकों के पाषाणमय चन्द्रमा का दृढ़ता से खण्डन किया है। इसी प्रकार के अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न, जिन पर विद्वानों में निरंतर विचार विमर्श होते रहते हैं, उन प्रश्नों का समाधान डा० श्री शास्त्री ने शास्त्रीय प्रणाली से समाहित किया है, जैसे—जम्बूद्वीप किसे कहते हैं ? आज के भूगोल में इसका क्या स्थान है? और उसमें भारत आदि नववर्षों की स्थिति कहाँ पर है? गायत्री मंत्र में आये हुए भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक इत्यादि कहाँ हैं? इनके साथ तल, अतल, वितल, पाताल आदि पृथ्वी के नीचे स्थित लोकों को मिलाकर चतुर्दश लोकों की स्थिति कैसी है? इनके आधिभौतिक एवं आधिदैविक रूपों के अतिरिक्त क्या इनके आध्यात्मिक रूप भी हैं? इन सब गम्भीर प्रश्नों के उत्तर लेखक की गवेषणा से प्राप्त होते हैं।। लेखक ने वेदशास्त्र, पुराण, ज्यौतिष, व्याकरण, तंत्र, आयुर्वेद आदि समस्त विद्याओं से सामग्री एकत्र करने, उसका तर्क संगत विवेचन करने और उससे तर्क सम्मत व्यावहारिक परिणाम निकालने में विलक्षण वैदुष्य का परिचय दिया है। प्रस्तुत ग्रन्थ नितांत मौलिक और विद्वानों तथा सर्वसाधारण के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। आशा है जिज्ञासु पाठक इसका समुचित आदर करेंगे।

प्रो० राजाराम शास्त्री
कुलपति
काशी विद्यापीठ,
वाराणसी - २

(३)

डॉ० श्री गेंदनलालशास्त्री के "आर्षवर्षा - वायुविज्ञानम्" शोधग्रन्थ को देखने का अवसर मिला। आर्षग्रन्थों का नवीन वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करने का उनका यह प्रयत्न स्तुत्य है। आशा है कि शास्त्री जी का यह ग्रन्थ इस प्रकार के शोधग्रन्थों की रचनाओं के लिये प्रेरणास्रोत का काम करेगा।

डॉ० दीपचन्द्र शर्मा
शास्त्री, एम० ए०, पी-एच० डी०
कुलपति
मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ

(४)

भारत के महामहिम राष्ट्रपति द्वारा "राष्ट्रीयपुरस्कार" से पुरस्कृत डॉक्टर श्री गेंदनलाल शास्त्री ज्यौतिषविभागाध्यक्ष, श्रीविल्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, मेरठ का "आर्षवर्षा-वायुविज्ञानम्" शीर्षक शोधग्रन्थ आद्योपान्त पढ़ने से श्री शास्त्री की अप्रतिमप्रतिभा, सूक्ष्मदृष्टि, गम्भीरपाण्डित्य एवं वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का विशेष बोध हुआ। शोध का विषय तो वर्षा - वायु - विज्ञान है, किन्तु इस विषय के अन्तर्गत जिस प्रौढ़ता के साथ भूगोल, खगोल एवं विभिन्न वैज्ञानिक अद्यतन सूक्ष्मताओं की सप्रमाण विवेचना हुई है, और अपने स्वतन्त्रपक्ष का प्रस्तुतीकरण हुआ है, वह किसी भी विद्वान् के लिये स्पृहणीय हो सकता है। सप्तद्वीपों का, चतुर्दश लोकों का, सुमेरु आदि पर्वतों का, सप्तसमुद्रों, नरकों तथा विभिन्न वर्षों के जो सजीव दूर्यात्मक चित्र प्रबन्ध में दिये गये हैं, उनसे अमेरिका तथा रूस जैसे वैज्ञानिक देशों के समृद्ध वैज्ञानिकों के समक्ष भी एक चिन्तनीय सामग्री उपस्थित हो गयी है। साथ ही इस शोधग्रन्थ से भारतीय धर्म, भारतीय संस्कृति एवं भारतीय साहित्य की विवाद-ग्रस्त अनेक जटिल ग्रन्थियों का निर्बन्धन हुआ है, जिससे भारतीय विज्ञान की रक्षा के इतिहास में शास्त्रीजी की सेवायें सदा अमर रहेंगीं।

प्रकाशचन्द गौड़
भूतपूर्व निरीक्षक
संस्कृत पाठशालायें, उत्तर प्रदेश

९५/८३, सर्वोदय नगर,
अलोपी बाग
इलाहाबाद (प्रयाग - उ० प्र०)

(५)

डा० श्री गेंदनलाल शास्त्री के आर्षवर्षावायुविज्ञान ग्रन्थ के अवलोकन से हमें अत्यन्त परितोष एवं हर्ष हुआ है। कृषिप्रधान इस भारतवर्ष के लिये ऐसे शोध - पूर्ण ग्रन्थों की नितान्त आवश्यकता है, जिसे पूर्ण कर विद्वान् लेखक ने भारतवासियों का महान् उपकार किया है।

ब्रह्माण्डीयगणितद्वारा चन्द्रादिलोकों की प्रामाणिक दूरी का निर्देश, जम्बूद्वीप, उसके नव खण्ड, सप्तद्वीप, सूर्य - चन्द्र आदि ग्रहलोक इन सब का शास्त्रसम्मत एवं प्रामाणिक गवेगणात्मक सचित्र - विवेचन इस ग्रन्थ की अनन्यलभ्य विशेषता है। इस ग्रन्थ में निहित युक्तियों के आधार पर चन्द्रलोकगमन सर्वथा असाध्य - कार्य ही सिद्ध होता है।

सरल- सरस एवं ओज:पूर्ण भाषा में निबद्ध तथा नानाविध- विवेच्य-आवश्यक विषय- विवृद्धकलेवर यह ग्रन्थ विद्वानों एवं अनुसन्धाताओं के लिये अत्यन्त उपादेय है, ऐसा हमारा स्पष्ट मत है। हम इस ग्रन्थ के प्रचार की कामना करते है।

पत्रसङ्केत:—
श्रीराजस्थान - संस्कृत - कालेज,
मीरघाट, वाराणसी- १

डा०सीताराम शास्त्री
एम० ए०, पी-एच० डी०
व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य(स्वर्णपदक प्राप्त)
शिक्षणशास्त्राचार्य, राजशास्त्राचार्य, साहित्यरत्न,
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, व्याकरण-विभाग,
काशी - हिन्दू - विश्वविद्यालय, वाराणसी-५

(६)

डाक्टर श्री गेंदनलाल शास्त्री के "आर्षवर्षा- वायुविज्ञानम्" शीर्षक शोधग्रन्थ को पढ़कर मुझे प्रमोद हुआ है। विद्वान् लेखक ने "वर्षा - वायुविज्ञान" को लिखकर कृषि प्रधान भारत राष्ट्र के हितों के लिये प्रशंसनीय कार्य किया है।

इस शोध ग्रन्थ में जम्बूद्वीप और उसके अन्तर्गत नौ खण्डों और सुमेरु आदि पर्वतों, सप्तद्वीपों, सूर्य चन्द्रादि ग्रहलोकों, "भू र्भुव: स्व:" आदि चतुर्दशलोकों के सजीव चित्रों को गवेषणात्मक वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करके मनीषी लेखक ने अभूतपूर्व कार्य किया है। डाक्टर श्री शास्त्री ने ब्रह्माण्डीय गणित का सुस्पष्टीकरण करके आधुनिक वैज्ञानिकों की "चन्द्रलोक यात्रा" का और भूचलन का युक्तियुक्त तर्कसंगत खण्डन किया है। प्रस्तुत शोधग्रन्थ में प्रतिपादित किये गये गूढ विषयों की वैदुष्यपूर्ण लेखन-शैली से डाक्टर श्री शास्त्री की कुशाग्रबुद्धि, विज्ञानयुक्त - प्रकाण्डपाण्डित्य अभि - व्यक्त हो रहा है। ज्ञानोपार्जनशील शोधार्थी जिज्ञासुओं के लिये इस अभूतपूर्व शोध - ग्रन्थ से पर्याप्त मात्रा में सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

मैं डाक्टर श्री शास्त्री के दीर्घायुष्य और शोधग्रन्थ के प्रचार के लिये शुभ - कामना करता हू।

आचार्य मधुसूदन शास्त्री
एक्सडीन, फैकल्टी आफ दी ओरियन्टल लर्निंङ्ग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी,
प्रधानमन्त्री
अखिल भारतीय श्री पण्डित परिषद्
शाखा वाराणसी, लखनऊ, दिल्ली, पटना, पुणे

कार्यालय:
मधुसूदन शास्त्रिभवनम्
बी २/२२५ भदैनी, वाराणसी,

(७)

मैंने डा० श्री गेंदनलाल शास्त्री के मुद्रित शोध ग्रन्थ "आर्षवर्षा- वायु - विज्ञानम्" को पढ़ा है। इसमें प्राचीन आर्ष ज्ञान को आधुनिक काल के लिये बोध - गम्य स्वरूप में प्रस्तुत किया गया है। आर्ष ग्रन्थों में अनेक वैज्ञानिक विषयों पर अद्भुत सामग्री प्राप्य है। प्रायः आधुनिक विद्वान् आर्षमतों का विना सम्यक् अध्ययन और विवेचन किये ही उनका तिरस्कार करते हैं, यह उचित नहीं है। आर्ष ग्रन्थों के विषयों को आधुनिक दृष्टि से प्रस्तुत करना आवश्यक हैं। डा० श्री गेंदनलाल शास्त्री ने इसी कार्य को प्रस्तुत ग्रन्थ में सम्पादित किया है। इस में इन्होंने प्राचीन मतों को आधुनिक तर्कशैली के अनुसार प्रस्तुत किया है। यह कार्य कष्ट साध्य है। इसमें प्राचीन ज्ञान और आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति का समन्वय अपेक्षित है। डा० श्री शास्त्री इस कार्य के लिये सर्वथा उपयुक्त अधिकारी विद्वान् सिद्ध हुए हैं। उन्होंने जिस प्रकार सरल और ललित शाव्दों में अपने विचारों को गद्य और पद्यवद्ध किया है, वह स्तुत्य है। हिन्दी भाषा में उनकी अपनी टीका ने इस प्रवन्ध को सभी के लिये सुगम कर दिया है।

आश है सुधीजन इस प्रकाशन का स्वागत करेंगे। आर्ष ज्ञान को नये रूप में जीवित रखने का यह प्रयास सर्वथा सराहनीय ओर अनुकरणीय है।

डा० लल्लन जी गोपाल
एम० ए० डी० फिल० (इलाहावाद)
पी० एच० डी० (लन्दन)
एफ० आर० ए० एस० (लन्दन)

प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृत एवं
पुरातत्व विभाग, भारती महाविद्यालय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी-५

(८)

डाक्टर श्री गेंदनलाल शास्त्री द्वारा लिखे गये "आर्षवर्षा - वायुविज्ञानम्" शोधग्रन्थ को पढ़कर मुझे महान् हर्ष हुआ है। विद्वान् लेखक ने शोधग्रन्थस्थ प्रत्येक विषय का प्रतिपादन विद्वत्ता और वैज्ञामिकता पूर्ण ढंग से दृढ़ता पूर्वक किया हैं।

वर्तमान समय में इस ढंग के शोधग्रन्थों को लिखना समयोचित तथा अत्या - वश्यक है। डाक्टर श्री शास्त्री ने समीक्षात्मक जिस शैली से शोधग्रन्थस्थ विषयों का प्रतिपादन किया है, वह शैली वस्तुतः सराहनीय है। मैं इनके दीर्घायुष्य और लिखने की क्षमता बने रहने के लिये जगन्नियन्ता प्रभु से शुभकामनायें करता हूं।

सत्यव्रत गौड़
न्याय-व्याकरण-वेदान्ताचार्य
प्रधानाचार्य
श्रीभागीरथ संस्कृत महाविद्यालय
गढ़मुक्तेश्वर (मेरठ उत्तर-प्रदेश)

(९)

आर्षवर्षा - वायुविज्ञान विषय को लेकर डा० श्री गेंदनलाल शास्त्री के द्वारा लिखा गया शोधनिवन्ध एक पुरातन ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक मान्यताओं का विवेचनात्मक अध्ययन है, लेखक ने जिस योग्यता के साथ इसका सम्पादन किया है, वस्तुतः वह शोधमनीषियों के लिये अनुकरणीय है, शुल्वसूत्रीय गणितप्रक्रिया को आधार मानकर तथा सूर्यसिद्धान्तीय गणितमानों को आधार मानकर भूपरिधि का मान आधुनिक मान के साथ समन्वित करना लेखक की सूक्ष्मेक्षिका का परिचायक है, पौराणिक भूगोल के अनुसार पृथ्वी के द्वीपों का विभाजन यद्यपि आधुनिक द्वीपविभागों का संवादी नहीं है, किन्तु लेखक ने बड़े ही श्रम से इस विषय के पौराणिक तथ्यों का संकलन किया है। विद्वान् लेखक ने प्राचीन तथ्यों का स्पष्टीकरण करते हुए अभिनव दृष्टिकोण से स्थल विशेषों पर नूतन तथ्यों का भी आविष्कार किया है। आशा है, श्री शास्त्री ऐसे ही शोध सम्वन्धी कार्यो द्वारा पुरातन तत्वों के शोधकर्मियों का मार्गदर्शन करते रहेंगे।

अवधविहारी त्रिपाठी
अवकाशप्राप्त ज्यौतिष विभागाध्यक्ष
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी (उ० प्र०)

(१०)

मैंने डा० श्री गेंदनलाल शास्त्री के टाइप शोधग्रन्थ "आर्षवर्षा-वायुविज्ञानम्" को एकाग्रचित्त से गम्भीरता पूर्वक पढ़ा है। विद्वान् लेखक ने चिरकाल से उलझन में पड़ी हुई भूगोल खगोल की अनेक जटिल ग्रन्थियों को सुलझा कर वर्षावायुविज्ञान का प्रतिपादन कर चन्द्रलोकयात्रा का खण्डन करने में अभूतपूर्व स्तुत्य कार्य कियाहै।

मीठालाल ओझा (ज्योतिषाचार्य)
प्रवक्ता
वाराणसेय (सम्पूर्णानन्द) संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

(११)

भारत के राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीयपुरस्कार से पुरस्कृत डाक्टर श्री गेंदनलाल शास्त्री के "आर्षवर्षा - वायुविज्ञानम्," शोधग्रन्थ को पढ़कर मुझे अपार हर्ष हुआ है। विद्वान् लेखक ने प्राचीन और नवीन वैज्ञानिक विचारधाराओं की निष्पक्ष भाव से समीक्षा करके ब्रह्माण्डीय गणित सिद्धान्तों के अनुसार चन्द्रादि ग्रह-लोकों की यात्रा का सही रूप में खण्डन करके शोधग्रन्थ में वास्तविक विज्ञान का प्रपादन किया है। अभूतपूर्व इस शोधग्रन्थ का प्रकाशन होने पर राष्ट्र का महान् उपकार होगा। श्री शास्त्री ने अपने शोधग्रन्थ में जिस बौद्धिक प्रतिभा का परिचय दिया है वह वस्तुतः सराहनीय है।

ईश्वर से मैं शास्त्री जी के दीर्घायुष्य की कामना करता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी वे शोधकार्य करने का प्रयत्न करते रहेंगे।

ज्यौतिषाचार्य
श्रीगणेशदत्त पाठक
सी० के० ६५/३३३, पियरी कलाँ वाराणसी

ज्यौतिषविभागाध्यक्ष
गोयनका संस्कृत महाविद्यालय
ललिताघाट, वाराणसी

(१२)

ज्यौतिषाचार्यवर्य - पण्डित श्री गेंदनलालशास्त्रिमहोदयैः गणितयुक्त्या - सूर्य-सिद्धान्तोक्त - षोडशशतयोजनप्रमित - व्यासस्योपपत्तिः प्रदर्शिता, साऽत्रीव समीचीना-ऽस्तीति - सर्वैरेव गणितविद्भिः समुदिता, सैव दरीदृश्यते साधीयसीति मन्येऽहम्।

सीताराम झा ज्यौतिषाचार्यः
सम्मानिताध्यापकः
वाराणसेय (सम्पूर्णानन्द) संस्कृत विश्वविद्यालयः,
वाराणसी (उ० प्र०)

(१३)

त्रिकालज्ञमहर्षि - श्रीवेदव्यासप्रणीत- पौराणिकभूगोलोपरि - तद्रहस्यानभिज्ञैः श्रीभास्कराचार्यैः "यदि समा मुकुरोदरसन्निभा"-इत्यादिना यो हि निर्मूल आक्षेपः कृतस्तद्दु.साहसमसहमानैस्त्रिस्कन्धज्योतिर्विशारदैर्ज्यौतिषाचार्यैः पण्डितप्रवर-श्रीगेंदनलाल-शास्त्रिमहाभागैः शोधकार्यमभिलक्ष्यैको महत्वपूर्णो निवन्धो विरचितः। स चामूल-मौलिसकलमविकलमवहितेन चेतसा मया व्यलोकि। निवन्धेऽस्मिन् प्राचीनभौगोलिक-प्रक्रियाया अर्वाचीनज्यौतिषप्रक्रियया सह विरोध आपतिते गणितेन सूक्ष्मेक्षिकया प्रौढ्या तत्समन्वयं कुर्वद्भिः शास्त्रीयप्रमाणैर्युक्तियुक्तं तदाक्षेपखण्डनं विधायार्षमतपुष्टि कृत्वा विद्वत्समाजेषु विलक्षणाऽभूतपूर्वा चमत्कृतिरुत्पादितेति मुहुर्मुहुरनुसन्धाय मे मनसि महान् सन्तोषः समजनि। नाद्यावधि केनापि समन्वयात्मक-ईदृग्विधो निवन्धो लिखितः। अतोऽहमेतेषां महानुभावानां श्रीकाशीविश्वेश्वरतः सततमभ्युदयमभिकामये।

श्रीराममूर्ति शास्त्री पौराणिकः
पुराणविभागाध्यक्षः
गोयनकासंस्कृतमहाविद्यालयः वाराणसी(उ०प्र०)

पौराणिक - कार्यालय
डी० १/६५, ललिताघाट
वाराणसी- १

(१४)

डाक्टर श्री गेंदनलालशास्त्रिमहोदयैः विरचितः "आर्षवर्षा - वायुविज्ञानम्" नामको ग्रन्थः मयाऽद्य परिपूर्णः अवलोकितः। इतः पूर्वं अत्रत्यानि कानिचिदेव पुटानि मया विलोकितानि। अद्य सम्पूर्णग्रन्थावलोकनेन इदमद्य वक्तुं पार्यते, किमित्युक्ते-इमे शास्त्रिणः वहुषु विषयेषु कृतभूरिपरिश्रमाः। एतैः वेदव्याकरणपुराण - त्रिस्कन्धज्योतिषादि - सर्वप्राचीन - ग्रन्थानुसन्धानेन गाढो विषयः दृष्टिपथं आनीतः। साम्प्रतिकाः ये विप्रतिपन्ना वर्तन्ते, तैरपि अयं ग्रन्थः सम्पूर्णतया पठनीयः भवति, अस्य ग्रन्थस्य मुद्रापणेन प्राचीनं वैज्ञानिकं आर्षं मतं ज्ञातुं शक्येत। एवञ्च अयं ग्रन्थः सर्वकारैः (सरकारैः) अवश्यं मुद्रापणीयः - एवेतिमदीयो भावः। तेन मुद्रापणेन नवीनदृक्पथेन च ये विप्रतिपद्यन्ते, तेषामपि प्राचीन-वैज्ञानिकविषय-परिशीलनावश्यकतावृद्धिः इतोऽधिकतया वर्धिष्यते इति निश्चप्रयं वक्तुं उत्सहते ——

विदुषां वशंवदः
ड़ा० डी० अर्कसोमयाजी, एम. ए. पी- एच० डी० (गणित)
सचिव— हिन्दूधर्मप्रतिष्ठानम्, तिरुपति,
संस्कृतशोधार्थी के रूप में राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त,
भूतपूर्व प्रधानाचार्य— डी. एन. आर. कालेज, भीमावरम्,
भूतपूर्व रीडर— ज्योतिषशास्त्र,
केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति।

डा० गेंदनलाल शास्त्री
"आर्षवर्षा - वायुविज्ञानम्" के रचयिता
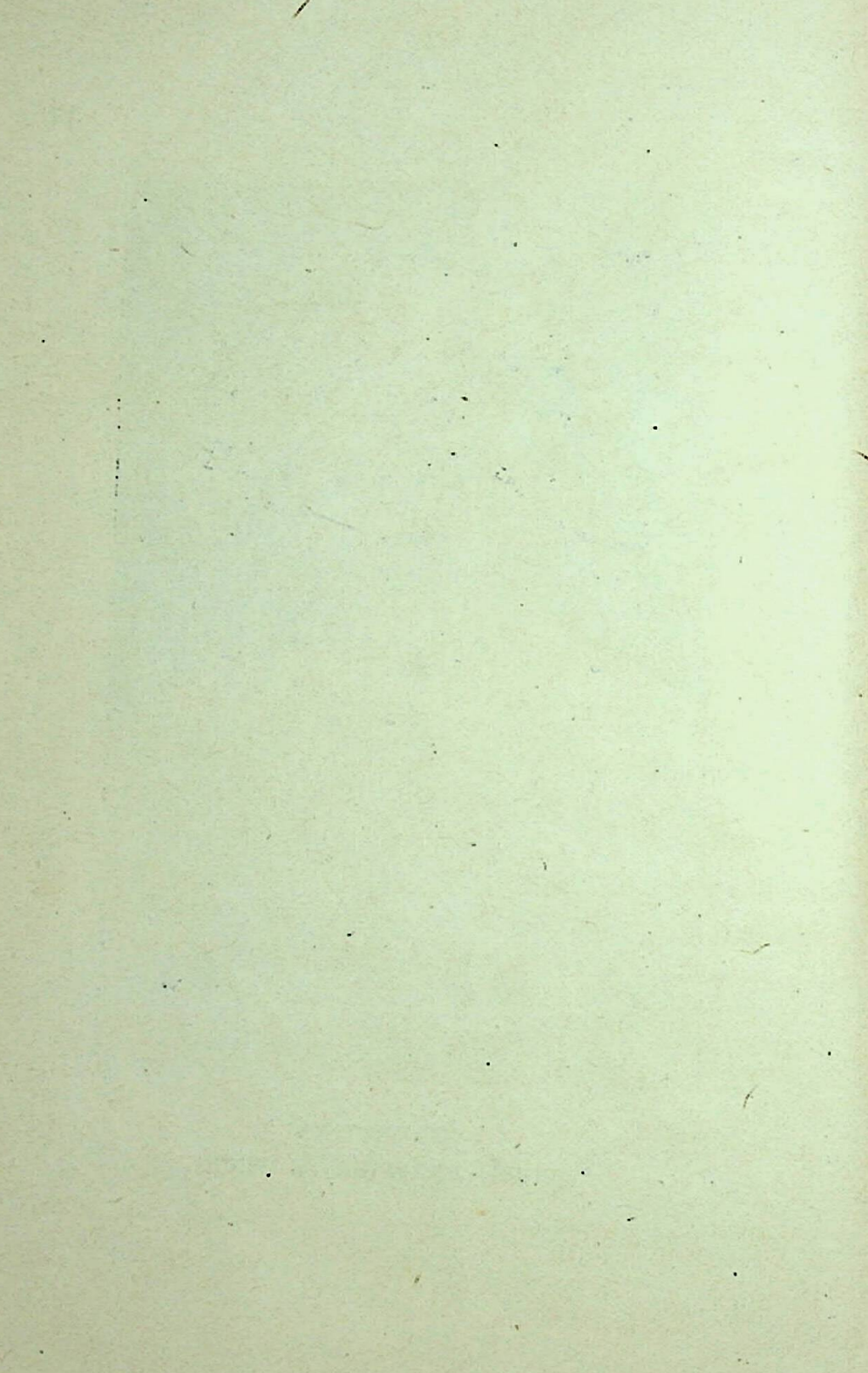
दो शब्द

वर्षावायुविज्ञान का प्रतिपादन और वृक्षों, पौधों, अन्नादि के विविध रोगों की चिकित्सा का विवेचन

१— संस्कृतवाङ्मय में विज्ञान का भण्डार है। वेद और वेदाङ्गों में वर्णित प्रत्यक्षसिद्धविज्ञान के आधार पर प्रस्तुत शोधग्रन्थ "आर्षवर्षा-वायुविज्ञानम्" को लिखा गया है। जल, वायु और अन्न के विना प्रत्येक राष्ट्र के प्राणियों का जीवित रहना असम्भव होता है, अत एव राष्ट्र के प्राणिमात्र के हितों के लिये इस शोधग्रन्थ में वैज्ञानिक सरल प्रक्रिया से यह बताया गया है कि— राष्ट्र के प्रत्येक जिला और तहसील में "जल, वर्षा, वायु, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सूखा, आदि की स्थिति और अन्न आदि के पैदावार की स्थिति कब कैसी रहेगी, और वृक्षों पौधों में होने वाले विविध रोगों की तथा अन्न आदि के कृमिरोगों की अल्पव्ययसाध्य पौष्टिक चिकित्सा किस प्रकार से की जा सकेगी।

वर्षावायुविज्ञान के प्रसङ्ग में ब्रह्माण्ड का विवेचन

(क)—विज्ञान के स्रोत संस्कृतवाङ्मय के अनेक आर्षग्रन्थों में "ब्रह्माण्ड, भूगोल, खगोल ग्रह, नक्षत्र, राशि, आकाशगङ्गा" प्रभृति की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई आदि के सम्बन्ध में और इन सब से भूगोल पर होने वाले शुभाशुभ फलों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक शैली से विस्तृत विवेचन किया गया है। भूगोल पर एकलाख योजन = १४५४५४५ किलोमीटर। ५०० गज। वृत्ताकार जम्बूद्वीप के मध्यभाग "केन्द्र" में स्थित सुमेरुपर्वत को— बारहलाख - इक्कीसहजार - आठसौ - अठारह किलोमीटर और दोसौ गज= १२२१८१८ कि० मी०। २०० गज। ऊँचा कहा गया है। जम्बूद्वीप के "गन्धमादन और माल्यवान् पर्वतों" को चालीस हजार योजन = पांचलाख - इक्यासीहजार आठ सौ अठारह किलोमीटर और दो सौ गज = ५८१८१८ कि० मी०। २००गज। ऊँचा माना है। भूगोल से चन्द्रलोक "चन्द्रमा" दो लाख योजन = उनतीसलाख - नौ हजार - नब्बै किलोमीटर और एक हजार गज= २९०९०९० कि० मी०। १००० गज। ऊँचाई पर है।

वार्षावायुविज्ञान के प्रसङ्ग में "चन्द्रलोकयात्रा का खण्डन

(ख)— अमरीका आदि के आधुनिक अन्तरिक्षयात्री वैज्ञानिकों ने अब तक भूगोल से चारलाख किलोमीटर ऊँचाई तक की यात्रायें खगोल में करके यद्यपि प्रशंसनीय कार्य किया है, किन्तु योगविद्या में पारङ्गत त्रिकालदर्शी अतीन्द्रिय महर्षियों द्वारा प्रतिपादित प्रत्यक्षसिद्ध ब्रह्माण्डीय, भूगोलीय और खगोलीय विज्ञान के अनुसार इन वैज्ञानिकों की ये यात्रायें भूगोल पर स्थित "गन्धमादन, माल्यवान्, सुमेरु" आदि पर्वतों

के विशालशिखरों(विस्तृत चोटियों)पर ही हुई हैं । ब्रह्माण्डीय,भूगोलीय और खगोलीय-प्रत्यक्षसिद्ध आर्षविज्ञान से अनभिज्ञ इन आधुनिक अन्तरिक्षयात्रियों ने अज्ञानता और भ्रान्ति के वशीभूत होकर भूगोल के विशाल पर्वतों की विशाल चोटियों (शिखरों) को ही "चन्द्रलोक" समझकर, उन पर्वतों से ही पत्थरों के चमकीले टुकड़े और मिट्टियों को लेकर, उन पर्वतों पर ही अमरीका आदि के झण्डों को गाढ़कर, और "लूनाखोद, चन्द्रवग्घी" आदि को उन पर्वतों पर ही छोड़कर, उन पर्वतों की ऊँची नीची, ढालू बनावटों को ही क्रैटर, ज्वालामुखी, नहरें आदि समझ कर, उन पर्वतीय प्रदेशों के ही चित्रों को विशेष शक्तिशाली कैमरा यन्त्रों से खींचकर, टेलीवीजन और समाचारपत्रों के माध्यम से विश्वभर में"चन्द्रलोक" की यात्रा का भ्रामक और अज्ञानवर्धक दुष्प्रचार इन आधुनिक वैज्ञनिकों ने किया है । अत एव मैंने ब्रह्माण्डीय - भूगोलीय और खगोलीय - गणितविज्ञान के आधार पर चन्द्रादि ग्रहलोकों की यात्राओं का खण्डन इस ग्रन्थ में किया है ।

इस शोधग्रन्थ को लिखने के लिये उत्तरप्रदेश के माननीय राज्यपालमहोदय श्री विश्वनाथदास जी की प्रेरणा

(ग)— अप्रैल सन् १९६६ ई० में उत्तरप्रदेश भारत के माननीय राज्यपाल महोदय श्री विश्नाथ दास जी ने कृषिप्रधान भारतराष्ट्र के हितों की दृष्टि से भविष्य-काल के वर्षो में होने वाली वर्षावायु की जानकारी के लिये भारतीय- खगोलविज्ञान - विशेषज्ञों की गोष्ठियों का आयोजन प्रशासन के व्यय से "राजभवन लखनऊ" में तीन दिन तक कराया था, मैं भी गोष्ठी में आमन्त्रित था, श्री राज्यपाल महोदय ने भविष्य के वर्षों में उत्तरप्रदेश के पश्चिमीय क्षेत्र के "वर्षावायुविज्ञान" की रिपोर्टों को त्यार करके प्रदेशीय सरकार के कृषिमन्त्रालय को भेजने का कार्य संयोजक के रूप में मुझे ही सोंपा था, मेरे द्वारा प्रेषित भविष्यकाल के वर्षावायु की रिपोर्टें शतप्रतिशत सही उतरीं थीं, तत्कालीन राज्यपाल महोदय की प्रेरणानुसार वाराणसेय -(सम्पूर्णानन्द)- संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के उपकुलपति डा० श्रीसुरेन्द्रनाथ शास्त्री जी ने "वर्षा-वायुविज्ञान" पर शोधग्रन्थ को लिखने का कार्य मुझे ही सोंपा था, भूगोल के ऊपर खगोल में उनतीस लाख किलोमीटर की ऊँचाई से भी अधिक ऊँचाई पर नक्षत्र और राशियों पर भ्रमणशील चन्द्रमा की विशेष गतिविधियों से ही मेघों(बादलों) में वर्षा के गर्भधारण होने के प्रत्यक्षसिद्ध विज्ञान को भली प्रकार से समझकर, मैंने वास्तविक चन्द्रमा का प्रतिपादन करने के प्रसङ्ग में सम्पूर्णब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत स्थित भूगोल के विशेष पर्वतों की लम्बाई, चौड़ाई, और ऊँचाईयों का तथा सूर्य चन्द्रादि ग्रहलोकों की लम्बाई, चौड़ाई, और ऊँचाइयों का वास्तविक विवेचन इस ग्रन्थ में करके, चन्द्रमा और पर्वतों की वास्तविक ऊँचाईयों के प्रसङ्ग के अन्तर्गत "अमरीका आदि" के अन्तरिक्ष यात्रियों की अब तक की यात्रायें चन्द्रलोक पर न होकर

पर्वतों पर ही हुई हैं, इसका प्रतिपादन भी मुझे प्रसङ्गानुसार ब्रह्माण्डविज्ञान, भूगोल-विज्ञान और अन्तरिक्षविज्ञान की सुरक्षा के लिये ही उचित ढंग से करना पड़ गया है।

केन्द्रीय और प्रदेशीय सरकारों की गुणग्राहिता से मेरे उत्साह का सम्वर्धन

(घ)— नवम्बर सन् १९६८ ई० में केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीयस्तर पर राजधानी दिल्ली के विज्ञानभवन में राष्ट्र के अन्तरिक्षविज्ञानविशेषज्ञों की बुलाई गई त्रिदिवसीय गोष्ठियों में मेरे द्वारा प्रस्तुत किये गये अन्तरिक्षविज्ञान से सन्तुष्ट हुए केन्द्रीयसरकार की ओर से मुझे "समादरपत्र" प्राप्त हुआ था।

नवम्बर सन् १९६९ ई० में विज्ञानभवन दिल्ली में भारत के महामहिमराष्ट्रपतिमहोदय द्वारा प्रशंसनीय लोकसेवा के लिये मुझे दिये गये "राष्ट्रीयपुरस्कार" के साथ "गेंदनलाल शास्त्री को अन्तरिक्ष विद्याविज्ञान का गहन ज्ञान है" इस प्रकार का प्रशस्तिपत्र भी दिया गया था।

भारतसरकार की इन गुणग्राहिताओं से उत्साहित होकर मैंने अपना कर्तव्य समझ कर "अन्तरिक्षविज्ञान के गहन ज्ञान" को "आर्षवर्षावायुविज्ञानम्" शोधग्रन्थ के रूप में लिखकर राष्ट्र की सेवाओं के लिये अपने राष्ट्र के सामने प्रस्तुत किया है।

भारतसरकार के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित हुआ यह शोधग्रन्थ कृषिप्रधान भारतराष्ट्र के लिये तथा ब्रह्माण्ड, भूगोल, खगोल और अन्तरिक्षविज्ञान आदि के अनुसन्धाताओं के लिये और ज्ञानोपार्जनशीलों के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा, मुझे दृढ विश्वास है।

वैज्ञानिकों और विद्वानों से निवेदन

२—यद्यपि प्रस्तुत शोधग्रन्थ के प्रत्येक विषय का प्रतिपादन निष्पक्ष-समीक्षात्मक शोधदृष्टिकोंण से किया गया है, सावधानीपूर्वक प्रूफरीडिङ्ग करके शुद्ध प्रकाशन करने पर पूर्णध्यान दिया गया है, तद्यपि यन्त्रादिदोष अथवा मानवस्वभावसुलभदोष से यदि कहीं कोई त्रुटि रहगई हो तो उसका संशोधन करके विज्ञजन मुझे भी सूचना देकर अनुगृहीत करेंगे।

यत्नेन गच्छतो मार्गे स्खलनं चेन्महीयसाम्।
हसन्त्यसाधवस्तत्र समादधति सज्जनाः ॥१॥

विदुषां वशंवदः
डा० गेंदनलाल शास्त्री
निदेशकः—
ज्योति - विज्ञान - अनुसंधान - संस्थान,
कागजी बाजार, मेरठ - २ (उ० प्र० भारत)
फोन नं० ७३०२०

विषय सूची

प्रथमाध्याय

द्वितीयाध्याय

प्रश्नाध्यायतृतीय

परिभाषाध्यायचतुर्थ

विषय सूचि

विषय सूची

विषय सूची

विषय सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
वर्षावायुविज्ञान - प्रतिपादक-सप्तमाध्याय	

विषय सूचि

विषय सूची

— शुभं भूयात् —

आर्षवर्षा-वायुविज्ञानम्

प्रथमाध्यायः

"अथ ॐ श्री गणेशाय नमः"

गजाननं शिवं साम्बं नत्वा सङ्कटमोचनम् ।
हिन्दीटीका निबन्धस्य "सुन्दरी" लिख्यते मया ॥

सुन्दरी टीका— सृष्टि के आरम्भ में "अथ और ॐ" ये दोनों शब्द सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के कण्ठ का भेदन करके निकले थे, ये दोनों शब्द मङ्गलाचरणवाचक हैं, अत एव निबन्ध के प्रारम्भ में मंगलवाचक "अथ और ॐ" शब्दों का प्रयोग करके, सर्वविधनिघ्ननिवारक भगवान् गणेश जी को नमस्कार किया गया है ।

समङ्गलाचरण— शोधनिबन्ध—सम्बन्धचतुष्टय—प्रतिपादनाध्यायः

सुन्दरी टीका—"आर्षवर्षा-वायुविज्ञान" नामक शोधनिबन्ध के इस प्रथम अध्याय में मङ्गलाचरण पूर्वक शोधनिबन्ध-सम्बन्धचतुष्टय (१) "शोध के विषय (२) अधिकारी (३) सम्बन्ध (४) प्रयोजन" का प्रतिपादन किया गया है ।

निबन्ध के आरम्भ में मङ्गलाचरण की आवश्यकता का विवेचन—

"आर्षवर्षा-वायुविज्ञानम्" शोधनिबन्धं व्याचिकीर्षुः-अहम् "मङ्गलादीनि-मङ्गलमध्यानि-मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि-प्रथन्ते, वीरपुरुषाणि भवन्ति, आयुष्मत्-पुरुषाणि च, अध्येतारश्च सिद्धार्थाः- यथा स्युः" इतिपातञ्जल-महाभाष्योक्तं पतञ्जलि-मुनेः— आर्षोपदेशं समनुसृत्य, शिष्टाचारप्राप्तं · सर्वविधविघ्न - निवारणार्थं— "आशीर्नमस्क्रिया-वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्" इति त्रिविधमङ्गलमध्यतः स्वाभीष्टदेव-नमस्करात्मकं-मङ्गलाचरणं गुरुजनचरणाभिवादनं च करोमि·········

सुन्दरी टीका—"आर्षवर्षा-वायुविज्ञान" नामक शोधनिबन्ध की रचना को करने का इच्छुक मैं " डा० गेंदनलाल शास्त्री" महाभाष्य में कहे गये पतञ्जलि मुनि के इस उपदेश को स्वीकार करके कि— शास्त्र, निबन्धों और ग्रन्थों के आदि में अथवा मध्य में अथवा अन्त में अथवा तीनों ही स्थलों में मंगलाचरण अवश्य करना चाहिए, मंगलाचरण से युक्त शास्त्रों, निबन्धों और ग्रन्थों को लिखने वाले व्यक्ति अज्ञानवर्धक भ्रामक मतों का खण्डन और ज्ञानवर्धक वास्तविक सच्चे मतों का मण्डन करने में समर्थ होकर, स्वरचित शास्त्रों, निबन्धों और ग्रन्थों के माध्यम से वीरपुरुषों की कोटि में अपने अस्तित्व को तथा यश और दीर्घायु को प्राप्त करते हैं ।

मङ्गलाचरणयुक्त सभी प्रकार के ग्रन्थों को पढ़ने वाले व्यक्ति भी निर्विघ्नता

पूर्वक आद्योपान्त ग्रन्थों का अध्ययन करके, ग्रन्थस्थ गूढ अर्थों के रहस्यों को भली प्रकार से समझ कर, ज्ञानोपार्जन करने के लक्ष्य की पूर्ति करके, सिद्धार्थ अर्थात् सिद्धमनोरथ व्यक्तियों की गणना में गिने जाते हैं।

आरम्भ किये गये निवन्धरचना आदि सभी प्रकार के कार्यों के बीच में आने वाले सभी प्रकार के विघ्नों की निवृत्ति के लिये, श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा व्यवहार में प्रयुक्त शिष्टाचार के अन्तर्गत "१- आशीर्वादात्मक, २- नमस्कारात्मक, ३- वस्तु-निर्देशात्मक" इन तीन प्रकार के मंगलाचरणों में से अपने अभीष्ट देवता की प्रसन्नता के लिये, नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण को और गुरुजनों के चरणकमलों में अभिवादनात्मक मंगलाचरण को मैं इस निवन्ध-ग्रन्थ के प्रारम्भ में लिखता हूँ।

शङ्करं शङ्करं साम्वं गणेशं विघ्नहारिणम्।
अन्नपूर्णां सदा स्तौमि दुर्गां सङ्कटमोचनम् ॥१॥
सरसाँ सरलाँ ध्यात्वा शारदाँ सारदाँ शुभाम्।
सीतारामौ हनूमन्तं नमामि कालभैरवम् ॥२॥
व्रजभूमौ कृता लीला कंसादिदुष्टनिग्रहः।
धर्मः संरक्षितो येन तस्मै कृष्णाय मे नमः ॥३॥
उदयास्तैर्ग्रहाणाँ च सञ्चारै र्वृष्टिज्ञानदम्।
वन्दे तं सूर्यसिद्धान्तं कुसिद्धान्ततमोहरम् ॥४॥
सदा सुरेन्द्रवन्दितं कपालशूलधारिणम्-
भुजङ्गमैः सुवेष्टितं सुनीलकण्ठशोभितम्।
नमामि चन्द्रशेखरं विशुद्धज्ञानदायकम्-
अभीष्टलक्ष्यपूरकं त्रिलोचनं सदा भजे ॥५॥

सुन्दरी टीका— जगदम्वा पार्वती के सहित कल्याण "मंगल" करने वाले भगवान् शंकर जी की, विघ्नों का हरण करनेवाले गणेश जी की, सब प्रकार के खाद्यपदार्थों की पूर्ति करने वाली मातेश्वरी अन्नपूर्णा की, दुर्गा की, और सब प्रकार के संकटों से मुक्त "अलग" रखने वाले भगवान् सङ्कटमोचन की मैं "डा० गेंदनलाल शास्त्री" सदा स्तुति करता हूँ ॥१॥

तात्विक ज्ञान को देने वाली कल्याणकारिणी सरल और सरस शारदा "सरस्वती" को ध्यान में लाकर, सीताराम, हनूमान् और कालभैरव जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥

व्रजभूमि में लीला "अनेक प्रकार की क्रीडा" को करने वाले, कंसादिदुष्टों को मारने वाले, धर्म की रक्षा करने वाले भगवान् श्री कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥

आकाशस्थ ग्रहों के उदयास्तों और संचारों "गतिविधियों" से वर्षा के ज्ञान को देने वाले तथा ब्रह्माण्ड की स्थिति को नहीं जानने वाले लल्लाचार्य और भास्कराचार्य प्रभृति आधुनिक विद्वानों के भूगोलीय और खगोलीय कुछ "निकृष्ट"

सिद्धान्तों से संसार में फैले अज्ञानमय अन्धकार को दूर करने वाले, सूर्यसिद्धान्त "भूगोलीय और खगोलीय-गणित के आर्षसिद्धान्त" की मैं वन्दना "स्तुति" करता हूँ ॥४॥

हमेशा इन्द्रादि देवता जिन की पूजा करते हैं, कपाल "कमण्डलु" और शूल "त्रिशूल" जो धारण किये हुए हैं, सर्पों से लिपटे हुए सुन्दर नीले कण्ठ "गले" से जो सुशोभित हैं, जिनके विशाल भाल "माथे" पर चन्द्रमा सुशोभित है, जो विशुद्ध "निर्मल" ज्ञान को देने वाले हैं, जो अभीष्टलक्ष्य की पूर्ति करने वाले हैं, तीन जिनके नेत्र हैं, ऐसे भगवान् शङ्कर जी की मैं स्तुति करता हूँ ॥५॥

"ऋषिवन्दनां करोमि:—

ऋषियों की वन्दना करता हूँ—

व्यासं शुकं च वाल्मीकिं वसिष्ठं काश्यपं मुनिम् ।
गर्गं पराशरं वन्दे हारीतं नारदादिकान् ॥६॥
प्रणम्य पाणिनिं विज्ञं मुनिं चापि पतञ्जलिम् ।
संस्कृतभाषया साधुर्निबन्धो लिख्यते मया ॥७॥
निरुक्ताच्चार्षवर्षा-वायुविज्ञानं मयार्जितम् ।
निरुक्तकारकं वन्दे यास्कं विज्ञानिनां वरम् ॥८॥
चरकं सुश्रुतं वन्दे सादरं भक्तिभावतः ।
वृष्टेर्वायोश्च विज्ञानं याभ्यां लब्धं सुनिश्चितम् ॥९॥
आकाशस्थेषु तोयेषु कथं गेसादिजन्तवः ।
मत्स्याद्या दादुराद्याश्च जायन्ते केन हेतुना ॥१०॥
जल-स्थलस्थ-जीवानां विज्ञानं येन वर्णितम् ।
चरकं तमहं वन्दे मुनिं विज्ञानदायकम् ॥११॥
व्यासादिकृत – शास्त्रेभ्यो विज्ञानं वृष्टिवायुजम् ।
मया लब्धमतो वन्दे वैज्ञानिकवरान् मुनीन् ॥१२॥

सुन्दरी टीका—वेदव्यास, शुकदेव, वाल्मीकि, वसिष्ठ, काश्यपमुनि, गर्ग, पराशर, हारीत, और नारदादिक मुनियों की मैं वन्दना करता हूँ ॥६॥

संस्कृत भाषा के माध्यम से मैं सुन्दर निबन्ध को लिख रहा हूँ ॥७॥

"निरुक्त" नाम के आर्षग्रन्थ से भी मैंने "आर्षवर्षा-वायुविज्ञान" को सञ्चित किया है, अतएव निरुक्तग्रन्थ को बनाने वाले वैज्ञानिकों में श्रेष्ठ "यास्क मुनि की मैं वन्दना "स्तुति" करता हूँ ॥८॥

"चरक" ओर "सुश्रुत" की मैं वन्दना करता हूँ, क्योंकि चरक और सुश्रुत से भी मैंने वर्षा और वायुविज्ञान को प्राप्त किया है ॥९॥

आकाश में स्थित जलों में गेसा "केंचुआ सर्प के सदृश आकृति वाले" जीवों और मछलीप्रभृति जीवों तथा मेंढक आदि जीवों को किस कारण से ओर किस प्रकार से उत्पत्ति होती है, इसका ज्ञान कराने वाले, तथा जल और स्थल में रहने वाले सभी

प्रकार के प्राणियों का वैज्ञानिक विवेचन करने वाले और विज्ञान को देने वाले "चरक मुनि" की में वन्दना करता हूं ॥१०॥११॥

वेदव्यासादि महर्षियों द्वारा निर्मित शास्त्रों से मैंने वर्षा और वायु के विज्ञान को प्राप्त किया है, अतएव-वैज्ञानिकों में श्रेष्ठ मुनियों की मैं वन्दना "स्तुति" करता हूँ ॥१२॥

॥ गुरुजनवन्दनां मातृपितृवन्दनां च करोमि ॥

गुरुजनों और माता-पिता की वन्दना को करता हूं——

शङ्करं शङ्कराचार्यं यतीन्द्रं ज्ञानदायकम् ।
कृष्णबोधाश्रमं वन्दे नतेन शिरसा सदा ॥१३॥
नरौरा-कलकत्ती-डिवीजनेऽस्ति सुसंस्थितः ।
जिला बुलन्दशहरे प्रदेशे चोत्तरे तु यः ॥१४॥
साङ्गवेद - महाविद्यालय-नरवरस्तु यैः ।
स्थापितः-सुमहाभागै नैंष्ठिकब्रह्मचारिभिः ॥१५॥
व्याकरणादिशास्त्रेषु त्रिस्कन्ध-ज्यौतिषेऽपि च ।
येषां कृपाकटाक्षेण प्रवेशं प्राप्तवानहम् ॥१६॥
तेषां जीवनदत्तानां चरणकमलेष्वहम् ।
कृताञ्जलिः शिरोधृत्वा निबन्धं प्रारम्भे मुदा ॥१७॥
बदायूं मण्डले ग्रामो हरदासपुरस्तु यः ।
गुन्नौर-तहसीलान्तर्गतो विप्रैस्तु मण्डितः ॥१८॥
तत्र गङ्गातटे गङ्गासहायो जनको मम ।
सुन्दरी मम माता च वैद्यकर्मविशारदौ ॥१९॥
तयोः पादारविन्देषु प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।
ययोः प्रेरणया लब्धं ज्ञानं संस्कृतवाङ्मयम् ॥२०॥
आनन्दीलालशर्माणं वैद्यकर्मविशारदम् ।
आचार्यं सततं वन्दे भ्रातरं ज्ञानदायकम् ॥२१॥

॥ शङ्कराचार्य श्री कृष्णबोधाश्रम जी को अभिवादन ॥

सुन्दरी टीका——मुझे अनेक विषयों का ज्ञान देने वाले यतियों में श्रेष्ठ तथा कल्याण को करने वाले ब्रह्मलीन जगद्गुरु-शङ्कराचार्य श्री कृष्णबोधाश्रम जी महाराज के चरणकमलों की मैं सदा वन्दना करता हूँ ॥१३॥

॥ नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्री जीवनदत्त जी महाराज को अभिवादन ॥

भारतराष्ट्र के उत्तरप्रदेश में जिला बुलन्दशहर के अन्तर्गत नरौरा कलकत्ती डिवीजन में स्थित "साङ्गवेद महाविद्यालय नरवर" को महामहिम तपस्वी जिन नैष्ठिक ब्रह्मचारी ने स्थापित किया है, व्याकरणादिशास्त्रों में और त्रिस्कन्धज्योतिष के शास्त्रों में जिनके कृपाकटाक्ष से मैंने प्रवेश किया है, अनेक विषयों के धुरन्धर मार्मिक विद्वान्, गायत्री के उपासक, उन "श्री जीवनदत्त जी महाराज" के चरणकमलों में

दोनों हाथों की अञ्जलि बांधे हुए अपने मस्तक और सिर को अभिवादन की मुद्रा में रखकर प्रसन्नचित्त से मैं निवन्ध की रचना को प्रारम्भ करता हूँ ॥१४॥१५॥१६॥१७॥

॥ जन्मभूमि और माता पिता का परिचय और उनको अभिवादन ॥

भारत राष्ट्र के उत्तरप्रदेश में वदायूं जिला में गुन्नौर तहसील के अन्तर्गत अनेक प्रकार के विद्वानों और प्रतिष्ठित वैद्यब्राह्मणों से सुशोभित "हरदासपुर" नाम का एक ग्राम "गांव" है ॥१८॥

गङ्गा के तट "किनारे" पर स्थित इस ग्राम में श्री गंङ्गासहाय वैद्य नाम से प्रसिद्ध स्वर्गीय पूज्य मेरे पिताजी और श्रीमती सुन्दरी वैद्या नाम से प्रसिद्ध स्वर्गीया पूज्या मेरी माताजी, निवास करते थे, ये दोनों ही चिकित्सा के कार्य में सिद्धहस्त और कुशल वैद्यों में गिने जाते थे ॥१९॥

उन दोनों माता और पिता की असीम कृपा और उनकी ही प्रेरणा से मैंने संस्कृतवाङ्मय के ज्ञान को प्राप्त किया है, मैं दिवङ्गत उन अपने माता-पिता के चरणारविन्दों में बारम्वार साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ ॥२०॥

मुझे संस्कृतवाङ्मय के ज्ञान को देने वाले चिकित्सा के क्षेत्र में सिद्धहस्त और कुशल आचार्य आनन्दीलाल शास्त्री नाम से प्रसिद्ध अपने वड़े भाई को भी मैं सादर अभिवादन "वन्दना" करता हूं ॥२१॥

चौधरी यस्य नामान्ते गेंनालालं विदां वरम् ।
त्रिस्कन्ध-ज्योति-र्निष्णातं नमामि ज्ञानदं गुरुम् ॥२२॥
त्रिपाठी यस्य नामान्ते वन्देऽवधविहारिणम् ।
गुरुं सदा सुधीवन्द्यं सिद्धान्तज्ञेषु भास्करम् ॥२३॥
श्री सीताराम झोपाख्यं विद्वद्वन्द्यं गुरुं विभुम् ।
वहुग्रन्थप्रणेतारं प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥२४॥
काशीस्थगुरुवर्याणां पादपद्मेषु नित्यशः ।
विनतं मस्तकं कृत्वा निवन्धं विलिखाम्यहम् ॥२५॥

॥ काशीस्थ गुरुजनों की वन्दना ॥

सुन्दरी टीका——मुझे खगोलीय ज्ञान को देने वाले त्रिस्कन्ध ज्यौतिपशास्त्र में पारङ्गत विद्वानों में श्रेष्ठ स्वर्गीय "श्री गेंनालाल चौधरी" गुरु जी को मैं सादर अभिवादन करता हूँ ।

अच्छी बुद्धि के व्यक्तियों से वन्दनीय सिद्धान्तज्ञों में भास्कर "श्री अवधविहारी त्रिपाठी" गुरुजी को मैं सादर अभिवादन करता हूं ॥२३॥

वहुत से ग्रन्थों को वनाने वाले और विद्वानों से वन्दनीय "श्री सीताराम झा" गुरुजी को मैं बारम्वार सादर प्रणाम करता हूँ ॥२४॥

विश्वनाथपुरी काशी में रहकर मैंने जिन गुरुजनों से विविध विषयों का ज्ञानोपार्जन किया है, उन सभी काशीस्थ गुरुजनों के चरणकमलों में नित्य विनम्र मस्तक को रखकर मैं इस निवन्ध को लिख रहा हूँ ॥२५॥

येषां पूर्वाचार्याणां टीकाग्रन्थान् समधीत्य विज्ञानं मयार्जितं तानहं प्रणमामि ॥

सुन्दरी टीका— जिन पूर्वाचार्यों के टीका ग्रन्थों को पढ़कर मैं ने "आर्षवर्षा-वायुविज्ञान" को संचित किया है, उन टीकाग्रन्थों के लेखक आचार्यों को मैं प्रणाम करता हूँ।

सिद्धान्तकौमुदी येन शब्दशास्त्रप्रबोधिनी ।
रचिता तमहं वन्दे भट्टोजिदीक्षितं नतः ॥२६॥
अमरकोषनामके कोषे शब्दार्थबोधके ।
व्याख्यासुधा कृता येन टीका रामाश्रमीति च ॥२७॥
भट्टोजिदीक्षितस्यापि पुत्रं भानुजिदीक्षितम् ।
नमामि शिरसा साधुटीकया ज्ञानदायकम् ॥२८॥

सुन्दरी टीका— शब्दशास्त्र "व्याकरण" का ज्ञान कराने वाली "सिद्धान्त-कौमुदी" को जिसने बनाया है, विनम्रभाव से मैं उन भट्टोजिदीक्षित को प्रणाम करता हूं ॥२६॥

शब्दों के अर्थों का ज्ञान कराने वाले "अमरकोष" नाम के कोष पर जिसने "व्याख्या सुधा" और "रामाश्रमी" टीका की है, अपनी इस सुन्दर टीका से ज्ञान को देने वाले भट्टोजिदीक्षित के पुत्र भानुजिदीक्षत को मैं सिर झुका कर नमस्कार करता हूं ॥२७।२८॥

ब्रह्माण्डान्तर्गताः सन्ति ये हि लोकाश्चतुर्दश ।
व्यासाद्यैः कथितं तेषाँ ज्ञानं नान्येन केन चित् ॥२९॥
तेषु जम्ब्वादिसर्वेषु द्वीपलोकेषु सा कदा ।
कीदृशी जायते वृष्टि र्व्यासाद्यैः समुदीरितम् ॥३०॥

सुन्दरी टीका— ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत निश्चित रूप से चौदह "१४" लोक हैं। उन चौदह लोकों का ज्ञान केवल व्यासादि महर्षियों ने ही अपने निबन्धग्रन्थों में कहा है, अन्य किसी ने भी चतुर्दश लोकों के ज्ञान का विवेचन नहीं किया है ॥२९॥

उन "जम्बू" आदि द्वीपों में और चौदहलोकों में वर्षा और वायु की स्थिति कब कैसी रहती है, इसका विवेचन व्यासादि ऋषियों ने किया है ॥३०॥

श्रीमद्भागवते ग्रन्थे ज्ञानविज्ञानसंयुते ।
"भावार्थदीपिका"-टीका-श्रीधर-स्वामिभिः कृता ॥३१॥
श्रीमद् विष्णुपुराणेऽपि लोकविज्ञानदायके ।
"आत्मप्रकाश"-टीका तु श्रीधर-स्वामिभिः कृता ॥३२॥
आत्मप्रकाश-भावार्थदीपिकाभ्याँ मयार्जितम् ।
वृष्टे र्वायोश्च विज्ञानमार्षं नास्त्यत्र संशयः ॥३३॥
लोकसंस्थानदं ज्ञानं श्रीधरटीकया कृतम् ।
श्रीधरस्वामिनं वन्दे टीकाभ्यां ज्ञानदायकम् ॥३४॥

सुन्दरी टीका— ज्ञान और विज्ञान से परिपूर्ण "श्रीमद्भागवत" ग्रन्थ पर "भावार्थदीपिका" नाम की टीका विद्वत्प्रवर श्रीधर स्वामी ने की है ॥३१॥

चौदह "१४" लोकों की स्थिति के ज्ञान को देने वाले "श्रीमद् विष्णु पुराण" नाम के ग्रन्थ पर भी "आत्मप्रकाश" नाम की टीका श्रीधरस्वामी ने लिखी है ॥३२॥

"आत्मप्रकाश" और "भावार्थदीपिका" नाम की दोनों टीकाओं से मैं ने वर्षा और वायु से सम्बन्धित आर्ष विज्ञान को संचित किया है, "आर्षवर्षा-वायुविज्ञान" का विवेचन करने में मुझे किसी भी प्रकार का लेशमात्र भी संशय नहीं है ॥३३॥

सातों द्वीपों और चौदह लोकों की स्थिति का ज्ञान मैंने श्रीधर स्वामी कृत टीकाओं से किया है, अत एव स्वकृत टीकाओं से ज्ञान देने वाले विद्वन्मूर्धन्य श्रीधर स्वामी जी को मैं सादर नमस्कार "वन्दन।" समर्पण करता हूँ ॥३४॥

निरुक्ते विवृति येन वृष्टिज्ञानप्रवोधिनी ।
निर्मिता तमहं वन्दे श्रीमुकुन्दं सुपण्डितम् ॥३५॥
वराहमिहिराचार्यं विज्ञानस्योदधिं कविम् ।
भट्टोत्पलं नमामि तं टीकया वृष्टिवोधदम् ॥३६॥
कोविदं भास्कराचार्यं -ख-सिद्धान्तशिरोमणिम् ।
खण्डनै मंण्डनै र्युक्तं यश्चकार नमामि तम् ॥३७॥
येन सिद्धान्त-तत्व-विवेको ग्रन्थो विनिर्मितः ।
कमलाकरभट्टं तं वन्दे तत्वविदाँ वरम् ॥३८॥
कालिदासं महाकविं माघं च भारविं कविम् ।
नमामि तन्महाकाव्यै र्ज्ञानं वृष्टे र्मयार्जितम् ॥३९॥
निदानं सर्वरोगाणाँ जीवानाँ येन वर्णितम् ।
माधवं तमहं वन्दे जीवविज्ञानदायकम् ॥४०॥

सुन्दरी टीका— वैज्ञानिकप्रवर "यास्क" मुनिरचित "निरुक्त" नाम के ग्रन्थ पर वर्षावायुविज्ञान का बोध कराने वाली "विवृति" नाम की टीका के लेखक पण्डित प्रवर "श्री मुकुन्द जी" को मैं सादर अभिवादन करता हूँ ॥३५॥

विज्ञान के सागर प्रसिद्ध कवि "श्री वराहमिहिराचार्य" और वराहमिहिराचार्यविरचित "वृहत्संहिता" प्रभृतिग्रन्थों पर स्वनिर्मित टीका के द्वारा "आर्षवर्षा वायुविज्ञान" का ज्ञान देने वाले विश्वविख्यात आचार्य "भट्टोत्पल" को मैं सादर प्रणाम "वन्दना" करता हूँ ॥३६॥

पण्डितप्रवर श्री भास्कराचार्य जिन्होंने –भूगोल-खगोलीय "सिद्धान्तशिरोमणि" नाम के ग्रन्थ को खण्डनों और मण्डनों से युक्त वनाया है, उन को मैं सादर नमस्कार करता हूँ ॥३७॥

जिन्होंने "सिद्धान्त-तत्व-विवेक" नाम के मार्मिक ग्रन्थ को वनाया है, तत्वज्ञों में श्रेष्ठ विद्वत्प्रवर उन "श्री कमलाकर भट्ट" की मैं वन्दना करता हूँ ॥३८॥

विश्वविख्यात महाकवि "कालिदास" को तथा "माघ" और "भारवि" को मैं सादर नमस्कार करता हूँ, इन महाकवियों के महाकाव्यों से मैंने "वर्षा-वायु

विज्ञान" के ज्ञान का उपार्जन किया है ।।३९।।

प्राणियों के समस्त रोगों के निदान का जिन्होंने वर्णन किया है, जीवविज्ञान को देने वाले "माधव निदान" प्रभृति आयुर्वेद के ग्रन्थों का निर्माण करने में विश्व में प्रसिद्ध विद्वत्प्रवर वैज्ञानिक "माधव" कवि को भी मैं सादर अभिवादन करता हूँ ।।४०।।

"शोधनिवन्ध-सम्वन्धचतुष्टय-निरूपणं करोमि"

सुन्दरी टीका—शोधनिवन्धों के चार प्रकार के सम्वन्धों का निरूपण "प्रतिपादन" वक्ष्यमाण प्रकार से मैं कर रहा हूँ ।

विषयश्चाधिकारी च सम्बन्धश्च प्रयोजनम् ।
सर्वत्र सुनिवन्धेषु भवन्तीति चतुष्टयम् ।।४१।।

सुन्दरी टीका— (१) निवन्ध में किस विषय का प्रतिपादन किया गया है । (२) निवन्धस्थ विषय को जानने का अधिकारी "पात्र" किस प्रकार का व्यक्ति होना चाहिये । (३) निवन्धस्थ विषय का सम्वन्ध राष्ट्र में रहने वाले प्राणियों से क्या और किस प्रकार का है । (४) निवन्ध के लिखने का प्रयोजन अथात् उद्देश्य क्या है ।

उपर्युक्त चारों वातें अच्छे निबन्धों में सर्वत्र "सब जगह" हुआ करती हैं । ।।४१।।

।। शोधनिबन्धस्य विषयः ।।

संवीक्ष्य नवविज्ञानमार्षज्ञानं समीक्ष्य च ।
निवन्धमार्षवर्षा-वायुविज्ञानं लिखाम्यहम् ।।४२।।

सुन्दरी टीका—शोधनिबन्ध का विषय......

आधुनिक नवीन विज्ञान को अच्छी प्रकार से देखकर और आर्षविज्ञान अर्थात् ऋषिप्रणीतग्रन्थों में वर्णित दिव्यचक्षुओं से प्रत्यक्षसिद्ध विज्ञान को भी भली प्रकार से विचारकर "आर्षवर्षा-वायुविज्ञान विषय" का जिसमें प्रतिपादन किया गया है, ऐसे निवन्ध को मैं "डा० गेंदनलाल शास्त्री" लिख रहा हूं ।।४२।।

शोधनिबन्धस्य प्रयोजनम्

ऋषीणां मतमालोढ्य सिद्धान्तान् समवीक्ष्य च ।
अज्ञानध्वान्त-ध्वंसाय निवन्धं विलिखाम्यहम् ।।४३।।
भूगोलस्य खगोलस्य चातलादे स्तथैव च ।
साम्प्रतं नास्ति विज्ञानं लोकेऽस्मिन् मानवैः कृतम् ।।४४।।
तद्विना भ्रान्तिमार्गस्था अमरीकादिजा जनाः ।
पर्वतेषु प्रयातास्ते मन्यन्ते चन्द्रगाः स्वयम् ।।४५।।
प्रचारो मानवे लोके वराकैं भ्रान्तिः कृतः ।
चन्द्रलोकस्य यात्रायाष्टेलीवीजनयन्त्रकैः ।।४६।।

सुन्दरी टीका—शोधनिबन्ध को लिखने का प्रयोजन......

दिव्यचक्षुओं से प्रत्येक वस्तु को प्रत्यक्ष देखकर कहने अथवा लिखने वाले

अतीन्द्रिय ऋषियों के मतों को गहराई से जानकर, तथा अनेक सिद्धान्त और मतमतान्तरों को अच्छी प्रकार से समझकर, अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिये "आर्षवर्षा-वायुविज्ञानम्" नाम के निबन्ध को मैं लिख रहा हूं ॥४३॥

भूगोल और खगोल की वास्तविक स्थिति का और अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल तथा भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य इन समस्त चतुर्दश "चौदह १४" लोकों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान विश्वभर में इस समय के भौतिकवादी व्यक्तियों ने नहीं किया है। चौदह लोकों और सप्तद्वीपों का अस्तित्व कहाँ पर है, और उनकी लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई कितनी मात्रा में हैं, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, शृङ्गवान्, गन्धमादन, माल्यवान् और सुमेरु, मानसोत्तर, लोकालोक, रैवतक आदि पर्वतों की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई कितनी है, इन प्रसिद्ध पर्वतों की दूरी- राजधानी दिल्ली से, अमरीका से, रूस, ब्रिटेन और चीन-जापान आदि से कितनी है, और ये कहाँ पर स्थित हैं। इन उक्त प्रसिद्ध राजधानियों से—इन्द्रलोक, यमलोक, की दूरी और ऊँचाई कितनी है। स्वर्ग और नरक कहाँ हैं, भारतवर्ष की भाँति "किम्पुरुषवर्ष, हरिवर्ष, इलावृतवर्ष, रम्यकवर्ष, हिरण्यवर्ष, केतुमालवर्ष, इनकी स्थिति कहाँ पर है, और इनकी लम्बाई, चौड़ाई कितनी है। मृत्युलोक की लम्बाई और चौड़ाई कितनी है। उपर्युक्त विषयों में से किसी भी विषय की जानकारी न आज के भौतिकवादी वैज्ञानिकों को है, और न ही विभिन्न सम्प्रदायों के आधुनिक व्यक्तियों को इन विषयों की जानकारी है। आज की प्रचलित शिक्षा प्रणाली में उक्त विषयों की जानकारी के लिये न किसी कोर्स की आवश्यकता ही समझी जा रही है।

संस्कृतवाङ्मय के प्राचीनतम सहस्रों गणित ग्रन्थों योगग्रन्थों, दर्शनग्रन्थों, व्याकरण-साहित्य और कर्मकाण्ड के ग्रन्थों में उक्त विषयों की वास्तविक स्थिति को बताने के लिये पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

आज का भौतिकवादी वैज्ञानिक संसार में स्थित जिन वस्तुओं को प्रत्यक्ष देखने में जीवन भर असफल रहेगा, उन समस्त वस्तुओं को योगी ऋषि अपने योग बल से प्रत्यक्ष देखने में अनायास ही समर्थ हो गये थे, और भविष्य में भी समर्थ होते रहेंगे। योगियों के पास—दूरश्रवण, दूरदर्शन, मनोजव, अर्थात् मन जितनी शीघ्रता से कहीं से कहीं पहुँच जाता है, उसी प्रकार से योगी ऋषि भी एक मिनट या सैकेण्ड में कहीं से कहीं पहुंचने का सामर्थ्य रखता है। कामरूप, परकार्यप्रवेश, स्वच्छन्दमृत्यु यथासंकल्प संसिद्धि, आज्ञा अप्रतिहतागति, त्रिकालज्ञत्व अर्थात् भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों की घटनाओं को जानना, आदि अनेक प्रकार की सिद्धियों के द्वारा योगी ऋषियों ने सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टि से प्रत्येक वस्तु को प्रत्यक्ष देखकर संसार की वस्तुओं के सम्बन्ध में जो कुछ भी अपने निबन्ध ग्रन्थों में लिखा है, वह अक्षरशः सत्य है।

अतएव आर्ष-ग्रन्थों, निवन्धों और आर्ष सिद्धान्तों में भूगोल, खगोल, सप्तद्वीपों किम्पुरुषादिवर्षों, चौदहलोकों, ग्रहों की दूरियों, पर्वतों की ऊँचाईयों के सम्बन्ध में ऋषियों ने जो कुछ भी लिखा है, वह सब कुछ भी अक्षरशः सत्य है।

कुछ आधुनिक वैज्ञानिक आर्षसिद्धान्तों के रहस्यों को न समझकर उन पर जो मिथ्यात्व का आरोप लगाकर कटुकटाक्ष करने का साहस करते हैं, वह आधुनिक वैज्ञालिकों की भ्रान्ति की पराकाष्ठा मात्र है ॥४४॥

पतञ्जलि मुनि ने पातञ्जल महाभाष्य में शब्द प्रयोग के देशों का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

"महान् शब्दस्य प्रयोगविषयः, सप्तद्वीपा वसुमती, त्रयो लोकाः" महाभाष्य-कार पतञ्जलि के इस कथन का सारांश यह है कि—सातों द्वीपों में और तीनों लोकों में संस्कृत शब्द वोले जाते हैं, अतएव संस्कृत शब्दों के प्रयोग का प्रदेश "विषय" वहुत ही लम्वा-चौड़ा होने के कारण सुविस्तृत है।

भूगोल पर क्रमशः—(१) जम्वूद्वीप, (२) प्लक्षद्वीप, (३) शाल्मलद्वीप, (४) कुशद्वीप, (५) क्रौंञ्चद्वीप, (६)शाकद्वीप, (७) पुष्करद्वीप, ये सातों द्वीप सृष्टि के आरम्भ से अन्त तक विद्यमान रहते हैं।

सृष्टि के प्रलय के साथ ही इन सात द्वीपों का भी प्रलय हुआ करता है।

एक लाख "१०००००" योजन अर्थात् चौदह लाख चऊअन हजार पाँच सौ पेंतालीस किलोमीटर और पांच सौ गज "१४५४५४५ किलोमीटर, ५०० गज" लम्वा चौड़ा, वृत्ताकार, यह जम्वूद्वीप, वृत्ताकार प्लक्षद्वीपप्रभृति छः द्वीपों के मध्य में सातवां द्वीप स्थित है, जम्वूद्वीप से द्विगुणित लम्वाई-चौड़ाई वृत्ताकार प्लक्षद्वीप की है,

प्लक्षद्वीप से द्विगुणित शाल्मलद्वीप, शाल्मलद्वीप से द्विगुणित कुशद्वीप, कुशद्वीप से द्विगुणित क्रौंञ्चद्वीप, क्रौंञ्चद्वीप से द्विगुणित शाकद्वीप, शाकद्वीप से द्विगुणित पुष्करद्वीप, लम्वाई-चौड़ाई में वृत्ताकार अर्थात् गोल-आकार स्थिति में विद्यमान हैं।

जम्वूद्वीप के वींच में वारह लाख इक्कीस हजार आठ सौ अठारह किलोमीटर और दो सौ गज ऊँचा अर्थात्—"१२२१८१८ किलोमीटर, २०० गज ऊँचा" सुमेरु पर्वत विद्यमान है।

भद्राश्ववर्ष और केतुमालवर्ष की सीमाओं को इलावृत्तवर्ष से पृथक् करने वाले—गन्धमादन पर्वत और माल्यवान् पर्वत की ऊँचाई पाँच लाख नवासी हजार नौ सौ नौ किलोमीटर अर्थात् "५८९९०९" किलोमीटर है।

हेमकूट प्रभृति पर्वतों की ऊँचाई—एक लाख पेंतालीस हजार चार सौ पचपन किलोमीटर "१४५४५५ किलोमीटर" के लगभग है। उपर्युक्त ये सभी पर्वत जम्वूद्वीप के अन्तर्गत विद्यमान हैं।

अमरीका, रूस, चीन, भारतवर्ष, ब्रिटेन, जापान, प्रभृति सभी देश जम्वूद्वीप के दक्षिणी भाग में स्थित जम्वूद्वीप के नवें भाग में जिसे मृत्युलोक भी बोला जाता

है, उसी के अन्तर्गत विद्यमान हैं।

भूगोल से चन्द्रलोक की ऊँचाई—

उनतीस लाख नौ हजार नव्मै किलोमीटर और एक हजार गज है, अर्थात्—"२९०९०९० किलोमीटर, १००० गज" है।

जम्बूद्वीप के दक्षिणी भाग मृत्युलोक में रहने वाले—अमरीका-रूस-प्रभृति देशों के अन्तरिक्ष यात्री आधुनिक वैज्ञानिक अपने देशों की वेधशालाओं से उत्तर की दिशा में स्थित गन्धमादन और माल्यवान् प्रभृति पर्वतों के शिखरप्रदेशों में ही पहुंच पा रहे हैं।

चूंकि—अमरीका और रूस प्रभृति देशों के आधुनिक वैज्ञानिकों को जम्बूद्वीप प्रभृति सप्तद्वीपों की और उन द्वीपों में स्थित पर्वतों की ऊँचाई का ज्ञान लेशमात्र भी नहीं है, उन्हें ब्रह्माण्ड की स्थिति के विषय में भी वास्तविक रूप में कोई जानकारी नहीं है। चन्द्रमा प्रभृति ग्रहलोकों की स्थिति के विषय में भी ये वैज्ञानिक भ्रामक और ऊटपटांग अटकलें लगाये बैठे हैं।

अतएव—भूगोल और खगोल तथा द्वीपों और पर्वतों, तथा ग्रहलोकों का ज्ञान न होने के कारण अमरीका प्रभृति देशों के अन्तरिक्ष यात्री आधुनिक वैज्ञानिक भ्रान्तिप्रद मार्गों में भटकते हुए गन्धमादन और माल्यवान् प्रभृति पर्वतों की मध्यस्थ चोटियों अर्थात् शिखरों पर पहुँचकर, अज्ञान के वशीभूत होकर अपने आपको चन्द्रलोक में पहुँचा हुआ समझे बैठे हैं, यह सब कुछ अन्तरिक्षयात्री आधुनिक वैज्ञानिकों की अज्ञानता और भ्रान्तिता की पराकाष्ठा का ही परिचायक है ॥४५॥

टेलीवीजन प्रभृति यन्त्रों के माध्यम से चन्द्रलोक की यात्रा का भ्रामक प्रचार इस मनुष्यलोक में भ्रान्ति और अज्ञानता के वशीभूत होकर ही बेचारे आधुनिक वैज्ञानिकों ने किया है ॥४६॥

अज्ञानं वर्धितं लोके चामरीकादिजै र्जनैः।
तेनाज्ञानेन लोकेस्मिश्चार्षं ज्ञानं तिरोहितम् ॥४७॥
विज्ञानमार्षवर्यायास्तेनाज्ञानेन नाशितम्।
आर्षं ज्ञानमतोवक्ष्ये भ्रान्ताज्ञन-विनाशकम् ॥४८॥

सुन्दरी टीका—जम्बूद्वीप आदि द्वीपों के पर्वतों की ऊँचाई का ज्ञान न होने के कारण माल्यवान् अथवा गन्धमादन आदि पर्वत की चोटी पर पहुँचे हुए अमरीका आदि के अन्तरिक्षयात्रियों ने चन्द्रलोक पर पहुंचने का भ्रामक प्रचार करके, संसार भर में अज्ञान को बढ़ाया है, चूंकि भूगोल से चन्द्रमा की ऊँचाई "२९०९०९० किलोमीटर और १००० गज है। अमरीका और रूस प्रभृति देशों के अन्तरिक्षयात्री केवल चार लाख "४०००००" किलोमीटर के लगभग अन्तरिक्ष की ऊँचाई पर पहुँच पाये हैं। चारलाख किलोमीटर के लगभग यह ऊँचाई जम्बूद्वीप में स्थित गन्धमादन और माल्यवान्आदि पर्वतों में से किसी भी पर्वत के मध्यगत शिखर की है, न कि चन्द्रलोक की, किन्तु अमरीका आदि के अन्तरिक्ष यात्रियों द्वारा किये गये अज्ञानवर्धक भ्रामक

प्रचार ने उस आर्ष विज्ञान को जोकि पर्वतों और चन्द्रादि ग्रहलोकों के सम्बन्ध में वर्णित किया है, उसे तिरोहित "आच्छादित" अर्थात् ढक दिया है। क्योंकि आर्ष-विज्ञान संस्कृतवाङ्मय के ग्रन्थों में है, उन ग्रन्थों का अध्ययन अध्यापन प्रायः समाप्त सा है। इसीलिये अन्तरिक्ष यात्रियों के प्रचार ने अपना अस्तित्व जमा लिया है ॥४७॥

पर्वत के शिखर पर पहुँचे हुए उन अन्तरिक्ष यात्रियों ने उस शिखर को ही चन्द्रलोक समझकर—चन्द्रलोक की स्थिति का और वहाँ पर स्थित तत्वों का जो प्रचार किया है, अज्ञानवर्धक उस दुष्प्रचार से यह बात सिद्ध होने जा रही है कि आर्षग्रन्थों में वर्षा और वायु की न्यूनता और अधिकता के लिये, तथा वर्षा का गर्भ-धारण होने के लिये, चन्द्रमा ग्रह की जो प्रधानता कही गई है, वह मिथ्या है।

अमरीका प्रभृति राष्ट्रों के भ्रान्त अन्तरिक्षयात्रियों द्वारा चन्द्रमा के सम्बन्ध में किये गये अज्ञानवर्धक भ्रामक दुष्प्रचार की निवृत्ति के लिये मैं "डा० गेंदनलाल-शास्त्री" भ्रान्तों के अज्ञान को नष्ट करने वाले आर्षविज्ञान का प्रतिपादन इस "आर्षवर्षा-वायुविज्ञान" नाम के निबन्ध में कर रहा हूं ॥४८॥

त्रिलोकसंस्थिते यावद् ज्ञानं नैव भविष्यति।
न तावद् वायुविज्ञानं वर्षाज्ञानं भविष्यति ॥४९॥

सुन्दरी टीका—(१) भूः, (२) भुवः, (३) स्वः, इन तीनों लोकों की स्थिति का जब तक ज्ञान नहीं होगा, तब तक वर्षा और वायु के विज्ञान का ज्ञान भी नहीं होगा ॥४९॥

वर्षावायुसुबोधाय मया त्रैलोक्यसंस्थितेः।
वर्णनं क्रियतेऽतोऽत्र विज्ञाः! विज्ञानहेतवे ॥५०॥

सुन्दरी टीका—"आर्षवर्षावायुविज्ञान" की सुरक्षा के लिये, तथा वर्षा और वायु के अच्छे ज्ञान के लिये "भूः, भुवः, स्वः" इन तीनों लोकों की स्थिति का वर्णन हे विद्वानो! मैं इस निबन्ध में करता हूँ ॥५०॥

विज्ञानस्य जलस्यापि वायोश्चास्तित्वकामना।
विद्यते सर्वराष्ट्रेषु प्राणिनां पालनाय वै ॥५१॥
अतश्चात्रत्रयाणां तु विचारः क्रियते मया।
तेन कृतविचारेण राष्ट्रवृद्धि र्भविष्यति ॥५२॥

सुन्दरी टीका—राष्ट्र में रहने वाले प्राणियों के पालन और पोषण के लिये सभी राष्ट्रों में—विज्ञान, जल, और वायु की अच्छी आवश्यकताएं हुआ करती हैं ॥५१॥

इसीलिये इस निबन्ध में—वर्षा-वायु-विज्ञान इन तीनों आवश्यकताओं का मैं वैज्ञानिक ढंग से विवेचन करता हूँ। मेरे द्वारा किये गये समीक्षात्मक-वैज्ञानिक-विवेचन से निश्चयरूप से राष्ट्र की समृद्धि होगी ॥५२॥

कृषिकर्मप्रधानेऽस्मिन् भारते वृष्टिज्ञानतः।
अन्नवृद्धिः सुखं शान्ति र्भविष्यति न संशयः ॥५३॥

सुवर्षा-वायुविज्ञानमतः प्रारभ्यते मया ।
भारतादिसुराष्ट्राणां प्राणिनां सुखशान्तये ॥५४॥

सुन्दरी टीका—कृषिकर्म प्रधान इस भारतवर्ष में वर्षा के ज्ञान से अन्न की वृद्धि और सुख, शान्ति की समृद्धि होगी, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ॥५३॥

सुन्दर वर्षा-वायु-विज्ञान का विवेचन इसलिये मैं इस निबन्ध में कर रहा हूं कि—भारतवर्ष, अमरीका, रूस, चीन, जापान, इंगलैण्ड, बंगलादेश प्रभृति राष्ट्रों में रहने वाले प्राणियों को वर्षा-वायु विज्ञान का अच्छी तरह से ज्ञान होकर सुख और शान्ति की प्राप्ति हो सकेगी ॥५४॥

शोधनिबन्धस्य सम्बन्धः—

विज्ञान-वृष्टि-वायूनां तथा राष्ट्रस्य प्राणिनाम् ।
पारस्परिकसम्बन्धः सृष्टिकालात् सनातनः ॥५५॥
अतो निबन्धसम्बन्धो राष्ट्रस्थैः प्राणिभिः सह ।
वर्तते, हि निबन्धोऽयं भविता हितकारकः ॥५६॥

सुन्दरी टीका— राष्ट्रस्थ प्राणियों के साथ शोधनिबन्ध का सम्बन्ध—

विज्ञान-वर्षा-वायु का और राष्ट्र के प्राणियों का सृष्टि के आरम्भ से ही परस्पर सनातन सम्बन्ध चला आ रहा है, वर्षा अर्थात् जल-वायु और विज्ञान के बिना राष्ट्रों में रहने वाले प्राणियों को अन्न,-फल, शाक, दूध, तैल ओर स्वास्थ्यादि भली प्रकार उपलब्ध नहीं हो सकते हैं, अच्छे जल, वायु और विज्ञान के बिना प्राणियों का जीवित रहना भी कठिन और असम्भव हो जाता है, इस लिये वर्षा-वायु विज्ञान का सम्बन्ध राष्ट्र के प्राणियों से सदा से चला आ रहा है ॥५५॥

चूंकि इस निबन्ध में "वर्षा-वायु-विज्ञान" का समीक्षात्मक विवेचन किया गया है, इस लिये इस निबन्ध का सम्बन्ध राष्ट्र में रहने वाले सभी प्राणियों से है। निश्चय ही "आर्षवर्षा-वायुविज्ञान" नाम का यह निबन्ध राष्ट्र के लिये विशेषरूप से हितकारक सिद्ध होगा ॥५६॥

शोधनिबन्धस्य-अधिकारिणः—

विज्ञान-ज्ञानशीला ये मानवाः सन्ति भूतले ।
ते सर्वेऽस्य निबन्धस्य वर्तन्ते ह्यधिकारिणः ॥५७॥

सुन्दरी टीका–शोध निबन्ध को पढ़ने का अधिकार किसको है–इस का निर्णय–

विज्ञान और ज्ञान में रुचि रखने वाले जो भी मनुष्य इस पृथ्वी पर हैं, वे सभी इस निबन्ध को पढ़ने के अधिकारी अर्थात् पात्र हैं ॥५७॥

विज्ञेभ्यो विनिवेदनम्

सुज्ञात्वा त्वार्षसिद्धान्तान् नव्यं मतं सुवीक्ष्य च ।
उभयोः पक्षयो विज्ञाः ! समीक्षा क्रियते मया ॥५८॥
ये हि पक्षा निराधारास्तेषां तु खण्डनं ध्रुवम् ।
करिष्यामि निबन्धेऽस्मिन् सत्पक्षाणां च मण्डनम् ॥५९॥

सुन्दरी टीका— वैज्ञानिकों और विद्वानों से निवेदन— आर्षसिद्धान्तों को अच्छी तरह जानकर और नवीनमत मतान्तरों को भी भली प्रकार से देखकर, हे वैज्ञानिको ! और विद्वानो ! आर्षसिद्धान्तों ओर आधुनिक वैज्ञानिकों के नवीन मतों की मैं निष्पक्षसमीक्षा इस शोध निवन्ध में कर रहा हूँ ॥५८॥

निश्चितरूप से जो पक्ष निराधार हैं, उन आधार रहित भ्रामक पक्षों का मैं इस शोधनिवन्ध में अवश्य खण्डन करुंगा, और जो पक्ष आधार सहित हैं, और सही हैं, उन सभी सत्पक्षों का मैं इस शोध निवन्ध में मण्डन अर्थात् समर्थन करुंगा ॥५९॥

नीर-क्षीर-विवेकिन्या धिया निष्पक्षया सदा ।
विचारयन्तु हे विज्ञाः ! मदुक्तं विनिवेदये ॥६०॥
रहितं शब्दकाठिन्यै र्नव्यशब्दैः समन्वितम् ।
विज्ञानसंयुतं दिव्यं निवन्धं प्रारभेऽधुना ॥६१॥

सुन्दरी टीका— मैं ने इस निवन्ध में जो कुछ भी कहा है, उसपर नीर-क्षीर-विवेकिनी-निष्पक्ष वुद्धि से आप महानुभाव विचार करें, हे विद्वानो ! और वैज्ञानिको! आपसे यह मेरा विनम्र निवेदन है ॥६०॥

शब्दों की कठिनाईयों से रहित अर्थात् सरलतम संस्कृत शब्दों से परिपूर्ण और व्यवहार में प्रचिलित आधुनिक शब्दों से युक्त, तथा दिव्य अर्थात् मनोहर विज्ञान से भरपूर निबन्ध को मैं आवश्यकता के अनुसार इस समय लिखना आरम्भ कर रहा हूँ ॥६१॥

ऊँकारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा ।
कण्ठं भित्वा विनिष्क्रान्तौ स्यातां मङ्गलवाचकौ ॥६२॥

सुन्दरी टीका— पुरा अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में ऊँ और अथ ये दोनों शब्द सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के कण्ठ का भेदन करके निकले थे, अत एव ये दोनों शब्द मङ्गल वाचक हैं, प्रत्येक ग्रन्थ अथवा निबन्ध के और मन्त्रों के आरम्भ में मंगल की कामना से ही इन दोनों शब्दों का प्रयोग प्रायः सर्वत्र देखा जाता है। मंगल वाचक होने के कारण ही ऊँ और अथ शब्दों का प्रयोग मैंने निवन्ध के प्रारम्भ में किया है ॥६२॥

नानापुराण-निगमागम-सम्मतं यद्–
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा–
भाषानिवन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥६३॥

इति श्री तुलसीदासोक्तेः— निवन्धग्रन्थेषु-अपि-मंगलाचरणविधानस्य शिष्टाचारो दरीदृश्यते, अत एव मयापि–शोधनिवन्धग्रन्थारम्भेऽत्र शिष्टाचारप्राप्तं मङ्गलाचरणं गुरुजनचरणाभिवादनं च कृतम् ।

ऊपर लिखे त्रेसठवें "६३" श्लोक के अनुसार "तुलसीकृत रामायण" भी एक निवन्ध ग्रन्थ है, निवन्धग्रन्थ "तुलसीकृत रामायण" के प्रारम्भ में श्री तुलसीदास जी ने सुविस्तारपूर्वक–अनेक श्लोकों द्वारा मंगलाचरण और गुरुजनवन्दना की है, इसी

लिये मैंने भी शोधनिवन्ध के आरम्भ में शिष्टाचार-परम्परा के अनुसार मंगलाचरण और गुरुजनचरणवन्दना को किया है।

"पातञ्जलमहाभाष्ये"- निवन्धग्रन्थेऽपि भाष्यकारैः–विज्ञैः "श्री पतञ्जलि" मुनिमहोदयैः "अथ शब्दानुशासनम्" इत्यत्र "अथ" शब्दस्य प्रयोगं कृत्वा मंगलाचरणं कृतम्, कैश्चित् महाभाष्यटीकाकारैः– महाभाष्यस्थ-मंगलाचरणविषये यो विवादो विहितः, स तु– वुद्धे र्व्यायाममात्रपरकः— एव विज्ञेयो विज्ञैः।

सुन्दरी टीका— "पातञ्जलमहाभाष्य" नाम के निवन्धग्रन्थ में भी महाभाष्यकार विज्ञ "पतञ्जलि मुनि" महोदय ने महाभाष्य के आरम्भ में शास्त्र को आरम्भ करने की प्रतिज्ञा के द्योतक "अथ शव्दानुशासनम्" यह लिखकर शव्दानुशासन की वक्ष्यमाण व्यवस्था का सङ्केत करते हुए सर्वप्रथम मंगलाचरण वाचक "अथ" शव्द का प्रयोग करके– महाभाष्य के आरम्भ में ही शिष्टाचार से प्राप्त मंगलाचरण को किया है।

महाभाष्य के प्रथमाध्याय-प्रथमपाद-प्रथम-आह्निक में लिखे "अथशव्दानुशासनम्" में "अथ" शव्द को मंगलाचरण वाचक न मान कर महाभाष्य के टीकाकारों ने "अथ" शव्द को केवल अधिकार के अर्थ का वोधक मानकर, इसी प्रथमाध्याय-प्रथमपाद-प्रथमआह्निक में लिखे "सिद्धे शव्दार्थसंवन्धे" में स्थित सिद्ध शव्द को ही मंगलार्थ वाचक सिद्ध करने का जो प्रयास किया है, और मंगलाचरण के विषय में जो विवाद टीकाकारों ने खड़ा कर दिया है, वह विवाद भाष्य के कतिपय टीकाकारों की कुशाग्रवुद्धि का व्यायाम "कसरत" मात्र है।

वस्तुतस्तु-अथ और सिद्ध ये दोनों ही शव्द मंगलवाचक हैं। ग्रन्थारम्भ में होने के कारण "अथ" को प्राथमिकता प्राप्त है।

इति प्रथमाध्यायः

द्वितीयाध्यायः

निबन्धप्रयुक्त-प्रचलित-नूतनशब्द-संस्कृत-विधान-व्यवस्थाध्यायः—

पातञ्जलमहाभाष्यात्-पाणिनेश्च प्रमाणतः ।
अपभ्रष्टापभ्रंशानां शब्दानां व्यवहारतः ॥१॥
संस्कृतेऽपि प्रयोगस्तु भवतीति निगद्यते ।
अध्यायेऽस्मिन् निवन्धस्थ-शब्दानां परिपुष्टये ॥२॥

संस्कृतव्याकरणमनुसृत्य सरलया-संस्कृतभाषया "आर्षवर्षा-वायुविज्ञानम्" शोध निबन्धम् - विधित्सुरहं निबन्धस्थ-प्रचलिताधुनिक-नवीनशब्दप्रयोगविषये सर्वसाधारण-जन-शङ्काविनिवृत्तये व्याकरणशास्त्रोक्तान्-अत्यावश्यकीयान्-अपेक्षितनियमान्-अध्याये-ऽस्मिन् विलिखामि ।......

२. "पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः । षष्ठं गुरु विजानीयादेतत्पद्यस्य लक्षणम्" छन्दःशास्त्रोक्तोऽयं नियमः सार्वत्रिकः सैद्धान्तिकश्च नास्ति, इत्यपि-अध्यायेऽस्मिन् प्रतिपादयामि ।

३. शब्दप्रयोगव्यवस्थापकानि यानि-अनेकानि-व्याकरणानि पूर्वाचार्यैः-स्मर्यन्ते, तेषाँ मध्यतः- केषाञ्चित्-व्याकरणानां नामानि अत्र मया लिख्यन्ते......

(क) इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः ।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः ॥१॥

उक्तपद्यस्य अयंभावः— १. इन्द्रः, २. चन्द्रः, ३. काशकृत्स्नः, ४. आपि-शलिः, ५. शाकटायनः ६. पाणिनिः, ७. अमरः, ८. जैनेन्द्रः, एते-अष्टौ-संस्कृत-व्याकरणशास्त्रकर्तारः सर्वोत्कृष्टाः सन्तीति वहवो विद्वाँसो विश्वसन्ति ।

(ख) ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम् ।
सारस्वतं चापिशलं शाकलं पाणिनीयकम् ॥२॥

अनेन पद्येन पूर्वपद्यापेक्षया १. कौमारम्, सारस्वतम्, ३. शाकलम् एतानि त्रीणि व्याकरणानि अधिकानि सिद्ध्यन्ति ।

इत्थं उपर्युक्त क+ख पद्याभ्याम् -एकादशव्याकरणानि सिद्ध्यन्ति, अन्या-न्यपि बहूनि व्याकरणानि सन्तीति विदन्त्येव विद्वाँसः ।

पतञ्जलिमुनिप्रणीतम् - व्याकरणमहाभाष्यम् - सर्वोत्कृष्टं वर्तते साम्प्रतम् ।

३. वर्तमानसमये समुपलभ्यमानेषु व्याकरणेषु-पाणिनीयव्याकरणस्य पतञ्जलि-मुनिप्रणीतव्याकरणस्य शाकटायन-व्याकरणस्य च सुमहान् प्रचारो दरीदृश्यते सर्वत्र अध्ययना-ध्यापनेषु ।

सूत्राणि.........

अङ्गार्ग्यगालवयोः—	७ ।	३ ।	९९ ।
अवङ् स्फोटायनस्य	६ ।	१ ।	१२३ ।

सम्बुद्धौशाकल्यस्येतावनार्षे	१ ।	१ ।	१६ ।
इकोऽसवर्णेशाकल्यस्य ह्रस्वश्च	६ ।	१ ।	१२७ ।
लोपः शाकल्यस्य	८ ।	३ ।	१९ ।
वासुप्यापिशलेः	६ ।	१ ।	९२ ।
ऋतोभारद्वाजस्य	७ ।	२ ।	६३ ।
तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य	१ ।	२ ।	२५ ।
लङः शाकटायनस्यैव	३ ।	४ ।	१११ ।

व्याकरणसूत्रकारैः- ऋषिप्रवरैः श्री पाणिनिमहोदयैः- स्वविरचितेषु अष्टाध्यायी-सूत्रान्तर्गतेषु- उपर्युक्तेषु सूत्रेषु क्रमशः— गार्ग्य-गालव-स्फोटायन-शाकल्य - आपिशलि-भारद्वाज-काश्यप- शाकटायन-मुनीनां मतानि अपि सादरेण स्वीकृतानि, तेषां गार्ग्यादि-मुनीनां मतैश्च अनेके प्रयोगाः— सिध्यन्तीति विदन्त्येव विद्वांसः।

४. यदा श्री पाणिनिमुनिना - व्याकरण-सूत्राणि निर्मितानि तदा पाणिनिसूत्र-निर्माणकालतः— प्राग्भवानि- गार्ग्य-गालव-स्फोटायनादि - मुनिविरचितानि-अनेकानि-व्याकरणानि- अपि प्रचलितानि-आसन्, अतएव-गार्ग्यादिमतानि- स्वसूत्रेषु स्वीकृतानि पाणिनिमुनिना, इति तु पाणिनिमुनिविरचितैः- पूर्वोक्तैः अङ्गार्ग्यगालवयोः -इत्यादि-सूत्रैः— एव सिद्ध्यति।

उक्तकथनेन-पाणिनि-व्याकरणतः प्रागपि-अनेकानि व्याकरणानि सन्ति स्म-इति पक्षः निर्विवादः सिद्ध्यति।

५. भगवता यास्कमुनिना निरुक्तव्याकरणमपि-पाणिनिमुनितः प्रागेव विरचितम् इति मन्यन्ते व्याकरण-पातञ्जलमहाभाष्य-भूमिका - लेखकाः— विचारशीलाः विश्व-विख्याताः— महामहोपाध्याय- श्री गिरिधर शर्म चतुर्वेद- प्रभृतयो-गवेषकाः— विद्वांसः।

६. पातञ्जलमहाभाष्ये तु पतञ्जलिमुनिना यास्क-पाणिनि-व्याकरणतोऽपि प्राक्तनम् वार्हस्पत्यम्- ऐन्द्रं व्याकरणम् स्वीकृतम्, तथाहि महाभाष्ये-पाठः······

"वृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां पारायणं प्रोवाच, नान्तं जगाम, वृहस्पतिश्च प्रवक्ता, इन्द्रश्चाध्येता, दिव्यं वर्षसहस्रमध्ययनकालो न चान्तं जगाम, किं पुनरद्यत्वे, यः सर्वथा चिरं जीवति, वर्षशतं जीवति। चतुर्भिश्च प्रकारैं विद्योपयुक्ता भवति, आगमकालेन, प्रवचनकालेन, व्यवहारकालेनेति" तत्र चास्यागमकालनैवायुः कृत्स्नं पर्युपयुक्तं स्यात्, तस्मादनभ्युपायः शब्दानां प्रतिपत्तौ प्रतिपदपाठः।

७. पाणिनिमुनि-व्याकरण-सूत्ररचना-कालतः- वहुशताब्द्यनन्तरं- कात्यायनो मुनिः समुत्पन्नः, तेन कात्यायनेन मुनिना पाणिनिमुनिविरचित-व्याकरणसूत्रविषये-उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्ता-स्वमनसि कृता। ततः स कात्यायनो मुनिः-स्वान्तःकरणचिन्ता-विनिवृत्तये "उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते। तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहु र्वार्तिकज्ञा मनीषिणः"॥

इति वार्तिकलक्षणलक्षितं वार्तिकम् इति नामकं व्याकरणग्रन्थं चकार।

अस्मिन् वार्तिकग्रन्थे कात्यायनेन मुनिना पाणिनिमुनिविरचितसूत्रविषयेक्वचिद् विप्रतिपत्तयः प्रदर्शिताः, क्वचिच्च उपसंख्यानादिकानि कृतानीनि जानन्त्येव विद्वांसः ।

कात्यायन-मुनिविरचित-व्याकरण-"वार्तिक" - रचनाकालतः-बहुशताब्द्यनन्तरं भगवान् "पतञ्जलिः मुनिः" समुत्पन्नः, तेन पतञ्जलिना मुनिना- पाणिनिमुनि-विरचितानि व्याकरणसूत्राणि कात्यायनमुनिविरचितानि-वार्तिकानि, उपसंख्यानादिकानि च निष्पक्षया धिया समीक्षया दृष्ट्यावलोकितानि ।

सूत्र-वार्तिकोपसंख्यानादीनां समीक्षाविधानावसरे श्री पतञ्जलिमुनि-महाभागैः -बहुषु स्थलेषु - कात्यायन - कृतानि - वार्तिकानि - उपसंख्यानानि च दूषणयुक्तानि दृष्टानि । ततो निष्पक्षसमीक्षां कृत्वा श्री पतञ्जलिमुनिमहोदयैः यत्र तत्र कात्यायनकृत-वार्तिकानां वचनानां च खण्डनं कृतम् ।

८. तदानीन्तनसमये प्रचलितानां दोषयुक्तव्याकरणप्रणालीनां विनिवृत्तये नूतन-ग्रन्थनिर्माणस्य महतीमावश्यकतामवलोक्य - भगवान् पतञ्जलिमुनिः ...

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारभिः ।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः ॥१॥

इतिलक्षणलक्षितं "व्याकरणमहाभाष्यम्" इति नाम्ना प्रसिद्धम् "पातञ्जल-महाभाष्यम्" इति नामकं ग्रन्थं विरचयामास ।

९. व्याकरणशास्त्र - प्रधानमुनीनां - पाणिनि - कात्यायन - पतञ्जलीनां सिद्धान्तेषु यत्रकुत्रापि परस्परं मतभेदे समुपस्थिते जाते सति "यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्" इति सैद्धान्तिकव्यवस्थां समनुसृत्य विनिर्णयः कार्यः, इति व्याकरण-सिद्धान्तकौमुदी - प्रभृतिग्रन्थकारकाः-- श्री भट्टोजिदीक्षितप्रभृतयो विशिष्टाः वैयाकरणाः प्राहुः । तदित्थम् ......

१०. यत्रकुत्रापि पाणिनिसूत्रविषये कात्यायनेन काचिद् विप्रतिपत्तिः प्रदर्शिता, अथवा उपसंख्यानादिकं कृतम्, तत्र कात्यायनस्य वचनमपि सैद्धान्तिकं ग्राह्यम्, तत्र च कात्यायनवचनसंस्कृताः अपि प्रयोगाः साधुत्वेन मन्तव्याः ।

व्याकरणमहाभाष्यकारेण भगवता पतञ्जलिना कात्यायनवचनानि खण्डयित्वा यत्र कुत्रापि कश्चित् प्रयोगः समर्थितः, अथवा वार्तिकं प्रत्याख्यातम्, तत्र महाभाष्य-कारवचनमेव - अनुसृत्य प्रयोगाणां साधुत्वमनुसन्धेयम्, इति उपर्युक्तरीत्या यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्" अस्य - वाक्यस्य चरितार्थता सिद्ध्यति ।

११. व्यवहारे प्रचलितानां शब्दार्थबोधकानां लौकिकानां नवीनशब्दानां-संस्कृत-विधान - व्यवस्थाविषये - व्याकरणमहाभाष्यकारैः " श्री पतञ्जलिमुनिमहोदयैः" साधीयसी व्यवस्था प्रदत्ता, तामेव व्यवस्थामत्र लिखामि ......

"महाभाष्ये" श्री पतञ्जलिमुनिमहोदयैः" "सर्वेदेशान्तरे" इति वार्तिकस्य-निर्माणं कृत्वा, तस्य भाष्यमपि स्वयमेव कृतम् । उपर्युक्तवार्तिकस्य भाष्यावसरे भाष्कारास्तत्र लिखन्ति ....

"सर्वे खल्वप्येते शब्दाः—देशान्तरेषु प्रयुज्यन्ते, नचैवोपलभ्यन्ते (यदि॰ कश्चिदेवं विप्रतिपद्येत तर्हि) उपलब्धौ यत्नः क्रियताम्, "महान् शब्दस्य प्रयोगविषयः, सप्तद्वीपा वसुमती, त्रयो लोकाः", चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्याः--बहुधा भिन्नाः, एकशतमध्वर्युशाखाः, सहस्रवर्त्मा सामवेदः, एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्, नवधाथर्वणोवेदः, वाकोवाक्यमितिहासः, पुराणं वैद्यकम्, इत्येतावान् शब्दस्य प्रयोगविषयः, एतावन्तं शब्दस्य प्रयोगविषयम् अननुनिशम्य--"सन्त्यप्रयुक्ताः" इति वचनं केवलं साहस्र-मात्रमेव।

एतस्मिंश्चातिमहति शब्दस्य प्रयोगविषये ते ते शब्दास्तत्र तत्र नियतविषया दृश्यन्ते।

उपर्युक्तभाष्यस्य अयं भावः...एक एव धातुः--देशभेदेन विभिन्नेषु देशेषु विभिन्नार्थेषु प्रयुज्यते, तथैव-देशभेदेन विभिन्नधातुः-विभिन्नशब्दश्च एकस्मिन्नेवार्थे प्रयुज्यते, अतएव समस्तदेशेषु कः शब्दः कश्चधातुः केषु केषु अर्थेषु-प्रयुज्यते-इति विस्तृतं ज्ञानमकृत्वैव यदि कश्चिद् वदति-कुत्रापि अयं शब्दोऽस्मिन्-अर्थे न प्रयुक्तः अतः असंस्कृतः-अपभ्रंशश्च वर्तते, अतः-अस्य प्रयोगः-संस्कृतभाषायां न विधेयः, इति कथनं सर्वथा-निराधारं - दुःसाहसमात्रमेव भवतीति सिद्धानतपक्षः प्रतिपादितः भाष्यकारैः।

११—"एवमिहापि समानायामर्थावगतौ शब्देन चापशब्देन च धर्मनियमः क्रियते, शब्देनैवार्थोऽभिधेयो नापशब्देनेति, एवं क्रियमाणमभ्युदयकारि भवतीति" एतादृशं वार्तिकं कात्यायनेन निर्माय-शब्दप्रयोगे धर्माधर्मयोः यो नियमः कृतः, एवं च एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग्भवति इति-श्रुतौ च यदुक्तम् तत्रापि भाष्यकारैः श्री पतञ्जलिमहोदयैः "याज्ञे कर्मणि स नियमोऽन्यत्रा-नियमः" इति स्ववार्तिकं निर्माय तद् भाष्यं च कृत्वा साधीयसीं व्यवस्था प्रदत्ता।

अत्र भाष्यकारस्य-अयं भावः—"शब्देन चापशब्देन धर्मनियमः, शब्दः सम्यग्ज्ञातः-शास्त्रान्वितः-सुप्रयुक्तः, एतत्सर्वं तदैव अनुसन्धेयम्, यदाहि यज्ञकर्मणि स्थित्वा कश्चित्-जनः-संकल्पादिशब्दोच्चारणं अथवा वैदिकमन्त्रोच्चारणं करोति। साधारणे लौकिकव्यवहारे तु संसारे प्रचलिताः शब्दाः- यादृशाकृतिवन्तः तादृशाकृतिभ्यः एव विभक्त्यादिकं कार्यं कृत्वा- संस्कृतभाषापरकं शब्दं निर्माय, संस्कृतभाषायाम् लौकिक-व्यवहारः कार्यः, लौकिकव्यवहारे शब्दप्रयोगविधिं विजानद्भिः विचार-शीलैः विज्ञैः विद्वद्वरेण्यैः तत्वदर्शिभिः भाष्यकारैः सिद्धान्तपक्षोऽयं प्रतिपादितः।

सन् १९५४ ईसवीयाब्दे २०११ वैक्रमाब्दे च चौखम्बा-संस्कृत-सीरिज-वाराण-सीस्थप्रेसतः प्रकाशिते-पातञ्जल-व्याकरणमहाभाष्ये भूमिकालेखकैः विद्वन्मूर्धन्यैः विश्वविख्यातैः महामहोपाध्याय-विद्यावाचस्पति "श्री गिरिधरशर्म चतुर्वेद" महा-भागैरपि महाभाष्यभूमिकायाम् - उपर्युक्तस्यैव सिद्धान्तपक्षस्य परिपुष्टिः कृता।

भाष्यभूमिकायां महामहोपाध्यायाः तत्र विलिखन्ति......

पाणिनिः संस्कृतभाषां भाषापदेनैव व्यवहरति, तेन तस्य काले संस्कृतभाषैव भाष्यमाणासीत्, भाषान्तरप्रवृत्तिः - न बभूव, अल्पीयसी वा बभूव, इति स्फुटमनु-

मीयते, कात्यायनस्तु - "लोकतोऽर्थप्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रेण धर्मनियमः" इति वदन् भाष्यकाररीत्या समानायामर्थावगतौ शब्दैश्चापशब्दैश्च शास्त्रेण धर्मनियमः त्रियते, अर्थात्-साधुशब्दैरेव व्यवहारे धर्मो भवति, नासाधुशब्दैर्व्यवहारे, इति संस्कृत - भाषायाः धर्मजनकत्वमात्रेण - उत्कर्षं वोधयति, तेन तस्य काले -अपभ्रष्टशब्दघटितायाः भाषायाः वाहुल्येन प्रवृत्तिरासीदिति स्फुटी भवति ।

अत्र भाष्यकारस्तु - "सन्त्येकस्य शब्दस्य बहवोऽपिभ्रंशाः, - यथा गोशब्दस्य गावी - गोणीं - गोता - गोपोतलिकेत्यादयः" इति वदन् धर्मनियमं चापि "याज्ञेकर्मणि स नियमः - अन्यत्रानियमः" - इति यज्ञकर्ममात्रे व्यवस्थापयन्, स्वकाले व्यवहारार्थम् - अपभ्रष्टभाषाणामेव प्रयोगम् - अभिव्यञ्जयति, नैनत्सर्वम् अल्पेन समयेन सम्भवति, इति त्रयाणां एषाम् - पाणिनि - कात्यायन - पतञ्जलीनाम् सुमहता कालव्यवधानेन अवश्यंभाव्यम् ।

शब्दार्थबोधक - व्यावहारिक - प्रचलित - शब्दप्रयोगविषये श्रीपाणिनिमुनेः- उदारतामत्र लिखामि......

शब्दप्रयोगविषये - श्रीपाणिनिमुनिमहोदयैः अपि...

१—(१४८३) पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्"—६।३।१९९।

२—(४१८४) "अन्येभ्योऽपिदृश्यते"—३।२।१७८।

३—इत्यादिसूत्राणां आकृतिगणानां, निपातानां, वाहुलकप्रभृतीनां च निर्माणं-विधाय, शब्दार्थवोधकानां - व्यवहारेप्रचलितानां - शब्दानां संस्कृतविधानविषये - उदारता प्रकटिता ।

श्री पतञ्जलिमुनेः - अभिप्रायं - श्री पाणिनि - मुनेश्च - अभिप्रायं - सुज्ञात्वैव श्री नीलकण्ठाचार्यमहोदयैः - "नीलकण्ठी" नामके ग्रन्थे "षोडशयोगाध्याये"...

प्राकिक्कवालोऽपरइन्दुवारस्तथेत्यशालोऽपर ईसराफः ।
नक्तं ततः स्यादयमया मणाऊ कब्बूलतो गैरिकबूलमुक्तम् ॥१॥
खल्लासरं रद्दगथो दुफालिकुत्थं च दुत्थोत्थदवीरनामा ।
तम्बीरकुत्थौ दुरफश्च योगाः स्युः षोडशैषां कथयामि लक्ष्म ॥२॥

इत्यादिषु श्लोकेषु शब्दार्थवोधकानां अपभ्रष्टानां फारसी - पारसी - उर्दु-प्रभृति-प्रचलितभाषा-परकशब्दानां संस्कृते प्रयोगाः कृताः ।

श्री वराहमिहिराचार्यैरपि......

"कण्टक - केन्द्र - चतुष्टय संज्ञाः सप्तम - लग्न - चतुर्थखभानाम्" इत्यत्र तथा च—

क्रिय-तावुरि-जितुम-कुलीर-लेय-पाथोन-जूक-कौर्पाख्याः ।
तौक्षिक-आकोकेरो-हृद्रोगश्चान्त्यभं चेत्थम् ॥८॥

इत्यादिषु श्लोकेषु च फारसी, पारसी भाषा परक - शब्दार्थवोधकानां शब्दानां प्रयोगाः संस्कृतभाषायामेव कृताः वृहज्जातकादिषु स्वनिर्मितेषु ग्रन्थेषु ।

व्याकरण - साहित्यादि - प्रवीणैः - श्रीभास्कराचार्यैः - अपि लीलावती नामक-

ग्रन्थस्य परिभाषाप्रकरणे "कथितोऽत्र सेरः" इत्यत्र तुलाव्यवहारे="तौलव्यवहारे" प्रचलितस्य"सेर शब्दस्य प्रयोगः समादृतः संस्कृतभाषायाम् ।

श्रीवराहमिहिराचार्य - श्री नीलकण्ठाचार्य - श्री भास्कराचार्य-प्रभृतिभिः प्रौढ़ैः पूर्वाचार्यैः स्वनिर्मितेषु - ग्रन्थेषु - तदानीन्तनकाले प्रचलितानां - अपभ्रष्टापभ्रंशानां शब्दानां यथा प्रयोगः स्वीकृतः, तथैव - मयाऽपि - वर्तमान - समये - प्रचलितानां शब्दार्थबोधकानां अपभ्रष्टापभ्रंश - नवीनशब्दानां - प्रयोगः निबन्धस्य संस्कृतभाषायां यत्र तत्र स्वीकृतः संस्कृतभाषाप्रचारप्रसारार्थम् ।

अतोऽत्र केनापि...शब्दसाधुत्वविषये कापि शङ्का न कार्या । शब्दार्थबोधक - व्यावहारिकशब्दप्रयोग - विषयक - सिद्धान्तं - अज्ञात्वैव - ये केचन - महानुभावाः - व्यवहारे प्रचलितानां - अपभ्रष्टापभ्रंश-शब्दानां - संस्कृतभाषायां प्रयोगं न कुर्वन्ति, ते तु - संस्कृतभाषाप्रसारप्रचारयोः - गलावरोधकाः एव सिद्ध्यन्ति ।

श्री नागेशमहाभागैस्तु - स्वविरचितायां वैयाकरण - सिद्धान्त - मञ्जूषायां - अपभ्रंशानां शक्तत्वे - अवान्तरविचारप्रसंगे - अपभ्रंशापभ्रष्ट - शब्दप्रयोगविषये - जैमिनिप्रभृतिमुनिप्रणीतानां - आर्षमतानां - अयुक्तं खण्डनं विधाय, आर्षमतविरुद्धः स्वकीयः पक्षः निम्नाङ्कितरीत्या स्थापितः । तदित्थं मञ्जूषायां विलिखन्ति नागेश-महोदयाः—

ऋषिर्वेदः म्लेच्छोऽपशब्दवक्ता

साधुत्वं तु नापभ्रंशानां शिष्टैर्धर्मबुद्ध्या तत् - अप्रयोगात्"न तथा बाधते स्कन्धो यथा बाधति बाधते ।"

तद्बोधकं च व्याकरणमद्यत्वे पाणिनीयमेवेति-अपि भाष्ये स्पष्टम् , एवं च पाणिनीय-व्याकरण - व्युत्पत्तिज्ञानपूर्वकं साधुत्वेन ज्ञातसाधुशब्दप्रयोगात् - धर्मः - इति बोध्यम् । अतएव "समानायामर्थावगतौ शब्दैश्चापशब्दैश्च शास्त्रेण धर्मनियमः, इति भाष्ये-उक्तम्

"वाचकत्वाविशेषेऽपि नियमः पुण्यपापयोः" 'गौः' इत्यस्य शब्दस्यार्थे बहवो - गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका, इत्यादयोऽपभ्रंशा वर्तन्ते, इत्यर्थकं "गौः" इत्यस्य शब्दस्य गाव्यादयोऽपभ्रंशा इति भाष्यं सामञ्जस्येन सङ्गच्छते, अतएव धर्मार्थत्वं साधूनामुक्तं भाष्ये, एतेन—"अर्थाय ह्येते उच्यन्ते शब्दाः न धर्माय" इति शबर-स्वाम्युक्तं - अपास्तम् ।

जैमिनिसूत्रस्य - अपि - अयमर्थः अपभ्रंशाः - अपि साधवः तेऽपि साधयन्ति - अर्थम् - इति पूर्वपक्षे, "अन्यायोऽनेक- साधुशब्दत्वमिति, केचिदेव साधवो न सर्वे-इति मनसि निधाय, तर्हि साधौ प्रयोक्तव्ये - असाधूच्चारणं कथं इत्याशङ्क्य - "शब्दे प्रयत्न निष्पत्तेः - अपराधस्य भागित्वम्" (जै० सू० १-३-२५) इति सूत्रेण प्रयत्नसाध्ये कार्ये प्रमादस्य दर्शनात्, यथा शुष्के पतिष्यामीति - कर्दमे पतति, तथा साधौ प्रयोक्तव्येऽसाधोः प्रयोगः - इत्युक्तम् , ननु अपभ्रंशानां - शक्तत्वेऽर्थवत्वात् - अर्थवत्सूत्रेण प्रातिपदिक-संज्ञापत्तिरिति चेद्, इष्टापत्तेः, अतएव पस्पशायां - एवं हि श्रूयते—यर्वाणस्तर्वाणो

नाम ऋषयो बभूवुः, ते तत्र भवन्तो यद्वानः तद्वानः इति प्रयोक्तव्ये यर्वाणस्तर्वाणः-इति प्रयुञ्जते, याज्ञे कर्मणि पुनर्नापभाषन्ते, इति भाष्ये—उक्तम्, **यर्वाणस्तर्वाणः इतिणान्ताज्जसि - यर्वाणस्तर्वाणो नामेति प्रयुक्तम्**, अतएव रुत्वोत्वादि बभूवुः, इत्यनेन सामानाधिकरण्यं च, प्रकृतिप्रत्ययोरुभयोरपि शास्त्रविषयत्वे एव साधुत्वं न तु अन्यतरस्य, "गगरी" इत्यादि च - घटः - इति सु - अन्तस्यैव - अपभ्रंशः, इति, न ततः सुः "गगरीम्" इत्यादि प्रयुञ्जते - चेति केचित्।

परे तु— "साध्वनुशासनेऽत्र शास्त्रे इति भाष्योक्तेः - अर्थवत्वेन साधूनामेव - संज्ञाविधौ उद्देश्यत्वम्, इति - न असाधुषु प्रातिपदिकसंज्ञा, **यर्वाणस्तर्वाणः इत्यादौ-सुप् - अपि "असाधुरेव**, प्रकृति पर एव प्रत्ययः, प्रत्ययपरैव च प्रकृतिः" इति नियमाकारो दर्शितो भाष्ये, साधूनामेव प्रत्ययविधौ - उद्देश्यत्वेन प्रकृतित्वम्, खण्डसाधुत्वबोधनद्वारा समुदायसाधुत्वबोधकं व्याकरणं अर्थवत्वबोधनवत्, एवं च भाषानुसारेण क्रियमाणनामोत्तरं विभक्तिरपि - असाधुरित्याहुः, देशभाषानुसारेण कृतानां— "कुञ्ची, मञ्ची, अप्पि, कोण्डा", इत्यादि नाम्नां-असाधुत्वमेव। टि, घु, भ, आदि संज्ञानां तु शिष्टप्रयुक्तत्वात् साधुत्वमेवं, "एवं च भाषाशब्दानां शिष्टैः धर्मबुद्ध्या साधुपर्यायवत् - अप्रयोगात् - व्याकरणलक्षण - अननुगमाच्च - असाधुत्वेन - अर्थवत्वेऽपि - न शास्त्रविषयत्वं - इति - न तत्र प्रातिपदिकत्वम्।"

श्री नागेशमहोदयैः संस्कृतभाषायां शब्दप्रयोगविषये—उपर्युक्तप्रकारेण या व्यवस्था प्रदत्ता, तत्र समीक्षात्मको विचारोऽत्र मया क्रियते—
लौकिकव्यवहारे प्रचलितभाषानुसारेण क्रियमाणनामोत्तरं - सु - औ - जस् - इत्यादि-विभक्त्यादिकार्यं न कार्यम्, एवं च—लौकिकव्यवहारे प्रचलिताः अर्थबोधकाः अपभ्रंशाः–अपभ्रष्टाश्च ये शब्दाः सन्ति, तेभ्यः - अपि - विभक्त्यादिकार्यं न कार्यम्, इत्येतादृशः - एव - अभिप्रायः वर्तते श्री नागेशमहाभागानां कथनस्य, अतएव -शुद्ध- "घट" शब्दस्य अर्थबोधकः – लौकिक व्यवहारे प्रचलितः अपभ्रंशापभ्रष्टः यः "गगरी" शब्दः - तस्मात् - विभक्त्यादिकार्यविधानस्य निषेधः कृतः श्री नागेशमहोदयैः स्वतन्त्रस्वरूपायां - वैयाकरण लघुमञ्जूषायाम्, एवं च - देशविदेशभाषानुसारेण - कृतानाम् "कुञ्ची, मञ्ची, अप्पि, कोण्डा, इत्यादि-नाम्नां असाधुत्वमेव समुक्तं नागेशैः।

शब्दप्रयोगविषये श्री नागेशमतस्य समीक्षात्मकं खण्डनम्

प्राक्तने काले धर्मपरायणाः - योगिनः पूज्याश्च - "यद्वानः, तद्वानः", इति शुद्धनामकाः व्यक्तिविशेषाः ये ऋषयः बभूवुः, ते तदानीन्तनकाले प्रचलिते लौकिक व्यवहारे क्रमशः "यर्वाणः, तर्वाणः," इति - अपभ्रंश - अपभ्रष्ट - शब्दपरकनामतः अपि लोके प्रसिद्धाः बभूवुः, अतएव - ते ऋषयः "यर्वाणः, तर्वाणः" इति लोकप्रचलित-प्रसिद्धनामतः एव लौकिकव्यवहारे व्यवहृताः बभूवुः, लौकिकव्यवहारे प्रचलितौ "यद्वानः, - तद्वानः, - इत्येतादृश - नामपरक - व्यक्तिविशेषबोधकौ" यौ अपभ्रंश - अपभ्रष्टौ - "यर्वाणः, तर्वाणः" शब्दौ तौ तु "सु - औ - जस्" इत्यादि- विभक्त्यादि-कार्यस्य अयोग्यौ स्तः - इति प्रणिगदद्भिः - अपि नागेशमहोदयैः स्वरचितायां वैया-

करणलघुमञ्जूषायाम् अपभ्रंशेषु शक्तिसदसत्वनिरूसणप्रसङ्गे, अपभ्रंशानां शक्तत्वे अवान्तरविचारप्रसङ्गे च 'यर्वाणः, तर्वाणः', इति नामपरकौ शब्दौ स्वादिविभक्तिपरकौ समुच्चार्य विलिख्य च वस्तुतस्तु स्वयमेव "वदतो व्याघातः" कृतः नागेशैः ।

"यद्वानस्तद्वानः शुद्धशब्दसार्थकता-प्रतिपादनम्"

यज्ञस्थले - यज्ञविधानार्थम् यज्ञोपयोगार्हं - यद्वा=यद्वस्तु, तद्वा=तद्वस्तु, नः=अस्माकम् वर्तताम्, यज्ञातिरिक्ते स्थले तु—यद्वा=यद्वस्तु, तद्वा=तद्वस्तु, वर्तताम् नः=अस्माकम्, किम्=किमपि प्रयोजम् नास्ति, इत्येतादृशार्थ - विवक्षया एव - ते ऋषयः - यज्ञादिधार्मिक - कर्मसु - "यद्वानस्तद्वानः" प्रयुक्तवन्तः व्यवहृताः ।

यज्ञातिरिक्ते स्थले - अन्यत्र तु सर्वत्र— 'यर्वाणस्तर्वाणः" इति नामतोऽपि प्रयुक्तवन्तः - व्यवहृताः ।

२—लोके देशभाषानुसारेण कृतानि - कुञ्ची, मञ्ची, अप्पि, कोण्डा - इत्यादि-नामानि व्याकरणशास्त्र - विरुद्धानि सन्ति, अतः - एतादृशनाम्नां प्रातिपादिकसंज्ञा न भवति, न च तेभ्यः स्वादिविभक्तिकार्यं भवति, इति यदुक्तं नागेशैः - तदपि निरुक्त-व्याकरणादिशास्त्र - विरुद्धत्वात्, - लोकविरुद्धत्वात् - च - न समीचीनं - अविचारित-रमणीयं चैवास्ति ।

यतो हि—श्रीयास्कमुनिप्रणीते निरुक्ते नैघण्टुककाण्डे - प्रथमाध्यायस्य चतुर्थ-पादारम्भे - नाम्नां विषये साधीयसी व्यवस्था विलिखिता समुपलभ्यते । निरुक्तोक्ता व्यवस्था—

"तद् यत्र स्वरसंस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन गुणेनान्वितौ स्यातां संविज्ञातानि तानि ।"

उपर्युक्तं निरुक्त-कथनस्य - अयं भावः—

लोकप्रचलितनाम्नां त्रिधा व्यवस्था भवति, लोकप्रचलितानि कानिचित्-नामानि— (१)प्रत्यक्ष क्रियाणि भवन्ति, कानिचित् नामानि (२) प्रकल्प्यक्रियाणि भवन्ति, कानिचित् नामानि तु (३) अविद्यमानक्रियाणि भवन्ति ।

तत्र=येषु नामसु, स्वरः=उदात्तादिः, संस्कारः=प्रकृति - प्रत्ययादिः, तौ समर्थौ=सङ्गतौ (समर्थता नामोपपत्तिः उच्यते अत्र) प्रादेशिकेन=व्याकरणलक्षणा-नुगतेन, गुणेन=धातुना, अन्वितौ=अनुगतौ, स्यातम्=भवेताम्, तानि=नामानि, संविज्ञातानि=सममैकमत्येन - आख्यातजानि (भवन्ति - इतिशेषः)

(क) यथा—कारक - हारक - मारक - विदारक - प्रसारक - पाचक - प्रचारक - इत्यादीनि प्रत्यक्षक्रियाणि नामानि भवन्ति, एतादृशनामसु न कापि विप्रतिपत्तिः-भवति ।

(ख) गौः, अश्वः, पुरुषः, हस्ती, इत्यादि नामानि न संविज्ञातानि=(अप्रत्यक्ष क्रियाणि) एतादृशनामानि भवन्ति, एतेषु क्रियाः प्रकल्प्यन्ते, न साक्षात् - उपलभ्यन्ते क्रियाः ।

(ग) डित्थः, डवित्थः, अरविन्दः, अर्वाङ्, इत्यादि नामानि तु - "अविद्यमान-

क्रियाणि" भवन्ति । एषु नामसु - प्रत्यक्षक्रियाणां - प्रकल्प्यक्रियाणां च अभावे सत्यपि - देशभाषानुसारेण लौकिकव्यवहारे - प्रचलितानि - डित्थ - डवित्थ - अरविन्द - अर्वाङ् इत्यादि नामानि - तत् - तत् संज्ञार्थबोधकानि - भवन्तीति तेषां डित्थादिनाम्नां - सार्थकतां स्वीकृत्यैव - तेषां प्रातिपदिकसंज्ञां विधाय स्वादिविभक्तिपरकाणि - च कृत्वा डित्थः - डवित्थः - अरविन्दः -अर्वाङ्, इत्यादिनामानि निरुक्तादिव्याकरण - शास्त्रेषु सर्वत्र - प्रयुक्तानि दरीदृश्यन्ते ।

(घ) एवं देशभाषानुसारेण - एव कृतानि - कुञ्ची - मञ्ची - अप्पि - कोण्डा - इत्यादि नामानि अपि तत् तत् - संज्ञार्थ - बोधकानि भवन्ति, अतएव - एषां - कुञ्ची - इत्यादि नाम्नामपि प्रातिपदिकसंज्ञां - विधाय तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वादिविभक्ति - कार्यविधाने सति न कोऽपि दोषो ऽस्ति, अत्र स्वादिकार्य - विधानेन न च नागेशादीनां कापि हानि र्भवति ।

(ङ) अतएव - देशभाषानुसारेण कृतानां तत्तत् संज्ञार्थबोधकानां - कुञ्ची, मञ्ची, अप्पि, कोण्डा इत्यादि नाम्नां प्रातिपदिकसंज्ञाविधानस्य स्वादिविभक्तिकार्यस्य च यः निषेधः श्री नागेशमहोदयैः कृतः - सः निषेधः — श्री नागेशमहोदयानां दुराग्रह-सूचकः एव , इत्यत्र नीरक्षीरविवेकिन्या तटस्थया निष्पक्षया धिया विचारो विधेयो विज्ञैः ।

३—श्री पाणिनिमुनिसमयात् - बहुशताब्द्यनन्तरं (उणादिप्रकरण - निर्माण कारकैः - तदानीन्तनैः विशिष्टवैयाकरणैः "श्रीवररुचिप्रभृतिभिः विद्वद्भिः स्वकाले लौकिकव्यवहारे प्रचलितानां व्यावहारिकशब्दानां साधनार्थं अनेके - उपायाः कृताः, अतएव तैः वररुचिप्रभृतिभिः - वरिष्ठवैयाकरणैः "अल्ला, मुसल्ला, कुक्कुरः, कूकुरः सूकरः काण्डः इत्यादयः - अनेके शब्दाः व्याकरणशास्त्रेण स्वबुद्ध्या साधिताः ।

(य) साम्प्रतं तु वायुयानादिना मानवयातायातसाधनैः - देशान्तरतः समागताः आधुनिकाः ये अनेके शब्दाः लौकिकव्यवहारे प्रचलिताः संज्ञार्थबोधकाः सन्ति, तेषां प्रचलितशब्दानां साधनविधाने यदि कश्चित् वैयाकरणः असमर्थश्चेत्तर्हि तत्र वैयाकर-णस्यैव बुद्धिदोषो ऽस्ति, न तु प्रचलितानां आधुनिकशब्दानां कोऽपि दोषः ।

(र) देशान्तरतः समागतानां लौकिकव्यवहारे प्रचलितानां - आधुनिकशब्दानां संस्कृतभाषायां व्यवहारे कृते सति संस्कृतभाषायाः विनाशो भविष्यतीत्यपि मा शङ्क-नीयम्—

"सर्वे देशान्तरे" - सर्वे खलु - अपि एते शब्दाः देशान्तरेषु प्रयुज्यन्ते, "महान् शब्दस्य प्रयोगविषयः, सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाः, चत्वारो वेदाः साङ्गा सरहस्याः एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्, नवधाथर्वणो वेदाः वाकोवाक्यमितिहासः, पुराणं वैद्यकम्, इत्येतावान् शब्दस्य प्रयोगविषयः, एतावन्तं शब्दस्य प्रयोगविषयं-अननुनिशम्य- "सन्त्यप्रयुक्ताः" इति वचनं केवलं साहसमात्रमेव, "बृहस्पतिः - इन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां, शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच, नान्तं जगाम" इति वैयाकरण - महाभाष्ये श्री पतञ्जलि-मुनिकृत - व्यवस्था विद्यमानत्वात् ।

"एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः शास्त्रान्वितः - सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग् भवति

इति श्रुतेश्चरितार्थता तु– यज्ञादि- धार्मिक- कृत्येषु - एव - ज्ञेया, नान्येषु व्यावहारिक-कर्मसु "याज्ञे कर्मणि स नियमः, अन्यत्रानियमः इति - महाभाष्ये शब्दप्रयोगविषये निर्णायक– सुव्यवस्था - विद्यमानत्वात् ।

(ल) श्रीनीलकण्ठाचार्यकृत– नीलकण्ठ्यां षोडश - योगाध्याये—

प्रागिक्कवालोऽपर इन्दुवारस्तथेत्थशालोऽपर ईसराफः ।
नक्तं ततः स्याद् यमया मणाऊ कव्वूलतो गैरिकवूलमुक्तम् ॥१॥
खल्लासरंरद्दमथो दुफालिकुत्थं च दुत्थोत्थदवीरनामा ।
तम्वीरकुत्थौ दुरुफश्च योगाः स्युः षोडशैषां कथयामि लक्ष्म ॥२॥

(१) इक्कवाल, (२) इन्दुवार, (३) इत्थशाल, (४) ईसराफ, (५) नक्त, (६) यमया, (७) मणाऊ, (८) कव्वूल, (९) गैरिकव्वूल, (१०) खल्लासर, (११) रद्द, (१२) दुफालिकुत्थ, (१३) दुत्थोत्थदवीर, (१४) तंवीर, (१५) कुत्थ, (१६) दुरफ, इत्येतादृशनाम्नां षोडशयोगानां वर्णनं कृतं — उपर्युक्तश्लोकयोः- श्री नीलकण्ठाचार्यैः । व्याकरणादिशास्त्रेषु- प्रकाण्डपाण्डित्ययुक्तैः- श्रीनीलकण्ठाचार्यैः ग्रन्थारम्भे - एव - "श्रीनीलकण्ठो विविनक्ति सूक्तिभिस्तत्ताजिकं सूरिमनः प्रसादकृत्" इत्येतादृशी सुदृढा प्रतिज्ञा कृता, तैः एव- नीलकण्ठाचार्यैः- देशान्तरतः (विदेशतः) समागतानां देशान्तर-भाषापरकाणां — इक्कवालादि-षोडशयोगनाम्नां - व्यवहारः - उपर्युक्तयोः श्लोकयोः-कृतः । देशभाषानुसारेण - योगानां यानि नामानि सन्ति, तेषां - अव्युत्पन्ननाम्नां - अपि- प्रातिपदिकसंज्ञां विधाय तेभ्यः- अव्युत्पन्नेभ्यः- एव - स्वादिविभक्तिकार्यं कृत्वा-व्यवहारे प्रयोगः कृतः- तेषां योगनाम्नां श्री नीलकण्ठाचार्यैः ।

(व) महाकविकालिदासतोऽपि - अधिक - प्रसिद्धैः - अनेकग्रन्थलेखकैः - महा-कविश्रीवराहमिहिराचार्यैः - अपि - स्वनिर्मितेषु - बृहत्संहिता - बृहज्जातक - लघुजा-तकादिषु - ग्रन्थेषु - देशान्तरतः- समागतानां — देशभाषानुसारेण कृतानां अव्युत्पन्न-नाम्नां प्रातिपदिकसंज्ञां-विधाय तेभ्यः-अव्युत्पन्न-प्रातिपदिकेभ्यः एव-स्वादिविभक्तिकार्यं कृत्वा, स्वनिर्मितेषु श्लोकेषु - तेषां - अव्युत्पन्न - प्रातिपदिकनाम्नां व्यवहारः कृतः-अनेकेषु स्थलेषु, बृहज्जातकग्रन्थे संज्ञाध्याये श्री वराहमिहिराचार्यमहोदयाः विलिखन्ति–

"क्रिय - तावुरि - जितुम - कुलीर - लेय - पाथोन - जूक - कौर्पाख्याः ।
तौक्षिक आकोकेरो हृद्रोगश्चान्त्यमं चेत्थम्" ॥८॥

उपर्युक्ते श्लोके प्रायः सर्वे शब्दाः— देशभाषानुसारेण– कृतनामकाः- देशा-न्तरतः समागताः- अत्र प्रयुक्ताः सन्ति ।

(श) व्याकरणादिशास्त्रेषु - वेदवेदाङ्गादिषु च प्रवीणैः श्री भास्कराचार्यैः-स्वनिर्मित - "लीलावती" - नामकग्रन्थे परिभाषाध्याये - देशभाषानुसारेण कृतानां-अव्युत्पन्ननाम्नां प्रातिपदिकसंज्ञां विधाय, तेभ्यः - अव्युत्पन्नप्रातिपदिकेभ्यः- नामभ्यः-एव - स्वादिविभक्तिकार्यं कृत्वा, स्वरचितेषु श्लोकेषु - तेषां - अव्युत्पन्न- प्रातिपदिक-नाम्नां व्यवहारः- अनेकेषु स्थलेषु कृतः । परिभाषाध्याये श्री भास्कराचार्याः- लिखन्ति—

"पादोनगद्याणकतुल्यटङ्कै द्विसप्ततुल्यैः कथितोऽत्र सेरः।
मणाभिधानं खयुगैश्च सेरै र्धान्यादितौल्येषु तुरुष्कसंज्ञा ॥६॥ ,

अस्मिन् श्लोके– "गद्याणक - टङ्क - मण - सेर" अव्युत्पन्नशब्दानां प्रयोगः प्रातिपदिकसंज्ञां - स्वादिविभक्त्यादिकार्यं च विधायैव कृतः भास्कराचार्यैः। गद्याणक - टङ्क - मण- सेर - नामानि तु -तुरुष्कदेशभाषानुसारेण कृतानि सन्ति।

(ष) वेदवेदाङ्ग - व्याकरणादिशास्त्रेषु - प्रकाण्डपाण्डित्ययुक्तैः श्री नीलकण्ठाचार्य - श्री वराहमिहिराचार्य - श्रीभास्कराचार्यादिभिः - महाकविभिः- स्वस्वनिबन्धग्रन्थेषु- महाकाव्येषु च - संज्ञार्थबोधकानां - देशभाषानुसारेण कृतानां इक्कवालादीनां नाम्नां प्रातिपदिकसंज्ञां विधाय, तेभ्यः- इक्कवालादिनामभ्यः- स्वादिविभक्ति - कार्यं च कृत्वाः, तेषां इक्कवालादिनाम्नां व्यवहारः संस्कृतभाषायां स्वीकृतः, उपर्युक्तप्रकारेण - देशभाषानुसारेण कृतानां नाम्नां संस्कृतभाषायां स्वीकृतकर्मणा - अपि - श्री नागेशमहाभागानां - दुराग्रहः - एव - अस्ति - इत्यस्यैव पुष्टिः भवति।

(स)श्रीपाणिनिमुनिकृताष्टाध्यायीसूत्राणां - साधीयसी व्याख्या- श्रीभट्टोजिदीक्षितमहोदयैः कृता, इति तु विदन्त्येव वैयाकरण - प्रभृतयो विद्वांसः, सिद्धान्तकौमुद्याम् - समासाश्रयविधि - प्रकरणे (१४८३) - "पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् - ६/३/१०९।" अस्य सूत्रस्य व्याख्यावसरे श्रीभट्टोजिदीक्षितमहोदयाः विलिखन्ति– "पृषोदरप्रकाराणि - शिष्टैः- यथोच्चारितानि, तथैव साधूनि स्युः। पृषतः उदरं - पृषोदरम् - तलोपः। वारि वाहको - बलाहकः – पूर्वपदस्य बः– उत्तरपदादेश्च लत्वम्।

(१४८४) — "भवेद् वर्णागमात् - हंसः सिंहो वर्णविपर्ययात्।
गूढोत्मा वर्ण - विकृते वर्णनाशात् पृषोदरम् ॥"

पृषोदरादिगणस्तु- "पृषोदर, पृषोत्थान, बलाहक, जीमूत, श्मशान, उलूखल, वृसी, मयूर पृषोदरादिः- आकृतिगणः। कृदन्ते - प्रकरणे - (४१८४) - "अन्येभ्योऽपि दृश्यते- ३/२/१७८।" अस्य सूत्रस्य व्याख्यावसरेऽपि - श्रीभट्टोजिदीक्षितमहोदयाः विलिखन्ति – "क्विप्, छित्, भिद्, दृशिग्रहणं विध्यन्तरोपसंग्रहार्थम्, क्वचिद्दीर्घः क्वचित्संप्रसारणम्, क्वचित् - द्वे, क्वचित्- ह्रस्वः।

उपर्युक्तयोः सूत्रयोः व्याख्यायाः- अयं भावः- शिष्टैः- उन्मत्तादिरोगरहितैः-,स्वस्थमस्तिष्कैः, अविकृतज्ञानतन्तुयुक्तमस्तिष्कैः स्पष्टशब्दोच्चारणशक्तियुक्तैः- स्त्री-पुरुषादि- मनुष्यवर्गस्थैः- विज्ञानयुक्तव्यक्ति- विशेषैश्च-ये शब्दाः लौकिक-व्यवहारे प्रयुक्ताः, येषां शब्दानां प्रयोगं लौकिक व्यवहारे शिष्टाः-शिक्षिताः-अशिक्षिताश्च कुर्वन्ति, तेषां शब्दानां संस्कृतव्याकरण-नियमानुसारेण - यथासाध्यं संस्कारं विधाय, शिष्टोच्चारितान्-तान्- शब्दान् संस्कृतभाषायां लौकिकव्यावहारे स्वीकृत्य, लौकिकव्यवहारः कार्यः विद्वद्भिः, लौकिकव्यवहारे प्रचलिताः शब्दाः यादृशाकाराः तादृशाकाराणामेव-प्रातिपदिकसंज्ञां कृत्वा, तेभ्यः-स्वादि-विभक्तिकार्यं च कृत्वा,- शब्देषु यथासाध्यं-संस्कृत-संस्कारं विधाय, संस्कृत- भाषापरकाः शब्दाः विधेयाः। लौकिकव्यवहारे प्रचलितशब्दानां - व्याकरणसंस्कारविधा-

नार्थं क्वचिद्वर्णलोपं (अक्षरलोपम्) क्वचिद्वर्णवृद्धि, क्वचिद्वर्णपरिवर्तनं, क्वचिद्दीर्घं, क्वचिद्-ह्रस्वं, क्वचित्द्वित्वं, क्वचित्संप्रसारणम् , इत्यादिना-येन केनापि कर्मविधानेन लौकिकव्यवहारे प्रचलितानां सभ्य - शिष्ट - मनुष्यवर्गोच्चाशितानां शब्दानां सिद्धिः विधेया शब्दशास्त्रकुशलवैयाकरणेन । इत्येतादृशः एव- अभिप्रायः-उपर्युक्तयोः-(१४८३- पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् - ६/३/१०९ । ४१८४ - अन्येभ्योऽपि दृश्यते -३/२/१७८) सूत्रयोः अस्ति, अत एव - उक्तसूत्रयोः एतादृशी व्याख्या कृता श्री भट्टोजिदीक्षित-महोदयैः । देशभाषानुसारेण लौकिकव्यवहारे प्रचलितानां शब्दानां प्रातिपदिक-संज्ञा-विषये स्वादिविभक्तिविषये च — श्री नागेशमहोदयानां ये विचारास्तेषां विचाराणाम् खण्डनमेव भवति - उपर्युक्तसूत्रयोः श्री भट्टोजिदीक्षितकृतव्याख्यया ।

व्याकरणग्रन्थातिरिक्तग्रन्थेषु - पुराणादिग्रन्थेषु ज्यौतिषग्रन्थेषु च व्यवहृताः- एतादृशाः- अनेके शब्दाः सन्ति, येषां सिद्धिः "पृषोदरादीनियथोपदिष्टम्" इति सूत्रेणैव भवति । विष्णुपुराणे तृतीये - अंशे - द्वितीयेऽध्याये षोडशसंख्याङ्कितः श्लोकः- षष्टिसंख्याङ्कितः श्लोकश्च —

"तेषां गणश्च देवानामेकैको विंशकः स्मृतः ।
सप्तर्षीनपि वक्ष्यामि भविष्यान् मुनिसत्तम! ॥१६॥
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वभूतान् महात्मनः ।
तदत्रान्यत्र वा विप्र! सद्भावः कथितस्तव ॥६०॥

विष्णुपुराणे तृतीये - अंशे - तृतीयेऽध्याये - एकविंशतिसंख्याङ्कितः श्लोकः—

भविष्ये द्वापरे चापि द्रौणि र्व्यासो भविष्यति ।
व्यतीते ममपुत्रेऽस्मिन् कृष्णद्वैपायने मुने! ॥२१॥

उपर्युक्तेषु श्लोकेषु क्रमशः - भविष्यान्, भविष्यम् , भविष्ये, प्रयोगाः सन्ति, अत्र "पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्" इति सूत्रेण- शतृप्रत्ययान्तस्य-"भविष्यत्" शब्दस्य-तकारस्य लोपं कृत्वा "भविष्य" इति शब्दस्वरूपं निर्माय,- प्रातिपदिकसंज्ञां स्वादि-विभक्तिकार्यं च विधाय, "भविष्यान्, भविष्यम् , भविष्ये" एषां शब्दानां सिद्धिं कुर्वन्ति सुविज्ञवैयाकरणाः । अथवा - भविष्यत् - कालार्थबोधकं "भविष्य" शब्दस्वरूपं रूढिं स्वीकृत्य, "अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्" इति सूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञां विधाय, स्वादिविभक्तिकार्यं च कृत्वा "भविष्यान्, भविष्यम् , भविष्ये" इत्येषां सिद्धिः भवति ।

"गन्धर्वः शरभो रामः सृमरो गवयः शशः ।
इत्यादयो मृगेन्द्राद्या गवाद्या पशुजातयः ॥"

अमरकोषोक्तेऽस्मिन् पद्ये तु - पशुजातिवाचकः - रामशब्दोऽस्ति, अतोऽत्र - अव्युत्पन्नस्य रामशब्दस्य "अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्" इति सूत्रेण प्रातिपदिक-संज्ञा भवति, यदा तु - राम - शब्दः भगवति रामचन्द्रे प्रयुज्यते, तदा तु - रमन्ते योगिनोऽस्मिन् - इति विग्रहे- "करणाधिकरणयोश्च" इत्यधिकारे घापवादेन "हलश्च" इति सूत्रेण - घञ् प्रत्यये कृते - रामशब्दः सिद्ध्यति, अत्र- "कृत्तद्धितसमासाश्च" इत्यनेन प्रातिपदिकसंज्ञा भवति, "प्रकृतिप्रत्ययबोधविशिष्टत्वं व्युत्पन्नत्वम्" प्रकृति-

प्रत्ययबोधशून्यत्वं - अव्युत्पन्नत्वम्" इत्येतादृशलक्षणलक्षितानि द्विविधानि नामानि भवन्ति, द्विविधाश्च शब्दाः भवन्ति ।

प्रकृतिप्रत्ययबोधान्वितानि यानि नामानि तानि (व्युत्पन्नानि) यौगिकानि च भवन्ति, प्रकृतिप्रत्ययबोधान्विताः ये शब्दाः— तेऽपि व्युत्पन्नाः यौगिकाश्च भवन्ति । यौगिकनाम्नां यौगिकशब्दानां च प्रातिपदिकसंज्ञा तु "कृत्तद्धितसमासाश्च" इति सूत्रेणैव भवति)

प्रकृतिप्रत्ययबोधरहितानि यानि नामानि तानि अव्युत्पन्नानि- "रूढि" संज्ञकानि-च भवन्ति, प्रकृति-प्रत्यय-बोधरहिताश्च ये शब्दाः-तेऽपि-अव्युत्पन्नाः "रूढि" संज्ञकाः-एव-भवन्ति, रूढिसंज्ञकानां नाम्नां रूढिसंज्ञकानां शब्दानां च प्रातिपदिकसंज्ञा तु "अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्" इति सूत्रेणैव भवति ।

उपर्युक्त - व्युत्पन्न - अव्युत्पन्न - यौगिक - रूढि - नाम - शब्द - सिद्धान्त-मनुसृत्य- देशभाषानुसारेण कृतानां "कुञ्ची, मञ्जी, अप्पि, कोण्डा" इत्यादिनाम्नां-संज्ञार्थबोधकत्वं - अव्युत्पन्नत्वं रूढित्वं च स्वीकृत्य - अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्" इति सूत्रेण-प्रातिपदिकसंज्ञां स्वादिविभक्तिकार्यं च कृत्वा, कुञ्ची इत्यादिशब्दसाधुत्व-विधाने न दरीदृश्यते कोऽपि दोषः । श्री नागेशमहोदयैः- कुञ्चीत्यादिनाम्नां अप्राति-पदिकत्वं - असाधुत्वं च यदुक्तं तत्तु- नागेशदुराग्रहपरकमेवेति निष्पक्षया मध्यस्थया धिया विवेचनीयं विज्ञैः ।

प्रसङ्गानुगतयोः- व्याकरण-वैयाकरण-शब्दयोः-व्युत्पत्तिमत्र लिखामि ।

व्याकरणम्—

व्याक्रियन्ते = धात्वादिप्रविभागैः- व्युत्पाद्यन्ते -शब्दाः अनेन--"निपातन, वर्णागम, वर्णलोप, वर्णविपर्यास, शिष्टोच्चारित, शब्दार्थबोधक, रूढि, योगारूढि, जातिवाचक, व्युत्पन्न, अव्युत्पन्न, आकृतिगणान्तर्गतादिभेदैः, तथा - प्रत्यक्षक्रियाणि, प्रकल्प्यक्रियाणि, अविद्यमानक्रियाणि च नामानि भवन्तीति नाम्नां त्रिधा व्यवस्था भवतीत्यादिभेदैश्च लोकप्रचलिताः शब्दाः व्याक्रियन्ते - व्युत्पाद्यन्ते अनेन"—

इति विग्रहे कृते करणेऽर्थे- व्याङ्पूर्वकात् - करणार्थकात् - "कृ" धातोः "करणाधिकरणयोश्च- ३/३/११७ ।" इति सूत्रेण "ल्युट्" प्रत्यये कृतेऽनुबन्धलोपे "व्या+कृ+यु" इति स्थितौ "युवोरनाकौ - ७/१/१ " इति सूत्रेण "यु" इत्यस्य स्थाने "अन" आदेशे कृते "व्या+कृ+अन" इति स्थितौ "सार्वधातुकार्धधातुकयोः-७/३/८४/ " इतिसूत्रेण - ऋकारस्य स्थाने "अर्" गुणे कृते णत्वे कृते "व्याकरण-शब्दःसिद्ध्यति, - ल्युट् - प्रत्ययान्तत्वात् - अत्र - नपुंसकत्वम् - अत एव व्याकरणं सिद्ध्यति ।

वैयाकरणः—

व्याकरणं - अधीते, अथवा व्याकरणं वेद, अत्र शब्दपाठोऽध्ययनम् , अर्थज्ञानं च वेदनं बोध्यम् , यः कश्चिद्व्यक्तिविशेषः- व्याकरणं -अधीते, अथवा वेद, स एव वैयाकरणः- भवति ।

अत्र व्याकरणमधीते वेद वा - इत्यस्मिन् - अर्थे- "तदधीते तद्वेद- ४/२/५९" इति सूत्रेण "अण्" प्रत्यये कृतेऽनुबन्धलोपे कृते सति "व्याकरण+अ" इति स्थितौ "तद्धितेष्वचामादेः- ७/२/११७/" इति सूत्रेण - अचामादेरचो वृद्धौ प्राप्तायाम्- "न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्- ७/३/३/" इति सूत्रेण वृद्धिनिषेधे "ऐच्" आगमे च कृते सति "वैयाकरण+अ" इत्यवस्थायां "अकः सवर्णे दीर्घः- ६/१/१०१/" इति सूत्रेण प्राप्तं दीर्घं प्रबाध्य "अतोगुणे - ६/१/९७" इति सूत्रेण पररूपे कृते "वैयाकरण" इति स्थितौ स्वादिकार्ये कृते "वैयाकरणः" इति सिद्ध्यति।

श्री नागेशदुराग्रहप्रदर्शनम्—

स्वात्मानं वैयाकरणं स्वीकुर्वद्भिः अपि नागेशमहाभागैः "प्रत्यक्ष - क्रियाणि, प्रकल्प्यक्रियाणि, अविद्यमानक्रियाणि,- च नामानि भवन्तीति नाम्नां त्रिधा व्यवस्था भवति, " इत्येतादृशीं निरुक्तोक्तां व्यवस्थां तिरस्कृत्य, "पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्" "अन्त्येभ्योऽपि दृष्यते" इत्येतादृशीं पाणिनीय - व्यवस्थां तिरस्कृत्य, "सर्वे देशान्तरे" "याज्ञे कर्मणि स नियमः- अन्यत्रानियमः" इत्येतादृशीं महाभाष्योक्तां व्यवस्थां तिरस्कृत्य, श्रीवराहमिहिराचार्य - श्रीभास्कराचार्य - श्रीनीलकण्ठाचार्यादिभिः स्वीकृतां पूर्वोक्तां शब्दप्रयोगव्यवस्थां च तिरस्कृत्य, देशभाषानुसारेण कृताना- "कुञ्ची, मंञ्ची, अप्पि कोण्डा" इत्यादिनाम्नां अर्थवत्वेऽपि - अप्रातिपदिकत्वं - असाधुत्वं च भवति, इति यदुक्त नागेशैः- तत्तु - भ्रान्तिप्रदं-अविचारितरमणीयं - नागेशदुराग्रहसूचकं चैवास्तीति नीरक्षीरविवेकिन्या— निष्पक्षया मध्यस्थया धिया विवेचनीयं विज्ञैः।

नागेशोक्तं मयोक्तं च शब्दशास्त्रमनीषिणः।
विचारयन्तु हे विज्ञा ! विनम्रो विनिवेदये ॥१॥
लोके प्रचलिता नव्या ये शब्दा व्यवहारतः।
संस्कृते व्यवहारे ते प्रयुक्ताः पूर्वसूरिभिः ॥२॥
देशभाषानुसारेण ये शब्दा व्यवहारतः।
प्रचलन्ति सदा तेषां व्यवहारोऽस्तु संस्कृते ॥३॥
मोटरसाईकिलाद्याः स्कूटर - ट्रैक्टरादयः।
संस्कृते व्यवरारे ते प्रयोक्तव्या मनीषिभिः ॥४॥
नागेश ईश्वरो नास्ति न मुनि र्न च पूर्वगः।
तदुक्तं सुविमृश्यैव माननीयं मनीषिभिः ॥५॥

सन्धिविषये नियममत्र लिखामि—

"संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥१॥

इति भट्टोजिदीक्षितोक्तं सिद्धान्तपक्षमनुसृत्यैव मयाऽत्र निबन्धे सन्धीनां व्यवस्था स्वीकृता शब्दप्रयोगविषये । शोधनिबन्धस्य - विस्तारभयात् - अत्र शब्दप्रयोगविषये स्वल्पः - एव विचारः कृतः- मया।

पद्यरचनाविषये विचारः

पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।
षष्ठं गुरु विजानीयादेतत्पद्यस्य लक्षणम् ॥"

छन्दः शास्त्रोक्तस्य अस्य नियमस्य चरितार्थता तु न भवति सर्वत्र सैद्धान्तिकरूपेण, यतो हि महाकवि - कालिदास - विरचितस्य "कुमारसम्भवम्" इति - नामककाव्यस्य द्वितीये सर्गे - ११, १५, २५, २८, ३१, ३५, ३६, ४५, ४८, ५४, ५५, संख्याङ्कितेषु पद्येषु - बृहदाकारयुक्तेषु - स्थूलेषु - अक्षरेषु - उपर्युक्त नियमस्यचरितार्थता नास्ति, षष्ठे सर्गेऽपि - ६२ - संख्याङ्किते पद्ये उपर्युक्तस्य नियमस्य चरितार्थता नास्ति, काव्यान्तरेषु पुराणग्रन्थस्थेषु पद्येषु च अनेकेषु स्थलेषु अपि उपर्युक्तछन्दः शास्त्रोक्तनियमस्य न दरीदृश्यते चरितार्थता ।

द्रवः सङ्घातकठिनः स्थूलः सूक्ष्मो लघु गुरुः ।
व्यक्तो व्यक्तेतरश्चासि प्राकाम्यं ते विभूतिषु ॥११॥

त्वमेव हव्यं होता च भोज्यं भोक्ता च शास्वतः ।
वेद्यं च वेदिता चासि ध्याता ध्येयं च यत्परम् ॥१५॥

पर्याकुलत्वात् मरुतां वेगभङ्गोऽनुमीयते ।
अम्भसामोघसंरोधः प्रतीपगमनादिव ॥२५॥

तद् ब्रूत वत्साः! किमितः प्रार्थयध्वं समागताः ।
मयि सृष्टि र्हि लोकानां रक्षा युष्मास्ववस्थिता ॥२८॥

एवं यदात्थ भगवन्! आमृष्टं नः परैः पदम् ।
प्रत्येकं विनियुक्तात्मा कथं न ज्ञास्यसि प्रभो ॥३१॥

व्यावृत्तगतिरुद्याने कुसुमस्तेयसाध्वसात् ।
न वाति वायु स्तत्पार्श्वे तालवृन्ताऽनिलाऽधिकम् ॥३५॥

पर्यायसेवामुत्सृज्य पुष्पसम्भारतत्परः ।
उद्यानपाल - सामान्यमृतवस्तमुपासते ॥३६॥

भुवनालोकनप्रीतिः स्वर्गिभिर्नानुभूयते ।
खिलीभूते विमानानां तदायातभयात् पथि ॥४५॥

तस्मिन्नुपायाः सर्वे नः क्रूरे प्रतिहतक्रियाः ।
वीर्यवन्त्यौषधानीव विकारे सान्निपातिके ॥४८॥

सम्पत्स्यते वः कामोऽयं कालः कश्चित् प्रतीक्ष्यताम् ।
न त्वस्य सिद्धौ यास्यामि सर्गव्यापारमात्मना ॥५४॥

इतः स दैत्यः प्राप्तश्री र्नेत एवार्हति क्षयम् ।
विषवृक्षोऽपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् ॥५५॥

तन्मातरं चाश्रुमुखीं दुहितृ- स्नेह- विक्लवाम् ।
वरस्यानन्यपूर्वस्य विशोकामकरोद् गुणैः ॥६२॥

इति द्वितीयाध्यायः

"आर्षवर्षा - वायुविज्ञान" के द्वितीय अध्याय का सुन्दरी टीका में सारांश

सुन्दरी टीका— १. इन्द्र, २. चन्द्र, ३. काशकृत्स्न, ४. आपिशलि, ५. शाकटायन, ६. पाणिनि, ७. अमर, ८. जैनेन्द्र, ९. कौमार, १०. सारस्वत, ११. शाकल, इन ग्यारह नामों से प्रसिद्ध ग्यारह प्रकार के संस्कृतव्याकरण संसार में प्रचलित हैं। इन ग्यारह व्याकरणों के अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के संस्कृत व्याकरण हैं, जो कि प्रायः अप्रचलित और अनुपलब्ध हैं, वर्तमान समय में अध्ययन अध्यापन के क्षेत्र में-पाणिनीय - पातञ्जल और शाकटायन, इन तीन प्रकार के व्याकरणों का प्रचलन दृष्टिगोचर हो रहा है, शेष- सभी प्रकार के संस्कृत व्याकरणों का अध्ययन अध्यापन प्रायः समाप्त हो चुका है, यदि कहीं पर व्याकरणान्तरों का प्रचलन है भी तो वह नहीं के बराबर ही है। वेद के मन्त्रों में स्थित अनेक शब्दों को वैदिक व्याकरण से (यास्कादि मुनिप्रणीतनिरुक्तादि व्याकरण से) सिद्ध करने की परम्परा वर्तमान समय में भी प्रचलित है, संस्कृतवाङ्मय के अनेक ग्रन्थों में ऐसे अनेक शब्द पाये जाते हैं, जिन्हें प्रचलित व्याकरणों से सिद्ध करना सर्वथा असम्भव होता है, ऐसे शब्दों को आर्षोक्त होने के कारण ही शुद्ध मानकर सन्तोष कर लिया जाता है, इस से यह निष्कर्ष निकलता है कि- ऋषिप्रणीत ग्रन्थों में प्रयुक्त किये गये जो शब्द आधुनिक प्रचलित व्याकरण से सिद्ध नहीं होते हैं, वे शब्द ऋषिप्रणीत ग्रन्थों के निर्माणकाल में प्रचलित व्याकरणों से अवश्य ही सिद्ध होते थे।

संस्कृत में शब्द प्रयोग की व्यवस्था

पाणिनीय और कात्यायन के बाद में पातञ्जल व्याकरण के जन्मदाता पतञ्जलि ऋषि ने पातञ्जलमहाभाष्य में - यास्क और पाणिनीय आदि व्याकरणों से भी प्राचीनतम "बार्हस्पत्यव्याकरण" की चर्चा करते हुए यह बताया है कि— व्याकरण-शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् बृहस्पति ऋषि ने इन्द्र के लिये एक हजार दिव्यवर्ष तक [मृत्युलोक के ३६० सौर दिनों का एक दिव्यदिन होता है, ऐसे ३६० दिव्यदिनों का एक दिव्यवर्ष होता है] संस्कृतव्याकरण के शब्दों का पाठ सुनाया तथा पढ़ाया, किन्तु-व्याकरण शब्दों के अन्त तक (समाप्ति तक) नहीं पहुँच पाये, व्याकरण के शब्द सुनाने और पढ़ाने को अनन्त संख्या में शेष रह गये थे। एक हजार दिव्यवर्षतक- बृहस्पति- और इन्द्र क्रमशः अध्यापन और अध्ययन में लगे रहे, फिर भी व्याकरण शब्दों के अन्त तक नहीं पहुंच सके, इस परिस्थिति में मनुष्य की आयु के अनुसार एक सौ सौर वर्ष तक भी कठिनता के साथ जीने वाला मनुष्य - संस्कृत व्याकरण के समस्त शब्दों - के अध्ययन - अध्यापन और पारायण करने में कभी भी पूर्णरूप से सफल नहीं हो सकता है, संस्कृतवाङ्मय की हजारों शाखायें और प्रशाखायें हैं, मनुष्य अपनी आयु के अनुसार संस्कृतवाङ्मय की एक शाखा के शब्दों को भी भली प्रकार से जानने और सुनने में प्रायः असमर्थ ही रहता है, संस्कृत के समस्त शब्दों का पूर्ण ज्ञान मनुष्य को

जीवन में कभी नहीं हो सकता है, यह सब कुछ होते हुए भी जो लोग यह कहते हैं कि- यह शब्द - संस्कृत के किसी ग्रन्थ में प्रयुक्त नहीं किया गया है, अत एव - यह शब्द असंस्कृत है, अतः- इस शब्द का प्रयोग संस्कृत के व्यवहार में संस्कृत भाषा में नहीं करना चाहिये । इस प्रकार का कथन दुःसाहसपूर्ण और भ्रान्तिपूर्ण ही समझना चाहिए, इसी लिये महाभाष्य में पतञ्जलि ने लिखा है — "एतावन्तं शब्दस्य प्रयोग-विषयं - अननुनिश्म्य — सन्त्यप्रयुक्ताः— इति कथनं केवलं साहसमात्रमेव" ।

किसी शब्द या प्रयोग को सिद्ध करने में अथवा शब्द प्रयोग के विषय में ऋषियों में सैद्धान्तिक रूप से मत भेद होने पर सिद्धान्तकौमुदीकार श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा दी गई व्यवस्था "यथोत्तरं मुनीनाँ प्रामाण्यम्" के अनुसार पूर्ववर्ती ऋषियों की अपेक्षा परवर्ती ऋषि के सिद्धान्त को स्वीकार करके शब्द और प्रयोग को व्यवहार में लाना चाहिए । तदनुसार अपने से पूर्ववर्ती पाणिनि ऋषि के किसी सूत्रादि के विषय में – कात्यायन - ऋषि ने यदि किसी प्रकार की आपत्ति "दोष" दिखाकर - किसी उपसंख्यान अथवा वार्तिक का नया निर्माण करके किन्हीं नये प्रयोगों और शब्दों को सिद्ध करने के प्रकारों का प्रतिपादन किया हो तो उसे भी सिद्धान्त रूप से स्वीकार करलेना चाहिए ।

महाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलि ऋषि ने अपने से पूर्ववर्ती - कात्यायन ऋषि - के किन्हीं वचनों का वार्तिकों का और प्रयोगादि का खण्डन करके, पाणिनि के किसी वचन, प्रयोग तथा सूत्रादि का समर्थन किया हो अथवा - सिद्धान्त रूप से - पाणिनि और कात्यायन के विवाद या मतभेद में अपनी कोई नयी व्यवस्था - वार्तिक के रूप में - भाष्य के रूप में तथा प्रयोगसाधुत्व के रूप में दी हो तो उस व्यवस्था को ही सिद्धान्तरूप से स्वीकार करलेना चाहिए ।

(अ) पाणिनि के समय में संसार का समस्त लौकिक व्यवहार देववाणी संस्कृत में ही प्रचलित था, इसी लिये पाणिनि ने संस्कृत को सवत्र भाषा शब्द से ही प्रयुक्त किया है, यदि पाणिनि के कार्यकाल में संस्कृत के अलावा अन्य किसी भाषा का अस्तित्व रहा भी हो तो वह अस्तित्व वहुत कम नहीं के बराबर ही रहा होगा, लौकिक-व्यवहार में - विशुद्ध संस्कृत भाषा का प्रचलन होने पर ही पाणिनि ने संस्कृत को भाषा शब्द की संज्ञा दी है ।

(ब) पाणिनि के कार्यकाल से कई शताब्दियों के वाद - कात्यायन के कार्यकाल में– शब्दार्थ वोधक अपभ्रंश और अपभ्रष्ट शब्दों का प्रचलन भी संस्कृतभाषा के साथ लौकिक व्यवहार में आरम्भ हो गया था, इसी लिए कात्यायन ने-अपभ्रंश और अपभ्रष्ट शब्दों के माध्यम से किये गये लौकिक व्यवहार को अधर्मजनकत्व =(अधर्म को जन्म देने वाला) मान कर और शुद्ध संस्कृत शब्दों के माध्यम से किये गये लौकिक व्यवहार को धर्मजनकत्व =(धर्म को जन्म देने वाला) बताकर शुद्ध संस्कृत शब्दों के माध्यम से ही समस्त लौकिक व्यवहार को करने के लिये जोर देकर अपनी व्यवस्था दी है ।

(स) कात्यायन के कार्यकाल से कई शताब्दियों के वाद महाभाष्यकार पतञ्जलि के कार्यकाल में अभ्रंश और अपभ्रष्ट शब्दों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में संस्कृत के साथ लौकिक व्यवहार में होने लगा था। उस समय कात्यायन के अनुयायी अधर्मजनकत्व होने के कारण - अपभ्रंश और अपभ्रष्ट शब्दों का प्रयोग संस्कृत के साथ लौकिक व्यवहार में करने का विरोध करने पर तुले हुए थे।

(क) कात्यायन और उनके अनुयायियों की हठधर्मी को देखकर उस समय महाभाष्यकार श्री पतञ्जलि ऋषि ने अपने महाभाष्य ग्रन्थ में यह व्यवस्था दी है कि—"याज्ञे कर्मणि स नियम:, अन्यत्रानियम:" अर्थात्—यज्ञादि धार्मिक कार्यों में तथा धार्मिक कार्यों के संकल्पादि में अपभ्रंश और अपभ्रष्ट शब्दों का प्रयोग संस्कृत भाषा में नहीं करना चाहिये, अन्यत्र-लौलिक व्यवहार के लिये प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में शब्दार्थबोधक-अपभ्रंश और अपभ्रष्ट शब्दों का प्रयोग करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये, क्योंकि "एक: शब्द: सम्यग्ज्ञात: शास्त्रान्वित: सुप्रयुक्त: स्वर्गेलोके कामधुग्भवति" वेद में कहे गये इस नियम का पालन केवल यज्ञादि कार्यों में तथा धर्मानुष्ठान के लिये किये गये संकल्पादि में ही करना चाहिये, यज्ञादि-धर्मानुष्ठान के अतिरिक्त अन्य लौकिक व्यवहार के कार्यों में इस नियम का पालन करना अनिवार्य नहीं है।

(ख) सन् १९५४ ई० में वाराणसीस्थ-चौखम्बा संस्कृत सीरीज "विद्याविलास प्रेस" से प्रकाशित "तत्वालोकटीका" सहित व्याकरण महाभाष्य की संस्कृत में भूमिका के लेखक - महामहोपाध्याय-विद्यावाचस्पति-श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जी ने भी स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि—महाभाष्य में प्रदत्त पतञ्जलि ऋषि की व्यवस्थाओं के अनुसार-यज्ञादि-धर्मानुष्ठानों के अतिरिक्त अन्य सभी लौकिक व्यवहारों में शब्दार्थबोधक अपभ्रंश और अपभ्रष्ट शब्दों का प्रयोग संस्कृत भाषा में करना ही चाहिये।

(ग) "१४८३—पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्-६।३।१०९" "४१८४—अन्येभ्योऽपिदृश्यते-३।२।१७८" इत्यादि सूत्रों का तथा आकृतिगणों, निपातों, और बाहुलक भ्रतृतियों का निर्माण करके श्री पाणिनि-ऋषि ने—लौकिक व्यवहार में प्रचलित-शब्दार्थबोधक-अपभ्रंश तथा अपभ्रष्ट शब्दों को संस्कृत भाषा में प्रयुक्त करने की सुस्पष्ट व्यवस्था देकर संस्कृतभाषा के प्रचार और प्रसार के लिये अपनी उदारता प्रकट की है।

(घ) पाणिनि और पतञ्जलि ने लोक में=(संसार में) प्रचलित शब्दों को लौकिक व्यवहार में संस्कृत भाषा में प्रयोग करने के लिये जो सिद्धान्त अपनाये और बताये हैं, उन सिद्धान्तों को अच्छी तरह से समझ करके ही आदिकाव्य बाल्मीकि रामायण और जैमिनिसूत्र पर संस्कृत टीकाकार श्री नीलकण्ठाचार्य ने अपने मौलिक ग्रन्थ नीलकण्ठी में इक्कबाल, इन्दुवार, इत्थशाल, ईसराफ, नक्त, यमया, मणाऊ, कब्बूल, गैरिकब्बूलं, खल्लासर, रद्द, दुफालिकुत्थ, दुत्थोत्थदिवीर, तम्बीरकुत्थ,

दुरफ, हद्दा, मुसल्लह, मुन्था, आदि शब्दार्थबोधक अपभ्रंश, अपभ्रष्ट शब्दों का प्रयोग संस्कृत के श्लोकों में किया है ।

(ङ) महाकवि कालिदास से भी उत्कृष्ट कोटि के महाकवि-श्री वराहमिहिराचार्य ने वृहत्संहिता और वृहज्जातक आदि अपने ग्रन्थों में—क्रिय, तावुरी, जितुम, कुलीर, जूक, आकोकेर, रिष्फ, आदि अनेक प्रकार के अपभ्रष्ट और अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग संस्कृत के श्लोकों में करके पाणिनीय और पातञ्जल व्याकरण के शब्द-प्रयोग-विषयक-व्यावहारिक-सिद्धान्तों का अनुसरण किया है ।

(च) संस्कृत के दिग्गज विद्वान् कवि-श्री भास्कराचार्य ने अपने लीलावती नाम के गणित ग्रन्थ में—यवन साम्राज्यकाल में तौलादि व्यवहार में प्रचलित 'सेर' आदि शब्दों का प्रयोग संस्कृत के श्लोकों में किया है ।

(छ) यास्क मुनि प्रणीत-निरुक्त-के नैघण्टुक काण्ड में प्रथमाध्याय के चतुर्थपाद के प्रारम्भ में लौकिक व्यवहार में प्रचलित नामों के सम्बन्ध में सुन्दर व्यवस्था दी गई है, निरुक्त सिद्धान्त के अनुसार लौलिक व्यवहार में प्रचलित नामों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है ।

प्रथम श्रेणी के नाम-व्याकरणशास्त्र के अनुसार जो नाम-प्रकृति-प्रत्यय और धातु से सिद्ध होते हैं, और प्रकृति-प्रत्यय तथा धातु के अर्थ की चरितार्थता जिन नामों में पाई जाती है, लौकिक व्यवहार में प्रचलित उन सभी नामों को "संविज्ञातसंज्ञक" अथवा "प्रत्यक्षक्रियासंज्ञक" कहा जाता है,—कारक, हारक, मारक, विदारक, प्रसारक, प्रचारक, पाचक, आदि नाम-संविज्ञातसंज्ञक, अथवा प्रत्यक्षक्रियासंज्ञक, कहे जाते हैं ।

द्वितीय श्रेणी के नाम—लौकिक व्यवहार में बोले जाने वाले जिन नामों में प्रत्यक्ष क्रिया का अभाव विद्यमान रहता है, क्रिया की कल्पना अथवा क्रिया का अध्याहार करके जिन नामों को सार्थक = (अर्थसहित) माना जाता है, वे नाम - "असंविज्ञातसंज्ञक" अथवा "अप्रत्यक्षक्रियासंज्ञक" अथवा "प्रकल्प्यक्रियासंज्ञक" कहे जाते हैं. गौः, अश्वः, पुरुषः, हस्ती, इत्यादि - नामों - की गणना - असंविज्ञात-संज्ञक, अप्रत्यक्षक्रियासंज्ञक, प्रकल्प्यक्रियासंज्ञक, नामों में की जाती है, क्योंकि - इन नामों में प्रत्यक्ष क्रिया का अभाव विद्यमान है, अतएव इन नामों की क्रियाओं की कल्पना अथवा अध्याहार करके ही इन नामों की सार्थकता को सिद्ध किया जाता है ।

गौः=गच्छतीति गौः - यहाँ पर - गच्छति - क्रिया की कल्पना की गई है ।

अश्वः=अश्नुते - इति - अश्वः, यहाँ पर "अशू - व्याप्तौ - स्वादिगणपठित - आत्मनेपदीसेद् - अशू धातु की अश्नुते क्रिया की कल्पना की गई है ।

पुरुषः=पुरतीति - पुरुषः - यहाँ पर - "पुर अग्रगमने" धातु से पुरतिक्रिया का अध्यायार करके "पुरः कुषन्" (उ० ४।७४) इस सूत्र से पुरुष=संज्ञक शब्द सिद्ध होता है ।

हस्ती = हस्तः = शुण्डा - अस्यास्तीति विग्रह में "हस्ताज्जातौ"- ५/२/१३३" इस सूत्र से - इनिः - प्रत्यय होकर - हस्ती - शब्द बनता है, यहाँ पर अस्ति- क्रिया का अध्याहार अथवा कल्पना करने पर ही - "हस्ती" शब्द सिद्ध होता है।

उपर्युक्त - "गौः, अश्वः - पुरुषः - हस्ती"- इन नामों में प्रत्यक्ष क्रियाओं का अभाव विद्यमान होने के- कारण शब्दार्थज्ञान के लिये - क्रियाओं की कल्पना अथवा अध्याहार करना पड़ता हैं, अतएव ये सभी नाम - आसंविज्ञातसंज्ञक, अथवा-अप्रत्यक्ष-क्रियासंज्ञक, अथवा प्रकल्प्यक्रियासंज्ञक - कहे जाते हैं।

(ज) लौकिक व्यवहार में प्रचलित कुछ ऐसे नाम भी हैं, जिनमें प्रत्यक्ष और प्रकल्प्य दोनों प्रकार की क्रियाओं का अभाव विद्यमान रहते हुए भी उन शब्दों का प्रयोग लौकिक व्यवहार में संस्कृतभाषा में किया जाता है, इस प्रकार के शब्द - "अविद्यमानक्रियासंज्ञक" माने जाते हैं, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार की क्रियाओं का अभाव होते हुए भी - इन शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा करके, उन से "सु" आदि विभक्तिपरक समस्त कार्य करने पर - उन शब्दों का संस्कृत भाषा में व्यवहार किया जाता है।

"डित्थ, डवित्थ, अरविन्द, अर्वाङ्" इत्यादिशब्द अविद्यमानक्रियासंज्ञक हैं, इन सभी शब्दों की प्रातिपदिकसंज्ञा करके और स्वादिप्रत्यय करके "डित्थः, डवित्थः, अरविन्दः, अर्वाङ्" इस प्रकार के प्रयोग निरुक्त के पूर्वोक्त प्रकरण में सिद्ध किये गये हैं।

शब्दप्रयोग के विषय में श्री नागेश का समीक्षात्मक खण्डन—

नागेश ने स्वरचित - "वैयाकरण सिद्धान्त मञ्जूषा" में इस विषय पर विस्तार पूर्वक विचार किया है कि — संसार में लौकिक व्यवहार में प्रचलित अपभ्रंश और अपभ्रष्ट शब्दों की संस्कृत व्याकरण के अनुसार प्रातिपदिकसंज्ञा होनी चाहिए या नहीं होनी चाहिए, अपभ्रंश और अपभ्रष्ट शब्दों को लौकिकव्यवहार की संस्कृत में प्रयोग करने के लिये स्वीकार करना चाहिए, या नहीं करना चाहिए।

इस प्रसंग में नागेश ने - जैमिनिप्रभृति उन सभी ऋषियों के सिद्धान्तों और मतों का खण्डन किया है, जिन्होंने - अपभ्रंश और अपभ्रष्ट शब्दों को लौकिकव्यवहार की संस्कृत में प्रयोग करने की व्यवस्थायें दी हैं, तथा जिन ऋषियों ने अपभ्रंश और अपभ्रष्ट शब्दों की भी प्रातिपदिक संज्ञा करने के लिये निर्णय दिये हैं, उनका खण्डन भी नागेश ने किया है।

मञ्जूषा में अपभ्रंश शब्दों के शक्तत्व - विचार - विमर्श - के प्रसंग में - नागेश ने दृढ़ता के साथ अपना यह मत व्यक्त किया है कि— देशभाषा के अनुसार देश-देशान्तरों में बालकों तथा व्यक्तियों के और वहाँ की वस्तुओं के जो नाम-अपभ्रंश और अपभ्रष्ट रूप में रक्खे गये हैं, उन सब का प्रचलन लौकिक व्यवहार की भाषा में होते हुए भी- उन शब्दों की न तो प्रातिपदिक संज्ञा हो सकती है, और ना ही उन शब्दों औरनामों को लौकिकव्यवहार की संस्कृतभाषा में प्रयोग करने के लिये स्वीकार किया

जा सकता है।

देशभाषानुसार रक्खे गये— "कुञ्ची, मञ्ची, अप्पि, कोण्डा" आदि नामों को अपभ्रंश और अपभ्रष्ट - होने के कारण - नागेश ने इन नामों की प्रातिपदिक-संज्ञा करने का निषेध करते हुए - इन नामों को तथा इस प्रकार के अन्य नामों को लौकिकव्यवहार की संस्कृतभाषा में भी स्वीकार न करने के लिये स्पष्ट रूप से जोर दिया है।

अपने मत की पुष्टि के लिये नागेश ने मञ्जूषा में लिखा है कि— "यद्वान-स्तद्वान:" शुद्ध नाम के ऋषि थे, संसार के लौकिकव्यवहार में - इन ऋषियों को सब लोग— "यर्वाणस्तर्वाण:" इस नाम से पुकारते थे, किन्तु-यज्ञादिकार्यों में "यर्वाण-स्तर्वाण:" इस - अपभ्रंश नाम से इन ऋषियों को कोई भी नहीं पुकारता था, सब लोग यज्ञादि कार्यों में इन ऋषियों के शुद्ध नाम "यद्वान स्तद्वान:" का ही उच्चारण करते थे, नागेश के इस कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि — अपभ्रंश और अपभ्रष्ट होने के कारण - यर्वाण - तर्वाण - शब्दों की न तो प्रातिपदिक संज्ञा होनी चाहिए, और इन से स्वादिविभक्ति कार्य भी नहीं होने चाहिए।

यर्वाण - तर्वाण - शब्दों की प्रातिपदिकसंज्ञा का निषेध और इन शब्दों से सु-आदि- विभक्ति कार्यों का निषेध करते हुए नागेश ने - प्रातिपदिकसंज्ञा और स्वादि-विभक्तिपरक "यवर्णास्तर्वाण:" इस प्रकार के प्रयोग अथवा शब्द को मञ्जूषा में स्वयं लिखकर अथवा कहकर "वदतो व्याघात" [अपनी बात को स्वयं काटना या गलत सिद्ध करना] की उक्ति को ही चरितार्थ किया है। क्योंकि-यदि-अपभ्रंश तथा अपभ्रष्ट-यर्वाण - तर्वाण- शब्दों की प्रातिपदिकसंज्ञा और इन से स्वादि - विभक्ति कार्य होता ही नहीं है, तो फिर नागेश ने "यर्वाणस्तर्वाण:" इस प्रयोग को सिद्ध और शुद्ध स्वरूप में मञ्जूषा में कैसे लिख लियो। तथा— "यर्वाणस्तर्वाण:" इति णान्ताज्जसि- यर्वाण-स्तर्वाण:- नामेति प्रयुक्तम्"- इस प्रकार का पाठ-मञ्जूषा में लिखकर- जस्- प्रत्ययान्त यर्वाणस्तर्वाण:- शब्दों को - शुद्धशब्दस्वरूप स्वीकार करके कैसे लिख दिया।

उपर्युक्त प्रकार से नागेश द्वारा किये गये "वदतोव्याघात" की चरितार्थता पर निष्पक्ष दृष्टिकोण से गम्भीरतापूर्वक विचार करने से - यह सिद्ध होता है कि— देशभाषानुसार लौकिकव्यवहार में प्रचलित अपभ्रंश - शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा न करने के लिये, तथा अपभ्रंश शब्दों को लौकिक व्यवहार की संस्कृत में स्वीकार न करने के लिये नागेश ने - जो भी व्यवस्था दी है, वह भ्रमात्मक और दुराग्रहपरक होने से अविचारित रमणीय और उपेक्षणीय है। अतएव— "कुञ्ची, मञ्ची, अप्पी, कोण्डा आदि शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा करने में और इन से - स्वादिविभक्ति कार्य- करने में किसी को किसी भी प्रकार की आपत्ति या विरोध नहीं करना चाहिए।

हमें यह गौरव है कि— नागेश- व्याकरण शास्त्र के - एकविशिष्ट विद्वान् और प्रतिभाशाली व्यक्ति थे, किन्तु - मानवस्वभाव - सुलभ - अपनी भूलों के कारण से तथा वैदुष्यपूर्ण - हठीले स्वभाव के कारण से - पाणिनीयव्याकरण और व्याकरण-

महाभाष्यस्थ- पातञ्जलव्याकरण के शब्दप्रयोगविषयक - व्यावहारिक तथा लौकिक सिद्धान्तों के सन्मार्ग से - इधर - उधर भटक कर नागेश ने - पाणिनीय व्याकरण=[अष्टाध्यायी] के प्रचारक और प्रसारक व्याकरणसिद्धान्तकौमुदीकार "श्री भट्टोजिदीक्षित" का खण्डन - अयुक्त ढंग से मञ्जूषा में प्रच्छन्न तौर तरीका से किया है।

"१४८३ – पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् ६/३/१०९" पाणिनीय व्याकरण शास्त्र [अष्टाध्यायी] के इस सूत्र की व्याख्या करते हुए – "भट्टोजिदीक्षित" ने लोक में प्रचलित अपभ्रंश लौकिक शब्दों को - सिद्ध करके संस्कृत में लाने का जहाँ सुविस्तार अपनाने का प्रयास किया है, वहाँ नागेश ने भट्टोजिदीक्षित के बिल्कुल विपरीत - स्वरचितग्रन्थ मञ्जूषा में - निर्णय लिखकर - अपभ्रंश - लौकिक शब्दों को संस्कृत में नहीं लाने के लिये अपनी - पूरी शक्ति से लिखित रूप में ढिंढोरा [ढोल] बजाया है।

(१) प्रत्यक्षक्रियासंज्ञक, (२) प्रकल्प्यक्रियासंज्ञक, (३) अविद्यमानक्रियासंज्ञक, निरुक्त में प्रतिपादित इन तीन प्रकार के नामों की व्यवस्था को नहीं मानकर तथा-पृषोदरादिगण के अनुसार - शब्दसाधन के विषय में पाणिनीय व्याकरण की व्यवस्था को न मानकर, पातञ्जल - व्याकरण=(महाभाष्य) में वर्णित - सार्वदेशिक शब्दों की व्यवस्था को और - यज्ञातिरिक्त - लौकिकव्यवहार में वर्णित अपभ्रंश शब्दों की संस्कृत व्यवस्था को न मानकर, तथा - वराहमिहिराचार्य, भास्कराचार्य और नीलकण्ठाचार्य द्वारा अपनाई गई अपभ्रंश, अपभ्रष्ट शब्दों की संस्कृत - विधान - व्यवस्था को न मानकर, नागेश ने - निरुक्त (यास्क) पाणिनि, पतञ्जलि, जैमिनि, आदि व्याकरणशास्त्र के प्रवर्तक ऋषियों के सिद्धान्तों की अवहेलना करके, श्री वराहमिहिराचार्य, श्री भास्कराचार्य श्री नीलकण्ठाचार्य, प्रभृति संस्कृत के ठोस विद्वानों द्वारा संस्कृत श्लोकों में लोक में प्रचलित अपभ्रंश शब्दों की अपनाई गई संस्कृत शैली को ठुकराकर अपभ्रंश शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा न करने के लिये तथा अपभ्रंश शब्दों और नामों को संस्कृत में स्वीकार न करने के लिये जो कुछ भी कहा है, वह—नागेश की स्वतन्त्रता और हठधर्मिता ही है। नागेश न ईश्वर थे, न ऋषि थे, और पूर्वाचार्यों तथा ऋषियों के सिद्धान्तों पर भी नागेश चलने वालों में नहीं थे, श्री नागेश की लेखनशैली से स्पष्ट प्रतीत होता है कि - वे - व्याकरण-शास्त्र के प्रतिभाशाली और हठीले स्वभाव के विद्वान् थे, नागेश ने जो कुछ भी कहा है, उस पर भली प्रकार से विचार - विमर्श करने के पश्चात् ही अमल करना चाहिए। बहुत से स्थलों पर नागेश ने – आर्ष - सिद्धान्तों और अपने से पूर्ववर्ती आचार्यों का अयुक्त ढंग से खण्डन करके अपने पक्ष का प्रतिपादन हठधर्मी के साथ किया है, इसी लिये - समीक्षात्मक - निष्पक्ष - शोधदृष्टिकोण से मैंने नागेश की हठधर्मी का खण्डन किया है। तत्व के अन्वेषी - विद्वज्जन - नीर - क्षीर - विवेकिनी निष्पक्ष बुद्धि से - नागेश के प्रति लिखे गये - समीक्षात्मक मेरे विचारों को पढ़कर स्वयं ही यथार्थता और वास्तविकता का निर्णय करेंगे।

पाणिनीय व्याकरण और पातञ्जल व्याकरण के सिद्धान्तानुसार - लौकिक-व्यवहार में प्रचलित—"मोटरसाईकिल, स्कूटर, ट्रेक्टर," आदि आधुनिक शब्दों की भी - इक्कवालादि शब्दों की भाँति प्रातिपदिक संज्ञा करके - इन आधुनिक शब्दों को भी लौकिकव्यवहार की संस्कृत में स्वीकार कर लेना चाहिए।

इस प्रसंग में विज्ञविद्वानों और गवेषकों की तुष्टि के लिये - शोधनिबन्ध - विस्तार के भय को ध्यान में रखते हुए - संस्कृतभाषा में संक्षेप में ही बहुत कुछ स्पष्टीकरण किया जा चुका है, विद्वज्जन अवलोकन करने की कृपा करेंगे।

लौकिक - व्यवहार में प्रचलित शब्दार्थबोधक - आधुनिक - नये शब्दों को - व्यावहारिक - संस्कृतभाषा में प्रयोग करने के नियमों को भली प्रकार से न जानकर, जो लोग आधुनिक नये शब्दों को व्यावहारिक - संस्कृतभाषा में स्वीकार करने पर निराधार आपत्तियाँ उठाकर, विरोध करते हैं, वे लोग संस्कृत भाषा के प्रचार और प्रसार के गले को = (कण्ठ को) दबाकर = (गला घोटकर) जीती जागती संस्कृत-भाषा को मृतभाषा सिद्ध करने के लिये कटिबद्ध ही कहे जा सकते हैं।

निष्पक्ष व्यापक दृष्टिकोण से देखा जाय तो संसार में प्रचलित समस्त भाषाओं की जननी एकमात्र संस्कृतभाषा ही सिद्ध होती है, संस्कृतभाषा के गर्भ में (पेट में) विश्व की सभी भाषायें कुछ संस्कार कर लेने पर समाविष्ट होने के योग्य हो जाती हैं।

व्यावहारिक संस्कृतभाषा में सन्धि के नियम

(य) किसी एक पद को उच्चारण करने में अथवा लिखने में सन्धि को करने का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि एक पद में हमेशा सन्धि हुआ ही करती है, क्योंकि सन्धि किये विना एक पद कभी नहीं बनता है। यहाँ पर पद का अभिप्राय "शक्तं पदम्" से है, सारांश यह है कि—जिस शब्द को अलग - अलग उच्चारण करने पर शब्द के अर्थ का बोध न हो उस शब्द की सन्धि करके ही उच्चारण करना या लिखना चाहिए।

(र) जहाँ पर किसी अर्थ का बोध करने के लिये किसी धातु के साथ किसी उप-सर्ग को लगाना हो वहाँ पर धातु और उपसर्ग मिलाकर = (सन्धि करके) ही लिखना या उच्चारण करना चाहिये।

(ल) कई शब्दों का समास करके जहाँ पर किसी शब्द को लिखना या उच्चारण करना हो वहाँ पर भी सभी शब्दों की सन्धि अनिवार्य रूप से कर लेनी चाहिए।

(व) संस्कृत वाक्यों को लिखने में या बोलने में लेखकों और वक्ताओं को स्वतन्त्रता दे दी गई है कि - वे सन्धि को करें या न करें, यह उनकी इच्छा के ऊपर निर्भर है।

पद्यरचना के नियमों पर विचार

छन्दः शास्त्र के नियमों को व्यापक दृष्टिकोण से न समझ कर जो लोग -

विद्वानों द्वारा लिखे गये श्लोकों पर अथवा उनकी कविताओं पर - "ननु - नच" करने का अपना स्वभाव बना लेते हैं, उन को उदार हृदय से इस बात पर विचार करना चाहिये कि—

"पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः।
षष्ठं गुरु विजानीयादेतत्पद्यस्य लक्षणम् ॥"

उपर्युक्त श्लोक छन्दः शास्त्र में पद्यरचना के नियमों को बताने के लिये लिखा गया है, इस श्लोक का सारांश यह है कि—पद्य में (पद्य नाम के श्लोक में) चार चरण होते हैं प्रत्येक चरण में आठ अक्षर होते हैं, पद्य के चारों चरणों में पाँचवां अक्षर "लघु" होना चाहिये, दूसरे और चतुर्थ चरण में सातवाँ अक्षर भी "लघु" होना चाहिये। चारों चरणों में छठा अक्षर "गुरु" होना चाहिये, पद्य का यही लक्षण है।

उपर्युक्त पद्य के सम्बन्ध में मुझे कहना है कि—उपर्युक्त लक्षण को सर्वत्र सैद्धान्तिक रूप से पद्यरचना पर लागू नहीं समझना चाहिए, क्योंकि उक्त लक्षण के विपरीत भी अनेक स्थलों पर महाकवियों द्वारा लिखे गये अनेक "पद्य" काव्यों में और पुराणों में पाये जाते हैं।

महाकवि - कालिदास द्वारा लिखे गये "कुमारसम्भवम्" नाम के काव्यग्रन्थ के द्वितीयसर्ग में क्रमशः—११, १५, २५, २८, ३१, ३५, ३६, ४५, ४८, ५४, ५५, वें पद्यों में तथा छठे सर्ग के ९२ वें श्लोक में—छन्दः, शास्त्रोक्त - पद्य के लक्षण की चरितार्थता उपलब्ध नहीं है। उपर्युक्त संख्याङ्कित पद्यों को इसी द्वितीयाध्याय के अन्त में संस्कृत में लिखा जा चुका है, पद्यों के चारों चरणों में वृहदाकार "बड़े" अक्षरों को देखने से विज्ञजनों को स्पष्ट हो जायगा कि - उपर्युक्त छन्दः शास्त्रोक्त पद्य के लक्षण की चरितार्थता - उक्त संख्याङ्कित पद्यों में नहीं है।

पद्यों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के अनेक छन्दों में भी इसी प्रकार की व्यवस्थायें पाई जाती हैं, जिन्हें देखकर——"निरङ्कुशाः कवयः" कहकर ही सन्तोष करना पड़ता है।

॥ इति द्वितीयाध्यायः ॥

—:×:—

तृतीयाध्यायः

आर्ष वर्षा-वायुविज्ञानस्य तृतीयाध्यायं स्वरचितसरलपद्येषु लिखामि

स्वनिर्मितेषु पद्येषु ज्ञानिनां विदुषां मुदे ।
सरलेषु मयाचात्र प्रश्नाध्यायो विरच्यते ॥१॥
निवन्धस्यास्य तत्वं तु प्रश्नाध्यायेन ज्ञायते ।
अतो निवन्धप्रारम्भे प्रश्नाध्यायो मयोच्यते ॥२॥
सुवर्षा-वायुविज्ञान-विषये भुवि ये कृताः ।
भारतीयै स्तथाऽन्यैश्च प्रश्नास्तु विज्ञविद्वरैः ॥३॥
अध्यायेऽस्मिन् हि तान् प्रश्नान् विलिखामि मनोरमान् ।
मोदिष्यन्ते तु यान् ज्ञात्वा वैज्ञानिकवरा नराः ॥४॥

सुन्दरी टीका—स्वरचित सरलपद्यों में ज्ञानशील विद्वानों की प्रसन्नता के लिये मैं इस निबन्ध में "तृतीय-प्रश्नाध्याय" को लिख रहा हूं। इस सम्पूर्ण निवन्ध का सार प्रश्नाध्याय को पढ़नेमात्र से मालूम हो जायेगा, इसीलिये मैं निवन्ध कें प्रारम्भ में "प्रश्नाध्याय" की रचना कर रहा हूँ ॥२॥

"वर्षा-वायु-विज्ञान" के सम्बन्ध में इस भूमण्डल पर रहने वाले भारतीयों ने तथा अन्य राष्ट्रों के विज्ञ-वैज्ञानिकों ने जो भी प्रश्न किये हैं, इस तृतीय अध्याय में मन को अच्छे लगने वाले उन सभी प्रश्नों को मैं लिख रहा हूँ। इन प्रश्नों को जान करके वैज्ञानिकों में श्रेष्ठ तथा अग्रगण्य सभी व्यक्तियों को अपार हर्ष होगा, इसमें लेशमात्र भी सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है ॥३॥४॥

ऋग्वेदे च यजुर्वेदे निरुक्ते तत्वदर्शिभिः ।
इन्द्र एव पुराणेषु वृष्टिकर्ता प्रकीर्तितः ॥५॥
इन्द्रश्चेद् वृष्टिकर्ता स आकाशे कुत्र तिष्ठति ।
आकाशे कुत आयान्ति जलानि भूमिवृष्ट्ये ॥६॥
कुतश्चेन्द्रो जलानि तु गृह्णाति भूमिवृष्टये ।
इन्द्रस्य सन्निधौ किञ्चिद् यन्त्रं वा कोऽपि मन्त्रकः ॥७॥
स वै येन स्वतन्त्रःसन् बहुस्वल्पजलानि तु ।
स्वेच्छया भूमिगोले हि पातयति कथं गतिः ॥८॥

सुन्दरी टीका—ऋग्वेद, यजुर्वेद, निरुक्त और पुराणों में तत्वदर्शी महर्षियों ने इन्द्र ही वर्षा को करने वाला कहा है ॥५॥

इन्द्र यदि वर्षा को करने वाला है, तो वह इन्द्र आकाश में कहाँ पर रहता है। भूगोल पर बरसने के लिये आकाश में जल कहाँ से आते हैं ॥६॥

भूगोल पर वरसने के लिये इन्द्र कहाँ से जलों को लेता है, इन्द्र के पास वर्षा करने के लिये कोई यन्त्र "मशीनरी" है, अथवा कोई मन्त्र इस प्रकार का है—कि जिसके पढ़ने मात्र से इन्द्र वर्षा करने में सफलता प्राप्त कर लेता है। इन्द्र के पास ऐसा साधन क्या है—जिस साधन के द्वारा इन्द्र स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी इच्छा से अधिक मात्रा में और थोड़ी मात्रा में भूगोल पर वर्षा के जल को गिराता है, न्यूनवर्षा और अधिक वर्षा की संगति क्या है ? ॥७॥८॥

यदीन्द्रो वृष्टिकर्ता चेद् वैपम्यं वर्षणे कथम् ।
अतिवृष्टिरनावृष्टि र्मध्यमावृष्टिभेदतः ॥९॥

सुन्दरी टीका—यदि इन्द्र ही वर्षा को करने वाला है, तो अति-वृष्टि, अनावृष्टि और मध्यमावृष्टि, इन तीनों भेदों से वर्षा में विषमता अर्थात् न्यूनाधिकता होने में क्या कारण है ? ॥९॥

अथवा पक्षपाती स इन्द्रो देवत्वदूपकः ।
इन्द्रत्वं प्राप्य लोकस्य पक्षपातरतो यतः ॥१॥

सुन्दरी टीका—वह इन्द्र कहीं पर अतिवृष्टि और कहीं पर अनावृष्टि और कहीं पर साधारण "माध्यावृष्टि" करके पक्षपात युक्त व्यवहार करके देवत्व को दूषित करता है, क्योंकि देवता कोटि के व्यक्ति को तो समस्त मृत्युलोक की प्रजा के साथ पक्षपात और भेदभाव से रहित होकर सबके साथ एक सा व्यवहार वर्षा के सम्वन्ध में करना चाहिये । किन्तु=मृत्युलोक की भूमि पर एक सी वर्षा न करके संसार के इन्द्रत्व को प्राप्त करके इन्द्र पक्षपातपूर्ण वर्षा करता है, इसलिये इन्द्र देवत्व को दूषित करने की कोटि में गिने जाने के योग्य है ॥१०॥

जलानि पर्वतान्नीत्वा वर्षतीन्द्रः सदा भुवि ।
ऋग्वेदे वृष्टिसम्वन्धे सिद्धान्तः प्रतिपादितः ॥११॥
शाकद्वीपस्थितान्नीत्वा जलानि चन्द्रपर्वतात् ।
वर्षतीन्द्रः सदा भूमौ मत्स्यपुराणगोक्तयः ॥१२॥
शाकद्वीपस्तु कुत्रास्ति कुत्रास्ति चन्द्रपर्वतः ।
प्रश्नयोरनयोर्विद्वन् ! सूत्तरं मे प्रदीयताम् ॥१३॥

सुन्दरी टीका—जलों को पर्वत से लेकर इन्द्र सदा भूगोल पर वरसता है, ऋग्वेद में वर्षा के सम्वन्ध में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है ॥११॥

शाकद्वीप में स्थित चन्द्र नाम के पर्वत से जलों को लेकर भूगोल पर इन्द्र सदा वर्षा किया करता है, इस सिद्धान्त को 'मत्स्यपुराण" में स्पष्ट वताया गया है ॥१२॥

शाकद्वीप कहाँ है, और चन्द्रपर्वत कहाँ है, हे विद्वान् ! इन दोनों प्रश्नों का उत्तर मुझे अच्छी प्रकार से दो ? ॥१२॥

यानि किम्पुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने ।
ने तेषु वर्षते देवो भौमान्यम्भांसि तेषु वै ॥१४॥
इत्युक्तं सर्वशास्त्रेषु पुराणेषु मुनीश्वरैः ।
प्रत्यक्षदर्शिभि विज्ञै र्योगनिष्ठैस्तु विद्वरैः ॥१५॥
किम्पुरुषादिवर्षेषु कथमिन्द्रो न वर्षति ? ।
मेघगर्भोद्‌भवा तत्र वर्षा संजायते न वा ? ॥१६॥
किम्पुरुषादिवर्षेषु येष्विन्द्रो नैव वर्षति ।
क्व सन्ति भूतले, यत्र वर्षति क्वास्ति भारतम्? ॥१७॥

सुन्दरी टीका — जो किम्पुरुषादि आठ वर्ष हैं, हे महामुने उन आठों वर्षों में इन्द्रकृत वर्षा नहीं होती है, क्योंकि किम्पुरुषादि आठवर्षों की भूमियों में स्वाभाविक रूप से पर्याप्तिमात्रा में जल विद्यमान है, अत एव इन्द्र इन आठों वर्षों में स्वकृत वर्षा को करना अनावश्यक समझता है ॥१४॥

सब शास्त्रों और पुराणों में – विद्वानों में श्रेष्ठ योगनिष्ठ - प्रत्यक्ष देखने वाले- ऋषियों ने ऐसा कहा है ॥१५॥

किम्रुषादि आठवर्षों में इन्द्र क्यों नहीं बरसता है ? मेघों के गर्भ से उत्पन्न होनेवाली वर्षा वहाँ पर होती है, अथवा नहीं ? ॥१६॥

जिन किम्पुरुषादिवर्षों में इन्द्रदेवता नहीं बरसता है , वे वर्ष इस पृथ्वी पर कहाँ हैं ? और जिस भारतवर्ष में इन्द्र बरसता है, वह भारतवर्ष जम्बूद्वीप के अन्तर्गत कहाँ पर किस दिशा में है ? ॥१७॥

जम्बूद्वीपस्य खण्डे तु नवमे भारताभिधे ।
इन्द्रो वर्षति नान्यत्र मुनीनामिति निर्णयः ॥१८॥

सुन्दरी टीका — जम्बूद्वीप का नवमाँ खण्ड "नवमा भाग" जिसकी भारतवर्ष संज्ञा है, इसी भारतवर्ष में इन्द्र वर्षा किया करता है, जम्बूद्वीप के शेष आठ भागों में इन्द्रकृतवर्षा नहीं होती है, यह निर्णय प्रत्यक्ष देखनेवाले ऋषियों का है ॥१८॥

दक्षिणोत्तरविस्तारो योजनानां प्रमाणतः ।
दशसहस्रसंख्यातो भारतस्य प्रकीर्तितः ॥१९॥
पूर्वपश्चिमविस्तारो योजनानां प्रमाणतः ।
अशीतियोजनः प्रोक्तो भारतस्य विशारदैः ॥२०॥
लक्षयोजनविस्तीर्णे जम्बूद्वीपे हि भारतम् ।
वर्षं कुत्र स्थितं विद्वन्! शीघ्रं वद यथार्थतः ॥२१॥

सुन्दरी टीका — भारतवर्ष का दशसहस्रयोजन विस्तार अर्थात्– "१०००० योजन = १४५४५४ किलोमीटर और ६०० गज" दक्षिणोत्तरविस्तार सभी ऋषियों ने अपने अपने निबन्धों में कहा है ॥१९॥

भारतवर्ष का पूर्वपश्चिम विस्तार अस्सी - हजार योजन अर्थात्– "८०००० योजन= ११६३६३६ किलोमीटर - ४०० गज" [ग्यारहलाख - त्रेसठ हजार - छःसौ

छत्तीस किलोमीटर और चार सौ गज" विज्ञ ऋषियों ने कहा है ॥२०॥

एक लाख योजन अर्थात् "१००००० योजन = १४५४५४५ किलोमीटर और ५०० गज, चौदहलाख चउअन हजार पाँच सौ पेंतालीस किलोमीटर और पाँच सौ गज" लम्बाई और चौड़ाई में स्थित वृत्ताकार जम्बूद्वीप में भारतवर्ष कहाँ पर स्थित है, हें विद्वन् ! यथार्थ रूप में इस प्रश्न का उत्तर मुझे शीघ्र दो ? ॥२१॥

सप्तद्वीपवती प्रोक्ता मुनीन्द्रैः सा वसुन्धरा ।
सप्तैव सागराः सन्ति भूमौ मुनिप्रचोदिताः ॥२२॥
कुत्र ते सागरद्वीपा वर्तन्ते भूमिमण्डले ।
वृष्टेः क्रमश्च तत्रास्ति कीदृशो वद विस्तरात्? ॥२३॥

सुन्दरी टीका — मुनियों ने वह पृथिवी सातद्वीपों से युक्त कही है, और सात ही महासमुद्र पृथिवी पर हैं, जिन का वर्णन सभी ऋषियों ने किया है ॥२२॥

भूमिमण्डल पर वे सातों द्वीप और सातों महासागर कहाँ पर हैं, और उन द्वीपों में वर्षा का क्रम क्या है, हे विद्वन् ! विस्तार पूर्वक मुझे इस प्रश्न का उत्तर दो ? ॥२३॥

कति लोका हि ब्रह्माण्डे तेपु वृष्टेः क्रमश्च कः ।
व्यवस्थां सकलां विद्वन्! यदि वेत्सि निगद्यताम् ॥२४॥

सुन्दरी टीका— इस ब्रह्माण्ड में कितने लोक हैं, और उन लोकों में वर्षा के होने का क्रम अर्थात् व्यवस्था क्या है, ? हे विद्वन्! ब्रह्माण्ड के लोकों में वर्षा-वायु विज्ञान की क्या व्यवस्था है, यदि तुम जानते हो तो इसका उत्तर स्पष्ट रूप में दो ? ॥२४॥

कथं गड़गड़ाशब्दो रम्यं चेन्द्रधनुः कथम् ।
जायते तत्र चाकाशे सन्ध्यादिरागलक्षणम् ॥२५॥
गगनाद् विद्युतां पातो भूगोले जायते कथम् ।
परितः परिवेषस्तु सूर्याचन्द्रमसोः कथम् ॥२६॥

सुन्दरी टीका— वर्षा के समय आकाश में "गड़गड़" शब्द कैसे और कहां से होता है ? निराधार आकाश में चित्र- विचित्र रंगों से युक्त रमणीय धनुष की आकृति कैसे बन जाती है ?, प्रातः और सांयङ्कालीन सन्ध्या के समय रंग - विरंगे वर्ण का आकाश कैसे दिखाई देने लगता है ? ॥२५॥

निराधार आकाश से भूगोल पर विजली कैसे गिरती है, और आकाश में चमकती हुई विजली का निर्माण कैसे होता हैं ?

सूर्य और चन्द्रमा के चारों ओर - निराधार आकाश में मनोहर- परिवेष अर्थात् मण्डलाकार कैसे वन जाता है ? यदि जानकारी हो तो हे विद्वन्! इन प्रश्नों का समुचित उत्तर वैज्ञानिक ढंग से दो ? ॥२६॥

गर्भधारणशक्तिस्तु नारीजातिपु दृश्यते ।
तासां हि गर्भपातस्तु श्रूयते चावलोक्यते ॥२७॥

मेघानां तु कथं गर्भस्तत्स्रावः शास्त्रवर्णितः ।
कौतूहलकरं प्रश्नं सोत्तरं वद शीघ्रतः ॥२८॥
वर्षया सह सम्बन्धो वायोस्तु कीदृशः स्मृतः ।
वायुनापि विना वृष्टि र्जायते वा न जायते ॥२९॥
वायुना हि विना वृष्टि र्जायते नैव कुत्रचित् ।
ऋषितन्त्रेषु सर्वेषु सिद्धान्तः प्रतिपादितः ॥३०॥
मानसूनैं विना वृष्टि र्जायते नैव कुत्रचित् ।
ऋषितन्त्रे यदुक्तं तन्नव्यैरपि समादृतम् ॥३१॥
मन्यन्ते मानसूनं यं नव्यास्तु वायुरेव सः ।
उभयो र्मतयो र्वायुरेवास्ति वृष्टिकारकः ॥३२॥

सुन्दरी टीका — गर्भ को धारण करने की शक्ति केवल स्त्रीजाति में ही देखी जाती है । स्त्रियों के ही गर्भपात होना सुना और देखा जाता है ॥२७॥

किन्तु- मेघों और वर्षा का भी गर्भधारण तथा गर्भपात होना शास्त्रों में कहा गया है, कौतूहल को उत्पन्न करने वाले इस प्रश्न का उत्तर शीघ्र दो ! ॥२८॥

वर्षा के साथ वायु का सम्बन्ध किस ढंग से है, वायु के बिना भी वर्षा होती है, अथवा नहीं होती है ? ॥२९॥

वायु के विना वर्षा कहीं पर भी नहीं हुआ करती है । ऋषिनिर्मित सभी निबन्धों में वायु के माध्यम से ही वर्षा होने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है ॥३०॥

मानसूनों के विना वर्षा कहीं नहीं होती है, यह कहकर नवीन वैज्ञानिकों ने भी आर्ष निबन्धों में लिखी हुई बात का अनुमोदन ही किया है ॥३१॥

नवीन वैज्ञानिक अपने शब्दों में जिसे "मानसून" कहते हैं, वह "मानसून" "वायु" का पर्याय वाचक है । प्राचीन और नवीन दोनों मतों के अनुसार वायु ही वर्षा को करने में मुख्यरूप से कारण है ॥३२॥

भूगोलज्ञा नवीना ये तेऽपि प्राचीनसम्मताः ।
मानसूनैं विना वृष्टिं न स्वीकुर्वन्ति कुत्रचित् ॥३३॥
मानसूनोऽथवा वायुः कया रीत्या हि भूतले ।
वृष्टिं करोति हे विद्वन् ! जानासि चेद् द्रुतं वद ॥३४॥

सुन्दरी टीका — भूगोल को जानने वाले जो नवीन वैज्ञानिक हैं, वे अन्ततोगत्वा प्राचीनतम आर्ष सिद्धान्तों से वर्षा के सम्बन्ध में एक मत हो गये हैं, क्यों कि-- "पित्तं पंगु कपः पंगुः-पङ्गवो मलधातवः । वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्" अर्थात् प्राणिमात्र के पाञ्चभौतिक शरीर में "पित्त, कफ और मूत्र, पुरीष आदि मल धातुएे पङ्गु अर्थात् स्वयं नहीं चलने वाले, स्वयं चलने में असमर्थ होते हैं ।

शरीरस्थ वायु - पित्त - कफ और मलधतुओं को जिस ओर जितनी गतिविधि

से- ले जाता है, उसी गतिविधि से इन सब को शरीर के भीतर और बाहर चलने को बाध्य होना पड़ता है, वर्षा करने वाले मेघों "बादलों" को भी वायु जिस दिशा में, जहाँ पर ले जाता है, वहीं पर बादल "मेघ" बरसने को विवश हो जाते हैं।

उपर्युक्त परिस्थितियों में-प्राचीन और नवीन दोनों ही पक्ष वर्षा के लिये वायु के अस्तित्व की प्रधानता को स्वीकार करते हैं ॥३३॥

मानसून अथवा वायु किस प्रकार से भूगोल पर मेघ के द्वारा वर्षा को करता है, हे विद्वन्! इस प्रश्न का उत्तर यदि जानते हो तो मुझे शीघ्र ही उत्तर दो! ॥३४॥

प्रकृत्या लक्षणै र्बोधः कथं वृष्टेस्तु जायते।
कथं वा वृष्टिहानेर्हि बोधोऽपि क्रियते ततः ॥३५॥
वृष्ट्या सह कथं जीवा गेसा मत्स्यादिमेंढकाः।
यत्र तत्र प्रवर्षन्ति कदाचिद् भूमिमण्डले ॥३६॥
जीवानां हि समुत्पत्तिश्चाकाशे भूमिवृष्टये।
निराधारे कथं कदा भवतीति निगद्यताम् ॥३७॥
कथं क्रिमिप्रदा वृष्टि र्यया चान्नं विनश्यति।
क्रिमिघ्नं चान्नरक्षार्थमुपायं वद विस्तरात् ॥३८॥

सुन्दरी टीका— प्रकृति के प्राकृतिक लक्षणों से वर्षा के होने का ज्ञान किस प्रकार से होता है? तथा प्राकृतिक लक्षणों से वर्षा की हानि- अथवा वर्षा न होने का ज्ञान कैसे होता है? ॥३५॥

वर्षा के साथ गेसा अर्थात् सर्प की आकृति के संसार में प्रसिद्ध केंचुआ, तथा मछलियां और मेंढक जहाँ तहाँ भूगोल पर कभी कभी कैसे बरसते हैं? ॥३६॥

निराधार आकाश में भूगोल पर बरसने के लिये गेसा, मछली, मेंढक, प्रभृति जीवों की उत्पत्ति कब और कैसे होती है, इस प्रश्न का शीघ्र उत्तर दो? ॥३७॥

अनेक प्रकार के कीड़ों मकोड़ों को उत्पन्न कर देने वाली वर्षा कैसे हुआ करती है, जिससे कि अनेक प्रकार के अन्न नष्ट होने लगते हैं, वर्षा से उत्पन्न क्रिमियों को नाश करने के लिये तथा अन्न की रक्षा के लिये विस्तार पूर्वक उपाय कहो?॥३८॥

सूर्यश्चन्द्रस्तथा भौमो बुधो वृहस्पतिस्तथा।
शुक्रः शनैश्चरः सन्ति राहुः केतु र्नवग्रहाः ॥३९॥
एषां नवग्रहाणां कः सम्बन्धो वर्षया सह।
कथं चन्द्रेण संयोगाद् वर्षावर्षौददा ग्रहाः ॥४०॥

सुन्दरी टीका— सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नौ ग्रह आकाश मण्डल में हैं ॥३९॥

इन नव ग्रहों का वर्षा के साथ क्या सम्बन्ध है, किस प्रकार चन्द्रमा के संयोग से ग्रह वर्षा और अवर्षा "सूखा" को दिया करते हैं ॥४०॥

खे स्थितानां ग्रहाणां तु व्यासमानं पृथक् पृथक् ।
तेषां मण्डलमानं त्वं यदि जानासि मे वद ।।४१।।

सुन्दरी टीका—आकाश में स्थित ग्रहों के व्यास का मान पृथक् पृथक् कहो, और उन ग्रहों के मण्डलों के मानों को भी यदि जानते हो तो मुझे शीघ्र बताओ ? ।।४१।।

पाणिनिना स्वशिक्षायां तात्विकं यत्प्रचोदितम् ।
वायुसम्वन्धिविज्ञानं शीघ्रं तद् वद विस्तरात् ।।४२।।
श्री पतञ्जलिनो प्रोक्तं महाभाष्येऽपि तात्विकम् ।
वायुसम्वन्धिविज्ञानं तच्छीघ्रं वद कोविद? ।।४३।।
चरके सुश्रुते प्रोक्तं चरकसुश्रुतादिभिः ।
वायुसम्वन्धिविज्ञानं तात्विकं मे निगद्यताम् ।।४४।।

सुन्दरी टीका — पाणिनि मुनि ने "शिक्षा" नाम के अपने मार्मिक ग्रन्थ में जो तात्विक - वायु - सम्वन्धि-विज्ञान कहा है, उसे विस्तार पूर्वक कहो? ।।४२।।

श्री पतञ्जलि मुनि ने भी अपने पातञ्जलमहाभाष्य नाम के ग्रन्थ में वायु-सम्वन्धि - विज्ञान के विषय में जिस तात्विकज्ञान को कहा है, हे विद्वन् ! उस ज्ञान को शीघ्र बताओ ? ।।४३।।

चरक और सुश्रुत नाम के ग्रन्थों में चरक और सुश्रुत प्रभृति ऋषियों ने जो तात्विक वायुसम्वन्धि विज्ञान कहा है, उसे भी मेरे लिये शीघ्र ही बताओ ? ।।४४।।

भवन्ति मनवः कल्पे चतुर्दशमिताः सदा ।
सन्धयश्चापि विज्ञैस्तैः कल्पे प्रोक्ताश्चतुर्दश ।।४५।।
यः पञ्चदशमः सन्धिः कल्पारम्भे प्रकीर्तितः ।
कृतयुगाब्दतुल्यः स तादृशास्ते चतुर्दश ।।४६।।

सुन्दरी टीका — एक कल्प में सदा चोदह "१४" मनु- होते हैं, उन विज्ञ ऋषियों ने कल्प में चौदह "१४" सन्धियाँ भी कही हैं ।।४५।।

जो पन्द्रहवीं "१५वीं" सन्धि कल्प के आरम्भ में कही हैं वह कृतयुग के वर्ष "१७२८००० = सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्ष" की होती है, इतने ही वर्षों की वे चौदह सन्धियाँ पृथक् - पृथक् होती हैं ।।४६।।

कल्पं ब्राह्मं दिनं प्राहु दिनतुल्या निशा तथा ।
अहोरात्रे तु द्वौ कल्पौ भवतो ब्रह्मणः सदा ।।४७।।
सृष्टिसत्ता दिने ज्ञेया लयो रात्रौ प्रकीर्तितः ।
सन्धौ जलप्लवो भूमेः कृतयुगाब्दसमः सदा ।।४८।।
ब्राह्मे दिने तु कल्पाख्ये स्वायम्भुवमनोः क्रमात् ।
मनवो ये प्रजायन्ते तेषां नामानि मे वद ।।४९।।
स्वायम्भुवात् समारम्य मनवो ये चतुर्दश ।

तेषु विश्वभुगाद्यास्तु भवन्तीन्द्राश्चतुर्दश ।।५०।।
इन्द्रा विश्वभुगाद्या ये कल्पे वृष्टिप्रदायकाः ।
तेषां विश्वभुगादीनां नामानि वद कोविद ? ।।५१।।

सुन्दरी टीका — महर्षियों तथा अन्य सभी पूर्वाचार्यों ने ब्रह्मा का एक दिन एक कल्प के बराबर कहा है, उसी प्रकार दिन के बराबर ब्रह्मा की रात्रि भी होती है, हमेशा ब्रह्मा के एक दिन रात में दो कल्प होते हैं ।।४७।।

ब्रह्मा के दिन में सृष्टि का अस्तित्व रहता है, और ब्रह्मा की रात्रि में सृष्टि का प्रलय कहा गया है, मनु की सन्धि में कृतयुग के वर्षों के तुल्य समय तक अर्थात् सत्रहलाख अठाईस हजार वर्षों तक भूगोल जल में विमग्न अर्थात् डूबा हुआ रहता है ।।४८।।

कल्पसंज्ञक ब्राह्मदिन में स्वायम्भुवमनु के क्रम से नियत अपने अपने शासन काल में प्रजा का शासन करने के लिये जिन चौदह "१४" मनुओं का क्रमशः प्रादुर्भाव होता है, उन चौदह मनुओं के नामों को मुझे बताओ ? ।।४९।।

स्वायम्भुव मनु से लेकर जो चौदह मनु एक कल्प में क्रमशः शासन करते हैं, उन के शासन काल में प्रत्येक मनु के साथ क्रमशः विश्वभुक् आदि चौदह "१४" इन्द्रों का भी प्रादुर्भाव होता है ।।५०।।

वर्षा को करने वाले - एक कल्प में विश्वभुक् प्रभृति जिन चौदह "१४" इन्द्रों का क्रमशः प्रादुर्भाव होता है, उन इन्द्रों के नामों को क्रमशः हे पण्डित! बताओ ।।५१।।

कति वर्षाणि कल्पे तु भवन्ति सौरमानतः ।
भवन्ति कति वर्षाणि ब्रह्मणश्चायुषो वद ।।५२।।
ब्रह्मणो वर्षमानं यच्चायुषः कीर्तितं बुधैः ।
दिनान्ते चायुषोऽन्ते स्तो वर्षावायू तु कीदृशौ ।।५३।।
दिनान्ते चायुषोऽन्ते च ब्रह्मणो वृष्टिवायुकौ ।
यादृशौ भवतो विद्वन् तादृशौ वद शास्त्रतः ।।५४।।

सुन्दरी टीका—सौरमान से एक कल्प में कितने वर्ष होते हैं ? ब्रह्मा की आयु के कितने सौरवर्ष होते हैं ? ।।५२।।

विद्वानों ने और अतीन्द्रिय महर्षियों ने ब्रह्मा की आयु का मान जितने वर्ष कहा है, उस आयु के अन्त में और ब्रह्मा के दिन के अन्त में—वर्षा और वायु किस रूप में और किस प्रकार से होते हैं ? ।।५३।।

ब्रह्मा के दिन के अन्त में और आयु के अन्त में वर्षा और वायु जिस प्रकार के होते हैं, प्रलयकालीन वर्षा और वायु के स्वरूप को शास्त्रों के अनुसार कहो ? ।।५४।।

हेमकूट - हिमालय - पुण्ड्र-पर्वतेभ्योऽपि वर्षावायुव्यवस्था - भवतिः—

सुन्दरी टीका—हेमकूट, हिमालय और पुण्ड्र - पर्वतों से भी वर्षा और वायु - विज्ञान को जानने की व्यवस्था होती है,——

दक्षिणेन गिरि र्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः ।
उदग्धिभवतः शैलस्योत्तरे चैव दक्षिणे ॥५५॥
पुण्ड्र - नाम - समाख्यातः सम्यग्वृष्टिविवृद्धये ।
तस्मिन् प्रवर्तते वर्षा सा तुषारसमुद्भवा ॥५६॥

सुन्दरी टीका—भारतवर्ष से उत्तरभाग में स्थित सुमेरुपर्वत और निषदपर्वत से दक्षिण दिशा में स्थित तथा हिमालय पर्वत से उत्तर दिशा में स्थित "हेमकूट" नाम का पर्वत है । हिमालय पर्वत से दक्षिणीय-भूभाग में स्थित "पुण्ड्र" नामका पर्वत अच्छी वर्षा के लिये और अनेक प्रकार की समृद्धि करने के लिये प्रसिद्ध है । पुण्ड्र नाम के पर्वत पर तुषार 'वर्फ" से उत्पन्न हुई वर्षा होती है ॥५५॥५३॥

ततो हिमवतो वायु र्हिमं तत्र समुद्भवम् ।
आनयत्यात्मवेगनं सिञ्चमानो महागिरिम् ॥५७॥
हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम् ।
इभास्ये च ततः पश्चादिदं भूतविवृद्धये ॥१८॥
वर्षद्वयं समाख्यातं सम्यग्वृष्टि-विवृद्धये ।
मेघाश्चाप्यायनं चैव सर्वमेतत् प्रकीर्तितम् ॥५९॥
मत्स्यपुराणनामक - पुराणोक्तमिदं खलु ।
अन्यत्रापि पुराणादौ व्यवस्थेयमुदीरिता ॥६०॥
हेमकूट-हिमालय-पुण्ड्र-नामकपर्वताः ।
भूगोले कुत्र तिष्ठन्ति शीघ्रं मे वद ? कोविद ! ॥६१॥

सुन्दरी टीका—उस हिमालय पर्वत की तीव्र वायु अर्थात् प्रचण्ड वेग वाला वायु हिमालय पर जमे हुए बर्फ के टुकड़ों को अपने तीव्र वेग के साथ लिये अर्थात् उड़ाये चला जाता है, वायु द्वारा उड़ाये हुए वर्फ के पिघलने से उत्पन्न हुए जल से हिमालय पर्वत को भी सींचता हुआ वायु हिमालय पर्वत को लाँघ कर बर्फ के टुकड़ों के पिघलने से होने वाली शेष वर्षा के जल को "इभास्ये" अर्थात् हाथी के मुंह पर लटकी हुई सूण्ड के और दोनों दाँतों के समान जिस पुण्ड्र नाम के पर्वत की चोटी की वनावट को विधाता ने बना दिया है, उस पुण्ड्र पर्वत पर वह वायु हिमालय पर्वत से लाये हुये वर्फ की वर्षा को करता है, इसके बाद भारतवर्ष में भी तुषारोद्भव "वर्फ से वनी हुई" वर्षा को करता है । वायु द्वारा सम्पन्न किया गया यह सब कुछ कार्य सव अन्नों और सब प्राणियों की समृद्धि के लिये होता है ॥५७॥५८॥

हिमालय और हेमकूट पर्वतों के बीच में स्थित भूभाग को "किम्पुरुषवर्ष" कहा जाता है, किम्पुरुषवर्ष से उत्पन्न हुए तीव्रवायु के वेग द्वारा हिमालय पर्वत की वायु का वेग "बीचीतरङ्गन्याय" से अर्थात् जिस प्रकार तालाव में उठी हुई लहरें एक दूसरी लहरों को आगे की ओर ढकेलती हुई—तालाव के किनारे तक पहुंच जाती हैं, ठीक उसी प्रकार से किम्पुरुष वर्ष में—उत्पन्न हुए तीव्र वायु के वेग की तरङ्गें हिमालय पर्वत पर उत्पन्न हुई वायु की तरङ्गों को धकेल कर, भारतवर्ष

तक पहुंच कर साथ में उड़ाये हुए वर्फ के टुकड़ों से उत्पन्न वर्षा को करती हैं, चूंकि किम्पुरुषवर्ष और भारतवर्ष इन दोनों वर्षों का वायु-भारतवर्ष में वर्षा का हेतु सिद्ध होता है, अतएव ये दोनों ही वर्ष भारत की अच्छी समृद्धि करने के कारण "हेतु" कहे गये हैं, "मेघाश्च- आप्यायनम्" अर्थात् मेघों "वादलों" के द्वारा भारतवर्ष में होने वाली वर्षा से ही भारतवर्ष की अच्छी खासी तृप्ति - हो पाती है। यह सब कुछ उपर्युक्त प्रकार से वताया जा चुका है ॥५९॥

"मत्स्यपुराण" नाम के पुराण में निश्चयात्मक भाव से उपर्युक्त का वर्णन किया गया है, अन्य पुराणों में तथा ग्रन्थान्तरों में भी इस प्रकार के विवेचन उपलब्ध हैं ॥६०॥

"हेमकूट, हिमालय और पुण्ड्र" नाम के ये तीनों पर्वत भूगोल पर कहाँ विद्यमान हैं, हे विद्वन् ! इस प्रश्न का उत्तर मुझे शीघ्र दो ? ॥६१॥

"नेत्र-नवाष्ट-चन्द्र=१८९२ प्रमिते-ईसवीयाब्दे - अगस्तमासे - उत्तरप्रदेशा-न्तर्गत-लखनऊ-नगरस्थात् - "मुन्शीनवलकिशोर - सी० आई० ई० छापाखाना" नामकप्रेसतः प्रकाशिते-मत्स्यपुराणे - वेद - नेत्रचन्द्र=१२४ प्रमिते-अध्याये-उपर्युक्तं सर्वं-उपलभ्यत्ते-अद्यापि।"

सुन्दरी टीका—१८९२ ईसवीयवर्ष में - अगस्त - मास में - उत्तरप्रदेश के अन्तर्गत - लखनऊ नगर में स्थित "मुन्शी नवलकिशोर - सी० आई० ई० छापा-खाना" नाम के प्रेस से प्रकाशित - मत्स्यपुराण में १२४ वें अध्याय में उपर्युक्त सब कुछ विषय आज भी उपलब्ध है, जिसे प्रत्येक साधन सम्पन्न जिज्ञासु व्यक्ति प्रत्यक्ष देख सकता है।

भूगोलतः-चन्द्रस्य-दूरीमान-ज्ञान-विषये प्रश्नः।

सुन्दरी टीका—भूगोल से कितने किलोमीटर ऊंचाई पर आकाश में चन्द्रमा है, इस ज्ञान के विषय में प्रश्न करने की पृष्ठभूमि को स्थापित किया जा रहा है—

शुक्लादौ मार्गशीर्षस्य पूर्वाषाढाव्यवस्थिते।
निशाकरे तु गर्भाणां तत्रादौ लक्षणं वदेत् ॥६२॥
सितादौ मार्गशीर्षस्य प्रतिपद्दिवसे तथा।
पूर्वाषाढागते चन्द्रे गर्भाणां धारणं भवेत् ॥६३॥
शुक्लपक्षमतिक्रम्य कार्तिकस्य विचारयेत्।
गर्भाणां सम्भवं सम्यक् सस्यसम्पत्तिकारणम् ॥६४॥

सुन्दरी टीका—मार्गशीर्ष मास के शुक्लपक्ष के आदि में जिस तिथि में पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र पर चन्द्रमा की स्थिति हो, उसी तिथि से वर्षागर्भधारण के लक्षणों को जानकर वर्षा के विषय में अच्छाईयों और बुराईयों को कहना चाहिए ॥६२॥

मार्गशीर्षशुक्लपक्ष की प्रतिपदा में अथवा अन्य जिस किसी तिथि में पूर्वाषाढ़ा

नक्षत्र पर चन्द्रमा की स्थिति हो, उसी दिन और तिथि से वर्षागर्भधारण की व्यवस्था को जानने का प्रयास करना चाहिये ।।६३।।

कार्तिक शुक्लपक्ष के बीतने पर जिस तिथि में - पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र पर चन्द्रमा की स्थिति हो, उसी दिन और तिथि से अन्न और चारे की उत्पत्ति को करने के प्रधानाङ्गभूत वर्षा के गर्भधारण होने के लक्षणों का परीक्षण विशेष सावधानी के साथ करना चाहिये ।।६४।।

इत्युक्तं सर्वशास्त्रेषु मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ।
चन्द्रेण वृष्टिगर्भाणां धारणं सर्वसम्मतम् ।।६५।।
विज्ञानपारगैं विज्ञैं मुनीन्द्रैं श्चन्द्रमा ग्रहः ।
वृष्टिगर्भप्रदस्तूक्तो नोक्तस्तैः पर्वतो ग्रहः ।।६६।।
इत्थं मुन्युक्तशास्त्रेषु पुराणसंहितासु च ।
चन्द्रो ग्रहस्तु सर्वत्र स्वीकृतो वृष्टिगर्भदः ।।६७।।

सुन्दरी टीका—तत्वदर्शी मुनियों ने सभी शास्त्रों में चन्द्रमा ग्रह के द्वारा वर्षा के गर्भधारण की व्यवस्था को सर्वसम्मति से कहा है ।।६५।।

विज्ञान में पारङ्गत प्रत्यक्षदर्शी मुनियों ने चन्द्रमा ग्रह को ही वर्षा के गर्भों को देने वाला कहा है, आजकल-अमरीका आदि देशों के अन्तरिक्ष यात्री वैज्ञानिक ने मिट्टी और पत्थरों आदि धातुओं से परिपूर्ण पाषाणमय - पर्वताकार को ही "चन्द्रमा" माना है, ऋषियों ने पत्थर की चट्टानों और ईंटरों से युक्त पर्वत को चन्द्रमा नहीं माना है, अपितु प्रत्यक्षदर्शी मुनियों के मतानुसार चन्द्रमा ग्रह की स्थिति आज के वैज्ञानिकों द्वारा बताये गये चन्द्रमा की स्थिति से बिलकुल ही भिन्न है ।।६६।।

उपर्युक्त प्रकार से मुनियों द्वारा कहे गये शास्त्रों में और पुराणों में तथा संहिता ग्रन्थों में सब जगह चन्द्रमा ग्रह को ही वर्षा के गर्भों को देने वाला स्वीकार किया है ।।६७।।

ददाति वृष्टिगर्भान् यः स चन्द्रः कुत्र संस्थितः ।
स्वभावतः समुत्पत्तिः प्रश्नस्यास्य प्रजायते ।।६८।।
आकाशस्थितचन्द्रस्य योजनाद्यं कियन्मितम् ।
भूगोलतः समाचक्ष्व दूरमानं विचक्षण ! ।।६९।।

सुन्दरी टीका—वर्षा के गर्भों को जो देता है, वह चन्द्रमा कहाँ पर स्थित है ? स्वभाविक रूप से इस प्रश्न की प्रत्येक विचारशील व्यक्ति के मन में उत्पत्ति होती है ।।६८।।

भूगोल से आकाश में स्थित चन्द्रमा के योजन आदि की 'अथवा किलोमीटर आदि की दूरी का मान कितना है, हे विद्वन् ! भूगोल से चन्द्रमा की दूरी के मान को शीघ्र बताओ ।।६९।।

चन्द्रस्थितिविषये आधुनिकवैज्ञानिकानां मतमत्र विलिखामि—

सुन्दरी टीका—चन्द्रमा की स्थिति के विषय में - आधुनिक-वैज्ञानिकों के मत को यहाँ पर मैं लिख रहा हूँ—

अमरीकादिदेशस्थाः डाक्टराः शोधकारकाः ।
भूगोलतश्चतुर्लक्ष-किलोमीटरदूरगम् ॥७०॥
चन्द्रं वदन्ति, ते सर्वे तादृशीमेव घोषणाम् ।
कुर्वन्ति वेधशालास्थाः टेलीवीजनयन्त्रतः ॥७१॥

सुन्दरी टीका—अमरीका-रूस- इङ्गलैण्ड-प्रभृति देशों में शोध "रिसर्च" करने वाले डाक्टर भूगोल से चार लाख "४०००००" किलोमीटर की दूरी पर अर्थात् ऊँचाई पर आकाश में स्थित चन्द्रमा को बताते हैं, वे शोध करने वाले सभी विदेशी डाक्टर वेधशालाओं में स्थित होकर, टेलीवीजन यन्त्र के द्वारा उसी प्रकार की घोषणा को भी करते हैं ॥७१॥

अमरीकादिदेशेषु वेधशालास्थडाक्टराः ।
चन्द्रादिग्रहलोकं ते गताः किं ? सत्यवादिनः ॥७२॥
"अपोलो" संज्ञकैर्यानैः "लूनाखोदा" दिभिस्तथा ।
"चन्द्रवग्घीति" विख्यातैः कुत्र यात्रा कृता तु तैः ॥७३॥
टेलीवीजनयन्त्राणि कैमरादीनि यत्नतः ।
यत्र नीतानि तत्रत्यैः स चन्द्रो वृष्टिदस्तु किम् ?॥७४॥
पाषाणकैटरैर्युक्तो जलाद्येन विवर्जितः ।
ज्वालामुखीसमायुक्तः पर्वताकृतिसंयुतः ॥७५॥
पर्वत एव तैरुक्तो ग्रहश्चन्द्रस्तु डाक्टरैः ।
पदयात्रा कृता तत्र चामरीका भवैर्जनैः ॥७६॥

सुन्दरी टीका—अमरीका प्रभृति देशों में भूगोल-खगोलीय-वेधशालाओं में रहने वाले शोधकर्ता डाक्टर-चन्द्रमाप्रभृति ग्रहों के लोकों में जाने की जो घोषणायें करते हैं, उनकी ये घोषणायें सत्य हैं क्या ? ॥७२॥

अपोलो, लूनाखोद, चन्द्रवग्घी, आदि नामक के वायुयानों के माध्यम से अमरीका आदि देशों के वैज्ञानिकों ने किस स्थान विशेष पर पैदल यात्रा की है ? ॥७३॥

टेलीवीजन और कैमरा आदि यन्त्रों को लेकर अमरीकाप्रभृति देशों के अन्तरिक्षयात्री वैज्ञानिक बड़े ही प्रयत्न से जिस स्थान पर पहुँचे हैं, मिट्टी, पत्थर और अन्य धातुओं से युक्त पर्वताकार-वह स्थान विशेष वर्षा के गर्मी को देने वाला चन्द्रमा ग्रह है क्या ?॥७४॥

पत्थर और कँटरों से युक्त-जल आदि तरल पदार्थों से रहित, ज्वालामुखी से युक्त, पर्वत जैसे आकार वाले-पर्वत को ही उन डाक्टरों ने "चन्द्रग्रह" कहा है, और अमरीका के उन वैज्ञानिकों ने पर्वताकार चन्द्रमा पर पैदल यात्रा करने की भी घोषणा की है ॥७५॥७६॥

लूनाखोदादियन्त्राणि चन्द्रवग्घीतिनाम तः ।
झण्डाश्चैवामरीकाया स्तत्रत्यैस्तत्र रोपिताः ॥७७॥
चित्राणि चन्द्रलोकस्य प्रेषितानीह भूतले ।
पाषाणमृत्तिकादीनि तैरानीतानि भूतले ॥७८॥
नमूनाप्रदवस्तूनि परीक्षार्थं तु चन्द्रतः ।
समानीतानि विज्ञै स्तैरमरीकास्थडाक्टरैः ॥७९॥
अमरीकाकृतस्यास्य कर्मणश्चानुमोदनम् ।
रूस-ब्रिटेन-संजातै श्चान्यै वैज्ञानिकैः कृतम् ॥८०॥
एतत् सर्वमसत्यं वा सत्यं तैश्चन्द्रवर्णनम् ।
कृतं, निश्चत्य हे विद्वन् ! वैज्ञानिकदृशा वद ? ॥८१॥

सुन्दरी टीका—लूनाखोद प्रभृति यन्त्रों को, चन्द्रवग्घी नाम से प्रसिद्ध यन्त्र को तथा अमरीका के झण्डों को अमरीका के आन्तरिक्षयात्री वैज्ञानिकों ने चन्द्रमा पर छोड़ने और लगाने को घोषणायें की हैं ॥७७॥

चन्द्रलोक के अनेक चित्र लेकर अमरीका आदि की वेधशालाओं के भूमण्डल पर अमरीका आदि के चन्द्रलोक यात्रियों ने भेजे हैं। पत्थर, मिट्टी, आदि अनेक वस्तुओं को उन चन्द्रयात्रियों ने भूगोल पर भेजा है ॥७८॥

चन्द्रमा के नमूना को देने वाली अनेक वस्तुओं को परीक्षा करने के उद्देश्य से वे अमरीका के विज्ञ डाक्टर भूगोल पर लेकर लौटे हैं ॥७९॥

अमरीका के वैज्ञानिकों द्वारा किये गये चन्द्रलोक के अनुसन्धान का अनुमोदन रूस-ब्रिटेन आदि देशों में उत्पन्न हुए वैज्ञानिकों ने भी किया है ॥८०॥

उन वैज्ञानिकों द्वारा किया गया चन्द्रलोक का वर्णन असत्य है, अथवा सत्य है, हे विद्वन् ! वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसे ठीक निश्चय करके सही उत्तर दो ॥८१॥

वस्तुतश्चन्द्रलोके ते प्रयान्ति पर्वते ऽथवा ।
निष्पक्षया धिया विद्वन् ! यदि वेत्सि निगद्यताम् ? ॥८२॥
पाषाण-मृत्तिका-धूलि-संयुतो गगने स्थितः
नवीनानां मते-चन्द्रो विद्यते तैरुदीरितः ॥८३॥

सुन्दरी टीका—वास्तव में अमरीका प्रभृतिराष्ट्रों के आधुनिक ये अन्तरिक्ष यात्री चन्द्रलोक पर जाते हैं, अथवा पर्वत पर पहुँचते हैं, हे विद्वन् ! यदि जानते हो तो निष्पक्ष बुद्धि से उत्तर दो ? ॥८२॥

नवीन वैज्ञानिकों के मत में - पत्थर, मिट्टी, और धूल, से युक्त चन्द्रमा आकाश में स्थित है, इस प्रकार का कहना इन नवीन वैज्ञानिकों का है ॥८३॥

अमरीकादिजातानां डाक्टराणां मतेन तु ।
पर्वते नास्ति पीयूषं न ग्रहत्वं न मानसम् ॥८४॥
वेदादिसर्वशास्त्रेषु वेदाङ्गेषु तथैव च ।
अस्तित्वं यादृशं प्रोक्तं प्रत्यक्षं नास्ति तादृशम् ॥८५॥
प्रत्यक्षं वदतां तेषां वचनै र्वेदखण्डनम् ।
जातं नास्त्यत्र संदेहो मुनीनां चापि खण्डनम् ॥८६॥

अमरीका,-रूस आदि देशों में उत्पन्न हुए - डाक्टरों के मत से, जिसे वे चन्द्रमा मानते हैं, उस पर्वत पर न अमृत है, न जल है, न ग्रह है, और न वहाँ पर हृदय के अस्तित्व का कोई लक्षण ही उपलब्ध होता है ॥८४॥

वेदादि शास्त्रों में और वेद के अङ्गों में साहित्य, ज्यौतिष-आदि शास्त्रों में चन्द्रमा के अस्तित्व का वर्णन जिस प्रकार से किया गया है, उस प्रकार के अस्तित्व को चन्द्रलोक की यात्रा करने वाले आधुनिक वैज्ञानिकों ने प्रत्यक्ष में नहीं पाया है, अतः चन्द्रमा के सम्बन्ध में संस्कृतवाङ्मय के वेदादिशास्त्रों में किया गया, चन्द्रमा का वर्णन प्रत्यक्ष के विरुद्ध सिद्ध होता है ॥८५॥

चन्द्रलोक में अपने आप को पहुँचा हुआ मानकर, अमरीका आदि देशों के वैज्ञानिकों ने प्रत्यक्ष देखकर, चन्द्रलोक के अस्तित्व का अपने वचनों (वाक्यों) द्वारा जैसा वर्णन किया है, उस वर्णन से - चन्द्रमा के सम्बन्ध में वेदादिशास्त्रों में तथा मुनि-प्रणीत आर्ष ग्रन्थों में जो कुछ कहा है, या जिस प्रकार का वर्णन किया है, उस सबका खण्डन हो गया है । इसमें कोई सन्देह करने की गुञ्जाइश नहीं ॥८६॥

चन्द्रग्रहस्य विषये मुनिमतमत्र-उपस्थापयामि—

सुन्दरी टीका—चन्द्रमा ग्रह के विषय में वेद के और मुनियों के मत को यहाँ पर मैं प्रस्तुत करता हूँ ।

वसिष्ठाद्यैश्च गर्गाद्यै र्नारदाद्यै र्मुनीश्वरैः ।
फलं शुभाशुभं प्रोक्तं चन्द्रस्य राष्ट्रहेतवे ॥८७॥
चन्द्रमा मनसो जातो वेदादीनां विनिर्णयः ।
अतश्चन्द्रे ग्रहे पुष्टे-मनः पुष्टिरूदीरिता ॥८८॥

सुन्दरी टीका—वसिष्ठादि और गर्गादि तथा नारदादि महर्षियों ने राष्ट्र के हित की कामना से चन्द्रमा के द्वारा राष्ट्र में होने वाले शुभ और अशुभ फल को मालूम करने के प्रकारों को कहा ॥८७॥

सृष्टि के आरम्भ में भगवान् विराट्पुरुष ईश्वर के मन अर्थात् हृदय स्थान से चन्द्रमा ग्रह की उत्पत्ति को वेद आदि संस्कृतवाङ्मय के सभी ग्रन्थों में कहा गया

है। चन्द्रमा ग्रह की उत्पत्ति का स्थान मन है, अतएव—आकाश में - चन्द्रमा के बलवान् और पुष्ट होने पर-भूगोल पर स्थित प्राणितमात्र के मनोवल की पुष्टि होने को कहा है, तथा चन्द्रमा के हीन या क्षीण बल होने पर मनोवल के ह्रास होने का सिद्धान्त कहा है ॥८८॥

गोचरे जन्मकाले वा प्रश्ने चन्द्रसमीक्षणम्।
समुक्तं मुनिभिः सर्वैः शुभाशुम - फलप्रदम् ॥८९॥
वालारिष्टप्रदे चन्द्रे वालारिष्टनिवृत्तये।
चन्द्रशान्तिः समाख्याता वालारिष्टविनाशदा ॥९०॥
पौर्णमास्यां हि कुर्वन्ति स्त्रियश्चन्द्रस्य पूजनम्।
सौभाग्यवर्धनायैव पूर्णचन्द्रस्य दर्शनम् ॥९१॥
श्वासरोगहरास्तस्य पूर्णचन्द्रस्य रश्मयः।
अतः शारदपूर्णायां रात्रौ क्षीरान्नभोजनम् ॥९२॥
कुर्वन्ति भारतेवर्षे नरा नार्यश्च सर्वदा।
चन्द्रस्य रश्मिभि र्युक्तं श्वासघ्नं क्षीरभोजनम् ॥९३॥
चन्द्रग्रहस्य ते सन्ति रश्मयः पर्वतस्य वा।
स्वभावतः समुत्पत्तिः प्रश्नस्यास्य प्रजायते ॥९४॥

सुन्दरी टीका— गोचर में अर्थात् मनुष्य की जन्मराशि से - चन्द्रमा प्रतिराशि पर भ्रमण करता हुआ चौथा, आठवाँ, वारहवाँ होने पर - अशुभफल देता है, अन्य स्थानों में शुभ और मध्यम फल देता है, इस प्रकार का विचार चन्द्रमा की प्रचलित राशि के अनुसार किया जाता है, जन्मकाल और प्रश्नकाल के अनुसार बनी कुण्डलियों में चन्द्रमा की स्थिति को देखकर सभी ऋषियों ने शुभ "अच्छा" अशुभ "बुरा" फलादेश कहने का विधान कहा है। ॥८९॥

गोचर अर्थात् जन्मलग्न से अथवा जन्म राशि से चन्द्रमा जिन - जिन स्थानों। "राशियों अथवा भावों" में नवजात वच्चों को कष्टकारक होता है, उन कष्टप्रद स्थितियों से उत्पन्न होने वाले कष्टों की निवृत्ति के लिये "चन्द्रमाग्रह" की शान्ति और जप, दान करने की पद्धतियों को ऋषियों ने कहा है। चन्द्रमा का जप, दान आदि करने पर वालकों के अरिष्टों अर्थात् कष्टों की निवृत्ति हुआ करती है ॥९०॥

सायंकाल के समय प्रत्येक पूर्णमासी को पूर्णचन्द्रोदय होने पर पूर्णिमा व्रत रहने वाली स्त्रियाँ चन्द्रमा को जल का अर्घ्य आदि देकर, चन्द्रमा का पूजन करती हैं, और अपने सौभाग्य अर्थात् सुहाग की वृद्धि के लिये (पति की दीर्घायु के लिये) पूर्णचन्द्रमा का दर्शन भी करती हैं ॥९१॥

पूर्णचन्द्रमा की रश्मियाँ श्वासरोग को हरण करने वाली अर्थात् दूर करने वाली होती हैं, इसीलिये शरद् पूर्णिमा के दिन रात्रि में खीर अथवा दूध में भीगे हुए चावल के चौलाओं को चन्द्रमा की चाँदनी में अधिक समय तक रख कर श्वास रोग को दूर करने वाली उस खीर अथवा चौलाओं को आबालवृद्ध सभी स्त्री और पुरुष खाया करते हैं ॥९२॥

भारतवर्ष के स्त्री और पुरुषो में—आश्विन शुक्लपक्ष की पूर्णिमासी की रात्रि में चन्द्रमा की चांदनी में रखी हुई श्वास रोग को दूर करने वाली खीर को और चौलाओं को खाने की परम्परा में यह वैज्ञानिकता छिपी हुई है कि – चन्द्रमा में सोम और अमृत तत्व की प्रधानता है, दूध में भी सोमरस और आयु की वृद्धि तथा शरीर को पुष्टि करने वाले तत्व विशेष रूप से प्रत्यक्ष पाये जाते हैं। श्वेतचन्द्रमा की श्वेत रश्मियों का आकर्षण - समानधर्मवाले - श्वेत दूध और चावल से वनी खीर और चौलाओं पर विशेष रूप से होता है, इसीलिये खीर और चौलाओं को रात्रि की चाँदनी में रखकर खाने का विधान भारतीय नरनारियों ने विशेष रूप से स्वीकार किया है ॥९३॥

शरद् पूर्णिमा की रात्रि में खीर और चौलाओं पर चन्द्रमा ग्रह की रश्मियाँ पड़ती हैं, अथवा अमरीका आदि के यात्रियों ने जो स्वरूप चन्द्रमा का – ज्वालामुखी और मिट्टी ,धूल, कँटर, पत्थर आदि से युक्त पर्वताकार वताया है, उस पर्वत की रश्मियाँ पड़ती हैं ? यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से प्रत्येक विचारशील व्यक्ति के अन्तःकरण में उत्पन्न होता है ॥९४॥

कृष्णपक्षे चतुर्थ्यां हि चतुर्थीव्रतनिर्णयः।
चन्द्रोदयवशाच्चोक्तो धर्मशास्त्रे मुनीश्वरैः ॥९५॥
पौर्णमास्यां हि पश्यन्ति चन्द्रस्य ग्रहणं सदा।
चन्द्रग्रहस्य तद्ज्ञेयमथवा पर्वतस्य तत् ॥९६॥

सुन्दरी टीका—कृष्णपक्ष में चतुर्थी के दिन संकष्टी गणेश चतुर्थी के व्रत का निर्णय उसी दिन का माना जाता है, जिस दिन चन्द्रोदय के समय चतुर्थी तिथि की सत्ता हो, मुनिप्रणीत धर्मशास्त्रों के सभी मौलिक ग्रन्थों में उपर्युक्त व्यवस्था को मुनियों ने कहा है, तथा–निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु, पुरुषार्थचिन्तामणि, प्रभृति निवन्ध ग्रन्थों में स्थित मुनियों के वचनों से और महाकविकालिदास विरचित "ज्योति-र्विदाभरण" नामक ग्रन्थ के "कालाध्याय" में चतुर्थी-व्रत-निर्णय की व्यवस्था से आज भी उपर्युक्त शास्त्रीय प्रथा प्रत्यक्ष रूप में उपलब्ध है ॥९५॥

संसार भर के लोग हमेशा पूर्णमासी तिथि में पड़ने वाले चन्द्रग्रहण को प्रत्यक्ष रूप में देखते हैं, वह चन्द्रग्रहण चन्द्रमा ग्रह का होता है, अथवा आज के अन्तरिक्ष-यात्रियों द्वारा बताये गये पाषाणमय पर्वत स्वरूप चन्द्रमा का ग्रहण होता है ? ॥९६॥

भूगोलस्थास्तु कुर्वन्ति द्वितीयाचन्द्रदर्शनम्।
चन्द्रग्रहस्य तद्ज्ञेयमथवा गिरिदर्शनम् ॥९७॥
अमायां समतीतायां यदा चन्द्रस्य दर्शनम्।
"ईद" संज्ञं तु त्यौहारं मन्यन्ते यवनास्तदा ॥९८॥
चन्द्रग्रहो ददातीह दर्शनं पर्वतोऽथवा।
ईदसंज्ञे हि त्यौहारे निर्णयं वद विस्तरात्? ॥९९॥

सुन्दरी टीका—भूगोल पर स्थित स्त्री, पुरुष, आदि जीव शुक्लपक्ष में द्वितीया

"दुयौज" तिथि में नवोदित चन्द्रमा का दर्शन किया करते हैं, वह दर्शन चन्द्रमा ग्रह का होता है, अथवा अमरीका के अन्तरिक्ष यात्रियों द्वारा बताये गये पाषाणमय पर्वताकार चन्द्रमा का होता है ? ।।९७।।

कृष्णपक्ष की अमावास्या के व्यतीत होने पर जिस दिन चन्द्रमा का दर्शन होता है, उसी दिन संसार भर के मुसलमान जाति के लोग "ईदसंज्ञक" त्यौहार को मनाने का निर्णय करते हैं, तथा चन्द्रदर्शन होने पर ही ईद के त्यौहार को मनाते हैं ।।९८।।

ईदसंज्ञक त्यौहार को मनाने के लिये चन्द्रमा ग्रह का दर्शन किया जाता है, अथवा—आज के वैज्ञानिकों द्वारा बताया गया पाषाणमय - पर्वत के आकार वाला चन्द्रमा ही ईद के दिन दर्शन देता है। इस जटिल और टेढ़े प्रश्न के उत्तर का निर्णय करके मुझे विस्तार पूर्वक जवाब दो ?।।९९।।

वृष्टिगर्भात् समारभ्य यानि कार्याणि भारते।
जायन्ते चन्द्रयोगेन स चन्द्रः कुत्र संस्थितः ?।।१००।।

सुन्दरी टीका—वर्षा के गर्भ से लेकर जो भी कार्य भारतवर्ष में चन्द्रमा ग्रह के योग से होते हैं, वह चन्द्रमा ग्रह कहाँ पर स्थित है ? ।।१००।।

येन चन्द्रेण संयोगं विधाय सबला ग्रहाः।
भवन्ति वृष्टिदा नित्यं स चन्द्रः कुत्र संस्थितः ।।१०१।।

सुन्दरी टीका—जिस चन्द्रमा के साथ संयोग करके बलवान ग्रह हमेशा वर्षा को देने वाले होते हैं, वह चन्द्रमा कहां पर स्थित है ? ।।१०१

यश्चन्द्रः कार्तिके मासे मार्गशीर्षसिते दले।
नक्षत्रैः सह योगेन मेघगर्भप्रदः स क्व ? ।।१०२।।
नक्षत्राणामधीशो यश्चन्द्रस्तु सर्वसम्मतः।
स वै चन्द्रो ग्रहो ऽथवा पर्वतः कुरु निर्णयम् ? ।।१०३।।

सुन्दरी टीका—जो चन्द्रमा कार्तिक मास में और मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष में नक्षत्रों के साथ संयोग करके, वर्षा के गर्भों को देता है, वह चन्द्रमा आकाश में भूगोल से कितनी दूरी पर और कितनी ऊँचाई पर, कहां पर स्थित है ? ।।१०२।।

जो चन्द्रमा सर्वसम्मति से नक्षत्रों का स्वामी माना जाता है, वह चन्द्रमा ग्रह है, अथवा – अमरीकाप्रभृति के आधुनिक अन्तरिक्षयात्री वैज्ञानिकों द्वारा बताया गया पर्वत ही चन्द्रमा ग्रह है, इसका ठीक निर्णय करके शीघ्र उत्तर दो ? ।।१०३।।

मेषे सिंहे च कोदण्डे पूर्वस्यां दिशि चन्द्रमाः।
वृष - मकर - कन्यासु - दक्षिणस्यां हि स स्मृतः ।।१०४।।
तुलायां मिथुने कुम्भे पश्चिमे चन्द्रसंस्थितिः।
कर्के च वृश्चिके मीने ह्युत्तरस्यां तु चन्द्रमाः ।।१०५।।

सुन्दरी टीका—मेष - सिंह और धनुः इन तीनों राशियों पर स्थित चन्द्रमा पूर्व दिशा में रहता है। वृष - मकर - कन्या राशियों

पर स्थित चन्द्रमा दक्षिण दिशा में माना जाता है ॥१०४॥

तुला - मिथुन - और कुम्भ राशियों में स्थित चन्द्रमा पश्चिम दिशा में माना जाता है। कर्क - वृश्चिक - और मीन राशियों में स्थित चन्द्रमा उत्तर दिशा में माना जाता है ॥१०५॥

चतुर्दिक्षु समुक्तो वै भ्रमश्चन्द्रस्य पूर्वजैः ।
ऋषिभिस्तार्किकैः सर्वै वैज्ञानिकवराग्रगैः ॥१०६॥
गतिशीलो ग्रहश्चन्द्रो भ्रमति पर्वतोऽथवा ।
कियती वर्तते तस्य दूरी भूगोलतो वद ? ॥१०७॥

सुन्दरी टीका—प्रत्यक्षदर्शी वैज्ञानिकों में अग्रगण्य सभी तार्किक ऋषियों ने और पूर्वज सभी आचार्यों ने पूर्व - दक्षिण - पश्चिम - उत्तर - इन चारों दिशाओं में क्रमशः - मेष - सिंह - धनुः, वृष - कन्या - मकर, मिथुन - तुला - कुम्भ, कर्क - वृश्चिक - मीन, इन राशियों में चन्द्रमा की स्थिति के अनुसार चन्द्रमा का भ्रमण अर्थात् गतिशीलता अथवा घूमना स्वीकार किया है ॥१०६॥

प्रत्यक्ष देखने वाले तत्वदर्शी ऋषियों ने जिस चन्द्रमा को पूर्वादि चारों दिशाओं में घूमता हुआ माना है, वह चन्द्रमा ग्रह है, अथवा आधुनिक अमरीका प्रभृति देशों के वैज्ञानिकों द्वारा बताया गया—पत्थर - मिट्टी - ज्वालामुखी - क्रैटर आदि से युक्त पर्वताकार चन्द्रमा बोले जाने वाला पर्वत ही चारों दिशाओं में घूमता रहता है ? उत्तर दो ?

भूगोल से चन्द्रमा की दूरी, "ऊँचाई" कितने किलोमीटर है, शीघ्र उत्तर दो ? ॥१०७॥

वेदोक्तं मुनिभिश्चोक्तं सत्यं चेत्तर्हि मण्डनम् ।
विधेहि, चामरीकादिजातानां कुरु खण्डनम् ॥१०८॥

सुन्दरी टीका—चन्द्रमा के विषय में वेदों में जो कुछ कहा गया है, वह, और ऋषियों ने जो कुछ भी चन्द्रमा के विषय में कहा है, वह यदि सत्य है तो उसका मण्डन अर्थात् समर्थन करो, और अमरीका आदि देशों के आधुनिक वैज्ञानिकों ने चन्द्रमा के सम्बन्ध में अज्ञानवर्धक और भ्रामक जो घोषणायें की हैं, उनका खण्डन करो ॥१०८॥

सुवर्षा वायुविज्ञानं वृष्टिगर्भनिरूपणम् ।
चन्द्रस्य संस्थितिं सम्यक् वद - पर्वतसंस्थितिम् ॥१०९॥

सुन्दरी टीका—आर्षवर्षा - वायु - विज्ञान को और वर्षा के गर्भ किस प्रकार से धारण होते हैं, इस विज्ञान को, तथा चन्द्रमा ग्रह की स्थिति आकाश में कहाँ पर है, चन्द्रमा की ऊँचाई भूगोल से कितनी है, इन सब प्रश्नों का उत्तर देते हुए यह भी बताओ कि—वेदों और पुराणों में स्पष्ट रूप से बारम्बार बताया गया "चन्द्र" नाम का पर्वत "पहाड़" भूगोल पर कहां, किस जगह, और किस दिशा में, किस स्थिति में विद्यमान है ? ॥१०९॥

पितृलोकस्तु कुत्रास्ति वर्षणं तत्र जायते।
न वा, सर्वं समाचक्ष्व विस्तराद् गोलविद्वर! ॥११०॥
नरकाणां स्थितिः क्वास्ति ते विद्यन्ते हि कीदृशाः।
वायो वृंष्टेश्च तत्रास्ति व्यवस्था कीदृशी वद? ॥१११॥

सुन्दरी टीका—पितृलोक कहां पर है, वहां पितृलोक में वर्षा होती है, अथवा नहीं होती है। ब्रह्माण्डगोल की स्थिति को जानने वालो मैं श्रेष्ठ इस प्रश्न का उत्तर मुझे विस्तारपूर्वक दो? ॥११०॥

नरकों की स्थिति कहां पर है, वे नरक किस प्रकार के हैं, वर्षा और वायु की व्यवस्था वहां नरकों में किस प्रकार की है, इस प्रश्न का उत्तर भी ठीक दो? ॥१११॥

कियती विद्यते दूरी दिल्लीतः का दिशा तथा।
नरकाणां समाचक्ष्व वेत्सि चेद्गोलसंस्थितिम् ॥११२॥

सुन्दरी टीका—भारत की राजधानी दिल्ली से नरकों की किस दिशा में कितनी दूरी है, हे विद्वन्! तुम यदि ब्रह्माण्डगोल की स्थिति को जानते हो तो—शीघ्र ही ठीक उत्तर दो ॥११२॥

समये वृष्टिगर्भाणां यद्दिग्भागो प्रगच्छति।
वायु स्ताद्दिग्विलोमे तु गर्भमोक्षे प्रगच्छति ॥११३॥
वृष्टिगर्भे तथा मोक्षे वायो दिशि विलोमता।
जायते भूमिचालेन तत्र वा कारणान्तरम् ॥११४॥

सुन्दरी टीका—कार्तिकादि मासों में जिस समय वर्षा का गर्भधारण होता है, उस समय जिस दिशा का वायु चलता है, उस के विपतीत दिशा का वायु - वर्षा के गर्भ का मोक्ष होते समय—अर्थात् वर्षा होते समय चलता है। वर्षागर्भधारण के समय यदि पूर्व का वायु चलता है, तो वर्षागर्भमोक्ष के समय पश्चिम दिशा का वायु निश्चित रूप से चलेगा। वर्षागर्भधारण के दिन से १९५ वें दिन अर्थात् ठीक साढ़े छः मास बाद गर्भमोक्ष "वर्षा हुआ करती है ॥११३॥

वर्षा के गर्भधारण के समय में जिस दिशा का वायु चलता हो, उसके ठीक-, विलोम "विपरीत" दिशा का वायु गर्भमोक्ष के समय चलता हुआ जो दिखाई देता है, वह वायु भूमि के चलने के कारण से विपरीत दिशा में पहुँच जाता है, अथवा विपरीत दिशा के वायु चलने में कोई अन्य कारण है ॥११४॥

वायो र्भ्रमोऽथवा भूमे र्भ्रमः कृत्वा विनिर्णयम्।
प्रश्नानामुत्तरं शीघ्रं देहि मे त्वं विचक्षण! ॥११५॥

सुन्दरी टीका—गर्भधारण के समय की दिशा से विपरीत दिशा में गर्भमोक्ष के समय के वायु का जो अस्तित्व देखने में आता है, वह वायु और भूमि इन दोनों में से किसके घूमने का परिणाम है, यह ठीक निर्णय करके हे विद्वन्! मुझे सभी प्रश्नों का सही उत्तर दो ११५॥

उक्तानुक्ता हि ये प्रश्ना वृष्टिसम्बन्धजा भुवि।
तेषां सम्यक् समाधानं विस्तरात् कुरु कोविद! ॥११६॥

सुन्दरी टीका—वर्षा से सम्बन्धित पूर्वोक्त प्रश्नों के अलावा इस संसार में वर्षा - वायु - विज्ञान से सम्बन्धित जो भी अन्य प्रकार के प्रश्न हो सकते हैं, उन सभी प्रश्नों का विस्तारपूर्वक अच्छी तरह से समाधान हे विद्वन्! करो ॥११६॥

विज्ञैः सम्यक्कृताः प्रश्ना भवद्भि नात्र संशयः ।
प्रश्नोत्तराणि दास्यामि शृणुध्वं साधुमानसाः ॥११७॥

सुन्दरी टीका—समझदार आप महानुभावों ने वर्षा-वायु-विज्ञान के सम्बन्ध में बहुत ही अच्छे प्रश्न किये हैं, इन सभी प्रश्नों का मैं उत्तर दुंगा। आशा है कि आप सावधानी के साथ निश्चल मन से प्रश्नों के उत्तरों का सुनने का प्रयास करेंगे ॥११७॥

घोषणा चन्द्रलोकस्य यात्राया भ्रान्तितः कृता ।
अज्ञान - ध्वान्त -ध्वंसाय घोषणायाश्च खण्डनम् ॥११८॥
निष्पक्षया धिया - धीराः! करिष्यामि न संशयः ।
प्रश्नोत्तराणि दास्यामि सर्वेषां ज्ञानिनां मुदे ॥११९॥

सुन्दरी टीका—अमरीका प्रभृति देशों के आधुनिक वैज्ञानिकों ने चन्द्रलोक की यात्रा की घोषणा भ्रान्ति से ही की है। वस्तुतः - ये वैज्ञानिक चन्द्रलोक पर नहीं पहुँचे हैं, पर्वतों के शिखरों पर ही पहुँचे हैं, संसार में - अज्ञान रूपी अन्धकार को बढ़ाने वाली चन्द्रलोकयात्रा की निराधार घोषणा का खण्डन हे विद्वानो! मैं निष्पक्ष बुद्धि से करुंगा, मुझे इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है। ज्ञानशील सभी व्यक्तियों की प्रसन्नता के लिये - पूर्वकथित सभी प्रश्नों का निष्पक्ष उत्तर दुंगा ॥११९॥

आर्षं ज्ञानं हि विज्ञानं ज्ञानं चान्यत्त्वनार्षकम् ।
सूक्ष्मदृष्ट्यार्जितं चार्षं स्थूलदृष्ट्यात्वनार्षकम् ॥१२१॥

सुन्दरी टीका—अतीन्द्रिय ऋषियों द्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टि से प्रत्यक्ष देख कर जो कुछ भी कहा गया है, अथवा लिखा गया है, वह ज्ञान ही वास्तविकरूप में "विज्ञान" है, क्योंकि - वह सूक्ष्मदृष्टि से संचित किया जाता है। ऋषियों के अलावा आधुनिक वैज्ञानिकों ने अन्तरिक्ष में पहुँच कर खगोलीय जिस ज्ञान का प्रतिपादन अथवा प्रचार किया है, वह स्थूल दृष्टिवाले व्यक्तियों द्वारा अर्जित "संचित" होने के कारण ज्ञान मात्र है, इस ज्ञान में मानव - स्वभाव सुलभ भ्रन्तियां और त्रुटियों का होना स्वाभाविक है ॥१२१॥

विज्ञान - ज्ञानयोश्चात्र समीक्षा कुर्वता मया ।
निबन्धे त्वार्षवर्षा - वायु - विज्ञानं निरूप्यते ॥१२२॥

सुन्दरी टीका— योगनिष्ठ - अतीन्द्रिय- ऋषियों द्वारा प्रतिपादित खगोलीय विज्ञान और अमरीकाप्रभृति देशों के आधुनिक -वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित - खगोलीय - "ज्ञान" की समीक्षा करता हुआ मैं - इस निबन्ध ग्रन्थ में "आर्षवर्षा - वायु-विज्ञान" का प्रतिपादन कर रहा हूँ ॥१२२॥

इति तृतीयाध्यायः

—:+:—

चतुर्थाध्यायः

क्रोश - योजन - किलोमीटरादि - परिभाषाध्यायः–

परिभाषाध्याय - निर्माण - प्रयोजनम्

सुन्दरी टीकt — परिभाषाध्याय की रचना क्यों की जा रही है, इस का कारण बताता हूँ, ——

कतियोजनक्षेत्रे तु कदा वृष्टि र्भविष्यति ।
विना योजनज्ञानेन निर्णेतुं नैव शक्यते ॥१॥
क्रोशादियोजनादीनां परिभाषा विनाशिताः ।
सूर्यसिद्धान्तग्रन्थस्य टीकाकारै र्विशेषतः ॥२॥
बहुप्राचीनशास्त्रेषु क्रोश - योजन - मानतः ।
व्यवहारः कृतः प्राज्ञै र्मान - ज्ञान - विशारदैः ॥३॥
प्राचीन - निर्मिताग्रन्थाः क्रोश - योजन - मानतः ।
परिभाषा विनष्टत्वात् - तेऽधुना न लगन्ति वै ॥४॥

सुन्दरी टीका— कितने योजन के क्षेत्र में कब वर्षा होगी, इस का निर्णय योजन - मान का ज्ञान किये विना नहीं हो सकता है ॥१॥

"सूर्यसिद्धान्त" आर्षग्रन्थ के टीकाकारों ने विशेषरूप से - क्रोश और योजन आदि की वास्तविक परिभाषाओं को अज्ञानता से नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है ॥२॥

बहुतप्राचीन आर्ष और अनार्ष ग्रन्थों में क्रोश और योजन के मान से मान के ज्ञान में - चतुर - ऋषियों ने और पूर्वाचार्यों ने व्यवहार किया है ॥३॥

प्राचीन काल में निर्मित ग्रन्थ क्रोश और योजन के मानों से युक्त हैं, किन्तु क्रोश और योजन की परिभाषाओं का विनाश होने के कारण अर्थात् ज्ञान न होने के कारण क्रोश - योजन - परक प्राचीन ग्रन्थों का अर्थ ठीक -ठीक नहीं लगता है ॥४॥

तेषामर्थावबोधस्तु ग्रन्थानां नैव जायते ।
ते ग्रन्थाः परिभाषाभि र्विना हि व्यर्थतां गताः ॥५॥
अतो मया निबन्धेऽत्र परिभाषानिरूपणम् ।
क्रियते शास्त्ररक्षायै वृष्टियोजन - बोधदम् ॥६॥

सुन्दरी टीका— उन प्राचीन ग्रन्थों के अर्थ का ज्ञान ठीक - ठीक नहीं होता है, वे ग्रन्थ परिभाषाओं के ज्ञान के विना व्यर्थ से सिद्ध हो गये हैं ॥५॥

इस लिये मैं यहाँ पर इस निबन्ध में योजनादि की परिभाषाओं का निरूपण

"निर्माण" शास्त्रों की रक्षा के लिये कर रहा हूँ, ताकि यह ठीक जानकारी हो सके कि--कितने योजन विस्तार के क्षेत्र में वर्षा होगी, अथवा नहीं होगी ॥६॥

किलोमीटरमानेषु योजनपरिवर्तनम् ।
परिभाषा विनिर्माय हे सुविज्ञा मया कृतम् ॥७॥

सुन्दरी टीका— हे विद्वानो ! मैंने परिभाषाओं को वनाकर किलोमीटरों के मानों में योजनों का परिवर्तन स्पष्टरूप से किया है ॥७॥

सौर - सावन - चान्द्रादि - मानेन - वृष्टि - कालिकः ।
समग्रो मुनिभिः प्रोक्तो वृष्टि - विज्ञान - पारगैः ॥८॥
वर्ष - मास - दिनादीनां दिव्यानां व्यवहारतः ।
प्रलये त्वति वृष्टि स्तै - रनावृष्टिश्च कीर्तिता ॥९॥
अतो ब्राह्मदिनादीनां वृष्टि - विज्ञान - हेतवे ।
आर्षशास्त्रानुसारेण परिभाषा मयोच्यते ॥१०॥

सुन्दरी टीका— सौर - सावन - चान्द्र आदि मान से वर्षाकालीन समय को वर्षाविज्ञान के - ज्ञान में पारङ्गत मुनियों ने कहा है ॥८॥

दिव्यवर्ष - दिव्यमान - दिव्यदिन - के व्यवहार से सृष्टि के प्रलय के समय में - अतिवृष्टि और अनावृष्टि को भी उन ऋषियों ने कहा है ॥९॥

इसीलिये - ब्रह्मा के दिन - ब्रह्मा के मास और ब्रह्मा के वर्ष में - वर्षा-वायु-विज्ञान की स्थिति को जानने के उद्देश्य से आर्षशास्त्रों के अनुसार सव प्रकार की परिभाषाओं को मैं यहां पर कहता हूँ ॥१०॥

पूर्वोक्त – प्रश्नाध्याये

"आकाशे कुत आयान्ति जलानि भूमिवृष्टये ।
इन्द्रश्चेद् वृष्टिकर्ता स अकाशे कुत्र तिष्ठति"॥

इत्यादि - प्रश्नानां सुसमाधानं योजनादिपरिभाषा ज्ञानेन विना न भविष्यति । एवं च दिव्यदिन-दिव्यरात्रि-दिव्यमास-दिव्यवर्ष-युग-महायुग-मनु-मन्वन्तर-मनुसन्धि-कल्प-कल्पसन्धि- ब्राह्मदिन-ब्राह्मरात्रि-मास-वर्ष-परमायुषां ज्ञानेन विना प्रश्नाध्यायोक्तानां प्रश्नानां समाधानं न भविष्यति ।

सुन्दरी टीका—पूर्वोक्त प्रश्नाध्याय में - जो यह कहा गया है कि—"भूगोल पर बरसने के लिये आकाश में जल कहाँ से आता हैं, इन्द्र यदि वर्षा करने वाला है तो वह आकाश में कहाँ पर रहता है" इत्यादि प्रश्नाध्यायोक्त प्रश्नों का अच्छी तरह से समाधान तव तक नहीं हो सकेगा, जब तक कि योजनादि की परिभाषाओं का ज्ञान न हो ।

इसी प्रकार---दिव्यदिन - "देवताओं का दिन" दिव्यरात्रि, दिव्यमास, दिव्य-वर्ष, युग, महायुग, मनु, मन्वन्तर, मनुसन्धि, कल्प, कल्पसन्धि, ब्रह्मा का दिन, ब्रह्मा की रात्रि, ब्रह्मा का मास, ब्रह्मा का वर्ष, ब्रह्मा की परमायु आदि के ज्ञान के

बिना प्रश्नाध्याय में कहे गये प्रश्नों का सुसमाधान नहीं हो सकेगा।

गणितविषये पी. एच. डी. डाक्टरोपाधिधारिण:- आधुनिका: गणितज्ञा:- अपि-योजनादि-दिव्य - दिनादि-परिभाषां न जानन्ति। स्कूल-कालेज-परीक्षा-कोर्शेषु च ये गणितग्रन्था: प्रचलन्ति साम्प्रम्, तेषु गणितग्रन्थेष्वपि-योजनादि-दिव्यदिनादि-परिभाषा-ज्ञानस्य चर्चा न कृता केनापि गणितग्रन्थलेखकेन, अत: - आधुनिका: गणितज्ञा: - योजन-क्रोशादि-व्यवहार-ज्ञानावसरे- एवं च दिव्यदिनादि- व्यवहारावसरे काठिन्यं- अनुभवन्ति। अतएव-विविध- विध- काठिन्य- परिहाराय-योजन-क्रोशादि-पारिभाषिक-विषय-विवेकाय च "परिभाषाध्याय:" मयाऽत्र विलिख्यते।

सुन्दरी टीका—गणित विषय में - पी. एच. डी. करके डाक्टर कहे जाने वाले आधुनिक गणितज्ञ भी योजन आदि और दिव्यदिनादि की परिषाभाओं को नहीं जानते हैं।

स्कूल-कालेजो की परीक्षाओं के कोर्शों में जो गणितग्रन्थ इस समय प्रचलित हैं, उन गणितग्रन्थों में भी योजनादि और दिव्यादिनादि की परिभाषाओं की चर्चा किसी भी गणितग्रन्थ के लेखक ने नहीं की हैं, इसींलिये- आधुनिक-गणितज्ञ- योजन-क्रोशादि- के व्यवहार और ज्ञान के अवसरों पर तथा दिव्यदिन आदि के व्यवहार के अवसरों पर कठिनाई का अनुभव करते हैं; इसलिये शिक्षा के क्षेत्र में प्राचीन गणित को समझने में उत्पन्न हुई अनेक प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने के लिये और योजनक्रोशादि की परिभाषाओं के पारिभाषिक विषय का विवेक-अर्थात् बोध कराने के लिये "परिभाषाध्याय" को मैं यहाँ पर लिखता हूँ।

परिभाषाध्यायेऽस्मिन् योजन- क्रोशादि- दिव्यदिनादि - परिभाषाज्ञानाय-ऋषि-प्रणीतेभ्य:- वायुपुराणादिग्रन्थेभ्य:- वाक्यानि समुद्धृत्य मयाऽत्र लिख्यन्ते। परिभाषाभि-प्रायाणां स्पष्टीकरणार्थं पुराणवाक्यानुसारेण आर्षगणितग्रन्थ - सूर्यसिद्धान्तानुसारेण च गणितं- विधाय, पारिभाषिक - विषयस्य स्पष्टीकरणं- मयाऽत्र क्रियते।

सुन्दरी टीका— इस परिभाषाध्याय में योजनक्रोशादि और दिव्यदिन- आदि की परिभाषाओं को जानने के लिये- ऋषियों द्वारा वनाये गये "वायुपुराण" आदि ग्रन्थों से वाक्यों को उद्धृत करके मैं यहाँ पर लिखता हूं।

परिभाषाओं के अभिप्रायों को स्पष्ट करने के लिये पुराणवाक्यों के अनुसार और आर्षगणितग्रन्थ - सूर्यसिद्धान्त के अनुसार गणित करके — परिभाषाओं के विषय का स्पष्टिकरण मैं यहाँ पर करता हूँ।

साम्प्रतं स्वतन्त्रेऽस्मिन् भारतवर्णे प्रचलितेषु - गणितग्रन्थेषु किलोकीटरादि - गणित - व्यवस्था-व्यवहार: प्रचलति। ऋषिप्रणीतेषु पुराणादिग्रन्थेषु च किलोमीटरादि गणितस्य चर्चैव नास्ति।

सुन्दरी टीका— इस समय स्वतन्त्र इस भारतवर्ष में प्रचलितगणितग्रन्थों में किलोमीटर आदि से सम्बन्धित गणितव्यवस्था के माध्यम से व्यवहार प्रचलित है।

ऋषिप्रणीत - पुराण - आदि ग्रन्थों में किलोमीटर आदि के गणित की चर्चा ही नहीं है।

अतः- ऋषिप्रणीत - पुराणादि - ग्रन्थाध्ययनशीलाः प्राचीनाः- विद्वांसोऽपि - किलोमीटरादि - व्यवहार - ज्ञानावसरे काठिन्यम् - अनुभवन्त्येव।

सुन्दरी टीका — इस लिये - ऋषियों द्वारा वनाये गये "पुराण" आदि ग्रन्थों को पढ़ने में रुचि रखने वाले प्राचीन विद्वान् भी - किलोमीटर आदि के व्यवहार को जानने के अवसरों पर कठिनाईयों का अनुभव करते ही हैं।

अत एव -ऋषिप्रणीत - पुराणादि- ग्रन्थाध्ययनरत-विदुषां काठिन्य-परिहाराय-प्रचलित - किलोमीटरादि - परिभाषाः- अपि-मयाऽत्र परिभाषाध्याये लिख्यन्ते।

सुन्दरी टीका— इस लिये ऋषिप्रणीत - पुराणआदि ग्रन्थों को पढ़ने में लगे हुए विद्वानों की कठिनाईयों को दूर करने के लिये प्रचलित - किलोमीटर आदि की पभिाषाओं को मैं यहाँ पर परिभाषाध्याय में लिखता हूँ।

विषयस्य सुस्पष्टीकरणणार्थं पुराणावाक्यानुसारेण सूर्यसिद्धान्तादि - वाक्यानुसारेण च गणितं विधाय, पद् गणितं- अपि मयात्र लिख्यते।

सुन्दरी टीका— विषय का स्पष्टीकरण - करने के लिये पुराणों के वचनों के अनुसार और सूर्यसिद्धान्त आदि गणित ग्रन्थों के वचनों के अनुसार गणित को करके उस गणित को भी मैं यहाँ पर लिखता हूँ।

वायुपुराणस्थात् - शिवपुरवर्णनात् - समुद्धृत्य - अङ्गुलादिपरिभाषाः—
अत्र विलिखामि—

सुन्दरी टीका— वायुपुराण में स्थित - शिवपुरवर्णन से उद्धृत करके अङ्गुलादि की परिभाषाओं को यहाँ पर लिखता हूँ।

एतच्छ्रुत्वा तु ते सर्वे नैमिषेयास्तपस्विनः।
पप्रच्छु मातरिश्वानं सर्वे ते ब्रह्मवादिनः ॥११॥
वाष्पपर्याकुलाक्षास्तु प्रहर्षाद् गद्गदस्वनाः।
ब्रह्मलोकस्तु भगवन् यावन्मात्रान्तरः प्रभो ॥१२॥
योजनाग्रेण संख्यातः साधनं योजनस्य तु।
क्रोशस्य चैव मानं तु श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥१३॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मातरिश्वा विनीतवाक्।
उवाच मधुरं वाक्यं यथादृष्टं- यथा क्रमम् ॥१४॥

सुन्दरी टीका— यह सुन कर- ब्रह्म (ईश्वर) के विषय में परस्पर विचार-विमर्ष करने में लगे हुए तथा हर्ष से जिन के नेत्रों में जल भर आया है, और जिनके कण्ठ गद्गद हैं, ऐसे नैमिषारण्य निवासी वे सब तपस्वी मातरिश्वा (वायु) से प्रश्न किये, हे भगवन् ब्रह्म लोक का विस्तार कितने योजन है, योजन कितने क्रोश का होता है, और क्रोश किसे कहते हैं, यह हम सुनना चाहते हैं, तपस्वियों के वचन को सुन-

कर मधुर और विनम्रवाणी में वायु ने उत्तर देना प्रारम्भ किया ।।११।।१२।।१३।।१४

एतद् वोऽहं प्रवक्ष्यामि श्रुणुध्वं मे विवक्षितम् ।
अव्यक्ताद् व्यक्तभागो वै महान् स्थूलो विभाष्यते ।।१५।।

सुन्दरी टीका— हे तपस्वियो आप के प्रश्नों का उत्तर मैं दे रहा हूँ, आप सब ध्यान देकर सुनें, अव्यक्त का दशवाँ भाग महान् होता है, उस महान् को स्थूल कहा जाता है ।

दशैव महतो भागो भूतादिः स्थूल उच्यते ।
दशभागाधिकश्चापि भूतादिः परमाणुतः ।।१६।।
परमाणुः सुसूक्ष्मस्तु भावग्राह्यो न चक्षुषा ।
यद्भेद्यतमं लोके विज्ञेयं परमाणु तत् ।।१७।।
जालान्तर्गते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।
प्रथमं तत्प्रमाणानां परमाणुं प्रचक्षते ।।१८।।
अष्टानां परमाणूनां समवायो यदा भवेत् ।
त्रसरेणुः समाख्यातस्तत्पद्मरज उच्यते ।।१९।।

सुन्दरी टीका—महान् का दशवाँ भाग भूतादि होता है, वह स्थूल कहा जाता है, और वह भूतादि परमाणु से दश गुना होता है ।।१६।।

परमाणु बहुत ही सूक्ष्म होता है, उसे भाव (वीक्षणयन्त्र अथवा योगविद्या) से ही देखा जा सकता है, केवल नेत्र से परमाणु को नहीं देख सकते हैं, इस संसार में जिस के टुकड़े या खण्ड नहीं किये जा सकते हैं, उसे ही परमाणु समझना चाहिये ।।१७।।

जाल (झरोखा अथवा जंगला) के अन्तर्गत सूर्य की रश्मियाँ पड़ने पर जो सूक्ष्म रज पदार्थ उड़ता हुआ दिखाई पड़ता है, उसे परमाणु कहते हैं, संसार के समस्त प्रमाणों में सबसे पहला प्रमाण परमाणु ही कहा जाता है ।।१८।।

आठ परमाणुओं का समूह "त्रसरेणु" नाम से पुकारा जाता है ,उस त्रसरेणु को ही पद्मरज़ भी कहते हैं ।।१९।।

त्रसरेणवश्च येऽप्यष्टौ रथरेणस्तु स स्मृतः ।
ते ऽप्यष्टौ समवायस्था वालाग्रं तत्स्मृतं बुधैः ।।२०।।
वालाग्राण्यष्टलिक्षा स्याद् यूका तच्चाष्टकं भवेत् ।
यूकाष्टकं यवं प्राहुरङ्गुलं तु यवाष्टकम् ।।२१।।

सुन्दरी टीका– आठ त्रसरेणु के योग को "रथरेंणु" कहते हैं, आठ रथरेणु के योग को विद्वानों ने "वालाग्र" नाम से पुकारा है ।।२०।।

आठ वालाग्र के समूह की एक "लिक्षा" होती है, आठ लिक्षा के समुदाय की एक "यूका" होती है, आठ यूका का समुदाय एक "यव" संज्ञक होता है, आठ यवों के समूह का एक अंगुल होता है ।।२१।।

द्वादशाङ्गुलपर्वाणि वितस्थिस्थानमुच्यते ।
रत्निश्चाङ्गुलपर्वाणि विज्ञेयो ह्येकविंशतिः ।।२२।।

चत्वारि-विंशतिश्चैव हस्तः स्यादङ्गुलानि तु ।
किष्कु द्विरत्नि विज्ञेयो द्विचत्वारिंशदङ्गुलः ।।२३।।
षण्णवत्यङ्गुलं चैव धनुराहुर्मनीषिणः ।
एतद् गव्यूतिसंख्यायां पादानां धनुषः स्मृतम् ।।२४।।
धनु र्दण्डो युगं नाली तुल्यान्येतान्यथाङ्गुलैः ।
धनुषस्तु शतं नल्वमाहुः संख्याविदो जनाः ।।२५।।

सुन्दरी टीका—बारह अङ्गुल का एक बालिस्त होता है। इक्कीस अङ्गुल का एक रत्नि होता है, (मुट्ठी बंधे हुए हाथ में कोनी तक का भाग "रत्नि" कहलाता है, वही भाग इक्कीस अंगुल का होता है) ।।२२।।

चौबीस अङ्गुल का एक हाथ होता है, दो रत्नि का एक "किष्कु" होता है, एक किष्कु में ब्यालीस अंगुल होते हैं ।।२३।।

विद्वान् लोगों ने छ्यानवे अङ्गुल का एक धनुष् कहा है। एक धनुष् में चार हाथ होते हैं, जो कि दो गज के तुल्य होते हैं, एक गज दो हाथ का होता है। एक धनुष् के चार हाथों को ही धनुष् के चारपाद (चारचरण) कहते हैं, चार हाथ लम्बे धनुष् नाम के गट्ठा "बांस" का उपयोग "गव्यूति" को लम्बाई को नापने में किया जाता है। क्योंकि—"गव्यूतिः क्रोशयुगम्"—दो क्रोश की एक गव्यूति होती है ।।२३।।

"क्रोशः सहस्रद्वितयेन तेषाम्"—दो हजार धनुष् का एक क्रोश होता है। इस व्यवस्था के अनुसार क्रोश और गव्यूति के अन्तर्गत आने वाली जमीन को नापने के लिये धनुष् नाम के चार हाथ लम्बे गट्ठा का उपयोग किया जाता है ।।२४।।

धनुष्, दण्ड, युग, नाली, ये सब एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं, इन सभी में छयानवे अङ्गुल होते हैं। संख्या को जानने वाले विद्वान् एक सौ धनुष् यानी दो सौ गज का एक "नल्व" होता है, ऐसा कहे हैं ।।२५।।

धनुः सहस्रे द्वे चापि गव्यूतिरुपदिश्यते ।
अष्टौ धनुः सहस्राणि योजनं तु विधीयते ।।२६।।
एतेन धनुषा चैव योजनं तु समाप्यते ।
एतत्सहस्रं विज्ञेयं शक्रक्रोशान्तरं तथा ।।२७।।
योजनानां तु संख्यातं संख्याज्ञानविशारदैः ।
एतेन योजनाग्रेण श्रृणुध्वं ब्रह्मणोऽन्तरम् ।।२८।।

सुन्दरी टीका—दो हजार धनुष् को द्विगुणित करने पर चार हजार धनुष् होते हैं, उन चार हजार धनुष् के दो क्रोशों की एक "गव्यूति" कही जाती है। छब्बीसवें पद्य के प्रथम चरण में स्थित "चापि" "च+अपि" ये दोनों "च" और "अपि" समुच्चय अर्थ के द्योतक हैं, अतएव यहाँ पर दो हजार धनुष् को द्विगुणित करके चार हजार धनुष् एक गव्यूतिमान में कहे गये हैं। आठ हजार धनुष् का एक योजन होता है, आठ हजार धनुष चार क्रोश के बराबर होते हैं ।।२६।।

आठ हजार धनुष् का मान सोलह हजार गज होता है, तदनुसार-आठ हजार धनुष् अथवा सोलह हजार गज जमीन लम्बाई में नापने पर एक योजन की नाप तौल समाप्त हो जाती है, शक्र=(इन्द्र) देवता का एक क्रोश एक हजार धनुष् का होता है, एक हजार धनुष् में दो हजार गज होते हैं, अत एव शक्र अर्थात् इन्द्र देवता के आठ क्रोशों का मान अर्थात् आठ हजार धनुष् या सोलह हजार गजों का मान पूर्वोक्त एक योजन मान के बराबर होना सिद्ध होता है ।।२७।।

साङ्ख्यशास्त्र के तत्ववेत्ताओं ने योजनों में धनुष् और गज आदि की व्यवस्था करके योजनों का मान वर्णित किया है, इन्हीं योजनों के मानों से ब्रह्मलोक और भूलोक के अन्तर को सुनना और समझना चाहिये ।।२८।।

"पाणौ चपेटप्रतल-हस्ताविस्तृताङ्गुलौ" (इति-अमरकोषः) "तौ युतावञ्जलिः पुमान्" (इति-अमरकोषः)

सुन्दरी टीका—दोनों हाथों के तलों (हथेलियों) और अङ्गुलियों को परस्पर मिलाने पर हाथों की जो मुद्रा वनती है उसे "पाणि अथवा अञ्जलि" अमरकोष में कहा है, "अञ्जलिस्तु पुमान् हस्तसम्पुटे कुडवेऽपि च (इति-मेदिनी कोषः) । "प्रकोष्ठे विस्तृताकारे हस्तः" इत्यमरकोषः ।

"बाहुशब्दस्य प्रकोष्ठवाचकत्वाभावः" ।
"चतुर्विंशत्यङ्गुलो हस्तः" इत्यमरकोषस्य टिप्पण्याम् ।
"मुष्ट्या तु बद्धया"-" स रत्निः स्यात्" इत्यमरकोषः ।
सः - हस्तः - बद्धया मुष्ट्या रत्निः स्यात् - इति भावः ।

सुन्दरी टीका—हाथों के जोड़ने को "अञ्जलि" अथवा "कुडव" कहते हैं, ऐसा मेदिनी कोप में कहा है, अञ्जलि शब्द पुंलिङ्ग है, हाथ को लम्बा करने पर अङ्गुलियों के अग्र भाग से कोनी तक का भाग एक हाथ होता है, इसी हाथ का मान चौवीस अंगुल माना गया है । बाहुशब्द प्रकोष्ठ वाचक नहीं होता है, हाथ की मुट्ठी वाँधने पर कोनी तक के भाग में इक्कीस अङ्गुल की लम्बाई होती है, मुट्ठी बँधे हुए हाथ की इक्कीस अङ्गुल की लम्बाई को ही "रत्नि" कहते हैं । यह सब विवेचन अमरकोष आदि कोषों में भी भली प्रकार से किया गया है ।

"बद्धमुष्टिहस्तः एव रत्निसंज्ञको भवति" ।
"अरत्निस्तु निष्कनिष्ठेन मुष्टिना" इत्यरकोषः ।
"अरत्नि र्ना सप्रकोष्ठतताङ्गुलिकोऽपि च" ।
कफोणावपि - इति मेदिनीकोषः ।
निर्गता कनिष्ठा यस्मात् तेन मुष्टिनोपलक्षितः ।
अरत्निहस्तस्य - इत्यमरकोषः ।

सुन्दरी टीका—अमरकोष और मेदिनीकोषादि में बद्धमुष्टि हाथ की "रत्नि" और अबद्धमुष्टि हाथ की "अरत्नि" संज्ञा कही है ।

व्याम=लोकप्रसिद्ध "बाँ" की परिभाषा

"व्यामो वाह्वोः सकरयोस्ततयो स्तिर्यगन्तरम्" ।

"स्वे स्वे पार्श्वे प्रसारितयोः-वाह्वो र्मध्यम्" ।। इत्यमरकोपः

सुन्दरी टीका—कोई भी व्यक्ति अपने दोनों पार्श्व (दोनों वगलों) की दोनों दिशाओं में अपने दोनों हाथों को पूर्ण रूप से फैलाकर जव खड़ा या बैठा होता है, तब फैले हुए दोनों हाथों के अन्तर्गत होने वाली लम्बाई को "व्याम" अथवा "बाँ" के नाम से पुकारा जाता है ।

पुरुष प्रमाण की परिभाषा

"ऊर्ध्वविस्तृतदोः पाणिनृमाने पौरुषं त्रिषु" ।

ऊर्ध्वं विस्तृतं दोः पाणि र्येन सः ।। तादृशो ना-तस्य

यन्मानं=परिमाणम्, तेन पुंसा वा यन्मीयते तत्र, "पुरुषप्रमाणस्य" इत्यमरकोपः ।

पौरुषं पुरुषस्य स्याद् भावे कर्मणि तेजसि ।

ऊर्ध्वविस्तृतदोः पाणिनृमाने त्वभिधेयवत् ।। इति मेदिनीकोपः ।

सुन्दरी टीका—ऊपर को दोनों हाथ उठाकर खड़े हुए स्वस्थ पुरुप को-पैर के नीचे से ऊपर उठे हाथ तक नापने पर जो भी-गज-फुट-इञ्च मान आता है, उसी मान को पुरुषप्रमाण मान की संज्ञा से या पुरुषप्रमाण नाम से पुकारा जाता है ।

क्रोश-योजनादि की परिभाषा

परिभाषाप्रकरणेऽत्र "क्रोश-योजनादीनाम्" परिभाषामुपस्थापयामि, नेत्र-शरनवचन्द्र "१९५२" प्रमिते वैक्रमाब्दे काश्यां "मैडिकलहाल" नामक-यन्त्रालयतः-प्रकाशित-श्रीवराहमिहिराचार्य- प्रणीतायां "वृहत्संहितायाम्" अष्टवेद "४८" प्रमिते पृष्ठे श्रीभट्टोत्पलकृतटीकायां-पुलिशमुनिप्रणीतं वाक्यं पुलिशसंहितातः-समुद्धृत्य विलिखितमस्ति, ततो वृहत्संहिता- टीकातः समुद्धृत्य तद्वाक्यं-अत्र उपस्थापयामि ।

सुन्दरी टीका—परिभाषा प्रकरण में यहाँ पर "क्रोश और योजन" आदि की परिभाषा को लिखता हूँ, विक्रमसम्वत १९५२ में काशी में "मैडिकलहाल" नाम के प्रेस से प्रकाशित – श्री वराहमिहिराचार्यविरचित "वृहत्संहिता में ४८ वें पृष्ठ पर भट्टोत्पल टीका में पुलिशमुनिविरचित पुलिशसंहिता से समुद्धृत वाक्य लिखा गया है, बृहत्संहिता की भट्टोत्पल टीका से उस वाक्य को लेकर मैं यहाँ पर उसे लिखता हूँ—

"योजनमष्टौ क्रोशाः क्रोश श्चत्वारि - करसहस्राणि ।

हस्तः शङ्कुद्वितयं द्वादशभिः सोऽङ्गुलैः शङ्कुः ।।१।।"

उक्तश्लोकस्य - अयं भावः—अष्टौ क्रोशाः - योजनं भवति, एकस्मिन् योजने अष्टसंख्याप्रमिताः क्रोशाः - भवन्ति - इति भावः—

करसहस्राणि=हस्तसहस्राणि - तत्वारिं=चतुर्थगुणितानि १००० × ४= ४००० = चतुःसहस्रहस्तैः = ४००० ÷ २/१ = ४००० × १/२ = २००० = द्विसहस्र-

गजैः एकः क्रोशः=(एकः कोसः) अंग्रेजशासनकाले प्रयुक्तो भवति, एकस्मिन् गजे द्वौ हस्तौ भवतः, अतोऽत्र हस्तानां गजाविधानार्थं हस्तेषु द्वाभ्यां भागः कृतः।

सुन्दरी टीका—एक योजन में आठक्रोश होते हैं, एक क्रोश में चारसौ हाथ यानी दो सौ गज होते हैं, दो शङ्कु का एक हाथ होता है, बारह अङ्गुल का एक शङ्कु होता है, इस प्रकार चौवीस अङ्गुल का एक हाथ हुआ, यह सिद्ध होता है।

"योजनमष्टौ क्रोशाः" इत्यादिश्लोकस्य टिप्पण्यां महामहोपाध्याय - श्री सुधाकरद्विवेदिमहाभागैः सुविचारः कृतः - बृहत्संहितायाम्, श्री द्विवेदिमहोदयाः - विलिखन्ति—"श्रीभास्कराचार्यकृत - लीलावत्यां" तु हस्तैश्चतुर्भिर्भवतीह दण्डः क्रोशः सहस्रद्वितयेन तेषाम्"। अतो भास्कर- क्रोशार्धं पुलिशक्रोशमानम्, तदष्टकं पुलिशयोजनमानं च भास्करक्रोशचतुष्टयेन योजनेन सममेव।

सुन्दरी टीका—बृहत्संहिता में महामहोपाध्याय श्री सुधाकरद्विवेदी जी ने "योजनमष्टौ क्रोशाः - इत्यादि" श्लोक की टिप्पणी में अच्छा विचार किया है, श्री द्विवेदी जी लिखते हैं कि——

श्री भास्कराचार्यकृत लीलावती नाम के गणित ग्रन्थ में—चार हाथ अर्थात् दो गज का एक दण्ड कहकर दो हजार दण्ड अथवा चार हजार गज या आठ हजार हाथ का एक क्रोश कहा है, और चार क्रोश का अथवा सोलह हजार गज का अथवा—बत्तीस हजार हाथ का एक योजन कहा है, पुलिश संहिता में दो हजार अथवा चार हजार हाथ का एक क्रोश कहकर आठ क्रोश अथवा सोलह हजार गज अथवा बत्तीस हजार हाथ का एक योजन कहा है, इस प्रकार भास्कराचार्यकृत लीलावती में और पुलिश-संहिता में एक योजन के गजों और हाथों की संख्या में एकवाक्यता सिद्ध होती है। अन्तर केवल इतना ही है कि—लीलावती में चार हजार गज का एक क्रोश मानकर चार क्रोश का एक योजन माना है, और पुलिश संहिता में दो हजार गज का एक क्रोश मानकर आठ क्रोश का एक योजन माना है, भास्कराचार्य का क्रोशार्ध पुलिश क्रोश मान के बराबर है। अंग्रेजों ने पुलिशसंहिता के अनुसार ही दो हजार गज का एक कोश मानकर जमीन के नापने में व्यवहार किया है। तदनुसार दो हजार गज का एक कोश और सत्रह सौ साठ गज का एक मील अंग्रेज मानते हैं।

गव्यूति-क्रोश और योजन की परिभाषा पर विचार विमर्श—

गव्यूति-क्रोशादि—परिभाषाविषये - अमरकोषेऽपि-शरचन्दचन्द्र प्रमिते "११५" पृष्ठे सुविचारः कृतो ग्रन्थकारेण, अमरकोषोक्तं तं विषयमत्र-उपस्थापयामि,- "गव्यूतिः स्त्रीक्रोशयुगम्" गो+यूतिः - इत्यत्र "गोयूतौ छन्दस्युपसंख्यानम्" "अध्व-परिमाणे च" इतिपाणिनि-कात्यायन-नियमानुसारेण ओकारस्य-स्थाने-अव्-आदेशे कृते "गव्यूतिः" शब्दः सिद्ध्यति। गव्यूतिशब्दस्य-अयं भावः-"धनु र्हस्तचतुष्टयम्" इत्युक्तेः-चतुर्भिर्हस्तैः एकं धनुः भवति, पुलिशसंहितानुसारेण धन्वन्तरसहस्रेण, लीलावत्यनुसारेण तु धन्वन्तरद्विसहस्राभ्याम्ः एकःक्रोशो भवति, द्वाभ्यां क्रोशाभ्यां-एका गव्यूतिः भवति।

सुन्दरी टीका—गो+यूतिः-इस विग्रह में पाणिनि-और कात्यायन के नियमानुसार ओकार के स्थान में "अव्" आदेश होकर हल् वर्ण संयोग होने पर "गव्यूतिः" शब्द बनता है, दो क्रोश अर्थात् चार हजार गज लम्बे मार्ग को गव्यूति कहते हैं, यह व्यवस्था - अमरकोषादिकोषों में वर्णित है।

"गव्यूतं स्त्री तु गव्यूति गोरुतं गोमतं च तत्" इति वाचस्पतिकोषेऽपि समुक्तम्। "द्वाभ्यां धनुः सहस्राभ्यां - गव्यूतिः - पुंसि भाषितः" इति शब्दार्णवेऽपि-उक्तम्। क्रोशयोर्युगम् - अर्थात् - क्रोशद्वयपरिमितस्य मानस्य "गव्यूतिः" इति संज्ञा भवतीति तत्वार्थः।

सुन्दरी टीका—वाचस्पति और शब्दार्णवादि कोषों के अनुसार दो क्रोश के मार्ग का नाम गव्यूति पुकारने का प्रचलन रहा है।

पुलिस संहिता और लीलावती गणितग्रन्थ में एकवाक्यता होने से एक गव्यूति में - आठ हजार गज लम्बी जमीन ग्रहण होती है। निष्कर्ष यह है कि - आठ हजार गज लम्बे मार्ग को गव्यूति कहते हैं।

श्री भास्कराचार्यैस्तु लीलावत्यां परिभाषाप्रकरणे योजनादि - विषये सुपरिभाषाः-विलिखिताः, श्री भास्कराचार्याः विलिखन्ति—

यवोदरैरङ्गुलमष्टसंख्यै र्हस्तोऽङ्गुलैः षड्गुणितै श्चतुर्भिः।
हस्तैश्चतुर्भिर्भवतीह दण्डः क्रोशः सहस्रद्वितयेन तेषाम् ॥१॥
स्याद्योजनं क्रोशचतुष्टयेन तथा कराणां दशकेन वंशः ॥२॥

उपर्युक्तश्लोकयोः - अयं भावः—अष्टसंख्यैः यवोदरैः - एकं - अङ्गुलं भवति, षड्गुणितैः चतुर्भिः - अङ्गुलैः- अर्थात्— ४×६=२४=चतुर्विंशति-संख्याप्रमितैः - अङ्गुलैः - एको हस्तो भवति, इह=अस्मिन् गणितशास्त्रे चतुर्भि र्हस्तैः एको दण्डः= एकं धनुः-भवति, तेषांदण्डानां सहस्रद्वितयेन=द्विसहस्रप्रमितेन=२००० दण्डैः-इत्यर्थः- एकः क्रोशो भवति, क्रोशाचतुष्टयेन - एकं योजनं भवति, कराणां दशकेन=दशभिः- हस्तैः-एकः-वंशः=गट्ठा भवति।

सुन्दरी टीका—आठ यवों को बराबर-बराबर मिलाकर (सटाकर) रखने पर एक अंगुल होता है, चौबीस अङ्गुल का एक हाथ होता है, दो हाथ का एक गज होता है, चार हाथ या दो गज का एक दण्ड अथवा धनुष् होता है, दो हजार दण्ड अथवा दो हजार धनुष् का एक क्रोश होता है, चार क्रोश का एक योजन होता है, दश हाथ या पांच गज का एक गट्ठा होता है, इस गट्ठे का उपयोग जमीन या खेत के नापने में किया जाता है।

उपर्युक्तरीत्या श्री भास्कराचार्यैः-द्विसहस्र="२०००" प्रमितैः - दण्डैः=चतुः सहस्रगजैः "४००० गजैः" एकः क्रोशः समुक्तः। चतुर्भिः क्रोशैश्च एकं योजनं समुक्तम्।

सुन्दरी टीका—उपर्युक्तरीति से भास्कराचार्य ने दो हजार दण्ड=धनुष् या चार हजार गज का एक क्रोश कहा है और चार क्रोश या आठ हजार दण्ड=धनुष् या सोलह हसार गज का एक योजन कहा है।

पुलिश- संहितायां तु - एक सहस्रप्रमितैः दण्डैः=१००० दण्डैः क्रोशः समुक्तः, इत्थं भास्करोक्त- क्रोशस्य मानं पुलिशोक्त-क्रोशमानात् - द्विगुणं सिद्ध्यति ।

सुन्दरी टीका—पुलिश संहिता में एक हजार दण्ड या दो हजार गज का एक क्रोश कहा है, और भास्कराचार्य ने- दो हजार दण्ड या चारहजार गज का एक क्रोश कहा है, इस प्रकार भास्कराचार्योक्त क्रोश का मान पुलिशोक्त क्रोश मान से दुगुना सिद्ध होता है ।

श्री भास्कराचार्यैः- चतुर्भिः क्रोशैः- एकं योजनं समुक्तम्, अतः श्री भास्कराचार्योक्ताः- ते चत्वारः क्रोशाः, पुलिशसंहितोक्तैः- अष्टक्रोशैः- तुल्याः द्विगुणत्वात् सिद्ध्यन्त्येव नात्र सन्देहावसरः ।

सुन्दरी टीका— श्री भास्कराचार्य ने चार क्रोशों का एक योजन कहा है, इस लिये श्री भास्कराचार्योक्त वे चार क्रोश पुलिशसंहितोक्त आठ क्रोशों के बराबर सिद्ध होते हैं, इस में किसी को भी किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये, क्योंकि—भास्कराचार्य के क्रोश का मान पुलिशक्रोशमान से द्विगुना है, अतः भास्कराचार्य के चार क्रोश पुलिशोक्त आठ क्रोशों के बराबर होने स्वाभाविक ही हैं ।

अमरकोषे लिङ्गादिसंग्रहवर्गे नवशरवेद "४५९" प्रमिते पृष्ठे त्रिंशत्प्रमिते श्लोके "मर्भयोजने" एतादृशः पाठः- श्लोकस्य चतुर्थचरणान्ते वर्तते, तत्र व्याख्यासुधा-रामाश्रमी टीकायां योजन-शब्दस्य व्याख्यावसरे श्री भानुजिदीक्षितमहोदयाः विलिखन्ति- "योजनं परमात्मनि चतुष्क्रोश्यां च- योगे च" इति मेदिनी कोषोक्तेः, अत्रोक्तस्य- चतुष्क्रोश- शब्दस्य - अयं भावः-हस्तैश्चतुर्भि र्भवतीह दण्डः क्रोशः सहस्रद्वितयेन तेषाम्" "स्याद् योजनं क्रोशचतुष्टयेन" इति सिद्धान्तात् - द्विसहस्रप्रमितैः=२००० दण्डैः-एकः क्रोशो भवति, चतुर्भिः क्रोशैस्तु एकं योजनं भवति ; इति तत्वार्थः ।

सुन्दरी टीका— अमरकोष में लिङ्गादिसंग्रह वर्ग में ४५९ पृष्ठ पर तीसवें श्लोक में - "मर्भयोजने" ऐसा पाठ चतुर्थचरण के अन्त में है, अमर कोष पर "व्याख्यासुधा तथा रामाश्रमी" टीका के लेखक - भट्टोजिदीक्षित के पुत्र भानुजिदीक्षित "योजन शब्द" की व्याख्या के अवसर पर लिखते हैं कि — योजनशब्द परमात्मा, चतुष्क्रोश और योग का वाचक होता है, यहाँ पर कहे गये चतुष्क्रोश शब्द का अभिप्राय यह है कि - चारहाथ का एक दण्ड होता है, और दो हजार दण्ड का एक क्रोश होता है, और चार क्रोश का एक योजन होता है ।

शब्दकल्पद्रुमेऽपि योजनविषये विचारः कृतः शब्दकल्पद्रुमसंग्रहकारेण—

द्वादशाङ्गुलिकः शङ्कुस्तद्द्वयं तु शयः स्मृतः ।
तच्चतुष्कं धनुः प्रोक्तं क्रोशो धनुःसहस्रकः ॥१॥
योजनं तच्चतुष्कं स्याद् द्विगुणं मानशास्त्रतः ॥२॥

उक्तपद्ययोः- अयं भावः- द्वादशाङ्गुलिकः- एकः शङ्कुः- भवति, द्वादशभिः- अङ्गुलैः- एकः शङ्कुः-भवति- इत्यर्थः, तद्द्वयं तु अत्र तु - इति विशेषार्थे तद्द्वयं=

शङ्कुद्वयम्; शयः= हस्तः, स्मृतः=कथितः, चतुर्विंशतिभिः- अङ्गुलैः- हस्तो भवतीति भावः, तच्चतुष्कम्= हस्तचतुष्टयम्, धनुः प्रोक्तम् , चतुर्भि र्हस्तैः- एकं धनुः- भवति- इति भावः, धनुः सहस्रकः क्रोशः=एकसहस्रप्रमितैः-धनुः संज्ञकैः- एकः क्रोशो भवति, तच्चतुष्कम्=क्रोशचतुष्कम् ,द्विगुणम्=द्विगुणितं सत् एकयोजनं भवति, ४×२= ८= अष्टभिः क्रोशैः एकं योजनं भवति। मानशास्त्रतः= मानशास्त्रानुसारेण योजनादीनां परिभाषाः- ज्ञेयाः।

सुन्दरी टीका— बारह अङ्गुल का एक शङ्कु होता है, दो शङ्कु अर्थात् चौबीस अङ्गुल का एक हाथ होता है, चार हाथ का एक धनुष् या एक दण्ड होता है, एक हजार धनुष् या दो हजार गज का एक क्रोश होता है, चार क्रोश को द्विगुणित करने पर अर्थात् आठ क्रोश का एक योजन होता है, योजनादि से सम्बन्धित शेष परिभाषाओं को परिभाषाप्रतिपादन करने वाले अन्य शास्त्रों से जान लेना चाहिये। शब्दकल्पद्रुम में वर्णित इस योजनादि की प्रक्रिया से पुलिशसंहिता और लीलावती नामक गणित ग्रन्थों में वर्णित योजनादि की प्रक्रिया की एकवाक्यता सिद्ध होती है।

अङ्गुलादिपरिभाषाविषये प्राकारप्रकरणे नवशरनेत्र "२५९" प्रमिते पृष्ठे षड्-विंशति "२६" - सप्तविंशति "२७" पद्ययोः- विशेषः समुक्तो ग्रन्थकारेण महाकवि-कालिदासेन-"ज्योति- र्विदाभरणे," महाकविकालिदासाः- विलिखन्ति—

"षडक्षतैराजमिहाङ्गुलं भवेत् सप्ताक्षतैर्वैष्णवमैशमङ्गुलम्।
यवोदरैरष्टभिरत्रतत्करो जिनाङ्गुलैस्तैश्च धनुश्चतुष्करम्॥२६॥
प्रासादकुण्डादिकपीठवेदिकाद्विजालयेषु स्मृतमाजमङ्गुलम्।
जलाशयारामविधौ नृपालये निधौ हितं वैष्णवमन्यदन्यगम्॥२७॥

उपर्युक्तश्लोकयोः– अयं भावः — इह= दैर्घ्य - विस्तारोच्चादिमान- ज्ञान-विषये षडक्षतैः= षड्भिः- अक्षतैः= तण्डुलैः=लोकप्रसिद्धचावलैः, आजम्=अजस्य- अर्थाद् - ब्रह्मणः इदं- आजम्= ब्राह्मं - अङ्गुलं भवति, सप्ताक्षतैः=सप्तभिः-तण्डुलैः वैष्णवम् = विष्णोः- इदं वैष्णवम् = विष्णुसम्बन्धि - अङ्गुलं भवति, अष्टभिः– यवोदरैः- ऐशम् =ईशस्य रुद्रस्य - इदं -ऐशम् = रौद्राङ्गुलमित्यर्थः– भवति,–

अत्र जिनाङ्गुलैः=चतुर्विंशतिसङ्ख्याप्रमितैः-अङ्गुलैः, तत्करः=तेषाम्=ब्रह्मा-विष्णु - महेशानां करः =हस्तः- भवति, चतुर्विंशतिसंख्याप्रमितैः- ब्रह्माङ्गुलैः– ब्रह्मकरः, चतुर्विंशतिसंख्याप्रमितैः-वैष्णवाङ्गुलैः - विष्णुकरः, चतुर्विंशतिसंख्याप्रमितैः- रुद्राङ्गुलैः- रुद्रकरः- भवति, इति भावः, तैश्च चतुष्करं धनुः- भवति, ब्रह्माङ्गुलैः- चतुर्भिः- करैः- ब्राह्मं धनुः = दण्डः भवति, वैष्णवकरैः- चतुर्भिः- वैष्णवं धनुः= दण्डः- भवति, प्रासाद - कुण्डादिकपीठ -वेदिका - द्विजालयेषु - आजम् - अङ्गुलं ग्राह्यं भवति। जलाशयारामविधौ नृपालये- निधौ= कोषागारे च वैष्णवम् - अङ्गुलं ग्राह्यं भवति, अन्यत् - अन्यगम् = क्षेत्र - क्रोश - योजनादीनां मापदण्डज्ञानार्थं तु - ऐशम = अर्थात - रौद्राङ्गुलं ग्राह्यं भवति।

उपर्युक्तप्रकारेण—अङ्गुलादीनां परिभाषानुसारेण - योजनादिपरिभाषाज्ञानार्थं योजनादिमाने-एकवाक्यता सिद्ध्यति, क्रोश-योजन-मापदण्डज्ञानं तु ऐशाङ्गुलैः=रौद्राङ्गुलैरेवकार्यम् । तैः षण्णवति - "९६" संख्याप्रमितैः रौद्राङ्गुलैः - अर्थात् - चतुर्भिः हस्तैः - एकं धनुः=दण्डः - भवति, द्वाभ्यां गजाभ्यां - एकं धनुः=दण्डः भवति - इति भावः, तैः द्विसहस्र-प्रमितैः - धनुर्भिः - एकः क्रोशः - भवति, चतुर्भिः क्रोशैश्च - एकं योजन सिद्ध्यति ।

एवं योजन - मानदण्डस्य - एकवाक्यतायां सत्यामपि—

योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु ।
तद्वर्गतो दशगुणात् पदं भूपरिधि र्भवेत् ॥

अस्य सूर्यसिद्धान्तीयवाक्यस्य टीकावसरे - बहुभिः - टीकाकारैः - "स्व-स्व-देशेषु - क्रोश - योजन - परिभाषायां भिन्नता प्रकारान्तरता च या समुक्ता, सा तु अविचारितरमणीयैव दरीदृश्यते, सर्वत्रैव योजनात्मकमानस्य-एकवाक्यता सत्वात् ।

सुन्दरी टीका—महाकवि कालिदास ने "ज्योति र्विदाभरण" नाम के अपने महाकाव्य में प्राकार प्रकरण में २६ और २७ (छब्बीस और सत्ताईस) वें श्लोकों में अङ्गुल और हाथ आदि की परिभाषाओ के विषय में बहुत सुन्दर और विशेष व्यवस्था लिखी है, कालीदास लिखते है कि—किसी वस्तु की - लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई को जानने के लिये—(१) ब्रह्मा (२) विष्णु (३) शङ्कर इन तीन प्रकार के अङ्गुलों से - हाथ, गज, धनुष्=(दण्ड) क्रोश, योजन को नापने का विधान है, छैः=(६) अक्षतों (चावलों) को बराबर-बराबर रख कर नापने पर ब्रह्मा के एक अङ्गुल का नाप होता है, ब्रह्मा के चौवीस अङ्गुलों का एक ब्राह्म हाथ और दो ब्राह्म हाथों का एक ब्राह्मगज, और दो ब्राह्म गज का एक ब्राह्म धनुष् या ब्राह्म दण्ड,और दो हजार ब्राह्म दण्डों का एक ब्राह्मक्रोश=(ब्रह्मा का एक क्रोश) और चार ब्राह्मक्रोशों का एक ब्राह्म योजन होता है । इसी प्रकार सात अक्षतों को बराबर-बराबर रख कर नापने पर विष्णु का एक अङ्गुल होता है, जिसे "वैष्णव-अङ्गुल" के नाम से पुकारा जाता है, चौबीस वैष्णव अङ्गुलों का एक वैष्णव हाथ, दो वैष्णव हाथ का एक वैष्णव गज, दो वैष्णव गज का एक वैष्णव धनुष् या दण्ड और दो हजार वैष्णव दण्ड का एक वैष्णव क्रोश और चार वैष्णव क्रोशों का एक वैष्णव योजन होता है ।

आठ यवोदरों को अर्थात् आठ जौ के दानों को बराबर-बराबर रखकर नापने पर एक ऐशांगुल=(शङ्कर का अङ्गुल) होता है, इसी शङ्कर अङ्गुल को "रौद्राङ्गुल" भी कहते हैं, चौबीस रौद्राङ्गुलों का एक रौद्रहाथ होता है, दो रौद्र हाथों का एक रौद्रगज और दो रौद्रगजों का एक रौद्रधनुष् या रौद्रदण्ड होता है, दो हजार रौद्रदण्डों का एक रौद्रक्रोश होता है, और चार रौद्रक्रोशों का एक रौद्रयोजन होता है ।

(१) प्रासाद अर्थात् किला कुण्ड=हवनकुण्ठ और जलकुण्डादि, पीठ=मठ और सिद्ध पुरुषों के थान, वेदिका=यज्ञ की वेदी और मूर्ति के नीचे की वेदी, और द्विजालय=(ब्राह्मणों के मकान) की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई को नापने में

ब्रह्माङ्गुल के मान से बने फुट, हाथ और गज का प्रयोग करना चाहिए।

(२) जलाशय=कुआ, बावली, नहर, पोखर आदि को नापने में तथा आराम=बगीचा आदि की लम्बाई, चौड़ाई को नापने में तथा नृपालय=राजभवन (राज्यपाल भवन) या राष्ट्रपति भवन को बनाते समय इनकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई को नापने में और निधि=कोषागार या खजाने के मकान की गहराई और ऊँचाई तथा लम्बाई, चौड़ाई को नापने में वैष्णव अङ्गुल के अनुसार बने हुए हाथ, गज, फुट आदि का प्रयोग करना चाहिए।

(३) महाकवि कालिदास के २७वें श्लोक के अन्त में लिखे गये "अन्यदन्यगम्" इस कथन का सारांश यह है कि संसार के अन्य सभी प्रकार के व्यवहारों में आने वाली लम्बाई, चौड़ाई, गहराई और ऊँचाई को नापने के लिये तथा हाथ, फुट, गज, धनुष्, दण्ड, क्रोश, योजन आदि को नापने के लिये "रौद्राङ्गुलों" को ही ग्रहण करना चाहिये।

पूर्वोक्त प्रकार से प्रतिपादित रौद्राङ्गुलों से ही बने हुये हाथों, गजों, दण्डों और क्रोशों से योजन का मान ग्राह्य होता है। इसकी पुष्टि सभी मतमतान्तरों से होती है, अतएव "योजन" की परिभाषा के विषय में किसी भी प्रकार से कोई मतभेद नहीं है, सबका एक ही मत है कि "रौद्राङ्गुलों" के अनुसार बने हाथ से ही "योजन" का मान स्वीकार करके भूगोल और खगोल की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई और नीचाई को नापना चाहिए।

योजन की परिभाषा के विषय में एकवाक्यता होते हुए भी "सूर्य सिद्धान्त" गणित ग्रन्थ की टीका को लिखते समय कुछ टीकाकारों ने जो यह लिखा है कि— "अपने अपने देशों में क्रोश और योजन की परिभाषायें अलग-अलग होती हैं" उन कुछ टीकाकारों का यह कथन बिलकुल गलत, अविचारितरमणीय और भ्रामक है, क्योंकि योजनात्मक मान को सभी ग्रन्थकारों ने एक सा ही माना है।

ब्रह्मलोकस्य-क्रोशस्य-योजनस्य च कियन्मितं मानं अस्तीति प्रश्नं नैमिषारण्य-निवासिनः ऋषयः पप्रच्छुः, मातरिश्वा "वायुः" वक्ष्यमाणं-उत्तरं ददौ, अव्यक्तस्य दशमो भागः-महान्-भवति, स महान् स्थूलः विभाव्यते=कथ्यते, ॥१५॥

महतः दशमो भागः भूतादिः भवति, सः -अपि स्थूलसंज्ञको भवति, परमाणुतः =परमाणुसंज्ञकात्-भूतादिः दशभागाधिकः=दशगुणः भवति, ॥१६॥

परमाणुः सुसूक्ष्मत्वात्-भावग्राह्यो भवति, न तु चक्षुषा ग्रहणं भवति परमाणोः। यत्-अभेद्यतमम्- अर्थात्-यस्य भागाः-भवितुं अशक्याः-तद्वस्तु परमाणुसंज्ञकं भवति, ॥१७॥

भानौ जालान्तगते सति यत् सूक्ष्मं रजः दृश्यते, तद् रजः एव परमाणुसंज्ञकं कथ्यते, सर्वेषां प्रमाणानां पूर्वं परमाणुसंज्ञकमेव सूक्ष्मतमं भवति ॥१८॥

अष्टपरमाणूनां समुदायः त्रसरेणुसंज्ञकः भवति, अष्टपरमाणुसमुदायः एव पद्रजः-इति व्यवह्रियते ॥१९॥

अष्टत्रसरेणूनां समूहः - रथरेणुसंज्ञको भवति । अष्टरथरेणवो मिलित्वा बालाग्रसंज्ञकं भवति ॥२०॥

अष्टवालाग्राणि मिलित्वा-एका लिक्षा भवति, अष्टलिक्षाः मिलित्वा एका यूका भवति, अष्टभिः यूकाभिः एको यवो भवति, एकपंक्तौ स्थितैः- अष्टभिः-यवैः-एकं अङ्गुलं भवति ॥२१॥

द्वादशाङ्गुलैः-एका वितस्तिः=“एकवालिस्त |संज्ञको मापदण्डो भवति”। मुष्ट्या तु बद्धया-एकविंशतिप्रमिताङ्गुलैः-एकः रत्निः भवति, वद्धमुष्टिहस्तः एव ‘रत्नि” संज्ञको भवति - इति भावः ॥२२॥

चतुर्विंशति- प्रमिताङ्गुलैः-एको हस्तो भवति, द्वाभ्यां रत्निभ्यां द्विचत्वारिंशत्-अङ्गुलात्मकः किष्कुः-भवति ॥२३॥

षण्णवत्यङ्गुलैः=“९६ अङ्गुलैः” मनीषिणः=विद्वांसः-एकं धनुः संज्ञकं प्राहुः। एकस्मिन् धनुषि चत्वारो हस्ताः-भवन्ति, ते-एव हस्ताः-धनुषः- पादाः-भवन्ति, धनुषः तेषां पादानां- एतद्धनुः-अर्थात्-चतुर्हस्तात्मकं धनुः-गव्यूति-संख्यायाम्-उपयोगार्हं भवति इति शेषः, यतो हि-चतुर्हस्तात्मकैः द्विसहस्रप्रमितैः-धनुर्भिः-एकः क्रोशः-भवति, द्वाभ्यां क्रोशाभ्यां गव्यूति- संख्या भवति, अतः - धनुषः पादानां=हस्तचतुष्टयस्वरूप-पादानाम्-एतद्धनुः गव्यूतिसंख्यायां प्रयुक्तं भवति, इति श्लोकस्य सारांश ॥२४॥

अतः=अनन्तरम्-धनुः-दण्डः-युगं-नाली-एतानि अङ्गुलैः- तुल्यानि=समानानि भवन्ति, षण्णवत्यङ्गुलैः=“९६ अङ्गुलैः” एकं धनुः भवति, एतैरेव षण्णवत्यङ्गुलैः-दण्डः-युगं-नाली च भवति । अमरकोषे तृतीयकाण्डे नानार्थवर्गे-अष्टनवाग्नि “३९८” प्रमिते पृष्ठे सप्तमे श्लोके “किष्कु र्हस्ते-वितस्तौ च” टीकायां तु “किष्कु र्द्वयो र्विसस्तौ च सप्रकोष्ठकरेऽपि च” इति मेदिनीकोषः, एतादृशः पाठो वर्तते, तस्य-अयं भावः-किष्कुः-हस्ते वितस्तौ च अपि प्रयुक्तो भवति, द्वाभ्यां रत्निभ्यां निर्मितः-द्विचत्वारिंशत् “४२” अङ्गुलात्मकः-अपि-किष्कुः प्रयुक्तो भवति, अत्र व्यवस्थेयमनुसन्धेया विज्ञैः-बहुषु स्थानेषु देशेषु च द्विरत्निभ्यां विनिर्मितो द्विचत्वारिंशत्- “४२” अङ्गुलात्मको वंशः-किष्कु-शब्दतः प्रचलितोऽस्ति, बहुषु देशेषु स्थानविशेषेषु च किष्कु-शब्दः-हस्ते वितस्तौ च प्रयुक्तो भवति, अतः प्रदेशानुसारेण-किष्कु-शब्दस्य प्रयोग-विषये व्यवस्था ज्ञेया विज्ञैः ।

अमरकोषस्य द्वितीयकाण्डे भूमिवर्गे - षट् - चन्द्र -चन्द्र=“११६” प्रमिते पृष्ठे - अष्टदश ‘१८” प्रमिते श्लोके “नल्वः किष्कुचतुःशतम्” एतादृशः पाठोऽस्ति, अस्य - अयं भावः - चतुःशतकिष्कुभिः - अर्थात् - चतुःशतहस्तैः - एकः - नल्वः-भवति, एकस्मिन् धनुषि हस्तचतुष्टयं भवति, चतुःशतहस्तेषु - चतुर्भि र्भक्तेषु= ४००/१ ÷ ४/१ = १०० धनूंषि=दण्डाः- समायान्ति, उक्तरीत्या शतसंख्याप्रमितैः-धनुर्भिः=दण्डैः - एकं नल्वं संख्याविदो जनाः प्राहुः । अतएव “धनुषस्तु शतं नल्व-माहुः संख्याविदो जनाः” एतादृशः साधीयान् पाठः शिवपुरवर्णनावसरे वायुपुराणे - अस्ति, प्रेसप्रूफसंशोधकादिदोषात् - यत्र तत्र वायुपुराणपुस्तकेषु ‘धनुषस्त्रिशतनल्व-

माहुः संख्याविदो जनाः" एतादृशः पाठस्तु - नल्व - परिभाषा- विरुद्धत्वात् नितरां-अशुद्धः - एव दरीदृश्यते, तस्य पाठस्य संशोधनम् " धनुपस्तुशतं नल्वमाहुः संख्याविदो जनाः" इत्येतादृशं विधाय-नल्व-परिभाषा-अत्र अनुसन्धेया सुविचारशीलैः विज्ञैः।

द्वे धनुः सहस्रे अर्थात् द्विसहस्रप्रमितैः="विंशतिशतैः" धनुर्भिः - एका गव्यूतिः-उपदिश्यते=कथ्यते। अष्टौ धनुःसहस्राणि - अर्थात् - अष्टसहस्रप्रमितैः धनुःसंज्ञकैः - एकं योजनं विधीयते=स्वीक्रियते - इत्यर्थः ॥२६॥

एतेन धनुषां मानेन= अर्थात्- अष्टसहस्रधनुःसंख्यामानेन तु- इति विशेषार्थे, चैव-.इति निश्चयार्थे योजनम्=योजनसंज्ञकं मानं समाप्यते=सम्प्राप्यते, एतत्सहस्रम् =धनुःसहस्रतुल्यमानम्, तथैव=पूर्वोक्त-प्रकारेण, शक्रक्रोशान्तरम्=इन्द्रदेवक्रोशान्तर-मानम्, भवति - इति शेषः अष्टभिः क्रोशैस्तु- इन्द्रस्य - एकं योजनं भवति - इति - तु -अर्थातः - एव सिद्ध्यति ॥२७॥

तु-इति विशेषार्थे, संख्याज्ञानविशारदैः=संख्याबोधचतुरैः, योजनानां संख्यातम् =योजनानां कथनं कृतम् - इति शेषः, एतेन=अष्टक्रोशसंख्यान्वितेन योजनाग्रेण= योजनगणनाक्रमेण, ब्रह्मणः=ब्रह्माण्डस्य, अथवा ब्रह्मलोकस्य, अन्तरम् हे मुनयः! यूयं शृणुध्वम्, हे वैज्ञानिकाः! यूयं च शृणुध्वम् ॥२८॥

सुन्दरी टीका—"ब्रह्मलोकस्य क्रोशस्य- योजनस्य - च कियन्मितं मानमस्तीति" गद्य से लेकर—"ब्रह्मलोकस्य अन्तरं हे मुनयः यूयं शृणुध्वम्, हे वैज्ञानिकाः! यूयं च शृणुध्वम्" इस गद्य तक के =समस्त आशय को पूर्वलिखित श्लोक संख्या ग्यारह से अट्ठाईसवें श्लोक तक की हिन्दी टीका में/स्पष्टरूप से व्यक्त किया जा चुका है, अत - एव इस गद्यभाग की हिन्दी को यहाँ पर पुनः लिखना अनावश्यक समझा गया है।

स्वनिर्मितेषु पद्येषु - आधुनिकप्रचलित - परिभाषाः- अत्र-उपस्थापयामि—

इञ्चै र्द्वादशभिश्चैकः पैमानः संज्ञकः स्मृतः।
फुटसंज्ञा तु तस्यैव पैमानस्य प्रकीर्तिता ॥१॥
फुटैस्त्रिभि र्गजश्चैको हस्तद्वयप्रमाणकः।
फर्लाङ्गो द्विशतैश्चैको गजै र्विंशाधिकैः स्मृतः ॥२॥
फर्लाङ्गैश्चाष्टभिश्चैको मीलः प्रोक्तो विशारदैः।
सप्तदशशतैश्चैको मीलः षष्ठ्यधिकै र्गजैः ॥३॥
एकस्मिन् कोससंज्ञे तु द्विसहस्रगजास्तथा।
अंग्रेजशासने काले परिभाषा इमाः स्मृताः ॥४॥
यात्रादिव्यवहारे ताः परिभाषाः समादृताः।
अद्यापि व्यवहारे ता अंशतः स्वीकृता बुधैः ॥५॥
स्वतन्त्रे भारते जाते भारतीयैस्तु शासकैः।
यात्रादिव्यवहाराय परिभाषा नवाः कृताः ॥६॥

सुन्दरी टीका—मैं अपने आप बनाये हुए पद्यों में वर्तमान समय में प्रचलित परिभाषाओं

को यहाँ पर प्रस्तुत करता हूँ।

बारह इञ्च का एक पैमाना होता है, उसी पैमाने को फुट भी कहते हैं ॥१॥ तीन फुट का एक गज होता है, एक गज में तीन हाथ होते हैं, दो सौ बीस गज का एक फर्लाङ्ग होता है ॥२॥ आठ फर्लाङ्गों का एक मील होता है - ऐसा बुद्धिमान लोगों ने कहा है, सत्रह सौ साठ "१७६०" गज एक मील में होते हैं ॥३॥

एक कोस में दोहजार गज होते हैं, भारत में अंग्रेजों के शासनकाल में ये परिभाषायें प्रचलित थीं ॥४॥

यात्रा आदि के व्यवहार के लिये ये परिभाषायें शासन से स्वीकृत थीं, आज भी ये परिभाषायें अंश रूप से स्वीकृत हैं ॥५॥ स्वतन्त्रता संग्राम के वाद स्वतन्त्र भारत होने पर भारतीयशासकों ने यात्रादि के व्यवहार के लिये नयी परिभाषायें बना दी हैं ॥६॥

मिलीमीटरसंज्ञैस्तु दशभिः सैन्टिमीटरः।
सैन्टीमीटर संज्ञैस्तु दशभिः डैसीमीटरः ॥७॥
डैसीमीटरसंज्ञैस्तु दशभिश्चैकमीटरः।
दशभिर्मीटरैश्चैकः डैकामीटरसंज्ञकः ॥८॥
डैकामीटरसंज्ञैस्तु दशभिर्हैक्टोमीटरः।
हैक्टोमीटरदिग्भिस्तु किलोमीटरसंज्ञकः ॥९॥
मिलीमीटरसंज्ञैस्तु सहस्रैर्मीटरः स्मृतः।
सहस्रै मीटरैश्चैकः किलोमीटरसंज्ञकः ॥१०॥
फर्लाङ्गैः पञ्चभिश्चैकः किलोमीटरनामकः।
रेलयात्रादिशुल्काय भारते शासने मतः ॥११॥
एकादशशतै र्गजैः किलोमीटरकः स्मृतः।
पञ्चफर्लाङ्गजाश्चैकादशशतगजाः सदा ॥१२॥

सुन्दरी टीका—दशमिलीमीटर का एक सैन्टीमीटर होता है, दश सैन्टीमीटर का एक डैसीमीटर होता है ॥७॥

दश डैसी मीटर का एक मीटर होता है, दश मीटरों का एक डैकामीटर होता है ॥८॥

दश डैकामीटर का एक हैक्टोमीटर होता है, दश हैक्टोमीटर का एक किलो मीटर होता है ॥९॥

एक हजार मिलीमीटर का एक मीटर होता है, एक हजार मीटरों का एक किलोमीटर होता है ॥१०॥

पाँच फर्लाङ्गों का एक किलोमीटर होता है। रेलयात्रा आदि का शुल्क(भाड़ा) प्राप्त करने के लिये ये परिभाषायें भारतसरकार ने स्वीकृत की हैं।

ग्यारह सौ गज का एक किलोमीटर होता है, पाँच फर्लाङ्गों में ग्यारह सौ गज होते हैं ॥१२॥

किलोमीटरसंज्ञैस्तु चतुर्दशप्रमाणकैः ।
गजैश्चषट्शतै र्युक्तै योजनं कथितं बुधैः ॥१३॥
व्यवहाराय विज्ञानां परिभाषा मयोदिताः ।
शेषास्तु लोकतो ज्ञेयाः परिभाषा विशारदैः ॥१४॥

सुन्दरी टीका—चौदह किलोमीटर और छै सौ गज का एक योजन होता है, ऐसा गणित शास्त्र के विद्वानों ने कहा है ॥१३॥

समझदार व्यक्तियों के व्यवहार के लिये ये कुछ परिभाषायें मैंने कही हैं, संसार में प्रचलित शेष परिभाषाओं की जानकारी लौकिक व्यवहार के अनुसार बुद्धिमान् व्यक्तियों को कर लेनी चाहिये ॥१४॥

उक्तपरिभाषातालिकां सरलामत्र- उपस्थापयामि—

१२ इंचाः=१ फुटः । ३ फुटाः=१ गजः=२ हस्ती ।
२२० गजाः=१फर्लाङ्गः । ८ फर्लाङ्गाः=१ मीलः ।
१७६० गजाः=१ मीलः । २००० गजाः=१ कोसः ।
१० मिलीमीटराः=१सैन्टोमीटरः । १० सैन्टीमीटराः=१ डेसीमीटरः ।
१० डैसीमीटराः=१ मीटरः । १० मीटराः=१ डैकामीटरः ।
१० डैकामीटराः=१ हैक्टोमीटरः । १० हैक्टीमीटराः=१ किलोमीटरः ।
१००० मिलीमीटराः=१ मीटरः । १००० मीटराः=१ किलोमीटरः ।
५ फर्लाङ्गाः=११०० गजाः । १ किलोमीटरः=११०० गजाः ।
१४ किलोमीटराः, ६०० गजाः=१ योजनम् ।

सुन्दरी टीका— उक्त परिभाषाओं का स्पष्टीकरण ऊपर लिखी तालिका में किया गया है । जो कि सुगमता से समझने योग्य हैं, १२इञ्च का १ फुट,३ फुट का १ गज या २ हाथ होते हैं, २२० गज का १ फर्लाङ्ग, ८ फर्लाङ्ग का १ मील, १७६० गज का १ मील, २००० गज का १ कोस होता हैं, १० मिलीमीटर का १ सैन्टीमीटर, १० सैन्टीमीटर का १ डैसीमीटर,१० डैसीमीटर का १ मीटर,१० मीटर का १ डैकामीटर,१० डैकामीटर का १ हैक्टोमीटर, १० हैक्टोमीटर का १ किलोमीटर, १000 मीलीमीटर का १ मीटर, १००० मीटर का १ किलोमीटर, ५ फर्लाङ्ग का ११00 गज, १ किलोमीटर का ११०० गज, १४ किलोमीटर और ६०० गज मिलकर १ योजन होता है ।

पूर्वोक्तरीत्या पुलिशसंहितायाम्-एकसहस्रधनुः संख्याप्रमितः- यः क्रोशः समुक्तः तस्मिन् क्रोशे "हस्तैश्चतुर्भिर्भवतीह दण्डः" इत्युक्तेः- १०००×४=४००० चतुःसहस्रप्रमिताः- हस्ताः- भवन्ति, एकस्मिन् गजे च द्वौ हस्तौ भवतः, अतः- एषांचतुःसहस्रहस्तानां द्विसहस्र= "२०००" संख्याप्रमिताः- गजाः- भवन्ति, अत एव विज्ञैः-अंग्रेजैः- पुलिशसिद्धान्तोक्तं - आर्षमतं - अनुसृत्यैव - भारतवर्षे स्वशासनकाले द्विसहस्रगजतुल्यः- एव क्रोशः स्वीकृतः- यात्रादिव्यवहारे ।

सुन्दरी टीका— पूर्वोक्त प्रकार से पुलिशसंहिता में एक हजार "१०००"

धनुष का जो क्रोश कहा गया है, उस एक क्रोश में चार "४" हाथ का एक धनुष होने के कारण- १०००×४ =४००० हाथ "चार हजार हाथ" होते हैं, एक गज में दो हाथ होते हैं, इस लिये ४०००/१ ÷२/१ = ४०००/१×१/२ = २०००= दो हजार गज का एक क्रोश सिद्ध होता है, इसी लिये विज्ञ-अंग्रजों ने-पुलिशसंहिता में कहे गये आर्ष मत का अनुसरण करके "दो हजार गज" = २००० गज का एक कोस अपने शासनकाल में भारतवर्ष में यात्रादि के व्यवहार में स्वीकृत किया था, संस्कृत के "क्रोश" शब्द के स्थान पर हिन्दी भाषा में "कोस" शब्द प्रचलित है।

इत्थं च - तारीख - परिभाषापि - अर्थात् - वर्तमान-दिन परिभाषापि- आर्षोक्तैव स्वीकृता तैः- अंग्रेजशासकैः, यतो हि — अष्टाध्यायी - कारकैः- श्री पाणिनिमुनिमहोदयैः — "अनद्यतने लुट् - ३/३/१५ — २९४० सूत्रसंख्या" "कालोपसर्जने च तुल्यम् — १/२/५७ — १८३० सूत्र संख्या" इति सूत्रे — अद्यतनबोधके विरचिते सिद्धान्तकौमुद्यां स्तः, उक्तसूत्रयोः साधीयसी व्याख्या श्री भट्टोजिदीक्षितमहोदयैः- तथा च तत्वबोधिनीटीकाकारैः—श्री ज्ञानेन्द्रसरस्वतीमहोदयैःसिद्धान्तकौमुद्यां कृता। श्री भट्टोजिदीक्षितमहोदयाः विलिखन्ति——

"अतीतायाः - रात्रेः पश्चार्धेन - आगामिन्याः पूर्वार्धेन च सहितो दिवसः अद्यतनः" अस्य कथनस्य अयं भावः—

विगतरात्रेः-द्वादश "१२" वादनकालतः - आरभ्य - आगामिनिरात्रेः - द्वादश "१२" वादनान्तं यावत् तावत् अद्यतनः "आज" कालो भवति। विगतरात्रेः - द्वादश वादनतः पूर्वस्थितः कालस्तु भूतकालो भवति। आगामिनिरात्रेः - द्वादशवादनान्तरं तु भविष्यकालो भवति। उक्तरीत्या आर्षमतस्य समादरं कुर्वद्भिः - विज्ञैः - अंग्रेजशासकैः कोसतारीखयोः परिभाषा आर्षोक्तैव स्वीकृता। साम्प्रतं भारतादिदेशेषु प्रचलिता किलो - मीटरादि परिभाषा तु स्वकल्पिता - अनार्षैव च प्रचलिता वर्तते।

सुन्दरी टीका—इसी प्रकार तारीख या वर्तमान दिन की परिभाषाओं को अंग्रेज शासकों ने आर्षमत के अनुसार ही स्वीकार किया है, क्योंकि—रात्रि के बारह बजने के बाद से आगे आने वाली रात्रि के बारह बजे तक प्रचलित एक तारीख मानी जाती है, उसी तारीख को वर्तमान दिन अथवा आज की तारीख के नाम से अंग्रेज मानते है, जिसे सभी राष्ट्र स्वीकार करते हैं। अष्टाध्यायी नाम के ग्रन्थ का निर्माण करने वाले श्री पाणिनि ऋषि ने "अनद्यतनेलुट्" और "कालोपसर्जने च तुल्यम्" इन दोनों सूत्रों का निर्माण "आज" या वर्तमान दिन की परिभाषा को बताने के लिये ही किया है।

ये दोनों सूत्र "सिद्धान्त कौमुदी" नाम के ग्रन्थ में भी उपलब्ध हैं। सिद्धान्तकौमुदीकार श्री भट्टोजिदीक्षित जी ने और सिद्धान्तकौमुदी के टीकाकार श्री ज्ञानेन्द्रसरस्वती जी ने पूर्वोक्त दोनों सूत्रों की सुन्दर व्याख्या करते हुए लिखा है कि—बीती

हुई रात्रि के वारह वजने के वाद से लेकर आगे आने वाली रात्रि के वारह वजे तक का समय "आज" या "अद्यतन" कहलाता है। वीती हुई रात्रि के वारह वजे तक का समय "भूतकाल" कहलाता है। आगे आने वाली रात्रि के वारह वजे के वाद का समय "भविष्यकाल" कहलाता है। व्याकरणशास्त्र में तथा ज्यौतिष शास्त्र के ऋषि-प्रणीत आर्षग्रन्थों में वर्णित वर्तमान - भूत - भविष्य काल की परिभाषाओं के अनुरूप ही अंग्रेजशासकों ने वीती हुई रात्रि के वारह वजे तक पिछली तारीख=(भूतकाल) गतरात्रि के वारह वजे के बाद से आने वाली रात्रि के वारह वजे तक वर्तमान तारीख=(वर्तमान काल) और आने वाली रात्रि के वारह वजे के वाद से अगली तारीख=(भविष्य काल) मानकर भूत - वर्तमान और भविष्वकाल की तारीखों को व्यवहार में स्वीकार किया है, जोकि विलकुल ठीक और वैज्ञानिक है।

ऋषिप्रणीत ग्रन्थों में वताये गये "आज" की परिभाषा को न जानने वाले कुछ लोग तारीख के प्रचलन को "आज" कहने में नाक भौंहें सकोड़ते हैं, और तारीख के प्रचलन की कटु आलोचना करते हैं, यह उनकी असाधारण भूल है।

इस समय भारत आदि देशों में प्रचलित- किलोमीटर आदि की परिभाषाओं का व्यवहार स्वकल्पित और अनार्ष है।

एकादियोजनेषु कियन्तः किलोमीटराः- गजाश्च भवन्तीति - प्रतिपादनमत्र करोमि निम्नाङ्कितरीत्या—

सुन्दरी टीका— एक आदि योजनों में कितने किलोमीटर और गज होते हैं, इस का प्रतिपादन यहाँ पर मैं नीचे लिखे प्रकार से करता हूँ।—

१ योजनम्=१×४=४ क्रोशाः। ४×२०००=८००० दण्डाः=धनूंषि ८०००×२=१६००० गजाः। १६०००×२=३२००० हस्ताः।

१४ किलोमीटराः+६००गजाः=एकयोजनस्य किलोमीटरगजाः भवन्ति।
२६ किलोमीटराः+१००गजाः=द्वियोजनस्य किलोमीटरगजाः भवन्ति।
४३ किलोमीटराः+७००गजाः=त्रियोजनस्य किलोमीटरगजाः भवन्ति।
५८ किलोमीटराः+२००गजाः=चतुर्योजनानां किलोमीटरगजाः भवन्ति।
७२ किलोमीटराः+८००गजाः=पञ्चयोजनानां किलोमीटरगजाः भवन्ति।
८७ किलोमीटराः+३००गजाः=षड्योजनानां किलोमीटरगजाः भवन्ति।
१०१ किलोमीटराः+९००गजाः=सप्तयोजनानां किलोमीटरगजाः भवन्ति।
११६ किलोमीटराः+४००गजाः=अष्टयोजनानां किलोमीटरगजाः भवन्ति।
१३० किलोमीटराः+१०००गजाः=नवयोजनानां किलोमीटरगजाः भवन्ति।
१४५ किलोमीटराः+५००गजाः=दशयोजनानां किलोमीटरगजाः भवन्ति।

सुन्दरी टीका— ऐक योजन में ४ क्रोश या ८००० दण्ड या धनुष् अथवा १६००० गज या ३२००० हाथ होते हैं।

१४ किलोमीटर और ६०० गज, ऐक योजन में होते हैं।

२९ किलोमीटर और १०० गज, दो योजन में होते हैं।
४३ किलोमीटर और ७०० गज, तीन योजन में होते है।
५८ किलोमीटर और २०० गज, चार योजन में होते हैं।
७२ किलोमीटर और ८०० गज, पाँच योजन में होते हैं।
८७ किलोमीटर और ३०० गज, छैः योजन में होते हैं।
१०१ किलोमीटर और ९०० गज, सात योजन में होते हैं।
११६ किलोमीटर और ४०० गज, आठ योजन में होते हैं।
१३० किलोमीटर और १००० गज, नौ योजन में होते हैं।
१४५ किलोमीटर और ५००० गज, दश योजन में होते हैं।

१४५४ किलोमीटराः + ६००गजाः = एकशतयोजनानां किलोमीटरगजाः भवन्ति।

१४५४५ किलोमीटराः + ५००गजाः = एकसहस्रयोजनानां किलोमीटराः गजाः भवन्ति।

१४५४५४ किलोमीटराः + ६०० गजाः = दशसहस्रयोजनानां किलोमीटरगजाः भवन्ति।

१४५४५४५ किलोमीटराः + ५०० गजाः = एकलक्षयोजनानां किलोमीटर-गजाः भवन्ति।

१४५४५४५४ किलोमीटराः + ६०० गजाः = दशलक्षयोजनानां किलोमीटर-गजाः भवन्ति।

१४५४५४५४५ किलोमीटराः + ५०० गजाः = एककरोड़योजनानां किलो-मीटर गजाः भवन्ति।

२३२७२७ किलोमीटराः + ३०० गजाः = षोडशसहस्रयोजनानां किलोमीटर-गजाः भवन्ति।

४६५४५४ किलोमीटराः + ६०० गजाः = द्वात्रिंशतसहस्रयोजनानां किलोमीटर-गजाः भवन्ति।

५३३६३६ किलोमीटराः + ४०० गजाः = षट्त्रिंशत्- सहस्रयोजनानां किलो-मीटर- गजाः भवन्ति।

५८१८१८ किलोमीटराः + २०० गजाः = चत्वारिंशत्- सहस्रयोजनानां किलो-मीटर- गजाः भवन्ति।

७२७२७२ किलोकीटराः + ८०० गजाः = पंचाशत्- सहस्रयोजनानां किलो-मीटर- गजाः भवन्ति।

१२२१८१८ किलोमीटराः + २०० गजाः = चतुरशीतिसहस्रयोजनानां किलो-मीटर- गजाः भवन्ति।

१३०९०९ किलोमीटराः + १०० गजाः = नवसहस्रयोजनानां किलोमीटर-गजाः भवन्ति।

४५०९०९ किलोमीटराः + १० गजाः = एकत्रिंशत् सहस्रयोजनानां किलोमीटर-गजाः भवन्ति ।

४६४५४५ किलोमीटराः + ५०० गजाः = चतुस्त्रिंशत्सहस्र-योजनानां किलोमीटर-गजाः भवन्ति ।

९३०९०९ किलोमीटराः + १०० गजाः = चतुःषष्टिसहस्रयोजनानां किलोमीटर-गजाः भवन्ति ।

सुन्दरी टीका—१४५४ किलोमीटर और ६०० गज, एक सौ योजन में होते हैं ।

१४५४५	किलोमीटर और ५०० गज, एक हजार योजन में होते हैं ।
१४५४५४	किलोमीटर और ६०० गज, दश हजार योजन में होते हैं ।
१४५४५४५	किलोमीटर और ५०० गज, एक लाख योजन में होते हैं ।
१४५४५४५४	किलोमीटर और ६०० गज, दश लाख योजन में होते हैं ।
१४५४५४५४५	किलोमीटर और ५०० गज, एक करोड़ योजन में होते हैं ।
२३२७२७	किलोमीटर और ३०० गज, सोलह हजार योजन में होते हैं ।
४६५४५४	किलोमीटर और ६०० गज, बत्तीस हजार योजन में होते हैं ।
५२३६३६	किलोमीटर और ४०० गज, छत्तीस हजार योजन में होते हैं ।
५८१८१८	किलोमीटर और २०० गज, चालीस हजार योजन में होते हैं ।
७२७२७२	किलोमीटर और ८०० गज, पचास हजार योजन में होते हैं ।
१२२१८१८	किलोमीटर और २०० गज, चौरासी हजार योजन में होते है ।
१३०९०९	किलोमीटर और १०० गज, नौ हजार योजन में होते हैं ।
४५०९०९	किलोमीटर और १० गज, इकत्तीस हजार योजन में होते हैं ।
४६४५४५	किलोमीटर और ५०० गज, चौंतीस हजार योजन में होते हैं ।
९३०९०९	किलोमीटर और १०० गज, चौंसठ हजार योजन में होते हैं ।

योजनानां किलोमीटरेषु परिवर्तनतालिका निम्नाङ्किता अस्ति—

३२००००० द्वात्रिंशत् - लक्षयोजनानां किलोमीटराः = ४६५४५४५४ कि० मी० । ६०० गजाः ।

५०००० पंचाशत्सहस्रयोजनानां किलोमीटराः = ७२७२७२ कि० मी० । ८०० गजाः

२५२५०००० योजनानां किलोमीटराः = ३६८७२७२७२ कि०मी० । ८००गजः ।

२०००००० द्विकोटि योजनानां किलोमीटराः = २९०९०९०९० कि० मी० । १००० गजाः ।

५०००००० पंचाशत्लक्षयोजनानां कि० मी० = ७२७२७२७२ कि० मी० । ८०० गजाः

३००००० त्रिलक्षयोजनानां कि० मी० = ४३६३६३६ कि० मी० । ४०० गजाः

५०७००००० पंचकोटिसप्तलक्षाणां कि० मी० = ७३७४५४५४५ कि० मी० । ५०० गजाः

१0000000 एककोटियोजनानां किलोमीटराः=१४५४५४५४५ कि० मी०।
५०० गजाः
१00000एकलक्षयोजनानां किलोमीटराः=१४५४५४५ कि०मी०। ५०० गजाः
७00000 सप्तलक्षयोजनानां किलोमीटराः=१०१८१८१८ कि० मी०,
२०० गजाः
४१००० एकचत्वारिंशत्-सहस्रयोजनानांकिलोमीटराः=५९६३६३ कि०मी०।
७०० गजाः
२५00000 पंचविंशतिलक्षयोजनानां किलोमीटराः=३६३६३६३६ कि०मी०।
४०० गजाः

सुन्दरी टीका—बत्तीसलाख योजन में ४६५४५४५४ किलोमीटर और६००गज होते हैं।
पचास हजार योजन में ७२७२७२ किलोमीटर और ८०० गज होते हैं।
दो करोड़ बावनलाख पचास हजार योजन में ३६८७२७२७२ किलोमीटर
८०० गज होते हैं।
पाँच करोड़ सात लाख योजन में ७३७४५४५४५ किलोमीटर और ५००
गज होते हैं।
दो करोड़ योजन में २९०९०९०९० किलोमीटर और १००० गज होते हैं।
पचास लाख योजन में ७२७२७२७२ किलोमीटर और ८०० गज होते हैं।
तीन लाख योजन में ४३६३६३६ किलोमीटर और ४०० गज होते हैं।
पाँच करोड़ सात लाख योजन में ७३७४५४५४५ किलोमीटर और ५००
गज होते हैं।
एक करोड़ योजन में १४५४५४५४५ किलोमीटर और ५०० गज होते हैं।
एक लाख योजन में १४५४५४५ किलोमीटर और ५०० गज होते हैं।
सात लाख योजन में १०१८१८१८ किलोमीटर और २०० गज होते हैं।
इकतालीस हजार योजन में ५९६३६३ किलोमीटर और ७०० गज होते हैं।
पच्चीस लाख योजन में ३६३६३६३६ किलोमीटर और ४०० गज
होते हैं।

चतुर्दशसु मनुषु-चतुर्दश-इन्द्राणां नामानि विष्णुपुराण-वायुपुराणयोः-उक्तानि-तानि-अत्र लिखामि—

सुन्दरी टीका—चौदह मनुओं=(मन्वन्तरों) के चौदह इन्द्रों के नाम विष्णु-पुराण और वायुपुराण में कहे हैं, उन नामों को मैं यहाँ पर लिखता हूँ—

स्वायं भुवं तु कथितं कल्पादावन्तरं मया।
देवाः सप्तर्षयश्चैव यथावत् कथिता मया ॥१॥
तेषामिन्द्रस्तदा ह्यासीद् विश्वभुक् प्रथमस्तदा ॥२॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मनोः स्वारोचिषस्य तु।

विपश्चित् तत्र देवेन्द्रो मैत्रेयासीन् महाबलः ॥३॥
तृतीयेऽप्यन्तरे वह्मन्नुत्तमो नाम यो मनुः।
सुशान्ति र्नाम देवेन्द्रो मैत्रेयासीत् सुरेश्वरः ॥४॥
तामसस्यान्तरे देवाः सुपारा हरयस्तथा।
शिविरिन्द्रस्तथा चासीच्छतयज्ञोपलक्षणः ॥५॥
पंचमे वापि मैत्रेय! रैवतो नाम नामतः।
मनु विभुश्च तत्रेन्द्रो देवांश्चात्रान्तरे शृणु ॥६॥

सुन्दरी टीका—कल्प के आदिकाल में (१) स्वयम्भुव नाम से प्रसिद्ध प्रथम मनु होता है, प्रथम मन्वन्तर काल के देवता और सात ऋषियों का विवेच भी शास्त्रों में विस्तार पूर्वक किया गया है ॥१॥

प्रथम मन्वन्तर काल के देवता और ऋषियों तथा उस समय के सभी अन्य जीवों का प्रधान देवता (१) विश्वभुक् नाम से प्रसिद्ध प्रथम इन्द्र था ॥२॥

[ऊपर लिखा द्वितीय श्लोक विष्णपुराण में तृतीय अंश के प्रथम अध्याय में आठवें श्लोक की व्याख्या के अवसर पर "विष्णुचित्तीय" टीका में और श्रीधर-स्वामिकृत "आत्मप्रकाश" टीका में तथा वायुपुराण में उपलब्ध है]

स्वायम्भुव मनु का कार्यकाल समाप्त होने पर (२) स्वारोचिष—नाम से प्रसिद्ध द्वितीय मनु का कार्यकाल प्रारम्भ हुआ था, स्वारोचिष के कार्यकाल में (२) विपश्चित्-नाम से प्रसिद्ध द्वितीय इन्द्र हुआ था ॥३॥

स्वारोचिष मनु का कार्यकाल समाप्त होने पर तृतीय मन्वन्तर में (३) उत्तम नाम से प्रसिद्ध तृतीय मनु का कार्यकाल प्रारम्भ हुआ था। तृतीय मनु के कार्यकाल में (३) सुशान्ति नाम से प्रसिद्ध इन्द्र हुआ था ॥४॥

तृतीय मनु का कार्यकाल समाप्त होने पर (४) तामस-नाम से प्रसिद्ध चतुर्थ मनु का कार्यकाल प्रारम्भ हुआ था। चौथे मनु के कार्यकाल में अश्वमेध नाम के सौ यज्ञों को करने वाला (४) शिवि-नाम से प्रसिद्ध चौथा इन्द्र हुआ था। मन्वन्तरों के देवता और इन्द्र सभी विषयों में पारङ्गत हुआ करते हैं ॥५॥

चौथे मनु का कार्यकाल समाप्त होने पर (५) रैवत-नाम से प्रसिद्ध पाँचवें मनु का कार्यकाल प्रारम्भ हुआ था। पाचवें मनु के कार्यकाल में (५) विभु-नाम से प्रसिद्ध पाँचवा इन्द्र हुआ था ॥६॥

पूर्वकथित—स्वारोचिष, उत्तम, तामस, और रैवत, ये चारों मनु प्रियव्रत नाम से प्रसिद्ध महारथी राजा के वंशज थे ॥७॥

षष्ठे मन्वन्तरे चासीच्चाक्षुषाख्यस्तथा मनुः।
मनोजवस्तथैवेन्द्रो देवानपि निबोध मे ॥८॥

सुन्दरी टीका—पाँचवें मनु का कार्यकाल समाप्त होने पर (६) चाक्षुष नाम

से प्रसिद्ध छटे मनु का कार्यकाल प्रारम्भ हुआ था, छटे मनु के कार्यकाल में (६) मनोजव-नाम से प्रसिद्ध छटा इन्द्र हुआ था ॥८॥

विवस्वतः सुतो विप्र श्राद्धदेवो महाद्युतिः ।
मनुः संवर्तते धीमान् साम्प्रतं सप्तमेऽन्तरे ॥९॥

सुन्दरी टीका—छटे मनु का कार्यकाल समाप्त होने पर विवस्वत् (सूर्य) के पुत्र महातेजस्वी (७) श्राद्धदेव या वैवस्वत नाम से प्रसिद्ध सातवाँ मनु इस सातवें मन्वन्तर काल में प्रचलित है ॥९॥

आदित्य (सूर्य) वसु, रुद्र आदि देवता इस सातवें मन्वन्तर में प्रधान रूप से हैं, देवताओं का स्वामी (७) "पुरन्दर" नाम से प्रसिद्ध सातवाँ इन्द्र है ॥१०॥

वसिष्ठः कश्यपोऽथात्रि र्जमदग्निः सगौतमः ।
विश्वामित्रभरद्वाजौ सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ॥११॥
इक्षुकश्च नृगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च ।
नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाभागोऽरिष्ट एव च ॥१२॥
करुषश्च पृषध्रश्च सुमहान् लोकविश्रुतः ।
मनो वैवस्वतस्यैते नवपुत्राः सुधार्मिकाः ॥१३॥

सुन्दरी टीका—वैवस्वत मनु के इस सातवें मन्वन्तरकाल में—वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम विश्वामित्र और भारद्वाज, ये सात ऋषि प्रधान रूप से होते हैं ॥११॥

१. इक्षुक, २. नृग, ३. धृष्ट, ४. शर्याति, ५. नरिष्यन्त, ६. नाभाग, ७. अरिष्ट, ८. करुष, ९. पृषध्र विश्वविख्यात धर्मशील ये नौ पुत्र वैवस्वत मनु के हुए हैं ॥१२॥१३॥

छायासंज्ञासुतो योऽसौ द्वितीयः कथितो मनुः ।
पूर्वजस्य सवर्णोऽसौ सावर्णिस्तेन कथ्यते ॥१४॥

सुन्दरी टीका—सूर्य की पत्नी छाया से प्रथम पुत्र श्राद्धदेव=(वैवस्वत) और द्वितीय पुत्र सावर्णि उत्पन्न हुआ था। श्राद्धदेव के तेज के समान ही द्वितीय पुत्र का भी तेज था, अतएव-इस द्वितीय पुत्र का नाम सावर्णि रखा गया था।

[पूर्वजस्य=श्राद्धदेवस्य, सवर्णेन=सूर्यसुतत्वात् अथवा स्वरूपत्वात्-सावर्णिः कथ्यते]

अपने से पूर्वज श्राद्धदेव के समान सूर्य से ही उत्पत्ति होने से अथवा श्राद्धदेव के समान स्वरूप होने से सावर्णि नाम पड़ा था।

श्राद्धदेव या वैवस्वत नाम से प्रसिद्ध सातवें मनु का कार्यकाल समाप्त होते पर (८) सावर्णि नाम से प्रसिद्ध आठवें मनु का मन्वन्तरकाल प्रारम्भ होगा ॥१४॥

विष्णुप्रसादावनद्यः पातालान्तरगोचरः ।
विरोचनसुतस्तेषां बलिरिन्द्रो भविष्यति ॥१५॥

सुन्दरी टीका—भगवान् विष्णु के प्रसाद=(वरदान) से सर्वैश्वर्यसम्पन्न तथा पाताल लोक में निवास करने वाला विरोचन का पुत्र (८) वलि नाम से प्रसिद्ध आठवाँ इन्द्र देवताओं का अधिपति होगा ॥१५॥

नवमो दक्षसावर्णि र्भविष्यति मुने ! मनुः ।
तेषामिन्द्रो महावीर्यो भविष्यत्यद्भुतो द्विज ॥१६॥
दशमो ब्रह्मसावर्णि र्भविष्यति मुने ! मनुः ।
तेषामिन्द्रश्च भविता शान्ति र्नाम महाबलः ॥१७॥

सुन्दरी टीका—आठवें मनु का कार्यकाल समाप्त होने पर (९) दक्षसावर्णि—नाम से प्रसिद्ध नवमें मनु का कार्यकाल प्रारम्भ होगा। नवमें मनु के मन्वन्तरकाल में महापराक्रमी (९) अद्भुत - नाम से प्रसिद्ध नवमाँ इन्द्र उन देवताओं का अधिपति होगा ॥१६॥

नवमें मनु का कार्यकाल समाप्त होने पर (१०) ब्रह्मसावर्णि - नाम से प्रसिद्ध दशमा मनु होगा।

दशमें मन्वन्तर काल में (१०) शान्ति - नाम से प्रसिद्ध दशमा इन्द्र उन देवताओं का इन्द्र=(अधिपति=राजा) होगा ॥१७॥

एकादशश्च भविता धर्मसावर्णिको मनुः ।
एकैकस्त्रिशकस्तेषां गणश्चेन्द्रश्च वै वृषः ॥१८॥

सुन्दरी टीका—दशमें मनु का कार्यकाल समाप्त होने पर ग्यारहवें मन्वन्तर में (११) धर्मसावर्णि - नाम से प्रसिद्ध ग्यारहवाँ मनु होगा। उस समय (११) वृष-नाम से प्रसिद्ध ग्यारहवाँ इन्द्र - उन समस्त देवताओं का इन्द्र (राजा) होगा ॥१८॥

रुद्रपुत्रस्तु सावर्णि र्भविता द्वादशो मनुः ।
ऋतुधामा च तत्रेन्द्रो भविता शृणु मे सुरान् ॥ १९॥

सुन्दरी टीका— ग्यारहवें मनु का कार्यकाल समाप्त होने पर बारहवें मन्वन्तर काल में (१२) रुद्रसावर्णि नाम से प्रसिद्ध बारहवाँ मनु होगा। उस समय (१२) ऋतुधामा - नाम से प्रसिद्ध बारहवाँ इन्द्र होगा ॥१९॥

त्रयोदशे रुचि र्नामा भविष्यति मुने ! मनुः ।
दिवस्पति र्महावीर्यस्तेषामिन्द्रो भविष्यति ॥२०॥

सुन्दरी टीका—बारहवें मनु का कार्यकाल समाप्त होने पर (१३) रुचि—नाम से प्रसिद्ध तेरहवाँ मनु होगा। तेरहवें मन्वन्तर काल में देवलोक में रहने वाले देवताओं का इन्द्र (राजा) (१३) दिवस्पति - नाम से प्रसिद्ध होगा, वह दिवस्पति महापराक्रमी होगा ॥२०॥

भौमश्च चतुर्दशश्चात्र मैत्रेय ! भविता मनुः ।
शुचिरिन्द्रः सुरगणा स्तत्र पञ्च शृणुष्व तान् ॥२१॥

सुन्दरी टीका—तेरहवें मनु का कार्यकाल समाप्त होने पर चौदहवें मन्वन्तर

काल में (१४) भौम - नाम से प्रसिद्ध चौदहवां मनु होगा। उस समय देवताओं का राजा (१४) शुचि - नामसे प्रसिद्ध चौदहवाँ इन्द्र होगा ॥२१॥

एकस्मिन् कल्पे पूर्वोक्तरीत्या चतुर्दश - मनवः चतुर्दश - इन्द्राश्च भवन्ति। स्वस्वमनुकाले पूर्वोक्ताश्चतुर्दशेन्द्राः एव वृष्टिं कुर्वन्ति।

सुन्दरी टीका—पूर्वोक्त प्रकार से,एककल्प में चौदह मनु और चौदह इन्द्र होते हैं। अपने - अपने मनुकाल में वे इन्द्र ही भूगोल पर वर्षा को किया करते हैं।

विशेषविमर्श—एक कल्प के चौदह मनु और चौदह इन्द्रों के सम्बन्ध में संस्कृतवाङ्‌मय के अनेक ग्रन्थों में विस्तृत विचार करने के पश्चात्—निर्णय किया गया है कि—सृष्टि के आदि से अन्त तक पूर्वोक्त चौदह मनु और चौदह इन्द्र कभी मरते नहीं हैं, मनु और इन्द्र सृष्टि के अन्तर्गत - मन्वन्तर नाम से प्रसिद्ध अपने कार्यकाल में ऐश्वर्य और शासन का उपभोग करके, अपना कार्यकाल समाप्त होने पर—अनन्त आकाश में स्थित महर्लोक, जनलोक और तपः आदि लोकों में स्वेच्छा से ही चले जाते हैं। अपने पूर्ववर्ती मनु और इन्द्र का कार्यकाल समाप्त होने पर—महः, जनः और तपः आदि लोकों में निवास करने वाले मनु और इन्द्र उन लोकों से नीचे के लोकों में आकर अपने लिये क्रमशः नियत किये गये मन्वन्तर काल में स्वयं ही शासन करने लगते हैं।

ये मनु और इन्द्र मन्वन्तर काल में अपना शासन करने के लिये तथा सृष्टि का ऐश्वर्य भोगने के लिये एवं सृष्टि का पालन पोषण आदि करने के लिये ईश्वरीय-संविधान = (चारों वेद) में वर्णित नियमों का दृढ़ता से पालन करते हैं।

सत्ता अथवा ऐश्वर्य के प्रलोभन से मनुओं और इन्द्रों में—इलेक्शन = चुनाव अथवा अन्य किसी भी प्रकार का संघर्ष कभी नहीं होता है, क्योंकि उनके शासन और ऐश्वर्य भोगने का समय ईश्वर की ओर से ही निश्चय किया हुआ है।

विष्णुशब्दार्थ - व्युत्पत्ति चात्र लिखामि—

यस्माद् विष्टमिदं विश्वं तस्य शक्त्या महात्मनः।
तस्मात् स प्रोच्यते विष्णु र्विशधातोः प्रवेशनात् ॥३॥

सर्वे च देवा मनवस्समस्ताः—
सप्तर्षयो ये मनुसूनवश्च।
इन्द्रश्च योऽयं त्रिदशेशभूतो—
विष्णोरशेषास्तु विभूतयस्ताः ॥२३॥

सुन्दरी टीका—जिस महापुरुष की शक्ति से समस्त विश्व की उत्पत्ति - पालन पोषण और उपसंहार होता है, सर्वशक्तिमान् होने से उस महापुरुष को "विष्णु" शब्द से पुकारा जाता है। विश् प्रवेशने धातु से विष्णु शब्द बनता है ॥३॥

सब देवता, सब मनु, सप्त ऋषि, मनु के पुत्र, देवलोक का राजा इन्द्र, ये सब भगवान् विष्णु की ही विभूतियाँ हैं ॥२३॥

एकस्मिन् कल्पे चतुर्दशमनूनां चतुर्दश-इन्द्राणां च नामबोधकं तथा चतुर्दशमनूनां चतुर्दश सन्धीनां कल्पादिसन्धेश्च कालमानबोधकं चित्रम्

मनुसंख्या	मनूनां नामानि	इन्द्राणां नामानि	सन्धिसंख्या	मनूनां सन्धीनां च क्रमः	मनूनां सन्धीनां च वर्षाणि		मनुसन्धिषु जलप्लवः
			कल्पादौ १५	सन्धिवर्षाणि	= १७२८०००	=	जलमग्नाभूमिः
१.	स्वायम्भुवः	विश्वभुक्		मनुवर्षाणि	=३०६७२००००	=	मनुशासनकालः
			सन्धिसंख्या १	सन्धिवर्षाणि	= १७२८०००	=	जलमग्नाभूमिः
२.	स्वारोचिषः	विपश्चित्		मनुवर्षाणि	=३०६७२००००	=	मनुशासनकालः
			सन्धिसंख्या २	सन्धिवर्षाणि	= १७२८०००	=	जलमग्नाभूमिः
३.	उत्तमः	३. सुशान्तिः		मनुवर्षाणि	=३०६७२००००	=	मनुशासनकालः
			सन्धिसंख्या ३	सन्धिवर्षाणि	= १७२८०००	=	जलमग्नाभूमिः
४.	तामसः	४. शिविः		मनुवर्षाणि	=३०६७२००००	=	मनुशासनकालः
			सन्धिसंख्या ४	सन्धिवर्षाणि	= १७२८०००	=	जलमग्नाभूमिः
५.	रैवतः	५. विभुः		मनुवर्षाणि	=३०६७२००००	=	मनुशासनकालः
			सन्धिसंख्या ५	सन्धिवर्षाणि	= १७२८०००	=	जलमग्नाभूमिः
६.	चाक्षुषः	६. मनोजवः		मनुवर्षाणि	=३०६७२००००	=	मनुशासनकालः
			सन्धिसंख्या ६	सन्धिवर्षाणि	= १७२८०००	=	जलमग्नाभूमिः
७.	वैवस्वतः(श्राद्धदेवः)	७. पुरन्दरः		मनुवर्षाणि	=३०६७२००००	=	मनुशासनकालः
			सन्धिसंख्या ७	सन्धिवर्षाणि	= १७२८०००	=	जलमग्नाभूमिः
८.	सावर्णिः	८. बलिः		मनुवर्षाणि	=३०६७२००००	=	मनुशासनकालः
			सन्धिसंख्या ८	सन्धिवर्षाणि	= १७२८०००	=	जलमग्नाभूमिः
९.	दक्षसावर्णिः	९. अद्भुतः		मनुवर्षाणि	=३०६७२००००	=	मनुशासनकालः
			सन्धिसंख्या ९	सन्धिवर्षाणि	= १७२८०००	=	जलकग्नाभूमिः
१०.	ब्रह्मसावर्णिः	१०. शान्तिः		मनुवर्षाणि	=३०६७२००००	=	मनुशासनकालः
			सन्धिसंख्या १०	सन्धिवर्षाणि	= १७२८०००	=	जलमग्नाभूमिः

११.	धर्मसावर्णिः	११. वृषः	मनुवर्षाणि	=३०६७२००००	= मनुशासनकालः
			सन्धिसंख्या ११ सन्धिवर्षाणि	= १७२८०००	= जलमग्नाभूमिः
१२.	रुद्रसावर्णिः	१२. ऋतुधामा	मनुवर्षाणि	=३०६७२००००	= मनुशासनकालः
			सन्धिसंख्या १२ सन्धिवर्षाणि	= १७२८०००	= जलमग्नाभूमिः
१३.	रुचिः	१३. दिवस्पतिः	मनुवर्षाणि	=३०६७२००००	= मनुशासनकालः
			सन्धिसंख्या १३ सन्धिवर्षाणि	= १७२८०००	= जलमग्नाभूमिः
१४.	भौमः	१४. शुचिः	मनुवर्षाणि	=३०६७२००००	= मनुशासनकालः
			सन्धिसंख्या १४ सन्धिवर्षाणि	= १७२८०००	= जलमग्नाभूमिः

सर्वेषां योगे वर्षाणि =४३२००००००

"तद्द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम् । सूर्याब्दसंख्यया - द्वि - त्रि-सागरैरयुताहतैः" इति सूर्यसिद्धान्तोक्तेः एकस्मिन् महायुगे "४३२ × १००००=४३२००००" वर्षाणि भवन्ति । इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहारकारकः । कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती" इति सूर्यसिद्धान्तोक्तेः - एकस्मिन् कल्पे=ब्राह्मदिने-एकसहस्र-१००० प्रमितमहायुगवर्षाणि="४३२०००० × १०००=४३२००००००० " वर्षाणि भवन्ति । एतान्येव वर्षाणि पंचदश-सन्धि-सहित चतुर्दश- मनूनां योगे कृते समागतानि सन्ति । एकमहायुगसौरवर्षैः- एककल्पवर्षेषु विभज्य=४३२००००००० /१ ÷ ४३२००००/१ = ४३२०००००००/१ × १/४३२०००० = १००० महायुगानां ब्राह्मदिनं भवति, तावती च रात्रिः भवति । परमायुः शतं तस्य तयाऽहोरात्रसंख्यया । आयुषोऽर्धमितं तस्य शेषकल्पोऽयमादिमः ।। इति – सूर्यसिद्धान्तोक्तेः — ४३२००००००० × २ =८६४००००००० = वर्षाणि - ब्रह्मणः - एकस्मिन् - अहोरात्रे भवन्ति ।

× ३०

२५९२०००००००० =वर्षाणि - ब्रह्मणः एकस्मिन् - मासे - भवन्ति ।

× १२

३११०४०००००००० = वर्षाणि ब्रह्मणः - एकस्मिन् - वर्षे - भवन्ति ।

× १००

३११०४००००००००००० = वर्षाणि - ब्रह्मणः- शत "१००" वर्षेषु भवन्ति ।

"निजेनैव तु मानेन - कायु वर्षशतं स्मृतम् । तत्पराख्यं तदर्धं तु परार्धमभिधीयते" ।। इति विष्णुपुराणोक्तेः ।। सूर्यसिद्धान्तेन सह पुराणग्रन्थानां एकवाक्यता सम्पद्यते ।

अथात्र शोधकार्य-प्रसङ्गागतां-नाक्षत्रदिन - सावनदिनयोः - व्यवस्थां तथा च - चान्द्र - सौर - दिव्यवर्ष - व्यवस्थां दर्शयामि——

सुन्दरी टीका—यहाँ पर शोधकार्य के प्रसङ्ग में नक्षत्रदिन, सावनदिन, चान्द्र-दिन, सौरदिन और दिव्यवर्ष को प्रस्तुत करता हूँ—

नाडीषष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम् ।
तत्त्रिंशता भवेन्मासः सावनोऽर्कोदयैस्तथा ॥१॥

चतुर्विंशति="२४"मिनटैः - अर्थात् - षष्टि="६०" पलैः - एका नाडी - अर्थात् - एका घटी भवति । ताभिः षष्टिघटीभिः - एकं नाक्षत्रं (नक्षत्रसम्बन्धि) अहोरात्र=दिनं भवति । त्रिंशद्भिः - नाक्षत्रैः - दिनैः - एको नाक्षत्रमासो भवति । द्वादश-नाक्षत्र - मासैः :- एकं नाक्षत्रवर्षं भवति ।

अनयैव रीत्या सूर्योदयद्वयान्तगर्तं कालमानं सावनदिनं भवति । त्रिंशद्भिः - तैः सावन-दिनैः एकः सावनमासो भवति, द्वादशभिः सावनमासैः - एकं सावनवर्षं भवति ।

सुन्दरी टीका—एक मिनट में ढाई पल होते हैं, चौबीस मिनट या साठ पल की एक घटी होती है । साठ घटी का एक नाक्षत्र=(नक्षत्र सम्बन्धी) दिन होता है । तीस नाक्षत्र दिन का एक नाक्षत्र मास होता है । बारह नाक्षत्र मास का एक नक्षत्र वर्ष होता है । इसी प्रकार दो सूर्योदय के मध्यवर्ती काल को सावनदिन कहा जाता है । तीस सावन दिन का एक सावन मास होता है । बारह सावन मासों का एक सावन - वर्ष होता है ॥१॥

ऐन्दवस्तिथिभि स्तद्वत् संक्रान्त्या सौर उच्यते ।
मासै र्द्वादशभि र्वर्षं दिव्यं तदह उच्यते ॥२॥

शुक्लपक्षस्य प्रतिपदातः - आरभ्य कृष्णपक्षस्य अमावास्यान्तं यावत्तावत्-त्रिंशत् "३०" तिथयः - भवन्ति । ताभिः त्रिंशत्तिथिभिः - एकश्चान्द्रो मासो भवति ।

सूर्यसंक्रान्तिद्वयान्तर्गतकालेन एकः सौरः = (सूर्यसम्बन्धी) मासो भवति । सूर्यराशेः - एकांशभोगकालः - एकं सौरं दिनं ज्ञेयम्, त्रिंशद्भिः "३०" सौरदिनैः-एकः सौरमासो भवति । तैः - द्वादशभिः सौरमासैः - एकं सौरवर्षं भवति । तदेव सौरवर्षं दिव्यं=देवानां सम्बन्धि अहः=दिनम् = अर्थात्—देवानां अहोरात्रम् उच्यते= कथ्यते, अथवा व्यवह्रियते ॥२॥

सुन्दरी टीका—शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि से अमावस्या के अन्त तक तीस तिथियाँ होती हैं, उन तीस तिथियों का एक चान्द्रमास होता है, सूर्य जिस राशि का भोग करता है, उस राशि के एक अंश का भोग जितने समय में करता है, उतने समय या काल की "सौरदिन" संज्ञा होती है, तीस सौर दिन का एक सौर मास होता है । बारह सौर मासों का एक सौरवर्ष होता है, वही सौरवर्ष देवताओं का एक दिव्य दिन कहा जाता है ॥२॥

"सुरासुराणामन्योऽन्यमहोरात्रं विपर्ययात् ।
तत् षष्टिः षड्गुणा दिव्यं वर्षमासुरमेव च ॥"

सूर्यसिद्धान्तोक्तस्य - उपर्युक्तपद्यस्य - अयं भावः--

देवासुराणाम् - अहोरात्रम्, अन्योऽन्यम्=परस्परम् विपर्ययात्=व्यत्यासात् - भवति, अर्थात् - देवानां यदा - दिनं भवतिः, असुराणां तदा रात्रिर्भवति, देवानां यदा - रात्रिः भवति, असुराणां तदा दिनं भवति, एवं च दैत्यानां यदा - दिनं भवति, देवानां तदा रात्रिः भवति, दैत्यानां यदा - रात्रिः भवति, देवानां तदा दिनं भवतीत्यर्थः ।

तेषां दिव्याहोरात्राणां षष्टिः षड्गुणा=६० × ६=३६० सौरवर्षाणां संख्यया-एकं दिव्यम्=देवसम्बन्धि, आसुरम्=असुरसम्बन्धि च वर्षम् - भवति, एकसौरवर्ष-प्रमितकालमानं देवासुराणामेकं दिव्यदिनं भवति, त्रिंशद्भिः - दिव्यदिनैः - एको दिव्यमासो भवति, द्वादशभि दिव्यमासैः=३० × १२=३६०=दिव्यदिनैः=३६० सौरवर्षैः - एकं दिव्यवर्षं भवतीति सारांशः ।

सुन्दरी टीका—सूर्यसिद्धान्त में कहे गये उपर्युक्त श्लोक का सारांश यह है कि-देवता और राक्षसों के दिन-रात एक दूसरे से बिलकुल विपरीत=(उलटे) होते हैं, देवताओं का जब दिन होता है, तब राक्षसों की रात्रि होती है, देवताओं की जब रात्रि होती है-तब राक्षसों का दिन होता है, और इसी प्रकार से दैत्यों=[राक्षसों] का जब दिन होता है-तब देवताओं की रात्रि होती है, राक्षसों की जब रात्रि होती है-तब देवताओं का दिन होता है ।

तीन सौ साठ=[३६०] सौरवर्षों का एकवर्ष देवताओं और राक्षसों का होता है । एक सौरवर्ष का एक दिव्यदिन देवताओं और राक्षसों का होता है । तीस=(३०) दिव्यदिन का एक दिव्य मास देवताओं और राक्षसों का होता है, बारह=(१२) दिव्यमासों या ३६० दिव्यदिनों या ३६० सौरवर्षों का एक दिव्यवर्ष होता है, यही दिव्यवर्ष देवता और राक्षसों का वर्ष कहलाता है ।

"युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते ।
कृताब्दसंख्यस्तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः" ॥१॥

अस्य पद्यस्य-अयं भावः—महायुगानां सैकासप्ततिः अर्थात्-एकसप्ततिमहायुगैः-मन्वन्तरम्=मन्वारम्भ - तत्समाप्तिकालयोः - अन्तर्गतकालमानम्, इह=कालगणना-शास्त्रे-कालगणना विशेषज्ञैः - उच्यते=कथ्यते, तस्य=मन्वन्तर-कालस्य - अन्ते=विरामे, कृताब्दसंख्यः=कृताब्दानां=कृतयुगवर्षाणां संख्या विद्यते यस्मिन् सः कृताब्द-संख्यः, सन्धिः=प्रथममनुसमाप्ति - द्वितीयमन्वारम्भकालयो र्मध्ये कृतयुगसौरवर्षतुल्यः सन्धिः कालशास्त्रज्ञैः प्रोक्तः, सन्धिकाले जलप्लवः=सम्पूर्णा पृथिवी जले विमग्ना जलपूर्णा च भवतीत्यर्थः ।

प्रत्येकमनुसमाप्तौ सत्यां - कृतयुग - सौरवर्ष - कालमानान्तं यावत्तावत् - प्रलयकालस्य - इव - स्थितिः - भवति, न तु प्रलयो भवति, समस्ता पृथिवी जले विमग्ना-तदानींतनकाले जायते-इति भावः ।

सुन्दरी टीका—इकहत्तर=(७१) महायुगों का एक मन्वन्तर होता है, मनु के आरम्भ से समाप्ति तक के समय को मन्वन्तर कहते हैं, प्रचलित-मन्वन्तरकाल की समाप्ति होने पर अग्रिम मन्वन्तर के प्रारम्भ होने से पूर्व कृतयुग के सौरवर्षों की संख्या के बराबर अर्थात् सत्रह लाख अट्ठाईस हजार "१७२८०००" सौरवर्ष तक का समय प्रचलित और अग्रिम दोनों मन्वन्तरों के बीच में स्थित "सन्धि" काल कहलाता है, इस सन्धिकाल में सम्पूर्ण पृथिवी जल से परिपूर्ण होकर जल में डूब जाती है।

निष्कर्ष यह है कि—प्रत्येक मनु की समाप्ति होने पर सत्रह लाख अट्ठाईस हजार (१७२८०००) वर्ष तक समस्त संसार के प्राणी और पृथिवी जल में डूब जाते हैं, उस समय वास्तविक प्रलय न होकर प्रलयकाल जैसी स्थिति संसार की बन जाती है।

ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश ।
कृतप्रमाणः कल्यादौ सन्धिः पंचदशः स्मृतः ॥३॥

कल्पेऽर्थात् - एकस्मिन् ब्राह्मदिने ते मनवः - चतुर्दश भवन्ति, चतुदशमनूनाम्-अन्ते - कृतयुगसौरवर्षमानतुल्याः - चतुर्दश सन्धयो भवन्ति, कल्पारम्भे तु कृतयुग-प्रमाणतुल्यः पञ्चदशः सन्धिः भवति ।

"युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते" इत्युक्तेः एकस्मिन्-मन्वन्तरसमये-एकोत्तरसप्ततिः=७१ महायुगाः भवन्ति, कृत-त्रेता-द्वापर-कलियुग-संज्ञकानां-चतुर्युगानां समूहः - एव महायुगशब्देन अथवा चतुर्युगशब्देन व्यवह्रियते ।

सुन्दरी टीका—एक कल्प में चौदह मनु और चौदह मनुसन्धियाँ होती हैं, कल्प के आरम्भ में सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्ष का पन्द्रहवाँ सन्धिकाल होता है। एक मन्वन्तरकाल में इकहत्तर (७१) महायुग होते हैं। कृतयुग-त्रेतायुग-द्वापरयुग और कलियुग ये चारों युग मिलकर महायुग अथवा चतुर्युग कहलाते हैं।

प्रत्येकचतुर्युगान्ते-अनध्ययनादिभिः कारणैः - वेदादिप्रतिपादितानां सिद्धान्तानां सम्प्रदायानां च प्रायः विनाशो ह्रासश्च जायते, समुत्पन्नयोः - विनाशह्रासयोः - विनिवृत्तये - ईश्वरेच्छया देवाः स्वर्गात् भूमौ - अंशतः - अवतीर्य-अध्ययन-अध्यापनादि-कर्मभिः - वेदादिप्रतिपादित - सिद्धान्तस्य वेदादिसंप्रदायस्य च प्रसारं प्रचारं च कुर्वन्ति ।

सुन्दरी टीका—प्रत्येक चतुर्युग के अन्त में अनध्ययन आदिकारणों से वेदादि प्रतिपादित सिद्धान्तों का और वेदादिप्रतिपादित सम्प्रदायों का प्रायः विनाश और ह्रास हो जाता है। उस विनाश और ह्रास की निवृत्ति के लिये—ईश्वरेच्छा से देवता अंश रूप में स्वर्गलोक से भूमिलोक में अवतार या जन्म लेकर अध्ययन अध्यापनादि कर्मों से वेदादि प्रतिपादित सिद्धान्तों और सम्प्रदायों का प्रचार और प्रसार करते हैं।

अस्मिन् विषये श्री विष्णुपुराणस्य-तृतीये-अंशे द्वितीये-अध्याये पञ्चचत्वारिंशत् (४५) प्रमितात्-श्लोकात्-आरभ्य-अध्यायान्तं यावत्तावत् साधीयसी व्यवस्था प्रदत्ता-उपलभ्यते च अद्यापि तत्र ।

सुन्दरी टीका—इस विषय में श्री विष्णुपुराण के तृतीय अंश में द्वितीय अध्याय में पैंतालीस (४५) वें श्लोक से प्रारम्भ करके अध्याय के अन्त तक सुन्दर व्यवस्था दी हुई है, वह व्यवस्था विष्णुपुराण में आज भी उपलब्ध है ।

श्री विष्णुपुराणे अधस्तन-व्यवस्था-अस्ति—

चतुर्युगान्ते वेदानां जायतु किल विप्लवः ।
प्रवर्तयन्ति तानेत्य भुवं सप्तर्षयो दिवः ॥४५॥
कृते कृते स्मृते विप्र ! प्रणेता जायते मनुः ।
देवा यज्ञभुजस्तेतु यावन्मन्वन्तरं तु तत् ॥४६॥
भवन्ति ये मनोः पुत्रा यावन्मन्वन्तरं तु तैः ।
तदन्वयोद्भवैश्चैव तावद्भूः परिपाल्यते ॥४७॥
मनुः सप्तर्षयो देवा भूपालाश्च मनोः सुताः ।
मन्वन्तरे भवन्त्येते शक्रश्चैवाधिकारिणः ॥४८॥
चतुर्दशभिरेतैस्तु गतै र्मन्वन्तरै द्विज ! ।
सहस्रयुगपर्यन्तः कल्पो निश्शेष उच्यते ॥४९॥
ब्रह्मरूपधरश्शेते शेषाह्यावम्बुसम्प्लये ।
तावत् प्रमाणा च निशा ततो भवति सत्तम ! ॥५०॥

सुन्दरी टीका—श्री विष्णुपुराण में निम्नाङ्कित व्यवस्था दी गयी है—

चतुर्युग=(महायुग) के अन्त में वेद नष्ट - भ्रष्ट हो जाते हैं । दिव्यलोक से सप्तर्षि=(सातों ऋषि) भूगोल पर आकर वेदों का पुनः प्रवर्तन और प्रचार करते हैं ॥४५॥

प्रत्येक सतयुग के प्रारम्भ में मनुष्य धर्म की मर्यादाओं को स्थापित करने के लिये - मनु - का प्रादुर्भाव होता है, मन्वन्तर की समाप्ति तक मन्वन्तर के समय के देवता यज्ञों के भागों का उपभोग करते हैं ॥४६॥

मनु के पुत्र तथा मनुवंश में उत्पन्न हुए राजा मन्वन्तर के आरम्भ से अन्त तक पृथिवी का पालन पोषण करते हैं ॥४७॥

मनु-सप्तर्षिगण और उस समय के देवता तथा मनु के पुत्रगण एवं मनुवंश के अन्य राजागण और इन्द्र, ये सभी प्रत्येक मनु में अधिकारीगण की कोटि में माने जाते हैं ॥४८॥

इन चौदह=(१४) मन्वन्तरों के व्यतीत होने पर एक हजार महायुग तक रहने वाले "कल्प" का समय समाप्त हो जाता है ॥४९॥

चौदह मन्वन्तर जितने समय में व्यतीत होते हैं, उतना समय ब्रह्मा जी का दिन कहलाता है, ब्रह्मा के दिन के बराबर ही एक हजार महायुग की ब्रह्मा की

रात्रि होती है। ब्रह्मा की रात्रि के समय में समस्त संसार का प्रलय हो जाता है, और सब ओर प्रलयकालीन जल ही जल दिखाई पड़ता है, उस समय सृष्टि के समस्त तत्वों को और चराचर जगत् को अपने में विलीन करके, भगवान् विष्णु= ब्रह्मा के रूप में—प्रलयकालीन जल के अन्तर्गत शेषनाग की शैया पर शयन करते हैं ॥५०॥

अत्र "शेषाहौ" शब्दस्य - अयं भावः—दिवा ब्रह्मरूपधरो भगवान्, रात्रौ तु नारायणरूपेण - शेषश्चासौ - अहिः - शेषाहिः - तस्मिन् शेषाहौ= शेषसंज्ञके नागे शेते=शयनं करोतीति भावः।

सुन्दरी टीका—यहाँ पर—"शेषाहौ शेते" इस शब्द का यह अभिप्राय है कि—

अपनी सृष्टि में दिन के समय ब्रह्मा का रूप धारण करने वाले भगवान् - विष्णु अपनी रात्रि के समय - नारायण=ब्रह्मा के ही रूप में शेषनाग की शैया पर प्रलयकालीन जल में शयन करते हैं।

श्रीमद्‌भागवत-तृतीय-स्कन्धे-एकादशप्रमिते-अध्याये-कल्पादिव्यवस्था श्रीशुक-देवेन मुनिना समुक्ता तामत्र लिखामि—

सुन्दरी टीका—श्रीमद्‌भागवत पुराण के तृतीय स्कन्ध में ग्यारहवें अध्याय में कल्पादि की व्यवस्था को श्री शुकदेव मुनि ने कहा है, उस व्यवस्था को मैं यहां पर लिखता हूँ—

कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुर्युगम्।
दिव्यै र्द्वादशभि र्वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥१८॥
चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम्।
संख्यातानि सहस्राणि, द्विगुणानि शतानि च ॥१९॥
संध्यांशयोरन्तरेण यः कालः शतसंख्ययोः।
तमेवाहु र्युगं तद्ज्ञा यत्र धर्मो विधीयते ॥२०॥
धर्मश्चतुष्पान् मनुजान् कृते समनुवर्तते।
स एवान्येष्वधर्मेण व्येति पादेन वर्धता ॥२१॥
त्रिलोक्या युगसाहस्रं बहिराब्रह्मणोदिनम्।
तावत्येव निशा तात यन्निमीलति विश्वसृक् ॥२२॥

सुन्दरी टीका—कृतयुग=(सतयुग) त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग, ये चारों युग अपनी संध्या और सन्ध्यांशों के सहित बारह हजार=(१२०००) दिव्यवर्ष के सब मिलकर होते हैं ॥१८॥

कृत-त्रेता-द्वापर और कलियुग इन चारों युगों में क्रमशः - चार हजार= (४०००), तीन हजार=(३०००), दो हजार=(२०००) और एक हजार= (१०००) दिव्यवर्ष होते हैं।

प्रत्येक युग की हजार संख्या से द्विगुणित सौ दिव्यवर्ष युग की सन्ध्या और सन्ध्यांश के वर्ष होते हैं, तदनुसार सतयुग के दिव्यवर्ष=४०००

सतयुग के सन्धिसन्ध्यांशवर्ष	=	८००
त्रेता के दिव्यवर्ष	=	३०००
त्रेता के सन्धिसन्ध्यांशवर्ष	=	६००
द्वापर के दिव्यवर्ष	=	२०००
द्वापर के सन्धिसन्ध्यांशवर्ष	=	४००
कलियुग के दिव्यवर्ष	=	१०००
कलियुग के सन्धिसन्ध्यांशवर्ष	=	२००
कुलयोग दिव्यवर्ष	=	१२०००

प्रत्येक युग के आदि में सन्धिकाल और अन्त में उसी युग का सन्ध्यांश काल होता है। सन्धि और सन्ध्यांश की वर्षसंख्या को सैकड़ों की संख्या में बताया गया है। सन्धि और सन्ध्यांश के बीच में स्थित दिव्यवर्षात्मक काल को उस युग का काल कहते हैं। प्रत्येक युग के काल में प्रत्येक युग के धर्मों तथा मर्यादाओं और आचार विचार एवं व्यवहार का अलग अलग विधान वेदादिशास्त्रों में वर्णित है। प्रत्येक युग में युग के अनुसार धर्माचरण किया जाता है ॥२०॥

सतयुग में अपने चारों पैरों से युक्त धर्म सतयुग के मनुष्यों में रहता है, निष्कर्ष यह है कि– सतयुग के व्यक्ति पूर्णरूप से धर्माचरण करने वाले होते हैं, त्रेता–द्वापर और कलियुग में क्रमशः एक एक चरण धर्म का ह्रास होकर एक एक चरण अधर्म का बढ़ जाता है, तदनुसार – त्रेता में तीन चरण धर्म और एक चरण पाप रहता है। द्वापर में दो चरण धर्म और दो चरण पाप रहता है। कलियुग में एक चरण धर्म और तीन चरण पाप रहता है ॥२१॥

खगोल में त्रिलोकी अर्थात्—भूः - भुवः - स्वः - नाम से प्रसिद्ध तीनों लोकों से उपर के भाग में ब्रह्मलोक तक एक हजार महायुगों या चतुर्युगों का एक दिन ब्रह्मा जी का होता है। एक हजार महायुगों की ही ब्रह्मा जी की रात्रि होनी है, इसी रात्रि में ब्रह्मा जी त्रिलोकी के अन्तर्गत चराचरजगत् का संहार करके शयन करते हैं ॥२२॥

द्वाविंशति - [२२] सङ्ख्याङ्कितस्य - उक्त- श्लोकस्य तु- अयं भावः— भू- र्भुवः- स्वः- संज्ञकेभ्यः- त्रिलोकेभ्यः- बहिः— उपरिभागे, आब्रह्मणः=ब्रह्मलोकपर्यन्तं यावत्तावत्- यद्- ब्रह्मणो दिनं भवति, तस्य दिनस्य मानं तु भू- र्भुवः- स्वः- संज्ञकानां त्रिलोकानाम्- अन्तर्गत यच्चतुर्युगमानम्=कृत - त्रेता - द्वापर - कलीनां- मानम् तत्- एकत्र संयोज्य, यद् भवति वर्षात्मकं तत् तुल्यं चतुर्युगसहस्रं - अर्थात्-चतुर्युगानां सहस्र- संख्यातुल्यं- एकं दिनं भवति ब्रह्मणः, चतुर्युगसहस्रवर्षैः- एव तस्य ब्रह्मणः रात्रिः- भवति। तस्यां रात्रौ चराचरात्मकं त्रिलोकान्तर्गतं जगत् संहृत्य ब्रह्मा शेते = शयनं करोति।

सुन्दरी टीका— इस गद्यांश का अर्थ पहले ही हो चुका है।

निशावसान आरब्धो लोककल्पोऽनुवर्तते।
यावद् दिनं भगवतो मनून् भुञ्जंश्चतुर्दश ॥२३॥

स्वं स्वं कालं मनु र्भुङ्क्ते साधिकां ह्येकसप्ततिम् ।
मन्वन्तरेषु मनवस्तद्वंश्या ऋषयः सुराः ॥२४॥
भवन्ति चैव युगपत् सुरेशाश्चानु ये च तान् ॥२५॥
एष दैनन्दिनः सर्गो ब्राह्मस्त्रैलोक्यवर्तनः ।
तिर्यङ्नृपतिदेवानां सम्भवो यत्र कर्मभिः ॥२६॥
मन्वन्तरेषु भगवान् बिभ्रत् सत्वं स्वभूतिभिः ।
मन्वादिभिरिदं विश्वमवत्युदितपौरुषः ॥२७॥
तमो मात्रामुपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः ।
कालेनानुगताशेष आस्ते तूष्णीं दिनात्यये ॥२८॥
तमेवान्वपिधीयन्ते लोका भूरादयस्त्रयः ।
निशायामनुवृत्तायां निर्मुक्त - शशि- भास्करम् ॥२९॥
त्रिलोक्यां दह्यमानायां शक्त्या सङ्कर्षणाग्निना ।
यान्त्यूष्मणा महर्लोकात् - जनं भृग्वादयोऽर्दिताः ॥३०॥
तावत् त्रिभुवनं सद्यः कल्पान्तैधितसिन्धवः ।
प्लावयन्त्युत्कटाटोप चण्डवातेरितोर्मयः ॥३१॥
अन्तः स तस्मिन् सलिल आस्तेऽनन्तासनो हरिः ।
योगनिद्रानिमीलाक्षः स्तूयमानो जनालयैः ॥३२॥

सुन्दरी टीका— २३ वें श्लोक से २९ वें श्लोक तक का सारांश यह है कि- ब्रह्मा की रात्रि व्यतीत होने पर - इस भूलोक पर कल्प या ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ हो जाता है। ब्रह्मा के दिन में चौदह मनु इकहत्तर महायुगों से कुछ अधिक समय तक- अपने अपने समय में ऐश्वर्य का उपभोग और शासन करते हैं। मन्वन्तरों के आरम्भ में मनु - उनके वंशज - ऋषि - देवता और इन्द्र इन सब का ईश्वरेच्छा से एक साथ प्रादुर्भाव होता है। ब्रह्मा के प्रत्येक दिन में - भू- भुवः-स्वः- इन तीनों लोकों में सृष्टि का क्रम- अपने अपने कर्मों को भोगने के लिये होता है। मन्वन्तरों में भगवान् सत्वरूप को धारण करके मनु आदि अपने अनेक स्वरूपों द्वारा इस विश्व का पालन - पोषण और भरण करते हैं।

कालक्रम के अनुसार अपने दिन के बीतने पर तमोगुण का आश्रय लेकर, सृष्टि रचना स्वरूप अपने पुरुषार्थ का उपसंहार करके, भगवान् ब्रह्मा निश्चेष्ट भाव से शान्त मुद्रा में स्थित हो जाते हैं। उस समय - भू - भुवः - स्वः - ये तीनों लोक और सूर्य - चन्द्र आदि ब्रह्मा में विलीन हो जाते हैं ॥२९॥

उस समय शेषनाग स्वरूप भगवान् सङ्कर्षण के मुख से निकली हुई प्रलय - कालीन प्रबल अग्नि की ज्वालाओं से-भू - भुवः - स्वः, ये तीनों लोक जलने लगते हैं, जलतेहुए तीनों लोकों की लपटों से- महः - लोक भी सन्तप्त हो जाता है, महर्लोक में निवास करने वाले भृगु आदि ऋषिगण - प्रलयाग्नि की लपटों से सन्तप्त और दुःखी

होकर महर्लोक से ऊपर - जन - लोक में चले जाते हैं ।।३०।।

कल्प के अन्त में प्रलयकाल के समय में अपनी मर्यादाओं का परित्याग करके, उमड़ते हुए सातों समुद्र प्रलयकालीन प्रचण्डवायु के वेगों द्वारा ऊपर को ऊँची उछलती हुई भयङ्कर विशाल तरङ्गों = (लहरों) से तीनों लोकों को जल में डुबा देते हैं ।।३१।।

उस समय तीनों लोक जल में डूब जाने पर वह भगवान् ब्रह्मा के रूप में विष्णु-अनन्त शेषनाग की शैया का आसन ग्रहण करके, जल के मध्य में स्थित होकर योगनिद्रा से अपने नेत्रों को मूंदकर निश्चल भाव से शयन करते हैं, जन लोक निवासी भृगु आदि ऋषिगण प्रलयकालीन दृश्य को देखते हैं, और योगनिद्रा में अवस्थित भगवान् की स्तुति किया करते हैं ।।३२।।

एवं विधैरहोरात्रैः कालगत्योपलक्षितैः ।
अपेक्षितमिवास्यापि परमायुः वयः शतम् ।।३३।।
यदूर्धमायुषस्तस्य परार्धमभिधीयते ।
पूर्वः परार्धोऽपक्रान्तो ह्यपरोऽद्य प्रवर्तते ।।३४।।

पूर्वस्यादौ परार्धस्य ब्राह्मो नाम महानभूत् ।
कल्पो यत्राभवद् ब्रह्मा शब्दब्रह्मेति यं विदुः ।।३५।।
तस्यैव चान्ते कल्पोऽभूद् यं पाद्ममभिचक्षते ।
यद्धरे र्नाभिसरस आसील्लोकसरोरुहम् ।।३६।।
अयं तु कथितः कल्पो द्वितीयस्यापि भारत ! ।
वाराह इति विख्यातो यत्रासीत् सूकरो हरिः ।।३७।।

सुन्दरी टीका—पूर्वप्रतिपादित समय की गतिविधि से युक्त इस प्रकार के दिन और रात्रि की गणना के अनुसार - ब्रह्मा जी की आयु के सौ वर्ष=(१०० वर्ष) भी व्यतीत हुए से प्रतीत होते हैं ।।३३।।

ब्रह्मा की आयु का आधा भाग=(५० वर्ष) "परार्ध" कहलाता है । प्रथम "परार्ध" व्यतीत हो चुका है, आजकल द्वितीय परार्ध चल रहा है ।।३४।।

पूर्व परार्ध के प्रारम्भ में "ब्राह्म" नाम से महान् कल्प हुआ था, विद्वान् लोग जिसे "शब्द ब्रह्म" कहते हैं, उस ब्रह्मा का प्रादुर्भाव इसी- ब्राह्म - कल्प में हुआ था ।।३५।। उस प्रथम परार्ध के अन्त में जो कल्प हुआ था, उसे "पाद्मकल्प" कहते हैं । इसी "पाद्मकल्प" में ब्रह्मा के नाभिसरोवर से=(ब्रह्मा जी की नाभि=टूंड़ी से) सर्वलोकमय "सब लोक जिसके अन्तर्गत विद्यमान हैं" ऐसा - अद्भुत कमल प्रकट हुआ था ।।३६।।

इस समय द्वितीय - परार्ध - के प्रारम्भ में जो यह कल्प चल रहा है, वह "वाराहकल्प" नाम से प्रसिद्ध है । इसी - वाराहकल्प - में भगवान्- ने "सूकर=सुअर" का रूप धारण किया था ।।३७।।

कालोऽयं द्विपरार्धर्वाख्यो निमेष उपचर्यते ।
अव्याकृतस्यानन्तस्य - अन दे जगदात्मनः ॥३८॥
कालोऽयं परमाण्वादि द्विपरार्धान्त ईश्वरः ।
नैवेशितुं प्रभु र्भूम्न ईश्वरो धाममानिनाम् ॥३९॥
विकारैः सहितो युक्तै र्विशेषादिभिरावृतः ।
आण्डकोषो वहिरयं पञ्चाशत् कोटिविस्तृतः ॥४०॥
दशोत्तराधिकै र्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् ।
लक्ष्यते ऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः ॥४१॥
तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ।
विष्णो र्धाम परं साक्षात् पुरुषस्य महात्मनः ॥४२॥

सुन्दरी टीका—चराचर जगत् की आत्मा—अनादि - अनन्त - अव्याकृत भगवान् विष्णु के एकपलमात्र के तुल्य=(वरावर) यह द्विपरार्धकाल होता है ॥३८॥

परमाणु से लेकर—द्विपरार्धपर्यन्त - यह काल सर्वशक्तिमान् होते हुए भी भगवान् विष्णु पर किसी भी प्रकार का प्रभुत्व जमाने में असमर्थ होता है । देहादि में अभिमान रखने वाले और संसार की वस्तुओं में मोह रखने वाले जीवों पर ही यह काल अपना प्रभुत्व जमाने में समर्थ होता है ॥३९॥

अव्यक्त - महान् - अहङ्कार - पञ्चतन्मात्रा, इन आठ प्रकृतियों और ग्यारह इन्द्रियों तथा पञ्चमहाभूतों, इस प्रकार चौबीस तत्वों से बना हुआ यह ब्रह्माण्डकोष भीतरी भाग में पचास करोड़ योजन विस्तार युक्त है ॥४०॥

इसके चारों ओर पचास करोड़ योजन से उत्तरोत्तर दशगुने क्रमशः सात आवरण हैं । इन सात आवरणों के भीतर पड़ा हुआ यह ब्रह्माण्ड परमाणु के आकार के वरावर सूक्ष्म रूप में दिखाई देता है । अनन्त आकाश के अन्तर्गत ऐसे करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं ॥४१॥

विद्वानों ने "ॐ" अक्षर को ही सब कारणों का कारण - "अक्षर ब्रह्म" कहा है, यही ॐ अक्षर पुराणपुरुष भगवान् विष्णु का श्रेष्ठ स्वरूप है ॥४२॥

काल परिभाषा

श्री विष्णुपुराणे द्वितीये - अंशे - अष्टमे - अध्याये - षष्टिसंख्या - प्रमितात् श्लोकात् आरभ्य कालपरिभाषाः - निम्नाङ्किताः समुक्ताः ।

सुन्दरी टीका—श्री विष्णुपुराण में द्वितीय अंश में अष्टम अध्याय में साठवें श्लोक से प्रारम्भ करके अधोलिखित काल की परिभाषायें कही हैं——

काष्ठा निमेषा दशपञ्च चैव—
त्रिंशच्चकाष्ठा गणयेत् कलां च ।
त्रिंशत् कलश्‍ चैव भवेन्मुहूर्तः—
ते त्रिंशता राव्यहनी समेते ॥६०॥

ह्रासवृद्धी त्वहर्भागैं दिवसानां यथाक्रमम् ।
सन्ध्या मुहूर्तमात्रा वै ह्रासवृद्धयोः समा स्मृता ।।६१।।
रेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तं गते रवौ ।
प्रातः स्मृत स्ततः कालो भागश्चाह्नः स पंचमः ।।६२।।
तस्मात् प्रातस्तनात् कालात् त्रिमुहूर्तस्तु सङ्गवः ।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्तु तस्म त् कालात्तु सङ्गवात् ।।६३।।

सुन्दरी टीका—१५ निमेषों की १ काष्ठा होती है। ३० काष्ठाओं की १ कला होती है, ३० कलाओं का १ मुहूर्त होता है, ३० मुहूर्तों का १ दिन रात होना है ।।६०।।

दिनों के ह्रास और वृद्धि के क्रम से ही दिन के–[१] प्रातः, [२] सङ्गव, [३] मध्याह्न, [४] शारद, [५] सायाह्न, संज्ञक पाँचों भागों के घाटिकात्मक मानों में भी ह्रास और वृद्धि हुआ करती है। दिन के ह्रास अथवा वृद्धि होने पर भी सन्ध्याकाल दो घटी मात्र सदा एकसा ही रहता है ।।६१।।

सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक ३० घटी के दिन मान को ५ भागों में बाँटने पर प्रत्येक भाग ३ मुहूर्त=६ घटी का होता हैं। वे पांचों भाग क्रमशः प्रातः सङ्गव मध्याह्न, शारद और सायाह्न नाम से पुकारे जाते हैं ।।६२।।३३।।

तस्मान्माध्यह्निकात् कालादपराह्ण इति स्मृतः ।
त्रय एव मुहूर्तास्तु कालभागः स्मृतो बुधैः ।।६४।।
अपराह्णे व्यतीते तु कालः सायाह्न एव च ।
दशपंचमुहूर्ता वै मुहूर्तास्त्रय एव च ।।६५।।
पंचदशमुहूर्तं वै अहर्वैषुवतं स्मृतम् ।
वर्धते ह्रसते चैवाप्ययने दक्षिणोत्तरे ।।६६।।

सुन्दरी टीका—सूर्योदय से ६ घटी तक प्रातःकाल, इसके पश्चात् ६ घटी तक सङ्गवकाल, इसके बाद ६ घटी तक मध्याह्न, इसके बाद ६ घटी तक शारद, इसके बाद ६ घटी तक सायाह्न, काल होता है, इस प्रकार सम्पूर्ण दिन में १५ मुहूर्त =(३० घटी) होते हैं। और प्रत्येक प्रातः आदि भागों में ३ मुहूर्त=(६ घटी) होते हैं ।।६४।।६५।।

वैषुवतदिन—मेष और तुला की सूर्यसंक्रान्ति के दिन को कहते हैं। उस दिन १५ मुहूर्त अर्थात् ३० घटी का दिन और ३० घटी की रात्रि होती है। किन्तु–उत्तरायण सूर्य में दिन बढ़ने लगता है, रात्रि घटने लगती है। दक्षिणायन सूर्य में रात्रि बढ़ने लगती है, और दिन घटने लगता है ।।६६।।

"षडशीत्याननं चापनृयुक्कन्याभषे भवेत् ।
तुलाजौ विषुवं विष्णुपदं सिंहालिगोघटे ।।"

इत्युक्तेः सूर्यस्य तुलाराशौ मेषराशौ च यदा सङ्क्रमणं भवति, तथा तदर्क-सङ्क्रमणं "विषुवत्" संज्ञकं भवतीति ज्ञेयम्। तस्मिन्- विषुवत् संज्ञके सूर्यसंक्रान्तिदिने-

दिनरात्र्योः समानतः जायते। त्रिंशद्घटीप्रमितं दिनं भवति, त्रिंशद्घटीप्रमिता च रात्रि-र्भवति-विषुवद्दिने । उक्तरीत्या वैषुवते दिने-पञ्चदश="१५" मुहूर्तप्रमितम्-अर्थात्–त्रिंशद्="३० घटीप्रमितं दिनमानम्, त्रिंशद्="३०" घटीप्रमितम्-अर्थात्-पञ्च-दशमुहूर्तप्रमितं रात्रिमानं च सम्पद्यते ।

सुन्दरी टीका— धनुः, मिथुन, कन्या और मीन की सूर्यसंक्रान्तियों की "षडशीत्यानन" संज्ञा होती है । तुला और मेष राशियों पर सूर्य की संक्रान्ति को "विषुवत्" संज्ञक कहते हैं, सिंह, वृश्चिक, वृष, और कुम्भ राशियों पर सूर्य की संक्रान्ति को "विष्णुपद" संज्ञक कहते हैं । विषुवत् संक्रान्ति के दिनों में दिन रात्रि बराबर होते हैं, उत्तरायण सूर्यसंक्रान्तियों में दिन मान की वृद्धि और रात्रिमान का ह्रास होता है । दक्षिणायन सूर्यसंक्रान्तियों में रात्रिमान की वृद्धि और दिनमान का ह्रास होने लगता है । विषुवत् संज्ञक संक्रान्ति के दिन-रात्रि-दिन बराबर-बराबर होते हैं ।

"अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रि र्ग्रसति वासरम् ।
शरद्वसन्तयो र्मध्ये विषुवं तु विभाव्यते" ॥६७॥
तुलामेष गते भानौ समरात्रिदिनं भवेत् ॥६७–१/२॥

"शरद्वसन्तयो र्मध्ये" इत्यस्य-अयं भावः—आश्विन-कार्तिक-मासौ "शरद्" ऋतुसंज्ञकौ भवतः, अतः-आश्विन-कार्तिक-मासयो र्मध्ये-एव-तुलासंक्रान्तिजन्यं-विषुवं-भवति । चैत्र-वैशाख-मासौ "वसन्त" ऋतुसंज्ञकौ भवतः, अतः - चैत्र-वैशाखयौ र्मध्ये-मेषसंक्रान्तिजन्यं-विषुवं-भवति । उत्तरायणे रवौ सति दिनं रात्रिं ग्रसते, अतः-उत्तरायणे सुर्ये दिनमानं क्रमशः-वर्धते, रात्रिमानस्य तु क्रमशः-ह्रासो भवति ।

दक्षिणायने रवौ तु रात्रिः क्रमशः दिनं ग्रसते, अतएव-दक्षिणायने सूर्ये रात्रिमानं क्रमशः - वर्धते, दिनमानस्य च क्रमशः-ह्रासो भवति ।

सुन्दरी टीका—उत्तरायण सूर्य के होने पर दिनमान की वृद्धि होने लगती है, और रात्रिमान का ह्रास होने लगता है, अतः दिनमान रात्रिमान से अधिक होने के कारण रात्रिमान को निगलने=(सटकने) की स्थिति में हो जाता है । दक्षिणामान सूर्य में रात्रिमान की वृद्धि हो जाने के कारण वह रात्रिमान दिनमान को सटकने अर्थात् अपने मान के अन्तर्गत दिनमान को समाविष्ट करने का सामर्थ्य रखता है ॥६७॥

तुला और मेष की संक्रान्ति में दिनमान और रात्रिमान एक बराबर हो जाते हैं ॥६७–१/२॥

श्री विष्णुपुराणे द्वितीये-अंशे-अष्टमे-अध्याये ।७७।७८।७९। संख्याप्रमितेषु श्लोकेषु वैशिष्ट्यं संमुक्तं 'विषुव" कालस्य विषये—

प्रथमे कृत्तिका भागे यदा भास्वांस्तदा शशी ।
विशाखानां चतुर्थेऽशे मुने ! तिष्ठत्यसंशयम् ॥७७॥

विशाखानां यदा सूर्यश्चरत्यंशं तृतीयकम् ।
तदा चन्द्रं विजानीयात् कृत्तिका शिरसि स्थितम् ॥७८॥
तदैव-विषुवाख्योऽयं कालः पुण्योऽभिधीयते ।
तथा दानानि देयानि देवेभ्यः प्रयतात्मभिः ॥७९॥

सुन्दरी टीका—जब कृत्तिका नक्षत्र के प्रथम चरण पर सूर्य रहता है, तब विशाखा नक्षत्र के चतुर्थ चरण पर चन्द्रमा अवश्य रहता है। विशाखा नक्षत्र के तृतीय चरण पर जब सूर्य का संचार=(भोग) रहता है तब कृत्तिका नक्षत्र के शिरोभाग में=(ऊर्ध्वभाग में) चन्द्रमा रहता है। उसी समय "विषुव" नाम से प्रसिद्ध पुण्यकाल हुआ करता है, विषुवकाल में किया गया दान विशेष फल को देने वाला होता है।

परमाणुप्रभृतिकालस्य परिभाषाः श्रीमद्भागवते-तृतीयस्कन्धे-एकादशाध्याये-समुक्ताः ।

सुन्दरी टीका—परमाणु आदि की परिभाषाओं को श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध में ग्यारहवें अध्याय में कहा गया है।

चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा ।
परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः ॥१॥
सत एवपदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत् ।
कैवल्यं परममहानविशेषो निरन्तरः ॥२॥
एवं कालोऽप्यनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम !।
संस्थानभुक्त्या भगवानव्यक्तो व्यक्तभुग्विभुः ॥३॥
स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम् ।
सतोऽविशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान् ॥४॥

सुन्दरी टीका—जो पृथिवी आदि पार्थिव पदार्थों का सूक्ष्मतम अंश हो, जिस का और विभाग न हो सकता हो, जो अनेक हो, जिनका अन्य किसी भी परमाणु के साथ संयोग=(मेल) न हुआ हो उसे "परमाणु" कहते हैं।

अनेक परमाणुओं के समूह को देखकर मनुष्य भ्रम के वशीभूत होकर उन परमाणुओं के समुदाय को ही एक पदार्थ के रूप में समजने लगते हैं, वास्तविकता यह है कि—उस समुदाय-स्वरूप-पदार्थ के अन्तर्गत अनेक परमाणु विद्यमान रहते हैं।

अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित पृथिवी आदि विद्यमान पदार्थ जिसका सूक्ष्मतम स्वरूप परमाणु होता है, वह पृथिवी आदि पदार्थ परममहान् होता है, उसमें प्रलय आदि की अवस्थाओं का और नवीन प्राचीन आदि के भेदों का आभास नहीं होता है ॥२॥

मैत्रेय जी विदुरजी से कहते हैं कि—हे साधु श्रेष्ठ ! पृथिवी आदि पदार्थों के सूक्ष्मतम=(परमाणुस्वरूप) और महत्तम=(सामान्य या प्राकृतिक रूप) का विवेचन

पूर्वोक्त प्रकार से किया गया है. पदार्थ की परमाणु आदि अवस्थाओं में व्याप्त होकर व्यक्त पदार्थों का भोग करने वाले तथा सृष्टि की रचना करने में समर्थ, अव्यक्त स्वरूप भगवान् काल की भी सूक्ष्मता और स्थूलता का अनुमान किया जा सकता है ॥३॥

जो काल परमाणु जैसी सूक्ष्म अवस्थाओं का भोग करता है, वह अत्यन्त सूक्ष्म काल कहलाता है, और जो काल सृष्टि के प्रारम्भ से प्रलयपर्यन्त सभी अवस्थाओं का भोग करता है, वह परम महान् काल कहलाता है ॥४॥

अणु द्वौ परमाणू स्यात् त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः ।
जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन् न गाम्॥५॥

सुन्दरी टीका—दो परमाणु मिलकर एक अणु होता है । तीन अणु मिलकर एक त्रसरेणु होता है, वह-त्रसरेणु-झरोखे के अन्तर्गत पड़ने वाली सूर्य की रश्मियों के प्रकाश में आकाश की ओर उड़ता हुआ दिखाई पड़ता है, त्रसरेणु पृथिवी की ओर नहीं उड़ा करता है ॥५॥

त्रसरेणुत्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः ।
शतभागस्तु वेधः स्यात् तैस्त्रिभिस्तु लवः स्मृतः ॥६॥

सुन्दरी टीका—तीन त्रसरेणुओं का भोग करने में या तीन त्रसरेणुओं को पार करने में सूर्य को जितना समय लगता है, उतने समय को त्रुटि कहते हैं, एक सौ त्रुटि का एक-वेध-होता है, तीन वेध का एक-लव होता है ॥६॥

निमेषस्त्रिलवो ज्ञेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः ।
क्षणान् पञ्चविदुः काष्ठां लघुता दशपञ्च च ॥७॥
लघूनि वै समाम्नाता दश पञ्च च नाडिका ।
ते द्वे मुहूर्तः प्रहरः षड्यामः सप्त वा नृणाम् ॥८॥

सुन्दरी टीका—तीन-लव का एक-निमेष-होता है । तीन-निमेष-का एक-क्षण-होता है, पाँच क्षण की एक काष्ठा होती है, पन्द्रह काष्ठा का एक लघु होता है ॥७॥

पन्द्रह लघु की एक नाडी=(घटी=कला=२४ मिनट) होती है । दो नाड़ी =(४८ मिनट) का एक मुहूर्त होता है, मनुष्यो के दिनमान और रात्रिमान के घटने और बढ़ने के अनुपात से छैः अथवा सात घटी का एक प्रहर अथवा याम होता है । प्रातः सन्ध्या का मान तीन घटी और सायं सन्ध्या का मान तीन घटी, दोनों सन्ध्याओं का मान मिलकर छैः घटी होता है, जब दिनमान और रात्रिमान बराबर होतें हैं, तब तीस-तीस घटी के दोनों होते हैं, दोनों सन्ध्याओं के मान की छैः घटी दिनमान में से घटाने पर चौबीस घटी शेष बचती है, चौबीस में चार का भाग देने पर प्रत्येक प्रहर छैः घटी का सिद्ध होता है, रात्रिमान और दिनमान के न्यूनाधिक होने पर सात घटी का भी प्रहर सिद्ध होता है । दिन और रात में कुल आठ प्रहर हुआ करते हैं ॥८॥

द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः ।
स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थ जलप्लुतम् ॥९॥

सुन्दरी टीका—६ पल तांवे का एक ऐसा बर्तन बनाया जाय जिसमें एक प्रस्थ पानी आ सके। चार मासा सोने की चार अङ्गुल लम्बी एक सलाई बनवाकर उस सलाई की मोटाई के बराबर एक छेद उस तांवे के वर्तन के पेंदे में कराकर, उस वर्तन को एकप्रस्थ पानी में छोड़ दें, उस वर्तन के पेंदे के छेद द्वारा पानी वर्तन में भरता रहेगा, जब सारा पानी उस वर्तन में भर जाये, और वह बर्तन पानी में डूब जाय, तो समझ लेना चाहिये कि एक घटी=(२४ मिनट) का समय पूरा हो गया है। निष्कर्ष यह है कि एक घटी या २४ मिनट में ही एक प्रस्थ पानी उस वर्तन के छेद द्वारा बर्तन में भर सकता है ॥९॥

यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनी उभे ।
पक्षः पञ्चदशाहानि शुक्लः कृष्णश्चमानद ! ॥१०॥
तयोः समुच्चयो मासः पितॄणां तदहर्निशम् ।
द्वौ तावृतुः षडयनं दक्षिणं चोत्तरं दिवि ॥११॥

सुन्दरी टीका—मनुष्यों के दिन रात में चार-चार प्रहर होते हैं, १५ दिन का एक पक्ष होता है, शुक्ल और कृष्ण भेद से पक्ष दो प्रकार के होते हैं ॥१०॥

शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्ष मिलकर एक चान्द्र मास होता है, वह चान्द्र मास पितरों के एक दिन रात के बराबर होता है, दो मास की एक ऋतु और ६ मास का एक अयन होता है। दक्षिणायन और उत्तरायण दो अयन होते हैं ॥११॥

अयने चाहनी प्राहु र्वत्सरो द्वादश स्मृतः ।
संवत्सरशतं नृणां परमायु निरूपितम् ॥१२॥
ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः परमाण्वादिना जगत् ।
संवत्सरावसानेन पर्येत्यनिमिषो विभुः ॥१३॥
संवत्सरः परिवत्सर इदावत्सर एव च ।
अनुवत्सरो वत्सरश्च विदुरेवं प्रभाष्यते ॥१४॥

सुन्दरी टीका—उत्तरायण और दक्षिणायन ये दोनों अयन मिलकर देवताओं के एक दिन रात होते हैं, ये दोनों अयन मिलकर मृत्युलोक निवासी मनुष्यों का एक वर्ष या बारह मास कहे जाते हैं। अयनों से उत्पन्न मृत्युलोक के वर्षों की गणना के अनुसार मनुष्य की आयु सौ वर्ष की कही गई है, पूर्व तथा प्रचलित कर्मों के अनुसार सौ वर्ष से न्यून या अधिक भी मनुष्यों की आयु देखने में आती है ॥१२॥

चन्द्रमा आदि ग्रहों और अश्विनी आदि नक्षत्रों तथा समस्त नक्षत्र समूहों के अधिष्ठाता कालस्वरूप भगवान् सूर्य परमाणु से लेकर सम्वत्सरपर्यन्त काल में बारह राशि स्वरूप- सम्पूर्ण भुवनकोश की निरन्तर परिक्रमा करते रहते हैं ॥१३॥

सौर, चान्द्र, सावन, नाक्षत्र, और बार्हस्पत्य आदि मासों और वर्षों के भेदों से

मृत्युलोक में प्रचलित वर्ष ही— "सम्वत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर, और वत्सर" इन पाँच प्रकार के नामों से पुकारा जाता है ॥१४॥

तुलामेषगते भानौ समरात्रि दिनं तु तत् ।
कर्कटावस्थिते भानौ दक्षिणायनमुच्यते ॥६८॥
उत्तरायणमप्युक्तं मकरस्थे दिवाकरे ।
त्रिंशन्मुहूर्तं कथितमहोरात्रं तु यन्मया ॥६९॥
तानि पञ्चदश ब्रह्मन् ! पक्ष इत्यभिधीयते ।
मासः पक्षद्वयेनोक्तो द्वौ मासौ चार्कजावृतुः ॥७०॥
ऋतुत्रयं चाप्ययनं द्वेऽयने वर्षसंज्ञिते ॥७१॥
सम्वत्सरादयः पञ्च चतुर्मासविकल्पिताः ।
निश्चयः सर्वकालस्य युगमित्यभिधीयते ॥७२॥

"सम्वत्सरादयः - इत्यादिपद्यस्य- अयं भावः— चान्द्र- सावन- सौर- नाक्षत्रैश्चतुर्विधैर्मासे विविधतया कल्पिताः पचसम्वत्सरादयः - एकं युगं भवति ।

सम्वत्सरस्तु प्रथमौ द्वितीयः परिवत्सरः ।
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सरः ॥७३॥
वत्सरः पञ्चमश्चात्र कालोऽयं युगसंज्ञितः ॥७४॥
सावनं चापि सौरं च चान्द्रं नाक्षत्रमेव च ।
चत्वार्येतानि मासानि यैं र्युगं प्रविभज्यते ॥७५॥

इति वृद्धगार्गोक्तेः······

सुन्दरी टीका—तुला और मेष राशि पर सूर्य की सङ्क्रान्ति जिस दिन होती है, उस दिन रात्रिमान और दिनमान एक बराबर होते हैं। कर्क राशि पर सूर्य की सङ्क्रान्ति होने पर छैः मास तक दक्षिणायन सूर्य माना जाता है, और मकर राशि पर सूर्य की सङ्क्रान्ति होने पर छैः मास तक उत्तरायण सूर्य माना जाता है ।

एक मुहूर्त में दो घटी= (४८ मिनट) होती हैं, तीस मुहूर्त=(१४४० मिनट = २४ घन्टा) का एक दिन रात होता है ॥६८॥६९॥

पन्द्रह दिन का एक पक्ष होता है, दो पक्ष का एक मास होता है, दो सौर मास =(सूर्य दो राशियों का भोग जितने समय में भोगता है, उतने समय को दो सौर मास कहते हैं) का एक "ऋतु" होता है, तीन ऋतुओं का एक "अयन" होता है, दो अयन का एक वर्ष होता है ॥७०॥

चान्द्र, सावन, नाक्षत्र और सौर इन चार प्रकार के मासों की गणना के अनुसार क्रमशः— १२ चान्द्र मासों का १ चान्द्रवर्ष, १२ सावन मासों का १ सनावर्ष, १२ नाक्षत्र मासों का १ नाक्षत्रवर्ष, १२ सौर मासों का १ सौर वर्ष होता है, इस चार प्रकार की वर्ष गणना के क्रमानुसार - प्रत्येक प्रकार के - ५ वर्षो का एक युग माना जाता है, प्रत्येक युग के प्रथम वर्ष का नाम-सम्वत्सर द्वितीय वर्ष का नाम- परिवत्सर, तृतीय वर्ष का नाम - इद्वत्सर चतुर्थवर्ष का नाम - अनुवत्सर, पञ्चम वर्ष का नाम- वत्सर, इन ५ नामों का एक युग माना जाता है, इन युगों-से राष्ट्र का शुभ और अशुभ फल जाना जाता है ॥७१॥७२॥

विषुवत्-स्थानस्य- व्यवस्थामत्र लिखामि

य: श्वेतस्योत्तर: शैल: शृङ्गवानिति विश्रुत: ।
त्रीणि तस्य तु शृङ्गाणि यैरयं शृङ्गवान् स्मृत: ।।७४।।
दक्षिणं चोत्तरं चैव मध्यं वैषुवतं तथा ।
शरद्वसन्तयोर्मध्ये तद्भानु: प्रतिपद्यते ।।७५।।
मषादौ च तुलादौ च मैत्रेय ! विषुवत् स्थित:।
तदा तुल्यमहोरात्रं करोति तिमिरापह: ।।७६।।
दशपञ्चमुहूर्तं वै तदेतदुभयं स्मृतम् ।।७७।।
प्रथमे कृत्तिकाभागे यदा भास्वान्तदा शशी ।
विशाखानां चतुर्थेऽशे मुने ! तिष्ठत्यसंशयम् ।।७८।।
विशाखानां यदा सूर्यश्चरत्यंशं तृतीयकम् ।
तदा चन्द्रं विजानीयात् कृत्तिकाशिरसि स्थितम् ।।७९।।
तदैव विषुवाख्योऽयं काल: पुण्योऽभिधीयते ।।८०।।

जम्बूद्वीपस्य मध्ये सुमेरु: पर्वतोऽस्ति । तस्मात् सुमेरो:- उत्तरस्यां दिशि- नील: पर्वत: विद्यते, नीलपर्वतात् - उत्तरस्यां दिशि-श्वेत- नामक: पर्वतोऽस्ति, श्वेतपर्वतादपि उत्तरस्यां दिशि शृङ्गवान् -नामक: पर्वतो विद्यते, तस्य शृङ्गवत: पर्वतस्य (१) दक्षिणम (२) उत्तरम् (३) मध्यमम् च इति संज्ञया व्यवहृतानि त्रीणि शृङ्गाणि सन्ति । यत् - मध्यमम् शृङ्गमुक्तं तस्य- विषुवत् संज्ञा कथिता मुनिभि: ।

मेषसङ्क्रान्तिप्रारम्भकाले तुलासङ्क्रान्तिप्रारम्भकाले च- मानसोत्तर-पर्वतो परिभ्रमन् सूर्य:-विषुवत्संज्ञके शृङ्गेऽपि-स्वरश्मीन् पूर्णरूपेण निपातयति. अत: तस्य-सङ्क्रमण-शीलस्य सूर्यस्य यत् संक्रमणं तत् -"विषुवत्" संज्ञकं समुक्तं तत्वदर्शिभि:- मुनिभि: ।

विषुवत् -स्थान- का विवेचन

सुन्दरी टीका—जम्बूद्वीप के मध्य में - सुमेरु पर्वत - से उत्तरदिशा के गोलार्धभाग में- श्वेतपर्वत- से उत्तर की ओर - शृङ्गवान् पर्वत - विराजमान है, इस पर्वत के शिखर पर = (चोटी पर) दक्षिणोत्तर क्रम से उन्नत=(ऊँचे उठे हुए) तीन शिखर हैं = (तीन चोटियाँ हैं) इसी लिये इस पर्वत को "शृङ्गवान् नाम से पुकारा जाता है, इस शृङ्गवान् प्रर्वत के दक्षिणी-उत्तरी-मध्यभागों में ऊंचे शिखर हैं ।।७४।।

शृङ्गवान् पर्वत के उन्नत इन तीनों शिखरों में से मध्य= (बीच के) शिखर की "विषुवत" संज्ञा है शरदृऋतु में तुलाराशि पर सूर्यसंक्रान्ति के समय और वसन्त ऋतु में- मेष संक्रान्ति के समय शृङ्गवान् पर्वत के "विषुवत्" संज्ञकमध्य - शिखर-पर सूर्य की रश्मियां पड़ती हैं, इसी लिये - इन दोनों - तुला और मेष पर सूर्य की सङ्क्रान्ति को "विषुवत्" नाम से ऋषिप्रणीत शास्त्रों में पुकारा गया है, विषुवत सङ्क्रान्ति के समय किये- दान, जप, तप, का विषेश महत्व होता है । तुला और मेष सङ्क्रान्ति के दिन रात्रि मान और दिन मान तीस तीस घड़ी के होने से एक बराबर माने जाते हैं ।।७५।। ७६।।७७।।

श्लोक संख्या — ७८ से ८० तक की व्याख्या को इस से पूर्व के प्रसङ्ग में किया जा चुका है ।

अमावस्या - पौर्णमास्योः- विशेषसंज्ञामत्र लिखामि—

पौणमासी तथा ज्ञेया अमावास्या तथैव च ।
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमति स्तथा ॥८१॥
"सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुः कूहूः स्मृता" ॥८१–१/२॥

यस्यां-अमावास्यायां तिथौ चन्द्रस्य दर्शनं न भवति, सा अमावास्या "सिनीवाली" संज्ञया व्यवह्रियते । यस्यां-अमावास्यायां चन्द्रस्य दर्शनं न भवति, तस्याः "कुहूः"-इति संज्ञा व्यवह्रियते ।

यस्यां पौर्णिमास्यां तिथौ पूर्णचन्द्रः विराजते सा पूर्णातिथिः - "राका" संज्ञया व्यवहृता भवति । यस्यां पौर्णमास्यां तिथौ च कलाहीनः - अर्थात् - अपूर्णः चन्द्रो दृष्टि-गोचरो भवति, सा पौर्णमासी तिथिः - "अनुमतिः" नाम्ना व्यवह्रियते ।

तपस्तपस्यौ मधुमाधवौ च –
शक्रः शुचिश्चायनमुत्तरं स्यात् ।
नभो नभस्यौ च इपस्तथोर्जः–
सहः सहस्याविति दक्षिणं स्यात् ॥८२॥

लोकपालानां स्थितिव्यवस्थामत्र लिखामि—

लोकालोकश्च यः शैलः प्रागुक्तो भवतो मया ।
लोकपालाश्च चत्वारस्तत्र तिष्ठन्ति सुव्रताः ॥८३॥
सुधामा शङ्खपाच्चैव कर्दमस्यात्मजो द्विज! ।
हिरण्यरोमा चैवान्यश्चतुर्थः केतुमानपि ॥८४॥
निर्द्वन्द्वा निरभिमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहाः ।
लोकपालाः स्थिता ह्येते लोकालोके चतुर्दिशम् ॥८५॥

सुन्दरी टीका—जिस अमावास्या तिथि में आकाश में चन्द्रमा दिखाई दे, उस अमावास्या की "सिनीवाली" संज्ञा होती है, जिस अमावास्या तिथि में चन्द्रमा दिखाई न दे, उस अमावास्या की "कुहू" संज्ञा होती है ।

जिस पूर्णिमासी तिथि में पूर्ण चन्द्रमा दिखाई देता है, उस पूर्णिमासी की "राका" संज्ञा होती है, जिस पूर्णिमा में कुछ अपूर्ण मण्डलाकार चन्द्रमा दिखाई देता है, उस पूर्णिमा तिथि की "अनुमति" संज्ञा होती है ॥८१–१/२॥

वारह मासों के क्रमशः पर्यायवाचक नाम (१) माघः = तपः, (२) फाल्गुन = तपस्य, (३) चैत्र = मधु, (४) वैशाख = माधव, (५) ज्येष्ठ = शक्र, (६) आषाढ = शुचिः, ये छः मास उत्तरायण सूर्य में होते हैं ।

(७) श्रावणः = नभः, (८) भाद्रपद = नभस्य, (९) आश्विन = इष, (१०) कार्तिक = ऊर्ज, (११) मार्गशीर्ष = सहः, (१२) पौष = सहस्य, ये छः मास दक्षिणायन सूर्य में होते हैं ॥८२॥

लोकपालों के नाम और उनके स्थानों का विवेचन—

जम्बू द्वीप के मध्य में स्थित 'सुमेरु पर्वत" के केन्द्र से साढ़े वारह करोड़ योजन की दूरी पर = (१८१८१८१८१८ किलोमीटर/२०० गज की दूरी पर) पूर्व आदि चारों दिशाओं में क्रमशः 'लोकालोक पर्वत" पर—(१) सुधामा, (२) शङ्खपाद, (३) हिरण्यरोमा (४) केतुमान्, ये चार लोकपाल लोक = (संसार) की रक्षा के लिये ईश्वरीय विधान के अनुसार सदा स्थित रहते हैं ॥८३॥८४॥८५॥

पंचमाध्यायः

ऋग्वेद - निरुक्त - पाणिनीयशिक्षा - पातञ्जलमहाभाष्येषु-
प्रतिपादित - वर्षा - वायु - विज्ञान - विवेचनाध्यायः– पंचमः

अङ्काष्टनवचन्द्र- "१९८६" प्रमिते वैक्रमाब्दे, शून्याग्निनवचन्द्र- "१९३०" प्रमिते ईसवीयाब्दे च - बम्बई महानगरस्थ - निर्णयसागर- प्रेसतः प्रकाशिते- निरुक्ते नैघण्टुकाण्डे द्वितीयाध्यायस्य द्वितीय पादे-अङ्कमुनि "७६" प्रमिते पृष्ठे-ऋग्वेदसंहितायाः द्वितीयमण्डलान्तर्गत-तृतीय सूक्तस्थः विंशतिसंख्याप्रमितो मन्त्रः······

"य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नुतस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्वहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश ।।"

(ऋ० सं० २- ३- २०) उक्तमन्त्रस्य-अयं भावः–··· वर्षाकर्म - एव-अनेन मन्त्रेण- उच्यते, निर्ऋतिश्चात्र भूमिः– उच्यते ।

अन्वयः— यः ईं चकार, स अस्य "तत्वमितिशेषः" न वेद, यः ईं हिरुक् ददर्श स इत् - तस्मात् - नु वेद, स मातुः - योनौ परिवीतः अन्तः बहुप्रजाः - निर्ऋतिम्- आविवेश ।

अर्थः—वर्षाप्रवृत्तिस्तु · वायुमेघाभ्यां प्रत्यक्षम् - दरीदृश्यते एव, तयो र्वायु-मेघयोस्तु चेतनाशक्तिः स्वतन्त्ररूपेण नास्ति, अतएव तौ वायुमेघौ - अचेतनौ स्तः । यः =वायुः, अथवा मेघः, ईम् = एतद्वृष्ट्युदकम्, चकार= कृतवान्, अथवा करोति "कृञ्-करणार्थकधातुरूपम्" अथवा – किरति "कृविक्षेपार्थकधातुरूपम्" सः= वायुः अथवा मेघः, अस्य = वर्षणस्य = वृष्टिकर्मणो वा "तत्वमितिशेषः" न वेद= न जानाति, तयोः वायुमेघयोः ज्ञानशक्तेः अभावात्, तयोः अचेतनत्वाच्च ।

यस्तु- आत्मवित्- इन्द्रो देवता, ईम्=एतद् - वृष्ट्युदकम्, हिरुक् अन्तर्हितम् =अनभिव्यक्तस्य- आदित्यस्य - रश्म्यन्तर्गतम्, ददर्श= दृष्टवान् अथवा पश्यति स इत्= स एव- परमार्थतत्वज्ञोऽस्ति । तस्मात्= तस्मात् कारणात् = स इन्द्र– नु= निश्चयरूपेण अस्य वृष्टिकर्मणः– "तत्वमिति शेषः" वेद - जानाति । सः- वृष्टिलक्षणः पुत्रः मातुः = निर्मातुः- अन्तरिक्षलोकस्य योनौ = योनिवदुत्पत्याधारभूते- अन्तरिक्षे = उदकाभिव्यक्ति- आशयस्थाने= गर्भस्थाने- इति भावः, परिवीतः=परिवेष्टितः, सूर्यकिरणजालेन वायुना च - अन्तः मेघोदरान्तर्गतः वर्षाकाले- वर्षारूपेण अभिव्यक्तः, वहुप्रजाः = वहुशः प्रजायमानः, अथवा- वहुजातान्नः- वहुप्राण्युपकारी, निर्ऋतिम्- निर्माणसाधनभूताम् - भूमिम्, आविवेश - आविशति - प्राप्नोत्यर्थः ।

उक्तमन्त्रे माता - शब्देन - अन्तरिक्षस्य ग्रहणमस्ति, यतो हि- निर्मीयन्तेऽस्मिन् भूतानि । योनि - शब्देन - अपि - अन्तरिक्षस्यैव- ग्रहणमस्ति, यतो हि-अन्तरिक्षस्यमहान् अवयवो वायुना परिवीतः वर्तते । आकाशस्यैव कश्चित् - प्रदेशविशेषः- वायुसंयुतः सन् उदकयोनिभावं पुष्णाति ।

सुन्दरी टीका—मेघ और वायु में स्वतन्त्ररूप से ज्ञान और चेतनाशक्ति का अभाव रहताहै, अत एव - वृष्टिकारक होते हुए भी मेघ और वायु वर्षा के तत्व को नहीं जानते हैं । इन्द्र देवता वर्षा के जल को सूर्य की रश्मियों के अन्तर्गत देखकर उस जल का ज्ञान करता है, इसलिये इन्द्र ही वर्षा के तत्व को भली प्रकार जानता है, वह इन्द्र योगबल से अन्तरिक्ष में (आकाश में) सूर्य की रश्मियों और वायु के द्वारा मेघों के गर्भ में प्रवेश करके वर्षा के रूप में भूगोल पर प्रवेश करता है, अर्थात् वर्षा के रूप में भूगोल पर बरसता है। अनेक प्रकार के अन्नादि पदार्थों को वर्षा से उत्पन्न करके प्राणियों का उपकार इन्द्र करता है । इस मन्त्र में माता शब्द से अन्तरिक्ष का और निर्ऋति शब्द से भूमि का ग्रहण किया गया है ।

इन्द्रो दिव इन्द्र ईशेपृथिव्याः
इन्द्रो अपामिन्द्र इत्पर्वतानाम् ।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणा-
मिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ॥

ऋग्वेद - संहितायां दशमे मण्डले नवाष्ट "८९" संख्या प्रमिते सूक्ते - दशम-संख्या प्रमितो मन्त्रोऽयम् । ....

अन्वयः— इन्द्रः - दिवः- ईशे, इन्द्रः- पृथिव्याः ईशे, इन्द्रः अपाम्- ईशे, इन्द्रः- इत्- पर्वतानाम्- ईशे, इन्द्रः- वृधाम्, ईशे, इन्द्रः- इत्- मेधिराणाम् - ईशे, इन्द्र- क्षेमे- योगे ईशे, हव्यः- इन्द्रः- भवतीतिशेषः ।

अर्थः—इन्द्रो देवता- दिवः= द्युलोकस्य अर्थात् स्वर्गलोकस्य, ईशे=नियामकः = शास्ता- भवतीत्यर्थः, इन्द्रोदेवता पृथिव्याः- ईशे=नियामकः= अर्थात् शास्ता भवति, इन्द्रो देवता- अपाम्=उदकानाम् ईशे- नियामकः अर्थात्-शासको भवति, इन्द्रो देवता- इत्= एवार्थे पर्वतानाम्= सुमेरु - चन्द्रादिपर्वतानाम्- ईशे= नियामकः= शासकः अस्ति इति शेषः इन्द्रो देवता- वृधाम्- वयोविद्यादिवृद्धानां स्थावरजङ्गमानाम् च ईशे = नियन्ता भवति । इन्द्रो देवता- क्षेमे= सर्वविधकल्याणप्रापणे योगे "च- इति शेषः" ईश नियन्ता=समर्थोवा भवति, इन्द्रोदेवता- हव्यः= यष्टव्यः=यजनार्हः =यजन- योग्यो- भवति ।

उक्त मन्त्रे- अपां पर्वतानां- इत् इन्द्रः- ईशे - अस्य मन्त्रभागस्य-अयं भावः—

अपां पर्वतानाम् - जलानां पर्वतानाम् = "जलों के पर्वतों का" जलदातृ-पर्वतानामित्यर्थः, येभ्यश्चन्द्रादिपर्वतेभ्यः-इन्द्रः वृष्टये जलानि गृह्णाति तेषां पर्वतानामपि इन्द्र एव- ईशः- स्वामी- अथवा राजा अथवा नियन्ता वर्तते, नान्यः कोऽपि भवति ।

सुन्दरी टीका— ऋग्वेद संहिता में दशवें मण्डल में नवासीवें सूक्त में स्थित दशवें मन्त्र का स्पष्ट अर्थ यह है कि—इन्द्र द्युलोक=(स्वर्गलोक) का राजा है, इन्द्र भूलोक का भी नियामक और शासक है, इन्द्र ही वर्षा के जलों का नियामक और शासक है, इन्द्र ही सुमेरु तथा चन्द्रादिपर्वतों का नियामक और शासक है, इन्द्र आयु-विद्या में बड़ों का तथा स्थावरजङ्गमादि का नियामक और शासक है, इन्द्र ही बुद्धिमान् व्यक्तियों का नियन्त्रक होता है, इन्द्र सब प्रकार के कल्याण और कर्मकौशल प्राप्त कराने में समर्थ होता है, इन्द्र ही — यज्ञ और पूजादि कर्म का स्वामी होता है।

ऋग्वेद-संहितायां द्वितीय मण्डले सप्तमे सूक्ते प्रथमो मन्त्रः, निरुक्ते तु-दैवत-काण्डे शून्यवेदवेदप्रमिते "४४०" पृष्ठे निम्नाङ्कितोऽयं मन्त्रोऽस्ति।

"अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पति र्मधुधारमभि यमोजसातृणत्।
तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो बहुसाकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम्॥"

अन्वयः—ब्रह्मणस्पतिः-अश्मास्यं-मधुधारं-अवतं-यं - ओजसा-अभ्यतृणत्, तमेव-विश्वे-स्वर्दृशः-पपिरे, उत्सं-उद्रिणं-साकं-बहु-सिसिचुः।

उक्त मन्त्रस्य अयं भावः—ब्रह्मणस्पतिः=माध्यमिको देवः-इन्द्रः, अश्मास्यम् =पाषाणतुल्यसुदृढ़तरम्-आसेचनवन्तमित्यर्थः, मधुधारम्=मधुर्मादयित्री-उदकधारा यस्य तादृशम्-उदकधारयितारम्-इत्येतादृशं अर्थम् सायणाचार्यप्रभृतयः-चक्रुः। अश्मास्यम् शब्दस्य-अन्यं परिष्कृतार्थमत्र करोमि तथाहि......

अश्मास्यम्=अश्मा=पाषाणमयश्चन्द्रपर्वतः-आस्यम्=मुखम् अर्थात्-उत्पत्ति-स्थानं यस्य तत्-अश्मास्यम्, इन्द्रो देवता शाकद्वीपस्थितात् "चन्द्र" नामक - पर्वतात् जलानि, अर्थात् उदकानि नीत्वा भूमौ वर्षति, अतएव अश्ममयचन्द्रपर्वतात्-उत्पन्नत्वात्-वर्षाया-उदकं अश्मास्यं-भवतीति-ऋग्वेदे समुक्तम्।

चन्द्रपर्वतस्य वर्णनं तु नेत्रनवाष्टचन्द्र प्रमिते "१८९२" ईसवीयाब्दे-उत्तर-प्रदेशीय-लखनऊ-नगरेस्थितात्-मुन्शी नवलकिशोर (सी. आई. ई. छापाखाना) नामक-प्रेसतः प्रकाशिते "मत्स्यपुराण" नामके ग्रन्थे बाणतर्काग्नि - प्रमिते-"३६५" पृष्ठे-दशसंख्याप्रमित-"१०" पंक्तितः-आरभ्य-चतुर्दश "१४" संख्याप्रमित- पंक्ति यावत् तावद् वर्तते, उपलभ्यते तद्वर्णनं चाद्यापिमत्स्यपुराणादिषु ग्रन्थेषु, चन्द्रपर्वतबोधकं पाठं मत्स्यपुराणतः-समुद्धृत्य निबन्धपाठकानां वैज्ञानिकानां विदुषां च सन्तोषार्थं-अत्र-उपस्थापयामि—

शाकद्वीपे तु वक्ष्यामि सप्तदिव्यान् महाचलान्।
देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते ॥८॥
प्रागायतः स सौवर्णउदयो नामपर्वतः।
तत्र मेघास्तुवृष्ट्यर्थं प्रभवन्त्यपयान्ति च ॥९॥
तस्यापरेण सुमहान् जलधारो महागिरिः।
स वै "चन्द्रः" समाख्यातः सर्वौषधिसमन्वितः ॥१०॥

तस्मान्नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम् ।
नारदो नाम चैवोक्तो दुर्गशैलो महाचितः ॥११॥

उपर्युक्तलक्षणलक्षितः "चन्द्रपर्वतः" शाकद्वीपे वर्तते, ततः एव वृष्ट्युदकं नीत्वा-इन्द्रः-भूगोले वृष्टिं करोति; अतएव-अश्ममयपर्वतोत्पन्नात्-वृष्ट्युदकं अश्मास्य-संज्ञकं-उक्तं वेदे ।

मधुधारम्=मधु इव धारा यस्य तत्-मधुधारम्, अर्थात् - यथा मधुधारया (मानवादीनां) पाञ्चभौतिकशरीरस्य पुष्टि भंवति, अनेकरोगाणां निवृत्तिश्च मधुधारया भवति, तथैव-अश्मास्येन-वृष्ट्युदकेन-पाञ्चभौतिकानां अन्न-सस्य धान्य-तृणादीनां-अपि-पुष्टिः भवति, निदाघप्रभृतीनां-भौगोलिकानां अनेक-विकाराणां अपि-निवृत्तिकरं-वृष्ट्युदकं भवति, अतएव ऋग्वेदे वृष्ट्युदकं मधुधारं भवति-इति-उक्तम् ।

अवतम्=अवस्तात् - ततं विस्तृतं-इत्यर्थः, पृथिव्यां समन्तात्-विस्तृतं-इति भावः । वृष्ट्युदकं पृथिव्यां समन्तात्-विस्तृतं भवतीत्यर्थः, यम्=पर्वतादुत्थितं मेघम्, अभ्यतृणत् = अभ्यहनत् वर्पणार्थमवधीत् - इत्यर्थः,—देवविनिर्मितेन जलाकर्पण-कारकयन्त्रेण - देवविनिर्मितेपु-जलवाहकेपु विशिष्टेपु वायुयानप्रभृतिपु जलानिभृत्वा यदा इन्द्रः-भूमौ जलानि-पातयति, तदा मेघस्वरूपं तद्जलधारकयन्त्रं- ओजसा-अर्थात् बलेन छिनन्ति, तद् यन्त्रच्छेदनादेव-वर्षा भवति-इन्द्रकृता ।

यथा हि - साम्प्रतं विविधिसाधन सम्पन्नेषु - अमरीका - रूस - प्रभृतिपु देशेषु जलाशयेभ्यो जलानि - यन्त्रसाधनैः - वृष्टिकारक - जलवाहक - वायु - यानेपु नीत्वा अभीष्टस्थानेपु - कृषिक्षेत्रेपु च - वैज्ञानिका वायुयानस्थ "स्विचादिनामक" यन्त्रं प्रताड्य वायुयान - स्थितानां जलानां वृष्टि कुर्वन्ति ।

तथैव - इन्द्रोऽपि भूरिजलप्रधानात् - "चन्द्रपर्वतात्" - देवविनिर्मितैः - स्व-साधनैः वायुयानादिभि जंलानि नीत्वा - जगतः - उपरि - वृष्टि करोति, वृष्टिविधा-नावसरे इन्द्रोऽपि - वायुयानादिवृष्टि - कारकयन्त्रेषु विलग्नं मेघनामकं स्विचादिपर्याय-वाचकं यन्त्रं ओजसा - अर्थात् बलेन - हन्ति=प्रताडयतीत्यर्थः, इन्द्रेण प्रताडिते मेघ-यन्त्रे सति भूगोलोपरि - अतिवृष्टिः - अनावृष्टिः सुवृष्टिश्च भवतीति तत्वार्थः ।

"पुंलिङ्गः स्यादघनरसः सान्द्र - निर्यासनीरयोः" इति रभस-कोषोक्तेः - तम्=घनरसम्, एव निश्चयार्थबोधकः अव्ययः, विश्वे=संसारे - "स्थावरजङ्गमादयो मानव-पशुपक्षिप्रभृति- प्राणिनश्च इति शेषः". पपिरे = पिबन्ति, तमेव घनरसमेव स्वदृंशः = सूर्यरश्मयः "अपि - इति शेषः ।" मेघेन वृष्टं - उदकं - ग्रीष्मकाले सूर्यरश्मयः पिबन्ति, अतः - वृष्ट्युदकपानात् तमेव घनरसं पिबन्ति इति भावः ।

ते एव - सूर्यरश्मयः - वर्षाकाले तु - उत्सम् = उत्सेचनवन्तम् उद्रिणम् = उदकवन्तम् बहुसाकम् = बहुजलसहितम् घनरस "कुर्वन्तः - इति शेषः" सिसिचुः= सिञ्चन्ति, ग्रीष्मकाले सूर्यरश्मिभिः यावन्मितं जलं पीतं तावन्मितजलतः, अपि बहुतरं सहस्रगुणं सूर्यरश्मयः सिसिचुः - सिञ्चन्ति इत्यर्थः ।

सिसिचुः - इत्यत्र षत्वाभावः - आर्षः ज्ञेयः। अथवा उत्समुद्रिणम् इत्यत्र उत्समुद्रः = अर्थात् ऊर्ध्वाकाशस्थितसमुद्रः - अस्यास्तीति - उत्समुद्री तम् - उत्समुद्रिणम् = ऊर्ध्वसमुद्रसदृश बहुजलयुक्तमित्यर्थः। बहुसाकम् = वर्षाकालिकबहुजीवजन्तुसहितम् अर्थात् - वर्षाकाले - आकाशतः - पतितैर्जलैः = घनरसैः सह=मत्स्याः (मछलीः) सर्पाः = गेसाः = लोकप्रसिद्धकेंचुआप्रभृतयः, मण्डूकाः = मेंढकाः, अपि यदाकदा यत्रतत्र वर्षान्ति, अतः - बहुसाकं - घनरसं इत्यस्य विशेषणम् ज्ञेयम्। एवं विधं घनरसं सूर्यरश्मयः = वर्षाकाले = निपातयन्ति लोके, तेन घनरसेन लोकं = संसारम् - सिसिचुः = सिंचन्ति - इति तत्वार्थः।

सुन्दरी टीका—इन्द्र देवता शाकद्वीप के मध्य में स्थित "चन्द्र" नाम के पर्वत के अगाध जलाशयों से देवनिर्मित वायुयानों में देवनिर्मित यन्त्रों से जल भरकर, भूगोल पर निवास करने वाली चार प्रकार की सृष्टि (जरायुज = मनुष्य एवं पशु आदि) स्वेदज = मच्छर और कीड़े मकोड़े आदि, अण्डज = सब प्रकार के पक्षी एवं मछली मेंढक आदि, तथा उद्भिज=जमीन को तोड़-फोड़ कर उत्पन्न होने वाले वृक्षादि, को जीवित रखने वाले एवं पुष्ट करने वाले मधुर जल को बरसाता है, इन्द्रकृतवर्षा का जल भूगोल पर चारों ओर फैलकर भूगोल को हराभरा बना देता है।

वायुयानों में भरे हुए जल को भूगोल पर वर्षा के रूप में गिराने के लिये इन्द्र अपने पूरे बल से-वायुयान के मेघ नामक स्विच को किसी यन्त्र विशेष के द्वारा प्रताडित करता है। अथवा उस मेघ नामक स्विच को स्वयं अपने शरीरस्थ हाथ या पैर से बलपूर्वक फुर्ती से दबाता है, इसके बाद वायुयानस्थ जल वर्षा के रूप में भूगोल पर बरसने लगता है।

इन्द्रकृत वर्षा के जल को सूर्य अपनी किरणों से कुछ काल के बाद आकाश में खींच लेता है, खींचा हुआ जल वृष्टिगर्भ के रूप में कुछ समय तक आकर्षण शक्ति के बल पर आकाश में रुका रहता है, सूर्य की रश्मियों द्वारा जितना जल भूगोल से खिच कर आकाश में जाता है, उससे हजार गुना जल आकाशीयसमुद्र अर्थात आकाश गंगा से सूर्यरश्मियों द्वारा खिचकर आकाशस्थ उस भूगोलीय जल में आकर मिल जाता है, चूंकि आकाशीय गंगा का जल विशुद्धवाष्पस्वरूप (भाप के रूप में) होने के कारण बहुत हल्का होता है, अतएव भूगोल के जल की अपेक्षा में आकाशगंगा के वाष्परूप हल्के जल को सूर्य की रश्मियाँ भूगोल के जल से हजार गुना खींचने में समर्थ होती हैं। इसीलिये वेदादि - संस्कृत - वाङ्मय के अनेक ग्रन्थों में यह वैज्ञानिक उद्घोष किया गया है कि सूर्य भूगोल से जितना जल आकाश में खींचकर ले जाता है, उससे हजार गुना जल भूगोल पर वर्षा के रूप में बरसा देता है।

सूर्य की रश्मियाँ सूर्य द्वारा खींचे गये आकाशस्थ जल को वर्षा के रूप में भूगोल पर अनेक जीव जन्तुओं (मछली, मेंढक, गेसा आदि) के साथ यदा कदा बरसा कर - भूगोलस्थ चतुर्विधसृष्टि को सींचती हैं।

ऋग्वेद - संहितायाः - अष्टममण्डले - तृतीये सूक्ते षष्ठो मन्त्रः, निरुक्ते च ऽत्रनेत्रवेद "४२२" प्रमिते पृष्ठेऽस्ति, अस्मिन् मन्त्रे वृष्टिजलप्रदायकानां गङ्गादिनदीनां स्तुतिवर्णनं विधाय, वायुनैव तासां नदीनां वृद्धि र्भवतीति प्रतिपादनं कृतम्——

इमं मे गङ्गे! यमुने! सरस्वति! शुतुद्रि! स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे! वितस्तयार्जीकीये! शृणुह्या सुषोमया ॥"

अन्वयः—हे मरुद्वृधे गङ्गे! हे मरुद्वृधे यमुने! हे मरुद्वृधे सरस्वति! हे मरुद्वृधे शुतुद्रि! इमं मे स्तोमं - आसचत, हे मरुद्वृधे - आर्जीकीये! परुष्ण्या - असिक्न्या - वितस्तया - सुषोमया - च सह इमं मे स्तोमं - आशृणुहि ।

अर्थः—"मरुद्वृधाः सर्वा नद्यो - मरुतः - एनाः - वर्धयन्ति" इति निरुक्त-भाष्यस्य अयं भावः......

मरुद्भिः = वायुभिः, वृद्धाः = वृद्धिगताः, सर्वाः - नद्याः भवन्ति । मरुतः = वायवः - एव एनाः = नद्यादिसरितः वर्धयन्ति, मरुद्वृधे = वायुभिः - वृद्धि प्राप्ते हे गङ्गे! हे यमुने! हे सरस्वति! हे शुतुद्रि! यूयम्, इमं मे = मम,- स्तोमम् अथवा स्तुतिम्. आसचत = आसेवध्वम्, "षच सेचने सेवने च" इत्यर्थकात् भ्वादि-गणात्मने पदस्थ - धातोः - लङ्लकारे "आसचत" इति निरुक्त - भाष्यस्थ - रूपं सिद्धयति "छन्दसिपरेऽपि - १/४/८१" इति वैदिकप्रकरणस्थ - सिद्धान्त कौमुद्याः सूत्रेण "आङ्" उपसर्गस्य परप्रयोगे कृते - "सचता" इति रूपं "षच सेचने सेवने च" इत्यस्माद्धातोरेव सिद्धयति, हे आर्जीकीये! = ऋजुगमनशीले, अथवा ऋजीको नाम पर्वतः - तस्मात् - ऋजीकात्, प्रभवति इत्यर्थे "प्रभवति - ४/३/८३" इति पाणिनि-मुनिविरचितसूत्रेण - "अण्" प्रत्यये ऽनुबन्धलोपे - आदिवृद्धौ च सत्यां स्त्रीत्व विवक्षा-यां - आर्जीका इति रूपम् । आर्जीका - एव - इति विग्रहे "गृहादिभ्यश्च ४/२/१३८" इति सिद्धान्तकौमुद्याः शैषिकप्रकरणस्थपाणिनिसूत्रेण स्वार्थे "छः" प्रत्यये कृते - छस्य स्थाने च ईयादेशो कृते - स्त्रीत्वविवक्षायाम् "आर्जीकीया" इति रूपं सम्बोधने तु "आर्जीकीये" इति रूपं सिद्धयति ।

त्वमपि असिक्न्या - वितस्तया - सुषोमया च सह - इमं मे स्तोमं - मम इमां स्तुतिम् - आशृणुहि=आभिमुख्येन स्थित्वा शृणु, अथवा आसमन्तात् - शृणु ।

अत्र - "आशृणुह्या" इत्यस्मिन् वैदिकप्रक्रिया प्रयोगे - बाहुलकात् "हि" इत्यस्य अलुक्ज्ञेयः "छन्दसि परेऽपि १।४।८१" इति सिद्धान्तकौमुद्याः - वैदिकप्रकरणस्थ - पाणिनिसूत्रेण "आङ्" इति उपसर्गस्य परप्रयोगश्च ज्ञेयः । अस्मिन् मन्त्रे "मरुद्वृधे" इति कथनेन वायुविज्ञानस्य - उत्कर्षस्य - प्रतिपादनं कृतं - ऋग्वेदेन ।

सुन्दरी टीका— गंगा आदि सभी नदियों के जल में तरङ्गों अर्थात् लहरों की उत्पत्ति और जल का उछाल और विस्तार वायु के प्रभाव से होता है, अतएव नदियों की वृद्धि एवं वृहदाकार करने में वायु को प्रधान माना गया है, अतएव वायु से बढ़ने वाली - हे गङ्गे, हे यमुने, हे सरस्वति, हे शुतुद्रि, हे आर्जीकीये, हे परुष्णि, हे

असिक्नि, हे वितस्ते, हे सुषोमे, आप सब मेरी स्तुति को सुनिये।

ऋग्वेद संहितायाः प्रथममण्डले द्वितीयसूक्ते अष्टत्रिंशत् "३८" प्रमितो मन्त्रः अस्य मन्त्रस्य भाष्यं निरुक्तस्य द्वितीयाध्याये पञ्चमपादे एकोत्तरनवति "९१" पृष्ठे अस्ति, भाष्यानुसारेणैवास्य मन्त्रस्यार्थमत्र करोमि......

"दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन् निरुद्धाः आपः पणिनेव गावः।
अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार॥"

अन्वयः—यत् - अपां - बिलम् - अपिहितं - आसीत् - तत् - वृत्रं - जघन्वान्- अपववार, अहिगोपाः - दासपत्नीः - पणिना निरुद्धाः - गावः - इव आपः निरुद्धाः- अतिष्ठन्।

अर्थः—यत् = यदा, अपां बिलम् = जलानां निर्गमद्वारम् (तेन मेघेन इति शेषो विशेषोऽत्र योजनीयः) अपिहितम् = आच्छादितम्, आसीत् तत् = तदा, इन्द्रस्तं वृत्रम् = मेघम् जघन्वान् = निजघ्निवान् = अहत् इत्यर्थः। हत्वा च - अपववार = अपावृतवान् द्वारम्, तदनन्तरं - तस्मिन् द्वारे निहते - अपवृते च सति अहि गोपाः = अहिना = मेघेन, गुप्ता = गोप्यतां नीताः दासपत्नीः दासाधिपत्न्याः - आपः, पणिना = वणिजा व्यापारिणा - इत्यर्थः, निरुद्धाः = रात्रौ - एकत्र अवस्थानाय स्थापिताः, गाव इव=धेनवः-इव - वृष्टिभावेन वर्षारूपेण वा प्रस्यन्दिरे - इति भावः। यथा हि गवां गोष्ठे निरुद्धा गावो - येन केन चित् पुरुषेण गोष्ठद्वारे छिन्ने कृते सति स्वतन्त्रतां प्राप्य इतस्ततः प्रधावन्ति, निपतन्ति च। तथैव मेघस्थानि जलान्यपि इन्द्रेण मेघद्वारे छिन्न भिन्ने कृते सति - स्वतन्त्रताम् प्राप्य - वायुना सह इतस्ततः प्रधावन्ति, वर्षारूपेण निपतन्ति वर्षन्ति च भूमौ, इति तत्वार्थः।

मेघेषु जलानि निवसन्ति, इन्द्रो देवता तेषां मेघानां द्वाराणि छित्वा वर्षां करोतीति सिद्ध्यति पूर्वोक्तेन - अनेन - मन्त्रेण।

अथवा

पणिनेव गावः = पणिनामकोऽसुरः - गाः - अपहृत्य बिले स्थापयित्वा तद् बिलद्वारमाच्छाद्य यथा निरुद्धवान् - तथैव - दासपत्नीः = दासो विश्वोपक्षयहेतुः - वृत्रः पतिः = स्वामी यासां अपां ताः दासपत्नी = दासपत्न्यः, अत्र विभक्तिव्यत्ययः आर्षः, अहिगोपाः = अहिः = वृत्रासुरो गोपो रक्षको यासां ताः गोपनं नाम - स्वच्छन्देन यथा न प्रवहन्ति तथा निरोधनमित्यर्थः। आपो निरुद्धा अतिष्ठन्, अपां यद् बिलम् = प्रवहणद्वारम् अपिहितम् - वृत्रासुरेण निरुद्धमासीत् - तद् बिलम् = प्रवहणद्वारम् वृत्रं जघन्वान् - हतवान् - इन्द्रः, अपववार = अपावृतमकरोत्, वृत्रकृतमपां निरोधं परिहृतवान् इन्द्रो देवता - इत्यर्थः।

सुन्दरी टीका—जैसे किसी गौशाला या घेर की चारदीवारी के अन्दर बन्द हुई गायें गौशाला या घेर के द्वार या दरवाजे को किसी व्यापारी द्वारा बन्द कर देने पर बाहर निकलने में असमर्थ होती हैं, यदि कोई परोपकारी व्यक्ति गौशाला या घेर का दरवाजा तोड़ देता है या खोल देता है, तो गौशाला या घेर से बाहर निकलकर

गायें स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करने में समर्थ हो जाती हैं, वैसे ही मेघों के भीतर बन्द हुआ जल स्वतन्त्रता पूर्वक मेघों से वाहर निकल कर भूगोल पर वरसने में असमर्थ होता है। भूगोल निवासी प्रजा पर दयाशील इन्द्र अपने वल और पराक्रम से मेघों को प्रताडित करके मेघों के द्वारों को तोड़ देता है, इन्द्र द्वारा मेघों के द्वार टूट जाने पर मेघों के अन्दर बन्द हुआ जल मेघद्वारों से वाहर निकलकर स्वतन्त्र होकर भूगोल पर वरसता है।

मेघों में जल रहता है, इन्द्र देवता उन मेघों के दरवाजों को काटकर वर्षा करता है, यह पूर्वोक्त ऋग्वेद के मन्त्र से सिद्ध होता है।

ऋग्वेद संहितायाः - अष्टम मण्डले - पञ्चम सूक्ते द्वादश संख्याप्रमितो मन्त्रः अस्य मन्त्रस्य भाष्यं निरुक्तस्य द्वितीयाध्याये - तृतीयपादे नेत्राष्ट "८२" प्रमिते पृष्ठे अस्ति, भाष्यमनुसृत्यैव मयाऽस्य - मन्त्रस्यार्थः क्रियते——

आर्ष्टिषेणो होत्रमृषि निषीदन् देवापिर्देव सुमतिं चिकित्वान्।
स उत्तरस्मादधरं समुद्रमपो दिव्या असृजद्वर्ष्या अभि॥

अन्वयः—आर्ष्टिषेणः - देवापिः - ऋषिः - होत्रं - निषीदन् - देवसुमतिं - चिकित्वान्, सः उत्तरस्माव - समुदात् - अधरं - समुद्रं दिव्याः - वर्ष्या - अपः - अभि असृजत्।

अर्थः—आर्ष्टिषेणः = ऋष्टिषेणस्य पुत्रः, अथवा इषितसेनस्य पुत्रः, देवापिः = देवापिनामकः, ऋषिः = मुनिः, होत्रम् = होतृकर्म, हवनम् कर्तुं, निषीदन् = उपविष्टवान्, तदनन्तरं देवापिः - ऋषिः - देवसुमतिम् = देवानां कल्याणीं मतिम् - उदकसम्प्रदानाभिमुखीं कतुं चिकित्वान् = चेतनावान् सः देवापिः - ऋषिः तथा स्तुतिं कृतवान् यथा देवानां मतिः - उदकसम्प्रदानाभिमुखी अभूत् - इति सारांशः, तदनन्तरं देवेषु परितुष्टेषु - सः - देवापिः ऋषिः - उत्तरस्मात् = उपरिवर्तमानात् - अर्थात् अन्तरिक्षस्थात् समुद्रात्=आकाशगङ्गातः, अधरम्=अधोवर्तमानम् - अर्थात् भूमौ विद्यमानम् समुद्रम्=पार्थिवं सागरं-प्रति-इति शेषः[अन्तरिक्षस्थ-भूगोलस्थ-समुद्रयोः विभागोऽयमेवावधेयः] दिव्याः = दिविभवाः प्रशस्ताः सस्य - सम्पतकरी वा, वर्ष्याः =वृष्टिरूपभवाः-वर्षारूपभवा वा, अपः=जलानि, अभि=अभितः अथवा सर्वतः, सर्वभूतानामुपरि - असृजत् - अक्षारयत्, सः - देवापिः - ऋषिः अधिकारे वर्तमानः - एवम् अकरोत् इत्यर्थः।

उक्तमन्त्रे-उत्तर समुद्रस्य = अर्थात्-अन्तरिक्षस्थ-समुद्रस्य-यद् वर्णनं कृतं तत्-अन्तरिक्षस्थ-समुद्रवर्णनं तु=आकाशगङ्गानामकसमुद्रवर्णनं, अथवा-चन्द्रपर्वतस्थ-प्रचुरजल-युक्त-समुद्रवर्णनम्, अथवा-आकर्षणशक्तियुक्तैः सूर्यादिग्रहरश्मिभिः- अन्तरिक्षे अवरुद्ध-मेघगर्भधारणाख्य-प्रभूततोयमयसमुद्रस्यैव वर्णनं अस्तीति विज्ञेयं विज्ञैः।

सुन्दरी टीका—ऋष्टिषेण अथवा इषितसेन ऋषि के पुत्र देवापि नाम से प्रसिद्ध ऋषि यज्ञ करने के लिये इस उद्देश्य से बैठे कि मेरे यज्ञानुष्ठान और स्तुति से

इन्द्रादि देवता प्रसन्न होकर भूलोक पर वर्षा करने में अपनी बुद्धि लगायें, देवापि के यज्ञानुष्ठान और स्तुति से इन्द्रादि देवताओं के प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होने पर देवताओं के वरदान से एवं अपने तपोबल के प्रभाव से देवापि ने आकाशगङ्गा से अर्थात् आकाशीय समुद्र से भूगोलीय समुद्रों एवं समस्त नद - नदियों पर तथा भूगोल पर अन्न - सस्य-सम्पदा की वृद्धि करने वाली वर्षा के जल को बरसाया।

ऋग्वेदसंहितायाः- सप्तमण्डले-सप्तमसूक्ते एकोनविंशति- "१९" संख्याप्रमितो-मन्त्रः निरुक्तस्य द्वितीयाध्याये षष्ठपादे सप्तोत्तरनवति "९७" पृष्ठेऽस्ति, निरुक्तस्थं भाष्यमनुसृत्य मन्त्रस्यास्य अर्थमत्र करोमि —

देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन् कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन्।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपाद्वा बृबूकं वहतः पुरीषम् ॥"

अन्वयः— देवानां - माने- प्रथमाः अतिष्ठन्, एषां- कृन्तत्रात्- उपराः-उदायन्, त्रयः- पृथिवीं - तपन्ति, अनूपाः- द्वौ=द्वौ पुरीषं बृबूकम् - वहतः।

अर्थः— देवानाम्=दानादिगुणयुक्तानाम्, माने- विमाने=निर्माणे सृष्टिकाले इत्यर्थः, जगत्स्थितिहेतुभूत - रसानुप्रदान - कर्मणि स्रष्टव्यत्वेन-प्रथमाः=प्रकृष्टतमाः = मुख्याः इत्यर्थः, माध्यमिकाः- देवगणाः - मेघाः अतिष्ठन्=स्थितवन्तः, मेघानाम-भावे हि - वृट्यभावो भवति, वृष्ट्यभावे सति-इदं सर्वमेव जगत्- न स्यात्, एषाम्= एवंभूतानां मेघानाम् कृन्तत्रात्=इन्द्रेण छिन्नात्, "विकर्तनेन - एव=हि, मेघाना-मुदकं जायते" इति निरुक्त भाष्योक्तेः, - उत्कृत्तात् - प्रदेशात् - अर्थात् - छिन्न-प्रदेशात्, उपराः=मेघाः, तत्रस्थाः- आपः- उदायन्- उद्गताः= उत्पन्नाः, वृष्टिरूपेण भूमौ निपतिताः इत्यर्थः। वृष्टिरूपजलेषु पतितेषु सत्सु- इन्द्रस्य- आज्ञया त्रयः- देवाः-पर्जन्यो वायुः-आदित्यः-इति एते त्रयः, शीतोष्ण- वर्षणैः, पृथिवीम्=भूमिम् भूमिस्थम् अन्नौषधि - सस्यादिवर्गं च - तपन्ति=सन्तापयन्ति=पाचयन्तीत्यर्थः "अत्र-अन्तर्भा-वितण्यर्थो ज्ञेयः" कथं भूतास्ते त्रयो देवाः, अनूपाः="अनुवपन्ति लोकान् स्वेन स्वेन कर्मणा" इति - निरुक्तभाष्योक्तेः - ते त्रयोऽपि देवाः - अनुवप्तारः=व्याप्तारः=प्रभावयितारः = प्रक्षेप्तारः- इत्यर्थः। तेषां त्रयाणां देवानां मध्यात् द्वा=द्वौ देवौ=(१)वायुः (२) आदित्यश्च पाचितेषु- अन्नौषधि- सस्यादिषु स्थितम् सर्वस्य जगतः - पालनपूरणकर्तृ-रूपम् "पुरीषम्" पिपर्ति शरीरमिति विग्रहे पालनपूरणकर्तृरूपं वर्चस्वम्=दीप्तिप्रदं-अथवा प्रकाशप्रदमित्यर्थः, बृबूकम्=उदकम्=रसमित्यर्थः,इतः पृथिवीलोकात्-आदित्य-मण्डलं प्रति- अर्थात् आकाशं प्रति- वहतः=आक्षिपतः, वायुसंयोगेन वायुमिश्रितैः स्व-रश्मिभिः सूर्यः भूगोलतो जलानि वर्षार्थं गृह्णातीति तत्वार्थः।

उक्तमन्त्रस्य - अयं सारांशः— पर्जन्यः= मेघः अथवा- इन्द्रः- वायुः, सूर्यश्च हेतुभूतैः - एभिः - एव वर्षा भवति, नान्यथेति, उक्तमन्त्रेण सिद्ध्यति।

वायौ - सूर्ये - सूर्यरश्मिषु च - आकर्षणशक्तिसत्ता - अपि - उक्तमन्त्रेण सिद्ध्यति।

जल - वायु - सूर्यतेजोभि विना - चतुर्विधसृष्टिप्राणिनो न जीवन्ति, इत्यपि-उक्तमन्त्रस्थेन "त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपाः" इति मन्त्रभागेन सिद्धयति ।

सुन्दरी टीका—सृष्टि की रचना के समय ब्रह्मा ने - जब दानादिगुणयुक्त दैवी सृष्टि की रचना करनी प्रारम्भ की थी, तब ब्रह्मा ने सबसे पहले मेघों की रचना की थी, अतएव मेघ दानादिगुणयुक्त दैवी सृष्टि में सर्वप्रथम गिने जाते हैं, क्योंकि मेघों के न होने पर वर्षा का होना असम्भव है, और वर्षा के न होने पर इस सांसारिक-चतुर्विधसृष्टि का जीवित रहना भी असम्भव ही है । संसार को जिन्दा और हरा भरा रखने में मेघ ही मुख्य कारण माने गये हैं ।

इन्द्र द्वारा मेघों के द्वार छिन्न-भिन्न कर देने पर मेघों के भीतर से जल निकल कर भूगोल पर वर्षा के रूप में बरसता है, इन्द्र की आज्ञा अथवा निर्देश से—मेघ, वायु और सूर्य ये तीनों ही देवता सर्दी, गर्मी और वर्षा से - भूगोलस्थ - अन्न - औषधि-सस्यादि एवं धान्यादि का पालन - पोषण और पाचन (पकाना) करते हैं ।

इन तीनों देवताओं में से दो देवता - वायु और सूर्य संसार के जलाशयों में एवं अन्न और सस्य आदि में स्थित जल को खीचते हैं तथा वहन करते हैं , वह जल ही चतुर्विधसृष्टि को जीवित रखता है, वायु के संयोग से अपनी किरणों से सूर्य भूगोल से जल को खींचकर, उसे आकाश में लेजा कर भूगोल पर हजार गुना बरसता है ।

अन्तरिक्षे पर्वतस्थः- इन्द्रः- पर्वतात् - जलानि नीत्वा भूमौ वर्षतीति प्रतिपादनं-ऋग्वेदे कृतं तदत्र लिखामि——

यत्र कुत्रापि संख्या बोधकाङ्कानामुच्चारणमस्ति तत्र "अङ्कानां वामतो गतिः" इति गणितसिद्धान्तानुसारेण- संख्याबोधः कार्यो विज्ञैः ।

अङ्काष्टनवचन्द्र - "१९८६" - वैक्रमाब्दे, शून्याग्निनवचन्द्र "१९३०" ईसवीयाब्दे च - बम्बई - महानगरस्थ - निर्णयसागरप्रेसतः प्रकाशितम् - पण्डित श्री मुकुन्द-र्मणा कृतया निरुक्तविवृत्या सहितं "यास्कमुनिप्रणीतं निरुक्तम्" समवलोक्य-"पर्वतस्थः-इन्द्रः पर्वतात् - जलानि नीत्वा तानि जलानि भूमौ वर्षति" इति निर्णयमत्र करोमि ।

निरुक्ते नैघण्टुककाण्डे वेदवाण—"५४" प्रमितेपृष्ठे——

"मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः"

(ऋ० सं० ८-८-३८-२) ऋग्वेदसंहितायाः- अष्टममण्डले - अष्टमसूक्ते ३८-२ प्रमितमन्त्रभागस्य - अयं भावः- वैदिक - निघण्टौ - मृगः- इन्द्रपर्यायवाचकः स्वीकृतः, अतएव - उक्तमन्त्रस्थेन "मृग शब्देन"-इन्द्रस्य ग्रहणमस्ति । नकारोऽत्र - इवार्थेऽस्ति,

हे इन्द्र ! त्वं कुचरः, गिरिष्ठाः=पर्वताश्रयः=पर्वत- निवासीत्यर्थः, मृगो न सिंह इव, व्याघ्र इव वा भीमः=भयङ्करोऽसि, गिरिष्ठाः=गिरिनिवासशीलः=पर्वत-निवासशीलः, इन्द्रोऽपि हि मेघवाहनत्वाद् गिरिष्ठाः, सिंहोऽपि विशेषतः पर्वताश्रयत्वात् तथैव गिरिष्ठाः, इदं श्लिष्टं विशेषणम् उभयोः इन्द्रसिंहयोः अस्ति ।

उपर्युक्तस्य पुष्टिं निम्नाङ्कितैः गणितग्रन्थप्रमाणैः अपि करोमि— आर्षगणित-ग्रन्थस्य "सूर्यसिद्धान्तस्य" भूगोलाध्याये·····

"अनेकरत्ननिचयो जाम्बूनदमयो गिरिः ।
भूगोलमध्यगो मेरुरुभयत्र विनिर्गतः ॥१॥
उपरिष्टात् स्थितास्तस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः ।
अधस्तादसुरास्तद्वद् द्विषन्तोऽन्योन्यमाश्रिताः ॥२॥"

उक्तश्लोकयोः- अयं भावः—अनेकरत्नसमूहयुक्तः- सुवर्णमयः- सुमेरु - नामक-पर्वतः भूगोलस्य मध्यभागे जम्बूद्वीपे अर्थात् केन्द्रेऽस्ति, स सुमेरुपर्वतो भूगोलस्य -ऊर्ध्वं-भागे अधो भागे च विनिर्गतोऽस्ति । तस्य सुमेरोः पर्वतस्य- ऊर्ध्वभागे "स्वर्गलोकाख्ये" इन्द्रेण सहिताः- देवाः महर्षयश्च निवसन्ति । अधो भागे सुमेरु पर्वतात् दक्षिणस्यांदिशि-निम्न - प्रदेशे च असुराः निवसन्ति । ते देवासुराः परस्परं द्वेषं कुर्वन्तः निवसन्ति ।··· यतो हि - भूगोलाद् - ऊर्ध्वं विनिर्गत्ते सुमेरुपर्वतपृष्ठभागे - तिष्ठन् तत्रैव च चरन्-इन्द्रो देवता निवासं करोति । अतएव "कुचरो गिरिष्ठाः" इति मन्त्रभागस्य - अयं सारांशः="कु शब्दस्य सप्तम्या ऐकवचने कौ इति रूपं भवति" अतः कौ - अर्थात्-सुवर्णमय - सुमेरुपर्वतभूमौ चरतीति - "कुचरः" गिरि शब्दस्य सप्तम्याः एकवचने गिरौ - इति रूपम् भवति । गिरौ = अर्थात् - सुवर्ण - मयसुमेरुपर्वते तिष्ठतीति "गिरिष्ठाः"

'गिरिष्ठाः' इत्यत्र ताच्छील्यविशिष्टेऽर्थे कर्तरि असुन् - प्रत्ययो बोध्यः । अतएव गिरिष्ठाः इति रूपं तु "असुन्" प्रत्ययान्तं ज्ञेयम्, इन्द्रस्य सिंहस्य च विशेषणं "गिरिष्ठाः" रूपमस्ति ।

सुन्दरी टीका—हे इन्द्र आप अपने विपक्षियों का विनाश और दमन करने में सिंह के समान पराक्रमी और भयङ्कर हो, जिस प्रकार पर्वतीय भूमि पर निवास करने में सिंह की स्वाभाविकरुचि रहती है, उसी प्रकार आप भी पर्वतीय क्षेत्र सुमेरुपर्वत पर निवास करने में विशेष रूप से स्वाभाविक रुचि रखते हो, तथा शाक द्वीप के मध्य में स्थित "चन्द्र" नाम के पर्वत से देवनिर्मित वायुयानों में देवनिर्मित यन्त्रों से जल को भरते समय भी आप - चन्द्रादि - पर्वतों पर ठहरते हो ।

शुक्लयजुर्वेदेऽपि वर्षावायुविज्ञानस्य विचारः अस्ति

सन् १९२६ ईसवीयाब्दे भारतवर्षस्य-बम्बई महानगरे निर्णयसागरप्रेसतः प्रकाशितायां महामहोपाध्याय-"श्री मदुवटाचार्य" विरचितमन्त्रभाष्येण, "श्रीमहीधर" कृतवेददीपाख्य - भाष्येण च विभूषितायां " शुक्लयजुर्वेद - संहितायाम्" षट्त्रिंशत् "३६" प्रमितेऽध्याये रामाष्टशर "५८३" प्रमिते पृष्ठे दशमं मन्त्रं पश्यन्तु विद्वांसो वैज्ञानिकाः ।

"शं नो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्यः ।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥१०॥

आचार्य-महीधर भाष्यानुसारेणास्यमन्त्रस्यार्थमत्र लिखामि......

वातः=वायुः, नोऽस्माकम्, शं=सुखकरः, अपरुषः-अव्याधि जनकश्च पवताम्

=वहताम्, "पवगतौ-इत्यस्याद्धातोः-लोट्लकारस्य रूपम्" सुवति जनान्-स्वस्व-व्यापारेषु प्रेरयति सूर्यः, शं=सुखरूपः, अदहनः-भेषजरूपश्च नो=अस्माकम्, तपतु=किरणान् प्रसारयतु, पर्जन्यः=पिपर्ति=पूरयति जनमितिपर्जन्यः, अथवा परोऽम्भः पूरो जन्यतेऽनेन इति पर्जन्यः, "पर्जन्यौरसदब्देन्द्रौ" इति अमरकोषोक्तेः "पर्जन्यो मेघशब्देऽपि ध्वनदम्बुदशक्रयोः" इति विश्वकोषोक्तेः, मेदनीकोषोक्तेश्च, पर्जन्यः=पर्जन्येशो देवः नोऽस्माकं शं=सुखकरम्=काशनिक्षाररहितं यथा स्यात् - तथा अभिवर्षतु=सर्वतः सिञ्चतु, कीदृशः - कनिक्रदत्=अत्यन्तं क्रन्दतीति शब्दं कुर्वन्, "दार्धति-दर्धति-दर्धर्षि-बोभूतु-तेतिक्ते-ऽलर्ष्या-ऽऽपनीफणत्-संसनिष्यदत्-करिक्रत्- कनिक्रदद्-भरिभ्रद्-दविध्वतो-दविद्युतत्-तरित्रतः-सरीसृपतं-वरीवृजन् - मर्मृज्याऽऽगनी - गन्तीति च ७।४।६५" इति वैदिकप्रकरणस्थेन पाणिनिमुनिसूत्रेण यङ्लुगन्तो निपातः। शुक्लयजुर्वेदसंहितायाः सप्तमेऽध्याये-ऽष्टोत्तर-त्रिशत् "३८" प्रमितं मन्त्रं च पश्यन्तु वैज्ञानिकाः—

"मरूत्वां इन्द्र वृषभो रणाय पिवा सोममनुष्वधं मदाय"

उक्त-मन्त्रभागस्यास्य-अर्थमपि महीधरभाष्यानुसारेणात्र करोमि—

"हे इन्द्र त्वं सोमं पिव" द्व्यचोऽतस्तिङ- "६।३।१३' इति वैदिकप्रकरणस्थ-पाणिनिमुनिसूत्रेण संहितायां दीर्घः, किमर्थम् मदाय=तृप्तये, रणाय=सङ्ग्रामाय च, मदे सतीन्द्रो योद्धा भवति, किं भूतस्त्वम् - मरुत्वान् - मरूतोऽस्यसन्तीति मरुद्गण-संयुतः वृषभः=वर्षिता जलानाम् ।

अमरीका - रूस - ब्रिटेनादि - देशेषु समुत्पन्नाः वेधशालासु संस्थिताः अन्यत्र कुत्रापि वा संस्थिताः वर्तमानकाले - शोध - कार्य - कारकाः जिज्ञासवः विद्वांसः वैज्ञानिकाः, पी० एच० डी० उपाधिधारिणाः डाक्टराश्च "चन्द्रग्रहलोकयात्रायाः" भ्रान्तिप्रदं दुराग्रहं परित्यज्य, निष्पक्षया धिया सुविवेकदृष्ट्या च "वर्षावायुविज्ञान-विषये" "ऋग्वेदम्", "यजुर्वेदम्", अथर्ववेदम्", यास्कमुनिप्रणीतं "निरुक्तम्" मत्स्यावताररूपधारिणा भगवता - ईश्वरेण सुमुक्तं "मत्स्यपुराणम्", "विष्णुपुराणम्" वायुपुराणम् तथा श्रीमता भगवताकृष्णेन-समुक्तां-शाङ्करभाष्य-संहितां श्रीमद्भगवद्-गीतां भागवतपुराणम् च विलोकयन्तु सुविचारयन्तु च भवन्तः, तेषु सर्वेष्वपि वेदादि-ग्रन्थेषु - इन्द्रः एव वृष्टिकारकः समुक्तः ।

स इन्द्रस्तु-भूगोलतः- ८४००० योजनप्रमितोच्छाययुक्ते, अर्थात् १२२१८१८ किलोमीटराः । २०० गजाः । उच्छ्रिते सुमेरुनामकपर्वतस्य-ऊर्ध्वभागस्थे-इन्द्रलोके निवासं करोति, चन्द्रलोकस्तु भूगोलतः द्विलक्ष=२००००० योजनप्रमिते अर्थात् २९०९०९० किलोमीटराः । १००० गजाः । प्रमिते-ऊर्ध्वप्रदेशेऽस्ति ।

आधुनिकवैज्ञानिकास्तु भूगोलतः ४००००० चतुर्लक्षकिलोमीटरात्मके-ऊर्ध्वप्रदेशे एव यात्रां कृतवन्तः, अत एव तेषां आधुनिकवैज्ञानिकानां-इयं यात्रा चन्द्रलोकस्य नास्ति, अपि तु जम्बूद्वीपस्थस्य कस्यचित् पर्वतस्य शिखरप्रदेशे एव यात्रा कृता तैः, इत्यनुभीयते नूनम् ।

सुन्दरी टीका—हम सबको सुख देने वाला वायु चले, हम सबको सुख देने वाली किरणों को सूर्य भगवान् प्रसारित करें। इन्द्र और मेघ मधुर गर्जना करते हुये हम सबको सुख देने वाली वर्षा को बरसावें।

उपर्युक्त शुक्लयजुर्वेद संहिता के सातवें अध्याय के अड़तीसवें मन्त्र का सारांश यह है कि—हे इन्द्र! आप सोम रस को पियो, क्योंकि सोमरस पीकर ही आप तृप्त होते हो, और सोमरस पीकर ही युद्ध में अच्छा कौशल दिखाने में समर्थ होते हो। हे इन्द्र! सोमरस से तृप्त होकर ही आप सुन्दर वर्षा करने वाले मरूद्गणों=वायु-समूहों को साथ-लेकर सुन्दर वर्षा किया करते हो।

अमरीका - रूस - ब्रिटेन आदि देशों में जन्म लेने वाले अन्तरिक्ष की यात्रा करने वाले हे वैज्ञानिक डाक्टरो! आप लोग—वर्षावायुविज्ञान का प्रतिपादन करने वाले=ऋग्वेद, यजुर्वेद, आदिवेदों को तथा निरुक्त, मत्स्यपुराण, विष्णुपुराण, वायु-पुराण, शाङ्करभाष्य सहित भगवद्गीता और भागवत पुराण का अवलोकन निष्पक्ष दृष्टिकोण से करें, इन सभी ग्रन्थों में "इन्द्र" को ही वर्षा करने वाला माना है। वह इन्द्र भूगोल से बारह लाख इक्कीस हजार आठ सौ अठारह किलोमीटर और दो सौ गज ऊँचे जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित सुमेरु पर्वत पर बसे इन्द्रलोक में रहता है, भूगोल से चन्द्रलोक २९०९०९० उनतीस लाख नौ हजार नब्भे किलोमीटर और १००० एक हजार गज ऊँचाई पर है, आधुनिक वैज्ञानिक केवल चार लाख किलो-मीटर ऊँचाई पर पहुँचे हैं, उक्त परिस्थिति में आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा की गई चार लाख किलमीटर की ऊँचाई की यात्रा जम्बूद्वीप के किसी पर्वत शिखर पर हुई है, न कि चन्द्रमा पर।

वायुविज्ञानविषये तथा शब्दोच्चारणविषये-एवं च ज्ञानोपपत्तिविषये श्रीपाणिनि-प्रभृतिमुनिमहोदयैः—"पाणिनीयशिक्षा - प्रभृति - ग्रन्थेषु" यद् वैज्ञानिकं विवेचनं कृतं तदत्र वैज्ञानिकानां विदुषां च विनोदाय विलिखामि—

आत्मा बुद्धया समेत्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥१॥
मारुतस्तूरसि-चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम्।
प्रातः सवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम् ॥२॥
कण्ठे माध्यन्दिनयुगं मध्यमं त्रैष्टुभानुगम्।
तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागतानुगम् ॥३॥
सोदीर्णो मूर्धन्यभिहतो वक्त्रमासाद्यमारुतः।
वर्णान् जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः ॥४॥
स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नानुप्रदानतः।
इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तन्निबोधत ॥५॥
उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः।
ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अपि ॥६॥

उदात्तो निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभधैवतौ ।
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः ॥७॥
अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा ।
जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥८॥
प्रातः पठेन्नित्यमुरः स्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन ।
मध्यन्दिने कण्ठगतेन चैव चक्राह्वसंकूजितत- सन्निभेन ॥९॥
तारं तु विद्यात् सवनं तृतीयं शिरोगतं तच्च सदा प्रयोज्यम् ।
मयूरहंसान्यभृतस्वराणां तुल्येन नादेन शिरः स्थितेन ॥१०॥

उपर्युक्तानां पाणिनीय-शिक्षास्थवाक्यानाम् अयं भावः—

आत्मा=जीवात्मा, बुद्ध्या=बुद्धिद्वारा अर्थात् = बुद्धिस्थविषयान्- समेत्य =सम्प्राप्य, विवक्षया=वक्तुमिच्छया, मनो युङ्क्ते=मनः संज्ञकं-उभयेन्द्रियम्= "ज्ञानेन्द्रियं कर्मेन्द्रियं च" विवक्षाया पूर्त्यर्थं नियुक्तं करोति । आत्मनः-आज्ञां प्राप्य मनः - इन्द्रियं तु कायाग्निम्=मानवादिप्राणिनां शरीरस्थं अग्निम् - आहन्ति= प्रताडयति, मनसः प्रताडितः सः - कायाग्नि स्तु=मारुतम् - शरीरस्थं वायुं प्रेरयति= कम्पयति=क्षोभमुत्पादयति, सः=मारुतः उरसि=हृदयप्रदेशे चरन् सन् मन्द्रम्= गम्भीरं स्वरं जनयति=उत्पादयति, शब्दपुरःसरं विदीर्णं कुर्वन् - अर्थात् - हृदय- कण्ठादीनां विवर-(छिद्र)-प्रदेशं विदारयन् शब्दं च कुर्वन् सः वायुः वर्णान् = स्वर-वर्ण- शब्दादीन् जनयति=उत्पादयति, तेषां स्वरवर्णादीनां पञ्चविभागाः=पञ्चभेदाः भवन्ति ।

"मानवादिप्राणिनां शरीरे कायाग्निः कुत्र तिष्ठतीति निर्णयं-अत्र लिखामि

चरकसंहितायां सूत्रस्थानान्तर्गत - द्वादशसंख्याप्रमिते "वातकलाकलीयाध्याये" अन्ते - कायाग्निविषये ऋषिभिः - सुविचारः कृतः - चरककारकाः ऋषयो विलिखन्ति—

अग्निरेव शरीरे पित्तान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति । तद्यथा पक्तिमपक्तिं, दर्शनमदर्शनं, मात्रामात्रत्वभूष्मणः, प्रकृतिविकृतिवर्णौ शौर्यं भयम्, क्रोधं हर्षम्, मोहं प्रसादम्, इति एवमादीनि च अपराणि द्वन्द्वानि इति ।

चरकस्य ग्रहणीचिकित्सायां पञ्चदशसंख्याप्रमितस्य - अध्यायस्य प्रारम्भे एव - ऋषिभिरुक्तम्......

आयु वर्णं बलं स्वास्थ्यमुत्साहोपचयौ प्रभा ।
ओजस्तेजोऽग्नयः प्राणाश्चोक्ताः देहाग्निहेतुकाः ॥३॥
शान्तेऽग्नौ म्रियते युक्ते चिरं जीवत्यनामयः ।
रोगी स्याद् विकृते मूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते ॥४॥
यदन्नं देहधात्वोज - बलवर्णादिपोषकम् ।
तत्राग्निर्हेतुराहारान्न ह्यपक्वाद् रसादयः ॥५॥
अन्नमादानकर्मा तु प्राणः कोष्ठंप्रकर्षति ।
तद्द्रवैर्भिन्नसांघातं स्नेहेन मृदुतां गतम् ॥६॥

उदानेनावधूतोऽग्निरुदर्यः पवनोद्वहः ।
काले भुक्तं समं सम्यक् पचत्यायुर्विवृद्धये ॥७॥
एवं रसमलायान्नमाशयस्थमधः स्थितः ।
पचत्यग्निर्यथा स्थाल्यामोदनायाम्बुतण्डुलम् ॥८॥

उक्तपद्यानामयं भावः—अन्नमादानकर्मा=भक्षितान्नग्रहण-कर्मशीलः, प्राणः= प्राणवायुः भक्षितान्नं-कोष्ठम्=आमाशयम्, - प्रकर्षति=नयति=प्रापयति, भक्षितान्ने - आमाशये - प्रविष्टे सति - आमाशयस्थेन द्रवेण - अर्थात् . क्लेदककफेन - तदन्नं भिन्नसंघातम् - छिन्नभिन्नकठोरत्वं सन् - क्लेदककफस्थस्नेहेन मुदुताम्=कोमलताम् गतम्=कोमलतां प्राप्नोतीत्यर्थः, तदनन्तरम् - समानेन=समाननामकवायुना कंपितः= प्रेरितः, पवनोद्वहः - पवनेन=वायुना उद्वहः=वृद्धि गतः, उदर्यः=उदरस्थः, अग्निः=कायाग्निः=जाठराग्नि इत्यर्थः, काले=उचितसमये,समम्=समानमात्रायाम्, भुक्तम्=भक्षितम् अन्नम् इति शेषः - आयुर्विवृद्धये आयुःप्रभृतीनां वृद्धये पचति= अन्नादीनां - परिपाकं करोति - इतितत्वार्थः ।

यथा हि लोकप्रसिद्धचूल्होपरि - अथवा अंगीठ्याः - उपरि - स्थाल्याम्= अर्थात् लोकप्रसिद्ध - बटलोई - नामकपात्रविशेषे - जलैः सह स्थितानि तण्डुलादीनि - अन्नानि - अधः स्थः प्रत्यक्षाग्निः=बाह्याग्निः, ओदनाय=अर्थात् लोकप्रसिद्ध - भात - संज्ञोकोत्पादनाय पचति । तथैव - चूल्हासदृशायाम् अथवा अंगीठो - सदृशायां पित्तथैल्यां आमाशयतः अधो भागे - जिगरस्य निम्नप्रदेशे स्थितः अर्थात्- पित्ताशये स्थितः जाठराग्निः - अपि - स्वोपरिभाग - प्रदेशे - आमाशये स्थितं अपक्वं-अन्नम् - रसाय - रसोत्पादनाय, एवं मलोत्पादनाय=पुरीषाद्युत्पादनाय पचति । अपक्वमन्नं-परिपाकावस्थां नयतीत्यर्थः ।

आहार परिणामकरास्तु - इमे भावो भवन्ति, तद्यथा - ऊष्मा, वायुः - क्लेदः, स्नेहः, कालः - समयोगश्चेति, चरकसंहितायां शारीरस्थानस्य षष्ठेऽध्याये उपर्युक्ताः- भावाः पठिताः सन्ति ।

रसप्रदीपेऽपि कायाग्नेः-विचारः कृतः, तत्र रसप्रदीपे विलिखन्ति ग्रन्थकाराः—

"जाठरो भगवानग्निरीश्वरोऽन्नस्य पाचकः ।
सौम्याद्रसानाददानो विवेक्तुं नैव शक्यते" ॥१॥
स्थूलकायेषु सत्वेषु यवमात्रः प्रमाणतः ।
ह्रस्वकायेषु सत्वेषु तिलमात्रः प्रमाणतः ॥२॥
कृमिकीटपतङ्गेषु बालमात्रोऽवतिष्ठते ॥३॥

उपर्युक्तरीत्या रसप्रदीपेऽपि - पित्ताशयस्थः - एव - कायाग्निः - भवतीति सिद्ध्यति । सारावली नामके ज्यौतिषग्रन्थेऽपि "इन्दु र्जलं कुजोऽग्नि र्जलमसृगथवाग्निरेव पित्तं स्यात्" इत्युक्तेः - पित्तमेव - कायाग्निः - भवति - इति सिद्ध्यति ।

पित्ताशयरूपाग्निप्रदेशतः - उरः प्रदेशेऽपि शिराः गच्छन्ति, ताभिः शिराभिः ="नाडीभिः" मनः=मनः - इन्द्रियं=कायाग्निम् - अर्थात् पित्ताशयथैलीस्थाग्निस्वरूपं पित्तं आहन्ति=ताडयति=पित्ताशयं क्षुब्धं - करोति - इत्यर्थः । पित्ताशये क्षुब्धे सति

सः- पित्ताशये स्थितः अग्निः नाभिप्रदेशतः पित्ताशयगतासु पित्ताशयनाड्यादिषु - अर्थात् पित्ताशयशिरासु - स्थितं-मारुतं=वायुं प्रेरयति - कम्पयति - इत्यर्थः। कम्पावस्थामापन्नो वायुः वक्षः स्थल -ग्रीवा - कण्ठादिप्रदेशगत - छिद्रान् विदारयन्, - शब्दं च - कुर्वन् - उरसि=उरः प्रदेशे चरन्=गच्छन् सन् - कण्ठप्रदेशं - शीर्षप्रदेशं च- आहत्य =प्रताड्य, मुखविवरे जिह्वाया व्यापारं कारयित्वा मन्द्रम्="मन्द्रस्तुगम्भीरे"- इति-अमरकोषोक्तेः- गम्भीरं स्वरं - वर्ण- स्वर शब्दादिकं जनयति=उत्पादयति=उच्चारयतीति तत्वार्थः।

वायुविज्ञानपोषकस्य - वाताशयस्य विवेचनां करोमि

वक्षःस्थलप्रदेशे तत्सन्निधौ च- उभयपार्श्वस्थो फुफ्फुसो - भवति, तत्र सर्वदैव वायुस्तिष्ठति। अतएव तं फुफ्फुसप्रदेशमेव वाताशयं प्राणिगदन्ति शरीररचनाविशेषज्ञाः। वक्षः स्थलतः- अधो भागे दक्षिणपार्श्वे "सीधे हाथ की तरफ" यकृत् तिष्ठति। तदेव यकृत्संज्ञकं "यन्त्रविशेषम्" आधुनिकाः डाक्टराः जिगर - लीवर - इत्यादिशब्दैः व्यवहरन्ति। जिगरस्य वामपार्श्वे (बायें हाथ की ओर) "आमाशय" स्तिष्ठति, सः- आमाशयः- जिगरस्य-अधः- मध्यभागप्रदेशं यावत्तावत् प्रायः- तिष्ठति। जिगरस्य अधोभागप्रदेशे - यत्र आमाशयस्य- समाप्ति भवति, तत्रैव - जिगरस्य - अधोभागे- जिगर-खण्डद्वय - योगस्थानसदृशः त्रियोणाकृतिकः "△" एक प्रदेशः भवति, तस्मिन् त्रिकोणे द्वौ भुजौ जिगरस्यैव भवतः। अधः स्थस्तृतीयः भुजस्तु तस्मिन् त्रिकोणे "वृहदन्त्रस्य" "बड़ी आँत की" भवति। त्रिकोणात्मके - अस्मिन् - एव - प्रदेशे जिगरस्य - अधोभागे "पित्तम्" तिष्ठति, तस्य त्रिकोणस्य आकारस्तु - लोकप्रसिद्ध "नासपाती"="नाक" फलसदृशः भवति, यस्मिन् त्रिकोणाकारे प्रभागे वित्तं तिष्ठति, स एव भागः "पित्ताशयः" अथवा "पित्तस्य थैली" इति कथ्यते - शरीरविज्ञानविशेषज्ञैः विज्ञैः।

स एव पित्ताशयः-"जाठराग्निः" अथवा-"कायाग्निः" इत्यादि-शब्दैः-वैज्ञानिकैः ऋषिभिः व्यवहृतः - स्वीकृतश्च, सर्वैरेव - आधुनिकैः वैज्ञानिकैः डाक्टरैश्च तत्र शरीरे - पित्ताशयथैली एव - कायाग्नि - स्वरूपा कथिता।

पूर्वप्रसङ्गे "आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनोयुङ्क्ते विवक्षया" इति उक्तवा या वैज्ञानिकी व्यवस्था दत्ता सा वैज्ञानिकी - व्यवस्था - साम्प्रतं लौकिकव्यवहारेऽपि प्रचलतीति - प्रतिपादनं निम्नाङ्कितरीत्या करोमि—

यथा हि राष्ट्रस्य राजधान्यां स्थितः- राष्ट्रपतिः- प्रधानमन्त्रिणं - कस्मिन्नपि कार्ये कार्यसम्पादनार्थं नियुङ्क्ते=नियोजयति, केन्द्रस्थितः=सः- प्रधानमन्त्री च प्रदेश-स्थितान् - मुख्यमन्त्रिसंज्ञकान् - मुख्यमन्त्रिपदारूढान् - मानवान् - प्रेरयति, मुख्य-मन्त्रिणस्ते महानुभावास्तु प्रधानमन्त्रिद्वारा राष्ट्रपति - निर्दिष्टानि सर्वाण्यपि कार्याणि सम्पादयन्ति। तथैव - शरीरस्य राजधानी वक्ष.स्थल प्रदेशोऽस्ति, तत्र मनोऽहङ्कारबुद्धयोऽपि निवसन्ति, ईश्वरपुरुषस्वरूपापन्नः जीवात्मा राष्ट्रपतिभावमाश्रित्य - तत्रैव वक्षः-स्थलस्वरूपराजधान्यां उरः प्रदेशे अर्थात् हृदयप्रदेशे शरीरस्वरूपराष्ट्रकार्य - संचालनार्थं निवसति। यथा हि- राष्ट्रस्य प्रधानमन्त्री - स्वचिकीर्षितानि स्वाधीनानि च महत्वपूर्ण-

कार्याणि - अपि पूर्वं - राष्ट्रपतये समर्पयति=निवेदयति । तथैव राजधानीस्वरूपान्तः-करणप्रदेशस्था मन्त्रिस्वरूपा बुद्धिः स्वाधीनगतानि सर्वाण्यपि - महत्वपूर्णचिकीर्षित-कार्याणि - पूर्वं राष्ट्रपतिस्वरूपपाय - आत्मने=जीवात्मने पुरुषाय समर्पयति, तदनन्तरं अन्तःकरणस्थः जीवात्मा तु बुद्धिप्रदत्तकार्याणां चरितार्थतां सम्पादनाय - स्वप्राईवेट-सेक्रेटरी पदारूढरूपं मनःसंज्ञकं उभयेन्द्रियं नियुङ्क्ते=नियोजयतीत्यर्थः, तदनन्तरं-मनः (१) श्रोत्र (२) त्वक् (३) चक्षुः (४) जिह्वा (५) घ्राण (६) उपस्थ (७) पायु (८) पाद (९) वाक् (१०) हस्त - संज्ञकानि इन्द्रियाणि क्रमशः आवश्यकतानुसारेण- स्वे स्वे कर्मणि नियोजयति=नियुङ्क्ते ।

श्रीमद्भागवते महापुराणे- सप्तमस्कन्धे-पञ्चदशे - अध्याये- चन्द्रवेद "४१" नेत्रवेद "४२" संख्याप्रमितयोः श्लोकयोः - अपि - उपर्युक्तविषये—वैज्ञानिकं विवेचनं कृतं समुपलभ्यते - चाद्यापि —

आहुः शरीरं रथमिन्द्रियाणि हयानभीषून् मन इन्द्रियेशम् ।
वर्त्मानि मात्रा धिषणां च सूतं सत्वं बृहद् वन्धुरमीशसृष्टम् ।।४१।।
अक्षं दशप्राणमधर्मधर्मौ चक्रेऽभिमानं रथिनं च जीवम् ।
धनु र्हि तस्य प्रणवं पठन्ति शरं तु जीवं परमेव लक्ष्यम् ।।४२।।

"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च" ।

"अभीषुः प्रग्रहे रश्मौ" अमरकोषे तृतीये काण्डे नानार्थवर्गे, २१९ प्रमितः श्लोकः ।

उक्तपद्ययोः अयं भावः—

इन्द्रियेशम्=मनः - इन्द्रियम्, अभीषून्=रश्मीन्, आहुः, मात्राः=शब्दादीन्, वर्त्मानि=गन्तव्यदेशान्, आहुः, सत्वम्=चित्तम्, वृहद्देशव्यापि - वन्धुरम्=बन्धनम् आहुः, चित्तं विना हि - अनिबद्धम् - इव - शरीरं भवति, ईशसृष्टम् - इति=वन्धन-कर्ता तु ईश एव - इत्यर्थः ।

"हृदिप्राणः गुदेऽपानः समानो नाभिदेशगः ।
उदानः कण्ठदेशे स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः ।।१।।
नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः"

इत्येवं दशविधं प्राणं - अक्षम् । अभिमानं=साहंकारं जीवं रथिनम्, शुद्धं जीवं शरम्, परं ब्रह्म लक्ष्यम्,यथा धनुषा शरो लक्ष्ये निपात्यते तथा प्रणवेन जीवो ब्रह्मणि निपात्यते, इत्यर्थः ।।४२।।

न्यायमते - आत्मनः - मनसः - बुद्धेश्च लक्षणम्

ज्ञानाधिकरणमात्मा, स द्विविधः, जीवात्मा, परमात्मा चेति, तत्रेश्वरः सर्वज्ञः परमात्मा एक एव, जीवस्तु प्रतिशरीरं भिन्नो विभु र्नित्यश्च ।

मनसो लक्षणम्

सुखाद्युपलब्ध - साधनमिन्द्रियं मनः, तच्च प्रत्यात्मनियतत्वात् अनन्तम्, परमाणुरूपं नित्यं च ।

बुद्धेर्लक्षणम्

सर्वव्यवहारहेतु र्गुणो वुद्धि र्ज्ञानम्, सा द्विविधा, स्मृतिरनुभवश्च, संस्कारमात्र-

जन्यं ज्ञानं स्मृतिः, तद्भिन्नं ज्ञानमनुभवः, स द्विविधः - यथार्थोऽयथार्थश्च ।

शारीरस्थाने चरके निम्नाङ्कितप्रकारेण - आत्मनः मनसः बुद्धेश्च विषये विचारः कृतः—

लक्षणं मनसो ज्ञानस्याभावो भाव एव च ।
सति ह्यात्मेन्द्रियार्थानां सन्निकर्षे न वर्तते ॥१८॥
वैवृत्यान्मनसो ज्ञानं, सान्निध्यात् तच्च वर्तते ॥१८-१/२
मनःपुरःसराणि - इन्द्रियाणि - अर्थग्रहणसमर्थानि भवन्ति ।
अणुत्वमथ चैकत्वं द्वौ गुणौ मनसः स्मृतौ ॥१९॥
चिन्त्यं विचार्यमूह्यं च ध्येयं संकल्प्यमेव च ।
यत् किञ्चिन्मनसो ज्ञेयं तत्सर्वं ह्यर्थसंज्ञकम् ॥२०॥
इन्द्रियाभिग्रहः कर्म मनसः स्वस्य निग्रहः ।
ऊहो विचारश्च ततः परं बुद्धिः प्रवर्तते ॥२१॥
इन्द्रयेणेन्द्रियार्थो हि समनस्केन गृह्यते ।
कल्प्यते मनसा तूर्ध्वं गुणतो दोषतोऽथवा ॥२२॥
जायते विषये तत्र या बुद्धि निश्चयात्मिका ।
व्यवस्यति तया वक्तुं कर्तुं वा बुद्धिपूर्वकम् ॥२३॥
अर्थाः शब्दादयो ज्ञेया गोचरा विषया गुणाः ॥३१॥

गोचराः=इन्द्रियैः ग्राह्याः, विषयाः=शब्दादयः गुणाः - यदा स्थूलस्वरूपाः भवन्ति, तदा ते अर्थसंज्ञकाः भवन्ति ।

अन्तः करणे मनोऽहङ्कारबुद्धयः क्रमशः ज्ञानोत्पत्तिकारकाः-तिष्ठन्ति

आत्मा ज्ञः करणै र्योगात्-ज्ञानं त्वस्यप्रवर्तते ।
करणानामवैमल्यादयोगाद् वा न वर्तते ॥५४॥
पश्यतोऽपि यथाऽदर्शे संक्लिष्टे नास्ति दर्शनम् ।
तत्वं जले वा कलुषे चेतस्युपहते तथा ॥५५॥
करणानि मनोबुद्धि बुद्धिकर्मेन्द्रियाणि च ।
कर्तुः संयोगजं कर्म वेदनाबुद्धिरेव च ॥५६॥
नैकः प्रवर्तते कर्तुं भूतात्मा नाश्नुते फलम् ।
संयोगाद् वर्तते सर्वं तमृते नास्ति किञ्चन ॥५७॥
अभिमानोऽहङ्कारस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्तते सर्गः ।
एकादशकश्च गणस्तन्मात्रा पञ्चकश्चैव सा ॥२४॥
"चक्षुः पश्यति रूपाणि मनसा न च चक्षुषा ।
मनसि व्याकुले चक्षुः पश्यन्नपि न पश्यति" ॥ इति महाभारते

महाभूतानि खं वायुरग्निरापः क्षितिस्तथा ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसोगन्धश्च तद्गुणाः ॥२७॥
तेषामेकगुणः पूर्वो गुणवृद्धिः परे परे ।
पूर्वपूर्वगुणश्चैव क्रमशो गुणिषु स्मृतः ॥२८॥

सृष्टयारम्भे-आकाशस्य स्थितिस्तु स्वयं सिद्धैव भवति—

"आकाशाद् वायुः" "वायोरग्निः" ।
"अग्नेरापः" "अद्भ्यः पृथिवी" ॥

अनेन क्रमेण सृष्टयुत्पत्ति र्भवति—

"इन्द्रियेणेन्द्रियार्थं तु स्वं स्वं गृह्णाति मानवः ।
नियतं तुल्ययोनित्वात्-नान्येनान्यमिति स्थितिः" ॥

इति—सुश्रुतेऽपि वैज्ञानिकी व्यवस्था समुक्ता ।

अग्निवायुभ्यामेव शब्दोत्पत्ति र्भवतीति वैज्ञानिकं प्रतिपादनमत्र करोमि

अग्निप्रकाश-पर्यायवाचकेन तेजसा सह सम्बन्धे सत्येव वायुः शब्दं कर्तुं समर्थः भवति नान्यथा, तेजोऽपि वायुना सह सम्बन्धे सत्येव शब्दं कर्तुं सामर्थ्यवद् भवति, नान्यथा । तेजसा विना वायुः-शब्दं कर्तुं-असमर्थो भवति, वायुनाविना च तेजोऽपि शब्दं कर्तुं-असामर्थ्य वद् भवति, वैज्ञानिकदृष्ट्या-शब्दप्रयोगविषये-उक्तरीत्या वायु-तेजसोरन्योऽन्याश्रयसम्बन्धो वर्तते ।

"हे वैज्ञानिकाः ! विचारयन्तु भवन्तः-आधुनिकैः-वैज्ञानिक-मनुष्यैः काष्ठ - लोह - ताम्र - प्रभृतिभिः - अनेकैः - धातुविशेषैः - अनेकैः -पाञ्चभौतिक-रासायनिक-पदार्थैश्च विनिर्मितेषु - रेडियो - टेलीवीजन - ट्रांसजिस्टर - लाऊडस्पीकर-प्रभृतिषु शब्दप्रसारणयन्त्रेषु वायोः आदान-प्रदान कर्मकराणि-अनेकानि छिद्राणि यथा भवन्ति, तथैव ईश्वरनिर्मितेषु मानवादिप्राणिनां पाञ्चभौतिक शरीरयन्त्रेष्वपि - मुख - नेत्र - कर्ण - नासिका - गुदा - मेढ़ - संज्ञकेन्द्रियेषु - प्रसिद्धानि नवछिद्राणि रोमकूपेषु च बहुसंख्यकानि छिद्राणि च वायोः आदान-प्रदान-कराणि भवन्ति. तानि यन्त्राणि-अग्नि-प्रकाश - पर्यायवाचकेन विद्युत्तेजसा सम्बन्धेन - वायु - सम्बन्धेन च-शब्दध्वनिकराणि भवन्ति । अथवा रासायनिक - पथार्थविशेषैः निर्मित-बैटरीयन्त्रेण यदा तेषु जेतः समुत्पद्यते, तदैव तानि शब्दध्वनिकराणि सिद्धयन्ति, नान्यथेति । ट्रांसजिस्टर-यन्त्रस्य बैटरीयन्त्रेण-तेजसि समुत्पन्ने वायुसम्बन्धे सत्येव तत् ट्रांसजिस्टर - यन्त्रं शब्दध्वनिं प्रसारयति । तस्य ट्रांसजिस्टर-यन्त्रस्य बैटरीयन्त्रे विकृते विनष्टे वा सति यदा तेजो-नोत्पद्यते, तदा वायौ सत्यपि तत् ट्रांसजिस्टरयन्त्रं शब्धध्वनिं कर्तुं असामार्थ्यवद् भवति । ट्रांसजिस्टरयन्त्रस्य बैटरीयन्त्रेण-तेजः समुत्पन्नेसत्यपि-यदाकेनापि हेतुना वायोः अवरोधो भवति, तदा तेजः समुत्पन्नमात्रेणापि ट्रांसजिस्टरयन्त्रं शब्दं कर्तुं असामर्थ्य-वद् भवति । इत्थं च रेडियो प्रभृतीनि शब्दप्रसारणकराणि यानि यन्त्राणि सन्ति, तान्यपि विद्युत्तेजसः अभावे सति शब्दप्रदानि न भवन्तीति प्रत्यक्षमेव-अहर्निशं दरीदृश्यते-ऽस्माभिः सर्वैः ।

मानवविनिर्मितानि-रेडियो-टेलीवीजन-ट्रांसजिस्टर-प्रभृतीनि यन्त्राणि स्वनिष्ठ-तेजो वायुभ्यां विना यथा-शब्दप्रसारणकर्तुं-असमर्थानि निरर्थकानि च नष्टभ्रष्टसंज्ञकानि भवन्ति, तथैव ईश्वर-विनिर्मितानि - मानव - पशु - पक्षि - प्रभृति - प्राणिमात्रशरीर-यन्त्राणि-अपि स्वनिष्ठ-तेजोवायुभ्यां विना किमपि शब्दं कर्तुं असमर्थानि-निरर्थकानि-नष्ट-भ्रष्टानि मृतसंज्ञकानि च भवन्ति ।

यथा हि - रेडियो - टेलीवीजन - ट्रांजिस्टर-प्रभृतिषु-यन्त्रेषु साधारण-गम्भीर-उच्च - उच्चतर - उच्चतम-ध्वनि- प्रसारणकराणि वायुनियामक - केन्द्रपर्यायवाच - कानि - स्विचसंज्ञकानि यन्त्राणि भवन्ति, तथैव मानव पशुपक्षिप्राणिमात्र - शरीरयन्त्रे-ष्वपि - साधारण - गम्भीर - उच्च - उच्चतर उच्चतम - शब्दप्रसारणकाराणि वायु-केन्द्राणि सन्ति । तानि वायु - केन्द्रोपकेन्द्राणि तु - नाभि - हृदय - वक्षःस्थल - कण्ठ शीर्ष - गुदाप्रभृतिषु - स्थानविशेषेषु भवन्ति । अतएव—

"हृदि प्राणोगुदेऽपानः समानो नाभिदेशगः ।
उदानः कण्ठदेशे स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः ।"

"प्रातः स्मरेन्नित्यमुरः स्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन ।
मध्यन्दिनेकण्ठगतेन चैव चक्राह्वसंकूजित सन्निमेन ।।२।।
तारंतु विद्यात् सवनं तृतीयं शिरोगतं तच्च सदा प्रयोज्यम् ।
मयूरहंसान्यभृतस्वराणां तुल्येन नादेन शिरः स्थितेन ।।३।।"

इत्येतादृशी व्यवस्था वायुकेन्द्रोपकेन्द्रविषये सुश्रुतपाणिनिचरकप्रभृतिभिः ऋषिभिः कृता स्वस्वनिबन्धग्रन्थेषु ।

पूर्वोक्तसिद्धान्तपक्षं - अनुसृत्यैव - वैज्ञानिकप्रवरैः श्रीवराहमिहिराचार्यैः वृहत्सं-हितायां वेदमुनि "७४" प्रमिते - अध्याये - तृतीये - चतुर्थे च श्लोके आत्मेन्द्रियंमनसां विषये सिद्धान्तपक्षः प्रतिपादितः——

"आत्मा सहैति मनसा मन इन्द्रियेण—
स्वार्थेन चेन्द्रियमितिक्रम एष शीघ्रः ।
योगोऽयमेव मनसः किमगम्यमस्ति—
यस्मिन् मनो व्रजति तत्र गतोऽयमात्मा ।।३।।
आत्मायमात्मनि गतो हृदयेऽतिसूक्ष्मो—
ग्राह्योऽचलेन मनसा सतताभियोगात् ।
यो यं विचिन्तयति याति स तन्मयत्वम्—
यस्मादतः सुभगमेव गता युवत्यः ।।४।।

प्राणिशरीरेषु मनसः स्थानं निम्नाङ्कितं भवति......
"नाभेरूर्ध्वं वितस्तिं च कण्ठाधस्तात् षडङ्गुलम् ।
हृदयं तद् विजानीयाद् विश्वस्यायतनं महत् ।।"

अस्य पद्यस्य अयं भावः—

नाभेः=नाभिप्रदेशात्, वितस्तिम्=द्वादशाङ्गुलप्रमाणं यावत् - तावत् प्रदेशं विहाय ऊर्ध्वम् =उर्ध्वप्रदेशस्थितम्, कण्ठाधस्तात्=कण्ठस्य - अधः प्रदेशात्, षडङ्गुलं

यावत् तावत् प्रदेशं विहाय - यत् स्थानं वक्षःस्थले वर्तते, तत् स्थानम् - एव हृदयम् अर्थात् - हृदयप्रदेशं विजानीयात्, तत् हृदयस्थानमेव विश्वस्य=जगतः - आयतनम्= आधारस्थानं भवति ।

अत्र आयतनशब्दस्य अयं भावः ——

आयतन्तेऽत्र "यती प्रयत्ने - भ्वा० आ० से० अधिकरणेल्युट् (३/३/११८)

ज्ञानोपपत्तिविषये कर्मोत्पत्तिविषये च सांख्यमतेऽपि त्रयोदश करणानाम् विचारः कृतः - तत्सांख्यमतमत्र लिखामि—

करणं त्रयोदशविधं तदाहरणधारणप्रकाशकरम् ।
कार्यं च तस्य दशधा हार्यं धार्यं प्रकाश्यञ्च ॥३२॥
अन्तःकरणं त्रिविधं दशधा बाह्यं त्रयस्य विषयाख्यम् ।
साम्प्रतकालं बाह्यं त्रिकालमाभ्यन्तरं करणम् ॥३३॥
बुद्धीन्द्रियाणि तेषां पञ्चा विशेषाविशेषविषयाणि ।
वाग्भवति शब्दविषया शेषाणि तु पंच विषयाणि ॥३४॥
सान्तःकरणा बुद्धिः सर्वं विषयमवगाहते यस्मात् ।
तस्मात् त्रिविधं करणं द्वारि द्वाराणि शेषाणि ॥३५॥
एते प्रदीपकल्पाः परस्पर - विलक्षणगुणविशेषाः ।
कृत्स्नं पुरुषस्यार्थं प्रकाश्य बुद्धौ प्रयच्छन्ति ॥३६॥

सांख्यकारिकास्थानाम् - उपर्युक्तश्लोकनां अयं भावः——

ज्ञानोपपत्तये - त्रयोदश - "१३" करणानि अर्थात् - असाधारणकारणानि भवन्ति । (१) मनः (२) अहङ्कारः (३) बुद्धिः, (१) श्रोत्र (२) त्वक् (३) चक्षुः (४) जिह्वा (५) घ्राणसंज्ञकानि पंचज्ञानेन्द्रियाणि भवन्ति ।

(१) उपस्थ (२) पायु (३) पाद (४) वाक् (५) हस्त इति पंचकर्मेन्द्रियाणि भवन्ति । इत्थं - ३+५+५=१३ त्रयोदश - प्रमितानि भवन्ति करणानि । तत् - त्रयोदशकरणं - (१) आहरण (२) धारण (३) प्रकाशकरं च भवति । तत्र आहरणं धारणं च कर्मेन्द्रियाणि कुर्वन्ति । प्रकाशं बुद्धीन्द्रियाणि=ज्ञानेन्द्रियाणि कुर्वन्लि । तस्य कारणस्य कार्यं - अर्थात् - कर्तव्यं दशधा - अर्थात् - दशप्रकारं भवति......

(१) शब्द (२) स्पर्श (३) रूप (४) रस (५) गन्ध (६) वचन (७) आदान - प्रदान (८) विहरण (९) मलोत्सर्गादि (१०) आनन्द - संज्ञकं - एतद्दशविधं कार्यम् बुद्धीन्द्रियैः प्रकाशितं - कर्मेन्द्रियाणि आहरन्ति - धारयन्ति च तद्दशविधं कार्यम् । मनः - अहङ्कारः - बुद्धिः - इति त्रिविधं अन्तःकरणं भवति ।

पञ्चसंख्याप्रमितानि बुद्धीन्द्रियाणि, पञ्चसंख्याप्रमितानि कर्मेन्द्रियाणि इत्थं ५+५=१० संख्या प्रमितं बाह्यं भवति - अर्थात् - बाह्यंकरणं भवति । एतद्दशविधं बाह्य - करणं - अन्तःकरणत्रयस्य - अर्थात्(१)मनः (२) अहङ्कारं (३) बुद्धिसंज्ञकत्रयस्य विषयं - अर्थात् उपभोग्यं भवति। एतद्दशप्रकारं बाह्यं साम्प्रतकालं - अर्थात् - वर्तमान - कालिकं भवति । साम्प्रतकालम् - इति कथनस्य - अयंभावः——

(१) श्रोत्रेन्द्रियं वर्तमानकालिकमेवशब्दं श्रृणोति भूतं - भविष्यं च शब्दं न श्रृणोति। (२) चक्षुरपि वर्तमानेव रूपं पश्यति, न भूतकालीनं-न च भविष्यकालीनम्। (३) त्वक् - इन्द्रियम् वर्तमानकालिकं - एव - स्पर्शं करोति न भूतं न च भविष्यम्-स्पर्शं करोति। (४) एवं जिह्वा - वर्तमानं रसं गृह्णाति - न भूतं न च भविष्यम्। (५) नासिका वर्तमानमेव - गन्धं - गृह्णाति न भूतं न च भविष्यं गृह्णाति। उक्तरीत्या बुद्धिन्द्रियाणां साम्प्रतकालत्वं प्रतिपादितम् भवति।

अथ कर्मेन्द्रियाणां साम्प्रतकालत्वं प्रतिपादयामि—

(१) वाक् - इन्द्रियं वर्तमानमेव शब्दं उच्चारयति, न भूतं न च भविष्यम्।

(२) हस्तौ - वर्तमानमेव - घटपटादिपदार्थं-आददाते, न भूतं न च भविष्यम्।

(३) पादौ वर्तमानं मार्गं विहरतः - न भूतं न च भविष्यम्।

(४) पायुनामकेन्द्रियं - अर्थात् - गुदा - इन्द्रियं - वर्तमानमेव मलं त्यजति न भूतं न च भविष्यम्।

(५) उपस्थेन्द्रियं - लिङ्गं - अर्थात् - मूत्रेन्द्रियं वर्तमानमेव आनन्दं करोति, मूत्रोत्सर्गं अपि वर्तमानमेव करोति, न भूतं न च भविष्यम्।

उपर्युक्तप्रकारेण - बाह्यं करणं साम्प्रतकालं - अर्थात् - वर्तमान - कालिकं सिद्ध्यति। आभ्यन्तरकरणं तु "मनः अहङ्कार - बुद्धि - संज्ञककरणं" त्रिकालं - अर्थात् भूत - वर्तमान - भविष्य - संज्ञकेषु त्रिकालेष्वपि भवति।

(१) मनः वर्तमानविषये सङ्कल्पविकल्पं करोति, भूतविषये, भविष्यविषयेऽपि च सङ्कल्पं विकल्पं करोति।

(२) अहङ्कारः वर्तमानविषये - अहङ्कारं करोति, भूते - भविष्येऽपि विषये अहङ्कारं करोति।

(३) बुद्धिः वर्तमाने घट - पट - मोदकापि-पदार्थानां बोधं करोति, भूतकालिकानां भविष्यकालिकाना चापि पदार्थानां बोधं करोति।

उक्तरीत्या आभ्यन्तरं करणं त्रिकालं=त्रैकालिकं सिद्ध्यति।

मानवादि प्राणिनां शरीरान्तर्गत - वक्षःस्थल प्रदेशे मनोऽहङ्कारबुद्धयस्तिष्ठन्ति, तत्रैव अन्तःकरणप्रदेशे वक्षःस्थले "जीवात्मा" अपि तिष्ठति, प्राणिनां शरीरे वक्षः - स्थले - जीवात्मा - एव भगवान् अस्ति। अतएव श्रीमद्भगवद्गीतायां भगवता श्री कृष्णेन समुक्तम्··· "अन्तः प्रविष्टो भगवान् - हृद्देशेऽर्जुन ! तिष्ठति।"

मनसो निवासस्थानमपि वक्षः स्थलप्रदेशे-अर्थात् अन्तःकरणप्रदेशे अस्ति। वक्षः-स्थलप्रदेशः एव मनसो विश्रामालयोऽस्ति। शीर्षप्रदेशे=मस्तिष्कभागे मनसः कार्यालयोऽस्ति, स्वकार्यालये स्थित्वा एव मनः सर्वविधकार्याणि करोति, मानवादिप्राणिनां वक्षःस्थल - शीर्षप्रदेशयोः सुविदारणे कृते क्षतविक्षते - छिन्नभिन्ने च कृते मनोऽहङ्कार-बुद्धयो जीवात्मा च ततः स्थानात् बहिर्निगच्छन्ति। बहिर्निगतेषु तेषु मानवादिप्राणी मृतः इति उद्घोष्यते लोके सर्वैः जनैः।

अमरीका - रूस - ब्रिटेन-चीन - जापान-भारतादिदेशोत्पन्नाः— हे वैज्ञानिकाः!

विचारयन्तु भवन्तः । संस्कृतवाङ्मये श्री पाणिनिमुनिमहोदयैः स्वशिक्षायाम् "आत्म-बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया" इत्यादिकं यद् वैज्ञानिकं प्रतिपादनं कृतं तेन् वैज्ञानिकप्रतिपादनेन विना कोऽपि वैज्ञानिकः- एकमपि - अक्षरं शब्दं वा वक्तुं समर्थः भवति किं ?

अर्थात् उपर्युक्त - संस्कृत-वाङ्मयस्थ - वैज्ञानिकरीत्या - विना नकोऽपि वैज्ञानिकः शब्दं अक्षरं वा वक्तुं समर्थो भवति ।

(१) वायुनैव गतिमासाद्य जिह्वा— "अ - आ - आ३,क - ख - ग घ - ङ०- ह अक्षराणां विसर्गस्य ":" च - उच्चारणावसरे कण्ठस्थानस्य स्पर्शं करोति, अतएव पूर्वोक्ताक्षराणां विसर्गाणां च कण्ठस्थानम् भवतीति सिद्धान्तकौमुद्यां "अकुहविसर्जनी-यानां कण्ठः" इति उक्तम् ।

(२) वायुनैव - गतिं समासाद्य जिह्वा— इ - ई - च - छ - ज - झ - ञ - य - श" वर्णाक्षराणाम् - उच्चारणावसरे - तालुस्थानस्य स्पर्शं करोति - अतएव- एषां वर्णानां "तालु" स्थानं भवति, अतः-सिद्धान्तकौमुद्यां "इचुयशानां तालु" इति उक्तम् ।

(३) "ऋ - ॠ - ट - ठ - ड - ढ - ण - र - ष" एषां वर्णाक्षराणामुच्चार-णावसरे जिह्वा वायुना - गतिमासाद्य "मूर्धा" स्थानस्य स्पर्श करोति, अतः- एषां वर्णाक्षराणां मूर्धा - स्थानं भवति, अतः सिद्धान्तकौमुद्याम् "ऋटुरषाणां मूर्धा" इति-उक्तम् ।

(४) "ऌ - ॡ - त - थ - द - ध - न - ल - स" वर्णाक्षराणामुच्चारण - काले वायुना गतिं प्राप्य जिह्वा दन्तस्थानस्य "लोकप्रसिद्धदांतस्थानस्य" स्पर्शं करोति, अतः- एषां वर्णाक्षराणां "दन्तः" स्थानं भवति, अतः सिद्धान्तकौमुद्याम् "ऌतुलसानां दन्तः" इति - उक्तम् ।

(५) "उ - ऊ - प - फ - ब - भ - म - ⌣ प ⌣ फ" वर्णाक्षराणामुच्चा-रणकाले - वायुना ओष्ठयोः="लोकप्रसिद्धहोठयोः" गतिः- समुत्पद्यते, तौ च ओष्ठौ परस्परं मिलतः, अर्थात्- तयोः ओष्ठयोः परस्परं स्पर्शो भवति, अतः एषां वर्णा-क्षराणाम् "ओष्ठ" - स्थानं भवति, अतः- "उपूपध्मानीयानामोष्ठौ" इति सिद्धान्त-कौमुद्यामुक्तम् ।

(६) "ञ - म - ङ - ण - न" एषां वर्णाक्षराणामुच्चारणकाले- वायुना गति-मासाद्य - नासिकया "लोकप्रसिद्धनाकतः" अपि - ध्वनिः उत्पद्यते, अतः- एषां वर्णा-वर्णाक्षराणां "नासिका" अपि-स्थानं भवति । अतः 'ञमङणनानां नासिका च" इति मिद्धान्तकौमुद्यामुक्तम् ।

(७) "ए - ऐ" अक्षरयोः- उच्चोरणकाले वायुनागतिं समासाध जिह्वा- कण्ठ-तालु - स्थानयोः स्पर्शं करोति, अतः- ए - ऐ अक्षरयोः - कण्ठ - तालु - स्थानं भवति, अतः "एदैतोः कण्ठतालु" इति सिद्धान्तकौमुद्यां समुक्तम् ।

(८) "ओ - औ" अक्षरयोः-उच्चारणवसरे वायुना गतिं समासाद्य-कण्ठोष्ठौ-प्रगतिं कुरुतः । जिह्वा - अपि - वायुना गतिमासाद्य - कण्ठोष्ठयोः समीपे - एव -

गतिविधिं करोति, अतएव "ओ - औ" अक्षरयोः - "कण्ठोष्ठ" स्थानं भवति, अतः- "ओदौतोः कण्ठोष्ठम्" इतिसिद्धान्तकौमुद्यामुक्तम् ।

(९) "व" वकारस्य - उच्चारणकाले वायुना गतिमासाद्य-दन्तोष्ठयोः-व्यापारो भवति, वायुना गतिमासाद्य जिह्वा अपि दन्तोष्ठयोः पार्श्वे - एव गतिविधिं करोति, अतएव - वकारस्य "दन्तोष्ठ" स्थानं भवति । अतः - "वकारस्य दन्तोष्ठम्" इति सिद्धान्तकौमुद्यां समुक्तम् ।

(१०) "ᳵ क ᳵ ख" अक्षरयोः - उच्चारणकाले वायुना गतिं प्राप्य जिह्वा "लोकप्रसिद्ध जीव" स्वमूले-एव "जिह्वामूले-एव" लोकप्रसिद्ध - जीव-जड़स्थाने-एव "गतिविधिं करोति, अतएव-ᳵ क ᳵ ख" अक्षरयोः जिह्वामूलं एव-स्थानं भवति । अतः "जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्" इति सिद्धान्त-कौमुद्यासमुक्तम् ।

(११) "अं = ं" अनुवारस्य-उच्चारणकाले-वायुना-गतिमासाद्य जिह्वा नासिकाछिद्रस्य मूलप्रदेशसमीपे गतिविधि करोति, वायुगतिमासाद्य-नासिकया एव अनुस्वारस्य ध्वनिः भवति, अतएव अनुस्वारस्य नासिकास्थानं भवति । अतः "नासि-काऽनुस्वारस्य" इति सिद्धान्तकौमुद्यां समुक्तम् ।

उपर्युक्तकथनस्य-अयं भावाः—सर्वेषां-वर्णाक्षराणाम् - अनुस्वारविसर्गाणां च-स्थानानि - अपि - वायुनैव समुत्पद्यन्ते, वायुना विना-जिह्वा - कण्ठोष्ठ-दन्तप्रभृतिषु कुत्रापि गतिः नैन समुत्पद्यते, जिह्वाप्रभृतिषु गतिरहितेषु सत्सु सर्वेषां वर्णाक्षराणां-अनुस्वारविसर्गाणां च कानि कानि स्थानानि भवन्तीति निर्णेतुं कोऽपि वैज्ञानिकः शब्द-शास्त्रज्ञो वा अन्योऽपि कश्चन मानवः समर्थः - न भूतो, न वर्तते न च भविष्यति ।

वायुना विना कोऽपि वैज्ञानिकः - शब्दशास्त्रज्ञोवा अन्योऽपि कश्चन मानवः एकमपि-अक्षरं - शब्दं वा कथितुं समर्थः-न भूतो-न वर्तते न च भविष्यति ।

आभ्यन्तर-वाह्यप्रयत्नयोः क्रमशः ५ + ११ = १६ = षोडशभेदाः भवन्ति । ते सर्वेऽपि षोडशभेदाः—वायुनैव जायन्ते । कैश्चिद् विद्वद्भिः - आभ्यन्तरप्रयत्नस्य चत्वारो भेदाः स्वीकृताः ।

श्री ज्ञानेन्द्र-सरस्वती-महाभागास्तत्वबोधिनी टीकायां वायुविज्ञानविषये वैज्ञानिकं विवेचनं विधाय विलिखन्ति......

"तथा हि-नाभिप्रदेशात् प्रयत्नप्रेरितो वायुः प्राणो नाम ऊर्ध्वं-आक्रामन्-उरः प्रभृतीनि स्थ नानि-आहन्ति. ततो वर्णस्य तदभिव्यञ्जकध्वने र्वा उत्पत्तिः, तत्र-उत्पत्तेः प्राक्-यदा-जिह्वाग्रोपाग्रमध्यमूलानि तत् तत्-वर्णोत्पत्तिस्थानं ताल्वादि-सम्यक् स्पृशन्ति, तदा स्पृष्टता, ईषद् यदा स्पृशन्ति तदा-ईषत्स्पृष्टता, समीपावस्थानमात्रे संवृतता, दूरत्वे विवृता, अतएव-इचुयशानां तालव्यत्वाविशेषेऽपि तालुस्थानेन सह जिह्वाग्रादीनां चवर्गोच्चारणे कर्तव्ये सम्यक् स्पर्शः, यकारे-ईषत्स्पर्शः, शकारेकारयोस्तु दूरेऽवस्थितिः, इत्याद्यनुभवं शिक्षाकारोक्तिं चानुसृत्य विवेचनीयम् । विवारसंवारादयस्तु-वर्णोत्पत्तेः पश्चात् मूर्ध्नि प्रतिहते निवृत्ते प्राणाख्ये वायौ-उत्पद्यन्ते, इति वाह्याः-इति उच्यन्ते ।

गलबिलस्य संकोचात् संवारः, तस्यैव विकासात् विवारः, एतौ च संवृत-विवृत-रूपाभ्याम्-आभ्यन्तराभ्यां भिन्नौ - एव, - तयोः-समीप-दूरावस्थानात्मकत्वात्-इति-अवधेयम् ।

अत्रायं विशेषः मानवादिप्राणिनां शरीरेषु चैतन्यशक्तिस्तु आत्मन्येव तिष्ठति, आत्मना विना नान्यत्र कुत्रापि चैतन्यशक्तिः, अतएव नाभिप्रदेशेऽन्यत्र वा कुत्रापि प्रदेशे प्रयत्नस्तु - आत्मनैव जायते, नान्येन केनचित्, आत्मन्येव चैतन्यशक्ति विद्यमानत्वात् ।

श्री पाणिनिमुनिसूत्राणि — अनुसृत्य-श्रीभट्टोजिदीक्षितमहोदयैः - विरचितायाः सिद्धान्तकोमुद्याः संज्ञाप्रकरणे मूलपाठे, तथा श्रीज्ञानेन्द्रसरस्वती-विरचित "तत्वबोधिनी" टीकायाञ्च "वायुविज्ञानविषये यद् वैज्ञानिकं विवेचनं कृतं ततः समुद्धृत्य मया अत्र-विलिख्यते ।—

मानवादीनां ग्रीवातः-उर्ध्वभागे मुखतश्च-अधोभोगे-गलस्य विवरे काकलकस्य-अर्थात्-लोकप्रसिद्धस्य काकस्य स्थितिः अस्ति । तस्मात्-काकात्-आरभ्य ओष्ठप्रदेशान्तं यावत्तावत्-आस्यम् अथवा-मुखम्- अस्ति-इति व्यवह्रियते । काकलकं हि नाम ग्रीवाया-मुन्नतप्रदेशः ।

कस्यापि-अक्षरस्य अर्थात्—वर्णस्य-शब्दस्य वा उच्चारणे द्वौ प्रयत्नौ-अर्थात्—उद्योगौ व्यापरौ वा भवतः । तत्र प्रथमः आभ्यन्तरप्रयत्नः, द्वितीयः बाह्यप्रयत्नश्च, तत्र आभ्यन्तरप्रयत्नः - मुखान्तर्गतः भवति, बाह्यप्रयत्नस्तु-मुखात् - भिन्नस्थानेषु गलविवरादिविकासादिषु भवति | (१) स्पृष्टः (२) ईषत्स्पृष्टः (३) विवृतः (४) संवृतः, इति संज्ञकाः आभ्यन्तरप्रयत्नस्य चत्वारः भेदाः भवन्ति, बाह्यप्रयत्नस्य तु— (१) विवारः, (२) संवारः, (३) श्वासः, (४) नादः, (५) घोषः, (६) अघोषः, (७) अल्पप्राणः, (८) महाप्राणः, (९) उदात्तः, (१०) अनुदात्तः, (११) स्वरितः, इति संज्ञकाः-एकादशभेदाः भवन्ति ।

श्रीपतञ्जलि-मुनिप्रणीत - व्याकरण - महाभाष्यस्य प्रथमाध्याये प्रथमपादे चतुर्थाह्निके - "तुल्यास्य प्रयत्नं-सवर्णम्—१।१।९" अस्य सूत्रस्य भाष्यावसरे भाष्य-कारैः श्रीपतञ्जलिमुनिमहोदयैरपि वायुविज्ञानविषये वैज्ञानिकं विवेचनं कृतम् । तथाहि-महाभाष्ये-"प्रयत्नश्च विशेषितः कथम् ? न हि प्रयत्नं प्रयत्नः, किं तर्हि प्रारम्भो यत्नस्य प्रयत्नः" उक्तभाष्यस्य व्याख्याबोधकः"प्रदीपः" अर्थः श्री कैयट-महोदयैः कृतः, तत्र पूर्वं स्पृष्टतादयश्चत्वारः—"(१) स्पृष्टः, (२) ईषत्स्पृष्टः, (३) विवृतः, (४) संवृतः" इति संज्ञकाः ।

पश्चात् - मूर्घ्नि प्रतिहते निवृत्ते प्राणाख्ये वायौ विकासादयो बाह्याः एकादश-प्रयत्नाः उत्पद्यन्ते । एतादृशोऽर्थः "प्रारम्भोयत्नस्य प्रयत्नः" इत्यस्य विहितः ।

श्री नागेशमहोदयैस्तु महाभाष्यस्य व्याख्याबोधकः "प्रद्योतः" नामकोऽर्थः कृतः, तत्र "नागेशमहोदयैस्तु प्रारम्भो यत्नस्य प्रयत्नः"- इत्यस्य वक्ष्यमाणरीत्या अर्थः कृतः-श्री नागेशमहाभागास्तत्र विलिखन्ति——

"अत्रेदं बोध्यम् - शब्दप्रयोगेच्छया - उत्पन्नयत्नात् नाभिप्रदेशात् प्रेरितो वायुः

वेगात् - मूर्धपर्यन्तं गत्वा ततः प्रतिनिवृत्तो यत्नविशेषसहायेन तत्तत् स्थानेषु जिह्वा-ग्रादि - स्पर्शपूर्वकं तत्तत्स्थानानि - आहत्य वर्णान् अभिव्यनक्ति, ततः - यत्नविशेष-सहायेन परावृत्तिसमये गलविवरादीनां विकासादीन् करोति, तत्र ये तत्तत् स्थाना-भिघातकाः "स्थान + अभिघातकाः" यत्नाः ते आस्यान्तर्गत - तत्तत् - कार्यकारित्वात् "आस्ये प्रयत्नाः" इत्युच्यन्ते, ते एव आभ्यन्तराः इति, प्रारम्भाः - इति च ।

गलविवरादि - विकासादिकराश्च - आस्यवहिर्भूते देशे कार्यकरत्वात् - बाह्याः इति । एवं मात्राकालिकत्वादिकमपि वायवल्पत्व—"वायु + अल्पत्व" महत्त्वकृतम्, इति नाभिप्रदेशात् प्रेरकयत्नः - एव - कश्चिद् विलक्षणः अल्पं वायुं प्रेरयति, कश्चित् - अधिकम्, इति - तस्य यत्नस्य वायुप्रेरणारूपं कार्यं - आस्य बाह्यदेशं इति तस्यापि व्यावृत्तिः आस्यपदेन उक्ता—अइ उण् सूत्रे भाष्ये । मूर्ध्नि प्रतिहते वर्णोत्पत्तेः पूर्वं स्पृष्टतादयः पश्चान्निवृत्ते प्राणाख्ये इति - अन्वयः कैयटे, अतएव—"सोदीर्णो मूर्ध्न्य-भिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः । वर्णान् जनयते" इति शिक्षया सह न विरोधः ।

वायुविज्ञानविषये विष्णुपुराणोक्तं वैज्ञानिकं विवेचनम् अत्र करोमि—

वायुसम्बन्धे वैज्ञानिकं विवेचनम् विष्णुपुराणे षष्ठांशे चतुर्थेऽध्यायेऽपि वैशिष्ट्येन समुपलभ्यते—

एवं सप्त महाबुद्धे! क्रमात् प्रकृतयः स्मृताः ।
प्रत्याहारेतु ताः सर्वाः प्रविशन्ति परस्परम् ॥३०॥
येनेदमावृतं सर्वमण्डमप्सु प्रलीयते ।
सप्तद्वीपसमुद्रान्तं सप्तलोकं सपर्वतम् ॥३१॥
उदकावरणं यत्तु ज्योतिषा पीयते तु तत् ।
ज्योति - र्वायौ लयं याति यात्याकाशे समीरणः ॥३२॥
आकाशं चैव भूतादि ग्रंसते तं तथा महान् ।
महान्तमेभिः सहितं प्रकृति ग्रंसते द्विज! ॥३३॥

उक्त कथनस्य अयं भावः......

ईश्वरेच्छया सृष्टिरचनावसरे - आकाशतत्वतः - वायुः समुत्पद्यते, वायुतत्वतः अग्निः - उत्पद्यते, अग्नितत्वतः - जलमुत्पद्यते, जलतत्वतः - पृथिवी - उत्पद्यते ।

ईश्वरेच्छया सृष्टिसहारक्रमे तु जलेषु पृथिवी प्रलीयते । अग्नौ - उदकावरणं प्रलीयते । अग्निः - वायौ लयं याति । वायुश्च - आकाशे लयं गच्छति ।

सृष्टिरचनावसरे - वायुतः - अग्नेः उत्पत्तिर्भवति, सृष्टिसंहारावसरेतु - वायौ एव अग्नेः लयो भवति ।

उपर्युक्तविवेचनानुसारेण वायौ अग्नेः - अस्तित्वं निरन्तरम्=सदा तिष्ठतीति सिद्ध्यति । प्रत्यक्षसिद्धः-दार्शनिकोऽयं वैज्ञानिकाः सिद्धान्तः - सूक्ष्मातिसूक्ष्मतत्वदर्शिभिः अतीन्द्रियैः - ऋषिभिः अनेकेषु दर्शन - पुराण - योगोपनिषद् - ग्रन्थेषु सर्वत्र स्वस्व - निबन्धेषु प्रतिपादितः ।

वायौ - अग्निः - सदा तिष्ठतीति - वैज्ञानिकं - आर्षं सिद्धान्तं - अनुसृत्यैव -

आधुनिकाः - वैज्ञानिकाः - तमेव वायुविशेषं "गैस" शब्देन - व्यवहरन्ति । अग्नि - तत्त्वोत्पादकेन तेनैव......"आक्सीजन + हाइड्रोजन" नामक–गैसवायुना लौहादिधातु-पदार्थानां द्रवीकरणं कृत्वा - अनेकानि वस्तूनि सम्पादयन्ति आधुनिकाः वैज्ञानिकाः ।

मेरठ - दिल्ली - लखनऊ-प्रयाग - कलकत्ता - बम्बई - कानपुर - वाराणसी - प्रभृतिषु बहुषु प्रधाननगरेषु - गृहस्त्रियः - अन्ये पाचकादयश्च "गैस अंगीठीभिः" एव शाक - दाल - भात - पूड़ी - कचौड़ी प्रभृति - खाद्य - पदार्थानां परिपाकं कुर्वन्ति ।

विद्युत्–जलसम्बन्धे - वैज्ञानिकं विवेचनमत्र करोमि

सृष्टिरचनावसरे - अग्नितत्वतः=अग्नितः जलोत्पत्ति र्भवति । सृष्टिसंहारावसरे - अग्नौ - एव जलस्य लयो भवति ।

उपर्युक्तविवेचनानुसारेण अग्नौ - एव - जलस्य - अस्तित्वं तिष्ठतीति दार्शनिकः सिद्धान्तः प्रत्यक्षसिद्धो भवति । अतएव - यत्र यत्र जलानि भवन्ति, तत्र तत्र सूक्ष्मरूपेण - अग्नितत्वस्यापि - अग्नेरपि सत्ता सदा तिष्ठति ।

उपर्युक्तं दार्शनिकं वैज्ञानिकं प्रत्यक्षसिद्धं - आर्षसिद्धान्तं अनुसृत्यैव - आधुनिकाः वैज्ञानिकाः- जलेभ्यो जलाशयेभ्यश्च विद्युदादीनां=बिजलीप्रभृतीनां उत्पादनं कुर्वन्ति सततम् ।

आकाशस्थेषु - तोयेषु च वर्षाकाले यत्तेजः "लोकप्रसिद्ध - बिजली" प्रकाशते, तत्तु - आकाशस्थ - वृष्टिकालीनजलेभ्यः एव - समुत्पद्यते ।

जलेभ्य - समुत्पन्नेन - विद्युत्समुदायेन - सर्वेष्वपि राष्ट्रेषु-अनेकानि- कार्याणि-वैज्ञानिकैः संसाध्यानि भवन्ति ।

सर्वेष्वपिराष्ट्रेषु जलोत्पन्नविद्युत्प्रकाशेन एव - जनाः- प्रकाशे विशिष्टसुखानुभूतिं कुर्वन्ति ।

सुन्दरी टीका—वायुविज्ञान, शब्दोच्चारणविज्ञान, और ज्ञानोत्पत्तिविज्ञान -के सम्बन्ध में - पाणिनि, पतञ्जलि, व्यास, कपिल, सुश्रुत, चरक, आदि मुनियों द्वारा–पाणिनीयशिक्षा, महाभाष्य, योगदर्शन, भागवत, सांख्यशास्त्र, सुश्रुत, चरक, आदि नाम से प्रसिद्ध वैज्ञानिक ग्रन्थों में किये गये वैज्ञानिक विवेचनों को मैं यहाँ पर वैज्ञानिकों और विद्वानों के प्रमोद के लिये प्रस्तुत कर रहा हूँ :——

पाञ्चभौतिक शरीर में - हृदय - के स्थान का निर्णय—

"नाभेरुर्ध्वं वितस्तिं च कण्ठाधस्तात् षडङ्गुलम् ।
हृदयं तद् विजानीयाद् विश्वस्यायतनं महत्" ॥

उपर्युक्त पद्य का निष्कर्ष यह है कि–प्रत्येक व्यक्ति के हाथ की बालिस्त से उस व्यक्ति की नाभि (टूंड़ी) से एक बालिस्त वक्षःस्थल की ओर सीधा नापने पर तथा कण्ठप्रदेश से वक्षःस्थल की ओर छैः अङ्गुल सीधा नापने पर - नाभि से ऊपर की ओर एक बालिस्त और कण्ठ से नीचे की ओर छैः अङ्गुल भाग नाप कर - इन दोंनों के बीच के अन्तर - में वक्षःस्थल प्रदेश का जितना भाग आता है, उसी भाग को प्रत्येक व्यक्ति के हृदग्र का स्थान माना जाता है । चित्त, चेतः हृदय, स्वान्त, हृत्, मानस, ये सभी शब्द मन के पर्याय वाचक हैं । संसार भर के सभी

प्रयत्नों,–ज्ञानोपार्जनों, पदार्थों, और द्रव्यों के सम्बन्ध में विचार विमर्श करने के लिये यह हृदय स्थान ही सबसे विशाल स्थान माना जाता है, मन इसी हृदय स्थान में विश्राम किया करता है, इसलिये हृदयप्रदेश मन का विश्रामालय है। मन के कार्य करने का स्थान मस्तिष्क (ब्रेन) होता है, इसलिये मस्तिष्क को ही मन का - कार्यालय माना जाता है। इसी हृदयप्रदेश में - मन के पड़ोस में बांयें हाथ की तरफ अहङ्कार, बुद्धि, और जीवात्मा का क्रमश: सदा निवास रहता है।

मन के निवास स्थान से सीधे हाथ की ओर जिगर के निचले भाग में-नासपाती-नाम के फल के आकार में अर्थात् त्रिकोणाकार △ रूप में स्थित पित्त की थैली प्रत्येक व्यक्ति के पेट में रहती है। उसी पित्त की थैली को-पित्ताशय और कायाग्नि–नामों से पुकारा जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति के नाभिप्रदेश में वायु की उत्पत्ति का केन्द्र होता है, इसी नाभि-प्रदेश से शरीर के प्रत्येक भाग में छोटी और बड़ी शिराओं का जाल सा बिछा रहता हैं, नाभिप्रदेश से वक्ष:स्थलप्रदेश की ओर जाने वाली सूक्ष्म शिरायें कायाग्नि अर्थात् पित्त की थैली, आमाशय, पक्वाशय, वाताशय, और मन, बुद्धि, आत्मा, आदि शरीर के प्रत्येक भाग में ओतप्रोत होकर, इन सब का परस्पर में एक दूसरे से घनिष्ठतम सम्बन्ध सदा बनाये रहती हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में ग्यारह इन्द्रियां होती हैं, कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नाक, ये पांच ज्ञानेन्द्रियां होती हैं, - पेशाब करने की इन्द्रिय, मल त्याग करने की इन्द्रिय, पैर, हाथ और वाणी, ये पांच कर्मेन्द्रियाँ होती हैं।

मन ग्यारहवीं इन्द्रिय होता है, मन ज्ञान और कर्म दोंनों कार्यों को करता है, इसीलिये मन को उभयेन्द्रिय कहा जाता है। मन ज्ञानेन्द्रियों में प्रवेश करके ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान कराता है, कर्मेन्द्रियों में प्रवेश करके कर्मेन्द्रियों से कर्म कराता है। मन के संयोग के बिना ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान करने में और कर्मेन्द्रियाँ कर्म करने में सर्वथा असमर्थ रहती हैं।

ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान को और कर्मेन्द्रियों से कर्म को प्राप्त करके मन उस ज्ञान और कर्म को अहङ्कार के माध्यम से बुद्धि के लिये समर्पण कर देता है। मन से प्राप्त हुए ज्ञान और कर्म को बुद्धि जीवात्मा के लिये समर्पण कर देती है। बुद्धि द्वारा प्राप्त हुए अच्छे ज्ञान और अच्छे कर्म से जीवात्मा सुख और हर्ष का अनुभव करता है, बुद्धि द्वारा प्राप्त हुए बुरे ज्ञान और बुरे कर्म से जीवात्मा दु:ख. शोक, पश्चात्ताप ओर आत्म - ग्लानि का अनुभव करता है।

पाञ्चभौतिक शरीर में स्थित जीवात्मा जब किसी प्रकार के ज्ञान अथवा कर्म को करने की इच्छा करता है, तब वह जीवात्मा स्वाभिलषित ज्ञान और कर्म को करने के लिये बुद्धि को प्रेरित करता है, जीवात्मा के अभिलषित ज्ञान और कर्म को प्राप्त करने के लिये बुद्धि अहङ्कार का आश्रय लेकर मन को ज्ञान और कर्म करने के लिये प्रेरित करती है, जीवात्मा जिस ज्ञान और जिस कर्म को करने का इच्छुक होता

है, मन उसी ज्ञान और उसी कर्म से सम्बन्धित इन्द्रिय में प्रवेश करके ज्ञानेन्द्रिय से ज्ञान और कर्मेन्द्रिय से कर्म कराकर उस ज्ञान और कर्म को मन स्वयं धारण करके उस ज्ञान और कर्म को अहङ्कार के माध्यम से बुद्धि के लिये समर्पण कर देता है, मन से प्राप्त हुए ज्ञान और कर्म को बुद्धि जीवात्मा के लिये समर्पण कर देती है।

श्रोत्र, त्वक् चक्षुः, जिह्वा, घ्राण, इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों के क्रमशः—सुनना, स्पर्श करना, देखना, रसास्वादन करना, सूंघना, ये पाँच विषय अथवा अर्थ अथवा प्रयोजन होते हैं।

विषय, अर्थ और प्रयोजन ये तीनों ही शब्द एक दूसरे के पर्यायवाचक हैं।

उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय), पायु (गुदेन्द्रिय), पाद (पैर), वाक् (वाणी), हस्त (हाथ), इन पांच कर्मेन्द्रियों के क्रमशः मूत्रादि को त्यागना, मलादि को त्यागना, चलना, बोलना, लेन - देन आदि कर्म करना, ये पाँच विषय अथवा अर्थ अथवा प्रयोजन होते हैं।

पूर्वप्रतिपादित वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार - जीवात्मा - बुद्धि के द्वारा मन को ज्ञानोपार्जन और कर्मोपार्जन करने के लिये नियुक्त करने के वाद ही ज्ञानेन्द्रियजन्य ज्ञान को और कर्मेन्द्रियजन्य कर्म को मन और बुद्धि के द्वारा प्राप्त करने में समर्थ हो पाता है। बुद्धि मन और ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों के विना ज्ञान और कर्म की प्राप्ति जीवात्मा के लिये होनी सर्वथा असम्भव ही होती है।

व्याकरण शास्त्र के प्रणेता महर्षि "पाणिनि" ने "पाणिनीयशिक्षा" नाम के अपने वैज्ञानिक ग्रन्थ में "शब्दोच्चारण" करने में वैज्ञानिकता का - उदाहरण प्रस्तुत करते हुए - ज्ञानोपार्जन और कर्मोपार्जन करने में आत्मा, बुद्धि, मन, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की ही प्रधानता को मानकर "वायु विज्ञान" का भी सजीव प्रतिपादन किया है।

[शब्दोच्चारण में वायुविज्ञान]

प्राणिमात्र के पाञ्चभौतिक शरीर में स्थित जीवात्मा जव किसी शब्द को उच्चारण करने की इच्छा करता है, तव वह सवसे पहले बुद्धि को प्रेरित करता है, बुद्धि अहङ्कार के माध्यम से मन को प्रेरित करती है, मन "कायाग्नि" नाम से प्रसिद्ध तेज को प्रेरित करता है, तेज नाभि प्रदेशस्थ वायु को प्रेरित करता है, तेज द्वारा प्रेरित हुआ वायु - नाभिप्रदेश - से ऊपर की ओर - उठकर - ऊपर की ओर चलकर वक्षःस्थल, ग्रीवा और कण्ठ आदि प्रदेशों को विदीर्ण करता हुआ (फाड़ता हुआ) शीर्ष-प्रदेश (शिरोभाग) से टकराकर, मुख प्रदेश में आकर,—मुख, जीभ, कण्ठ, तालु, दांत नाक, आदि से स्पर्श कर के, जीवात्मा के अभिलषित शब्द को - वाक्-इन्द्रिय (वाणी) से उच्चारण कराता है, वाक् (वाणी) इन्द्रिय के नष्ट अथवा विकृत हो जाने पर वह जीवात्मा शब्दोच्चारण करने में असमर्थ हो जाता है। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों में से जो भी इन्द्रिय - नष्ट अथवा विकृत हो जाती है, उस इन्द्रिय के सम्बन्धी ज्ञान अथवा

कर्मं को करने में जीवात्मा असमर्थ हो जाता है।

शब्दोच्चारण करने के लिये पाञ्चभौतिक शरीर में (पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पांच महाभूतों से बने हुए शरीर में) अग्नितत्व (तैजस्तत्व) और वायुतत्व इन दोनों का अस्तित्व रहना अत्यावश्यक होता है।

अग्नि(तेज)के बिना वायु और वायु के बिना अग्नि(तेज)ये दोनों ही एक दूसरे के बिना शब्दोच्चारण करने में असमर्थ रहते हैं, अतएव—शब्दोच्चारण करने की प्रक्रिया में अग्नि (तेज) और वायु; ये दोनों ही "अन्योऽन्याश्रयसम्बन्धी" माने जाते हैं।

हे वैज्ञानिक महानुभावो! आप सब गम्भीरता से विचार करें कि—आधुनिक वैज्ञानिक मनुष्यों ने – काष्ठ (लकड़ी), लोहा, तांबा- प्रभृति अनेक धातुओं से और अनेक रासायनिकपदार्थों से- रेडियो, ट्रांजिस्टर, लाउडस्पीकर, टेलीफोन, प्रभृति शब्द-प्रसारक - जिन पाञ्चभौतिक यन्त्रों का आविष्कार किया है. (जिन यन्त्रों को बनाया हैं) उन सभी यन्त्रों में वायु के आदान और प्रदान करने वाले अनेक छिद्र होते हैं। ठीक उसी प्रकार से ईश्वर द्वारा आविष्कृत [ईश्वर निर्मित] मानवादिप्राणियों के पाञ्चभौतिक - शरीरयन्त्रों में भी - मुंह, आँख, कान, नाक, गुदा [पेट में परिपक्व अन्न "मल" को बाहर निकालने वाली इन्द्रिय] मेढ़्र (पेशाव करने वाली इन्द्रिय) इन इन्द्रियों के प्रसिद्ध नौ छिद्र, और इस शरीरयन्त्र में स्थित "रोमकूप" नाम से प्रसिद्ध असंख्य छिद्र वायु के आदान और प्रदान करने के लिये होते हैं।

रेडियो, ट्रांसजिस्टर, टेलीवीजन, लाउडस्पीकर, टेलीफोन, आदि यन्त्र बिजली की अग्नि (तेज) से और वायु से सम्बन्ध होने पर ही शब्द की ध्वनि को प्रसारित करने में समर्थ होते हैं। रासायनिक - विशेषपदार्थों से बने हुए "बैटरीयन्त्र" के द्वारा - तेज (अग्नि) की उत्पत्ति होने पर ही "ट्रांसजिस्टरयन्त्र" शब्दोच्चारण करने में समर्थ होता है। बैटरीयन्त्र के निस्तेज होने पर अकेले वायु के सम्बन्ध से - ट्रांसजिस्टरयन्त्र शब्दो - च्चारण करने में असमर्थ रहता है। बैटरीयन्त्र के ठीक रहने पर तेज (अग्नि) की सत्ता रहते हुए भी किसी कारण से यदि वायु की रुकावट या अवरोध हो जाता है, तो अकेले तेज के सम्बन्ध से ट्रांसजिस्टरयन्त्र शब्दोच्चारण करने में असमर्थ ही रहता है। विद्युत्-सम्पर्क से चलने वाले - रेडियो, टेलीवीजन, लाउडस्पीकर आदि यन्त्र भी बिजली (तेज=अग्नि) के अभाव में अथवा वायु के अभाव में शब्दोच्चारण करने में असमर्थ रहते हैं।

अपने में तेज (अग्नि) और वायु का अस्तित्व न रहने पर मानवनिर्मित रेडियो, ट्रांसजिस्टर, टेलीवीजन, लाउडस्पीकर, टेलीफोन, आदि यन्त्र जिस प्रकार शब्दोच्चारण करने में असमर्थ; और निरर्थक नष्ट - भ्रष्ट तथा मृतसंज्ञक कहे जाते हैं, ठीक उसी प्रकार से ईश्वरनिर्मित - मानव - पशु - पक्षी - आदि के शरीरयन्त्र भी अपने में तेज (अग्नि) और वायु का अस्तित्व न रहने पर - शब्दोच्चारण करने में असमर्थ होकर - निरर्थक और नष्ट - भ्रष्ट तथा मृतसंज्ञक कहे जाते हैं।

जिस प्रकार—रेडियो, ट्रांसजिस्टर, टेलीवीजन, लाऊडस्पीकर आदि यन्त्रों में साधारण, गम्भीर, उच्च, उच्चतर, उच्चतम ध्वनियों (शब्दों) को प्रसारण करने वाले वायुनियन्त्रक "स्विच" नाम से प्रसिद्ध यन्त्र लगे रहते हैं, ठीक उसी प्रकार से–मानव पशु, पक्षी, आदि प्राणिमात्र के शरीर यन्त्रों में भी साधारण, गम्भीर, उच्च, उच्चतर, उच्चतम ध्वनियों (शब्दों) को प्रसारण करने वाले वायु के केन्द्रोपकेन्द्र (स्विच, उप-स्विच नाम से प्रसिद्ध) नाभि, हृदय, वक्षःस्थल, कण्ठ, शीर्ष, गुदा प्रभृति स्थानों में सदा विद्यमान रहते हैं, इसीलिये हृदयप्रदेश में प्राणवायु, गुदाप्रदेश में अपानवायु, नाभिप्रदेश में समानवायु, कण्ठप्रदेश में उदानवायु, और शरीर के सब प्रदेशों में व्यान वायु का अस्तित्व मुख्य रूप से माना जाता है। अतएव—पाणिनि, पतञ्जलि, सुश्रुत, चरक आदि वैज्ञानिक ऋषियों ने अपने - अपने निबन्धग्रन्थों में—वायु के केन्द्र और उपकेन्द्रों की व्यवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए—प्रातःकाल में हृदयस्थ वायुजन्य - स्वर से मध्याह्न में कण्ठगत वायुजन्य स्वर से तथा अन्य समयों में शीर्षप्रदेशस्थ-वायु-जन्य स्वर से ईश्वर के स्मरण करने का और शब्दोच्चारण करने का स्पष्ट संकेत किया है।

उपर्युक्त वैज्ञानिक ढंग से वायु के विषय में समीक्षा करने पर यह निष्कर्ष निकल रहा है कि—वायु के विना शब्दोच्चारण करना बिलकुल असम्भव है।

१—अ, आ, आ ३, क, ख, ग, घ, ङ, ह, इन अक्षरों और विसर्गों को वाणी से उच्चारण करते समय वायु से गतिशील हुई जिह्वा कण्ठस्थान को स्पर्श करती है, इसलिये इन अक्षरों और विसर्गों का कण्ठ स्थान कहा गया है।

२—इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ, य, श, इन अक्षरों को उच्चारण करते समय वायु द्वारा गमनशील जिह्वा (जीभ) तालुस्थान को स्पर्श करती है, अतएव इन अक्षरों का तालुस्थान माना जाता है।

३—ऋ, ॠ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र, ष, इन अक्षरों को उच्चारण करते समय जिह्वा वायु द्वारा गतिशील होकर - मूर्धा - स्थान को स्पर्श करती है, अतएव इन अक्षरों का - मूर्धा स्थान माना जाता है।

४—लृ, ॡ, त, थ, द, ध, न, ल, स, इन अक्षरों को बोलते समय वायु द्वारा गति-शील जिह्वा - दांतों - को स्पर्श करती है, इसीलिये इन अक्षरों का - दन्त - स्थान माना जाता है।

५—उ, ऊ, प, फ, ब, भ, म, ⌣प, ⌣फ, इन अक्षरों को वाणी से उच्चारण करते समय वायु के द्वारा होठों में गति उत्पन्न होती है, और होठ आपस में मिलते भी हैं, इसीलिये इन अक्षरों का ओष्ठ (होठ) स्थान कहा गया है।

६—ञ, म, ङ, ण, न, इन अक्षरों को उच्चारण करते समय वायु के द्वारा नाक से भी ध्वनि निकलती है, अतएव इन अक्षरों का स्थान - नासिका - (नाक) भी माना जाता है।

७—ए, ऐ, इन दोनों को उच्चारण करते समय वायु द्वारा गतिशील जिह्वा

कण्ठ और तालु को स्पर्श करती है, इसलिये इन दोनों का - कण्ठ - और तालु स्थान कहा जाता है।

८—ओ और औ को वोलते समय वायु द्वारा गतिशील हुई जिह्वा कण्ठ और होठों के पास में ही अपनी गतिविधि को करती है, कण्ठ और होठों में भी प्रगति होती है, अतएव ओ और औ के कण्ठ और ओष्ठ (होठ) स्थान होते हैं।

९—'व' को बोलते समय वायु से गति को प्राप्त होकर जिह्वा, दांत और होठों के पास में अपनी गतिविधि को करती है, इसीलिये - वकार - का दन्त और होठ स्थान माना गया है।

१०—⌣क ⌣ख – इन अक्षरों को उच्चारण करते समय वायु के द्वारा - जिह्वा - के मूल में (जीभ की जड़ में) गतिविधि उत्पन्न होती है, इसीलिये इन अक्षरों का जिह्वामूल स्थान माना जाता है।

११–'अं' अक्षर को उच्चारण करते समय वायु द्वारा गतिशील जिह्वा-नाक के छेद की जड़ के समीप में गतिविधि को करती है, नाक के द्वारा ही अनुस्वार की ध्वनि व्यक्त होती है, इसीलिये नासिका (नाक) को अनुस्वार का स्थान कहा गया है।

(क) व्याकरण शास्त्र के प्रचार और प्रसार को करने में संलग्न - विशिष्ट वैयाकरण श्री भट्टोजिदीक्षित जी ने सिद्धान्त कौमुदी के संज्ञाप्रकरण में उपर्युक्त वायु-विज्ञान की व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश डाला है।

(ख)–सिद्धान्त कौमुदी पर "तत्ववोधिनी" नाम से प्रसिद्ध अपनी टीका में "श्री-ज्ञानेन्द्र सरस्वती जी" ने भी शब्दोच्चारण के प्रसङ्ग में "वायुविज्ञान" के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ढंग से अच्छा प्रकाश डाला है।

१२—व्याकरण शास्त्र के समीक्षक - पातञ्जल महाभाष्यकार - "महर्षि-पतञ्जलि" ने भी शब्दोच्चारण के सम्वन्ध में "वायुविज्ञान" का उत्कृष्टवैज्ञानिक ढंग से अत्युत्तम प्रतिपादन किया है।

(ग) पातञ्जल महाभाष्य के टीकाकार विद्वत्प्रवर कैयट और नागेश ने भी अपनी टीकाओं में शब्दोच्चारण के प्रसङ्ग में "वायुविज्ञान" का उत्तम प्रतिपादन किया है।

१३–सुश्रुत और चरक के प्रणेता ऋषियों ने अनेक प्रकार से "वायुविज्ञान" का प्रतिपादन करते हुए वायु को ही चतुर्विधसृष्टि, (जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज) का स्रष्टा, पालनकर्ता और संहारकर्ता कहकर इस वायु को ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश (रुद्र) के रूप में माना है।

१४—व्यास, पराशर, आदि ऋषियों ने भी अपने - अपने अनेक वैज्ञानिक निबन्धग्रन्थों में "वायु विज्ञान के सम्बन्ध में अच्छे ढंग से वैज्ञानिक विवेचन किया है।

१५—वैज्ञानिक ऋषि पराशर ने विष्णुपुराण के छठे अंश में चौथे अध्याय में लिखा है कि......

ईश्वरेच्छा से सृष्टिरचना के समय आकाशतत्व से वायु की उत्पत्ति होती है, वायु-तत्व से अग्नि की उत्पत्ति होती है, अग्नि तत्व से जल की उत्पत्ति होती है, जल तत्व से पृथिवी की उत्पत्ति होती है।

(घ)—ईश्वरेच्छा से सृष्टिसंहार के समय जल में पृथिवी लीन हो जाती है, जल अग्नि में लीन हो जाता है, अग्नि वायु में लीन हो जाती है, पायु आकाश में लीन हो जाता है।

चूंकि सृष्टिरचना के समय वायु से अग्नि की उत्पत्ति, और सृष्टिसंहार के समय वायु में ही अग्नि का लय हो जाता है, इस उपर्युक्त कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि—वायु में अग्नि का अस्तित्व सदा निरन्तर रूप से वना रहता है, प्रत्यक्षसिद्ध इस दार्शनिक और वैज्ञानिक सिद्धान्त को सूक्ष्मातिसूक्ष्म - तत्वदर्शी अतीन्द्रियऋषियों ने अनेक दर्शन पुराण, योग, उपनिषद्, आदि नाम से प्रसिद्ध अपने अपने शोधनिवन्ध ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से लिखा है।

(ङ)—वायु में अग्नि का अस्तित्व सदा वना रहता है, इस दार्शनिक और आर्ष वैज्ञानिक सिद्धान्त का अनुसरण करके ही आधुनिक वैज्ञानिक अग्नितत्वयुक्त उस वायु विशेष को ही "गैस" शब्द से व्यवहार में वोलते हैं, ये वैज्ञानिक अग्नितत्व के उत्पादक उस वायु से ही "आक्सीजन + हाइड्रोजन" नामक गैस बनाकर उस गैस से लौहादि - धातुपदार्थों को गलाकर लोकोपयोगी अनेक वस्तुओं का निर्माण करते है।

सदा अग्नितत्व युक्त वायु (गैस) की अंगीठियों से मेरठ, दिल्ली, लखनऊ, प्रयाग (इलाहावाद), कलकत्ता, वम्बई, आगरा, कानपुर, वाराणसी आदि प्रधान नगरों में रहने वाले गृहस्थियों की स्त्रियाँ और हलवाई, दुकानदार आदि शाक, दाल, भात, रोटी, पूड़ी, कचौड़ी आदि अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों को भी पकाते हैं।

१६–अब मैं विद्युत् (बिजली) और जल के सम्वन्ध में नीचे लिखे प्रकार से वैज्ञानिक विवेचन करता हूँ—

सृष्टि रचना के समय अग्नितत्व से जलतत्व की (जल की) उत्पत्ति होती है, सृष्टिसंहार के समय अग्नितत्व में ही जलतत्व का (जल का) विलय हो जाता है। इस सिद्धान्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि—अग्नित्व की सत्ता होने पर ही जल-तत्व का अस्तित्व होता है, जहाँ-जहाँ जलतत्व रहेगा, वहाँ-वहाँ अग्नितत्व का अस्तित्व भी अवश्य रहेगा, जहाँ-जहाँ अग्नितत्व रहेगा, वहाँ-वहाँ जलतत्व का भी अस्तित्व अवश्य रहेगा।

उपर्युक्त प्रत्यक्षसिद्ध दार्शनिक सिद्धान्त का आश्रय लेकर ही आधुनिक वैज्ञानिक जलों से और जलाशयों से विजली (अग्नि) की उत्पत्ति करने में सफलता को प्राप्त कर रहे हैं।

आकाशीय जलों में भी अग्नि (बिजली) का अस्तित्व

वर्षा के समय में आकाश में जो विद्युत्तेज चमकता हुआ दिखाई देता है, उस तेज को भी संसार भर के सभी समझदार व्यक्ति बिजली नाम से ही तो पुकारते हैं।

आकाशस्थ जलों में विद्यमान अग्नितत्व से ही आकाश में बिजली उत्पन्न होकर यदा कदा यत्र-तत्र चमकती हुई दिखाई देती है, आकाश के जलों में परस्पर विशेष संघर्षण से जब कभी आकाश में विद्युत् तेज अधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाता है, तब वह विद्युत्तेज (अग्नितत्व) भौगोलिक पदार्थों (मकान, वृक्ष, मनुष्य, पशु, पक्षी प्रभृतियों)को जलाकर नष्ट-भ्रष्ट कर देता है।

सांख्यशास्त्र में भी ज्ञानोत्पत्ति और कर्मोपत्ति के सम्बन्ध में सुन्दर विवेचन किया है, पाँचज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन-अहङ्कार- बुद्धि ये तीन अन्तः-करण, ये तेरह (५+५+३=१३) करण (असाधारणकारण) ज्ञानोत्पत्ति के लिये और कर्मोत्पत्ति के लिये माने जाते हैं। जीवात्मा इन तेरह करणों के द्वारा ही ज्ञानोपार्जन और कर्मोपार्जन करने में समर्थ होता है, इन करणों के बिना जीवात्मा ज्ञानोपार्जन और कर्मोपार्जन करने में असमर्थ रहता है। कर्मेन्द्रियां कर्म को आहरण और धारण करती हैं, ज्ञानेन्द्रियाँ उस कर्म को प्रकाशित करती हैं—

(१) शब्द, (२) स्पर्श (३) रूप (४) रस (५) गन्ध (६) वचन (७) आदान-प्रदान (८) विहरण (९) मलोत्सर्गादि (१०) सूत्रोत्सर्गादि इन दश प्रकार के कार्यों को बुद्धीन्द्रियाँ (ज्ञानेन्द्रियाँ) प्रकाशित करती हैं, और कर्मेन्द्रियाँ- आहरण, धारण करती हैं।

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ मिलकर दश वाह्यकरण होते हैं, मन अहङ्कार, बुद्धि ये तीन अन्तःकरण होते हैं, दशवाह्यकरण तीनों अन्तःकरणों के उपभोग्य होते हैं।

पूर्वोक्त दश प्रकार के वाह्यकरण वर्तमानकालिक माने जाते हैं क्योंकि—श्रोत्रेन्द्रिय वर्तमानकाल में बोले गये शब्द को ही सुनता है, भूतकाल में और भविष्य काल में बोले गये शब्द को सुनने में असमर्थ रहता है।

चक्षुः (नेत्र) इन्द्रिय वर्तमान रूप को ही देखता है, न कि भूत और भविष्य के रूप को देखता है, त्वचा-इन्द्रिय-वर्तमान में विद्यमान वस्तु को ही स्पर्श करती है, न कि भूतकाल और भविष्यकाल की वस्तु को स्पर्श करती है। जिह्वा—वर्तमान (विद्यमान) पदार्थ का ही रसास्वादन करती है, न कि भूत और भविष्य की वस्तु का रसास्वादन करती हैं,।

अहङ्कार वर्तमान विषय में अहङ्कार को करता है, तथा भूत और भविष्य के विषय में भी अहङ्कार को करता है, बुद्धि वर्तमानकाल में विद्यमान घट, पट, मोदक आदि पदार्थों का बोध करती है, तथा भूत और भविष्यकालिक पदार्थों का भी बोध करती है। उपर्युक्त प्रकार से मन, अहङ्कार, बुद्धि, इन तीनों अन्तःकरणों का त्रैकालिकत्व सिद्ध होता है।

मानवादि प्राणियों के वक्षः स्थल प्रदेश में—मन, अहङ्कार, बुद्धि ये तीनों रहते हैं, उसी अन्तःकरण प्रदेश में (वक्षः स्थल में) जीवात्मा भी निवास करता हैं, इसीलिये गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि—"अन्तः प्रविष्टो भगवान्-

हृद्देशेऽर्जुन ! तिष्ठति" मन का निवास स्थान वक्षःस्थल अर्थात् अन्तःकरण प्रदेश है, अन्तःकरण प्रदेश ही मन का विश्रामगृह=विश्रामालय है। शीर्षप्रदेश अर्थात् मस्तिष्क भाग में मन का कार्यालय है, सब प्रकार के कर्यों को मन अपने कार्यालय में स्थिर होकर ही करता है।

मानवादि प्राणियों के वक्षःस्थल प्रदेश को और शीर्षप्रदेशस्थ मन के कार्यालय मस्तिष्कि को क्षत, विक्षत, तोड़-फोड़ और विदीर्ण कर देने पर इस पांच भौतिक शरीर में स्थित - मन, अहङ्कार, बुद्धि और जीवात्मा के निवास स्थान नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं, अपने निवास स्थानों के नष्ट होने पर—मन, बुद्धि. अहङ्कार और जीवात्मा इस पाञ्चभौतिक शरीर को जीर्ण-शीर्ण-वस्त्र और नष्ट-भ्रष्ट घर की भाँति छोड़कर अन्यत्र नये घरों और वस्त्रों (शरीरों) में प्रवेश कर लेते हैं, इनके द्वारा त्याग हुआ ही शरीर मरा हुआ माना जाता है।

नासिका (नाक) इन्द्रिय- वर्तमान (विद्यमान) पदार्थ के अच्छे बुरे गन्ध को ग्रहण करती है, न कि भूत और भविष्य के पदार्थ की गन्व को ग्रहण करती है।

वाक् (वाणी)इन्द्रिय वर्तमान शब्द को ही बोलती है, न कि भूत और भविष्य कालिक शब्द को बोलती है।

हाथ - इन्द्रिय - वर्तमान (विद्यमान) घट, पटादि पदार्थ को ही ग्रहण करने में समर्थ है, न कि भूत और भविश्य कालिक को ग्रहण करता है।

पैर इन्द्रिय - वर्तमान - मार्ग पर ही चलते हैं, न कि भूत और भविष्य - के मार्ग पर चलते हैं।

गुदा - इन्द्रिय वर्तमान कालिक मल का परित्याग करती है, न कि भूत और भविष्य के मल को त्यागती है।

उपस्थेन्द्रिय (मूत्रेन्द्रिय) वर्तमान में ही मूत्रादि को त्यागती है, न कि - भूत और भविष्य कालिक मूत्र को त्यागती है।

उपर्युक्त प्रकार से दश वाह्यकरणों का साम्प्रतकालत्व [वर्तमानकाल] सिद्ध होता है।

अन्तःकरण [आभ्यन्तरकरण] — मन, अहङ्कार, बुद्धि, ये तीनों – त्रिकाल (भूत, वर्तमान और भविष्य) इन तीनों कालों में रहने से त्रैकालिक माने जाते हैं—

मन - इन्द्रिय वर्तमान विषय में सङ्कल्प और विकल्प को करता है, तथा भूत और भविष्य के विषय में भी सङ्कल्प, विकल्प करता है।

विद्वत्प्रवर वैज्ञानिक श्री वराहमिहिराचार्य ने भी बृहत्संहिता के चौहत्तरवें अध्याय में तीसरे और चौथे श्लोकों में—आत्मा, मन, और इन्द्रियों के सम्वन्ध में उपर्युक्त - सैद्धान्तिक और वैज्ञानिक पक्ष का अच्छे ढंग से प्रतिपादन किया है।

श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध में पन्द्रहवें अध्याय में इकतालीसवें और बयालीसवें श्लोकों में भी पाञ्चभौतिकशरीर, आत्मा, बुद्धि, मन और इन्द्रियों के सम्बन्ध में निम्नाङ्कित ढंग से विवेचन किया गया है—

प्रत्येक नर - नारी का पाञ्चभौतिक शरीर रथस्वरूप है, इस रथ के अन्दर रहने वाला जीवात्मा रथ का स्वामी है, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ, ये दश इस रथ के चंचल घोड़े हैं, इन घोड़ों के मुंह में लगी हुई लगाम की डोरी "रस्सी" मन है, शरीर रथ का सारथी "ड्राइवर" बुद्धि है, ड्राइवर बुद्धि के हाथ में रथ के दशों घोड़ों के लगाम की रस्सी "मन" है ।

ड्राइवर बुद्धि के द्वारा लगाम की डोरी मन का इशारा जिधर की ओर होता है, उधर की ओर ही ये दशेन्द्रिय घोड़े दौड़कर अपने विषयों से सम्बन्धित कार्य को करने लगते हैं, बुद्धि, मन, और दशेन्द्रिय घोड़े जिधर दौड़ते हैं, उधर ही इस शरीररथ और रथ में बैठे हुए — जीवात्मा को भी चलना पड़ता है ।

ज्ञान और बुद्धि ये दोनों परस्पर में पर्यायवाची शब्द हैं, शरीर रथ का ड्राइवर -बुद्धि रथाधिपति जीवात्मा के सहारे पर ही टिककर ड्राइवरी करने में समर्थ होता है, अतएव—शरीर रथ से सम्बन्धित प्रत्येक कार्य को करने के लिये जीवात्मा का शरीर रथ में बने रहना अत्यावश्यक है, जीवात्मा रहित शरीररथ से किसीभी कार्य का सम्पादन नहीं किया जा सकता है ।

अमरीका, रूस, चीन, ब्रिटेन, जापान, भारत, आदि देशों के हे वैज्ञानिको! आप महानुभाव निष्पक्ष हो कर— गम्भीरता से विचार करें कि - शब्दोच्चारण, या ज्ञानोपार्जन, और कर्मोपार्जन करने के लिये पाणिनि आदि ऋषियों द्वारा प्रतिपादित पूर्वोक्त वैज्ञानिकपद्धति के विना - किसी शब्द अथवा अक्षर को उच्चारण करने में अथवा ज्ञानोपार्जन या कर्मोपार्जन करने में क्या कोई वैज्ञानिक सफल हो सकता है ?

हे वैज्ञानिको ! प्रयत्न करने पर आप सब भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि—

संस्कृतवाङ्मय में वर्णित वैज्ञानिक प्रकार का आश्रय लिये विना कोई भी वैज्ञानिक — एक भी अक्षर या शब्द का न उच्चारण कर सकता है, और न कोई ज्ञानोपार्जन या कर्मोपार्जन को ही करने में समर्थ हो सकता है ।

—इति पञ्चमाध्यायः—

—:X:—

षष्ठाध्यायः

आर्षवर्षा - वायु - विज्ञान - प्रतिपादक - सप्तद्वीप - चतुर्दशलोक-विवेचनाध्यायः षष्ठः

सप्तद्वीपविवेचनाध्यायस्य प्रयोजनं - स्वनिर्मितेषु - पद्येष्वत्र विलिखामि—

जम्बूद्वीपस्य मध्ये यः सुमेरुः पर्वतः स्थितः ।
ऊर्ध्वभागे गिरे स्तस्य तिष्ठतीन्द्रस्तु वृष्टिदः ॥१॥
शाकद्वीपे स्थितो यस्तु पर्वतः - "चन्द्र" - नामकः ।
तत्र चन्द्रे स्थिताः सन्ति प्रगाढास्तु जलाशयाः ॥२॥
यज्ञादिकर्मणा तुष्टः सुरेन्द्रो वासवः सदा ।
वायुयानविशेषैस्तु तस्माद्धि चन्द्रपर्वतात् ॥३॥
जलानि वायुयानेषु भृत्वा स देवयन्त्रकैः ।
मृत्युलोकं समागत्य स्वातन्त्र्याद् वृष्टिकारकः ॥४॥
इत्थमिन्द्रकृता वृष्टि द्वीपसम्बन्धजा भुवि ।
जायते मृत्युलोकस्य सर्वदा प्राणिप्राणदा ॥५॥
द्वीपसंस्थितिबोधेन विना नैव प्रजायते ।
चन्द्रपर्वतविज्ञानं सुमेरो र्ज्ञानमेव च ॥६॥
अतो द्वीपविवेकाय यत स्त्विन्द्रः प्रवर्षति ।
द्वीपसंस्थिति - विज्ञानं निबन्धे लिख्यते मया ॥७॥
वृष्टिवैशिष्ट्यसम्बन्धे वैज्ञानिकविवेचनम् ।
सप्तद्वीपानुसारेण निबन्धे क्रियते मया ॥८॥
किम्पुरुषादिवर्षेपु येष्विन्द्रो नैव वर्षति ।
कस्मिन् द्वीपे क्व सन्ति ते मानं तेषां कियन्मितम् ॥९॥
द्वीपसंस्थितिबोधेन विना किम्पुरुषादयः ।
द्वीपभागा न ज्ञायन्तेऽत्रातो द्वीपविवेचनम् ॥१०॥
अध्यायेऽस्मिन् मया विज्ञाः ! क्रियते वृष्टिबोधकम् ।
सुवर्णावायुविज्ञानं द्वीपज्ञानेन विस्फुटम् ॥११॥
वायु - विज्ञान - वृष्टीनां ज्ञानाय द्वीपसंस्थितिम् ।
आर्षमतानुसारेण चाध्यायेऽत्र लिखाम्यहम् ॥१२॥

इन्द्रकृतवर्षायां वैज्ञानिकता - अस्तीति प्रतिपादनं स्वनिर्मितेषु पद्येषु - अत्र करोमि—

अमरीकादिदेशेषु वैज्ञानिकवरा नराः ।
जलानि वायुयानेषु भृत्वा कुर्वन्ति वर्षणम् ॥१३॥
आधुनिका वराका ये वृष्टिदाने समर्थकाः ।
इन्द्रत्वं प्राप्य लोकस्य किमिन्द्रो नास्ति तादृशः ? ॥१४॥
अतो हीन्द्रकृता वृष्टि विज्ञानेनापि सिद्ध्यति ।
तत्र कुर्वन्ति शङ्कां ये भ्रान्तास्ते नात्र संशयः ॥१५॥

मृत्युलोके कृतयज्ञादिकर्मणो बोधं कथमिन्द्रः करोतीति प्रतिपादनमत्र-करोमि—

यथा रूसादिदेशेषु कृतविशेषकर्मणः ।
प्रबोधोऽत्र क्षणेनैव विज्ञानेन प्रजायते ॥१६॥
ब्रह्माण्डान्तर्गतो वायुः सूर्यस्यापि च रश्मयः ।
ट्रांजिस्टरादिभि र्यन्त्रै र्बोधयन्तीहतत्कृतम् ॥१७॥
तथैवेन्द्रं समुद्दिश्य मृत्युलोके कृतस्य तु ।
यज्ञादिकर्मणो बोधमिन्द्रोऽपि कुरुते हि तैः ॥१८॥
अथवा योगविद्यायां निष्णातस्तु पुरन्दरः ।
मृत्युलोके कृतं कर्म योगाज्जानाति सर्वदा ॥१९॥
यज्ञादिकर्मणा तेन प्रसन्नेन्द्रस्तु सर्वदा ।
मृत्युलोके सुवृष्टिं स करोतीत्यार्षनिर्णयः ॥२०॥
"देवान् भावयताऽनेन ते देवा भावयन्तु वः
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवास्यथ ॥२१॥
श्रीमद्भागवते ग्रन्थे ज्ञान - विज्ञान - संयुते ।
दशमस्कन्ध -पूर्वार्धे पर्जन्यो वृष्टिदः स्मृतः ॥२३॥
पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः ।
तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः ॥२४॥
इन्द्रस्तदात्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप! ।
गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप सः ॥२५॥
गणं सांवर्तकं नाम मेघानां चान्तकारिणाम् ।
इन्द्रः प्राचोदयत् क्रुद्धो वाक्यं चाहेशमान्युत ॥२६॥
एषां श्रियावलिप्तानां कृष्णेनाध्मायितात्मनाम् ।
धुनुत श्रीमदस्तम्भं पशून् नयत संक्षयम् ॥२७॥
अहं चैरावतं नागमारुह्यानुव्रजे व्रजम् ।
मरुद्गणै र्महावीर्यै र्नन्दगोपजिघांसया ॥२८॥

इत्थं मघवताऽऽज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबन्धनाः ।
नन्दगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ॥२९॥
विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनन्तः स्तनयित्नुभिः ।
तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषु र्जलशर्कराः ॥३०॥
स्थूणा स्थूला वर्षधारा मुञ्चत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः ।
जलौघैः प्लाव्यमाना भू र्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥३१॥
इत्युक्तं शुकदेवेन मुनिनेन्द्रविवर्षणम् ।
सर्वैरेवादृतं चैतन्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥३२॥
अतो मया निबन्धेऽत्र चैन्द्रवृष्टिविवेचनम् ।
वैज्ञानिकदृशा विज्ञाः! कृतं विज्ञानज्ञानदम् ॥३३॥

सप्तद्वीपैः सप्तसागरैश्च समन्विते भूगोले वैज्ञानिकविवेचनं करोमि

(१) क्षारसमुद्रेण=लवणरसयुक्तसमुद्रेण, (२) इक्षुरससागरेण=मधुररस-समुद्रेण, (३) सुरासागरेण=नशादायकरसयुक्तसमुद्रेण, (४)घृतसागरेण=घृततैलादि-तरलरसयुक्तसमुद्रेण, (५) क्षीरसागरेण=दुग्धतुल्यरसयुक्तसमुद्रेण, (६) तक्रसागरेण=लोकप्रसिद्धमट्ठासदृशरसयुक्तसमुद्रेण,(७)स्वादूदकसागरेण=स्वादिष्टजलरसयुक्तसमुद्रेण च युक्तोऽस्ति भूगोलोऽयम् ।

मानवादिप्राणिनां पाञ्चभौतिकशरीरिपिण्डे यथा शरीरपिण्डस्थ- रक्तवाहिन्यः बृहत् - मध्यम सूक्ष्मनाड्यः - शरीरपिण्डस्य - प्रत्येकभागस्थं रक्तस्वरूपं विविध-प्रकारं रसं - संचारयन्ति, शरीरिपिण्डस्य प्रत्येकभागे च रक्तस्वरूपं तं रसं प्रापयन्ति, तथैव - पाञ्चभौतिके भूगोलपिण्डेऽपि विद्यमानाः - भूगोलपिण्डोपरिभूगोलान्तःस्थ-सर्वविधरसस्वरूपजलवाहिन्यः-बृहत्- मध्यम- सूक्ष्म - नाड्यः - भूगोलस्थ - रस-स्वरूपं तज्जलं - भूगोलपिण्डस्य - प्रत्येकभागे संचारयन्ति. भूगोलपिण्डस्य - प्रत्येकभागे रस-स्वरूपं तज्जलं प्रापयन्ति च ।

(१) भूगोलोपरि - लवण - क्षार - रसयुक्तानि यानि वस्तूनि समुत्पद्यन्ते, तेषु सर्वेष्वपि वस्तुषु लवण - क्षारमयं रसं - लवण - क्षार- सागरादेव - समानयन्ति, प्राप-यन्ति वा भूगोलपिण्डस्थाः बृहत् - मध्यम - सूक्ष्मनाड्यः ।

[२] भूगोलोपरि-मधुर-रस - युक्तानि लोकप्रसिद्धानि–गन्ना–सेव–अङ्गूर–प्रभृतीनि–यानि वस्तूनि समुत्पद्यन्ते, तेषु सर्वेष्वपि वस्तुषु–मधुरमयं रसं–मधुररस-सागरादेव–अर्थात् –इक्षुरससमुद्रादेव समाकृष्य प्रवेशयन्ति–बृहत्–मध्यम–सूक्ष्मसंज्ञकाः-भूगोल–पिण्डस्थाः– नाड्यः ।

(३) भूगोलोपरि - नशाप्रदायकानि - मादकरसयुक्तानि - लोकप्रसिद्धानि - अफीम- गांजा- सुलफा–चरस–भांग–शराव–सुरा–प्रभृतीनि यानि वस्तूनि समुत्पद्यन्ते, तेषु सर्वेष्वपि–सुरांशं प्रवेशयन्ति–सुरासागरात्–समाकृष्य–भूगोलस्थाः–बृहत् - मध्यम-सूक्ष्मनाड्यः ।

(४) भूगोलोपरि - घृत–तैलादिप्रदायकानि–स्निग्धरसयुक्तानि लोकप्रसिद्धानि–

सरसों - वङ्गा - तरा - तिल - मूंगफली - बिनौला - प्रभृतीनि यानि वस्तूनि समुत्पद्यन्ते, - तेषु - घृत - तैलादिसंज्ञकं स्निग्धं रसं - घृतसागरात् एव - भूगोलस्थाः-वृहत्-मध्यम - सूक्ष्म - नाड्यः - समाकृष्य - प्रवेशयन्ति ।

(५) भूगोलोपरि - दुग्धप्रदायकानि - अथवा - क्षीरप्रदायकानि दुग्धक्षीररस-युक्तानि- लोकप्रसिद्धानि - गूलर - पिलखुन - पीपल - वड़ - गोभी - कटेहरी - दुद्धी कीकर - झार - चरी - वर्षी - बिनौला - पोस्त - प्रभृतीनि- यानि वस्तूनि समुत्पद्यन्ते, तेषु सर्वेष्वपि वस्तुषु - दुग्ध - क्षीर - संज्ञकं रसं क्षीरसागरात् समाकृष्य प्रवेशयन्ति-भूगोलस्थाः - वृहत्मध्यसूक्ष्मनाड्यः ।

(६) भूगोलोपरि - खट्टासरसयुक्तानि- लोकप्रसिद्धानि नीबू - टमाटर- जामुन-कमरख - करोंदा - आंवला - अमचूर - टांटरी - प्रभृतीनि यानि वस्तूनि समुत्पद्यन्ते, तेषु - सर्वेष्वपि वस्तुषु - खटासयुक्तं रसं - तक्रसागरात् - समाकृष्य - प्रवेशयन्ति - भूगोलस्थाः - बृहत् - मध्यम - सूक्ष्मनाड्यः सततम् ।

(७) भूगोलोपरि- स्वादिष्टजलरसयुक्तानि - लोकप्रसिद्धानि अनार - मोंसमी-सन्तरा-तरबूजा - कतीरा - प्रभृतीनि यानि वस्तूनि समुत्पद्यन्ते, तेषु सर्वेष्वपि - स्वादूदकरसं - प्रवेशयन्ति - स्वादूदकसागरात् - समाकृष्य - भूगोलस्थाः वृहत् - मध्यम-सूक्ष्मनाड्यः ।

सप्तद्वीपस्थानां सप्तसागरस्थानां च क्षार- मधुर - सुरा - घृत - क्षीर - तक्र-स्वादूक - संज्ञकानां सत्तां भूगोलोपरि - समुत्पन्नेषु - वस्तुषु - प्रत्यक्षं दृष्टवापि, सप्त-द्वीपानां सप्तसागराणां च सत्तां - आधुनिकाः - ये वैज्ञानिकाः - न स्वीकुर्वन्ति, ते तु भ्रान्ताः - एव ।

भूगोलपिण्डे - जले - भूगोलोपरिसमुत्पन्नेषु सर्वविधवस्तुषु च - मधुर - अम्ल-लवण - कटु - कषाय - तिक्तसंज्ञकाः षड्रसाः कुतः समायान्तीति निष्पक्षया धिया सुविचारयन्तु - अमरीका - रूस - ब्रिटेन - जापान - चीन - भारतादिदेशेषु समुत्पन्नाः हे वैज्ञानिकाः !

निष्पक्षया धिया विचारे कृते सति विविधवस्तुषु-षड्रसप्रदायकाः सप्तसागराः एव सिद्ध्यन्तीति नात्र सन्देहावसरः ।

"आर्षवर्षा - वायुविज्ञानम्" के छटे अध्याय के प्रारम्भ से—"षड्रसप्रदायकाः सप्तसागराः- एव सिद्ध्यन्ति" तक के सारांश को सुन्दरी टीका में लिख रहा हूँ ।

सुन्दरी टीका— आर्षवर्षा - वायुविज्ञान के प्रतिपादक सप्तद्वीपों और चतुर्दश (१४) लोकों का विवेचन मैं इस छटे अध्याय में करता हूँ । सप्तद्वीप - विवेचनाध्याय के प्रयोजन को यहाँ पर मैं स्वरचितपद्यों में लिख रहा हूँ—

जम्बूद्वीप के मध्यभाग में स्थित सुमेरु पर्वत के ऊपरी भाग में (सुमेरु पर्वत की चोटी पर) वर्षा को करने वाला इन्द्र रहता है ।।१।।

शाकद्वीप के मध्य में स्थित "चन्द्र पर्वत" पर बहुत गहरे और अथाह जल के जलाशय हैं ।।२।।

मृत्युलोक में किये गये यज्ञादि कर्म से प्रसन्न हुए इन्द्र देवनिर्मित विशेष वायु-यानों में देवनिर्मित यन्त्रों के द्वारा प्रगाढजलाशयों से जल भरकर उस जल को मृत्यु-लोक में– स्वतन्त्रता के साथ वरसाता है ।।३।।४।।

इस प्रकार द्वीप (शाकद्वीप) से सम्वन्धित इन्द्रकृत वर्षा प्राणिमात्र को सुख और जीवन देने वाली होती है ।।५।।

द्वीपों की स्थिति को जाने विना "चन्द्रपर्वत" और "सुमेरुपर्वत" का ज्ञान होना सर्वथा असम्भव है ।।६।।

इन्द्र देवता जिस द्वीप में रहता है, जिस द्वीप से जल को वायुयानों में भरकर जिन द्वीपों में वरसाता है, उन सभी द्वीपों के विज्ञान को मैं इस निवन्ध में लिख रहा हूँ ।।७।।

सप्तद्वीपों के अनुसार—विशेषवर्षाओं के सम्वन्ध में वैज्ञानिक विवेचन को भी मैं इस निवन्ध में लिख रहा हूँ ।।८।।

जिन "किम्पुरुषादि" वर्षों में (भागों में) इन्द्र कृत वर्षा नहीं हुआ करती है, वे किम्पुरुपादि भाग भूगोल के किन द्वीपों में विद्यमान हैं, और उनका योजनादि अथवा किलोमीटरादि मान कितना है ।।९।। ?

द्वीपों की स्थिति को जाने विना "किम्पुरुषादि" नाम से प्रसिद्ध द्वीपांशों की जानकारी होनी असम्भव है, इसलिये मैं यहाँ द्वीपों की स्थितियों का विवेचन और द्वीपों की स्थितियों के ज्ञान से "वर्षावायुविज्ञान" का विवेचन इस अध्याय में आर्ष-मतों के अनुसार कर रहा हूँ ।।१०।।११।।१२।।

इन्द्रकृतवर्षा में वैज्ञानिकता है, इसका प्रतिपादन मैं स्वरचित पद्यों द्वारा यहाँ पर करता हूँ—

अमरीका आदि देशों में वैज्ञानिक लोग वायुयानों में जलों को भरकर खेतों में वर्षा करते हैं ।।१३।।

अमरीका आदि के लोग वायुयानों द्वारा वर्षा करने में समर्थ हैं, तो क्या संसार भर के इन्द्रत्व या आधिपत्य को प्राप्त हुआ इन्द्र देवता वायुयानों द्वारा मृत्यु-लोक पर वर्षा को नहीं कर सकता, अर्थात् अवश्य ही वायुयानों द्वारा वर्षा को कर सकता है ।।।१४।।

इसलिये उपर्युक्त वैज्ञानिक तथ्यों के द्वारा इन्द्रकृतवर्षा सिद्ध होती है, इन्द्रकृत-वर्षा के सम्वन्ध में जो लोग निराधार शङ्कायें और नुक्ते चीनी "ननु-नच" करते हैं, वे भ्रान्त हैं ।।१५।।

मृत्युलोक में किये गये यज्ञादिकर्मों का ज्ञान इन्द्र किस प्रकार से कर लेता है, इसका प्रतिपादन मैं स्वरचित पद्यों द्वारा यहाँ पर करता हूँ—

जिस प्रकार रूस आदि देशों में किये गये विशेष कार्य का ज्ञान विज्ञान के टेलीवीजन आदि यन्त्रों द्वारा भारतादिदेशों में क्षण भर में हो जाता है, ठीक उसी प्रकार से मृत्युलोक में किये गये यज्ञादि विशेष कर्म का ज्ञान इन्द्रलोक में इन्द्रादि को भी हो जाता है ।।१६।।

ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत विद्यमान वायु और सूर्य की रश्मियाँ टेलीवीजन, रेडियो, और ट्रांसजिस्टर आदि यन्त्रों के द्वारा रूस आदि देशों में किये गये कार्यों का वोध क्षण भर में भारतादि देशों के लिये करा देती है ॥१७॥

इन्हीं साधनों द्वारा ठीक इसी प्रकार से इन्द्र को उद्देश्य वनाकर मृत्युलोक में किये गये यज्ञादि कर्मों का वोध इन्द्रलोक में स्थित इन्द्र कर लेता है ॥१८॥

अथवा योगविद्या में पारंगत इन्द्र आदि देवता मृत्युलोक में किये गये समस्त कर्मों का वोध -- योग के द्वारा इन्द्रादिलोकों में स्थित होकर ही कर लेते हैं ॥१९॥

यज्ञादि कर्म से प्रसन्न हुआ इन्द्र देवता मृत्युलोक में सुवृष्टि को करता है, ऐसा ऋषियों ने निर्णय किया है ॥२०॥

मृत्युलोक में किये गये यज्ञादि कर्मों से देवलोक में देवताओं की वृद्धि और प्रसन्नता होती है, वृद्धि और प्रसन्नता को प्राप्त हुए देवता अपनी शुभकामनाओं के द्वारा मृत्युलोक निवासी हम सबके लिये वृद्धिऔर प्रसन्नता को देते हैं। इस प्रकार परस्पर में एक दूसरे केकल्याण की कामनायें करने पर ही एक दूसरे का कल्याण और अभ्युदय हुआ करता है ॥१२१॥

ज्ञान और विज्ञान से परिपूर्ण श्रीमद्भागवत नाम के ग्रन्थ में दशम स्कन्ध के पूर्वार्ध में "इन्द्र" को वृष्टिदाता कहा है ॥२२॥

भगवान् इन्द्र ही "पर्जन्य" मेघ या वर्षा स्वरूप है, इन्द्र का स्वात्मस्वरूप मेघ हैं, वे मेघ ही प्राणियों के प्राण और जीवन के आधार होते हैं, क्योंकि मेघों द्वारा भूगोलस्थ जीवों के लिये प्राणरक्षक जल की प्राप्ति होती है, "आपो वै प्राणः" इस वेदोक्ति में जल ही प्राणों को देने वाला और प्राणों की रक्षा करने वाला होता है ॥२३॥

श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्ध में कहा है कि व्रज के गोपों द्वारा अपनी पूजा की अवहेलना को जानकर इन्द्र ने उन गोपों पर क्रोध किया ॥२४॥

क्रुद्ध हुए इन्द्र ने विनाशलीला को करने वाले मेघों के "सांवर्तक" नाम से प्रसिद्ध मेघसमूह को प्रेरित करके यह कहा कि—श्री कृष्ण ने जिन के आत्मवल को वढ़ाया हुआ है, और जो अहङ्कार के वशीभूत होकर मेरी अवज्ञा (उपेक्षा, अवहेलना) कर रहे हैं, ऐसे इन गोपों की सव प्रकार की सपत्तियों को और पशुओं को नष्ट-भ्रष्ट कर दो ॥१५॥२६॥

मैं भी ऐरावत नाम के हाथी पर चढ़कर प्रचण्ड वायु के वेगों के साथ भयङ्कर ढंग से वरसने वाले अन्य मेघों को साथ लेकर - नन्दादि गोपों और - उनकी गोपिकाओं को नष्ट - भ्रष्ट और अस्त - व्यस्त करने की इच्छा से व्रज के लिये प्रस्थान कर रहा हूँ ॥२७॥

इस प्रकार इन्द्र के आदेश को प्राप्त करने वाले तथा सव प्रकार के वन्धनों से मुक्त हुए सर्वतन्त्रस्वतन्त्र मेघ अपनी पूरी शक्ति से मूसलाधार वर्षा को करके - नन्द-राजा के गोकुल को पीड़ित करने में जुट गये ॥२८॥

विजलियों के साथ चमकते हुए, और भयङ्कर गड़गड़ाहट के शब्दों को करते

हुए तीव्र गति वाले बादलों से जलों के साथ कंकड़ों और पत्थरों (ओलों) की वर्षाएँ होने लगीं ॥२९॥

भयङ्कर मेघों के द्वारा निरन्तर मोटी - मोटी मूसलाधार वर्षा होने पर जलों के समुदायों से व्रज की समस्त भूमि जलमग्न हो गई थी, कहाँ ऊँचा है, और कहाँ नीचा है, यह कुछ भी मालुम नहीं पड़ रहा था ॥३०॥

श्रीमद्भागवत में दशमस्कन्ध के पूर्वार्ध में श्री शुकदेव ऋषि ने पूर्वोक्त प्रकार से इन्द्रकृतवर्षा का वर्णन किया है, इस वर्णन को तत्वदर्शी सभी ऋषियों ने विना किसी ननु - नच (नुक्ता - चीनी) के स्वीकार किया है ॥३१॥

इसीलिये मैंने इस निवन्ध में इन्द्र द्वारा की गई वर्षा का वैज्ञानिक ढंग से विज्ञान और ज्ञान की वृद्धि के लिये विवेचन किया है ॥३२॥

सातद्वीपों और सातसमुद्रों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विवेचन

(१) क्षारसमुद्र से (नमकीनरसयुक्त समुद्र से) (२) इक्षुसमुद्र से (मधुररसयुक्त समुद्र से) (३) सुरासागर से (नशादायक रसयुक्त समुद्र से) (४) घृत समुद्र से (घृत-तैलादि तरलरसयुक्त समुद्र से (५) क्षीरसमुद्र से (दूध के समान रसयुक्त समुद्र से) (६) तक्र समुद्र से (लोकप्रसिद्ध मट्ठा के समान खटासयुक्त रस के समुद्र से),और (७) स्वादिष्ट रसयुक्त समुद्र से युक्त यह भूगोल पिण्ड है।

मनुष्य - आदि प्राणियों के पाञ्चभौतिक (पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश) इन पांच भूतों से बने हुए शरीर पिण्ड में स्थित रक्त को वहाने वाली – बड़ी, छोटी और सूक्ष्मशिरायें (नाड़ियां = नसें) जिस प्रकार से शरीरपिण्डस्थ - रक्तस्वरूप रस का शरीर के प्रत्येक भाग में संचार करके उस रक्तस्वरूप रस को शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचा देती हैं, ठीक उसी प्रकार से पाञ्चभौतिक भूगोलपिण्डस्थ जल को भूगोल के प्रत्येक भाग में बहाने वाली - भूगोलपिण्डस्थ-बड़ी, छोटी, और सूक्ष्मशिरायें (नाड़ियां=श्रोत:स्वरूप नसें) भूगोल-पिण्डस्थ अनेक प्रकार के जलस्वरूप रसों का भूगोल के प्रत्येक भाग में संचार करती हैं, और इस रसस्वरूप जल को भूगोल के प्रत्येक भाग में पहुँचा देती हैं।

(१) भूगोल पर क्षाररसयुक्त (नमकीन रसयुक्त) यव (जौ) नोंनिखा, पालक, घीया आदि जितनी भी वस्तुऐं उत्पन्न होती हैं, उन सब में क्षारीयपदार्थ का अस्तित्व होने में मूल कारण यह है कि——भूगोलपिण्ड में स्थित - बड़ी, छोटी और सूक्ष्मशिरायें भूगोल पर स्थित क्षार समुद्र से क्षारीयरस को खींचकर उस रस को क्षारीयरस वाले यव(जौ) नोंनिखा, घीया, पालक आदि के पौधों, वृक्षों और लताओं (वेलों) की जड़ों के द्वारा (मूलप्रदेश के द्वारा) उन में स्थापित कर देतीं हैं।

(२) भूगोल पर मधुररस वाले (मीठे रसवाले) गन्ना, शकरकन्दी, अंगूर, सेब, नासपाती, मोंसमी, आदि जितने भी पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उन सब पदार्थों में मधुररस की सत्ता होने में मूल कारण यह है कि——भूगोलपिण्ड में स्थित - बड़ी, छोटी और सूक्ष्मशिरायें मधुर सागर से (इक्षु सागर से) मधुररस को खींचकर गन्ना, सेब आदि के वृक्षों और पौधों की जड़ों के द्वारा उस मधुररस को गन्ना और सेब आदि में पहुँचा

देते हैं, अतएव - गन्ना, सेव, शकरकन्द आदि मधुररसयुक्त (मीठे) होते हैं।

(३) भूगोल पर नशीले रस वाले लोकप्रसिद्ध—अफीम, गाँझा, सुलफा, चरस, भाँग, सुरा, आदि जितने भी नशीले पदार्थ ऊत्पन्न होते हैं, उन सब में नशीले रस की सत्ता रहने में मूल कारण यह है कि——भूगोलस्थ बड़ी, छोटी और सूक्ष्म शिरायें सुरासागर से सुरारस को खींचकर उन नशीले पदार्थों के पौधों और वृक्षों की जड़ों के द्वारा उनमें सुरारस को (नशीले रस को) पहुँचा देती हैं, अतएव - अफीम, गांजा, भाँग आदि पदार्थ नशीले होते हैं।

(४) भूगोल पर घृत तैलादि स्निग्ध रसयुक्त लोकप्रसिद्ध सरसों, वङ्गा, तरा (दुआं), तिल, भूंगफली, विनोला, आदि जितने भी पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उन सब में- घी, तेल, आदि नाम से प्रसिद्ध जो स्निग्धरस (चिकना रस) उपलब्ध होता है, उस रस की उपलब्धि में मूल कारण यह है कि——भूगोलस्थ - बड़ी, छोटी और सूक्ष्म शिरायें घृतसागर से - घृत, तैलादि स्निग्ध रस को खींचकर -सरसों, वङ्गा, तिल, मूंगफली, विनौला आदि के पौधों और वृक्षों की जड़ों के द्वारा सरसों आदि में घृत, तैलादि स्निग्ध रसों को पहुँचा देती हैं। अतएव इनमें घृततैलादि का अस्तित्व रहता है।

(५) भूगोल पर दूध अथवा क्षीर युक्त - लोकप्रसिद्ध - "गूलर, पिलखुन, वड़, पीपल, अर्क (आका=अकऊआ) कटेहरी, गोभी, दुद्धी, भार, चरी, कीकर(बवूल) बरसी, बिनौला, पोस्त आदि जितने भी पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उन सब में दूध और क्षीरसंज्ञक रस की सत्ता होने में मूल कारण यह है कि—भूगोलस्थ - बड़ी, छोटी और सूक्ष्म शिरायें भूगोलस्थ क्षीरसागर से क्षीररस को-खींचकर क्षीर या दूध वाले-पीपल आदि वृक्षों और पौधों की जड़ों के द्वारा उस क्षीर(दूध) को इन दुग्ध - क्षीर धारी वृक्षों में पहुँचा देती हैं।

(६) भूगोल पर खट्टेरस से युक्त लोकप्रसिद्ध—नीबू, टमाटर, जामुन, कमरख, करोंदा, आँवला, आम, अमचूर, टांटरी, आदि जितने भीखट्टे पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उन सब पदार्थों में खटास की सत्ता होने में मूल कारण यह है कि—भूगोलस्थ-बड़ी, छोटी और सूक्ष्म शिरायें भूगोलस्थ - तक्रसागर - से तक्ररस को (खटासयुक्त रस को) खींचकर उस रस को - नीबू आदि के वृक्षों और पौधों की जड़ों के द्वारा नीबू आदि के वृक्षों और उनके फलों में पहुंचा देती हैं, अतएव - नीबू, टमाटर, जामुन आदि खट्टे रस वाले होते हैं।

(७) भूगोल पर स्वादिष्ट रस युक्त (स्वादिष्ट जल युक्त) लोकप्रसिद्ध---तरबूजा, खरबूजा, मतीरा, कतीरा, अनार, मोंसमी, सन्तरा आदि जितने भी पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उन सब में—स्वादुरस एवं स्वादुजल होने में मूलकारण मह है कि— भूगोलस्थ-बड़ी छोटी, और सूक्ष्मशिरायें-भूगोलस्थ स्वादुरससागर से स्वादु (अच्छे लगने वाले)रस एवं जल को खींचकर उस रस और जल को - खरबूज, तरबूज आदि की लताओं(वेलों) और मोंसमी, केला, सेव आदि के वृक्षों की जड़ों के द्वारा तरबूज आदि की बेलों में और उनके तरबूज आदि फलों में तथा मोंसमी आदि के वृक्षों में और उनके फलों में पहुंचा देती हैं, अतएव इन लताओं और तताओं एवं वृक्षों के फल स्वादुजल युक्त हुआ करते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिकों के हठ और भ्रम का परिचय

सातद्वीपों और सातसमुद्रों में स्थित "क्षार, मधुर, सुरा, घृत, क्षीर, तक्र, स्वादूदक" के अस्तित्व को भूगोल पर उत्पन्न होने वाले अनेक पदार्थों में प्रत्यक्षरूप से देखने पर भी – आधुनिक कुछ वैज्ञानिक – सातद्वीपों और सातसमुद्रों को मानने में आनाकानी करते हैं, वे हठीले और भ्रमित हैं।

वैज्ञानिक निष्पक्ष होकर विचार करें

अमरीका, रूस, व्रिटेन, जापान, चीन, भारत, आदि राष्ट्रों में जन्म लेने वाले हे वैज्ञानिक महानुभावो! आप लोग गम्भीरतापूर्वक निष्पक्ष - दृष्टिकोण से विचार करें कि —भूगोलपिण्ड में, जल में, और भूगोल पर उत्पन्न होनेवाले अनेक पदार्थों में- "मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय, तिक्त" संज्ञक ये छः रस कहाँ से और कैसे चले आते हैं ?

निष्पक्ष वुद्धि से विचार करने पर आप सव भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि– अनेक पदार्थों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अनुभव होने वाले षड्रसों (छः प्रकार के रसों) के उद्गम स्थान भूगोलस्थ पूर्वोक्त सप्तसागर (सात समुद्र) ही हैं।

षड्रसों को अपनी ओर खींचने का प्रकार—

प्रत्येक प्रकार के वीजों, फलों और पुष्पों में अपने अपने वीजों के मूलभूत षड्रसों को - भूगोलस्थ - वड़ी - छोटी - और सूक्ष्म शिराओं (नाड़ियों) के माध्यम से - अपने अपने पोधों, वृक्षों, लताओं और तताओं (वेलों) की जड़ों द्वारा अपनी ओर खींचने की "प्राकृतिक - आकर्षणशक्ति" सदा विद्यमान रहती है, इसी आकर्षणशक्ति के द्वारा भूगोल पर स्थित पूर्वोक्त सात समुद्रों के षड्रस खिच कर-वीजों, फलों और पुष्पों आदि में पहुंचते हैं।

श्री पतञ्जलिमुनिमतेन-सप्तद्वीपसत्ता-प्रतिपादनमत्र करोमि

श्रीपतञ्जलि - मुनि - प्रणीते - व्याकरणमहाभाष्ये - प्रथमे - अध्याये- प्रथमे-पादे- प्रथमे आह्निके - सप्तद्वीपानां - चतुर्दशलोकानां च वर्णनं महाभाष्यकारैः कृतम्, उपलभ्यते च तत् - अद्यापि महाभाष्ये, महाभाष्यकरास्तत्र विलिखन्ति···

"महान् शब्दस्य प्रयोगविषयः, सप्तद्वीपा वसुमती, त्रयोलोकाः"।

उपर्युक्तभाष्यस्य - अयं भावः ······

"देशविषयौ" "तूपवर्तनम्" - इति - अमरकोषोक्तेः

"विषयो गोचरे देशे तथा जनपदेऽपि च।
प्रवन्धाद् यस्य यो ज्ञात स्तत्र रूपादिके पुमान्"॥

इति मेदिनी कोषोक्तेश्च विषयशब्दोऽत्र देशजनपदयोः पर्यायवाचकोऽस्ति। "आप्तवाक्यं शब्दः, आप्तस्तु- यथार्थवक्ता, वाक्यं पदसमूहः", शक्तं पदम्।

"इत्येतादृशलक्षणलक्षितोऽत्र शब्दस्तु वाक्यपर्यायवाचकोऽस्ति। शब्दस्य महान् देशो विद्यते, यत्र देशे - शब्दप्रयुक्तो भवति, स देशो (वृहत्तमः) अर्थात् वहुयोजनपरिमितोऽस्ति इति सारांशः। वहुयोजनपरिमितस्य तस्य देशस्य-स्पष्टीकरणम्

तु निम्नाङ्कितरीत्या कृतं भाष्यकारैः "सप्तद्वीपा वसुमती" ……

(१) क्षारसागरेण सह जम्बूद्वीपः (२) इक्षुसागरेणसहप्लक्षद्वीपः (३) सुरासागरेण सह शाल्मलद्वीपः (४) घृतसागणरेण सह कुशद्वीपः (५) क्षीरसागरेण सह क्रौंचद्वीपः (६) तक्र सागरेण सह शाकद्वीपः (७) स्वादूदकसागरेण सह पुष्करद्वीपौ विभाग द्वये विभक्तः, उक्तव्यवस्थया-जम्बूद्वीपमध्यगत - सुमेरोः ··· एकपार्श्वस्थानां सप्तद्वीप-सप्तसागराणां योजनात्मक- मानस्य ऐक्ये कृते सति—२५३५०००० योजनात्मकं मानं समायाति । एकपार्श्वस्थकिलोमीटरमानं तु — ३६८७२७२७२ कि०मी० | ८०० गजः । उभयपार्श्वस्थानां योजनानां - ऐक्येकृते सति-सप्तलक्षोत्तर- पंचकोटि - योजन-=५०७००००० योजन- "प्रमितमानेन युक्ता अर्थात्"-७३७४५४५४५ किलोमीटरैः-५०० गजैश्च प्रमितेन मानेन युक्ता - सप्तद्वीपवती भूमिः - शब्दप्रयोगविषये अस्ति । तथा च··· भूमिगर्भस्थिताः - अतल - वितल- सुतल - तलातल - महातल - रसातल-पाताल - संज्ञकाः - सप्तलोकाः - सप्तद्वीपवत्यां भूमौ शब्दप्रयोगविषयाः सन्ति, एतैः-अतलादिलोकैं - युक्ता सप्तद्वीपा वसुमती शब्दप्रयोगविषयत्वेन ब्रह्माण्डे तिष्ठति । अत्र सप्तद्वीपविवक्षया- एव - "सप्तद्वीपा वसुमती" समुक्ता भाष्यकारैः", "त्रयो लोकाः" इति कथनस्य तु- अयं भावः ……

भू र्भुवः स्वः-इति-एते त्रयो लोकाः-शब्दप्रयोगविषयाः सन्ति । भूः शब्देन अत्र-पंचाशत्कोटियोजन - प्रमितस्य - अर्थात्- "५००००००००० योजनप्रमितस्य" भूगोलस्थ- देशस्य=विषयस्य ग्रहणं कार्यम्, भुवः-शब्देन-अत्र - भूगोलात् - ऊर्ध्व एकलक्ष-"१०००००" योजनान्तं यावत्तावत् प्रदेशस्तस्य ग्रहणं कार्यम् । स्वः-शब्देन- अत्र-भुवः-लोकात् - ऊर्ध्वं - आकाशमण्डले - चन्द्रलोकतः - आरभ्य ध्रुवलोकान्तं यावत्तावत् - प्रदेशस्य ग्रहणं कार्यम् । तथा च - महः- लोकतः- आरभ्य- जनः- तपः सत्य-लोकान्तं-ब्रह्माण्ड- कटाहान्तं च यावत्तावत् - पञ्चदशलक्षोन-पंचविंशतिकोटिप्रमितस्य-विषयस्य-अर्थात् प्रदेशस्य ग्रहणं कार्यम् ।

उक्तरीत्या सप्तद्वीपसहितानां भूर्लोकप्रभृतीनां चतुर्दशलोकानां वर्णनं सुस्पष्ट-रूपेण कृतं भाष्यकारैः- महाभाष्ये पतञ्जलिमुनिमहोदयैः ।

महाभाष्योपरि - "प्रदीप" टीकाकारैः- श्री कैयटमहोदयैः, 'उद्योत" टीका-कारैश्च श्रीनागेश भट्टमहोदयैः "तत्वालोक"- टीकाकारैश्च पण्डित श्री रुद्रधरझाशर्म-महोदयैश्च "सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाः" अस्य महाभाष्यभागस्य टीकावसरे न कोऽपि विचारः कृतः । अतः- अत्रत्यमहाभाष्याभिप्रायस्य सुस्पष्टीकरणं नोपलभ्यते - महाभाष्योपरिप्रचलितासु - समुपलब्धटीकासु कुत्रापि ।

सप्तद्वीपादिव्यवस्था - विषय - काठिन्यात् उक्तांशस्य - सुस्पष्टीकरणार्थं-केनापि टीकाकारेण न कोऽपि प्रयत्नो विहितः, महाभाष्यादिपारायण-परायणाः-विद्वांसोऽपि - सप्तद्वीपादि - विवेकविषये मौनाः एव - प्रतीयन्ते साम्प्रतम् । चतुर्दशलोकव्यवस्थाज्ञान - विषयेऽपि च न दरीदृश्यते तेषां विदुषां प्रवृत्तिः । अतः सूर्य - चन्द्र - भौम-शुक्रादिलोकाः क्व सन्ति, चतुर्दशलोकाश्च क्व सन्ति, कियती दूरी च वर्तते - चतुर्दश-

लोकानां ग्रहलोकानां च भूगोलतः, इति प्रतिपादयितुम् - अशक्ताः प्रतीयन्ते: प्रायः वहवो विद्वांसः साम्प्रतम्, सप्तद्वीपानां - चतुर्दश-लोकानां च प्रतिपादनार्थं मया प्रयासः कृतः पूर्वोक्तरीत्या । हे विद्वांसः! मयाकृतप्रयत्नं - निष्पक्षया धिया विलोकयन्तु भवन्तः इतिविनिवेदयेऽहम् ।

श्री पाणिनिमुनिमतेऽपि सप्तद्वीपाः-सप्तसागराश्च सन्तीति प्रतिपादनमत्र करोमि——

"द्वीपादनुसमुद्रं यञ्" ४/३/१०—सूत्रसंख्या "१६३१" सिद्धान्तकौमुद्यां शैषिक-प्रकरणे - श्री भट्टोजिदीक्षितमहोदयैः - "समुद्रस्य समीपे यो द्वीपस्तद् विषयात् - द्वीपशब्दात्-यञ् - स्यात्" इत्येतादृशः - अर्थः उक्तसूत्रस्य कृतः । "समुद्रात् - अनुपश्चात् यो द्वीपः - तस्मात् "यञ्" प्रत्ययः स्यात् इत्येतादृशोऽपि - अर्थः - उपर्युक्तसूत्रस्य अस्त्येव । यतो हि समुद्रमध्ये संस्थितस्यैव भूभागस्य "द्वीप" संज्ञा भवति । जम्बूद्वीपात् आरभ्य - सप्तद्वीपक्रमगणनाक्रमेण सप्तसमुद्रसमीपस्थाः सप्तद्वीपाः - सिद्ध्यन्ति । "द्वीपादनुसमुद्रं यञ्" इति सूत्रे जातौ - एकवचनमस्तीति विज्ञेयं विज्ञैः, सप्तद्वीपत्वात् - सप्तसागरत्वाच्च ।

स्वादूदकसागरात् - आरभ्य उत्क्रमगणनाक्रमेण तु - सप्तसमुद्रसमुदायात् पश्चात् क्रमशः सप्तद्वीपाः सिद्ध्यन्ति । जम्बूद्वीप - क्षारसागर - प्लक्षद्वीप - मधुरसागर - शाल्मलद्वीप - सुरासागर, कुशद्वीप - घृतसागर, कौञ्चद्वीप - क्षीरसागर, शाकद्वीप - तक्रसागर, पुष्करद्वीप-स्वादूदकसागर, इत्येतादृशः क्रमः-जम्बूद्वीपक्रमगणनया - अस्ति । अस्मिन् क्रमे - समुद्रस्य समीपे द्वीपाः सिद्ध्यन्ति, स्वादूदक - पुष्करद्वीपादिक्रमगणनया तु सप्तसमुद्रात्-अनुपश्चात् - सप्तद्वीपाः सिद्ध्यन्ति । "जातौ-एकवचनम्" इति सिद्धान्तात् "द्वीपादनुसमुद्रं यञ्" इत्यस्मिन् - सूत्रे द्वीप-शब्दे - समुद्रशब्दे च - एकवचनता ज्ञेया ।

वस्तुतस्तु - उपर्युक्तसूत्रे - एकवचनप्रयुक्तेन द्वीपशब्देन, समुद्रशब्देन च भूगोल-स्थितानां सप्तद्वीपानां - सप्तसमुद्राणाम् चैव - ग्रहणम् - अस्तीति विज्ञेयं विज्ञैः ।

पूर्वोक्तरीत्या श्रीपाणिनिमुनिमतेन - अपि सप्तद्वीपाः सप्तसागराश्च सिद्ध्यन्ति भूगोले ।

महाभाष्यकार "पतञ्जलि द्वारा सप्तद्वीपों और सप्तसागरों का प्रतिपादन

महाभाष्य के प्रथम अध्याय प्रथम पाद प्रथम आह्निक में पतञ्जलि ऋषि ने लिखा है——

"महान् शब्दस्य प्रयोगविषयः - सप्तद्वीपा वसुमती, त्रयो लोकाः ।"

उपर्युक्त कथन का निष्कर्ष यह है कि—सातद्वीपों और "भू र्भुवः स्वः" इन तीनों लोकों में संस्कृत शब्दों को वोला जाता है ।

इसी छठे अध्याय के अग्रिम प्रसङ्ग में दिये गये सप्तद्वीपों के चित्र में सुमेरु-पर्वत के एक पार्श्वस्थ सप्तद्वीपों के अर्धभागों का योजनात्मकमान—दो करोड़-त्रेपन लाख - पचास हजार योजन = (२५३५०००० योजन) है, जोकि छत्तीस

करोड़ सतासी लाख सत्ताइस हजार दो सौ बहत्तर किलोमीटर और आठ सौ गज (३६८७२७२७२ किलोमीटर/८०० गज) के बराबर होता है। सुमेरु पर्वत के दोनों पार्श्वस्थ सप्तद्वीपों का योजनात्मक मान पाँच करोड़ सात लाख = (५०७०००००) = तिहत्तर करोड़ चौहत्तर लाख चऊवन हजार पाँच सौ पैंतालीस किलोमीटर और पाँच सौ गज = (७३७४५४५४५ कि० मी०/५०० गज) है।

उपर्युक्त सातों द्वीपों में और सुविस्तृत तीनों लोकों में संस्कृत शब्दों का प्रयोग होने के कारण शब्द प्रयोग का विषय क्षेत्र महान्=सुविस्तृत और बहुत लम्बा चौड़ा है।

भाष्यकार के इस कथन से भी सात द्वीपों और सात सागरों से युक्त भूगोल सिद्ध होता है।

पाणिनि द्वारा सप्तद्वीपों और सप्तसागरों का प्रतिपादन

अष्टाध्यायी के चतुर्थ अध्याय, तृतीय पाद का दशवां सूत्र, जिसकी संख्या सिद्धान्तकौमुदी के शैषिक प्रकरण में १६३१ है। "द्वीपादनुसमुद्रं यञ् ४/३/१०" पाणिनि के इस सूत्र से भी सात द्वीपों और सात सागरों से युक्त भूगोल सिद्ध होता है।

पातञ्जल - योगदर्शनेऽपि- सप्तद्वीप - सप्तसागराणां विवेचनमस्तीति- अत्र लिखामि ······

"भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्" अस्य सूत्रस्य व्याख्यावसरे "वैयासिके भाष्ये" "ततो-महातल-रसातल - अतल - सुतल - वितल - तलातल- पातालाख्यानि- सप्तपातालानि, भूमिः - इयम् - अष्टमी, सप्तद्वीपा वसुमती - सप्तसमुद्रवेष्टिता - अस्ति"। इत्येतादृशं प्रतिपादनं उपलभ्यते - योगदर्शने - वैयासिके भाष्ये।

उक्तरीत्या पातञ्जलयोगदर्शनमतेऽपि सप्तसमुद्रवेष्टिता सप्तद्वीपयुक्ता भूमिः सिद्ध्यति।

योगवासिष्ठेऽपि वसिष्ठेन मुनिना सप्तसमुद्रवेष्टिता - सप्तद्वीपयुक्ता च भूमिः समुक्ता······

योगवासिष्ठे सप्तसप्ततितमे "७७" प्रमिते सर्गे - ४७ श्लोकः······

"ततो नदीप्रवाहोग्र - जलपातैकपातया।
सप्तद्वीपमहीपीठ - सममेदुरमेधया" ॥४७॥

त्रयोविंशाधिकशततमे सर्गे = १२३ सर्गे—

अब्धे द्वीपं पुन द्वीपादब्धि द्वीपं गिरिं वनम्।
लाघवाल्लङ्घयामासु श्छेदभेदविवर्जिताः ॥२॥

अष्टविंशाधिकशततमें सर्गे = १२८ सर्गे

सर्वेषामुत्तरे मेरु र्लोकालोकश्च दक्षिणे।
सप्तद्वीपनिवासिनां नान्येषामिति निश्चयः ॥६॥

उक्तषट्संख्याङ्कितस्य पद्यस्य अयं भावः—

सप्तद्वीपनिवासिनां सर्वेषां प्राणिनां मेरुः "सुमेरुपर्वतः" उत्तरे= उत्तरदिशा-

भागे - अस्ति। एवं - सप्तद्वीपनिवासिनां सर्वेषां प्राणिनां लोकालोकपर्वतश्च-दक्षिणदिशाभागस्थः अस्ति। उक्तकथनस्यायं भावः- भूगोलमण्डले - वृत्ताकारो जम्बूद्वीपः सर्वेषां वृत्ताकाराणाम् द्वीपानां मध्ये स्थितोऽस्ति। तस्य जम्बूद्वीपस्य केन्द्रे च सुमेरुपर्वततः- स्थितोऽस्ति, सप्तसागरसहितान् सप्तद्वीपान् - स्वगर्भेकृत्वा - वृत्ताकारो लोकालोकपर्वतः-वृत्ताकारभूगोलमध्ये तिस्ठति, अतः- सप्तसागरसहितानां सप्तद्वीपानां अर्धभागः- सुमेरुकेन्द्रतः-उत्तरदिशास्थभूगोलभागे विद्यते, द्वितीयार्धभागस्तु सुमेरुकेन्द्रतः-दक्षिणदिग्भागे तिष्ठति। एवमेव सुमेरुकेन्द्रात् - पूर्वपश्चिमदिशास्थयोः - भूगोलार्धयोः-व्यवस्था - ज्ञेया।

श्रीशुकदेवमुनिमतेऽपिसप्तद्वीपाः सन्ति...

श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे - एकविंशतिप्रमिते "२१" अध्याये सप्तसंख्या प्रमितात् "७" गद्यभागात् आरभ्य त्रयोदशप्रमित - "१३" गद्यभागान्तं यावत् - तावत् सप्तद्वीपेषु सूर्यभ्रमणस्य व्यवस्था श्रीशुकदेवेन मुनिना निम्नाङ्कितेषु गद्येषु - समुक्ता, श्रीशुकदेवोक्तया व्यवस्थया अपि सप्तद्वीपैः सप्तसागरैश्च युक्तोऽयं भूगोलः सिद्ध्यति।

एवं नव कोटयः - एकपञ्चाशत् - लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरगिरिपरिवर्तनस्य - उपदिशन्ति, तस्मिन् - ऐन्द्रीं पुरीं पूर्वस्मात् मेरोः देवधानीं नाम, दक्षिणतो याम्यां संयमनीं नाम, पश्चात् - वारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम, तासु - उदय - मध्याह्न - अस्तमय - निशीथानि - इति भूतानां - प्रवृत्ति - निवृत्ति-निमित्तानि मेरोः चर्तुर्दिशम् ॥७॥

तत्रत्यानां दिवसमध्यङ्गतः- एव सदा आदित्यः तपति सव्येन, अचलं दक्षिणेन करोति ॥८॥

यत्र उदेति, ह तत्र समानसूत्रनिपाते निम्लोचति, यत्र क्वचन स्यन्देन अभितपति, तस्य ह एषः-समानसूत्रनिपाते प्रस्वापयति, तत्र गतं न पश्यन्ति ये तं—समनुपश्येरन् ॥९॥

"यदा चैन्द्र्याः" पुर्याः प्रचलते पञ्चदशघटिकाभिः "याम्याम्" सपादकोटिद्वयं योजनानां सार्धद्वादशलक्षाणि - साधिकानि च = "२३७७५००० योजनानि" = "३४५८१८१८१ किलोमीटराः - ९०० गजाः प्रमितम्" उपयाति ॥१०॥

"एवं ततो वारुणीम्" "सौम्याम्"ऐन्द्रीं च पुनः, तथाऽन्ये च ग्रहाः सोमादयः-नक्षत्रैः सह- ज्योतिश्चक्रे समभ्युद्यन्ति, सह वा निम्लोचन्ति ॥११॥

"एवं मुहूर्तेन चतुस्त्रिंशल्लक्ष - योजनानि - अष्टशताधिकानि = ३४००८०० योजनानि" सौरो रथस्त्रयीमयोऽसौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु" ॥१२॥

"यस्यैकं चक्रं द्वादशारं षण्नेमि त्रिणाभि संवत्सरात्मकं समामनन्ति, तस्याक्षो मेरो मूर्धनि कृतो मानसोत्तरे कृतेतरभागो यत्र प्रोतं रविरथचक्रं "तैलयन्त्रचक्रवत्-भ्रमन् मानसोत्तरगिरौ परिभ्रमति" ॥१३॥

"द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तत्राहता स्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्ठिश्च खीला अविचाचला ये"
[अथर्ववेद १०।८।४]॥

"युगपर्याप्तयोः कृतम्" इति-नानार्थवर्गे तृतीये काण्डे-अमरकोषोक्तेः, तथा च—"कृतं युगेऽलमर्थे स्याद् विहिते हिंसिते त्रिषु" इति मेदिनी कोषोक्तेश्च-उपर्युक्ते त्रयोदश "१३" प्रमिते गद्ये प्रयुक्तः कृतशब्दः "युग" पर्यायवाचकोऽस्ति । युगशब्दस्य व्युत्पत्तिस्तु-"यानाद्यङ्गे युगः पुंसि युगं युग्मे कृतादिषु" इत्यस्य-व्याख्यावसरे-अमरकोषटीकाकारैः "श्रीभानुजिदीक्षितमहोदयैः" युजिर् योगे-इत्यस्मात् धातोः-योजनं-युज्यते वा-इत्यस्मिन् विग्रहे "भावे ३।३।१८।४६७२।" इति सूत्रेण "घञ्" प्रत्यये कृते संज्ञापूर्वकत्वात् गुणः - इति गुणस्य निषेधे च कृते-कृता, अतः - कृतशब्दोऽत्र योगबोधकोऽस्ति । अतः मेरोः- मानसोत्तरपर्वतस्य च शिरोभागे - रविरथचक्रस्य-अक्षः = धुरः युक्तोऽस्ति = प्रोतोऽस्ति - इतिभावः ।

उपर्युक्तस्यत्रयोदश- प्रमितस्य गद्यभागस्य व्याख्यावसरे श्रीधरस्वामिमहोदयाः-लिखन्ति--"द्वादशमासाः-अराः - यस्य, षड्-ऋतवः - नेमयः - यस्य, त्रीणि चातुर्मास्यानि नाभयः - यस्य, कृतः - इतरभागः - यस्य, मानसोत्तरगिरौ लक्षार्धात् - उपरि-वायुवद्धभूमौ - इति द्रष्टव्यम् । चक्रं वा तावत् - उच्छ्रितं - इति मन्तव्यम्, अन्यथा - अयुत = "१००००" मात्रोच्छ्रायत्वात्-मानसोत्तरस्य, मेरोः - चतुरशीति-"८४००० योजन" उच्छ्रायत्वात् - अक्षस्य साम्यानुपपत्तेः ।

श्रीमद्भागवते पंचमस्कन्धे - एकविंशे "२१" अध्याये सप्तमप्रमिते "७" अष्टमप्रमिते च गद्यभागे सूर्यरथभ्रमणस्य निम्नाङ्किता व्यवस्था कथिता श्रीशुकदेवेन मुनिना......

एवं नवकोटयः - एक पंचाशल्लक्षाणि योजनानाम् = ९५१००००० योजनानि = "१३८३२७२७२७ किलोमीटराः - ३०० गजाः" मानसोत्तरगिरिपरिवर्तनस्य - उपदिशन्ति -

१. तस्मिन् - ऐन्द्रीं पुरीं पूर्वस्मात् - मेरोः - देवधानीं नाम ।

२. दक्षिणतो याम्यां संयमनीं नाम ।

३. पश्चाद् - वारूणीं निम्लोचनीं नाम ।

४. उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम ।

तासु - उदय - मध्याह्न - अस्तमय-निशीथानि - इति भूतानां प्रवृत्ति-निवृत्ति-निमित्तानि समयविशेषेण मेरोः - चतुर्दिशम् ।।७।।

तत्रत्यानां दिवसमध्यं गतः - एव - सदा - आदित्यः - तपति - सव्येन अचलं दक्षिणेन करोति ।।८।-

उपर्युक्तयोः सप्तमाष्टमगद्यभागयोः - व्याख्यावसरे श्रीधरस्वामिनः-लिखन्ति—तस्मिन् मानसोत्तरे मेरोः - पूर्वतः - ऐन्द्रीं पुरीं - उपदिशन्ति - इति अनुषङ्गः, तासु पुरीषु - उदयादीनि - उपदिशन्ति, चतुर्दिशम् - इति - उक्ते - ये मेरोः - दक्षिणे देशे तेषाम् - ऐन्द्रीम् - आरभ्यपूर्वादयः, - ये पश्चिमे तेषां याम्याम् - आरभ्य पूर्वादयः, ये उत्तरे तेषां वारूणीम् आरभ्य पूर्वादयः, ये पूर्वे तेषां सौम्याम् - आरभ्य पूर्वादयः - भवन्तीतिशेषः । तत्रत्यानां - सुमेरूपर्वतस्थानां नक्षत्राभिमुखतया स्वगत्या मेरूं वामतः

कुर्वन्नपि - प्रदक्षिणावर्त - प्रवहाख्य-वायुभ्राम्यमाण-ज्योतिश्चक्रवशात् प्रत्यहं-दक्षिणतः करोति।

अतः - चक्रगतिवशात् - अतिदूरतो भूसंलग्नस्य इव दर्शनम्-उदयः, आकाशम्-आरूढ़स्य इव-दर्शनं मध्याह्नः, भूमिं प्रविष्टस्य - इव दर्शनम् - अस्तमयः, ततः - अतीवदूरगमने निशीथः, समुद्रतीरस्थदृष्टया च......

"अद्स्यो वा एष प्रातरूदेत्येषः सायं प्रविशति" इति श्रुतिव्यवहारः न वस्तुतः, वास्तविकः - इति भावः। तदुक्तं वैष्णवे="विष्णुपुराणे द्वितीये - अंशेऽष्टमेऽध्याये"।

"उदयास्तमने चैव सर्वकालं तु सम्मुखे।
विदिशासु त्वशेषासु तथा ब्रह्मन्! दिशासु च॥१४॥
ये यंत्र दृश्यते भास्वान् स तेषामुदथः स्मृतः।
तिरोभावं च यत्रेति तत्रैवास्तमनं रवेः॥१५॥
नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा स्मृतः।
उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं रवेः॥१६॥
शक्रादीनां पुरे तिष्ठन् स्पृशत्येष पुरत्रयम्।
विकोणौ द्वौ विकोणस्थस्त्रीन् कोणान् द्वे पुरे तथा॥१७॥
तस्माद्दिश्युत्तरस्यां वै दिवा रात्रिः सदैव हि।
सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरुत्तरतो यतः॥२२॥

उपर्युक्तया श्रीधरस्वामिव्याख्ययाऽपि सप्तद्वीपाः सप्तसागराश्च भूगोले-सिद्ध्यन्ति।

सुमेरुपर्वतः सर्वेषां द्वीपवर्षाणामुत्तरभागे कथं भवतीति-प्रतिपादयामि

सूर्यसिद्धान्ते भूगोलाध्याये सूर्यांशपुरुषः कथयति—

"समन्तान्मेरुमध्यात्तु तुल्यभागेषु तोयधेः।
द्वीपेषु दिक्षु पूर्वादिनगर्यो देवनिर्मिताः॥३७॥
भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता।
भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्रासादतोरणा॥३८॥
याम्यायां भारते वर्षे लङ्का तद्वन्महापुरी।
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता॥३९॥
उदक्सिद्धपुरी नाम कुरुवर्षे प्रकीर्तिता।
तस्यां सिद्धा महात्मानो निवसन्ति गतव्यथाः॥४०॥
भूवृत्तपादविवरास्ता श्चान्योऽन्यं प्रतिष्ठिताः।
ताभ्यश्चोतरगो मेरूस्तावानेव सुराश्रयः॥४१॥

उपर्युक्तानां समन्तान्मेरुमध्यात्तु इत्यादि पद्यानामयं भावः......

जम्बूद्वीपस्य पूर्व - दक्षिण - पश्चिम - उत्तर भागगासु दिशासु क्रमशः - यम - कोटि - लङ्का - रोमका - सिद्धपुरी- नाम्ना प्रसिद्धाः देवनिर्मिताः चतस्रः नगर्यः सन्ति।

सुमेरुपर्वतात् पूर्वभागे जम्बूद्वीपे "भद्राश्ववर्षम्" अस्ति, तत्रैव "यामकोटि" नगरी तिष्ठति, सुमेरुतः - दक्षिणे भागे जम्बूद्वीपे "भारतवर्षम्" अस्ति, तत्रैव भारतवर्षे "लङ्का" नगरी - अस्ति । सुमेरुतः पश्चिमभागे जम्बूद्वीपे "केतुमालवर्षम्" अस्ति, तत्रैव केतुमालवर्षे "रोमका" नगरी अस्ति । सुमेरुतः- उत्तरस्यां दिशि "कुरुवर्षम्" अस्ति, तत्रैव कुरुवर्षे "सिद्धपुरी" नगरी अस्ति ।

सूर्योदयवशात् - दिशाविचारमत्र करोमि

एताश्चतस्रः- नगर्यः - जम्बूद्वीपस्य भूमौ=भूमिपरीधौ परस्परं जम्बूद्वीपभूमिपरिधि-चतुर्थभागतुल्यान्तरे स्थिताः सन्ति । "व्यासात् त्रिगुणः परिधिः" इति सिद्धान्तानुसारेण - एकलक्षयोजन ="१००००० योजन" प्रमितस्य जम्बूद्वीपस्य "१००००० ×३=३०००००" त्रिलक्षयोजप्रमितः परिधिः - भवति ।

तस्य त्रिलक्षयोजनप्रमितस्य परिधेः - चतुर्थांशस्तु ३०००००/१÷४/१= ३०००००/१×१/४=७५०००=पंचोत्तरसप्ततिसहस्रयोजनतुल्यो भवति । अतः ता÷चतस्रः नगर्यः- जम्बूद्वीपस्य परिधौ पञ्चोत्तरसप्ततिसहस्र="७५०००" योजन-अन्तरिताः सन्ति ।

१. "यमकोटि" नगर्यां यदा सूर्यः- उदेति, तदा सुमेरुपर्वततः - दक्षिणदिशास्थ-भारतवर्ष-निवासिनां "यमकोटी" नगरी पूर्वदिशास्था भवति । "लङ्का" नगरी दक्षिण दिशास्था भवति । "रोमका" नगरी पश्चिम-दिशास्था भवति । 'सिद्धपुरी" नगरी च उत्तरदिशास्था भवति ।

सुमेरुपर्वतस्तु वामहस्तगतत्वात् "बायें हाथ की ओर होने से,' उत्तरदिशास्थो भवति । उक्तपरिस्थितौ=यमकोट्यां सूर्योदयः, लङ्कानगर्यां मध्याह्नः, रोमकानगर्यां सायाह्नः, सिद्धपुरीनगर्यां च मध्यरात्रिः भवति ।

२. यमकोट्यां समुदितः सूर्यः प्रवहवायुवेगेन सह मानसोत्तरपर्वते परिभ्रमन् सन् मानसोत्तरपर्वततः लङ्कानगरीगत- याम्योत्तर - रेखानुसारेण लङ्कयानगर्यां यदा समागच्छति, तदा सुमेरुतो दक्षिणभागनिवासिनां मध्याह्नो भवति ।

सुमेरुतः पश्चिमभागे केतुमालवर्षे ये निवसन्ति, ते तु लङ्कायां समुदीयमानं सूर्यं स्वरात्रिव्यतीतानन्तरमेव पश्यन्ति, अतस्तेषां कृते लङ्कानगरीस्थः सूर्यः प्रातः कालिको भवति, लङ्कानगरी च पूर्वदिशास्था भवति, रोमका नगरी दक्षिणदिशास्था भवति, सिद्धपुरी नगरी पश्चिम दिशास्था भवति, यमकोटि नगरी च- उत्तरदिशास्था भवति ।

उक्तपरिस्थितौ सत्यां लङ्कानगर्यां सूर्योदयः, रोमका नगर्यां मध्याह्नः, सिद्धपुरीनगर्यां सायाह्नः, यमकोटिनगर्यां मध्यरात्रिः भवति । पुनः द्वितीयदिने लङ्कानगर्यां सूर्योदयो भवति । लङ्कानगर्यां सूर्योदयत्वात् सूर्याभिमुखस्थितानां मानवादिप्राणिनां वामहस्तगता "बायें हाथ की ओर" उत्तरदिशा, तत्रैव च सुमेरुस्तिष्ठति । सूर्याभिमुखस्थिते सति वामहस्तगा "बायें हाथ की ओर" सर्वदा- उत्तरदिशा भवति, अतः सुमेरुपर्वतोऽत्रापि - उत्तरदिशास्थः- एव सिद्ध्यतीति सारांशः ।

३. रोमकानगर्यां यदा सूर्यः समुदेति, तदा सुमेरुपर्वतात् उत्तरदिशास्थ-कुरुवर्ष-निवासिनां कृते "रोमका" नगर्यां प्रातः कालिकः सूर्योदयो भवति, अतस्तेषां कृते रोमकानगरी - एव - पूर्वदिशास्था भवति, यमकोटिनगरी पश्चिमदिशास्था भवति, सिद्धपुरी नगरी दक्षिणदिशास्था भवति, लङ्का नगरी तु - उत्तरदिशास्था भवति, तासु नगरीषु क्रमशः - रोमकानगर्यां सूर्योदयः, सिद्धपुरीनगर्यां मध्याह्न - यमकोटिनगर्यां सूर्यास्तः लङ्कानगर्यां च मध्यरात्रिः-भवति । द्वितीयदिने रोमकानगर्यां च पुनः सूर्योदयो भवति । सूर्याभिमुखस्थिते सति वामहस्तगता-उत्तरदिशा भवति, रोमकानगर्यां सूर्योदय-त्वात् सिद्धपुरीनगरीप्रदेशस्थानां-सूर्याभिमुखस्थितानां प्राणिनां वानहस्तगः उत्तरदिशा-स्थः - एव सुमेरुपर्वतः - सिद्ध्यति - अत्रापि ।

४. सिद्धपुरीनगर्यां यदा सूर्यः-उदेति, तदा सुमेरुपर्वतात् - पूर्वदिशास्थभागे भद्रा-श्ववर्षे ये निवसन्ति तेषां कृते सिद्धपुर्यां प्रातः कालिकः सूर्यः उदेति । अतः सा सिद्ध-पुरी नगरी - तेषां भद्राश्ववर्षनिवासिनां कृते पूर्वदिशास्था भवति । यमकोटि नगरी तु दक्षिणदिशास्था भवति । लङ्कानगरी - तु पश्चिमदिशास्था भवति, रोमकानगरी च उत्तरदिशास्था भवति । तासु नगरीषु क्रमशः-सिद्धपुरीनगर्यां सूर्योदयः, यमकोटिनगर्यां मध्याह्नः, लङ्कानगर्यां सायाह्नः, रोमकानगर्यां च मध्यरात्रिः - भवति । द्वितीयदिने सिद्धपुरीनगर्यां च पुनः सूर्योदयः भवति ।

सिद्धपुरीनगर्यां सूर्योदयत्वात् यमकोटीनगरीप्रदेशस्थानां सूर्याभिमुखस्थितानां प्राणिनां वामहस्तगतः सुमेरुः तिष्ठति, सूर्याभिमुखस्थिते सति वामहस्तगता - उत्तर-दिशा सिद्ध्यति, अतोऽत्रापि सुमेरुपर्वतः- उत्तरदिशास्थः एव सिद्ध्यति ।

उपर्युक्तप्रकारेण - यमकोटि-लङ्का-रोमका - सिद्धपुरी - चतसृभ्यो नगरीभ्यः-सुमेरुपर्वतः- उत्तरदिशास्थः एव सिद्ध्यति ।

"ताभ्यश्चोत्तरगो मेरुस्तावानेव सुराश्रयः ॥४१॥

इति सूर्यसिद्धान्तस्थस्य वचनस्य तथा च "सर्वेषामुत्तरे मेरु र्लोकालोकश्च दक्षिणे' इति योगवासिष्ठ - विष्णुपुराणस्थस्य वाक्यस्य च चरितार्थता सिद्ध्यति ।

उपर्युक्तरीत्यैव— "सर्वेषामुत्तरे मेरु र्लोकालोकश्च दक्षिणे ।

सप्तद्वीपनिवासिनां नान्येषामिति निश्चयः" ॥

योगवासिष्ठोक्तस्य अस्य वचनस्य सङ्गतिः सङ्गच्छते ।

उक्तप्रकारेण योगवासिष्ठमतानुसारेण - अपि - सप्तसारैः सप्तद्वीपैश्च समन्वितः भूगोलः सिद्ध्यति ।

पातञ्जल योगदर्शन के द्वारा सात द्वीपों और सात सागरों का प्रतिपादन

सुन्दरी टीका—पतञ्जलि ऋषिप्रणीत—"'पातञ्जल'योगदर्शन" में "भुवन-ज्ञानं सूर्ये संयमात्" इस सूत्र पर लिखे गये प्राचीनतम "वैयासिक भाष्य" में भूमिः इयम् - अष्टमी, सप्तद्वीपा वसुमती - सप्तसमुद्र - वेष्टिता-अस्ति" इस भाष्य से सात द्वीपों और सात समुद्रों से युक्त भूगोलपिण्ड सिद्ध होता है ।

योगवासिष्ठ के द्वारा सात द्वीपों और सात सागरों का प्रतिपादन

"योगवासिष्ठ नाम से प्रसिद्ध - ऋषिप्रणीत ग्रन्थ में ७७, १२३, १२८ सर्गों में क्रमशः—४७, २, ६ संख्याङ्कित श्लोकों में सात द्वीपों और सात सागरों से युक्त भूगोलपिण्ड को वताया गया है, तदनुसार योवाशिष्ठ से भी सात द्वीपों और सात समुद्रों से युक्त भूगोल सिद्ध होता है।

"सर्वेषामुत्तरे मेरु र्लोकालोकश्च दक्षिणे।
सप्तद्वीपनिवासिनां नान्येषामिति निश्चयः ॥६॥"

योगवासिष्ठ के एक सौ अट्ठाईसवें सर्ग के उपर्युक्त छठे श्लोक का सारांश यह है कि—जम्बूद्वीप आदि सात द्वीपों में निवास करने वाले प्राणियों के उत्तरीभाग में = (ऊत्तरदिशा में) "सुमेरु पर्वत" और दक्षिणी भाग में = (दक्षिण दिशा में) "लोकालोक पर्वत" सदा रहता है। सप्तद्वीपों के अतिरिक्त अन्य भूभागों में निवास करने वाले प्राणियों के उत्तरी भाग = (उत्तर दिशा में) और दक्षिणी भाग = (दक्षिण दिशा) में क्रमशः सुमेरु पर्वत के रहने वाली व्यवस्था चरितार्थ नहीं होती हैं ॥६॥

इसका विस्तृत विवेचन इसीं छठे अध्याय के अग्रिम प्रसङ्ग में किया गया है।

श्रीमद्भागवत में - शुकदेव ऋषि - द्वारा "सप्तद्वीपों और सप्तसागरों" का विवेचन

सुन्दरी टीका—(१)—ज्ञान और विज्ञान के मर्मज्ञ-व्यास-ऋषि प्रणीत श्रीमद्-भागवत ग्रन्थ के पञ्चम स्कन्ध में इक्कीसवें अध्याय में - शुकदेव ऋषि ने सातवें गद्य-भाग से तेरहवें गद्यभाग तक मानसोत्तर पर्वत पर सूर्य परिभ्रमण का वर्णन करते हुए "सप्तद्वीपों और सप्तसागरों" का विवेचन निम्नाङ्कित प्रकार से किया है—

जम्बूद्वीप से सातवें "पुष्कर द्वीप" के मध्य भाग में "वृत्ताकार - मानसोत्तर पर्वत" विद्यमान है, जम्बूद्वीप के मध्यभाग="केन्द्र" में स्थित "सुमेरु पर्वत" के केन्द्र-गामिनी - पूर्वापर और दक्षिणोत्तर - दो व्यास रेखाओं से वृत्ताकार सप्तद्वीपों और सप्तसागरों की परिधियों के समानान्तर दूरी पर = (तुल्य दूरी पर) चार विभाग सृष्टिकर्ता ईश्वर ने किये हैं।

मानसोत्तर दर्वत की परिधि का योजनाप्मक मान नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन = (९५१००००० योजन)=एक अरब अड़तीस करोड़ वत्तीस लाख वहत्तर हजार सात सौ सत्ताईस किलोमीटर और तीन सौ गज = (१३८३२७२७२७ कि०-मी०/३०० गज) है, मानसोत्तर पर्वत पर एक चक्कर लगाने में = (एक वार घूमने-में) सूर्य को नौ करोड़ इक्यावन लाख योजल की यात्रा करनी पड़ती है।

(२)—-जम्बूद्वीप के केन्द्रगामिनी पूर्वापर रेखा पर पूर्वदिशा में जम्बूद्वीप की परिधि के अन्त में देवनिर्मित "यमकोटि" नाम की नगरी है, यमकोथि नगरी की सीध में मानसोत्तर पर्वत पर ईश्वरीय विधान के अनुसार देवताओं द्वारा वनाई गई =(देवनिर्मित) ऐन्द्री = "देपधानी" नाम की नगरी स्थित है।

(३)—सुमेरु - केन्द्रगामिनी - पूर्वापर रेखा पर पश्चिम दिशा में जम्बूद्वीप की परिधि के अन्त में देवनिर्मित "रोमका" नगरी स्थित है, रोमका नगरी की सीध में पश्चिम दिशा में मानसोत्तर पर्वत पर "निम्लोचनी" नगरी स्थित है।

(४)—जम्बूद्वीप के केन्द्रगामिनी दक्षिणोत्तर रेखा पर दक्षिण दिशा में जम्बूद्वीप की परिधि के अन्त में देवनिर्मित "लङ्का" नगरी स्थित है, लङ्का नगरी की सीध में दक्षिणदिशा में मानसोत्तर पर्वत पर "संयमनी" नगरी स्थित है, इसी संयमनी नगरी को "यमराज की राजधानी" और "यमलोक" भी कहते हैं।

(५)—जम्बूद्वीप के केन्द्र गामिनी दक्षिणोत्तर रेखा पर उत्तर दिशा में जम्बूद्वीप की परिधि के अन्त में देवनिर्मित "सिद्धपुरी" नाम की नगरी स्थित हैं, सिद्धपुरी नगरी की सीध में उत्तर दिशा में मानसोत्तर पर्वत पर "विभावरी" नाम की नगरी स्थित है।

(६)—जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित "सुमेरु पर्वत" के केन्द्र से (१) देवधानी, (२) संयमनी, (३) निम्लोचनी (४) विभावरी, देवनिर्मित इन चारों नगरियों की दूरी एक करोड़ सत्तावन लाख पचास हजार योजन = (१५७५००० योजन) =वाईस करोड़-नव्मैलाख-नव्मैहजार-नौसौ नौ किलोमीटर और एक सौ गज=२२९०९०९०९ कि० मी० | १००जग है।

(७) भारतवर्ष की उत्तारी सीमा पर स्थित हिमालय पर्वत के केन्द्र से संयमनी नगरी =(यमलोक) की दूरी— एककरोड़ सत्तावनलाख दशहजार योजन= (१५७१०००० योजन) = बाईसकरोड़ - पिचासीलाख—नौहजार—नव्मै किलोमीटर और एकहजार गज=(२२८५०९०९० कि० मी० | १००० गज) है।

(८) पुष्कर द्वीप के मध्य भाग में स्थित मानसोत्तर पर्वत पर यमलोक है, इसी पुष्कर द्वीप में यमलोक से कुछ पहले "नरकों" की और "वैतरणी नदी" की स्थिति है।

(९) बुरे कर्म करने वाले मनुष्यों को मरने के वाद "यमलोक" में यमराज के दूत ले जाते हैं, यमलोक में पहुँचने से पहले ही वैतरणी नदी को भी पार करना पड़ता है।

(१०) इसी छठे अध्याय के अग्रिम पृष्ठों पर लिखे गये "सप्तद्वीपों के चित्र" को देखने से उपर्युक्त विषय को अच्छी तरह से समझा जा सकता है। विस्तृत विवेचन को इसी अध्याय के अग्रिम पृष्ठों पर लिखा गया है।

(११) ऐन्द्री और देवधानी ये दोनों शब्द आपस में एक दूसरे के पर्यायवाचक हैं, ये दोनों शब्द पूर्व दिशा के वोधक हैं।

(१२)—देवधानी नगरी से संयमनी नगरी की दूरी—दो करोड़ सेंतीस-लाख पिचत्तर हजार योजन=(२३७७५००० योजन) = चौंतीस करोड़ अट्ठावन लाख-अठारह हजार- एक सौ इक्यासौ किलोमीटर और नौसौ गज=(३४५८१८१८१ कि० मी०/९०० गज) है।

इतनी ही दूरी पर—संयमनी से निम्लोचनी, और निम्लोचनी से विभावरी

और विभावरी से देवधानी नगरी स्थित है ।

अपर्युक्त चारों नगरियों की परस्पर दूरी को जोड़ने पर—नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन=(९५१०००००)=एक अरव - अड़तीस करोड़ - बत्तीस लाख-बहत्तर हजार - सात सौ सत्ताईस किलोमीटर और तीन सौ गज=(१३८३२७२७२७ कि० मी०/३००गज) होते हैं ।

(१३) देवधानी में सूर्योदय होने पर - संयमनी में मध्याह्न, निम्लोचनी में सूर्यास्त, विभावरी में मध्यरात्रि होती है ।

(१४) देवधानी नगरी में सूर्योदय होने पर देवधानी की सीध में जम्बूद्वीप की परिधि पर स्थित यमकोटी नगरी में सूर्योदय, लङ्का में मध्याह्न, रोमका में सूर्यास्त, सिद्धपुरी में मध्य रात्रि होती है ।

(१५) "व्यासात् त्रिगुणः परिधिः" व्यास के मान से परिधि का मान तीन गुना होता है, प्रत्यक्ष सिद्ध इस गणित सिद्धान्त के अनुसार - एक लाख योजन वाले जम्बूद्वीप की परिधि का मान तीन लाख योजन=(३००००००)=तेंतालीस लाख-त्रेसठ हजार-छः सौ-छत्तीस किलोमीटर और चार सौ गज=(४३६३६३६ कि० मी०, ४०० गज) है ।

(१६) यमकोटी नगरी से लङ्का नगरी की दूरी - पिचत्तर हजार योजन=(७५००० योजन)=ग्यारह लाख - नब्भे हजार - नौ सौ - नौ किलोमीटर और एक सौ गज=(११९०९०९ कि० मी०/१०० गज) है । इतनी ही दूरी-लङ्का से रोमका नगरी की, रोमका से सिद्धपुरी नगरी की, सिद्धपुरी से यमकोटी नगरी की है ।

(१७) मानसोत्तर पर्वत को ही "क्रान्तिवृत्त" का पर्यायवाचक समझना चाहिये ।

ईश्वरीय विधान के अनुसार इसी मानसोत्तर पर्वत पर पारमार्थिक - खगोल में परिभ्रमणशील सूर्य के विम्ब का परिभ्रमण हुआ करता है । सृष्टिकर्ता विधाता ने वृत्ताकार इस पर्वत पर तीन सौ साठ=(३६०) अंशों को और द्वादश=(१२) राशियों को अङ्कित किया है । तीन सौ साठ अंशों और बारह राशियों की दूरी - इस पर्वत पर समानन्तर दूरी के क्रम से हैं ।

"द्वादश प्रधयश्‍ चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तत्राहता स्त्रीणिशतानि शङ्कवः षष्ठिश्‍ च खीला अविचाचला ये ।।"

(अथर्ववेदे–१०।८।४)

सुन्दरी टीका— अथर्ववेद के उपर्युक्त मन्त्र का निष्कर्ष यह है कि—समान द्वादश=(१२) भागों और समान तीन सौ साठ=(३६०) भागों=(अंशों) में वृत्ताकार मानसोत्तर पर्वत विभक्त है. सृष्टि के आरम्भ से सृष्टि के अन्त तक इस में किसी भी प्रकार का परिवर्तन=(रद्दोबदल) नहीं होता है ।

(१८) उपर्युक्त तीन सौ साठ=(३६०)अंशों पर तथा मेष, वृष, मिथुन, कर्क सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनुः, मकर, कुम्भ, मीन, इन बारह राशियों पर पूर्वाभिमुखी अपनी सीधी गति से=(पूर्व, उत्तर, पश्चिम, दक्षिण, के क्रम से) सूर्य एक वर्ष

में पूराचक्र लगाया करता है। किन्तु प्रवहवायु के वेग द्वारा विलोम गति से=(पूर्व-दक्षिण - पश्चिम उत्तर - प्रदक्षिणा क्रमयुक्त वामगति से) घुमाया गया- ग्रह - राशि - नक्षत्रादि से युवत - भपञ्जरचक्र - चौवीसघण्टों में=(२४ घण्टों में) - मानसोत्तरादि पर्वतों की परिधियों का तथा जम्बूद्वीपादि द्वीपों की परिधियों का भ्रमणकर लेता है। अतएव - मृत्युलोक में प्रचलित चौवीस घण्टों=(२४ घण्टों) के दिन रात में प्रकाशमय सूर्य का विम्व - मानसोत्तर- और सुमेरु आदि पर्वतों की परिधियों की तथा जम्बू द्वीपादिद्वीपों की परिधियों की परिक्रमा को पूरा कर लेता है।

(१९) जिस प्रकार कुलालचक्र पर=(कुम्हार के चाक पर) मन्दगति से पूर्वाभिमुख - गमनशील - चींटी - कुम्हार द्वारा पश्चिमाभिमुख विलोमगति से घुमाये गये तीव्रगति चाक पर चाक के साथ पश्चिम दिशा की ओर घूमती हुई =(चलती हुई) दिखाई देती है, ठीक इसी प्रकार से पूर्वाभिमुख - गमनशील - तेजोमयसूर्यविम्ब- भी तीव्रगति - प्रवहवायुवेग द्वारा पश्चिमाभिमुख घुमायें गये - भपञ्जरचक्र - के साथ पश्चिम की ओर घूमता हुआ=(चलता हुआ) दिखाई देता है।

सप्तद्वीपों से उत्तर में "सुमेरुपर्वत" और दक्षिण में "लोकालोकपर्वत" को समझने का प्रकार

(१)इस छठे अध्याय में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि—जम्बूद्वीप की परिधि के अन्त में - पूर्व - दक्षिण - पश्चिम - उत्तर - इन चारों दिशाओं में - क्रमशः— यमकोटि - लङ्का - रोमका - सिद्धपुरी, नाम से प्रसिद्ध चार नगरी, सृष्टिकर्ता ईश्वर के विधानानुसार — सृष्टि के आरम्भ से अन्त तक स्थित रहती हैं।

इसी प्रकार — जम्बूद्वीप से सातवें पुष्करद्वीप के मध्य में स्थित "मानसोत्तर पर्वत" की परिधि पर - पूर्व-दक्षिण - पश्चिम- उत्तर, इन चारों दिशाओं में क्रमशः— देवधानी- संयमनी- निम्लोचनी- विभावरी, नाम से प्रसिद्ध ये चार नगरी भी सृष्टि के आदि से अन्त तक विद्यमान रहती हैं। इन आठों नगरियों और सुमेरुपर्वत, मानसोत्तर पर्वत, लोकालोकपर्वत, सप्तद्वीप और सप्तद्वीपों के सप्तसमुद्र, ये सव सृष्टि के आरम्भ में सृष्टिकर्ता ईश्वर की इच्छा से वनते हैं, और सृष्टिसंहारकर्ता उसी ईश्वर की इच्छा से इन सब का प्रलय या विनाश भी सृष्टि के अन्त में होता है। ईश्वर के बिना अन्य कोई भी शक्ति इन सब को न वना सकती है और न नष्ट ही कर सकती है।

(२) सप्तद्वीपों और सप्तसागरों के अन्तर्गत स्थित भूमि को ईश्वर निर्मित उपर्युक्त नगरियों ने वरावर वरावर चार भागों में — पूर्व - दक्षिण - पश्चिम-उत्तर- इन चारों दिशाओं में क्रमशः विभक्त किया हुआ है।

(३) इसी अध्याय के अग्रिम भाग में स्थित सप्तद्वीपों के चित्र का अवलोकन करने पर स्पष्ट रूप से देखेंगे कि-जम्बूद्वीप की पूर्व दिशा में "भद्राश्ववर्ष और यम कोटि" स्थित है। दक्षिणदिशा में "भारतवर्ष और लङ्का" स्थित है। पश्चिमदिशा में "केतुमालवर्ष और रोमका" स्थित है। उत्तर दिशा में "कुरुवर्ष और सिद्धपुरी" स्थित है।

(४) सुमेरुपर्वत से पूर्वदिशा में — भद्राश्ववर्ष पर - जम्बूद्वीप की परिधि का

जितना भाग आता है, उतने ही भाग की परिधि के ठीक मध्य में=(ठीक बीच में)यमकोटि पर जब - सूर्य भ्रमण करता है, अथवा यह समझिये कि यमकोटि पर जब सूर्योदय होता है, तब वह सूर्य - भद्राश्ववर्ष में निवास करने वालों की चांद के ऊपर=(सिर के ऊपर) रहता है। सिर के ऊपर जब सूर्य दिखाई देता है, तब प्रत्येक समझदार व्यक्ति अपने दिन का मध्याह्न काल समझ लेता है। इसीलिये यमकोटि पर सूर्य के आने पर भद्राश्ववर्ष निवासियों का मध्याह्न काल माना जाता है।

(५)—सुमेरु पर्वत से दक्षिण में "हरिवर्ष, किम्पुरुषवर्ष और भारतवर्ष पर जम्बूद्वीप की परिधि का जितना भाग आता है, उतने ही भाग के ठीक वीच में "लङ्का" नगरी की स्थिति है, लङ्का पर जब सूर्य भ्रमण करता है, तब वह सूर्य हरिवर्ष, किम्पुरुषवर्ष और भारतवर्ष निवासियों के ऊर्ध्वभाग = शिरोभाग (सिर के ऊपर) भ्रमण करता हुआ दिखाई देता है, तदनुसार लङ्का पर सूर्य का भ्रमण या सूर्योदय होने पर हरिवर्ष किम्पुरुषवर्ष, और भारतवर्ष में निवास करने वालों का दिन का मध्याह्न माना जाता है।

(६)—सुमेरु पर्वत से पश्चिम में केतुमालवर्ष पर जम्बूद्वीप की परिधि का जितना भाग आता है, उतने ही भाग के ठीक वीच में = (मध्य में) रोमका नगरी स्थित है। रोमका पर जब सूर्यभ्रमण करता है, तब वह सूर्य केतुमालवर्ष के निवासियों के सिर पर (सिर के ऊपर) भ्रमण करता हुआ दिखाई देता है, तदनुसार—रोमका नगरी पर सूर्य का भ्रमण अथवा सूर्योदय होने पर केतुमालवर्ष में निवास करने वाले प्राणियों के दिन का मध्याह्न काल माना जाता है।

(७)—सुमेरु पर्वत से उत्तर में- 'रम्यकवर्ष-हिरण्यकवर्ष और कुरुवर्ष" पर जम्बूद्वीप की परिधि का जितना भाग आता है, उतने ही भाग के ठीक बीच में (ठीक मध्य में) "सिद्धपुरी नगरी,' स्थित है। सिद्धपुरी पर जब सूर्योदय होता है, अथवा यह समझिये कि सिद्धपुरी पर जब सूर्य भ्रमण करता है, तब वह सूर्य रम्यकवर्ष, हिरण्यकवर्ष और कुरुवर्ष निवासियों के सिर के ऊपर भ्रमण करता हुआ दिखाई देता है। तदनुसार—सिद्धपुरी नगरी पर सूर्योदय होने पर—रम्यकवर्ष - हिरण्यकवर्ष और कुरुवर्ष में निवास करने वाले प्राणियों के दिन का मध्याह्नकाल माना जाता है।

(८)—जम्बूद्वीप की परिधि पर यमकोटि से लङ्का पर पहुँचने में सूर्य को पन्द्रह घटी = छः घण्टा (६ घण्टा) का समय लगता हैं। इसी प्रकार लङ्का से रोमका पर पहुंचने में सूर्य को पन्द्रह घटी = छः घण्टा लगते हैं, इसी प्रकार—रोमका से सिद्धपुरी पर और सिद्धपुरी से यमकोटि पर पहुंचने में सूर्य को पृथक्-पृथक् पन्द्रह - पन्द्रह घटी = (छः छः घण्टा) लगते हैं। जम्बूद्वीप की सम्पूर्ण परिधि पर चक्र लगाने में सूर्य को साठ घटी=चौबीस घण्टे लगते हैं। जम्बूद्वीप की परिधि पर "यमकोटि - लङ्का - रोमका - सिद्धपुरी", ये चारों नगरी परस्पर में एक दूसरे से पन्द्रह घटी (सूर्य गति के अनुसार) की दूरी पर स्थित हैं।

(९)—जिधर सूर्योदय होता हुआ दिखाई देता है, उधर को मुंह करके खड़े होने पर मुंह के सामने पूर्व, पीठ के पीछे पश्चिम, सीधे हाथ की ओर दक्षिण, और बायें हाथ की ओर उत्तर रहता है, इस सिद्धान्त को सभी ने निर्विवाद रूप से स्वीकार

किया है।

(१०)—उपर्युक्त चारों नगरियों में दिन और रात बराबर होते हैं, अतएव तीस घटी का दिन और तीस घटी की रात्रि होती है। सूर्योदय से पन्द्रह घटी बीतने पर मध्याह्नकाल, मध्याह्नकाल से पन्द्रह घटी समय बीतने पर सायाह्नकाल, सायाह्नकाल से पन्द्रह घटी समय व्यतीत होने पर मध्यरात्रि, मध्यरात्रि से पन्द्रह घटी समय व्यतीत होने पर सूर्योदय काल होता है।

(११)—"यमकोटि" पर जब सूर्य के विम्ब = (सूर्य) का भ्रमण होता है, तब—लङ्का, भारतवर्ष, किम्पुरुषवर्ष और हरिवर्ष में निवास करने वाले प्राणियों का सूर्योदयकाल होता है, लङ्का में सूर्य आने पर मध्याह्न, रोमका में सूर्य आने पर सायाह्न, सिद्धपुरी में सूर्य आने पर मध्यरात्रि, पुनः यमकोटि में सूर्य आने पर पुनः सूर्योदय काल होता है।

सुमेरुपर्वत से पूर्वदिशा में "यमकोटि" में उदय हुए सूर्य की मुंह करके खड़ा होने पर "लङ्का, भारतवर्ष, किम्पुरुषवर्ष और हरिवर्ष" में निवास करने वाले प्राणियों के मुंह के सामने पूर्व दिशा में "यमकोटि" पीठ पीछे पश्चिम दिशा में "रोमका", सीधे हाथ की ओर दक्षिण दिशा में "लोकालोकपर्वत" बायें हाथ की ओर उत्तरदिशा में "सुमेरुपर्वत" स्थित रहता है।

(१२)—लङ्का पर जब सूर्यविम्ब =(सूर्य का भ्रमण) होता है, तब रोमका और केतुमालवर्ष" में निवास करने वाले प्राणियों का सूर्योदयकाल होता है, रोमका और केतुमालवर्ष के प्राणी लङ्का में उदय हुए सूर्य की ओर मुंह करके जब खड़े होते हैं, तब मुंह के ठीक सामने पूर्व दिशा में "लङ्का" पीठ पीछे पश्चिम दिशा में—"सिद्धपुरी" सीधे हाथ की ओर दक्षिण दिशा में "लोकालोकपर्वत", बायें हाथ की उत्तरदिशा में "सुमेरुपर्वत", स्थित रहता है।

(१३)—रोमका नगरी पर जब सूर्यविम्ब ="सूर्य का भ्रमण" होता है, तब "सिद्धपुरी कुरुवर्ष, हिरण्यकवर्ष और रम्यकवर्ष" में निवास करने वाले प्राणियों का सूर्योदयकाल होता है, सूर्योदय की ओर मुंह करके खड़ा होने पर मुंह के सामने पूर्व दिशा में "रोमका" पीठ पीछे पश्चिम दिशा में "यमकोटि" सीधे हाथ की ओर दक्षिण दिशा में "लोकालोकपर्वत" बायें हाथ की ओर उत्तर दिशा में "सुमेरुपर्वत" स्थित रहता है।

(१४)—सिद्धपुरी नगरी पर जब सूर्यविम्ब ="सूर्य" का भ्रमण होता है, तब "यमकोटि और भद्राश्ववर्ष" में निवास करने वाले प्राणियों का सूर्योदयकाल होता है। सूर्योदय की ओर मुंह करके खड़ा होने पर मुंह के सामने सूर्योदय की ओर पूर्व दिशा में "सिद्धपुरी", पीठ पीछे पश्चिम दिशा मे "लङ्का" सीधे हाथ की ओर दक्षिण दिशा में "लोकालोक पर्वत", बायें हाथ की ओर उत्तर दिशा में "सुमेरुपर्वत" स्थित रहता है।

(१५)—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट रूप में यह सिद्ध हो गया है कि—जम्बूद्वीप की परिधि के अन्त में स्थित "यमकोटि, लङ्का, रोमका, और सिद्धपुरी" नगरियों से और जम्बूद्वीप के अन्तर्गत स्थित—भारतवर्ष, किम्पुरुषवर्ष, हरिवर्ष, इला-

वृतवर्ष, रम्यकवर्ष, हिरण्यकवर्ष, कुरुवर्ष, केतुमालवर्ष, भद्राश्ववर्ष, इन सबमें निवास करने वाले प्राणियों से उत्तर दिशा में सुमेरुपर्वत और दक्षिण दिशा में "लोकालोक-पर्वत" की स्थिति है।

प्लक्षादि छैः द्वीप निवासियों से उत्तर में "सुमेरु पर्वत" और दक्षिण में 'लोकालोक पर्वत" के होने की व्यवस्था

(१६) "देवधानी" नगरी पर जब सूर्यबिम्ब-"सूर्य" का भ्रमण होता है, तब संयमनी और उसके समीपस्थ प्लक्षद्वीप, शाल्मलद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप, पुष्करद्वीप, में निवास करने वाले प्राणियों का सूर्योदय काल होता है। संयमनी में सूर्य आने पर मध्याह्न, निम्लोचनी में सूर्य आने पर सायाह्न, विभावरी पर सूर्य आने पर पुनः सूर्योदयकाल=(प्रातःकाल) होता है।

देवधानी में उदय हुए सूर्य की ओर मुंह करके खड़ा होने पर मुंह के सामने पूर्व दिशा में "देवधानी", पीठ पीछे पश्चिम दिशा में "निम्लोचनी", सीधे हाथ की ओर दक्षिण दिशा में "लोकालोक पर्वत", वांयें हाथ की ओर उत्तर दिशा में "सुमेरु पर्वत" स्थित रहता है।

(१७) "संयमनी" पर जब सूर्यबिम्ब="सूर्य" का भ्रमण होता है, तब "निम्लोचनी" और उस के समीपस्थ प्लक्षादि षड्द्वीपों में निवास करने वाले प्राणियों का सूर्योदयकाल होता है, निम्लोचनी में सूर्य आने पर मध्याह्न, विभावरी में सूर्य आने पर "सायाह्न", देवधानी में सूर्य आने पर "मध्यरात्रि", पुनः संयमनी पर सूर्य आने पर पुनः सूर्योदयकाल होता है।

संयमनी में उदय हुए सूर्य की ओर मुंह करके खड़ा होने पर मुंह के सामने पूर्व दिशा में "संयमनी", पीठ पीछे पश्चिम दिशा में "विभावरी", सीधे हाथ की ओर दक्षिण दिशा में "लोकालोक पर्वत", वांयें हाथ की ओर उत्तर दिशा में "सुमेरु पर्वत" स्थित रहता है।

(१८)—"निम्लोचनी" पर जब सूर्यबिम्ब=(सूर्य) का भ्रमण होता है, तब "विभावरी" और प्लक्षादि षड्द्वीपों में निवास करने वाले प्राणियों का सूर्योदयकाल होता है। विभावरी में सूर्य आने पर "मध्याह्न" देवधानी पर सूर्य आने पर "सायाह्न" संयमनी पर सूर्य आने पर "मध्यरात्रि" और पुनः निम्लोचनी पर सूर्य आने पर - विभावरी और उसके समीप में स्थित प्लक्षादि षड्द्वीपों का पुनः सूर्योदयकाल होता है

निम्लोचनी में उदय हुए सूर्य की ओर मुंह करके खड़ा होने पर मुंह के सामने - पूर्व दिशा में "निम्लोचनी" पीठ पीछे पश्चिम दिशा में "देवधानी" सीधे हाथ की ओर दक्षिण दिशा में "लोकालोक पर्वत" वांयें हाथ की ओर उत्तर दिशा में "सुमेरु पर्वत" स्थित रहता है

(१९)—विभावरी पर जब सूर्यबिम्ब=(सूर्य) का भ्रमण होता है, तब "देवधानी" और उसके समीप में स्थित प्लक्षादि षड्द्वीपों में निवास करने वाले प्राणियों

का सूर्योदयकाल होता है, देवधानी पर सूर्य आने पर मध्याह्न, संयमनी पर सूर्य आने पर "सायाह्न" निम्लोचनी पर सूर्य आने पर मध्यरात्रि, और पुनः विभावरी पर सूर्य आने पर - देवधानी और उसके समीपस्थ प्लक्षादि षड्द्वीपों में निवास करने वालों का पुनः सूर्योदयकाल होता है।

विभावरी में उदय हुए सूर्य की ओर मुंह करके खड़ा होने पर मुंह के सामने पूर्व दिशा, पीठ पीछे पश्चिम दिशा, सीधे हाथ की ओर दक्षिण में "लोकालोक पर्वत" और बायें हाथ की ओर उत्तर दिशा में "सुमेरु पर्वत" स्थित रहता है।

(२०)—उपर्युक्त प्रकार से विस्तृत विवेचना करने पर स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि—देवधानी, संयमनी, निम्नलोचनी, विभावरी, यमकोटी, लङ्का, रोमका, और सिद्धपुरी, इन आठों देवनिर्मित नगरियों से तथा जम्बूद्वीपादि सातों द्वीपों में निवास करने वालों से— "लोकालोक पर्वत" दक्षिण दिशा में स्थित है, और सुमेरु पर्वत उत्तर दिशा मे स्थित है।

(२१)उपर्युक्त प्रत्यक्ष सिद्ध सिद्धान्तपक्ष को मान कर ही - योगवासिष्ठ और सूर्य-सिद्धान्त, तथा विष्णुपुराण आदि आर्षग्रन्थों में प्रत्यक्षदर्शी सभी ऋषियों ने - सप्तद्वीप में निवास करने वालों के दक्षिण में "लोकालोक पर्वत" और उत्तर में "सुमेरु पर्वत" को माना है।

विष्णुपुराणेऽपि सप्तसागरैः वेष्टिताः सप्तद्वीपाः समुक्ताः भूगोले

द्वितीये - अंशे - द्वितीये - अध्याये······

"जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलश्चापरौ द्विज ! ।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः ।।५।।
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृताः ।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः समम् ।।६।।
जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्थितः ।
तस्यापि मेरु मैत्रेय! मध्ये कनकपर्वतः ।।७।।
चतुराशीतिसाहस्रो योजनैरस्य चोच्छ्रयः ।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद् द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ।।८।।
मूले षोडशसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्वशः ।
भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः ।।९।।

उपर्युक्त - विष्णुपुराणकथनेन - अपि सप्तसागरैः परिवेष्टिताः - सप्तद्वीपाः सिद्ध्यन्ति भूगोले।

वायुपुराणेऽपि सप्तसागरैः परिवृतानां सप्तद्वीपानां वर्णनमुपलभ्यते

सप्तद्वीपसमुद्रान्तं सप्तलोकं सपर्वतम् ।
उदकावरणं यच्च ज्योतिषे लीयते तु तत् ।।

प्रलयप्रकरणस्थेन - उक्तपद्येन - सप्तसागरैः परिवेष्टिताःसप्तद्वीपाः सिद्ध्यन्ति भूगोले।

मत्स्यपुराणेऽपि सप्तसागरैः आवृताः सप्तद्वीपाः द्वाविंशत्यधिकशततमे १२२ अध्याये वर्णिताः सन्ति, तानत्र लिखामि…

एवं द्वीपाःसमुद्रास्तु सप्त-सप्तभिरावृताः ।
द्वीपस्यानन्तरो यस्तु समुद्रस्तत्समस्तु वै ॥२७॥
एवं द्वीपसमुद्राणां वृद्धि र्ज्ञेया परस्परम् ।
अपां चैव समुद्रेकात् समुद्र इति संज्ञितः ॥२८॥
ऋपद् वसन्ति वर्षेषु प्रजा यत्र चतुर्विधाः ।
ऋषिस्तु रमणे प्रोक्तो वर्षेषु तेषु तेन वै ॥२९॥

समुद्रजले वृद्धिक्षययोः- व्यवस्थामत्र लिखामि

अन्यूनानतिरिक्तात्मा वर्द्धन्त्यापो ह्रसन्ति च ।
उदयेऽस्तमये चेन्द्रोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥३३॥
क्षयवृद्धी समुद्रस्य शशिवृद्धिक्षये तथा ।
दशोत्तराणि पञ्चाहुरङ्गुलानां शतानि च ॥३४॥

पूर्णिमायां तिथौ पूर्णचन्द्रे सति-समुद्रजले - पञ्चदशशताङ्गुलप्रमिता "१५०० अङ्गुलप्रमिता = ६२ हस्त + १२अङ्गुलप्रमिता = ३१ + १/४ गज - प्रमिता" वृद्धि र्भवति, पूर्णिमायां तिथौ समुद्र जले ३१ + १/४ गजोच्छ्रायप्रमिता वृद्धिः भवति, इति सांरांशः । अमायां तिथौ तु ३१ + १/४ प्रमित- उच्छ्रितेः हानि र्भवति समुद्रजले ।

अपां वृद्धिः क्षयो दृष्टः समुद्राणां तु पर्वसु ।
द्विरापत्वात् स्मृतो द्वीपां दधनाच्चोदधिः स्मृतः ॥३५॥

सप्तद्वीपानां- नामोच्चारणव्यवस्थामत्र लिखामि वायुपुराणतः

गिरयश्चापद्यीर्णात्ते पर्ववन्धाच्च पर्वताः ।
शाकद्वीपे तु वै शाकः पर्वतस्तेन चोच्यते ॥३६॥
जम्बूवृक्षः स्थितो द्वीपे तेन जम्बूप्रकीर्तितः ॥३७॥
कुशद्वीपे कुशस्तम्बो मध्ये जनपदस्य तु ।
क्रौञ्चद्वीपे गिरिः क्रौञ्चस्तस्य नाम्ना निगद्यते ॥३८॥
शालमलिः शालमलद्वीपे पूज्यते स महाद्रुमः ।
गोमेदकेतु र्गोमेदः पर्वतस्तेन चोच्यते ॥३९॥
न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे पद्मवत्तेन स स्मृतः ।
पूज्यते स महादेवै र्ब्रह्मांशोऽव्यक्तसंभवः ॥४०॥
तस्मिन् स वसति ब्रह्मा साध्यैः सार्धं प्रजापतिः ।
तत्र देवा उपासन्ते त्रयस्त्रिंशन्महर्षिभिः ॥४१॥
स तत्र पूज्यते देवो देवै र्महर्षिसत्तमैः ।
जम्बूद्वीपात् प्रवर्तन्ते रत्नानि विविधानि च ॥४२॥
द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां क्रमशस्तु वै ।
आर्जवाद् ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च ॥४३॥

आरोग्यायुः प्रमाणाभ्यां द्विगुणं द्विगुणं ततः ।
द्वीपेषु तेषु सर्वेषु यथोक्तं वर्णकेषु वा ॥४४॥
गोपायन्ते प्रजास्तत्र सर्वैः सहजपण्डितैः ।
भोजनं चाप्रयत्नेन सदा स्वयमुपस्थितम् ॥४५॥
षड्रसं तन्महावीर्यं तत्र ते भुञ्जते जनाः ।
परेण पुष्करस्याथ चावृत्यावस्थितो महान् ॥४६॥
स्वादूदकसमुद्रस्तु स समन्तादवेष्टयत् ।
स्वादूदकस्य सर्वतः शैलस्तु परिमण्डलः ॥४७॥
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकः स उच्यते ।
आलोकस्तत्र चार्वाक् च निरालोकस्ततः परम् ॥४८॥
लोकविस्तारमात्रं तु पृथिव्यर्धं तु बाह्यतः ।
प्रतिच्छन्नं समन्तात्तु चोदकेनावृतं महत् ॥४९॥

उक्तपद्यानां - अर्थस्तु - सरलः- एव । उपर्युक्तकथनेन - जम्बूद्वीपादीनां सप्तद्वीपानां क्षारसागरादिसप्तसागराणां च व्यवस्था सुसम्पन्ना जाता मत्स्यपुराणरीत्यापि ।

उपर्युक्तेषु सप्तद्वीपेषु - अनेके - असंख्याताः नदाः नद्यश्च सन्ति । बहूच्छ्रितियुक्ता अनेके च पर्वताः सन्ति ।

श्रीमद्भागवतमहापुराणेऽपि सप्तसागरैः परिवेष्टिताः सप्तद्वीपाः समुक्ताः
पञ्चमस्कन्धे विंशे-अध्याये···

१. लक्षयोजनविशालः समवर्तुलः- जम्बूद्वीपोऽयं यावत् प्रमाणविस्तारः- तावताक्षारोदधिना - परिवेष्टितः ।

२. लवणोदधिः - अपि - ततो द्विगुणविशालेन - प्लक्षाख्येन - परिक्षिप्तः, प्लक्षः- स्वसमानेन - इक्षुरसोदेन - आवृतः ।

३. द्वीपोऽपि शाल्मलः- द्विगुणविशालः- समानेन - सुरोदेन आवृतः परिवृङ्क्ते ।

४. सुरोदात् - बहिः- तद्द्विगुणः- समानेन- आवृतः घृतोदेन यथापूर्वः-कुशद्वीपः विराजते ।

५. घृतोदात् - बहिः - क्रौञ्चद्वीपः- द्विगुणः- स्वसमानेन - क्षीरोदेन- परितः- उप क्लृप्तः - आस्ते ।

६. एवं क्षीरोदात् - परितः - उपवेशितः - शाकद्वीपः - द्वात्रिंशल्लक्ष - "३२०००० योजन"-योजनायामः-समानेन च दधिमण्डोदेन=तक्रसागरेण" परितः- विराजते ।

७. एवमेव - दधिमण्डात्=परितः=पुष्करद्वीपः- ततः द्विगुणायामः- "चतुःषष्टिलक्ष=६४००००० योजनायामः" समन्ततः - उपकल्पितः समानेन स्वादूदकेन- समुद्रेण बहिः - आवृतोऽस्ति ।

तद्द्वीपमध्ये "मानसोत्तर" – नामकः एव - अर्वाचीन - पराचीन - वर्षयोः मर्यादाचलः - अयुतयोजनोच्छ्रायामः - विराजते, यत्र तु - चतसृषु - दिक्षुचत्वारि

पुराणि - लोकपालानाम् - इन्द्रादीनाम् यत् - उपरिष्टात् - सूर्यरथस्य मेरुं परिभ्रमतः- संवत्सरात्मकं चक्रं- देवानाम्- अहोरात्राभ्यां परिभ्रमति ।

उपर्युक्तप्रकारेण - श्रीशुकदेवमुनिकथनेन - अपि - सप्तसागरैः - परिवेष्टिताः सप्तदीपाः सिद्ध्यन्त्येव भूगोले ।

१. महर्षिपतञ्जलिप्रणीत- व्याकरणमहाभाष्य - योगदर्शनाभ्याम् ।

२. महर्षिपाणिनिप्रणीताष्टाध्यायीनामकग्रन्थेन ।

३. श्रीमत्स्यावतारोक्तेन - मत्स्यपुराणनामकग्रन्थेन ।

४. श्रीवायुसमुक्तेन वायुपुराणग्रन्थेन ।

५. श्रीपराशरमुनिप्रणीतेन - श्रीविष्णुपुराणग्रन्थेन ।

६. महर्षिशुकदेवोक्तेन श्रीमद्भागवत- महापुराणग्रन्थेन ।

७. महर्षि - वसिष्टोपदिष्टेन - योगवासिष्ठग्रन्थेन ।

इत्थं पूर्वोक्तैः - आर्षग्रन्थैः-अन्यैश्चापि - अनेकैः - मुनिप्रणीतैः- ग्रन्थैः मानव-प्रणीतैश्च - अनेकैः अनार्षग्रन्थैः- सप्तसमुद्रपरिवेष्टितैः - सप्तदीपैः युक्तः - अयं-भूगोलः सिद्ध्यति ।

महाकविकालिदासप्रभृतिभिः कविभिः अपि सप्तसागरैः परिवेष्टिता सप्तद्वीपा भूमिः वर्णिता······

रघुवंशे प्रथमसर्गे······

किन्तु वध्वां तवैतस्यामदृष्टसदृशप्रजम् ।
न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनी ॥६५॥
स वेलावप्रवलयां परिखीकृतसागराम् ।
अनन्यशासनामुर्वीं शशासैकपुरीमिव ॥३०॥
सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम् ।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ॥५॥
पुरा शक्रमुपस्थाय तवोर्वीं प्रति यास्यतः ।
आसीत् कल्पतरुच्छायामाश्रिता सुरभिः पथि ॥७५॥
हविषे दीर्घसत्रस्य सा चेदानीं प्रचेतसः ।
भुजङ्गपिहितद्वारं पातालमधितिष्ठति ॥८०॥
स शापो न त्वया राजन् न च सारथिना श्रुतः ।
नदत्याकाशगङ्गायाः श्रोतस्युद्दामदिग्गजे ॥७८॥
सोऽहमिज्या विशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलितः ।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः ॥६८॥

सूर्यसिद्धान्ते ज्यौतिषोपनिषदध्याये षोडशप्रमितः श्लोकः

वस्त्रच्छन्नं वहिश्चापि लोकालोकेन वेष्टितम् ।
अमृतस्रावयोगेन काभ्रमणसाधनम् ॥१६॥

उपर्युक्तपद्योक्तेन लोकालोकपर्वतेन सह पुराणोक्त - लोकालोकपर्वतस्य एक-वाक्यता सिद्ध्यति ।

पूर्वप्रतिपादितप्रकारेण सप्तसागरैः परिवेष्टिताः सप्तद्वीपाः भूगोले सिद्ध्यन्ति । स्वर्गलोकः, - पाताललोकः, लोकालोकपर्वतश्चापि सिद्ध्यति ।

सूर्यसिद्धान्ते भूगोलाध्ये जम्बूद्वीप - क्षारसमुद्र-सुमेरुपर्वतानां स्थिति-व्यवस्था समुक्ता, तामेवात्र जम्बूद्वीपस्य चित्रप्रतिपादनार्थं लिखामि

अनेकरत्ननिचयो जाम्बूनदमयो गिरिः ।
भूगोलमध्यगो मेरुरुभयत्र विनिर्गतः ॥३४॥
उपरिष्टात् स्थितास्तस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः ।
अधस्तादसुरास्तद्वद् द्विषन्तोऽन्योऽन्यमाश्रिताः ॥३५॥
ततः समन्तात् परिधिक्रमेणायं महार्णवः ।
मेखलेव स्थितो धात्र्या देवासुरविभागकृत् ॥३६॥
समन्तान्मेरुमध्या - त्तु तुल्यभागेषु तोयधेः ।
द्वीपेषु दिक्षु पूर्वादिनगर्यो देवनिर्मिताः ॥३७॥
भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता ।
भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्रासादतोरणा ॥३८॥
याम्यायां भारते वर्षे लङ्का तद्वन्महापुरी ।
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता ॥३९॥
उदक्सिद्धपुरी नाम कुरुवर्षे प्रकीर्तिता ।
तस्यां सिद्धा महात्मानो निवसन्ति गतव्यथा ॥४०॥
भूवृत्तपादविवरास्ता श्चान्योऽन्यं प्रतिष्ठिताः ।
ताभ्यश्चोत्तरगो मेरुस्तावानेव सुराश्रयः ॥४१॥

श्रीसूर्यसिद्धान्तोक्तया ' उपर्युक्तया व्यवस्थया सह श्रीविष्णुपुराण - श्रीमत्स्य-पुराण - श्रीवायुपुराण - श्रीमद्भागवतमहापुराण - पातञ्जलयोगदर्शन- वैयासिकभाष्य-प्रभृतिषु - समुक्तायाः - व्यवस्थायाः- एकवाक्यता संपद्यते ।

उपर्युक्तां - आर्षोक्तव्यवस्थाम् - अज्ञात्वैव - लल्लादिभिः - भास्कराचार्या-दिभिः तदनुकरणं कुर्वद्भिः - अन्यैश्च - यैः - महानुभावैः- सिद्धान्तशिरोमणिप्रभृतिषु स्वतन्त्रविचारयुक्तेषु स्वकृतग्रन्थेषु - जम्बूदीप - क्षारसमुद्र - सुमेरुपर्वतविषये-आर्षमत-विरुद्धा या व्यवस्था - विलिखता, सा तु - आर्षमतविरुद्धत्वात् प्रत्यक्षविरुद्धत्वाच्च अविचारितरमणीया - नष्टभ्रष्टा भ्रान्तिप्रदैव च अस्तीति मध्यस्थया धिया विवेचनीयं शोधशीलैः-विद्वद्वरेण्यैः - वैज्ञानिकै र्विचारशीलैः तथाऽन्यैश्च महानुभावैः ।

जम्बूद्वीप - सुमेरुपर्वत - क्षारसमुद्राणां स्थिति - बोधकस्य चित्रस्य व्यवस्था श्री विष्णुपुराणे द्वितीये -अंशे - द्वितीये - अध्याये अपि उपलभ्यते, तामत्र लिखामि——

जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्थितः ।
तस्यापि मेरु मैत्रेय ! मध्ये कनक पर्वतः ॥७॥
चतुराशीतिसाहस्रो योजनैरस्य चोच्छ्रयः ।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद् द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ॥८॥
मूले षोडशसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्वशः ।
भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः ॥९॥

नववर्षं तु मैत्रेय ! जम्बूद्वीपमिदं मया ।
लक्षयोजनविस्तारं संक्षेपात् कथितं तव ॥२७॥
जम्बूद्वीपं समावृत्य लक्षयोजनविस्तारः ।
मैत्रेय ! वलयाकारः स्थितः क्षारोदधि र्बहिः ॥२८॥

वृत्ताकारः एकलक्ष "१००००० " योजनप्रमितः जम्बूद्वीपोऽस्ति, जम्बूद्वीपस्य वहिः प्रदेशे जम्बूद्वीपं समावृत्य=(परिवेष्ट्य) एकलक्ष "१०००००" योजनविस्तार-युक्तः - वृत्ताकारः क्षारसमुद्रः - स्थितः - अस्ति । जम्बूद्वीपस्य विषये मत्स्यपुराणे, वायुपुराणे, भागवतपुराणे च-एतादृशी एव व्यवस्था समुक्ता-प्रत्यक्षदर्शिभिः-ऋषिभिः ।

[अमरकोषस्य द्वितीये काण्डे भूमिवर्गे षष्ठसंख्याप्रमितस्य "लोकोऽयं भारतं वर्षम्" अस्य श्लोकस्य व्याख्यावसरे व्याख्यासुधाटीकायां "श्री भानुजिदीक्षित" महोदयैः "पुंनपुंसकयो र्वर्षं जम्बूद्वीपाब्दवृष्टिषु" इति रुद्रकोषस्य वचनं समुद्धृतम्, अतः उपर्युक्ते-सप्तविंशति - संख्याप्रमिते श्लोकेऽपि "जम्बूद्वीपम्"] - एतादृशः पाठोऽपि साधीयान् विज्ञयो विज्ञैः ।

सुन्दरी टीका—विष्णुपुराण के द्वितीय अंश में द्वितीय अध्याय में पाँचवें श्लोक से नवें श्लोक तक सातद्वीपों और सात समुद्रों से युक्त भूगोल को कहा गया है । वायु-पुराण के प्रलयकरण और "मत्स्यपुराण" के एक सौ वाईसवें अध्याय में सत्ताईसवें श्लोक से उनतीसवें श्लोक तक सातद्वीपों और सात समुद्रों से युक्त भूगोल का वर्णन किया गया है ।

समुद्र के जल में वृद्धि और ह्रास का मापदण्ड

२—"मत्स्यपुराण" के एक सौ वाईसवें अध्याय में तेंतीस, चौंतीस और पेंतीसवें पद्यों में स्पष्टरूप से लिखा गया है कि—शुक्लपक्ष में पूर्णिमासी तिथि में पूर्णचन्द्र होने पर चन्द्रमा की रश्मियों की आकर्षणशक्ति से समुद्र का जल आकाश की ओर इकत्तीस गज और वारह अङ्गुल = (३१–१/४) गज की ऊँचाई तक खींचा जा सकता है, तदनुसार—आकाश की ओर उछलती हुई समुद्र की तरङ्गों = (लहरों)से समुद्र के जल में इकत्तीस गज, वारह अङ्गुल ऊँची बाढ़ आनी सम्भव होती है ।

कृष्णपक्ष में अमावास्या तिथि में चन्द्रमा के क्षय = (अस्तङ्गत) होने से चन्द्रकिरणों की आकर्षण शक्ति का भी क्षय = (विनाश) हो जाता है । आकर्षण-शक्ति के पूर्णरूप से क्षय होने पर समुद्र के जल का आकाश की ओर खिंचाव नहीं होने के कारण समुद्र के जल का स्तर ३१–१/४ गज = सवा इकत्तीस गज नीचे की ओर गिरने से सवा इकत्तीस गज नीचे स्तर तक समुद्र का जल घट सकता है, इस से अधिक वृद्धि और ह्रास समुद्र जलों में होना असम्भव होता है ।

३—जम्बूद्वीपादि सातों द्वीपों के नामकरण की व्यवस्था के सम्बन्ध में "वायुपुराण" में—द्वीपविवेचनाध्याय में छत्तीसवें श्लोक से उनञ्चासवें श्लोक तक सुविस्तृत विवेचन किया गया हैं ।

४—पूर्वप्रतिपादित विषय के अनुसार—महाभाष्य, योगदर्शन, अष्टाध्यायी, सिद्धा-न्तकौमुदी, मत्स्यपुराण, वायुपुराण, भागवतपुराण, योगवासिष्ठ, योगदर्शन, आदि ऋषि-प्रणीत सभी ग्रन्थों के द्वारा सात द्वीपों और सात समुद्रों से युक्त भूगोल सिद्ध होता है ।

५—महाकवि कालिदासने "रघुवंश" नाम से प्रसिद्ध अपने महाकाव्य के

प्रथम सर्ग में—"५, ३०, ६५, ६८, ७५, ७८, ८०" संख्या वाले श्लोकों में सातद्वीपों सात समुद्रों, स्वर्ग, सात पाताललोकों, आकाशगङ्गा और लोकालोकपर्वत का विवेचन किया है।

महाकवि कालिदास ने "कुमारसम्भवम्" नाम के काव्य में प्रथमसर्ग में "सुमेरुपर्वत" और "हिमालय" आदि पर्वतों का अच्छा विवेचन किया है।

,'मेघदूत" नामके ग्रन्थ में भी महाकवि कालिदास ने अनेक पर्वतों का स्पष्ट विवेचन किया है।

कालिदासप्रभृति महाकवियों के काव्यग्रन्थों से भी सातद्वीपों और सात समुद्रों से युक्त भूगोल सिद्ध होता है।

६—सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय में जम्बूद्वीप के चित्र का सजीव चित्रण करते हुए सूर्यांशपुरुष ने सातद्वीपों के अन्तर्गत जम्बूद्वीप के मध्य में सुवर्णमय "सुमेरुपर्वत" की स्थिति को बताया है। जम्बूद्वीप के चारों ओर क्षारसमुद्र जम्बूद्वीप को अपने मध्य में मेखला = (कौधनी) की भाँति लपेटे हुआ है। जम्बूद्वीप की परिधि के अन्त में - पूर्व - दक्षिण - पश्चिम - उत्तर, इन चारों दिशाओं में क्रमशः यमकोटि, लङ्का, रोमका, सिद्धपुरी, इन चारों नगरियों की स्थिति का विस्तृत वर्णन भी सूर्यांशपुरुष ने किया है।

७—आर्ष गणित ग्रन्थ "सूर्यसिद्धान्त" के साथ आर्ष ग्रन्थ—भागवत, विष्णुपुराण, योगदर्शन, योगवासिष्ठ, वायुपुराण, मत्स्यपुराण, महाभाष्य, अष्टाध्यायी आदि की एकवाक्यता सिद्ध होती है। सातद्वीपों और सात समुद्रों की गणित के सम्बन्ध में तथा समस्त ब्रह्माण्ड की गणित के सम्बन्ध में भी उपर्युक्त ग्रन्थों की एकवाक्यता सिद्ध होती है।

८—लल्लाचार्य और भास्कराचार्य - प्रभृति आधुनिक जिन कुछ विद्वानों ने आर्षमत को अच्छी तरह से समझने की पूरी चेष्टा न करके अपने स्वतन्त्रग्रन्थ—"सिद्धांन्त शिरोमणि" आदि में आर्षमत के विपरीत जो कुछ लिखा है, वह लल्लाचार्य और भास्कराचार्य प्रभृति की अल्पज्ञता का ही परिचायक है। लल्लाचार्य और भास्कराचार्य के सिद्धान्तग्रन्थ त्रुटिपूर्ण हैं। आर्षसिद्धान्त ग्रन्थ ही ठीक हैं।

विष्णुपुराण के द्वितीय अंश में द्वितीय अध्याय में सात, आठ, नौ, सत्ताईस और अट्ठाईसवें आदि श्लोकों में जम्बूद्वीप के "चित्र" का अच्छा विश्लेषण करते हुए "सुमेरुपर्वत" क्षारसमुद्र और जम्बूद्वीप के अन्तर्गत स्थित "भारतवर्ष, किम्पुरुषवर्ष, हरिवर्ष, इलावृतवर्ष, रम्यकवर्ष, हिरण्यकवर्ष, कुरुवर्ष, भद्राश्ववर्ष, केतुमालवर्ष, इन नौ वर्षों का तथा हिमालय, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, शृङ्गवान्, गन्धमादन, माल्यवान्" इन आठ पर्वतों का, तथा "यमकोटि, लङ्का, रोमका, सिद्धपुरी, इन चार नगरियों का और "गङ्गा, अलकनन्दा, चक्षुः, भद्रा, सीता आदि प्रधान नदियों का और इन्द्रलोक आदि का सुन्दर विवेचन किया गया है।

इसी अध्याय के अग्रिम पृष्ठ पर अङ्कित चित्र को सावधानीपूर्वक देखने पर जम्बूद्वीप के सजीव चित्र को हृदयङ्गम किया जा सकता है। जड़ में सोलह हजार योजन वृत्ताकार सुमेरुपर्वत सोलह हजार योजन भूमि के भीतरी भाग में प्रविष्ट हैं, और चौरासी हजार योजन भूगोल से ऊपर आकाश की ओर उन्नत =(ऊँचाई में) है। बत्तीसहजार योजन सुमेरु पर्वत के शिरोभाग की चौड़ाई है। यहीं पर शिरोभाग में "इन्द्रलोक" है।

जम्बूद्वीप- सुमेरुपर्वत - क्षारसमुद्र - स्थितिविषये श्रीगङ्गाधरमिश्रकृतायाः सिद्धान्ततत्वविवेकटीकायाः खण्डनमत्र करोमि

सिद्धान्ततत्वविवेके मध्यमाधिकारे……

अनेकरत्ननिचयो जाम्बूनदमयो गिरिः ।
भूगोलमध्यगो मेरुरुभयत्र विनिर्गतः ॥१३०॥

इत्यादि श्लोकानां व्याख्यावसरे व्याख्याकारैः - श्रीगंगाधरमहोदयैः जम्बूद्वीपस्य सुमेरुपर्वतस्य क्षारसमुद्रस्य च यत् चित्रं निर्मितम्, तत्तु भ्रान्तिप्रदं एव अस्ति ।

यतोहि सुमेरुपर्वतस्तु - जम्बूद्वीपभूमिकेन्द्रे - स्थितः - अस्ति, षोडशसहस्र= "१६०००" योजनप्रमितः भूगोलस्य गर्भे प्रविष्टत्वात् - भूगोलगर्भे विनिर्गतः अस्ति, तथा च- चतुरशीतिसहस्र="८४०००" योजनप्रमितः - भूगोलकेन्द्रस्थभूपृष्ठात् ऊर्ध्वं विनिर्गतत्वात् - अन्तरिक्षे प्रविष्टः अस्ति ।

क्षारसमुद्रेण तु - जम्बूद्वीपस्य पृथिवी सर्वतः परिवेष्टिता अस्ति, न तु भूगोल-मध्ये स्थितः क्षारसमुद्रः अस्ति ।

सिद्धान्ततत्वविवेकटीकायां श्रीगङ्गाधरमिश्र - निर्मितं - जम्बूद्वीप - क्षारसमुद्रचित्रम्
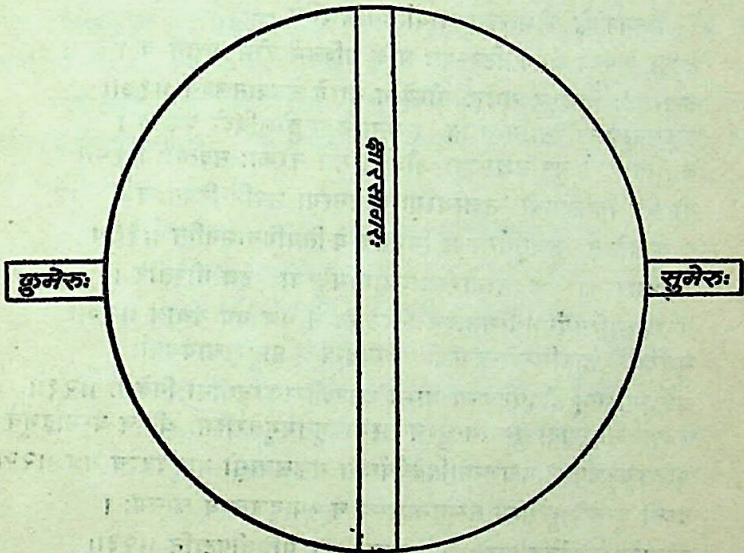
उपर्युङ्कितं चित्रं सर्वशास्त्रविरुद्धत्वात् अशुद्धतमं भ्रान्तिप्रदं निराधारं च अस्तीति निष्पक्षया मध्यस्थया धिया विवेचनीयं विज्ञैः ।

सिद्धान्ततत्वविवेक के टीकाकार श्रीगङ्गाधरमिश्र द्वारा निर्मित- जम्बूद्वीप, सुमेरुपर्वत, क्षारसमुद्र के चित्र का खण्डन

सुन्दरी टीका— श्रीकमलाकरभट्ट ने "सिद्धान्ततत्वविवेक" नाम से प्रसिद्ध

मार्मिक - सिद्धान्त - ग्रन्थ की रचना, श्रीभास्कराचार्यकृत— "सिद्धान्तशिरोमणि" के निर्माण काल से कई शताब्दियों के बाद की है, इस ग्रन्थ पर श्री गङ्गाधरमिश्र ने टीका की है. सिद्धान्ततत्वविवेक के मध्यमाधिकार में —"अनेकरत्ननिचयः—इत्यादि" श्लोक की व्याख्या में श्री गङ्गाधरमिश्र ने वृत्ताकार "जम्बूद्वीप" के मध्य में "क्षार-समुद्र" को— जम्बूद्वीप की परिधि से केन्द्रगामिनी पूर्वापर दो रेखाओं के बीच में दिखाया है, जम्बूद्वीप की परिधि से बाहर की ओर उत्तर और दक्षिण की दिशाओं के दोनों तरफ "सुमेरुपर्वत" को निकला हुआ दिखाकर, उन निकले हुए भागों को क्रमशः—"सुमेरु और कुमेरु" नामों से लिखा है।

ब्रह्माण्ड की स्थिति का— वास्तविकविवेचन करने वाले - सूर्यसिद्धान्तादि-गणितग्रन्थों और - अतीन्द्रिय महर्षियों द्वारा निर्मित श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, वायु-पुराण, मत्स्यपुराण, योगदर्शन, योगवासिष्ठ, आदि अनेक आर्षग्रन्थों के विरुद्ध होने के कारण श्रीगङ्गाधरमिश्र द्वारा निर्मित "जम्बूद्वीप का चित्र" अविचारितरमणीय और निराधार तथा भ्रान्तिप्रद और नितान्त अशुद्ध तथा बिलकुल गलत ही है।

सिद्धान्तशिरोमणौ गोलाध्याये भुवनकोशे - जम्बूद्वीपक्षारसमुद्रयोः स्थितविषये श्रीभास्कराचार्यमतस्य खण्डनम्

भुवनकोशे श्रीभास्कराचार्याः विलिखन्ति —

लङ्का कुमध्ये यमकोटिरस्याः प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनं च।
अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुः सौम्येऽथ याम्ये वडवानलश्च ॥१७॥
कुवृत्तपादान्तरितानि तानि स्थानानि षड्गोलविदो वदन्ति।
वसन्ति मेरौ सुरसिद्धसङ्घा और्वे च सर्वे नरकाः सदैत्याः ॥१८॥
यो यत्र तिष्ठत्यवनीं तलस्थामात्मानमस्या उपरि स्थितं च।
स मन्यतेऽतः कुचतुर्थसंस्था मिथश्च ये तिर्यगिवामनन्ति ॥१९॥
अधःशिरस्काः कुदलान्तरस्थाश्छायामनुष्या इव नीरतीरे।
अनाकुलास्तिर्यगधःस्थिताश्च तिष्ठन्ति ते यत्र वयं यथात्र ॥२०॥
भूमेरर्धं क्षारसिन्धोरुदक्स्थं जम्बूद्वीपं प्राहुराचार्यवर्याः।
अर्धेऽन्यस्मिन् द्वीपषट्कस्य याम्ये क्षारक्षीराद्यम्बुधीनां निवेशः ॥२१॥
लवणजलधिरादौ दुग्धसिन्धुश्च तस्मादमृतममृतरश्मिः श्रीश्च यस्माद्बभूव।
महितचरणपद्मः पद्मजन्मादिदेवैर्वसति सकलवासो वासुदेवश्च यत्र ॥२२॥
दघ्नो घृतस्येक्षुरसस्य तस्मान्मद्यस्य च स्वादुजलस्य चान्त्यः।
स्वादूदकान्तर्वडवानलोऽसौ पाताललोकाः पृथिवीपुटानि ॥२३॥
चञ्चत्फणामणिगणांशुकृतप्रकाशा एतेषु सासुरगणाः फणिनो वसन्ति।
दीव्यन्ति दिव्यरमणीरमणीयदेहैः सिद्धाश्च तत्र च लसत्कनकावभासैः ॥२४॥
शाकं ततः शाल्मलमत्र कौशं क्रौञ्चं च गोमेदकपुष्करे च।
द्वयोर्द्वयोरन्तरमेकमेकं समुद्रयोर्द्वीपमुदाहरन्ति ॥२५॥

उपर्युक्तेषु श्लोकेषु - सप्तदश - अष्टादश - एकविंशति - संख्याङ्कितश्लोकानां अयं भावः—

भूगोलमध्ये= भूगोलकेन्द्रस्थाने, लङ्कानगरी - अस्ति । अस्याः=लङ्कायाः, प्राक्=पूर्वस्यां दिशि, यमकोटिनगरी - अस्ति, पश्चिमे च रोमका नगरी अस्ति। भूगोलमध्यस्थित - लङ्कायाः - अधो भागे =अधः भुपृष्ठे, सिद्धपुरी नगरी - अस्ति।

भूमध्यभागस्थलङ्कातः सौम्ये=उत्तरदिशाभागे सुमेरुपर्वतोऽस्ति, अत्र सुमेरौ सुराणां सिद्धानां च समुदायाः निवसन्ति । दक्षिणदिशाभागे नरकाणां राक्षसादीनां च निवासः अस्ति । याम्यदिशास्थभागे च वडवानलोऽस्ति, भूमिचतुर्थभागान्तरितानि - इमानि षट्स्थानानि लल्लाचार्यप्रभृतयः गोगविदः वदन्ति ॥१७॥१८॥

(२) क्षारसिन्धोः=क्षारसागरात्, उदक्स्थम् - उत्तरदिशास्थम् भूमेः= भूगोलस्य, अर्धम्=अर्धभागम्, जम्बूद्वीपम् =जम्बूद्वीपसंज्ञकम्, आचार्यवर्याः=लल्लाचार्यप्रभृतयो विद्वांसः, प्राहुः- प्रोचुः ।

क्षारसिन्धोः=क्षारसमुद्रात् याम्ये= दक्षिणदिशास्थे, अन्यस्मिन्=अवशिष्टे, अर्धे भूगोलार्धे, द्वीपषट्कस्य=जम्बूद्वीपातिरिक्तद्वीपषट्कस्य, क्षार- क्षीराद्यम्बुधीनां च निवेशः - अस्तीति लल्लाचार्यप्रभृतयः विद्वांसः प्राहुः ।

अत्र भूगोलमध्यभागस्थितस्य सुमेरुपर्वतस्य विरोधं कृत्वा सुमेरोः स्थाने लङ्कां स्वीकृत्य, क्षारसमुद्रं भूगोलमध्ये क्षारसमुद्रात् दक्षिणे षड्द्वीपानां स्थितिं च उक्त्वा, आर्षमतस्य विरोधः कृतः भास्कराचार्यैः ।

अत्र स्थले अन्धपरम्परानुमोदनं कुर्वद्भिः-श्री कमलाकरभट्टैः - अपि सिद्धान्ततत्त्वविवेके मध्यमाधिकारे भास्कराचार्यमतावलम्बिनी एव व्यवस्था निम्नाङ्कितेषु पद्येषु प्रदत्ता——

"भूगताब्धिजलं क्षारं लवणोदधिसंज्ञकम् ।
तद्वेलावलयस्थानं समन्तात् यत्र कुत्रचित् ॥१२७॥
भूमौ मेरो नवत्यंशे निरक्षाभिधमण्डलम् ।
तत्र लङ्कां तु भूमध्ये प्रकल्प्याथ ततः सदा ॥१३२॥
प्राच्यां तु यमकोटिः स्यात् पश्चिमे रोमकाभिधम् ।
अधः सिद्धपुरं सौम्ये सुमेरु र्याम्यगोऽपरः ॥१३३॥
भूवृत्तपादविवराण्येवं स्थनानि षट् सदा ॥१३४॥
व्यक्षोत्तरे तु सर्वेषां सुमेरुः सौम्यदिक् स्थितः ।
याम्येऽप्येवं परो मेरुः कुसंज्ञो याम्यदिक्स्थितः ॥१३८॥

वस्तुतः उपर्युक्तेषु पद्येषु भास्कराचार्योक्तस्यैव पिष्टपेषणं - अस्ति ।

अत्र स्थले श्री लल्लाचार्योक्तं - श्री भास्कराचार्योक्तं-श्री कमलाकरभट्टोक्तं - अयुक्तं निराधारं च - अस्तीति मध्यस्थयाधिया विवेचनीयं विज्ञैः ।

अत्रस्थले श्री लल्लाचार्यैः - श्रीभास्कराचार्यैः श्री कमलाकरभट्टैश्च यदुक्तं तन्न रोचते मह्यम् - आर्षमतविरुद्धत्वात् ।

जम्बूद्वीपचित्ररथ - पर्वत- गङ्गादिविषये - विष्णुपुराणे द्वितीये अंशे- द्वितीये अध्याये विचारः—

जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्थितः ।
तस्यापि मेरुर्मैत्रेय ! मध्ये कनकपर्वतः ।।७।।
हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे ।
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ।।१०।।
लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथापरे । ।
दिक्सहस्रमितोच्छ्राया विस्तारे द्विसहस्रकाः ।।११।।
भारतं प्रथमं वर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम् ।
हरिवर्षं तथैवान्यत् - मेरो र्दक्षिणतो द्विज! ।।१२।।
रम्यक चोत्तरं वर्षं तस्यैवानु हिरण्मयम् ।
उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा ।।१३।।
नवसाहस्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तम! ।
इलावृतं च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुरुच्छ्रितः ।।१४।।
मेरोश्चतुर्दिशं तत्तु नवसाहस्रविस्तृतम् ।
इलावृतं महाभाग! चत्वारश्चात्रपर्वताः ।।१५।।
आनीलनिषधायामौ माल्यवद्गन्धमोदनौ ।
तयो र्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः ।।३८।।
विष्णुपादविनिष्क्रान्ता प्लावयित्वेन्दुमण्डलम् ।
समन्ताद् ब्रह्मणः पुर्यां गङ्गा पतति वै दिवः ।।३५।।
सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्धा प्रतिपद्यते ।
सीता चालकनन्दा च चक्षु र्भद्रा च वै क्रमात् ।।३३।।
पूर्वेण शैलात् सीता तु शैलं यात्यन्तरिक्षगा ।
ततश्च पूर्ववर्षेण भद्राश्वेनैति सार्णवम् ।।३४।।
तथैवालकनन्दापि दक्षिणेनैत्य भारतम् ।
प्रयाति सागरं भूत्वा सप्तभेदा महामुने! ।।३५।।
चक्षुश्च पश्चिमगिरीनतीत्य सकलान् तथा ।
पश्चिमं केतुमालाख्यं वर्षं गत्वैति सागरम् ।।३६।।
भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तरांश्च तथा कुरून् ।
अतीत्योत्तरमम्भोधिं समभ्येति महामुने! ।।३७।।
भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा ।
पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादा शैलबाह्यतः ।।३९।।
यानि किम्पुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने ! ।
न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयादिकम् ।।५३।।
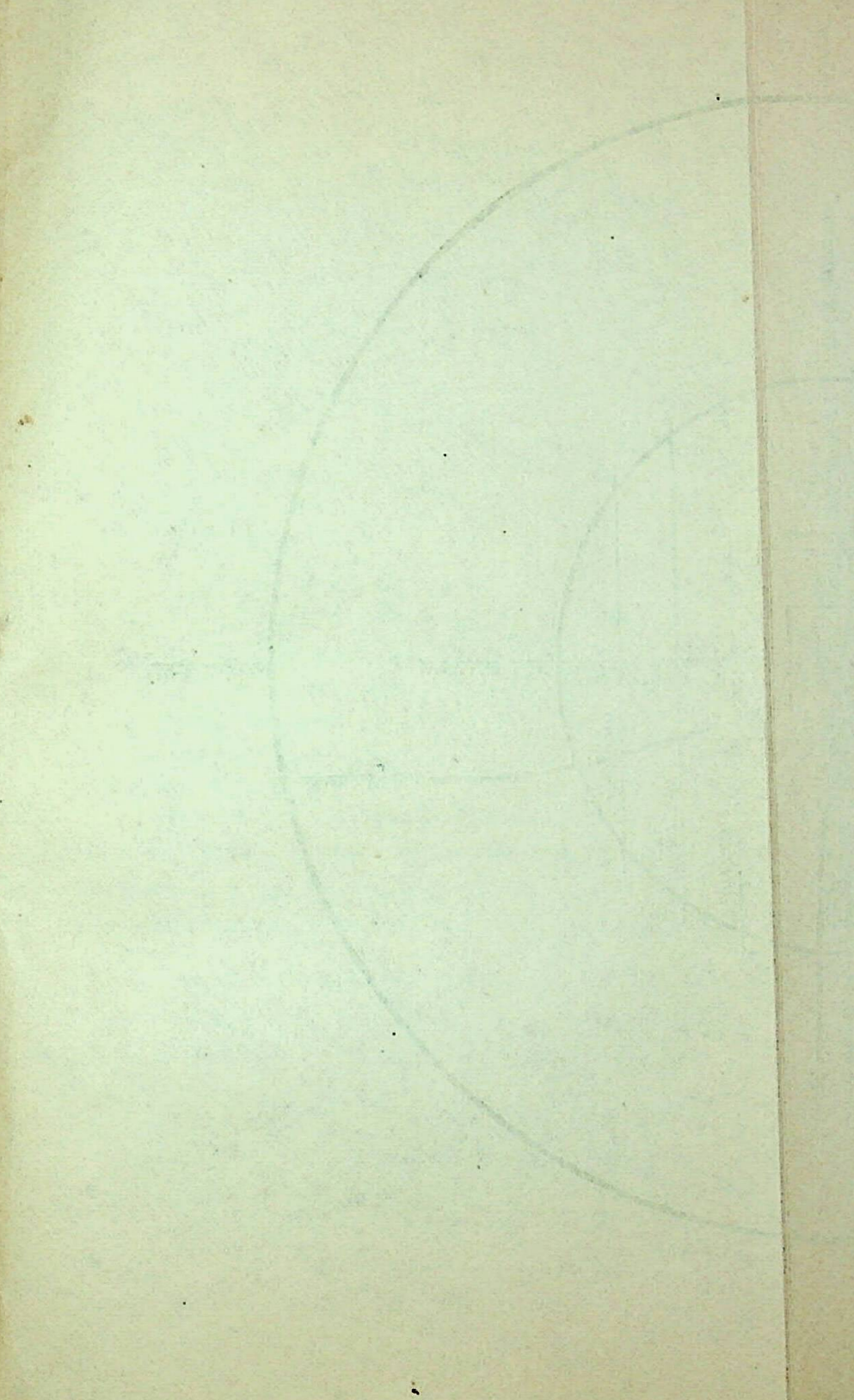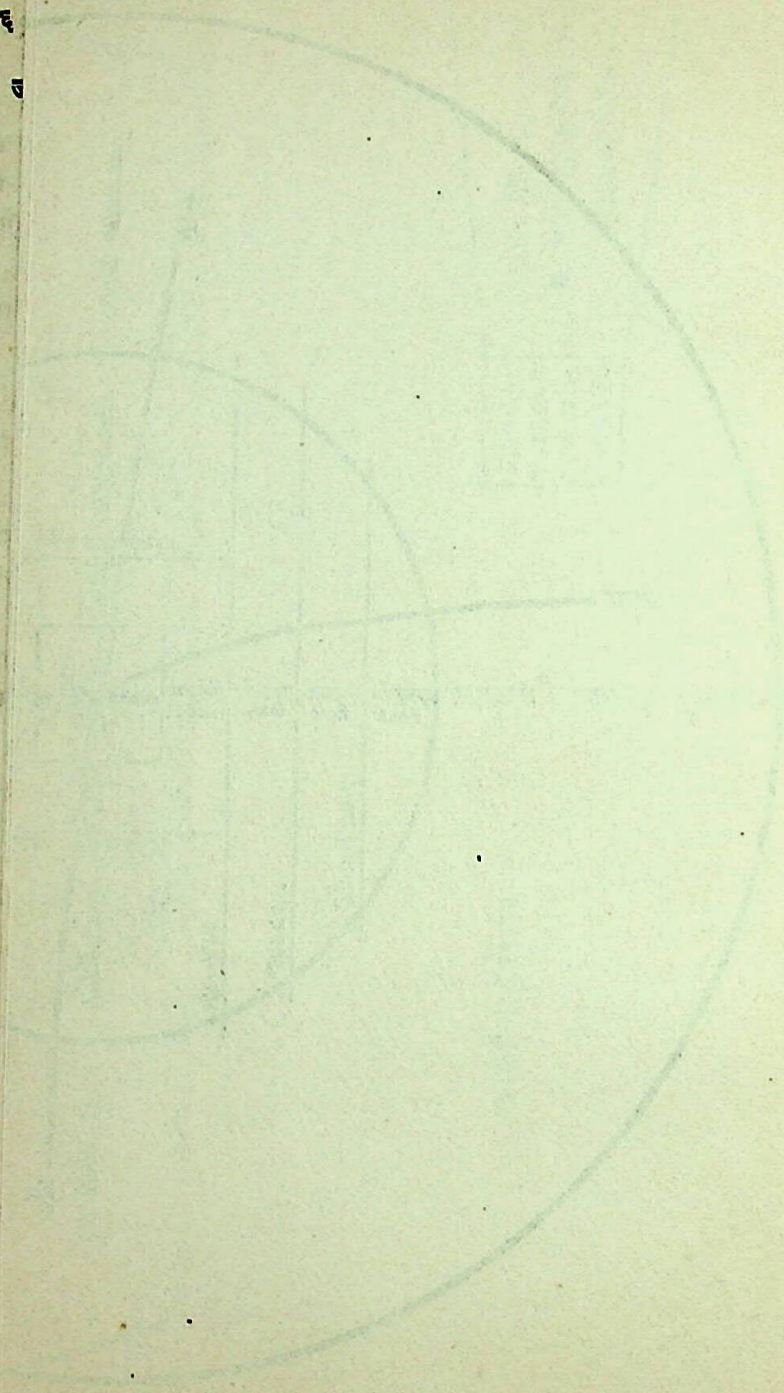
सुन्दरी टीका—सिद्धान्तशिरोमणि में भूगोलाध्याय के अन्तर्गत भुवनकोश के सत्रहवें श्लोक से पच्चीसवें श्लोक तक=(१७ से २५) जम्बूद्वीप, क्षारसमुद्र, सुमेरु पर्वत और प्लक्षादि छः द्वीपों और यमकोटि, रोमका, लङ्का, सिद्धपुरी, इन चारों नगरियों की स्थिति के सम्बन्ध में श्रीभास्कराचार्य ने जो कुछ भी लिखा है, वह प्रत्यक्ष देखकर लिखने वाले ऋषियों के मतों के विरुद्ध होने के कारण नितान्त भ्रामक और गलत तथा अविचारितरमणीय ही है।

सिद्धान्ततत्वविवेक के मध्यमाधिकार में श्री कमलाकरभट्ट ने– १२७ वें श्लोक से १३८ वें श्लोक तक श्रीलल्लाचार्य और श्रीभास्कराचार्योक्त अन्धपरम्परा का ही अनुमोदन किया है, अतः श्रीकमलाकरभट के कथन से भी मैं सहमत नहीं हूँ।

सुन्दरी टीका— एक सौ छिहत्तरवें (१७६ वें) पृष्ठपर स्थित सातवें श्लोक से त्रेपनवें श्लोक तक जम्बूद्वीप के चित्र में स्थित पर्वतों और नदियों तथा समुद्र का स्पष्ट विवेचन किया गया है। चित्र को देखने मात्र से श्लोकों का अर्थ स्पष्ट रूप से हृदयङ्गम हो जाता है।

सुन्दरी टीका —जम्बूद्वीप के चित्र में दिखाये गये सुमेरुपर्वत के अरिरिक्त अन्य सभी आठों पर्वतों में प्रत्येक की चौड़ाई दो हजार योजन=उन्तीस हजार-नब्बै किलो मीटर और एक हजार गज है। प्रत्येक पर्वत की ऊंचाई - दश हजार योजन=एक लाख पैंतालीस हजार - चारसौ - चउअन - किलोमीटर और छः सौ गज है।

भारतवर्ष, किम्पुरुषवर्ण, हरिवर्ण, रम्यकवर्ण, हिरण्यकवर्ण, कुरुवर्ण, इनमें प्रत्येक की दक्षिणोत्तर चौड़ाई का मान नौहजार योजन=एकलाख- तीसहजार-नौसौ नौ किलोमीटर और एक हजार गज है।

केतुमालवर्ण और भद्राश्ववर्ण में प्रत्येक की दक्षिणोत्तर चौड़ाई का मान चौंतीस हजार योजन=चारलाख - चौरानवै हजार - पाँच सौ पैंतालीस किलोमीटर और पाँचसौ गज हैं। इन दोनों वर्षो में प्रत्येक वर्ण की पूर्वपश्चिम लम्वाई का मान इकत्तीसहजार योजन=चारलाख- पचासहजार - नौसौ - नौ किलोमीटर और एक सौ गज है।

सुमेरुपर्वत की चौड़ाई के सहित - इलावृत्तवर्प की पूर्वपश्चिम और दक्षिणोत्तर लम्बाई तथा चौड़ाई एक वरावर है, लम्वाई चौड़ाई का पृथक् पृथक् मान चौंतीस हजार योजन=चारलाख - चौरानवैहजार-पाँचसौ- पैंतालीस किलोमीटर और पाँच सौ गज है।

नील और निषध इन दोनों पर्वतों की लम्बाई एकलाख योजन है।

श्वेत और हेमकूट इन दोनों पर्वतों की लम्बाई नब्बैहजार योजन है।

शृङ्गवान् और हिमालय इन दोनों पर्वतों की लम्बाई अस्सी हजार योजन है।

जम्बूद्वीप की परिधि से वाहर की ओर पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओं में क्षारसमुद्र के भीतर ये सभी पर्वत घुसे हुए हैं। जम्बूद्वीप को सब ओर से एकलाख योजन विस्तारयुक्त - क्षारसमुद्र - घेरे हुए है।

सूर्यसिद्धान्तानुसारेणजम्बूद्वीपे- सूर्योदय - मध्याह्न-मध्यरात्रीणाम्" विवेचनम्

भद्राश्वोपरिगः कुर्याद् भारते तूदयं रविः ।
रात्र्यर्धं केतुमाले तु कुरावस्तमयं तदा ।।७०।।
भारतादिषु सर्वेषु तद्वदेव परिभ्रमन् ।
मध्योदयार्धरात्र्यस्तकालान् कुर्यात् प्रदक्षिणम् ।।७१।।

सूर्यसिद्धान्ते भूगोलाध्याये स्थितयोः उपर्युक्तपद्ययोः अयं भावः—

(१) यदा रविः भद्राश्वोपरिगः सन् भद्राश्ववर्णनिवासिनां मध्याह्नं करोति, तदा भारतवर्णे तु उदयं करोति=(उदयकालं करोतीत्यर्थः) भद्राश्ववर्णनिवासिनां रात्र्यर्धं तु केतुमालवर्णे भ्रमन् सूर्यः करोति, कुरौ=(कुरुवर्णे)भ्रमन् सूर्यः केतुमालवर्ष-निवासिनाम् - अस्तमयं कालं करोति (सायाह्नकालं करोतीत्यर्थः)।तद्वदेव=तत्प्रका-रेण - एव, भारतादिषु सर्वेषु=(भारतवर्षोपरिगः, केतुमालवर्षोपरिगः, कुरुवर्षोपरिगः) प्रदक्षिणम्= (प्रदक्षिणाक्रमः यथा स्यात्तथा) परिभ्रमन् सन् रविः - मध्योदयार्धरात्र्य-स्तकालान् कुर्यात् ।

(२) यदा भारतवर्षोपरिगः सूर्यः भारतवर्णनिवासिनां मध्याह्नकालं करोति, तदा केतुमालवर्णनिवासिनां सूर्योदयकालं करोति, कुरुवर्णनिवासिनां - अर्धरात्रिकालं करोति, भद्राश्ववर्णनिवासिनां सूर्यास्तकालं करोति ।

(३)यदा केतुमालवर्षोपरिगः रविः केतुमालवर्णनिवासिनां मध्याह्नकालं करोति, तदा कुरुवर्णनिवासिनां सूर्योदयकालं करोति, भद्राश्ववर्णनिवासिनां - अर्धरात्रिकालं करोति, भारतवर्णनिवासिनां सायाह्नकालं करोति रविः ।

(४) यदा कुरुवर्षोपरिगः रविः कुरुवर्णनिवासिनां मध्याह्नकालं करोति, तदा भद्राश्ववर्णनिवासिनां सूर्योदयकालं करोति, भारतवर्णनिवासिनां अर्धरात्रिकालं करोति, केतुमालवर्णनिवासिनां सायाह्नकालं करोति रविः।

उपर्युक्तप्रकारेण - एव "मध्योदयार्धरात्र्यस्तकालान् कुर्यात् प्रदक्षिणम्" इत्यस्य स्पष्टीकरणं समुत्पन्नं भवति ।

(५) जम्बूद्वीपस्य भूगोलोपरि – सूर्यपरिभ्रमणविषये - ऋषिप्रणीतेषु पुराण-ग्रन्थेषु अतीन्द्रियैः ऋषिभिः यादृशी व्यवस्था कथिता, तादृशी एव व्यवस्था आर्षगणित-ग्रन्थे सूर्यसिद्धान्तेऽपि कथिता सूर्यांशपुरुषेण, अतः - पुराणग्रन्थैः सह सूर्यसिद्धान्तस्य एकवाक्यता सङ्गच्छते - एव ।

(६) सूर्यसिद्धान्तोपरिटीकाकारैः कैश्चित् महानुभावैः— उपर्युक्तयोः पद्ययोः— मार्गच्युता भ्रष्टा टीका कृता, अत एव - उपर्युक्तपद्ययोः अभिप्रायस्य सुस्पष्टीकरणं कृतं मयाऽत्र

सुन्दरी टीका—इसी छठे अध्याय के पृष्ठसंख्या - १६४ से १६६ वें पृष्ठ तक जम्बूद्वीप की परिधि पर सूर्य भ्रमण के अनुसार -प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, सायाह्नकाल और मध्यरात्रि की व्यवस्था के सम्बन्ध में जो भी विवेचन किया गया है, उस की पुष्टि सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय में स्थित सत्तर और इकत्तरवें श्लोकों से तथा इन श्लोकों की पूर्वोक्त व्याख्या से भी होती है ।

ः

"

।-
"

०

श ·

तीं

यां
र-
ना-

—

ानम्
त्र
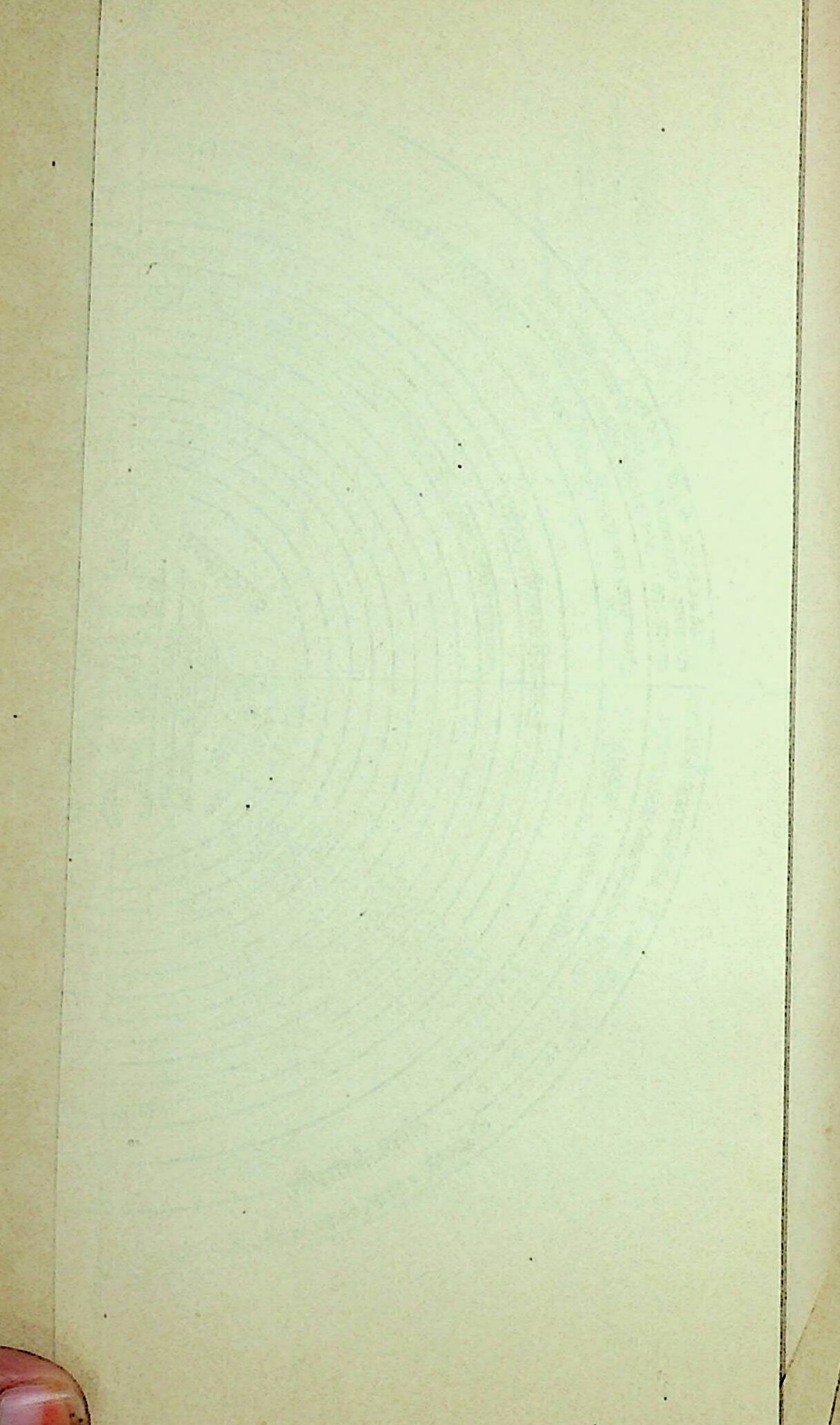
सुमेरुपर्वतकेन्द्रात्- दक्षिणस्यां दिशि मानसोत्तरपर्वते "संयमनी=यमराजपुरी" तिष्ठति। सुमेरुकेन्द्रात् तस्याः दूरी तु - एककोटि - सप्तोत्तरपंचाशत्लक्ष- पंचाशत्-सहस्र="१५७५०००० योजनप्रमिता"=२२९०९०९० किलोमीटराः १००गजाः" अस्ति।

हिमालयपर्वतकेन्द्रात्=भारतवर्षात्- संयमनीनगर्याः - दूरी तु—१५७१०००० योजनप्रमिता, = २२८५०९०९० कि० मी० १००० गजप्रमिता - अस्ति।

हे वैज्ञानिकाः! भवन्तः समर्थाः सन्ति चेत्तर्हि वायुयाने यमराजपुरीं गत्वा यमलोकं तत्र प्रपश्यन्तु।

इन्द्रलोकं गत्वा इन्द्रेण सह यथा प्राक्तने काले दिलीपप्रभृतयो नृपाः - वार्तां कुर्वन्तिस्म, तथैव हे वैज्ञानिकाः- भवन्तः अपि तत्र गत्वा कुर्वन्तु वार्ताम्।

"अमरीका-रूस-चीन-जापान - ब्रिटेन- प्रभृतयो देशाः - हिमालयतो दक्षिणस्यां दिशि दशसहस्र=१०००० योजन=१४५४५४ कि० मी० ६००गजाः। दक्षिणोत्तर-भूव्यासयुक्तभारतभूभागे- एव निवसन्ति, वर्तमानसमये प्रचलितेषु नक्साचित्रेषु "हिमालयस्तु" न वास्तविको हिमालयोऽस्ति।

सुमेरुकेन्द्रादेकपार्श्वस्थः— योजनात्मकः- प्रकाशयुक्तोभूगोलः = १२५००००००
भूगोलानन्तरं-लोकालोकपर्वतः स्थितः, लोकालोकपर्वतानन्तरं च
अन्धकारमयः पृथिवीरहितप्रदेशः = १२५००००००
उभयो र्योगः = २५०००००००

एवं च सुमेरुकेन्द्रात्- द्वितीयभागेऽपि योजनात्मकः
प्रकाशयुक्तः भूगोलः = १२५००००००
भूगोलानन्तरं लोकालोकपर्वतः स्थितः,
लोकालोकपर्वतानन्तरं च अन्धकारमयः
पृथिवीरहितः प्रदेशः योजनात्मकः- = १२५००००००
उभयोः योगः = २५०००००००

सुमेरोः एवपार्श्वस्थयोगः — २५0000000
सुमेरोः द्वीतीयपार्श्वस्थ योगः = २५0000000

सुमेरोः उभय पार्श्वस्थयोगः = ५00000000 = योजनात्मकं ब्रह्माण्डस्य मानम्

मत्स्यपुराणे त्रयोदशाधिकशततमे=(११३) अध्याये भारतवर्षभूगोल मानवर्णनम्

"अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ॥९॥
आयतस्तु कुमारीतो गङ्गायाः प्रवहावधिः।
तिर्यगूर्ध्वं तु विस्तीर्णः सहस्राणि दशैव तु ॥१०॥

उपर्युक्ते दशमे श्लोके – हिमालयकेन्द्रतः- दक्षिणीयसमुद्रतटं यावत्तावद्-दश-सहस्रयोजन- भूभागयुक्तस्य भारतवर्षस्य विभागक्रमोऽयं वर्णितः ।

१४५४५४ किलोमीटर ६००ग० । दक्षिणोत्तरभूभागयुक्तमृत्युलोकस्य ब्रह्माण्डस्य च स्थितिं - अजानन्तः - स्वल्पतममेव भूमानं प्रणिगदन्तो नव्यास्तु कूपमण्डूकाः- इव भ्रान्ताः- एव भूगोलमाननिर्णयावसरे ।

स्वादूदकस्य परितः १५७५०००० योजनप्रमिता भूमिः प्राणिनां निवासयोग्या अस्ति । तदनन्तरं – ८३९००००० योजनप्रमिता भूमिः काञ्चनी "स्वर्णमयी" आदर्शतलोपमा - सर्वविधप्राणिवर्जिता अस्ति । "यावन्मानसोत्तरमेर्वोरन्तरं तावती भूमिः काञ्चनी । अन्या-आदर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथंचित् पुनः प्रत्युपलभ्यते, तस्मात् सर्वसत्वपरिहृता- आसीत्" भागवते- पंचमस्कन्धे ३५ गद्ये- श्रीशुकदेवोक्तेः ।

मानसोत्तरपर्वतविषये, काञ्चनीभूमिविषये, लोकालोकपर्वतविषये च - विष्णुपुराणे द्वितीये अंशे चतुर्थे अध्याये विचारः

मानसोत्तरसंज्ञो वै मध्यतो वलयाकृतिः ।
योजनानां सहस्राणि दशचोर्ध्वं समुच्छ्रितः ॥७६॥
तावदेव च विस्तीर्णः सर्वतः परिमण्डलः ।
पुष्करद्वीपलयं मध्येन विभजन्निव ॥७७॥
स्वादूदकस्य परितः दृश्यते लोकसंस्थितः ।
द्विगुणा काञ्चनी भूमिः सर्वजन्तुविवर्जिता ॥९४॥
लोकालोकस्ततः शैलो योजनायुतविस्तृतः ।
उच्छ्रायेणापि पञ्चाशत् सहस्राण्यचलोहि सः ॥९५॥
ततस्तमः समावृत्य तं शैलं सर्वतः स्थितम् ।
तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात् परिवेष्टितम् ॥९६॥
पञ्चाशत्कोटिविस्तारा सेयमुर्वी महामुने ।
सहैवाण्डकटाहेन सद्वीपाब्धिमहीधरा ॥९७॥

—मानसोत्तरपर्वतः (भागवते पं. स्क. २० अ./३० ग)

तद्द्वीपमध्ये मानसोत्तरनामैक एव - अर्वाचीन - पराचीन - वर्षयोः मर्यादाचलः, अयुतयोजनोच्छ्राय - आयामः, यत्र तु - चतसृषु दिक्षु - चत्वारि पुराणि लोकपालानां - इन्द्रादीनां - यत् - उपरिष्टात् - सूर्यरथस्य मेरुं परिभ्रमतः संवत्सरात्मकं चक्रं देवानां अहोरात्राभ्यां परिभ्रमति ॥३०॥

लोकालोकपर्वतः (भा. पं. स्क. २० अ. ३४, ३५, ३६, ३७, ३८ग.)

ततः परस्तात् - "लोकालोक" नामाचलः - लोकालोकयोः अन्तराले परितः उपक्षिप्तः ॥३४॥

यावत् मानसोत्तरमेर्वोः - अन्तरं तावती भूमिः काञ्चनी, अन्या-आदर्शनलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थः न कथञ्चित् पुनः प्रत्युपलभ्यते, तस्मात् सर्वसत्वपरिहृता- आसीत् ॥३५॥

लोकालोक इति समाख्या, यत् अनेन अचलेन
लोकालोकस्य - अन्तर्वर्तिना - अवस्थाप्यते ॥३६॥

स लोकत्रयान्ते परितः - ईश्वरेण विहितः
यस्मात् सूर्यादीनां ध्रुवापवर्गाणां ज्योतिर्गणानां—
गभस्तयः - अर्वाचीनान् त्रीन् लोकान्
अवितन्वानाः - न कदाचित् पराचीनाः भवितुं— उत्सहन्ते, तावत् उन्नहनायामः ॥३७॥

एतावान् लोकविन्यासः - मान - लक्षणसंस्थाभिः विचिन्तितः कविभिः, स तु पञ्चाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः ॥३८॥

योगवासिष्ठे - निर्वाण प्रकरणोत्तरार्धे - १२६ अध्याये २५ श्लोकान्तं यावत्तावत् लोकालोकपर्वतविषये विचारः

प्रधानदेवो भूत्वाऽसौ लोकालोकगिरिं गतः ।
अस्य भूमण्डलतरो रालवालमिव स्थितम् ॥२५॥
स पञ्चाशत् सहस्राणि योजनानां समुन्नतः ।
आलोकलोकाचाराढ्यो भाग एकोऽस्य नेतरः ॥२६॥
लोकालोकशिरः प्राप्तं तारकामार्गसंस्थितम् ।
अधः स्थिता अपश्यन् तमुच्चनक्षत्रशङ्कया ॥२७॥
तस्मात् प्रदेशात् तत्पारे तमस्तस्य महागिरेः ।
चतुर्दिक्कं महाखातं नभः शून्यमनन्तकम् ॥२८॥
ततो भूगोलकोऽयं हि समाप्तो वर्तुलाकृतिः ।
नभः शून्यं महाखातं ततस्त्रिभिरपूरितम् ॥२९॥
तत्राऽलिकज्जल - तमाल - नभोऽन्तराल—
नीलं तमो न च मही न च जङ्गमादि ।
नालम्बनं न च मनागपि वस्तुजातम्—
किञ्चित् कदाचिदपि सम्भवतीति विद्धि ॥३०॥

पूर्वोक्त भूमियों के योजनात्मक मानों का योग

(५) सुमेरु केन्द्र से स्वादूदक के अन्त तक = २५३५००००
स्वादूदक के अन्त में सुवर्णमयी भूमि = १५७५००००
सुवर्णमयी भूमि के बाद-आदर्शतलोपमाभूमि = ८३६०००००

सबप्रकार की भूमियों के योजनों का योग = १२५००००००
इस के बाद लोकालोकपर्वत और अन्धकारभाग = १२५००००००

प्रकाशमयभूभाग और अन्धकारमय भूरहित भागों का योग = २५०००००००
सुमेरुकेन्द्र के दूसरी तरफ भी इतना ही मान है. २५०००००००

दोनों का योग = ५०००००००० = पचास करोड़ योजन

(६) मानसोत्तरपर्वत - दशहजारयोजन ऊंचा और इतना ही चौड़ा है।

(७) लोकालोकपर्वत - पचासहजारयोजन ऊँचा और दशहजारयोजन चौड़ा है।

ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत पच्चीसकरोड़योजन =(२५०००००० योजन) प्रकाश-युक्तप्रदेश है, और पच्चीसकरोड़योजन=(२५०००००० योजन) अन्धकारमय प्रदेश है, इस अन्धकारमय प्रदेश में भूमि और किसी भी जीव जन्तु का अस्तित्व नहीं रहता है, केवल योगी ऋषि ही इस प्रदेश तक योगबल से पहुँच सकते हैं।

उपर्युक्त प्रकार से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत कुल पचासकरोड़ योजन का मान है।

मानसोत्तरपर्वत, सर्वजन्तुरहित काञ्चनी भूमि, और लोकालोकपर्वत के विषय में विवेचन

सुन्दरी टीका— (१) पुष्करद्वीप के मध्य में भूगोल से दशहजारयोजन ऊंचा और दशहजारयोजन विस्तार वाला वृत्ताकार मानसोत्तर पर्वत है।

(२) इसी छठे अध्याय के पूर्वपृष्ठ पर अङ्कित-सप्तद्वीपों के चित्र को देखिये। सुमेरुपर्वत के केन्द्र से स्वादूदक समुद्र की समाप्ति तक दो करोड़ - त्रेपन लाख-पचास हजार - योजन - भूगोल = (२५३५०००० योजन भूगोल) स्थित है।

(३) वृत्ताकार स्वादूदक समुद्र के चारों तरफ एककरोड़ - सत्तावनलाख पचासहजार-योजन = (१५७५०००० योजन) काञ्चनमयी भूमि=(सुवर्णमयीभूमि) वृत्ताकार रूप में स्थित है, अतीन्द्रिय महर्षियों ने इस भूमि पर भी जीवों का निवास होना बताया है।

(४) जीवनिवासयोग्य - पूर्वोक्त काञ्चनमयी भूमि के बाद - आठकरोड़-उनतालीसलाख - योजन= (८३९००००० योजन) आदर्शतलोपमा = (मुंह देखने वाले शीशा =दर्पण की तरह चमकती हुई) भूमि को प्रत्यक्ष देखने वाले अतीन्द्रिय महर्षियों ने अपने निबन्धग्रन्थों में लिखकर जनता जनार्दन को ज्ञान कराया है, आदर्श-तलोपमा इस भूमि पर स्वर्गलोक निवासी देवता जब तब क्रीडा= (खेलकूद) किया करते हैं।

इस भूमि पर अन्य किसी भी प्रकार का जीव नहीं रहता है। इसी लिये इस आदर्शतलोपमा - काञ्चनमयी = (सुवर्णमयी) भूमि को सर्वसत्वपरिहृता - कहा गया है।

श्रीमद्भागवत के पञ्चम स्कन्ध में बीसवें अध्याय में तेतालीसवें श्लोक में ब्रह्माण्ड के गणित का विवेचन

अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्यो र्यदन्तरम्।
सूर्याण्डगोलयो र्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः ॥४३॥

अस्य श्लोकस्य - अयं भावः—

द्यावाभूम्योः पूर्वोत्तरकपालयोः - यत् अन्तरम्=यत् - मध्यस्थानम् =(सार्ध-

द्वादशकोटि= १२५०००००० योजनात्मकं प्रकाशमयं ब्रह्माण्डस्य पूर्वकपालेस्थितम्-सार्धद्वादशकोटि १२५०००००० योजनात्मकं ब्रह्माण्डस्य - उत्तरकपाले= द्वितीयेकपाले स्थितम्, इत्थं - पूर्वोत्तरकपालस्थ - प्रकाशमय - ब्रह्माण्डभागस्य - १२५०००००० + १२५०००००० = २५००००००००=पञ्चविंशतिकोटियोजनात्मकं मानं ब्रह्माण्डस्य मध्यगतं - अस्ति) तदन्तर्गतः एव सूर्यः ब्रह्माण्डगोलार्धभागं पंचविंशतिकोटि-योजनात्मकं स्वरश्मिभिः - प्रकाशयति ।

प्रकाशमयभागयोः-उभयपार्श्वस्थः पञ्चविंशतिकोटियोजनात्मकः- प्रकाशाभाव-युक्तः अन्धकारमयः- ब्रह्माण्डस्य भागः अवशिष्यते, अस्मात् - एव - अवशिष्टभागात्- "सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये - कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः" अस्य कथनस्य चरितार्थता सिद्ध्यति ।

सुन्दरी टीका— ब्रह्माण्ड के बीच में स्थित पच्चीसकरोड़ योजन भूगोल को सूर्य प्रकाशित करता है, शेष पच्चीसकरोड़योजन ब्रह्माण्ड का भाग सूर्य से अप्रकाशित है, इस लिये सूर्य और उस अप्रकाशित भाग में पच्चीसकरोड़ योजन का अन्तर है ।

भूव्यास - भूपरिधिविषये - लल्ल - भास्कर - कमलाकराणां परस्परं मतभेदः

१—सिद्धान्तशिरोमणौ ग्रहगणिते मध्यमाधिकारे प्रथमे श्लोके श्रीभास्कराचार्यः कुभुजङ्गसायकभुवः-"१५८१" प्रमितो भूव्यासः सप्ताङ्गनन्दाब्धयः "४९६७" प्रमितश्च भूपरिधिः समुक्तः ।

२—गोलाध्याये भुवनकोशे तु सप्तङ्गनन्दाब्धयः "४९६७" योजनप्रमितो भूपरिधिः समुक्तः, भूव्यासस्तु-कुभुजङ्गसायकभुवः सिद्धांशकेनाधिकाः "१५८१ + १/२४" योजन-प्रमितः समुक्तः ।

लल्लेन तु——

३—"नगशिलीमुख - वाणभुजङ्गम - ज्वलन-वह्नि - रसेषु गजाश्विनः ।
कुवलयस्य वहिः परियोजनान्यथजगुः खलुकन्दुकजालवत् ॥"

इत्युक्तेः - २८५६३३८५५७ योजनप्रमितं भूमण्डलस्य कन्दुकजालसदृशं परि-धिमानं समुक्तम् ।

४—श्री कमलाकरभट्टैस्तु सिद्धान्ततत्त्वविवेके मध्यमाधिकारे रामरसचन्द्र "१६३" प्रमिते श्लोके......

"योजनानिशतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु ।
नन्देषुखेषवश्चाष्टाग्नयो भूपरिधि र्भवेत्" ॥११३॥

इति-उक्त्वा षोडशशत "१६००" योजनप्रमितः भूव्यासः, ३८५०५९ योजन-प्रमितश्च भूपरिधिः समुक्तः ।

उपर्युक्तरीत्या श्री भास्कराचार्य - श्री लल्लाचार्य-श्री कमलाकरभट्ट-प्रभृतीनां सर्वेषां विदुषां परस्परं महान् मतभेदो दरीदृश्यते भूव्यास - भूपरिधिविषये ।

सूर्यसिद्धान्ते एव - वास्तविक-भूव्यास - भूपरिधि-निर्णयः

सूर्यसिद्धान्ते तु......

"योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु ॥"

इति - ऊक्त्वा षोडशशतयोजन=१६०० योजनप्रमितो भारतस्य भूकर्णः= भूव्यासः समुक्तः, स एव - भट्टेनापि समादृतः । स एव - षोडशशतयोजनप्रमितः कर्णः पुराणशब्दवाच्यैः सर्वैः आर्षग्रन्थैः अपि सिद्ध्यति ।

सूर्यसिद्धान्तीय - भूव्यास - गणितम्

अत्र अयं विशेषोऽवधेयो विज्ञैः - यदि - एकलक्षयोजनप्रमिते जम्बूद्वीपविस्तारे षोडशसहस्रयोजनप्रमितं जम्बूद्वीप - केन्द्रस्थित-भूकर्णमानं-अर्थात् - भूव्यासमानं लभ्यते, चेत्तर्हि - दशसहस्रयोजनप्रमिते भारतवर्षविस्तारे भारतकेन्द्रगतभूकर्णमानम् - अर्थात् - भूव्यासमानं किम् इति त्रैराशिकगणितस्य-अनुपातेन=१६००० × १००००/१००००० =१६००=षोडशशतयोजन-प्रमितं भूकर्णमानम् लब्धं भवति भारतवर्ष -भूमिविस्तारे।

अयमेव सूर्यसिद्धान्तोक्तः पक्षः साधीयान् सिद्ध्यति । तदनुसारेण दशसहस्र - "१००००" योजन - दक्षिणोत्तर- विस्तारयुक्तस्य भारतवर्षस्य षोडशशत='१६००' योजनात्मकः - दक्षिणोत्तरकेन्द्रगत - भूव्यासः उक्तगणितेन सिद्धो भवति ।

अतः सूर्यसिद्धान्तोक्तः पुराणोक्तश्च केन्द्रगतभूव्यासः-एव साधुतमो दरीदृश्यते । श्री भास्कराचार्यप्रभृतिभिः - विद्वद्भिः श्रीसूर्यसिद्धान्त - पुराणाद्यार्ष - ग्रन्थविरुद्धौ यौ भूव्यास - भूपरिधी समुक्तौ, तौ तु अविचारितरमणीयौ - अयुक्तौ भ्राग्मिप्रदौ च स्तः - आर्षमतविरुद्धत्वात्,-मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना - इति दोषाच्च, इति मध्यस्थया-धिया विवेचनीयं विज्ञैः ।

भारतवर्षस्य दशसहस्रयोजनभूव्यास - प्रतिपादनप्रकारः

एकलक्ष=100000 योजनप्रमितस्य वृत्ताकारस्य जम्बूद्वीपस्य नव - वर्ष - सीमासु "नवखण्डसीमासु" संस्थितानां मर्यादापर्वतानां यानि विस्तारमानानि सन्ति, तानि स्वपार्श्ववर्तिषु वर्षेषु "खण्डेषु" समानतो विभक्तानि सन्ति ।

यथाहि हिमालयस्य विस्तारः......

१—द्विसहस्रयोजनप्रमितः "२000 योजनप्रमितः" अस्ति, सीमाभूतस्य तस्य हिमालयस्य - एकसहस्रयोजनप्रमितो भागो भारतवर्षेऽस्ति । अतः भारतवर्षस्य विस्तारमानम् = ६000 + १000 = १0000 योजनप्रमितं वर्तते, इत्थं दशसहस्रयोजनप्रमितं भारतवर्षस्य दक्षिणोत्तर - विस्तृतिमानं - अस्तीति विज्ञेयम् विज्ञैः ।

उपर्युक्तं गणितसिद्धान्तमनुसृत्यैव सूर्यसिद्धान्ते "योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु" अर्थात् - अष्टौ शतानि योजनानि द्विगुणानि कृतानि भारतवर्षस्य केन्द्र-स्थितभूकर्णमानं भवति ।

=......८०० × २ = १६०० योजनानि भूकर्णमाने सन्ति भारतवर्षे ।

उपर्युक्तगणितेन समुत्पन्नः सिद्धान्तपक्षः एव सूर्यसिद्धान्ते समुक्तः - भगवता सूर्यांशपुरुषेण ।

जम्बूद्वीपे किम्पुरुषादिवर्षाणां भूव्यासमानस्य ज्ञानप्रकारः

२—नवसहस्रयोजनप्रमिते किंपुरुषवर्षमाने एकसहस्रयोजनप्रमितं सीमाभूतस्य हिमालयपर्वतस्य - अवशिष्टं मानं संयोज्य, तस्मिश्च माने - सीमाभूतस्य हेमकूटपर्वतस्य - द्विसहस्रयोजन - प्रमित - विस्तार - मध्यात् - एकसहस्रयोजन - प्रमितं मानं संयोज्य, एकादशसहस्रयोजन - प्रमितं किंपुरुषवर्षस्य विस्तारमानं समायाति । तस्यैवात्र गणितेन स्पष्टीकरणं करोमि......

=९०००+१०००+१०००=११००० योजनप्रमितं किंपुरुषवर्षस्य विस्तारमानम् - सिद्ध्यति ।

३—इत्थमेव - नवसहस्रयोजनविस्तार - प्रमिते हरिवर्षमानेऽपि - हेमकूट पर्वतस्य विस्तारार्धं - एकसहस्रयोजनप्रमितम्, निषधपर्वतस्य च विस्तारार्धं, एकसहस्रयोजनप्रमितम् संयोज्य, एकादशसहस्रयोजनप्रमितं - हरिवर्षस्य विस्तारमानं सिद्ध्यति । =९०००+१०००+१०००=११००० योजनप्रमितं - हरिवर्षस्य विस्तारमानं समायाति ।

४—एकसहस्रयोजनप्रमितं - अवशिष्टं निषधपर्वतस्य विस्तारार्धं - सुमेरुपर्वतात् - दक्षिणस्यां दिशि स्थिते - नवसहस्रयोजनप्रमिते इलावृतंवर्षमाने संयोज्य, सुमेरुतः दक्षिणस्थदिशि - दशसहस्रयोजनप्रमितं इलावृतंवर्षमानं समायाति । =९०००+१०००=१०००० योजनप्रमितम् ।

इत्थं पश्चिमदिशि माल्यवान्पर्वतस्य विस्तारार्धं - एकसहस्रयोजनप्रमितं सुमेरुतः पश्चिमदिशास्थे - नवसहस्रयोजनप्रमिते - इलावृतवर्षमाने संयोज्य दशसहस्रयोजनप्रमितं - सुमेरुतः पश्चिमे इलावृतवर्णमानं सिद्ध्यति । = ९०००+१००० =१०००० योजनप्रमितम् । सुमेरुतः - उत्तरस्यां दिशि स्थिते नवसहस्रयोजनप्रमिते - इलावृतवर्षमाने नीलपर्वतस्य - विस्तारार्धं संयोज्य - दशसहस्रयोजनप्रमितं इलावृतवर्षस्य मानं - सुमेरुतः उत्तरस्यां दिशि सिद्ध्यति =९०००+१०००=१०००० योजनप्रमितम् इलावृतवर्षमानं सुमेरुतश्चोत्तरस्यां दिशि वर्तते ।

इत्थं च सुमेरुतः पूर्वस्यां दिशि स्थिते नवसहस्रयोजनप्रमिते - इलावृत - वर्षमाने एकसहस्र - योजनप्रमितं गन्धमादनपर्वतस्य विस्तारार्धं संयोज्य, दशसहस्र योजनप्रमितं सुमेरुतः पूर्वस्यां दिशि - इलावृतवर्षमानं सिद्ध्यति । =९०००+१०००= १००००=इलावृतवर्षमानं सुमेरुतः पूर्वस्यां दिशि सिद्ध्यति ।

५—एकत्रिंशत् - सहस्रयोजनप्रमिते केतुमालवर्षमाने एकसहस्रयोजनप्रमितं माल्यवान्पर्वतस्य विस्तारार्धं संयोज्य, द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनप्रमितं केतुमालवर्षमानं सिद्ध्यति=३१०००+१०००=३२००० योजनप्रमितम् केतुमालवर्षस्य मानं समायाति ।

६—एकत्रिंशत्सहस्रयोजनप्रमिते भद्राश्ववर्षभागे एकसहस्रयोजन-प्रमितं गन्धमादनपर्वतस्य विस्तारार्धं संयोज्य, द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनप्रमितं - भद्राश्ववर्षस्य मानं समायाति =३१०००+१०००=३२००० योजनप्रमितं भद्राश्ववर्षस्य मानं सिद्ध्यति ।

७—नवसहस्रयोजनविस्तारयुक्ते रम्यकवर्षमाने एकसहस्रयोजनप्रमितं नील-पर्वतस्य विस्ताराधं एकसहस्रयोजनप्रमितं श्वेतपर्वतस्य विस्ताराधं च संयोज्य एकादश-सहस्रयोजनप्रमितं रम्यकवर्षस्य मानं सिद्धयति, = ९००० + १००० + १००० = ११००० योजनप्रमितं रम्यकवर्षस्य विस्तारमानं सिद्धयति ।

८—नवसहस्रयोजनविस्तारप्रमिते हिरण्यकवर्षमाने एकसहस्रयोजनप्रमितं श्वेत-पर्वतस्य - विस्ताराधं तथा च एकसहस्रयोजनप्रमितं शृङ्गवान्नामकस्य पर्वतस्य विस्ताराधं संयोज्य - एकादशसहस्रयोजनप्रमितं हिरण्यकवर्षस्य विस्तारमानं सिद्धयति । ९००० + १००० + १००० = ११००० योजनप्रमितं हिरण्यकवर्षस्य विस्तारमानं समायाति ।

९—नवसहस्रयोजनविस्तारयुक्ते कुरुवर्षमाने एकसहस्रयोजनप्रमितं शृङ्गवान् नामकस्य पर्वतस्य विस्ताराधं संयोज्य, दशसहस्रयोजनप्रमितं कुरुवर्षस्य विस्तारमानं सिद्धयति । ९००० + १००० = १०००० योजनप्रमितं कुरुवर्षस्य विस्तारमानं समायाति ।

उपर्युक्तगणितरीत्या - नवधाविभक्तस्य = नवखण्डात्मकस्य - अर्थात् नववर्षा-त्मकस्य जम्बूद्वीपस्य प्रत्येकवर्षमानस्य - स्पष्टीकरणं योजनमानेन कृतं समुपलभ्यते - उपर्युक्ते गणिते ।

मत्स्यपुराणे द्वादशाधिकशततमे "११२" प्रमितेऽध्याये जम्बूद्वीपस्य स्थितिवर्णनम् वक्ष्यमाणमस्ति

द्वीपभेदसहस्राणि सप्त चान्तर्गतानि च ।
न शक्यते क्रमेणेह वक्तुं वै सकलं जगत् ।।४।।
सप्तवर्षाणि वक्ष्यामि जम्बूद्वीपं यथा विधम् ।
विस्तरं मण्डलं यच्च योजनै स्तन्निबोधत ।।७।।
योजनानां सहस्राणि शतं द्वीपस्य विस्तरः ।
नानाजनपदाकीर्णं पुरैश्च विविधैः शुभैः ।।८।।
सिद्धचारणसङ्कीर्णं पर्वतैरुपशोभितम् ।
सर्वधातुपिनद्धै स्तैः शिलाजालसमुद्गतैः ।।९।।
पर्वतप्रसवाभिश्च नदीभिस्तु समन्ततः ।
प्रागायता महापार्श्वाः षडिमे वर्षपर्वताः ।।१०।।
अवगाह्य ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ।
हिमप्रायश्च हिमवान् हेमकूटश्च हेमवान् ।।११।।
चातुर्वर्ण्यस्तु सौवर्णो मेरुश्चोल्वमयः स्मृतः ।
चतुर्दिक्षुसहस्राणि विस्तीर्णः षोडशैव तु ।।१२।।
वृत्ताकृतिप्रमाणश्च चतुरस्रः समाहितः ।।१३।।
"उल्वमयः = जम्बूद्वीपस्य गर्भे मध्ये स्थितः" इत्यर्थः ।
एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः
तेषामन्तरविष्कम्भो नवसाहस्रमुच्यते ।।१८।।

मध्ये त्विलावृतं वर्षं महामेरोः समन्ततः ।
चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि विस्तीर्णो योजनैः समः ॥१९॥
मध्ये तस्य महामेरु र्विधूम इव पावकः ।
वेद्यर्धं दक्षिणं मेरोरुत्तरार्धं तथोत्तरम् ॥२०॥
वर्षाणि यानि सप्तात्र तेषां वै वर्षपर्वताः ।
द्वि - द्वि - सहस्र - विस्तीर्णा योजनै र्दक्षिणोत्तरम् ॥२१॥
जम्बूद्वीपस्य विस्तारस्तेषामायाम उच्यते ।
नीलश्च निषधश्चैव तयोर्हीनाश्च ये परे ॥२२॥
श्वेतश्च हेमकूटश्च हिमवान् शृङ्गवांश्च यः ।
जम्बूद्वीपप्रमाणेन - ऋषभः परिकीर्तितः ॥२३॥

"शृङ्गीतु - ऋषभो वृषः" इति - अमरकोषोक्तेः ऋषभशब्दोऽत्र वृषभ-वत्सवाचकोऽस्ति, यतोहि-जम्बूद्वीपस्य विस्तारमानात् - श्वेतः हेमकूटः हिमवान्, शृङ्गवान्, नीलः, निषधश्च, एते पर्वताः- कनिष्ठाः सन्ति, वृषभवत्स शब्देन - एषां पर्वतानाम्-कल्पना - व्यवहारेऽस्ति, अतएव कुमारसम्भवे काव्ये......

"यं सर्वशैलाः परिकल्प्यवत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे" ।

अत्र महाकविकालिदासैः - हिमालय पर्वतस्य प्रयोगः "वत्स" शब्देन कृतः ।

तस्माद् द्वादशभागेन हेमकूटोऽपहीयते ।
हिमवान् विंशभागेन तस्मादेव प्रहीयते ॥२४॥
अष्टाशीतिसहस्राणि हेमकूटो महागिरिः
अशीति र्हिमवान् शैल आयतः पूर्वपश्चिमे ॥२५॥
द्वीपस्य मण्डलीभावाद् ह्रासवृद्धी प्रकीर्तिते ॥२६॥

भूव्यास और भूपरिधि के विषय में भास्कराचार्य - लल्लाचार्य और कमलाकरभट्ट में परस्पर मतभेद

सुन्दरी टीका—१—श्री भास्कराचार्य ने सिद्धान्त शिरोमणि में ग्रहगणित - मध्यमाधिकार के प्रथम श्लोक में "भूव्यास १५८१ योजन" और "भूपरिधि ४९६७ - योजन" कहा है ।

२—सिद्धान्त शिरोमणि के गोलाध्याय में भुवनकोश में "१५८१ + १/४ योजन भूव्यास" और "४९६७ योजन भूपरिधि" कहा है ।

३—लल्लाचार्य ने—२८५६३३८५५७ योजनात्मक भूपरिधि को माना है ।

४—श्री कमलाकरभट्ट ने सिद्धान्ततत्वविवेक के मध्यमाधिकार में—१६३ वें श्लोक में भूव्यास को १६०० योजन, और भूपरिधि को ३८५०५९ योजन माना है ।

उपर्युक्त प्रकार से भूव्यास और भूपरिधि के विषय में उक्त विद्वानों के अनार्ष-गणितग्रन्थों में परस्पर महान् मतभेद है ।

आर्षगणितग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त और पुराणग्रन्थों में एकवाक्यता

५—आर्षगणितग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त और व्यासादिप्रणीत - आर्षपुराणग्रन्थों में—

सम्पूर्ण जम्बूद्वीप का एक लाख योजन "व्यास" मानकर, जम्बूद्वीप के केन्द्रस्थान स्वरूप "सुमेरुपर्वत" का सोलह हजार योजन व्यास माना है।

६—भारतवर्ष की उत्तरी सीमा पर "सीमास्तम्भ=मेंढ़" के रूप में दो हजार योजन चौड़े हिमालय पर्वत का आधा भाग जो कि एक हजार योजन होता है, इस एक हजार योजन को नौ हजार योजन दक्षिणोत्तर चौड़ाई वाले भारत वर्ष के मान में जोड़ने पर दश हजार योजन=१००० योजन + ९००० योजन=१०००० योजन, भारतवर्ष का दक्षिणोत्तर व्यास मान सिद्ध होता है।

त्रैराशिक गणित से भारतवर्ष के व्यास का मान

चूंकि एक लाख योजन=१००००० योजन, दक्षिणोत्तर व्यास वाले जम्बूद्वीप के केन्द्र में सोलह हजार योजन=१६००० योजन, सुमेरुस्वरूप भूकर्णव्यास=भूकेन्द्र-व्यास, प्राप्त होता है, तो दशहजार योजन = १०००० योजन दक्षिणोत्तर व्यास वाले भारतवर्ण का भूकेन्द्र व्यास=भूकर्णव्यास का मान कितने योजन होगा—

१६०००×१००००/१०००००=१६०० योजनप्रमितम्-- भारतवर्ण भूकर्णमानम्।

ब्रह्माण्ड की गणित के उपर्युक्त त्रैराशिक सिद्धान्त को ध्यान में रखकर, सूर्यांश-पुरुष ने सूर्यसिद्धान्त में दशहजार योजन दक्षिणोत्तर चौड़े भारतवर्ण को मानकर भारतवर्ण के केन्द्र के कर्ण = व्यास के सम्बन्ध में कहा है कि—"योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु" आठ सौ योजनों को दूना करने पर जितनी संख्या योजनों की होती है, उतने ही योजन भारत के केन्द्र के व्यासमान = भूकर्णमान के होते हैं। तदनुसार—८०० योजन×२=१६०० योजन। भारत का भूकर्णमान=भूकेन्द्र व्यास मान, सिद्ध होता है।

जम्बूद्वीप के शेष आठ वर्षों का सीमा सहित योजनात्मक मान

(७) किम्पुरुषवर्ष की दक्षिणी सीमा पर हिमालय पर्वत और उत्तरी सीमा पर हेमकूटपर्वत स्थित हैं, इन दोनों पर्वतों से एक एक हजार योजन किम्पुरुष वर्ष के नौ हजार योजनों में जोड़ने पर ९०००+१०००+१०००= ११००० योजनामक किम्पुरुष वर्ष का मान सिद्ध होता है।

(८)हरिवर्ष के दक्षिण में हेमकूट और उत्तर में निषधपर्वत हैं, इन दोनों पर्वतों के एक एक हजार योजन हरिवर्ष के योजनों में जोड़ने पर ९०००+१०००+१००० =११००० योजन हरिवर्ष के सिद्ध होते हैं।

(९)सुमेरुपर्वत से दक्षिण दिशा की ओर स्थित इलावृत वर्ष के नौहजारयोजनों में एक हजार योजन निषधपर्वत के जोड़ने पर - ९०००+१०००= १०००० योजन सुमेरु से दक्षिण में स्थित - इलावृतवर्ण के होते हैं।

(१०)सुमेरुपर्वत से पश्चिम की ओर स्थित इलावृतवर्ण के नौहजारयोजनों में एक हजार योजन माल्यवान् पर्वत की सीमा के जोडने पर - ९०००+१००० =

१0000 योजन- पश्चिमदिशास्थ - इलावृतवर्ण के होते हैं।

(११) सुमेरु से उत्तर दिशा में स्थित इलावृतवर्ण के नौ हजार योजनों में- नीलपर्वत के एक हजार योजन जोड़ने पर – ९000+१000=१0000 योजन इलावृतवर्ण के सुमेरु से उत्तर दिशा में होते हैं।

(१२) सुमेरु से पूर्व की ओर स्थित इलावृतवर्ण के नौ हजार योजनों में इलावृत से पूर्व की ओर स्थित गन्धमादन पर्वत के एक हजार योजन जोड़ने पर- सुमेरु से पूर्व दिशा में - इलावृत वर्ण के दश हजार योजन होते हैं, ९000 योजन+१000 योजन = १0000 योजन।

(१३) माल्यवान् पर्वत की आधी सीमा के एक हजार योजन केतुमाल वर्ण के योजनों में जोड़ने पर – ३१000+१000= ३२0000 योजन केतुमाल वर्ण के होते हैं।

(१४) गन्धमादन पर्वत की सीमा के आधे एक हजार योजन को - भद्राश्व– वर्ण के योजनों में जोड़ने पर – ३१000+१000=३२000 योजन भद्राश्ववर्ण के के होते हैं।

(१५) इसी प्रकार रम्यकवर्ण के नौ हजार योजनों में एक हजार योजन नील पर्वत और एकहजार योजन श्वेतपर्वत की आधी सीमा के जोड़ने पर – ९000+ +१000+१000=११000 योजन रम्यकवर्ण के होते हैं।

(१६) श्वेतपर्वत की आधी सीमा के एक हजार - योजन और शृङ्गवान्पर्वत की आधी सीमा के एकहजार वर्षों को हिरण्यकवर्ण के नौ हजार योजनों में जोड़ने पर - १000+१000+९000=११000 योजन हिरण्यकवर्ण के होते हैं।

(१७) शृङ्वान् पर्वत की आधी सीमा के एकहजार योजनों को कुरुवर्ण के नौ हजार योजनों में जोड़ने पर १000+९000= १0000 योजन कुरुवर्ण के होते हैं।

(१८)उपर्युक्त प्रकार से नौ विभागों में विभक्त जम्बूद्वीप के प्रत्येक भाग में योजनात्मकमान का विस्तृत विवेचन पूर्वोक्त गणित द्वारा किया गया है।

मत्स्यपुराण के ११२ वें अध्याय में जम्बूद्वीप का विवेचन

मत्स्यपुराण के एक सौ वारह वें अध्याय में चौथे श्लोक से छब्बीस वें श्लोक तक जो कुछ भी विवेचन किया गया है, उस समस्त विवेचन की एकवाक्यता अन्य पुराणों से तथा जम्बूद्वीप के चित्र से बिल्कुल ठीक सिद्ध होती है।

हिमालयपर्वतविषये कनखलविषये च प्रचलित-भ्रान्तिनिवारणं करोमि

"कुमारसम्भवम्" नामतः प्रसिद्धे स्वविरचिते काव्यग्रन्थे प्रथमसर्गस्य प्रथम-श्लोके कहाकवि - कालिदासमहोदयाः - लिखन्ति—

"अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः" ॥१॥

अस्य श्लोकस्य अयं भावः — उत्तरस्यां दिशि हिमालयो नाम नगाधिराजः- पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य=(पूर्वीयक्षारसमुद्रे प्रविश्य, पश्चिमीमयक्षारसमुद्रेच प्रविश्य) पृथिव्याः= (मृत्युलोकभूमेः = भारतभूमेः) मानदण्डः इव= (मर्यादाचलः- इव= भारतभूमिसीमानिर्धारकः इव) स्थितः = (निश्चलरूपेण - अवस्थितः) अस्ति ।

"मेघदूतम्" नामतः प्रसिद्धे स्वतिरचिते काव्यग्रन्थे पूर्वमेघप्रभागे=युत्तरपंचाशत् "५३" प्रमिते श्लोके महाकवि - कालिदास - महोदयाः- लिखन्ति—

"तस्माद् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णाम् -
जह्नोः कन्यां सगरतनय - स्वर्गसोपान - पङ्क्तिम् ।
गोरीवक्त्र- भ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः-
शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥५३॥

अस्य श्लोकस्यटीकावसरे सुप्रसिद्धटीकाकाराः मल्लिनाथमहोदयाः लिखन्ति- तस्मात् = कुरुक्षेत्रात् - कनखलस्य= अग्रेः, समीपे= अनुकनखलम्, अत्र "अनु यत् समया - २।१।१५" इति सूत्रेण - अव्ययीभावसमासः, शैलराजात्=हिमवतः=हिमालयपर्वतात्, अवतीर्णां सगरतनयानां स्वर्गसोपानपङ्क्तिम्= स्वर्गसाधनभूतामित्यर्थः, जह्नो र्नाम राज्ञः कन्याम्= जाह्नवीम्, गच्छेः= गच्छ, (अत्र - विध्यर्थेलिङ्) हिमालयपर्वतं समुल्लङ्घ्य गङ्गा भारतवर्षे= मृत्युलोके, यस्मिन् स्थाने निपतति, तत्स्थानं "कनखल" नामक पर्वतस्य समीपेऽस्ति, अतएव श्लोके- महाकविना "अनुकनखलम्" इत्येतादृशः - वाक्यप्रयोगः कृतः, हिमालयपर्वतात् - निर्गत्य गङ्गा कनखलपर्वतसमीपे भारतवर्षे यस्मिन् स्थाने निपतति, तत् स्थानं पवित्रतमं अस्ति, पवित्रतमे तस्मिन् गङ्गानिपातस्थाने यः कोऽपि खलः= दुष्टः, सज्जनो वा स्नानं करोति, तस्य मुक्तिः भवति (मोक्षः भवति)

कनखलपर्वतसमीपे गङ्गानिपातस्थानं - अपि "कनखल" शब्दतः एव व्यवहृतोऽस्ति ।

यथा गढ़मुक्तेश्वर=(गणमुक्तेश्वर)नगरसमीपगः गङ्गाप्रवाहः "गढ़गङ्गाप्रवाहः' इति नामतः - प्रचलति लोके, तथैव - "कनखलपर्वतसमीपगः" गङ्गानिपातस्थानविशेषः - अपि - "कनखल" इति नामतः एव लोके प्रचलितः अस्ति, अस्य कनखलनामकस्य गङ्गानिपातस्थानस्य उत्कृष्टताद्योतकः श्लोकः "स्कन्धपुराणे" अपि उपलभ्यते —

"खलः को नाम मुक्तिं वै भजते तत्र मज्जनात् ।
अतः कनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रु र्मुनीश्वराः" ॥१॥

मेघदूते महाकविकालिदासैः अपि- "अनुकनखलम्" इति उक्त्वा तस्यैव- कनखलपर्वतसमीपगस्य गङ्गानिपातस्थानविशेषस्य चर्चा कृता, न तु - सहारनपुरजिलान्तर्गत- तीर्थस्थान - हरिद्वारनगरस्य - समीपे स्थितस्य "कनखल" नामक नगरस्य चर्चा कृता कालिदासैः ।

हरिद्वारनगरे तु - गङ्गा - प्रवहत्येव, न तु पर्वतात् निर्गत्य तत्र निपतति, हरिद्वार - कनखलाभ्यां उत्तरस्यां - दिशि - सुवहुदूरप्रदेशे "हिमालयपर्वतः" अस्ति, तत्र देवाः विचरन्ति, अत एव "देवात्मा" शब्दस्य प्रयोगः कृतः महाकविना हिमालय-वर्णनावसरे, हरिद्वार- कनखल- नगरयोः समीपे - कस्यापि समुद्रस्य स्थितिः नास्ति, अत एव "पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य" इति महाकविकालिदासोक्तेः - चरितार्थता - अपि - हरिद्वार- कनखल नगरयोः - समीपे - सुदूरपर्यन्तं यावत्तावत् न भवति ।

यथा हरिद्वारनगरस्य समीपस्थे भूभागे मनोहराणि सुदृढानि च भवनानि निर्माय तत्रैव - "स्वर्गाश्रमः" कल्पितः श्रद्धालुजनैः, तथैव - हरिद्वारसमीपस्थे भूभागे भवनादि-निर्माणानन्तरं श्रद्धालुभिः आस्तिकैः जनैः तस्य भूभागस्य "कनखल" इत्येतादृशः-नाम-करणसंस्कारः-कृतः, अतएव हरिद्वारनगरसमीपस्थं - कनखल नगरं" कालिदासोक्तं "कनखलम्" नास्ति, एवं च हरिद्वारनगरसमीपे - ये पर्वताः सन्ति, तेऽपि - हिमालयः हिमालयपर्वताङ्गभूताः वा न सन्ति, इति निष्पक्षया - शोधधिया विचारो विधेयो विज्ञैः शोधशीलैः ।

"हिमालय पर्वत" और "कनखल" के विषय में प्रचलित भ्रान्ति का निवारण

सुन्दरी टीका—(१)—महाकवि कालिदास ने अपने काव्य ग्रन्थ "कुमार-सम्भवम्" के प्रथम सर्ग में प्रथम श्लोक में "हिमालय पर्वत" का वर्णन करते हुए, हिमालय को मृत्युलोक के पर्यायवाचक भारतवर्ष की उत्तरी सीमा पर मानदण्ड=(मेंढ़ या सीमास्तम्भ) के रूप में कहकर, हिमालय पर्वत को जम्बूद्वीप की परिधि के वाहर की ओर स्थित - पूर्वीय क्षारसमुद्र में और पश्चिमीय क्षारसमुद्र प्रविष्ट हुआ वताकर, हिमालय पर्वत को देवभूमि कहा है ।

(२)—महाकवि कालिदास ने "मेघदूतम्" नाम से प्रसिद्ध अपने काव्यग्रन्थ में "पूर्वमेघ" के त्रेपनवें (५३वें) श्लोक में गङ्गावतरण स्थल की भौगोलिक स्थिति का वर्णन करते हुए यह बताया है कि—भारतवर्ष=(मृत्युलोक) की उत्तरी सीमा पर स्थित "हिमालय पर्वत" को पार करके, हिमालय पर्वत के शिखर से भारतवर्ष में जिस स्थान पर गंगा गिरती है=(गङ्गानिपात करती है) वह स्थान "कनखल" नामक पर्वत के समीप में है ।

(३)—हिमालय पर्वत से निकलकर गंगा कनखल पर्वत के समीप में जिस स्थान पर भारतवर्ष में गिर रही है, वह स्थान अत्यन्त पवित्र और धार्मिक तीर्थ स्थान है । इस पवित्र स्थान पर पवित्रात्मा=(धर्म-कर्म करने वाला) और पापात्मा =(पाप कर्म करने वाला) इनमें से जो कोई भी स्नान करता है, उसकी सद्गति =(मुक्ति) हो जाती है ।

(४)—जिस प्रकार गढ़मुक्तेश्वर =(गणमुक्तेश्वर) नगर के समीप में प्रवाह करने वाली गंगा, को 'गढ़गंगा' नाम से लोक में पुकारा जाता है, ठीक उसी प्रकार से

अस्य श्लोकस्य अयं भावः — उत्तरस्यां दिशि हिमालयो नाम नगाधिराजः- पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य=(पूर्वीयक्षारसमुद्रे प्रविश्य, पश्चिमीमयक्षारसमुद्रेच प्रविश्य) पृथिव्याः= (मृत्युलोकभूमेः = भारतभूमेः) मानदण्डः इव= (मर्यादाचलः- इव= भारतभूमिसीमानिर्धारकः इव) स्थितः = (निश्चलरूपेण - अवस्थितः) अस्ति ।

"मेघदूतम्" नामतः प्रसिद्धे स्वतिरचिते काव्यग्रन्थे पूर्वमेघप्रभागे=युत्तरपंचाशत् "५३" प्रमिते श्लोके महाकवि - कालिदास - महोदयाः- लिखन्ति—

"तस्माद् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णाम् -
जह्नोः कन्यां सगरतनय - स्वर्गसोपान - पङ्क्तिम् ।
गोरीवक्त्र- भ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः-
शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ।।५३।।

अस्य श्लोकस्यटीकावसरे सुप्रसिद्धटीकाकाराः मल्लिनाथमहोदयाः लिखन्ति- तस्मात् = कुरुक्षेत्रात् - कनखलस्य= अद्रेः, समीपे= अनुकनखलम्, अत्र "अनु यत् समया - २।१।१५" इति सूत्रेण - अव्ययीभावसमासः, शैलराजात्=हिमवतः=हिमालयपर्वतात्, अवतीर्णां सगरतनयानां स्वर्गसोपानपङ्क्तिम्= स्वर्गसाधनभूतामित्यर्थः, जह्नो र्नाम राज्ञः कन्याम्= जाह्नवीम्, गच्छेः= गच्छ, (अत्र - विध्यर्थेलिङ्) हिमालयपर्वतं समुल्लङ्घ्य गङ्गा भारतवर्षे= मृत्युलोके, यस्मिन् स्थाने निपतति, तत्स्थानं "कनखल" नामक पर्वतस्य समीपेऽस्ति, अतएव श्लोके- महाकविना "अनुकनखलम्" इत्येतादृशः - वाक्यप्रयोगः कृतः, हिमालयपर्वतात् - निर्गत्य गङ्गा कनखलपर्वतसमीपे भारतवर्षे यस्मिन् स्थाने निपतति, तत् स्थानं पवित्रतमं अस्ति, पवित्रतमे तस्मिन् गङ्गानिपातस्थाने यः कोऽपि खलः= दुष्टः, सज्जनो वा स्नानं करोति, तस्य मुक्तिः भवति (मोक्षः भवति)

कनखलपर्वतसमीपे गङ्गानिपातस्थानं - अपि "कनखल" शब्दतः एव व्यवहृतोऽस्ति ।

यथा गढ़मुक्तेश्वर=(गणमुक्तेश्वर)नगरसमीपगः गङ्गाप्रवाहः "गढ़गङ्गाप्रवाहः' इति नामतः - प्रचलति लोके, तथैव - "कनखलपर्वतसमीपगः" गङ्गानिपातस्थानविशेषः - अपि - "कनखल" इति नामतः एव लोके प्रचलितः अस्ति, अस्य कनखलनामकस्य गङ्गानिपातस्थानस्य उत्कृष्टताद्योतकः श्लोकः "स्कन्धपुराणे" अपि उपलभ्यते —

"खलः को नाम मुक्ति वै भजते तत्र मज्जनात् ।
अतः कनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रु मुनीश्वराः" ।।१।।

मेघदूते महाकविकालिदासैः अपि- "अनुकनखलम्" इति उक्त्वा तस्यैव- कनखलपर्वतसमीपगस्य गङ्गानिपातस्थानविशेषस्य चर्चा कृता, न तु - सहारनपुरजिलान्तर्गत- तीर्थस्थान - हरिद्वारनगरस्य - समीपे स्थितस्य "कनखल" नामक नगरस्य चर्चा कृता कालिदासैः ।

हरिद्वारनगरे तु - गङ्गा - प्रवहत्येव, न तु पर्वतात् निर्गत्य तत्र निपतति, हरिद्वार - कनखलाभ्यां उत्तरस्यां - दिशि - सुवहुदूरप्रदेशे "हिमालयपर्वत:" अस्ति, तत्र देवा: विचरन्ति, अत एव "देवात्मा" शब्दस्य प्रयोग: कृत: महाकविना हिमालय-वर्णनावसरे, हरिद्वार- कनखल- नगरयो: समीपे - कस्यापि समुद्रस्य स्थिति: नास्ति, अत एव "पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य" इति महाकविकालिदासोक्ते: - चरितार्थता - अपि - हरिद्वार- कनखल नगरयो: - समीपे - सुदूरपर्यन्तं यावत्तावत् न भवति ।

यथा हरिद्वारनगरस्य समीपस्थे भूभागे मनोहराणि सुदृढानि च भवनानि निर्माय तत्रैव - "स्वर्गाश्रम:" कल्पित: श्रद्धालुजनै:, तथैव - हरिद्वारसमीपस्थे भूभागे भवनादि-निर्माणानन्तरं श्रद्धालुभि: आस्तिकै: जनै. तस्य भूभागस्य "कनखल" इत्येतादृश:-नाम-करणसंस्कार:-कृत:, अतएव हरिद्वारनगरसमीपस्थं - कनखल नगरं" कालिदासोक्तं "कनखलम्" नास्ति, एवं च हरिद्वारनगरसमीपे - ये पर्वता: सन्ति, तेऽपि - हिमालय: हिमालयपर्वताङ्गभूता: वा न सन्ति, इति निष्पक्षया - शोधधिया विचारो विधेयो विज्ञै: शोधशीलै: ।

"हिमालय पर्वत" और "कनखल" के विषय में प्रचलित भ्रान्ति का निवारण

सुन्दरी टीका—(१)—महाकवि कालिदास ने अपने काव्य ग्रन्थ "कुमार-सम्भवम्" के प्रथम सर्ग में प्रथम श्लोक में "हिमालय पर्वत" का वर्णन करते हुए, हिमालय को मृत्युलोक के पर्यायवाचक भारतवर्ष की उत्तरी सीमा पर मानदण्ड=(मेंढ़ या सीमास्तम्भ) के रूप में कहकर, हिमालय पर्वत को जम्बूद्वीप की परिधि के वाहर की ओर स्थित - पूर्वीय क्षारसमुद्र में और पश्चिमीय क्षारसमुद्र प्रविष्ट हुआ वताकर, हिमालय पर्वत को देवभूमि कहा है ।

(२)—महाकवि कालिदास ने "मेघदूतम्" नाम से प्रसिद्ध अपने काव्यग्रन्थ में "पूर्वमेघ" के त्रेपनवें (५३वें) श्लोक में गङ्गावतरण स्थल की भौगोलिक स्थिति का वर्णन करते हुए यह बताया है कि—भारतवर्ष=(मृत्युलोक) की उत्तरी सीमा पर स्थित "हिमालय पर्वत" को पार करके, हिमालय पर्वत के शिखर से भारतवर्ष में जिस स्थान पर गंगा गिरती है=(गङ्गानिपात करती है) वह स्थान "कनखल" नामक पर्वत के समीप में है ।

(३)—हिमालय पर्वत से निकलकर गंगा कनखल पर्वत के समीप में जिस स्थान पर भारतवर्ष में गिर रही है, वह स्थान अत्यन्त पवित्र और धार्मिक तीर्थ स्थान है । इस पवित्र स्थान पर पवित्रात्मा=(धर्म-कर्म करने वाला) और पापात्मा =(पाप कर्म करने वाला) इनमें से जो कोई भी स्नान करता है, उसकी सद्गति =(मुक्ति) हो जाती है ।

(४)—जिस प्रकार गढ़मुक्तेश्वर =(गणमुक्तेश्वर) नगर के समीप में प्रवाह करने वाली गंगा, को 'गढ़गंगा' नाम से लोक में पुकारा जाता है, ठीक उसी प्रकार से

"कनखल पर्वत के समीप में स्थित "गङ्गानिपात स्थान को भी "कनखल" नाम से ही पुकारा जाता है। तदनुसार कालिदास ने 'अनुकनखलम्' कहकर गङ्गानिपात स्थान को पुकारा है।

स्कन्दपुराण में 'कनखल' की उत्कृष्टता—

"खलः को नाम मुक्ति वै भजते तत्र मज्जनात्।
अतः कनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रु मुनीश्वराः ॥१॥

सुन्दरी टीका—कनखल तीर्थ में स्नान करने से खल=(पाप कर्म करने वाले) व्यक्ति की भी मुक्ति हो जाती है। कनखल तीर्थ में स्नान करने से सत्कर्म करने वाले व्यक्ति की मुक्ति होनी स्वयं सिद्ध है। इसलिये ऋषियों ने इस गंगा निपात स्थान का "कनखल तीर्थ" नाम रक्खा है।

(५) इसी "कनखल तीर्थ" की चर्चा महाकवि कालिदास ने "मेघदूत" के त्रेपनवें श्लोक में "अनुकनखलम्" कह कर की है।

कनखल तीर्थ के विषय में प्रचलित भ्रान्ति का निवारण

(३) सहारनपुर जिला के अन्तर्गत 'हरिद्वार' नगर के सन्निकट में स्थित रमणीय भूभागों में - सुन्दर भवनों का निर्माण करके, वहाँ के निवासियों ने गङ्गा के समीप में शान्त वातावरण युक्त - एक स्थान का नाम 'स्वर्गाश्रम' और दूसरे का नाम 'कनखल' रख लिया है। "कनखल और स्वर्गाश्रम" ये दोंनों ही स्थान - हरिद्वार नगर के उपनगर ही हैं। इन दोंनों ही स्थानों को वास्तविक 'स्वर्गाश्रम' और वास्तविक 'कनखल' समझने का प्रयत्न करना - नितान्त - असङ्गत और भ्रान्तिप्रद ही है।

हरिद्वार, स्वर्गाश्रम, और कनखल का मौलिक विवेचन

(७)—हरिद्वार के उपनगर 'स्वर्गाश्रम' में - धनी और विरक्त स्वभाव के व्यक्ति=(मनुष्य) रहते हैं, इस स्वर्गाश्रम में - इन्द्रादि देवाओं का निवास भी नहीं अतएव - इस स्वर्गाश्रम को वास्तविक 'स्वर्गाश्रम' कहना - निनान्त असंगत और भ्रामक ही होगा।

(८)—हरिद्वार के समीप में न तो कोई क्षारसमुद्र है, और न ही कोई पर्वत पूर्वीय और पश्चिमीय क्षारसमुद्र में हरिद्वार के समीप या दूरस्थ भाग में प्रविष्ट हुआ है। और न ही कोई ऐसा पहाड़ हरिद्वार या हरिद्वार के समीप में विद्यमान है, जिसके शिखर से गङ्गा निकल कर उस भूभाग में गिर रही हो। हरिद्वार के उपनगर 'कनखल' में कोई पर्वत भी ऐसा नहीं है, जो कि— गंगा निपात स्थान के-समीप में हो।

(६)—पूर्वोक्त - शास्त्रीय - समीक्षात्मक - निष्पक्ष - दृष्टिकोण से विचार करने पर—यह निष्कर्ष निकल रहा है कि—हरिद्वार में स्थित - उपनगर "कनखल" को शास्त्रोक्त वास्तविक "कनखल तीर्थ" की संज्ञा देना नितान्त असङ्गत ही नहीं अपितु भ्रामक भी है।

हरिद्वार से हिमालय पर्वत की दूरी

(१०)—पूर्वोक्त शास्त्रीय - विवेचनाओं के अनुसार - पूर्वपृष्ठाङ्कित—जम्बूद्वीप के चित्र को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि—हरिद्वार से उत्तर दिशा में-लगभग एक लाख किलोमीटर की दूरी पर "हिमालय पर्वत" स्थित है।

(११)—उपर्युक्त-शास्त्रीय-समीक्षा के अनुसार-हरिद्वार में स्थित "वास्तविक कनखल" के अस्तित्व को मानना नितान्त असंगत और भ्रामक ही है।

(१२)—हरिद्वार के उपनगर - स्वर्गाश्रम - और उपनगर - कनखल के समीप में प्रवाहशील गङ्गा में स्नान और दान तथा भजन, पूजन, और अनुष्ठानादि सत्कर्म करने से भी पापों का क्षय होकर - अभ्युदय और सद्गति की प्राप्ति होती है, अतएव-श्रद्धालु धार्मिकजनों को तीर्थ स्थान हरिद्वार और उसके उपनगरों में पुण्यकर्म को करते ही रहना चाहिये।

नववर्षाणां परस्परं अगम्यताप्रतिपादनम् करोमि

वर्षाणां पर्वतानां च यथा भेदं तथोत्तरं।
तेषां मध्ये जनपदा स्तानि वर्षाणि सप्त वै ।।२७।।
प्रपातविषमैस्तैस्तु पर्वतैरावृतानि तु।
सप्त तानि नदीभेदैरगम्यानि परस्परम् ।।२८।।
वसन्ति तेषु सत्वानि नानाजातीनि सर्वशः।
इमं हेमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम् ।।२९।।
हेमकूटं परं तस्मान्नाम्ना किं पुरुषं स्मृतम्।
हेमकूटाच्च निषधं हरिवर्षं तदुच्यते ।।३०।।
हरिवर्षात् परं चापि मेरोस्तु तदिलावृतम्।
इलावृतात् परं नीलं रम्यकं नाम विश्रुतम् ।।३१।।
रम्यकादपरं श्वेतं विश्रुतं तद्धिरण्यकम्।
हिरण्यकात् परं चैव श्रृङ्गशाकं कुरुं स्मृतम् ।।३२।।

"शाकं द्वीपान्तरेऽपि च" इति - अमरकोषोक्तेः - शाकशब्दोऽत्र द्वीपबोधकोऽस्ति।

धनुः संस्थे तु विज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे।
दीर्घाणि तत्र चत्वारि मध्यमं तदिलावृतम् ।।३३।।
पूर्वतो निषधस्येदं वेद्यर्धं दक्षिणं स्मृतम्।
परं त्विलावृतं पश्चाद् वेद्यर्धं तु तदुत्तरं ।।३४।।
तयो र्मध्ये तु विज्ञेयो मेरु र्यत्र त्विलावृतम्।
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।।३५।।
उदगायतो महाशैलो माल्यवान् नामपर्वतः।
चतुस्त्रिंशत् सहस्रेण प्रतीच्यां स तु संस्थितः ।।३६।।

माल्यवान् द्वि सहस्रेण चानीलनिषधायतः ।
चतुस्त्रिंशत्तथैवोक्तः पूर्वतो गन्धमादनः ॥३७॥

सुमेरुपर्वतवर्णनं मत्स्यपुराणोक्तमन्त्र - उपस्थापयामि

परिमण्डलयो र्मध्ये मेरुः कनकपर्वतः ।
चातुर्वर्ण्यसमो वर्णे चतुरस्रः समुच्छ्रितः ॥३८॥
नानावर्णः स पार्श्वेषु पूर्वान्ते श्वेत उच्यते ।
पीतं तु दक्षिणं तस्य भृङ्गिपत्रनिभं परम् ॥३९॥
उत्तरं तस्य रक्तं वै चेति वर्णसमन्वितः ॥४०॥
मेरुस्तु शुशुभे दिव्यो राजवत् स तु वेष्टितः ।
आदित्यतरुणाभासो विधूम इव पावकः ॥४१॥
योजनानां सहस्राणि चतुराशीति चोच्छ्रयः ।
प्रविष्टः षोडशाधस्तात्तावदेव च विस्तृतः ॥४२॥
विस्तारात् त्रिगुणश्चास्य परीणाहः समन्ततः ।
स पर्वतो महादिव्यो दिव्यौषधिसमन्वितः ॥४३॥
भुवनैरावृतः सर्वै जतिरुपपरिष्कृतैः ।
तत्र देवगणा श्चैव गन्धर्वासुरराक्षसाः ॥४४॥
शैलराजे प्रमोदन्ते सर्वतोऽप्सरसां गणैः ॥४५॥
सुमेरुः परिवृत्तो वे भुवनैः - भूतभावनैः ।
यस्येमे चतुरो देशा नानापार्श्वेषु संस्थिताः ॥४६॥
भद्राश्वं भारतं चैव केतुमालं च पश्चिमे ।
उत्तरा श्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥४७॥
विष्कम्भपर्वतास्तद्वद् मन्दरों गन्धमादनः ।
विपुलश्च सुपार्श्वश्च सर्वरत्नविभूषितः ॥४८॥
अरुणोदं मानसं च सितोदं भद्रसंज्ञितम् ।
तेषामुपरिचत्वारि सरांसि च वनानि च ॥४९॥
तथा भद्रकदम्बस्तु पर्वते गन्धमादने ।
जम्बूवृक्षस्तथाश्वत्थो विपुलोऽथ वटः परम् ॥५०॥
गन्धमादनपार्श्वे तु पश्चिमेऽमरगण्डिकः ।
द्वात्रिंशद् गे सहस्राणि योजनैः सर्वतः समः ॥५१॥
तत्र ते शुभकर्माणः केतुमालाः परिश्रुताः ।
तत्र कालनलाः सर्वे महासत्वा महाबलाः ॥५२॥
दशवर्षसहस्राणि तेषामायुरनामयम् ।
कालाभ्रस्य रसं पीत्वा ते सर्वे स्थिरयौवनाः ॥५३॥

त्रयोदशोत्तरशततमे "११३" अध्याये- मत्स्यपुराणोक्तान् भारतवर्षस्य नवभेदान् - अत्र लिखामि

नखल्वन्यत्रमर्त्यानां भूमौ कर्मविधिः स्मृतः ।
भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान् निबोधत ॥७॥
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथवारुणः ॥८॥
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ॥९॥
आयतस्तु कुमारीतो गङ्गायाः प्रवहावधिः ॥१०॥
तिर्यगूर्ध्वं तु विस्तीर्णः सहस्राणि दशैव तु ॥११॥

अत्र "सहस्राणि दशैव तु" इत्यस्य अयं भावः—नवसहस्र - "९०००" योजन प्रमिते भारतवर्षे एकसहस्र - "१०००" योजनप्रमितं हिमालय - पर्वतस्य विस्तारार्धं संयोज्य, दशसहस्र— "१००००" योजनप्रमितोऽयं भारतद्वीपः दक्षिणोत्तरविस्तारे सिद्ध्यति ।

द्वीपोह्यपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु सर्वशः ।
यवनाश्च किराताश्च तस्यान्ते पूर्वपश्चिमे ॥१२॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।
इज्यायुधवणिज्यादि - वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥१३॥
यस्त्वयं मानवो द्वीपस्तिर्यग्यामः प्रकीर्तितः ।
य एनं जयते कृत्स्नं स सम्राडिति कीर्तितः ॥१५॥
अयं लोकस्तु वै सम्राडन्तरिक्षो विराट् स्मृतः ।
स्वराडन्यः स्मृतो लोकः पुन वंक्ष्यामि विस्तरात् ॥१६॥
सप्त चास्मिन् महावर्षे विश्रुताः कुलपर्वताः ।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमान् - ऋक्षवानपि ॥१७॥
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च ह्येते तु कुलपर्वताः ।
तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपतः ॥१८॥

भारतवर्षस्थेभ्यः पूर्वोक्तेभ्यः सप्तमुख्यपर्वतेभ्यः - एव गङ्गा, यमुना - गौमती-ऐरावती, सिन्धुः - सरस्वती - प्रभृतयः नद्यः - नदाश्च अनेके विनिःसृताः ।

मत्स्यपुराणे त्रयोदशाधिकशततमे "११३" प्रमिते - अध्याये - एकोनविंशति- "१९" संख्याप्रमितश्लोकतः - आरभ्य - षडुत्तराशीतिः "८६" श्लोकान्तं यावत्तावत् भारतस्थानां नद - नदीनाम् - श्रोतसांच विस्तृतं वर्णनं - उपलभ्यते, तत्तु ततः- एव ज्ञेयम्, निबन्धविस्तारभयादत्र तेषां समुल्लेखो मया न कृतः ।

श्रीविष्णुपुराणे द्वितीये - अंशे - द्वितीये अध्याये - एकोनचत्वारिंशत् "३९" प्रमितः निम्नाङ्कितः श्लोकः माल्यवान् गन्धमादननामकपर्वतयोः विषयेऽस्ति···

"आनीलनिषधायामौ माल्यवद्गन्धमादनौ ।
तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः" ।।३९।।

अस्य श्लोकस्य टीकावसरे "विष्णुचित्तीय" टीकाकाराः- विलिखन्ति- अत्रवायुः...

"चतुस्त्रिंशत् - सहस्राणि गन्धमादनपर्वतः ।
उदग्दक्षिणतश्चैव ह्यानीलनिषधायतः ।।१।।
चत्वारिंशत् - सहस्राणि परिवृद्धो महीतलात् ।
सहस्रमवगाढश्च तावदेव च विस्तृतः ।।२।।
पूर्वेण माल्यवान्शैलस्तत्प्रमाणः प्रकीर्तितः" ।।३।।

टीकास्थानाम् उक्तपद्यानाम् अयंभावः... दक्षिणोत्तरक्रमतः - आनीलनिषधायतः - चतुस्त्रिंशत्सहस्र "३४०००" योजनप्रमितः महीतलात् भूगोलपृष्ठभागच्च चत्वांरिशत्सहस्र "४००००" योजनप्रमितोच्छ्राययुक्तो विस्तारे च भूगर्भे एकसहस्र "१०००" योजनप्रमितः, एतावान् एव च अवगाढः गन्धमादनपर्वतः सुमेरुतः पूर्वेण पूर्वदिक्क्रमेण=जम्बूद्वीपे स्थितः, गन्धमादनसदृशः - एव - माल्यवान् पर्वतः- सुमेरुतः- पश्चिमायां दिशि स्थितोऽस्ति, गन्धमादन- माल्यवान् - पर्वतयोः पूर्वापरक्रमेण भूगोलो- परिव्यासस्तु द्विसहस्रयोजन "२०००" प्रमितोऽस्ति । पूर्वोक्तौ गन्धमादन - माल्यवान् पर्वतौ - दक्षिणोत्तर - दिशास्थौ - आनीलनिषधायतौ - स्तः । तौ च - ३४०००योजन प्रमितौ = ४९४५४५ किलोमीटरप्रमितौ, दक्षिणोत्तरतो विस्तृतो स्तः । भूगर्भे- गन्धमादन - माल्यवान् - पर्वतयोः यः - एकसहस्रयोजनप्रमितो भागः प्रविष्टः स भूग र्भ प्रविष्टो भागस्तु - एकसहस्र "१०००" योजन प्रमितो विस्तृतोऽस्ति ।

भूगोलात् - उपरि - उभयोः- गन्मादनमाल्यवान् - पर्वतयोः- विस्तारस्तु पृथक् पृथक् द्विसहस्र= "२०००" योजनप्रमितोऽति ।

उभयोः- गन्धमादन - माल्यवान् - पर्वतयोः भूगोलात् - उर्ध्वं - चत्वारिंशत्- सहस्र "४००००" योजनप्रमिता- उच्छ्रितिः "ऊचाई"= "५८९९०९" किलोमीटर- प्रमिता पृथक् पृथक् अस्ति ।

द्विसहस्र= २००० योजनानि= २९०९१ किलोमीटराः, भूगोले विस्तारः उक्तयोः पर्वतयोः अस्ति । एकसहस्र = १००० योजनानि= १४५४५ किलोमीटरः, भूगर्भे - उक्तपर्वतोः विस्तारः - प्रविष्टश्चास्ति ।

जम्बूद्वीपस्य केन्द्रतः - क्षारसमुद्रस्य - दूरी - पंचाशत्सहस्र= ५००००योजन- प्रमिता= ७२७२७३ किलोमीटरप्रमिता अस्ति ।

जम्बूद्वीपार्धप्रमाणमानात् - सुमेरोः उच्छ्रूतेः मानस्य आधिक्यं वर्तते ।

सुमेरोः उच्छ्रूतिः= ८४००० योजनानि= १२२१८१८ किलोमीटराः जम्बूद्वीपार्धप्रमाणम्=५०००० योजनानि= ७२७२७३ किलोमीटराः,उभयोः- अन्तरम्= ८४००० – ५००००=३४००० योजनानि=४९४५४५ किलोमीटराः सन्ति ।

यदि सुमेरुपर्वतस्य ८४००० योजनात्मकः-उच्छ्रायः - जम्बूद्वीपस्य भूमौनिपतेत्-

चेत्तर्हि - ३४००० योजनप्रमितो भागः- क्षारसमुद्रे - समापतिष्यति, अर्थात् जम्बूद्वीपस्य केन्द्रतः निपात्यमानः - सुमेरोः - उच्छ्रायः चतुस्त्रिंशत्सहस्त्रयोजनप्रमिताः अवशिष्यते, स तु समुद्रान्तः पाती भवति ।

भागवते जम्बूद्वीपस्थ - भूगोलस्वरूप - प्रतिपादनम्

श्रीमद्भागत-महापुराणग्रन्थे पंचमे स्कन्धे- षोडशाध्याये श्रीशुकदेवेन - ऋषिणा जम्बूद्वीपस्वरूपस्य वक्ष्यमाणं वर्णनं कृतम् ......

"यः - अयं जम्बूद्वीपः कुवलय - कमल - कोशाभ्यन्तरकोशः - नियुत- "१०००००" योजनविशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम्" । ५ गद्यभागः ।

यस्मिन् नववर्षाणि- नवयोजनसहस्र- "९०००" आयामानि-अष्टभिः- मर्यादा-गिरिभिः सुविभक्तानि भवन्ति । ६ गद्यभागः ।

एषां मध्ये - इलावृतं नाम - अभ्यन्तरवर्षम्, यस्य नाभ्याम् - अवस्थितः - सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुः, द्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलयकमलस्य, मूर्धनि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनं = "३२०९० योजन" विततः, मूले षोडशसहस्रम् = "१६००० योजन" तावता —"१६००० योजन" भूगर्भे प्रविष्टः ।

उत्तरेण - इलावृतम् - नीलः - श्वेतः - शृङ्गवान् - इति - रम्यक - हिरण्मय-कुरूणां वर्षाणां मर्यादागिरयः प्राक् - आयताः - उभयतः - क्षारोदावधयः - द्विसहस्र "२००० योजन" पृथवः "विस्तारयुक्ताः" एकैकशः - पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् - उत्तरः - उत्तरः - दशांशाधिकेन - अंशेन दैर्घ्यं - एव - ह्रसन्ति ।

एवं दक्षिणेन - इलावृतं - निषधः - हेमकूटः - हिमालयः - इति - प्राक् - आयताः - यथा नीलादयः - अयुतयोजन - "१०००० योजनै" उत्सेधाः : "उच्छ्रायाः" हरिवर्ष - किम्पुरुष - भारतानां यथासंख्यम् ।

तथैव - इलावृतम् - अपरेण - पूर्वेण च - माल्यवद् - गन्धमादनौ - आनील - निषधायतौ - द्विसहस्र "२००० योजन" पप्रथतुः - केतुमालभद्राश्वयोः सीमानं विदधाते ।

मन्दरः - मेरुमन्दरः - सुपार्श्वः कुमुदः - इति अयुतयोजन "१०००० योजन" विस्तारोन्नाहाः "विस्तृता उच्छ्रिताः" मेरोः चतुर्दिशम् - अवष्टम्भगिरयः-उत्क्लृप्ताः ।

चतुर्षु - एतेषु - चूत - आम्र "जम्बू - जामुन" कदम्ब - न्यग्रोधाः - "वट" पादपप्रवराः "वृक्षश्रेष्ठाः" पर्वतकेतवः - इव - अधिसहस्रयोजन "११०० योजन" उन्नाहाः तावद् - विटप - विततयः - शतयोजन "१०० योजन" परिणाहाः ।

ह्रदाश्चत्वारः- पयो - मधु - इक्षुरस - मृष्टजलाः, यत् - उपस्पर्शिनः- उपदेव-गणाः-योगैश्वर्याणि स्वाभाविकानि धारयन्ति ।

देवोद्यानानि च भवन्ति चत्वारि - नन्दनं - चैत्ररथं - वैभ्राजकं - सर्वतोभद्रम्, तेषु - अमरपरिवृढाः - सहसुरललनाललाम - यूथपतयः - उपदेवगणैः - उपगीयमान-महिमानः किल विहरन्ति ।

भारतवर्षे स्थितान् - मुख्यपर्वतान् श्री शुकदेवोमुनिः प्राह भागवते- पञ्चमस्कन्धे—

एकोनविंशे - अध्याये - पंचमस्कन्धे - श्रीशुकदेवोपदेशः··· "भारतेऽप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवः - मलयः - मङ्गलप्रस्थः - मैनाकः - त्रिकूटः - ऋषभः - कूटकः - कोल्लकः- सह्यः-देवगिरिः ऋष्यमूकः - श्रीशैलः : वेङ्कटः - महेन्द्रः-वारिधारः- बिन्ध्यः - शुक्तिमान् - ऋक्षगिरिः - पारियात्रः- द्रोणः- चित्रकूटः- गोवर्धनः - रैवतकः- ककुभः- नीलः- गोकामुखः- इन्द्रकीलः - कामगिरिः" - इति च - अन्ये च- शतसहस्रशः "एकलक्षतोऽपि - अधिकाः" शैलाः "सन्तीति क्रिया तु गद्यारम्भे एवोक्ता"।

तेषां "शैलानाम्" नितम्बप्रभवाः "मूलप्रदेशोत्पन्नाः" - नदाः- नद्यश्च सन्ति- असंख्याताः, एतासामपो भारत्यः प्रजाः - नामभिः एव - पुनन्तीनाम् आत्मना च - उपस्पृशन्ति।

चन्द्रवसा - ताम्रपर्णी - अवटोदा - कृतमाला - वैहायसी - कावेरी- वेणी पयस्विनी - शर्करावर्ता - तुङ्गभद्रा - कृष्णा - वेण्या - भीमरथी - गोदावरी - निर्विन्ध्या- पयोष्णी - तापी- रेवा - सुरसा - नर्मदा - चर्मण्वती - सिन्धुः- अन्धः - शोणश्च-नदौ- महानदी - वेदस्मृतिः-ऋषिकुल्या- त्रिसामा - कौशिकी - मन्दाकिनी "गङ्गा" (यमुना) -सरस्वती - दृषद्वती गौमती - सरयू - रोधस्वती - सप्तवती - सषोमा - शतद्रूः- चन्द्रभागा - मरुद्वृधा - वितस्ता- असिक्नी - विश्वा - इति महानद्यः सन्तीतिक्रिया प्रावेग समुक्ताः।

जम्बूद्वीपस्य - भारतवर्षसंज्ञके - हिमालयतः- दक्षिणस्यां दिशि स्थिते-नवसहस्र- "९०००" योजनप्रमित - दक्षिणोत्तरविस्तार–युक्ते - नवमे खण्डे - भरतखण्डसंज्ञया व्यवहृते - उपर्युक्ताः - पर्वताः - नदी - नदाश्च विद्यमानाः - सन्ति, ते च पर्वताः-नदी नदाश्च साम्प्रतमपि - उपलभ्यते, भारतवर्षे विदेशीयशासनकाले - बहूनां नदनदीनां नाम्नि - परिवर्तनमपि कृतं विदेशीयैः शासकैः।

जम्बूद्वीपस्य स्थितिविषये महामहोपाध्याय-श्रीसुधाकरद्विवेदिमतस्य- समीक्षात्मकं खण्डनमत्र करोमि···

सूर्यसिद्धान्ते ग्रन्थे भूगोलाध्याये सुधावर्षिणी "टीकाकारैः मान्यैः - महामहोपाध्याय श्रीसुधाकरद्विवेदिमहोदयैः षट्त्रिंशत् "६३" प्रमितस्य पद्यस्य "देवासुरविभागकृत्" इति - चतुर्थचरणस्य - टीकावसरे "अयं महार्णवः= क्षारसमुद्रः, धात्र्याः= पृथिव्याः, मेखला= कटिबन्ध.- इव - देवासुरविभागकृत्= देवदैत्ययोः - भूगोलपृष्ठे- विभागयोः अवधिरूपः- इव - स्थितः, एतेन समुद्रोत्तरतटात् - उत्तरं - भूगोलस्य- अर्धं- जम्बूद्वीपं देवानाम्, समुद्रसहितं दक्षिणभूगोलार्धं- च दैत्यानाम् - इति सिद्ध्यति, इत्येतादृशी टीका विहिता।

श्रीमहामहोपाध्यायैः कृता-अत्रत्या टीका - जम्बूद्वीपभूगोलस्थिति-विरुद्धा निराधारा - भ्रान्तिप्रदा - च - अस्तीति - मयोच्यते।

यतो हि - एकलक्ष "१०००००" योजनभूमियुक्तस्य वृत्ताकारस्य जम्बूद्वीपस्य

दक्षिणोत्तर - पूर्वापर - व्यासौ - अपि - एकलक्ष "१०००००" योजनप्रमितौ स्तः। अयं जम्बूद्वीपः - एक लक्ष "१०००००" योजनव्यास - "विस्तार" युक्तेन क्षारसमुद्रेण परितः परिवेष्टितोऽस्ति।

ऐकलक्षयोजनदक्षिणोत्तरभूव्यासयुक्तस्य जम्बूद्वीपस्य व्यासार्धमानं तु- पंचाशत्-सहस्रयोजन "५०००० योजन" प्रमितम् - अस्ति।

जम्बूद्वीपस्य मध्यभागे "केन्द्रे" सुमेरु पर्वतस्य स्थितिः अस्ति। तस्य सुमेरु-पर्वतस्य च विस्तारः- षोडशसहस्रयोजन "१६००० योजन" प्रमितः - मूलदेशे "द्वात्रिं-शत् - सहस्रयोजन "३२००० योजन" प्रमितः - शिरोभागे च अस्ति। जम्बूद्वीपस्थित-भूगोलार्धं तु वक्ष्यमाणरीत्या भवति, षोडशसहस्रयोजन "१६०००योजन" विस्तारयुक्त-सुमेरुपर्वत - मूलकेन्द्रात् - जम्बूद्वीपस्य समानौ द्वौ भागौ भवतः।

सुमेरुपर्वतकेन्द्रस्थानात् = "मध्यस्थानात्" उत्तरस्यां दिशि - अष्टसहस्रयोजन = "८०००योजन" प्रमितः सुमेरुपर्वतार्धभागः- तिष्ठति, ततः - नवसहस्रयोजन-'९०००योजन" प्रमितम् - इलावृतवर्षमस्ति, ततः - द्विसहस्रयोजन "२०००योजन" प्रमितः : नीलपर्वतः - अस्ति, ततः - नवसहस्रयोजन "९००० योजन" प्रमितं रम्यक-वर्षमस्ति ततः - द्विसहस्रयोजन ="२००० योजन" प्रमितः श्वेतपर्वतः - अस्ति, ततः-नवसहस्रयोजन "९००० योजन" प्रमितं हिरण्यकवर्ष - अस्ति। ततः - द्विसहस्रयोजन "२०००योजन" प्रमितः - शृङ्गवान् पर्वतः अस्ति, ततः - नवसहस्रयोजन="९००० योजन प्रमितम्" कुरुवर्षम् - अस्ति, तदनन्तरं क्षारसागरस्य स्थितः च अस्ति।

उपर्युक्तानां योजनानां योगे कृते सति ......

८०००+९०००+२०००+९०००+२०००+९०००+२०००+९०००
=५००००योजनप्रमितम्="पञ्चाशत्सहस्रयोजनप्रतिम्" जम्बूद्वीपार्धभागमानं सुमेरु-केन्द्रात् - उत्तरदिशास्थितं सिद्ध्यति, अस्मिन् भागे तु देवाः- एव निवसन्ति न तु राक्षसाः।

अन्यैव रीत्या - सुमेरुकेन्द्रात् - दक्षिणस्यांदिशि क्रमशः - अष्टसहस्र "८०००" योजनप्रमितः सुमेरुः - तिष्ठति, ततः- नवसहस्र "९०००" योजनप्रमितं - इलावृतवर्ष-मस्ति, ततः द्विसहस्र "२०००" योजनप्रमितः - निषधः पर्वतः अस्ति, ततः - नवसहस्र-योजनप्रमितम् = "९००० योजनप्रमितम्" हरिवर्षमस्ति। ततः - द्विसहस्र- "२०००" योजनप्रमितः हेमकूटपर्वतः - अस्ति। ततः - नवसहस्र = "९०००" योजनप्रमितं-किम्पुरुषवर्षमस्ति, ततः-द्विसहस्र "२०००" योजनदक्षिणोत्तरविस्तारप्रमितः- हिमालय-पर्वतः - अस्ति, ततः - दक्षिणस्यां दिशि नवसहस्र - "९०००" योजनप्रमितम् भारत-वर्षमस्ति।

उपर्युक्तानां सर्वेषां योजनानां योगे कृते सति...

८०००+९०००+२०००+९०००+२०००+९०००+२०००+९०००
=५०००० योजन - प्रमितम् ="पञ्चाशत्सहस्रयोजन - प्रमियम्" जम्बूद्वीपार्धभाग-मानं सुमेरुपर्वतकेन्द्रात् दक्षिणदिशास्थितं सिद्ध्यति।

हिमालयपर्वतात् - उत्तरस्यां दिशि··· (१) किम्पुरुषवर्षे (२) हरिवर्षे (३) इलावृतवर्षे (४) रम्यकवर्षे (५) हिरण्यकवर्षे (६) कुरुवर्षे (७) भद्राश्ववर्षे (८)केतुमालवर्षे च, इत्थं - एषु अष्टसु - जम्बूद्वीपवर्षेषु ···

यानि किम्पुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने !।
न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयादिकम् ।।५३।।
स्वस्थाः प्रजानिरातङ्काः सर्वदुःखविवर्जिताः ।
दशद्वादशवर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः ।।५४।।
न तेषु वर्षते देवो भौमान्यम्भांसि तेषु वै ।
कृतत्रेतादिकं नैव तेषु स्थानेषु कल्पना ।।५५।।
सर्वेष्वेतेषु वर्षेषु सप्तसप्तकुलाचलाः ।
नद्यश्च शतशस्तेभ्यः प्रसूता या द्विजोत्तम ! ।।५६।।

इति विष्णुपुराणे द्वितीये अंशे द्वितीयाध्यायोक्तेः तथा च···

तेषां स्वाभाविकीसिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ।
विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च ।।२५।।
धर्माधर्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः ।
न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वष्टसु सर्वदा ।।२६।।

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीयांशे प्रथमाध्यायोक्तेश्च ।

एवमेव श्रीमत्स्यपुराण - श्रीवायुपुराण-श्रीमद्भागवतमहापुराणोक्तेश्च- एषु - अष्टसु जम्बूद्वीपवर्षेषु देवाः- एव निवसन्ति, न तु राक्षसाः ।

राक्षसनिवासपुरी तु- हिमालयात्- दक्षिणस्यां दिशि स्थितस्य-भारतवर्षस्यापि-दक्षिणप्रान्ते क्षारसमुद्रस्य द्वीपमध्ये विद्यमाना "लङ्का" इति नाम्नाप्रसिद्धास्ति, तत्रैव-रावण - कुम्भकर्ण - मेघनादादयः- राक्षसा- जाताः, ये च - इन्द्रादिदेवैः सह विरोधं कृतवन्तः,- भगवता श्री रामेण युद्धे हताः - प्राक्तने काले, लङ्काराजधानी - भूमिभागे साम्प्रतमपि - राक्षसस्वभावशीलाः बहवो जनाः-निवसन्ति, भारतवर्षे क्षारसमुद्रकृतद्वीपे =(क्षारसमुद्रद्वीपे) - लङ्कानगरीति नाम्ना प्रसिद्धे स्थाने राक्षसाः- वसन्ति, देवैः सह ते च राक्षसाः सदैव शत्रुतां कुर्वन्ति, अतः अयं क्षारसमुद्रः-देवासुरविभागकृत्- अस्ति, इति स्वीकारोक्तिः सूर्यांशपुरुषेण सूर्यसिद्धान्ते कृता ।

अनया स्वीकारोक्त्या - एकलक्षयोजन "१००००" योजन विस्तार-युक्तस्य जम्बूद्वीपस्य - मध्यात् पञ्चाशत्सहस्र "५0000" योजनप्रमितं यत् जम्बूद्वीस्य दक्षिण-भागस्य भूमिगोलार्धमस्ति, तन्मध्यतः स्वल्पतमो भागः लङ्काराजधानीस्थः- एव-दैत्यानां सिद्ध्यति, न तु-जम्बूद्वीपस्य सम्पूर्णं दक्षिणभूगोलोर्धं राक्षसानां सिद्ध्यति कयापि रीत्या ।

अतः - "एतेन समुद्रोत्तरतटात् उत्तरं भूगोलार्धं जम्बूद्वीपं देवानाम्, समुद्रसहितं दक्षिणभूगोलार्धं च दैत्यानां सिद्ध्यति," इति कथनं तु महामहोपाध्याय श्री सुधाकर-द्विवेदिमहाभागानाम् - अयुक्तं- जम्बूद्वीपभूगोलस्थितिविरुद्धं भ्रान्तिप्रदं निराधारं-अविचारितरमणीयं च - अस्तीति - निष्पक्षया मध्यस्थया धिया विवेचनीयं विज्ञैः- धीरैः ।

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥ (कु० प्र० सर्ग श्लो० १)

हिमालयात् - आरभ्य - उत्तरस्यां दिशि सर्वेऽपि जम्बूद्वीपे देवाः एव-निवसन्ति, न तु दैत्याः। अस्य पक्षस्य प्रतिपादनं महाकविकालिदासैरपि कुमारसंभवे काव्यग्रन्थे प्रथमसर्गे प्रथमश्लोके कृतमद्यापि - उपलभ्यते - एव।

सुन्दरी टीका—(१)—मत्स्यपुराण के - ११२वें - अध्याय के २७वें श्लोक से -५३वेंश्लोक तक - जम्बूद्वीप के नौ वर्षों के परस्पर में अलगाव (अलग-अलग स्थिति) का प्रतिपादन किया है।

(२)—मत्स्यपुराण के - ११३वें - अध्याय में ७वें श्लोक से ११वें श्लोक तक अकेले भारतवर्ष का भी नौ विभागों में बटवारा होने की व्यवस्था का वर्णन किया गया है।

भारतवर्ष के नौं विभागों के नाम

(१) इन्द्रद्वीप (२) कसेरु (३) ताम्रपर्ण (४) गभस्तिमान् (५) नागद्वीप (६) सौम्य (७) गन्धर्व (८) वारूण (९) भारतद्वीप।

सीमास्तम्भरूप हिमालय पर्वत को छोड़कर शेष नौ हजार योजन दक्षिणोत्तर व्यास वाले=(९००० योजन चौड़े) भारतवर्ण के प्रत्येक नवें भाग में दक्षिणोत्तर क्रम से १००० योजन=(एक हजार योजन) चौड़ाई के रूप में हैं। लम्बाई के रूप में - जम्बूद्वीप के पश्चिमीय परिधि से पूर्वीय परिधि तक भारत-वर्ण के प्रत्येक नवें भाग में एक हजार योजन चौड़ी - लम्बी पट्टी स्थित है।

(३)—सीमास्तम्भ रूप हिमालय पर्वत की चौड़ाई के आधे एक हजार योजन नौ हजार योजनों में जोड़ने पर समस्त भारतवर्ण की दक्षिणोत्तर चौड़ाई का मान—१०००+९०००=१००००योजन (दश हजार योजन) होता है।

(४)—पश्चिमीयक्षारसमुद्र के तट से पूर्वीय क्षारसमुद्र के तट तक लम्बे, और दक्षिणीय क्षारसमुद्र के तट (किनारे) से हिमालय पर्वत तक चौड़े इस सम्पूर्ण भारतवर्ण पर शासन (राज्य) करने वाले राजा को "सम्राट्" नाम से पुकारा जाता है। तदनु-सार नौ हजार योजन दक्षिणोत्तर चौड़े इस मनुष्य लोक के शासन कर्ता की "सम्राट्" संज्ञा होती है।

अन्तरिक्ष लोक की "विराट्" संज्ञा होती है। पूर्वोक्त भारतवर्ण के नौ भागों में से किसी भी एक भाग पर शासन करने वाले राजा की "स्वराट्" संज्ञा होती है।

(६)—श्रीमद्भागवतपुराण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, मत्स्यपुराण - आदि संस्कृतवाङ्गमय के सभी आर्ण ग्रन्थों में और सूर्यसिद्धान्तादि सभी आर्ण गणितग्रन्थों में जम्बूद्वीप की स्थिति का एकसा ही प्रतिपादन किया गया है। जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित गन्धमादन और माल्यवान्, इन दोनों पर्वतों की ऊँचाई चालीस हजार योजन =(४०००० योजन)=पाँच लाख नवासी हजार नौ सौ नौ=(५८९९०९) किलो-मीटर है।

जम्बूद्वीप की स्थिति के विषय में - महामहोपाध्याय "श्री सुधाकर द्विवेदी" के मत का खण्डन

(७)—सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय में छत्तीसवें श्लोक के चतुर्थचरण में "देवासुरविभागकृत्" इस अंश की टीका में सूर्यसिद्धान्त पर "सुधावर्षिणी" टीकाकार श्री सुधाकर द्विदेदी जी ने लिखा है कि——

"अयं महार्णवः=क्षारसमुद्रः, धात्र्याः=पृथिव्याः, मेखला=कटिबन्धः इव, देवासुरविभागकृत्=देवदैत्ययोः भूगोलपृष्ठे विभागयोः - अवधिरूपः इव स्थितः, एतेन समुद्रोत्तरतटात् - उत्तरं भूगोलस्य-अर्धं जम्बूद्वीपं देवानाम्, समुद्रसहितं दक्षिणभूगोलार्धं च दैत्यानाम् इति सिद्ध्यति"।

(८)महामहोपाध्याय श्री सुधाकर द्विवेदी जी की उपर्युक्त टीका का निष्कर्ष यह है कि—यह क्षार समुद्र पृथिवी के मध्य में स्थित होने के कारण देवता और राक्षसों में जम्बूद्वीप की पृथिवी को बांटता है।

भूगोल के बीच में स्थित समुद्र के उत्तरी किनारे से उत्तर की ओर भूगोल का आधा भाग देवताओं के उपभोग के लिये है और भूगोल के मध्य में स्थित समुद्र के सहित जम्बूद्वीप की भूमि का आधा दक्षिणीय भाग राक्षसों के उपभोग के लिये है, चूंकि— क्षार-समुद्र जम्बूद्वीप के भूगोल को देवता और राक्षसों में विभक्त कर रहा है। इसलिये यह क्षारसमुद्र "देवासुरविभागकृत्" है।

श्री सुधाकर द्विवेदी के इस कथन का खण्डन करने के लिये इसी छठे अध्याय के एकसौछिअत्तरवें "१७६वें" पृष्ठ पर "जम्बूद्वीप" के चित्र को देखिये।

सूर्यसिद्धान्तादि अनेक आर्षगणितों के अनुसार - जम्बूद्वीप के मध्य में क्षार-समुद्र न होकर - द्वीप के मध्य में "सुमेरुपर्वत" स्थित है। जम्बूद्वीप की परिधि से बाहर स्थित होकर क्षारसमुद्र जम्बूद्वीप की परिधि के चारों ओर स्थित है।

जम्बूद्वीप की परिधि से दक्षिण की ओर क्षारसमुद्र में "लङ्काद्वीप" स्थित है। इसी नगरी में रावण, कुम्भकरण, मेघनाद आदि राक्षसों का निवास माना गया है।

(९)—दक्षिणीय क्षारसमुद्र और लङ्का से सम्पूर्ण जम्बूद्वीप उतरदिशा में स्थित हुआ प्रत्यक्ष रूप में जम्बूद्वीप के चित्र में दिखाई दे रहा है। दक्षिणीय क्षारसमुद्र से उत्तर की ओर भारतवर्ष स्थित है। भारतवर्ष से उत्तर की ओर हिमालयपर्वत और किम्पुरुषवर्ष, हरिवर्ष, इलावृतवर्ष रम्यकवर्ष, हिरण्यकवर्ष, कुरुवर्ष, स्थित हैं, पूर्व में भद्राश्ववर्ष और पश्चिम में-केतुमालवर्ष की स्थिति "जम्बूद्वीप" के चित्र में प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है।

भारत को छोड़कर जम्बूद्वीप के शेष सभी आठ वर्षों में - देवभूमि है, उस देवभूमि में देवता निवास करते हैं, और इस देवभूमि का हर प्रकार से देवता उपभोग

भी करते हैं, जम्बूद्वीप का नवाँ भाग केवल भारतवर्ष ही एक देश है जो मनुष्यलोक है। इस मनुष्यलोक का उपभोग मनुष्य ही करते हैं, भारतवर्ष की भूमि को ही "मृत्युलोक" भी कहा जाता है।

(१०)—उपर्युक्त स्पष्टीकरण से यह सिद्ध होता है कि—महामहोपाध्याय श्री सुधाकर द्विवेदी जी ने - सूर्यसिद्धान्त की सुधावर्षिणी टीका में—"क्षारसमुद्र" को जम्बूद्वीप की आधी भूमि देवताओं में और आधी भूमि राक्षसों में वांटने वाला वताकर वड़ी भारी भूल (गलती) की है।

रावण आदि राक्षसों की 'राजधानी लङ्का' क्षारसमुद्र के द्वीप में जम्बूद्वीप की परिधि से वाहर की ओर दक्षिण दिशा में क्षारसमुद्र के अन्तर्गत ही स्थित है। तदनुसार क्षारसमुद्र के उत्तरी तट से आगे उत्तर की ओर जम्बूद्वीप की भूमि पर - असुरों का = (राक्षसों का) कहीं भी आधिपत्य नहीं है, राक्षस केवल लङ्काद्वीप की भूमि के ही अधिकारी हैं, इसी प्रकार का - विभाग क्षारसमुद्र के द्वारा सूर्यांशपुरुष ने मानकर क्षारसमुद्र को 'देवासुर विभागकृत्' सूर्यसिद्धान्त में कहा है।

'देवासुर विभागकृत्' के सम्बन्ध में - महामहोपाध्याय श्री सुधाकर द्विवेदी जी ने जो कुछ भी लिखा है, वह विलकुल गलत, अविचारितरमणीय ओर भ्रामक ही है।

सुमेरुपर्वतस्थितिविषये श्रीरङ्गनाथमतस्य समीक्षात्मकं- खण्डनमत्र करोमि···

"अनेकरत्ननिचयो जाम्बूनदमयो गिरिः।
भूगोलमध्यगो मेरुरुभयत्र विनिर्गतः ॥३४॥

सूर्यसिद्धान्ते भूगोलाध्याये "गूढ़ार्थप्रकाशक" टीकायां टीकाकारैः श्रीरङ्गनाथमहोदयैः "उभयत्र विनिर्गतः" इति चतुर्थचरणस्य टीकावसरे 'उभयत्र=व्यासान्तरितभूपृष्ठ - प्रदेशाभ्याम् - वहिः स्थितदण्डाकार - स्वर्णाद्रिमध्ये - भूगोलः प्रोतोऽस्ति, अत एव भूभृत् - इति - अन्वर्थसंज्ञः इति तात्पर्यार्थः" इत्येतादृशी टीका कृता - उपलभ्यते सूर्यसिद्धान्ते - अद्यापि।

वस्तुतस्तु - निष्पक्षया शोधधिया विचारे कृते सति - श्रीरङ्गनाथकृता- उपर्युक्तटीका - भ्रान्तिप्रदा - अशुद्धा - च - अस्तीति मयोच्यतेऽत्र

यतो हि··· "चतुराशीतिसाहस्रो योजनैरस्य चोच्छ्रयः।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद् द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ॥९॥
मूलेषोडशसाहस्रो विस्तारस्तस्यसर्वशः।
भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकारसंस्थितः ॥१०॥

द्वितीये अंशे - द्वितीये - अध्याये - इति श्रीविष्णुपुराणोक्तेः - श्री मत्स्यपुराणे - श्री वायुपुराण - श्रीमद्भागवतमहापुराणोक्तेश्च एकलक्षयोजन- "१०००० योजन" प्रमितस्य सुमेरोः - षोडशसहस्रयोजन "१६००० योजन" प्रमितो भागः- जम्बूद्वीभूगोल भूपृष्ठभागात् - अधः प्रदेशे - भूमिगर्भे = भूमिमध्ये विनिर्गतः - प्रविष्टोऽस्ति", चतुर-

शीतिसहस्रयोजन - प्रमितः= "८४००० योजनप्रमितः" जम्बूद्वीपभूगोल - भूपृष्ठात्-ऊर्ध्वप्रदेशे= अन्तरिक्षे, विनिर्गतः= प्रविष्टः" अस्ति ।

उक्तरीत्या सुवर्णमयसुमेरुपर्वतस्य उभत्र विनिर्गतत्वं सिद्ध्यति, न तु दण्डाकारे सुमेरौ भूगोलः प्रोतोऽस्तीति कथनात्-विनिर्गतत्वं अस्ति । वस्तुतस्तु "भूभृत्" शब्दस्य-वास्तविकार्थः - व्युत्पत्तिश्च नावगता श्री रङ्गनाथैः, अत एव - भूभृत् - इति- अन्वर्थ-संज्ञः- इति तात्पयर्थिः समुक्तः - तैः- गूढ़ार्थप्रकाशकटीकाकारैः, यतोहि···

"भूभृत् भूमिधरे नृपे" इति - अमरकोषोक्तेः - भूभृत् - भूमिधर-शब्दौ- तुल्यार्थबोधकौ नृपशब्दपर्यायवाचकौ स्तः, "डुभृञ् - धारणपोषणयोः' इत्यर्थकात्- जुहोत्यदिगणपठितात् - "भृ" धातोः- भुवं विभर्ति - इति विग्रहे "क्विप् च– ३।२।७६" इति श्रीपाणिनिमुनिविरचितसूत्रेण- "क्विप्" प्रत्यये कृते - तस्य च सर्वलोपे सति "ह्रस्वस्य पिति किति तुक् – ६।१।७१" इति सूत्रेण "तुक्" प्रत्यये - अनुवन्धलोपे च कृते सति नृपशब्दार्थबोधकः "भूभृत्' शब्दः सिद्ध्यति ।

यथा हि - भूभृत् - पर्यायवाचकः - नृपः - स्वशासनान्तर्गत - भूमिस्थानां मानवादिप्राणिनां - अन्न - वस्त्र - शिक्षादिप्रवन्धप्रदानैः- प्राणरक्षणाय-अन्नसस्याद्युत्पादनाय च जलादिप्रवन्धप्रदानैः- रक्षां करोति, प्रजानां-धारणं-पोषणं च कृत्वा "डुभृज्" धारणपोषणयोः इति धातुतोः- विनिर्मितस्य - "भूभृत्" शब्दस्य - अन्वर्थतां सार्थकतां च नयति, न तु भूगोलमध्ये प्रवेशं कृत्वा कश्चित् - नृपः- स्वशरीरे भूगोलं प्रजां च धारयति।

तथैव - पर्वतपर्यायवाचकः "भूभृत्" शब्दोऽपि - अस्ति, यतो हि - पर्वतोऽपि यस्यां भूमौ तिष्ठति, तस्याः- भूमेः रक्षां विविधप्रकारैः करोति । अनेके नदाः- नद्यश्च पर्वतात्-विनिर्गत्य भूमौ प्रवहन्ति, नद- नदीनां जलेभ्यः- कृषकाः स्वक्षेत्राणि सिञ्चन्ति, कृषिक्षेत्रे - सिञ्चनसम्पन्ने सति- मानवादीनां-पशुपक्षिणां च प्राणरक्षाकराणि अनेक-प्रकाराणि - अन्न - सस्यादीनि जायन्ते, पर्वतनिः सृतेभ्यः - जलाशयेभ्यः- विद्युदादीनां (विजली आदि की) उत्पत्तिः भवति, विद्युत्सहयोगेन तु - राष्ट्रस्थमानवानां- कार्य-संसाधनाय विविधानि- यन्त्र- शस्त्रादीनि जायन्ते । दैनिकप्रयोगसाधनाय विविधकाष्ठ-समुदायः - पर्वतात् - लभ्यते । आयुर्वर्धनाय - विविधरोगविनाशाय च - विशिष्टौषधि-लाभोऽपि पर्वतेभ्यः एव- भवति, गृह - कूपादि - निर्माणाय पाषाणादीनां लाभोऽपि पर्वतादेवः भवति । वहुषु - स्थलेषु - पिपासा - निवारणाय जल-लाभः, बुभुक्षा-विनिवृत्तये - कन्द-मूल-फलादिलाभोऽपि पर्वतादेव भवति ।

उपर्युक्तरीत्या - पर्वतः अनेकैः प्रकारैः नृपसदृशप्रजापालनं पोषणं च करोति, अतः "भूभृत्" शब्देन - पर्वतस्यापि व्यवहारः कृतः शास्त्रेषु प्रवीणैः ऋषिभिः । न तु पर्वतः - भूगोलमध्ये प्रविश्य भूगोलं धारयति, अपितु भूगोलपृष्ठे विद्यमानोऽपि पर्वतः पूर्वोक्तैः - विशिष्टकारणैः "भूभृत्" संज्ञया-व्यवहृतः भवति । अतः "सुवर्णमयः सुमेरु-पर्वतः' उभयत्र व्यासान्तरितभूपृष्ठप्रदेशाभ्यां बहि विनिर्गतः, तथा च बहिः स्थितदण्डा-

कारसुवर्णपर्वतमध्ये भूगोलः प्रोतोऽस्ति, अत - एव - भूभृत् - इति - अन्वर्थसंज्ञः - इति तात्पर्यार्थः, इत्येतादृशो-योऽयमर्थः - रङ्गनाथैः कृतः - स तु - भ्रान्तिप्रदः-अशुद्धः- निराधारश्च वरीवर्ति, इति मध्यस्थया धिया विवेचनीयं विज्ञैः।

सुमेरुपर्वत के विषय में सूर्यसिद्धान्त पर टीकाकार श्री रङ्गनाथ के मत का खण्डन

(१)—"अनेकरत्ननिचयो जाम्बूदनमयो गिरिः।
भूगोलमध्यगो मेरुरुभयत्र विनिर्गतः॥३४॥

सुन्दरी टीका–सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय में स्थित उपर्युक्त पद्य की टीका में "गूढ़ार्थ-प्रकाशक" टीकाकार श्री रङ्गनाथ ने "उभयत्रविनिर्गतः" इस चतुर्थ चरण की अपनी टीका में लिखा है कि—"उभयत्र=व्यासान्तरित - भूपृष्ठ - प्रदेशाभ्यां - वहिः स्थित-दण्डाकार - स्वर्णाद्रिमध्ये भूगोलः प्रोतोऽस्ति, अतएव "भूभृत्" इति - अन्वर्थसंज्ञः - इति तात्पर्यार्थः"। श्री रङ्गनाथ ने अपनी इस टीका में यह बताया है कि—सुवर्णमय सुमेरुपर्वत भूगोल के मध्य में - दक्षिणोत्तर - भूव्यासरेखा के समान भूगोलकेन्द्रगामी होकर, दक्षिण की ओर और उत्तर की ओर भूपरिधि से बाहर निकला हुआ है, तदनुसार भूगोल के मध्य में प्रविष्ट हुआ दण्डाकार सुमेरुपर्वत भूगोल को धारण करता है, अतएव "भूभृत" इस नाम को सुमेरुपर्वत सार्थक करता है।

श्री रङ्गनाथ के मत का खण्डन

(२)—"भूभृत् - भूमिधरे नृपे - इति अमरकोषोक्तेः"

अमरकोषादि सभी कोषों में "भूभृत् और भूमिधर" इन दोनों शब्दों को आपस में एक दूसरे के पर्यायवाचक मानकर, इन दोनों शब्दों को नृप अथवा राजा का पर्यायवाचक कहा है, धारण और पोषण अर्थ के द्योतक "भृ" धातु से "भुवं बिभर्ति" इस प्रकार का विग्रह करने पर—"क्विप् च—३/२/७६" पाणिनि मुनि के इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय होने पर 'क्विप्' का सर्वलोप होकर, 'ह्रस्वस्य पिति किति तुक्'—६/१/७१' इस सूत्र से 'तुक्' प्रत्यय और - तुक्-प्रत्यय के अनुबन्धों का लोप होने पर 'भूभृत्' शब्द बनता है, जोकि—राजा और भूमिधर का पर्यायवाची माना जाता है।

(३)—'भूभृत्' शब्द का पर्यायवाचक—नृप, भूमिधर या राजा, अपने शासन के अन्तर्गत भूगोल पर निवास करने वाले मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी प्राणियों के लिये—अन्न, जल, वस्त्र, शिक्षा, मकान, आदि व्यवस्थाओं को करके अपने अधीनस्थ प्रजा का सब प्रकार से संरक्षण, पालन-पोषण करके 'डुभृञ् - धारणपोषणयोः' अर्थात् धारण और पोषण अर्थ के द्योतक - भूभृत् - शब्द की सार्थकता को जिस प्रकार से पूरा करता है, ठीक उसी प्रकार से पर्वत भी जिस भूमि या जिस प्रदेश में स्थित रहता है, उस प्रदेश के निवासियों की शत्रु आदि से सुरक्षा करता है, तथा—पर्वत, अपने से अनेक प्रकार के—झरना, नद, नदी, आदि को निकालकर अपने इर्द - गिर्द की भूमि को सींचने के साधनों को प्रदान करता है, पर्वत से निकले जलाशयों से

विद्युत्=(बिजली) उत्पन्न करके उस बिजली से राष्ट्र की रक्षा के लिये अनेक प्रकार के अस्त्र और शस्त्रों का निर्माण किया जाता है। पर्वत पर अनेक प्रकार के - कन्द - मूल - फल उत्पन्न होते हैं, जिन्हें खाकर प्राणिमात्र का भरण-पोषण होता है, अनेक प्रकार की उत्तम औषधियाँ पर्वत पर उत्पन्न होती हैं, जिनसे अनेक प्रकार से अपने रोगों को दूर करके प्राणिमात्र अपने प्राणों को धारण करके अपना भरण-पोषण करता है, पर्वत से अनेक प्रकार का काष्ठ प्राप्त होता है, उस काष्ठ से मकान आदि के निर्माण करने में तथा ईंधन के जलाने में भी सहयोग मिलता है, पर्वतों के पत्थरों से मकान, कुआं, और सीमेन्ट भी बनाया जाता है, जिससे राष्ट्र के जीवों का अनेक प्रकार से भरणपोषण होता है।

(४) उपर्युक्त कारणों से— पर्वत द्वारा राजा के समान प्रजा का - संरक्षण और भरण, पालन, पोषण, होने से पर्वत को भी शास्त्रों में तथा अनेक कोषों में "भूभृत्" शब्द से ही उच्चारण किया गया है।

(५) भूगोल के एक छोर से दूसरे छोर तक—भूगोल के मध्य में- दण्डाकाररूप में सुमेरुपर्वत या अन्य कोई भी पर्वत कहीं पर भी कभी भी न तो स्थित हुआ है, और न है, और न कभी हो सकेगा।

(६) श्रीरङ्गनाथ ने "भूभृत्" शब्द के वास्तविक अर्थ को और सही अभिप्राय को नहीं समझ कर, भूभृत्" शब्द की नितान्तभ्रामक और गलत व्याख्या करके "सुमेरु पर्वत" को भूगोल के एक छोर से— (सिरे से) दूसरे छोर तक निकला हुआ बताकर, "उभयत्र विनिर्गतः" का बिलकुल असङ्गत और भ्रामक अर्थ किया है, अत एव-पूर्वोक्त चौंतीसवें श्लोक के चतुर्थचरण का - श्री रङ्गनाथ द्वारा किया गया - अर्थ - नितान्त निराधार और असङ्गत तथा गलत और भ्रामक होने के कारण उपेक्षणीय ही है।

(७) इसी छठे अध्याय के एक सौ छिअत्तर वें पृष्ठ =(१७६ वें पृष्ठ) पर "जम्बूद्वीप के चित्र" में देखिये सुमेरुपर्वत - जम्बूद्वीप के भूगोल के मध्य में=(केन्द्र में) जमीन के भीतर सोलह हजार योजन निकला हुआ है, और जमीन से चौरासी हजार योजन= (८४००० योजन) अन्तरिक्ष= (आकाश) की ओर निकला हुआ है, इस प्रकार - सुमेरुपर्वत का उभयत्र विनिर्गतत्व सिद्ध होता है।

सप्तद्वीपानां वितरणव्यवस्था कदा केन कृता, जम्बूद्वीपस्य नवविभागाश्च कदा केन कृताः - इत्यत्र - प्रतिपादयामि…

विष्णुपुराणे - द्वितीये - अंशे - प्रथमेऽध्याये - मैत्रेयः प्रश्नं करोति।

प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ स्वायम्भुवस्य यौ।
तयोरुत्तानपादस्य ध्रुवः पुत्रस्त्वयोदितः ॥३॥
प्रियव्रतस्य नैवोक्ता भवता द्विज सन्ततिः।
तामहं श्रोतुमिच्छामि प्रसन्नो वक्तुमर्हसि ॥४॥

श्री पराशरो मुनिः उत्तरं ददाति......

कर्दमस्यात्मजां कन्यामुपयेमे प्रियव्रतः ।
सम्राट् कुक्षिश्च तत्कन्ये दशपुत्रास्तथापरे ॥५॥
महाप्रज्ञा महावीर्या विनीता दयिताः पितुः ।
प्रियव्रतसुताः ख्यातास्तेषां नामानि मे शृणु ॥६॥
आग्नीध्र श्चाग्निवाहुश्च वपुष्मान् द्युतिमांस्तथा ।
मेधा मेधातिथि र्भव्यः सवनः पुत्र एव च ॥७॥
ज्योतिष्मान् दशमस्तेषां सत्यनामा सुतोऽभवत् ।
प्रियव्रतस्य पुत्रास्ते प्रख्याता वलवीर्यतः ॥८॥
मेधाग्निवाहुपुत्रास्तु त्रयो योगपरायणाः ।
जातिस्मरा महाभागा न राज्याय मनो दधुः ॥९॥
निर्मलाः सर्वकालन्तु समस्तार्थेषु वै मुने! ।
चक्रुः क्रियां यथान्यायमफलाकाङ्क्षिणो हि ते ॥१०॥
प्रियव्रतो ददौ तेषां सप्तानां मुनि सत्तम! ।
सप्तद्वीपानि मैत्रेय! विभज्य सुमहात्मनाम् ॥११॥
जम्बूद्वीपं महाभाग! सोऽग्नीध्राय ददौ पिता ।
मेधातिथेस्तथा प्रादात् प्लक्षद्वीपं तथापरम् ॥१२॥
शालमले च वपुष्मन्तं नरेन्द्रमभिषिक्तवान् ।
ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजानं कृतवान् प्रभुः ॥१३॥
द्युतिमन्तं च राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत् ।
शाकद्वीपेश्वरं चापि भव्यं चक्रे प्रियव्रतः ॥१४॥
पुष्कराधिपतिं चक्रे सवनं चापि स प्रभुः ॥१५॥
वानप्रस्थविधानेन तत्रापि कृतनिश्चयः ।
तपस्तेपे यथा न्यायमियाज स महीपतिः ॥३०॥
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं कृशो धमनिसन्ततः ।
नग्नो वीटां मुखे कृत्वा वीराध्वानं ततो गतः ॥३१॥

विष्णुपुराणे द्वितीये अंशे प्रथमाध्याये जम्बूद्वीपस्य नवविभाग-व्यवस्थामत्र लिखामि

जम्बूद्वीपेश्वरो यस्तु - आग्नीध्रो मुनिसत्तम! ॥१५॥
तस्य पुत्रा बभूवुस्ते प्रजापतिसमा नव ।
नाभिः किम्पुरुषश्चैव हरिवर्ष इलावृतः ॥१६॥
रम्यो हिरण्वान् षष्ठश्च कुरु र्भद्राश्व एव च ।
केतुमालस्तथैवान्यः साधुचेष्टो ऽभवन्नृपः ॥१७॥

जम्बूद्वीपविभागाश्च तेषां विप्र! निशामय ।
पित्रादत्तं हिमाह्वं तु वर्षं नाभेस्तु दक्षिणम् ॥१८॥
हेमकूटं तथा वर्षं ददौ किम्पुरुषाय सः ।
तृतीयं नैषधं वर्षं हरिवर्षाय दत्तवान् ॥१९॥
इलावृताय प्रददौ मेरु र्यत्र तु मध्यमः ।
नीलाचलाश्रितं वर्षं रम्याय प्रददौ पिता ॥२०॥
श्वेतं तदुत्तरं वर्षं पित्रा दत्तं हिरण्वते ।
शृङ्गवतो यदुत्तरं वर्षं तत्कुरवे ददौ ॥२१॥
मेरोः पूर्वेण यद् वर्षं भद्राश्वाय प्रदत्तवान् ।
गन्धमादनवर्षं तु केतुमालाय दत्तवान् ॥२२॥
इत्येतानि ददौ तेभ्यः पुत्रेभ्यः स नरेश्वरः ।
वर्षेष्वेतेषु तान् पुत्रानभिषिच्य स भूमिपः ॥२३॥
शालग्रामं महापुण्यं मैत्रेय! तपसे ययौ ।
यानि किम्पुरुषाद्यीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने ॥२४॥
तेषां स्वाभाविकी सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ।
विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च ॥२५॥
धर्माधर्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः ।
न तेष्वस्तियुगावस्था क्षेत्रेष्वष्टसु सर्वदा ॥२६॥
हिमाह्वयं तु यद्वर्षं नामेरासीन् महात्मनः ।
तस्य र्षभोऽभवत्पुत्रो मेरुदेव्यां महाद्युतिः ॥२७॥
ऋषभाद् भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्रशतस्य सः ।
कृत्वा राज्यं स्वधर्मेण तथेष्ट्वा विविधान् मखान् ॥२८॥
अभिषिच्य सुतं वीरं भरतं पृथिवीपतिः ।
तपसे स महाभागः पुलहस्याश्रमं ययौ ॥२९॥
ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते ।
भरताय यतः पित्रा दत्तं प्रातिष्ठता वनम् ॥३२॥

विष्णुपुराणे द्वितीये अंशे प्रथमाध्याये भरतवंशस्य - परम्पराक्रमः

सुमति र्भरतस्याभूत् पुत्रः परमधार्मिकः ।
कृत्वा सम्यग् ददौ तस्य राज्यमिष्टमखः पिता ॥३३॥
पुत्रसङ्क्रामितश्रीस्तु भरतः स महीपतिः ।
योगाभ्यासरतः प्राणान् शालग्रामेऽत्यजन् मुने! ॥३४॥
अजायत च विप्रोऽसौ योगिनां प्रवरे कुले ।
मैत्रेय! तस्य चरितं कथयिष्यामि ते पुनः ॥३५॥
सुमतेस्तेजसस्तस्मादिन्द्रद्युम्नो व्यजायत ।
परमेष्ठी ततस्तस्मात् प्रतिहारस्तदन्वयः ॥३६॥

प्रतिहर्तेति विख्यात उत्पन्नस्तस्य चात्मजः ।
भवस्तस्मादथोद्गीथः प्रस्तावस्तत्सुतो विभुः ॥३७॥
पृथुस्ततस्ततो नक्तो नक्तस्यापि गयः सुतः ।
नरो गयस्य पुत्रस्तु तत्पुत्रोऽभूद् विराट् ततः ॥३८॥
तस्य पुत्रो महावीर्यो धीमांस्तस्मादजायत ।
महान्तस्तत्सुतश्चाभूत् - मनस्युस्तस्य चात्मजः ॥३९॥
त्वस्टा, च विरजस्त्वष्टुः रजस्तस्याप्यभूत् सुतः ।
शतजिद् रजतस्तस्य जज्ञे पुत्रशतं मुने ॥४०॥

उपर्युक्तपद्यानाम् - अर्थस्तु - स्पष्टः - एव, अतएव- मयाऽत्र व्याख्या न कृतः ।

भारतवर्षस्य - नवविभागाः कदा केन कृताः- इत्यत्र प्रतिपादयामि

श्रीविष्णुपुराणे द्वितीये - अंशे - प्रथमे - अध्याये…

विश्वग्ज्योतिः प्रधानास्ते यैरिमा वर्द्धिताः प्रजाः ।
तैरिदं भारतं वर्षं नवभेदमलङ्कृतम् ॥४१॥
तेषां वंशप्रसूतैश्च भुक्तेयं भारती पुरा ।
कृत - त्रेतादि - सर्गेण युगाख्यामेकसप्ततिम् ॥४२॥
एष स्वायम्भुवः सर्गो येनेदं पूरितं जगत् ।
वाराहे तु मुने! कल्पे पूर्वमन्वन्तराधिपः ॥४३॥

उपर्युक्तानां पद्यानाम् - अयं भावः… रजनामकस्य राज्ञः - शतजित् नामकः पुत्रो बभूव, तस्य शतजित्- नामकस्य नृपस्य-शतसंख्या प्रमिताः "१००" पुत्राः जाताः- अर्थात् बभूवुः । तेषां शतपुत्राणां मध्ये- विज्ज्योतिः नामकः पुत्रः- प्रधानः "ज्येष्ठपुत्रः" आसीत् । तैश्च शतपुत्रैः प्रजाः वर्द्धिताः, तैः-विश्वग्ज्योतिःप्रभृतिभिः पुत्रैश्च इदं भारतं वर्षं नवभेदम् - अलङ्कृतम् । अर्थात् - तैः - एव- विश्वग्ज्योतिः- प्रभृतिभिः- शतपुत्रैः- अस्य - भारतवर्षस्य नवभेदाः कृताः ।

उक्तपद्यानां व्याख्यावसरे - विष्णुचित्तीय-टीकाकाराः- लिखन्ति …

"पूर्वमन्वन्तराधिपे स्वायम्भुवे मनौ सति - एषः- एकसप्ततियुगावच्छिन्नः सर्गः स्वायम्भुवः= स्वायम्भुवस्य मनोः सम्बन्धी प्रियव्रतादिः" ।

अत्रैव - आत्मप्रकाशाख्यटीकाकाराः - श्रीधरस्वामिनो लिखन्ति…

"तेषां प्रियव्रतान्वयप्रसूतानां वंशे प्रसूतैः पुरा= प्रथमम् इयं भारतीयभूमिः- भुक्ता, पश्चात् - उत्तानपादादिभिः भुक्ता ।" कृतत्रेतादीनां सर्गेण=प्रवृत्या युगाख्या =चतुर्युगैः - आख्यायते या - एकसप्ततिः=मन्वन्तराख्यः कालः तावन्तं कालं भुक्ता इत्यर्थः । एतदेव स्पष्टयति वाराहेऽस्मिन् कल्पे - यदा स्वायम्भुवः-सर्वस्य प्रथममन्वन्तराधिपोऽभूत्, तदा- एषः प्रियव्रतवंश्यानां राज्ञां सर्गः, ततः - स्वारोचिषप्रारम्भकालात् प्राक्- उत्तानपादवंश्यानां सर्गः बभूव ।

पूर्वकथनस्य - अयं - भावः…

वर्तमानसमये प्रचलितस्य वाराहकल्पस्य प्रारम्भकाले-स्वायम्भुवो मनुः- बभूव,

तस्य स्वायम्भुवस्य मनोः - प्रियव्रतोत्तानपादनामकौ द्वौ पुत्रौ बभूवतुः, प्रियव्रतनामकेन पुत्रेण सर्वप्रथमम् - इयं भारती भूमिः- भुक्ता, ततः प्रियव्रतस्य- पुत्र - पौत्र- प्रपौत्र-प्रभृतिभिः इयं भारतभूमिः - भुक्ता, तैः एव प्रियव्रत - पुत्र - पौत्रादिभिः - अस्याः- भारत - भूमेः - नव विभागाः कृताः ।

साम्प्रतं प्रचलिते वाराहकल्पे तु सप्तमः- वैवस्वमनुः प्रचलति, अस्य सप्तमस्य वैवस्वतमनो. - अपि अष्टाविंशतितमं "२८ वां" महायुगं प्रचलति, अस्मिन् - अष्टाविंशतितमे महायुगेऽपि "कृतयुग - त्रेता - द्वापर" संज्ञकानि युगानि व्यतीतानि, 'कलियुग' संज्ञकस्य - चतुर्थयुगस्य- अपि- षडग्निशून्यनेत्र=(२०३६) प्रमिते वैक्रमाब्दे-शून्याष्ट शून्य-पञ्च="५०८०" संख्याप्रमितानि वर्षाणि व्यतीतानि, स्वायम्भुवमनोः-प्रारम्भकाले - एव-भारतवर्षस्य नवविभागा जाताः, इति तु प्रागेव व्यवस्था प्रदत्ता ।

यस्मिन् काले भारतवर्षस्य नवविभागाः कृताः - ततः- आरभ्य - षडग्नि-शून्य-नेत्र - "२०३६" प्रमितवैक्रमाब्दान्तं यावत्तावत् कतिवर्षाणि - व्यतीतानीति स्पष्टीकरणार्थं मया - अत्र - वक्ष्यमाणं-गणितं क्रियते । विधीयमानं गणितं निष्पक्षया धिया विचारयन्तु विद्वांसः - वैज्ञानिकाः ।

भारतवर्षनवविभागसमयस्य स्पष्टीकरणमत्र गणितेन करोमि

४३२०००० = एकमहायुगस्य वर्षाणि,
×७१
४३२००००
३०२४००००
३०६७२०००० = एकमन्वारम्भमनुसमाप्तिकालयोरन्तरवर्षाणि,
+१७२८००० = मनुसमाप्तौ कृतयुगतुल्यानि मनुसन्धिवर्षाणि,
३०८४४८००० = सनुसन्धिवर्षसहितानि-एकमन्वन्तरवर्षाणि,
×६ = गतषड्मनुसंख्यया गुणनमत्रकृतम्,
१८५०६८८००० = षड्मनुसन्धिसहितानि - षड्मन्वन्तरवर्षाणि,
४३२०००० = एकमहायुगस्य वर्षाणि,
×२७ = गतमहायुगसंख्यातुल्योऽत्रगुणकाङ्कः,
३०२४००००
८६४००००
११६६४०००० = गतसप्तविंशतिमहायुगवर्षाणि,
+१७२८००० = गतकृतयुगवर्षाणि
+१२९६००० = गतत्रेतायुगवर्षाणि
+ ८६४००० = गतद्वापरयुगवर्षाणि
+ ५०८० = वर्तमानकलियुगस्य शून्याष्टशून्यपञ्च=(५०८०) प्रमितानि षडग्निशून्यनेत्र =२०३६ वैक्रमाब्दे सन्ति ।
१२०५३३०८० = प्रचलिते वाराहकल्पे अष्टाविंशतिमहायुगे गतवर्षाणि ।

१२०५३३०८० = प्रचलिते वाराहकल्पे अष्टाविंशतिमहायुगे गतवर्षाणि,
+१८५०६८८००० = गतषड्मनुसन्धिसहितानि गतषड्मन्वन्तरवर्षाणि,
१९७१२२१०८० = प्रचलित -वाराह- कल्पान्तर्गत - सप्तमवैवस्वतमनोः गतवर्ष - सहितानि - ससन्धिगतषड्मन्वन्तरवर्षाणि,

शून्याष्ट-शून्यचन्द्र - नेत्रनेत्र - चन्द्रसप्त - नवचन्द्र - संख्या-प्रमितवर्षपूर्वं = १९७१२२१०८० एतावद् - वर्ष - प्रमितासन्नकालपूर्वं भारतवर्षस्य नवविभागाः कृताः स्वायंभुवमनुपुत्रप्रियव्रतवंशजैः - विश्वकज्योतिः प्रभृतिभिः नृपैः ।

विष्णुपुराण - द्वितीय अंश - प्रथमाध्याय के अनुसार सप्तद्वीपों की वितरण व्यवस्था और जम्बूद्वीप के नौ भाग होने की व्यवस्था का विवेचन

(१) सृष्टि के प्रारम्भ में प्रथम मनु का नाम 'स्वायम्भुव' था, स्वायम्भुव के पुत्र प्रियव्रत के (१) आग्नीध्र (२) अग्निवाहु (३) वपुष्मान् (४) द्युतिमान् (५) मेधा (६) मेधातिथि (७) भव्य (८) सवन (९)पुत्र (१०) ज्योतिष्मान्, ये दशपुत्र थे ।

(२) मेधा, अग्निवाहु, और पुत्र, इन तीनों को पूर्वजन्म की सम्पूर्ण स्मृति प्रचलित जन्म में भी वनी हुई थी, ये तीनों योगी थे, इनकी रुचि राजकाज में लेश-मात्र भी नहीं थी, ये विरक्त और सन्यासी थे ।

(३) प्रियव्रत राजा ने अपने शेष सातों पुत्रों में अपने राज्य के सातों द्वीपों को क्रमशः वाँट दिया था ।

(१) जम्बूद्वीप को- आग्नीध्र के लिये दिया ।
(२) प्लक्षद्वीप को - मेधातिथि के लिये दिया ।
(३) शाल्मलद्वीप को - वपुष्मान् के लिये दिया ।
(४) कुशद्वीप को - ज्योतिष्मान् के लिये दिया ।
(५) क्रौञ्चद्वीप को - द्युतिमान् के लिये दिया ।
(६) शाकद्वीप को - भव्य के लिये दिया ।
(७) पुष्करद्वीप को - सवन के लिये दिया ।

जम्बूद्वीप के नौ भाग

(४) जम्बूद्वीप के राजा आग्नीध्र के नौ पुत्र थे,

(१) नाभि, (२) किम्पुरुष, (३) हरिवर्ष, (४) इलावृत, (५) रम्य, (६) हिरण्वान्, (७) कुरु, (८) भद्राश्व, (९) केतुमाल, ये सभी पुत्र सदाचारी, पराक्रमी, धर्मनिष्ठ थे ।

(५) जम्बूद्वीप के राजा आग्नीध्र ने जम्बूद्वीप की भौगोलिक स्थिति के मूल्याङ्कन के अनुपात से जम्बूद्वीप को नौ विभागों में विभक्त करके; पूर्वोक्त नौ पुत्रों में जम्बूद्वीप को वाँट दिया था ।

(१) जम्बूद्वीप को दक्षिणी भाग जिसे हिमवर्ष नाम से प्राचीन काल में पुकारा

जाता था, और वर्तमानकाल में जिसे भारतवर्ष नाम से पुकारा जाता है, इस हिमवर्ष को नाभि के लिये दिया।

(२) हिमालय और हेमकूट पर्वतों के मध्यवर्ती भाग को किम्पुरुष के लिये दिया।

(३) हेमकूट और निषध पर्वतों के मध्यवर्ती भाग को - हरिवर्ष के लिये दिया।

इसी प्रकार (४) इलावृत को - इलावृतवर्ष दिया।

(५) रम्य को - रम्यकवर्ष दिया।

(६) हिरण्वान् कों - हिरण्यकवर्ष दिया।

(७) कुरु को - कुरुवर्ष दिया।

(८) भद्राश्व को - भद्राश्ववर्ष दिया।

(९) केतुमाल को केतुमालवर्ष दिया।

भारत के भरत राजा का जन्म और भारतवर्ष का नामकरण

(६) आग्नीध्र राजा के पुत्र नाभि राजा की सुधर्मपत्नी मेरुदेवी से ऋषभ नाम के पुत्र का जन्म हुआ था।

ऋषभ से "भरत" का जन्म हुआ था, ऋषभ के एक सौ पुत्रों में सबसे बड़े पुत्र का नाम भरत था, भरत बड़े तेजस्वी और पराक्रमी थे।

(७) ऋषभ राजा - अपने तेजस्वी और वीर पुत्र भरत को राज्यभार सौंपकर, तपस्या करने के लिये पुलह ऋषि के आश्रम में चले गये थे। जबसे हिमवर्ष के राज्य का भार भरत राजा ने सँभाला, तभी से हिमवर्ष का नाम "भारतवर्ष" पुकारा जाने लगा है।

भरत के वंशज शतजित् के सौ पुत्रों का वर्णन

(८) राजा भरत के वंशक्रमानुसार - राजा मनुस्यु के "त्वष्टा" नाम का पुत्र हुआ था, त्वष्टा राजा के 'विरज' नाम का पुत्र हुआ था, राजा विरज के 'रज' नाम का पुत्र हुआ था, राजा रज के शतजित् नाम का पुत्र हुआ था, भरत के वंशज राजा शतजित् के सौ=(१००) पुत्र उत्पन्न हुए थे।

भारतवर्ष के नौ विभागों का वर्णन

(९) शतजित् के सौ पुत्रों में सबसे बड़े पुत्र का नाम - विश्वग्ज्योतिः-था,

विश्वग्ज्योतिः प्रभृति सौ पुत्रों की सन्तानों अर्थात् - पुत्रों, पौत्रों और प्रपौत्रों से भारतवर्ष की प्रजा की जनसंख्या में वृद्धि होने पर, विश्वग्ज्योतिः के पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रादि, ने इस एक भारतवर्ष को भी नौ भागों में बांटकर पृथक् पृथक् प्रत्येक भाग का उपयोग और उपभोग करना प्रारम्भ कर दिया था।

(१०) नौ विभागों में जब से भारतवर्ष को बांटा गया है, तब से अब दो हजार छत्तीस=२०३६वें विक्रम संवत्सर तक कितने वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, इस का

विस्तृत विवेचन - इस पृष्ठ पर और इस पृष्ठ से अगले पृष्ठ पर किया जा रहा है। विभाजन के गणित को ध्यान से समझने का प्रयास कीजिये।

(११) सन् १९४७ भारत की आजादी से पूर्व विदेशी शासनकाल में भी भारत के कई टुकड़े हो चुके हैं, भारत की आजादी के बाद भी - भारत के पाकिस्तान और बंगला देश नाम से प्रसिद्ध भाग भारत से पृथक् हो गये हैं, इस प्रसङ्ग में कुछ लिखना अनावश्यक ही है, क्योंकि–आजादी से पूर्व के और आजादी के बाद के भारत विभाजन का विवेचन - आधुनिक पुस्तकों में भी प्रचलित और उपलब्ध है।

(११) वर्तमान समय में प्रचलित वाराहकल्प के प्रारम्भ में - स्वायम्भुव मनु के - पुत्र, पौत्र, प्रपौत्रादि ने भारतवर्ष की भूमि पर शासन किया था, और भारतभूमि को स्वायम्भुव मनु के वंशजों ने ही नौ भागों में विभक्त किया था।

(१३) इस समय प्रचलित वाराहकल्प में सातवां "वैवस्वतमनु" प्रचलित है। इस वैवस्वतमनु का अट्ठाईसवाँ=(२८ वाँ) महायुग चल रहा है, सत्ताईस महायुग व्यतीत हो चुके हैं, कृतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, इन चारों युगों को मिलाकर एक महायुग होता है।

इस अट्ठाईसवें महायुग के - सतयुग, त्रेता और द्वापर, ये तीन युग व्यतीत हो चुके हैं, चौथा युग - कलियुग चल रहा है, इस विक्रमादित्य सम्वत् दोहजार छत्तीस में=(२०३६ में) कलियुग के - पाँचहजार अस्सी - वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

(१४) प्रचलित वाराहकल्प के बीते हुए वर्षो में प्रचलित अट्ठाईसवें महायुग के गतवर्षों की संख्या को तथा विगत सत्ताईस महायुगों की संख्या को और कलियुग के गतवर्षों की संख्या को एक जगह जोड़ने पर भारतववर्ष को नौ भागों में विभक्त हुए जितने वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, उन वर्षों की संख्या को अग्रिम गणित क्रिया द्वारा स्पष्ट किया गया है।

भारतवर्ष के नौ विभाग होने के समय का निर्णय

४३२०००० = एक महायुग के वर्ष

× ७१

= ४३२००००

+ ३०२४००००

= ३०६७२०००० = एक मनु के प्रारम्भ से मनु की समाप्ति तक के वर्ष।

+ १७२८००० = मनु की समाप्ति पर सतयुग के तुल्य मनुसन्धि के वर्ष,

= ३०८४४८००० = मनुसन्धि सहित एक मन्वन्तर के वर्ष,

× ६ = बीते हुए छैः मनु की संख्या से गुण।

= १८५०६८८००० = छैः मनुओं की सन्धि के सहित छैः मनु के वर्ष,

४३२०००० = एक महायुग के वर्ष,

४३२००००
×२७=बीते हुए महायुगों की संख्या से गुणा,

= ३०२४००००
८६४००००
= ११६६४००००=बीते हुए २७ महायुगों के वर्ष,
+ १७२८०००=गत कृययुग के वर्ष,
+ १२९६०००=गत त्रेतायुग के वर्ष,
+ ८६४०००=गत द्वापरयुग के वर्ष,
+ ५०८०=प्रचलित कलियुग के गतवर्ष (२०३६ विक्रम संवत्),
= १२०५३३०८०=प्रचलित वाराहकल्प में गत २७ महायुगों और २८वें महायुग के बीते हुए वर्षों का योग, (२०३६ विक्रम संवत् में)
======
१८५०६८८०००=सन्धि सहित छः मनुओं के गतवर्ष ,
१२०५३३०८०=२७ महायुगों के वर्षों का और २८वें युग के गतवर्षों का योग,
=१९७१२२१०८०=सृष्टि के आरम्भ से लेकर प्रचलित सातवें वैवस्वत मनु के बीते हुए वर्षों की संख्या, प्रचलित वाराहकल्प में अट्ठाईसवें महायुग में कलियुग के प्रथम चरण में विक्रम संवत् दो हजार छत्तीस में हुई।

उपर्युक्त गणित से यह सिद्ध होता है कि—अब से लगभग एक अरब सत्तानवे करोड़ - बारहलाख - इक्कीसहजार - अस्सी वर्ष · पहले - विश्वग्ज्योति के पौत्रादि ने भारतवर्ष को - नौ भागों में बाँटा था ।

चन्द्रलोकतः- पाषाणखण्डानयन - विषये - अमरीकादिदेशोत्पन्नानां-आधुनिकवैज्ञानिकानां घोषणायाः- खण्डनम्—

कल्पारम्भतः- एव - ब्रह्मणो दिनं भवति, दिनारम्भतः - एव - सृष्ट्यारम्भो भवति, - सृष्ट्यारम्भे- एव पर्वतादीनां-अस्तित्वं भवति, अतः=१९७१२२१०८०वर्षा-सन्नकालतः प्रागेव - अर्थात् - एकअरब-सप्तोत्तरनवतिकोटि-द्वादशलक्ष-एकविंशतिसहस्र-अशीतिवर्षासन्तकालतः प्रागेव सुमेरुप्रभृति- पर्वताः ब्रह्मणा निर्मिताः, ते पर्वताः एव विद्यमानाः सन्ति साम्प्रतम् । तेषां पर्वतखण्डानां परीक्षणं कृत्वा अमरीकादिदेशोद्भवाः-आधुनिकाः - अन्तरिक्ष-यात्रिणाः-डाक्टराः वैज्ञानिकास्तु- षड्अरब "६000000000" अथवा चतुः - अरब "४000000000" वर्षपूर्वजातानि पर्वतखण्डानि - अस्माभिः-आनीतानि - चन्द्रलोकतः - इति यद्वदन्ति, तत्तु तेषां कथनं सृष्टिरचनाक्रम-विरुद्धत्वात् भ्रान्तिप्रदं- अस्तीति मध्यस्थया धिया-विवेचनीयं विचारशीलैः विद्वद्भिः शोधपरायणैः-वैज्ञानिकैश्च ।

आधुनिकनक्शाचित्रेषु - प्रचलितस्य वर्तमानहिमालयपर्वतस्य-खण्डनम्

दक्षिणदिशास्थ - क्षारसमुद्रतटतः - आरभ्य - उत्तरदिशास्थ - हिमालयपर्वतस्य

प्रारम्भ - प्रदेशं यावत्तावत् - नवसहस्र "९०००" योजनप्रमिता="१३०९०९" किलो-मीटराः - १०० गजाश्च - एतत्प्रमिता "विस्तारे भारतवर्षभूमिः विद्यते । एकलक्ष-त्रिंशत् - सहस्र नवशत् - नव - किलोमीटराः - शतगजाश्च" एतावानेव - दक्षिणोत्तर विस्तारः - भारतभूमेः - अस्ति ।

पूर्वीयक्षारसमुद्रतटः - आरभ्य - पश्चिमीयक्षारसमुद्रतटं यावत्तावत् - दैर्घ्ये=(लम्बाई में) अशीतिसहस्रयोजनतःन्यूना=(८०००० योजन से कम) अस्ति भारत-वर्षभूमिः ।

अस्याः - एव भारतभूमेः -नवविभागाः कृताः - विश्वग्ज्योतिः - वंशजैः-नृपैः । प्रत्येकस्मिन् विभागे - दक्षिणोत्तरविस्तारक्रमेण - एकसहस्र- "१०००" योजनप्रमिता ="१४५४५ किलोमीटराः ५०० गजाश्च" अर्थात् चतुर्दशसहस्र-पञ्चशत-पञ्चोत्तर-चत्वारिंशत्किलोमीटराः - पञ्चशतगजाश्च एतावत्प्रमिता - भारतवर्षभूमिः अस्ति ।

हिमालयपर्वततः- दक्षिणस्यां दिशि- नवसहस्र- "९०००" योजनप्रमिते-अर्थात्- "१३०९०९ किलोमीटराः १०० गजाः" विस्तारे एव चीन - अमरीका - रूस- ब्रिटेन-जापान - भारत - पाकिस्तान - बंगलादेश - नेपाल - तिब्बत- लङ्का- प्रभृतयः-सर्वेऽपि देशाः निवसन्ति ।

वर्तमानसमये - प्रचलितेषु- विश्वनक्सावाचकेषु विश्वचित्रेषु भारतदेश- चीन-देशयो - र्मध्ये सीमाभूतः हिमालयनामकः - यः पर्वतः - व्यवहारे - व्यवह्रियते, स पर्वतस्तु - वास्तविकः हिमालयपर्वतो नास्ति, अपितु - मिहेन आच्छादितः भारतचीन-सीमा-मध्ये स्थितः कश्चित् अन्य एव - पर्वतः अस्ति ।

यतो हि- हिमालयतर्वतात्- उत्तरस्यां दिशि-किम्पुरुषादिदेशविशेषाः सन्ति, तेषु देशविशेषेषु - देवा - एव निवसन्ति, तेषां देवानां तु दशसहस्र "१००००" द्वादशसहस्र "१२०००" दिव्यवर्षप्रमितानि आयूंषि भवन्ति, चीनदेशभवास्तु वराकाः शतायुषो भाजोऽपि न भवन्ति । अतएव चीनादिदेशोत्पन्नाः-सर्वेऽपि मानवादयः- प्राणिनो भारत-भूमिभागस्थाः- मृत्युलोकभूमिनिवासिनः एव सन्ति ।

अन्धसागर - भूमध्यसागरादीनां विवेचनम्

दक्षिणदिशास्थ - क्षारसमुद्रतटतः - आरभ्य उत्तरदिशास्थ - हिमालयप्रारम्भ-प्रदेशं यावत्तावत् - नवसहस्र "९०००" योजनप्रमिते - अर्थात् "१३०९०९ किलोमीटर १०० गजः" प्रमिते भारतवर्षभूमिभागे - मध्ये मध्ये ये - अन्धसागर - भूमध्यसागर-ग्रीनलैण्डसागर- प्रभृतयः सन्ति, ते तु सर्वेऽपि वर्तमानकाले प्रचलिते वाराहकल्पे अष्टा-विंशति - महायुगारम्भे - एव ··· १७२८०००+१२९६०००+८६४०००+५०८० =३८९३०८० वर्षप्रमितासन्नकालपूर्वमेव - भूखननविज्ञानप्रवीणैः -इन्जीनियरविज्ञान-

विशेषज्ञैः - सगरात्मजैः यज्ञाश्वान्वेषणपरायणैः खनिताः = खोदिताः - इत्यर्थः ।

भारतीय - भौगोलिकस्थितेः विनाशः

सगरात्मजैः - ये सागराः - भारतर्षे - विनिर्मिताः तेषां - नामानि - तु भारत-वर्षोपरिविदेशीयशासनकाले शासकैः - विभिन्नानि - एव - प्रकल्पितानि, भारतवर्षस्य-भौगोलिकस्थितिः - अपि - नष्टभ्रष्टा - अज्ञानदा च प्रकल्पिता विदेशीयैः शासकैः ।

महाकविकालिदासादिभिः भारतीयभौगोलिकस्थितेः वास्तविकवर्णनं कृतम्

अद्यतः - द्विसहस्र - "२०००" वर्षप्रमितासन्नकालपूर्वं - वीरविक्रमादित्यस्य शासनकाले - भूगोल - खगोलविशेषज्ञैः - महाकविकालिदास - प्रभृतिभिः - भारतवर्षस्य हिमालयपर्वतस्य च यादृशी स्थिति वर्णिता - तादृशी - एव - वास्तविक - स्थितिः भारतवर्षस्य हिमालयस्य च वर्तते - अद्यापि ।

द्विसहस्र "२०००" वर्ष - प्रमिते विगते काले - अनेकानि खण्डानि - जातानि-नवधाविभक्तस्यापि भारतवर्षस्य, एतावन्मात्रम् - एव - अन्तरं - समुत्पन्नं भारतवर्षे ।

द्विसहस्र "२०००" वर्षप्रमितासन्नकालपूर्वं कालिदासाः लिखन्ति—

"अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।

पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ।।१।।

उक्तपद्यस्य - अयं भावः ......एकलक्षयोजनप्रमितविस्तारयुक्तस्य वृत्ताकारस्य जम्बूद्वीपस्य - अन्ते - पूर्वं - पश्चिमदिशास्थौ - क्षारसमुद्रस्य यौ भागौ - स्तः तयोः - भागयोः - प्रविष्टः - अयं हिमालयपर्वतः पृथिव्याः=भारतभूमेः - अर्थात् - मृत्युलोकस्य मानदण्डः मर्यादादण्डरूपः - इव स्थितः, देवतात्मा इति - कथनेन तु - हिमालय - पर्वते देवानामेव निवासादिकं अस्तीति - ध्वनितं कालिदासैः ।

अतः - आधुनिकभूगोलज्ञाः - भारतचीनसीमामध्यस्थं यं पर्वतं हिमालयं कथ-यन्ति, स तु-नास्ति-वास्तविको हिमालयः, हिमाच्छन्नः कश्चिदन्यः एव पर्वतोऽस्ति सः ।

भरतवंशस्य नवविभागस्थिति-व्यवस्था - श्रीविष्णुपुराणे- द्वितीये-अंशे - तृतीये - अध्याये - वर्णिता उपलभ्यते, तामत्र लिखामि

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।

वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ।।१।।

नवयोजनसाहस्रो विस्तारोऽस्य महामुने! ।

कर्मभूमिरियं स्वर्गंमपवर्गं च गच्छताम् ।।२।।

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः ।

विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ।।३।।

अतः सम्प्राप्यते स्वर्गो मुक्तिमस्मात् प्रयान्ति वै ।
तिर्यक्त्वं नरकं चापि यान्त्यतः पुरुषा मुने! ।।४।।
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यं चान्तश्च गम्यते ।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्म भूमौ विधीयते ।।५।।

हिमालयपर्वतस्य विस्तारार्धं - एकसहस्र - "१०००" योजनप्रमितं यदस्ति, तत् - नवसहस्रयोजनेषु युक्तं सत्- दशसहस्रयोजनप्रमितं दक्षिणोत्तरविस्तारमानं भारतवर्षस्य सिद्ध्यति ।

"आयतस्तु कुमारीतो गङ्गायाः प्रवहावधिः ।
तिर्यगूर्ध्वं तु विस्तीर्णः सहस्राणि दशैव तु ।।

इति मत्स्यपुराणोक्तेः अध्याय११०,श्लो. ०१० ।।

भारतवर्षस्य नवविभागानां नामानि विष्णुपुराणे द्वितीये-अंशे तृतीये अध्याये

भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान् निशामय ।
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ।।६।।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथवारुणः ।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।।७।।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम् ।।८।।

भारतनवविभाग-नाम-बोधकानामुपर्युक्तपद्यानां अयं भावः - दक्षिणोत्तरक्रमेण नवसहस्र "९०००" योजनप्रमितस्य - अस्य भारतवर्षस्य नवविभागाः वर्तन्ते, दक्षिणोत्तरक्रमतः प्रत्येकस्मिन् विभागे - एकसहस्र "१०००" योजनप्रमिता भूमि विद्यते । (१) इन्द्रद्वीपः, (२) कसेरुद्वीपः, (३) ताम्रपर्णद्वीपः, (४) गभस्तिमान् द्वीपः, (५)नागद्वीपः, (६) सौम्यद्वीपः, (७)गन्धर्वद्वीपः (८)वारुणद्वीपः (९)भारतद्वीपः, इत्थं नवसहस्र "९०००" योजनप्रमितस्य एकस्यैव भारतवर्षस्य - इन्द्र-द्वीपादिनवनामधेयाः उपद्वीपाः सन्ति । यः नवमः अयं भारताख्यः उपद्वीपः - सः- सागरसंवृतोऽस्ति, पूर्व - पश्चिम-दक्षिण - दिक्षु- अयं भारतनामको नवमो द्वीपः - क्षारसमुद्रेण "लवणसागरेण" आवृतः = परिवेष्टितोऽस्ति, उत्तरस्यां दिशि तु सगरनृपपुत्रैः - खनितेन=विनिर्मितेन- सागरेण- परिवेष्टितोऽस्ति । उक्तरीत्यैव सागरसंवृतत्वं सम्पद्यतेऽस्य भारतस्य ।

दक्षिणोत्तरक्रमेण - एकसहस्रयोजनविस्तारयुक्ताः-ये अन्ये - अष्टभागाः अवशिष्टास्तेतु- पूर्वतः पश्चिमतश्च क्षारसमुद्रेण परिवेष्टिताः, दक्षिणतः उत्तरतश्च सगगरनृपसुतैः - निर्मितेन (खनितेन) सागरेण संवृताः=(परिवेष्टिताः) सन्ति । इत्थं नवसहस्र-"९०००" योजनप्रमितस्य - जम्बूद्वीपनवमखण्डस्य भारतवर्षस्य - ये नवभागा विद्यन्ते ते सर्वेऽपि - सागरसंवृताः सन्तीति सिद्ध्यति ।

भारतवर्षस्य नवविभागबोधकं चित्रम्

उत्तरदिशा

हिमालयपर्वतः २०००यो०=२९०९०कि०मी० । १०००ग०। दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तः

सगरपुत्रसमुद्रः १००यो०=१४५४ कि० मी० । ६००ग० । दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तः

१. इन्द्रद्वीपः ९००यो०=१३०९० कि०मी० । १०००ग. । दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तः

सगरपुत्रसमुद्रः १००यो०=१४५४ कि० मी० । ६००ग० । दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तः

२- कसेरुद्वीपः९००यो०=१३०९०कि०मी० । १०००ग० । दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तः

सगरपुत्रसमुद्रः १००यो०=१४५४ कि० मी० । ६००ग० । दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तः

३. ताम्रपर्णद्वीपः९००यो=१३०९०कि०मी०। १०००ग० । दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तः

पश्चिमदिशा-क्षारसमुद्रः | पूर्वदिशा-क्षारसमुद्रः

सगरपुत्रसमुद्रः १००यो०=१४५४ कि०मी० । ६००ग० । दक्षिणोत्तरविस्तारयक्तः

४.गभस्तिमान्द्वीपः ९००यो०=१३०९०कि०मी०।१०००ग०।दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तः

सगरपुत्रसमुद्रः १००यो०=१४५४ कि० मी० । ६००ग० । दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तः

५. नागद्वीपः ९००यो०=१३०९०कि०मी० । १०००ग० । दक्षिणोत्तरविस्तारयुवतः

सगरपुत्रसमुद्रः १००यो=१४५४ कि० मी० । ६००ग० । दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तः

६. सौम्यद्वीपः९००यो०=१३०९०कि० मी० १०००ग० । दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तः

सगरपुत्रसमुद्रः १००यो०=१४५४कि० मी० । ६००ग० । दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तः

७. गन्धर्वद्वीपः ९००यो.=१३०९० कि०मी० । १०००ग० । दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तः

सगरपुत्रसमुद्रः १००यो०=१४५४कि०मी० । ६००ग० । दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तः

८. वारुणद्वीपः ९००यो०=१३०९०कि०मी० । १०००ग०। दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तः

सगरपुत्रसमुद्रः १००यो०=१४५४कि० मी० । ६००ग० । दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तः

९. भारतद्वीपः ९००यो०=१३०९०कि०मी० । १०००ग० । द्रक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तः

दक्षिणदिशा

क्षारसमुद्रः

भारतवर्षस्य नवोपद्वीपविषये मया पूर्वं यत् प्रतिपादितम्, तस्य पुष्टिः - विष्णुचित्तीय टीकया - अपि भवति, विष्णुचित्तीयटीकाकाराः लिखन्ति......

"समुद्रवेलामारभ्य - हिमवत् अन्तम् - इन्द्रद्वीपाद्याः - मध्ये मध्ये सगरसुत - खातान्तरिताः - सहस्रयोजनविस्ताराः - भारतवर्षस्य - अन्तरद्वीपाः - नव, तेन सागर- संवृतत्वं नवानाम्, न तु एकस्यैव - अस्य - नवमस्य भारताख्यस्य,——

"भारतस्यास्य वर्षस्य - नवभेदान्निबोधत ।
सागरान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम् ॥"

इति वायुपुराणोक्तेः ।

वाराहपुराणेऽपि......

"इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ।
नागः सौम्योऽथगन्धर्वो वारुणो भारतश्च यः ॥

अस्मिन् स्थले श्रीधरस्वामिनो लिखन्ति......

"अयमिति समुद्रप्रान्तवर्ती द्वीपः सागरसंवृतः समुद्रेण सह - एकीभूतेन- सागरेण सगरसुतखातेन - संवृतः - इति ज्ञेयम् । सामान्यतः सगरसुतखात - सागर - संवृतत्वं सहस्रयोजनान्तरतः - प्रत्येकम् - अन्येषामपि - अस्त्येव, यथाहि - वायुः......

"भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान् निबोधत ।
सागरान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम् ॥"

दक्षिणोत्तर - नवसहस्र – "९०००" योजनप्रमितस्य - एकस्यैव - भारतवर्षस्य जम्बूद्वीपनवमखण्डस्य - यः - अयं दक्षिणक्षारसागर - तटवर्ती नवमो भागः - एकसहस्र ="१०००" योजन - दक्षिणोत्तर विस्तारयुक्तोऽस्ति, तस्य चतुर्दिक्षु - के के निवसन्तीति प्रतिपादनमत्र विष्णुपुराणोक्तरीत्या वेदनेत्रनेत्रप्रमिते-(२२४प्रमिते)अग्रिमपृष्ठे करोमि...

चन्द्रलोक से पत्थर आदि लाने के सम्बन्ध में अमरीका आदि के वैज्ञानिकों की घोषणाओं का खण्डन

सुन्दरी टीका—(१)—एक अरव-सत्तानवें करोड़-बारह लाख-इक्कीस हजार- अस्सी वर्ष=(१९७१२२१०८० वर्ष)विक्रम संवत् दो हजारछत्तीस=(२०३६)तक सृष्टि के प्रारम्भ से प्रथम मनु के वर्ष गणनाक्रम के अनुसार व्यतीत हो चुके हैं, अतएव लगभग इतने ही वर्ष पहले - सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने - इस समय प्रचलित वाराहकल्प के सूर्यचन्द्रादिग्रहों को और सुमेरु, गन्धमादन, माल्यवान्, हिमालय, आदि पर्वतों को सृष्टिरचना संविधान वेदादि के अनुसार स्वेच्छा से बनाया था ।

(२)—इस समय प्रचलित सृष्टि में-एक अरव-सत्तानवें करोड़ - बारहलाख- इक्कीस हजार - अस्सी वर्ष=(१९७१२२१०८० वर्ष से प्राचीन=(पुराना,कोई भी पदार्थ अथवा द्रव्य अथवा चन्द्रमा का टुकड़ा अथवा पत्थर का टुकड़ा हो ही नहीं सकता है ।

(३)—पूर्वोक्त सृष्टिवर्ष गणनाक्रम को नहीं जानने वाले अमरीका आदि के आधुनिक वैज्ञानिकों ने - आधुनिक अन्तरिक्ष यात्रियों द्वारा लाये गये - पत्थर आदि

के खण्डों=(टुकड़ों) का वेधशालाओं में परीक्षण करके, उन पत्थर आदि के टुकड़ों को छः अरब अथवा चार अरब वर्ष पुराने बताने की जो घोषणायें की हैं, वे घोषणायें अज्ञानवर्धक और भ्रामक ही हैं।

(४)—अन्तरिक्ष यात्रियों द्वारा लाये गये पत्थर आदि के टुकड़े भी चन्द्रमा के नहीं हैं, जम्बूद्वीप में स्थित गन्धमादन अथवा माल्यवान् आदि पर्वतों में से किसी पर्वत खण्ड के वे पत्थर हैं, जिनका परीक्षण किया गया है।

वर्तमान समय में प्रचलित - विश्वनक्शाचित्रों - के हिमालयपर्वत का-खण्डन

(५)—दक्षिणीय क्षारसमुद्र के उत्तरी तट से हिमालय पर्वत तक नौ हजार योजन अथवा आज की परिभाषाओं के अनुसार—एक लाख, तीस हजार - नौ सौ नौ किलोमीटर और एक सौ गज, दक्षिणोत्तर - भारतवर्ष - की भूमि का मान है, इसी भारतवर्ष को ही मृत्युलोक कहा जाता है, प्रचलित विश्वनक्शाचित्रों में प्रदर्शित किया गया - हिमालयपर्वत - दक्षिणी क्षार समुद्र के उत्तरी तट से =(किनारे से) बहुत कम दूरी पर स्थित है, अत एव यह पर्वत असली हिमालय नहीं है, वर्फ से आच्छादित =(हिमाच्छन्न) कोई दूसरा ही पर्वत है, जिसे अज्ञान के वशीभूत होकर हिमालय पर्वत के नाम से गलत रूप में पुकारा जाने लगा है।

(६)—असली हिमालय पर्वत पर तथा हिमालय पर्वत के उत्तरी भाग जम्बू द्वीप की भूमि में देव योनियों (देवताओं) का निवास है, देवताओं की आयु - इस शोधग्रन्थ के - परिभाषाध्याय (चतुर्थाध्याय) में वर्णित दिव्यवर्षों के अनुसार- दश हजारवर्ष अथवा बारह हजारवर्ष तक होती है।

वर्तमानकाल में प्रचलित आधुनिक-विश्व के नक्शाचित्रों में-इस नकली हिमालय पर्वत के उत्तरी भाग में - तिब्बत और चीन आदि देशों में रहनेवाले - मनुष्ययोनि के लोग हैं, जोकि बेचारे - मनुष्यवर्षों के अनुसार एक सौ वर्ष तक भी जीवित नहीं रह पाते हैं। अतएव - यह पर्वत - महाकविकालिदासोक्त - "देवतात्मा" असली हिमालय पर्वत न हो कर - "मनुष्यात्मा" नकली हिमालयपर्वत ही है। इस नकली हिमालय से उत्तर दिशा में बहुत दूरी पर- "देवात्मा" असली हिमालयपर्वत विद्यमान है।

(७) विदेशीय शासनकाल में विदेशीयशासकों ने भारतीय इतिहास को तथा भारतीय भूगोल को मनमाने ढंग से वदलने का और असलियत को नष्ट-भ्रष्ट करने का भरसक प्रयत्न किया है, भारत की भूमि पर स्थित कितने ही पर्वतों नदों और नदियों तथा स्थान विशेषों के नामों में इस शैली से परिवर्तन=(रद्दोवदल) किया है कि— अब से लगभग दोहजार वर्ष पूर्व संस्कृतवाङ्मय के ग्रन्थों में - भारत की भौगोलिक स्थिति का जिस शैली से वर्णन किया है, उस शैली को आज के युग में प्रचलित-नष्ट-भ्रष्ट और पथभ्रष्ट-भूगोल की शैली के चकाचोंध में समझना कठिन हो गया है।

प्रचलित विश्वनक्शाचित्रों के अन्धसागर और भूमध्यसागर आदि के सम्बन्ध में विवेचन

(८) विक्रम सम्वत् २०३६=दो हजार छत्तीस से अड़तीसलाख - त्रानवेंहजार अस्सी वर्ष= (३८९३०८० वर्ष) पहले - जमीन को= (भूमि को) खोदने में चतुर-इञ्जीनियर और विज्ञान के विशेषज्ञ - राजा सगर के पुत्रों ने-अश्वमेधयज्ञ के निमित्त छोड़े गये घोड़े को- भूगोल के भीतर तलाश करने के लिये, दक्षिणीयसमुद्र के उत्तरीय किनारे से - हिमालयपर्वत की सीमा तक - अनेक स्थानों पर भूगोल की गहरी खुदाई की थी, उस गहरी और लम्वी चौड़ी खुदाई के स्थानों पर भारत की भूमि पर- लम्बे चौड़े आकार के कई समुद्र जैसे वन गये थे, वही लम्वे चौड़े समुद्र- आज के नक्शा-चित्रों में - अन्धसागर, भूमध्यसागर, ग्रीनलैण्डसागर, आदि नामों से प्रचलित हैं।

भारत के नौ विभागों के नामों का विवेचन

(९)—अश्वमेध यज्ञ के अश्व=(घोड़ा) को अन्वेषण करते हुए सगर के पुत्रों ने-दक्षिणी समुद्र के उत्तरी किनारे से हिमालय पर्वत तक प्रत्येक एक हजार योजन पर भूगोल की खुदाई की थी। भारतवर्ष की दक्षिणोत्तर चौड़ाई का मान नौहजार योजन है, इसलिये नौ जगह भारतवर्ष की भूमि को गहरा खोदा गया था, प्रत्येक एकहजार योजन पर की गयी खुदाई के मध्यवर्ती भूभागों के नाम—हिमालय पर्वत की तलहटी से दक्षिणी समुद्र की तलहटी तक क्रमशः इस प्रकार हैं——

(१) इन्द्रद्वीप, (२) कसेरुद्वीप, (३) ताम्रपर्णद्वीप, (४) गभस्तिमान्द्वीप (५) नागद्वीप, (६) सौम्यद्वीप, (७) गन्धर्वद्वीप, (८) वारुणद्वीप, (९) भारतद्वीप।

(१०)—पूर्वोक्त भारतवर्ष के उपर्युक्त इन नौ उपद्वीपों के आदि में और अन्त में एक सौ योजन दक्षिणोत्तर विस्तार वाले वे समुद्र भी स्थित हैं, जो सगर पुत्रों द्वारा खोदी गई भूमि के कारण वने हैं।

इन नौ उपद्वीपों में भारतवर्ष नाम के उपद्वीप के दक्षिणी भाग में क्षारसमुद्र और उत्तरी भाग में सगर पुत्रों द्वारा गहरी खोदी गई भूमि पर उत्पन्न हुआ सागर=(समुद्र) हैं।

भारत के शेष आठ उपद्वीप - सगरपुत्रों द्वारा गहरी खोदी गई भूमि पर उत्पन्न हुए सागरों=(समुद्रों) से दक्षिणोत्तर दिशाओं में घिरे हुए हैं। इन उपद्वपों से पूर्व और पश्चिम दिशा में क्षारसागर स्थित है।

(११)— इसी छठे अध्याय के २१८वें पृष्ठ पर "भारतवर्ष के नवविभाग वोधक चित्र" को लिखा गया है, चित्र को देखने पर भारतवर्ष के उपद्वीपों और उप-द्वीपों के समुद्रों का स्पष्ट ज्ञान हो जायेगा, इन उपद्वीपों और उन के समुद्रों के नामों में परिवर्तन - विदेशीय 'शासनकाल में विदेशीयशासकों ने किया है, अतएव - इस परिवर्तन के चकाचोंध में अव से लगभग दो हजार वर्ष पहले के भारत की भौगोलिक स्थिति को समझने में सर्वसाधारणों को अनेक प्रकार की कठिनाईयों का सामना करना

पड़ रहा है।

(१३)–महाकविकालिदास के समय तक-संस्कृतवाङ्मय के सभी ग्रन्थों में एक-वाक्यता से= (मतभेद के विना) वर्णन किये गये भारतीय भौगोलिक - ज्ञान को विदेशीय शासकों ने छिन्न - भिन्न और नष्ट - भ्रष्ट करने के उद्देश्य से नदियों, समुद्रों और पर्वतों के नामों में भी परिवर्तन अज्ञान से अथवा जानबूझ कर करने का पूर्ण प्रयत्न किया है।

अतएव प्रस्तुत शोधग्रन्थ में आवश्यकतानुसार- निष्पक्षसमीक्षात्मक दृष्टिकोण से - अव से लगभग दो हजारवर्ष पूर्व की - भौगोलिक स्थिति का तथा इस समय में प्रचलित भौगोलिक स्थिति का समीक्षात्मक विश्लेषण करते हुए-अनेक स्थलों पर सही तथ्यों को प्रस्तुत करते समय - वर्तमान समय में प्रचलित भूगोल के गलत अंशों का निष्पक्षखण्डन भी मुझे करना पड़ा है।

(१३)— दो हजार वर्ष पूर्व के भूगोल की स्थिति में और इस समय के भूगोल की स्थिति में - कुछ प्रदेशों की साधारण नदियों' नगरों, तालावों, वनों और जमीनों के स्तरों में अन्तर होने की बातें तो स्वीकार करने के योग्य हैं।

(१४)— अव से दोहजार वर्ष पूर्व संस्कृतवाङ्मय के ग्रन्थों में - ऐतिहासिक नगरों– काशी, मथुरा, वृन्दावन, प्रयाग, इन्द्रप्रस्थ (राजधानी दिल्ली) हस्तिनापुर, परीक्षितगढ़, गणमुक्तेश्वर, शुक्रताल, हरिद्वार, मयराष्ट्र (मेरठ) आदि, और ऐतिहासिक नदियों गङ्गा, यमुना, गौमती, आदि की भौगोलिक स्थिति का जो कुछ वर्णन किया है, वह ज्यों का त्यों इस समय की भौगोलिक स्थिति में भी प्रत्यक्ष रूप में दिखाई पड़ रहा है, केवल थोड़ा सा इतना ही अन्तर आया है कि–ऐतिहासिक नगरों में से कोई नगर कुछ अस्तव्यस्त हो गया है, और कोई कुछ अच्छी स्थिति में है, ऐतिहासिक नदियों के वहाव स्थल में एकाध मील का हेर फेर हो गया है, शेष सवकुछ वही स्थिति बनी हुई है जो कि अव से दो हजार वर्ष पूर्व संस्कृतवाङ्मय के ग्रन्थों में वताई गई है। "काश्यां-उत्तर वाहिनी गङ्गा" ऐतिहासिक नगर काशी में-उत्तरदिशा की ओर गङ्गा नदी का वहना दो हजार वर्ष से भी अधिक वर्ष पहले बताया गया है, वह आज भी ज्यों का त्यों - उत्तरदिशा की ओर ही वहना हो रहा है।

(१५)— अव से लगभग दो हजार वर्ष पहले संस्कृतवाङ्मय के ग्रन्थों में– राजधानी दिल्ली से उत्तर की ओर 'हिमालयपर्वत', को लगभग एकलाख किलोमीटर से भी अधिक दूरी पर वताया गया है, और "मानसरोवर" को भारत की राजधानी दिल्ली से उत्तर दिशा में - वाईस करोड़ - पिचासीलाख - नौहजार - नब्भै किलोमीटर के लगभग दूरी पर स्थित वताया गया है, आधुनिक भूगोलज्ञों ने- हरिद्वार से उत्तरदिशा की ओर कुछ ही दूरी पर हिमालय पर्वत की स्थिति को वताया है, और मानसरोवर की दूरी भी बहुत कम बताई है।

(१६)— उपर्युक्तपरिस्थिति में निष्पक्ष दृष्टिकोण से यह विचार करना है कि– बीते हुए दो हजार वर्षों में–भारत के ऐतिहासिक नगरों और ऐतिहासिक नदियों की स्थिति में कोई खास अन्तर नहीं हो पाया है, ये सब दोहजार वर्ष पहले जहाँ थे, अब भी वहीं पर हैं, तो फिर हिमालय पर्वत उत्तर से दक्षिण की ओर एक लाख किलो मीटर से भी अधिक चलकर या खिसककर- हरिद्वार के पास या भारत चीन की सीमा पर कैसे पहुँच गया है ? इसी प्रकार "मानसरोवर" भी उत्तर दिशा से करोड़ों मील या करोड़ों किलोमीटर दक्षिण की ओर खिसक कर उस स्थान तक कैसे - आगया है, जिस स्थान पर आज के भूगोलज्ञों के भूगोल ग्रन्थों में मानसरोवर-को दिखाया गया है ? ।

(१७)— उपर्युक्त निष्पक्ष समीक्षा से यह निष्कर्ष निकलता है कि– भारत पर विदेशीय शासनकाल में– विदेशीय शासकों ने अज्ञान के वशीभूत होकर अथवा– जानबूझ कर - भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति को तथा संस्कृतवाङ्मय में वर्णित विश्व की भौगोलिक स्थिति को बिलकुल नष्ट – भ्रष्ट और अस्त – व्यस्त ही कर दिया है ।

(१८)— "याम्यायां भारते वर्षे लङ्का तद्वन्महापुरी" सूर्य सिद्धान्त के भू-गोलाध्याय में स्थित इस उक्ति के अनुसार– लङ्कानगरी उस समय के उपद्वीप भारत की प्रधान नगरी थी, इसी लिये - भागवत में - लङ्का नगरी के नाम के उच्चारण से उपद्वीप - भारत का ही निर्देश किया है ।

(१९)— क्षारसमुद्र के एक सौ योजन भीतर=(१४५४ कि० मीटर । ६०० गज भीतर) लङ्का की स्थिति के अनुरूप ही प्रत्येक उपद्वीप के आदि और अन्त में एक सौ योजन चौड़ी भूमि की गहरी खुदाई को सगरपुत्रों ने करके, अश्वमेधयज्ञ के घोड़ा को खोजने के लक्ष्य से समुद्रों का निर्माण किया था, सम्पूर्ण भारतवर्ष का प्रत्येक उपद्वीप समुद्र से घिरा हुआ है, तदनुसार किसी भी एक द्वीप से दूसरे द्वीप में पहुंचने के लिये - वायुयानों के द्वारा अथवा जहाज और नौकायानों से अवश्य ही समुद्र को पार करना पड़ता है ।

(२०)— अमरीका, रूस, चीन, जापान, आदि जितने भी द्वीप इस मृत्युलोक में हैं, वे सभी सम्पूर्ण भारतवर्ष के ही उपद्वीप हैं । उपद्वीपों में पहुँचने के लिये जिन समुद्रों को पार करना पड़ता है, इन समुद्रों की चौड़ाई में न्यूनता और अधिकता के होने में मुख्य कारण यह है कि– उन समुद्रों के किनारे की भूमियों से समुद्र की सतह में - भूमिस्खलन की मात्रा में न्यूनता अथवा अधिकता इन उपद्वीपों की भूमियों की कठोरता और अकठोरता के अनुपात से ही होती रहती है । तदनुसार- प्रत्येक उपद्वीप के आदि और अन्त में स्थित समुद्रों की चौड़ाईयों में अन्तर होना स्वाभाविक और प्रकृतिक ही है ।

विष्णुपुराणे द्वितीये - अंशे तृतीये - अध्याये—

पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः ।।८।।

[अमरकोषे द्वितीये काण्डे शूद्रवर्गे विंशतिसंख्याप्रमिते श्लोके- किरातादिविषये वक्ष्यमाणव्यवस्था अस्ति—

"भेदाः किरातशवर - पुलिन्दा म्लेच्छजातयः" ।।१०।।
"गोमासभक्षको यस्तु लोकवाह्यं च भाषते ।
सर्वाचारविहीनोऽसौ म्लेच्छ इत्यभिधीयते ।।
ब्राह्मण्यां वैश्यतो जातः क्षत्ता भवति नामतः ।
अस्यामनेन चौर्येण म्लेच्छो विप्रात् प्रजायते" ।।

म्लेच्छ अव्यक्ते शब्दे - भ्वादिगणपठितसेट्धातोः - "नन्दिग्रहिपचादिभ्योल्युणिन्यचः - ३ । १ १३४" इति पाणिनिसूत्रेण - अच् प्रत्यये कृते - म्लेच्छशब्दः सिद्ध्यति, इत्येतादृशी साधीसी व्यवस्था - अमरकोषे - व्याख्यासुधाटीकायां - श्रीभट्टोजिदीक्षितपुत्रैः श्रीभानुजिदीक्षितमहोदयैः प्रदत्ता,]

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।
इज्यायुध - वणिज्याद्यै र्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ।।९।।
शतद्रूचन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनिर्गताः ।
वेदस्मृतिमुखाद्याश्च पारियात्रोद्भवा मुने! ।।१०।।
नर्मदासुरसाद्याश्च नद्यो विन्ध्याद्रिनिर्गताः ।
तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या प्रमुखा ऋक्ष सम्भवाः ।।११।।
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेण्यादिकास्तथा ।
सह्यपादोद्भवा नद्यः स्मृताः पापभयापहाः ।।१२।।
कृतमाला ताम्रपर्णी प्रमुखा मलयोद्भवाः ।
त्रिसामाचार्यकुल्याद्याः महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः ।।१३।।
ऋषिकुल्याकुमाराद्याः शुक्तिमत्पादसम्भवाः ।
आसां नद्युपनद्यश्च सन्त्यन्याश्च सहस्रशः ।।१४।।
तास्विमे कुरुपाञ्चाला मध्यदेशादयो जनाः ।
पूर्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिनः ।।१५।।
पुन्ड्राः - कलिङ्गाः - मगधा दाक्षिणात्याश्च सर्वशः ।
तथापरान्ताः सौराष्ट्राः शूरा भीरा स्तथार्बुदाः ।।१६।।
कारूषामालवाश्चैव पारियात्रनिवासिनः ।
माद्रारामास्तथाम्वष्ठाः पारसीकादयस्तथा ।।१७।।
आसां पिवन्ति सलिलं वसन्ति सहिताः सदा ।
समीपतो महाभाग! हृष्ट - पुष्ट - जनाकुलाः ।।१८।।
चत्वारि - भारते वर्षे युगान्यत्र महामुने ! ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चान्यत्र न क्वचित् ।।१९।।

तपस्तप्यन्ति मुनयो जुह्वते चात्र यज्विनः ।
दानानि चात्र दीयन्ते परलोकार्थमादरात् ॥२०॥
पुरुषैर्यज्ञपुरुषो जम्बूद्वीपे सदेज्यते ।
यज्ञै र्यज्ञमयो विष्णुरन्यद्वपेपु चान्यथा ॥२१॥
अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने ! ।
यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः ॥२२॥
अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम ! ।
कदाचिल्लभते जन्तु र्मानुष्यं पुण्यसंचयात् ॥२३॥
गायन्ति देवाः किल गीतकानि-
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्ग - भूते-
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥२४॥
नववर्षं तु मैत्रेय जम्बूद्वीपमिदं मया ।
लक्षयोजनविस्तारं संक्षेपात् कथितं तव ॥२७॥
जम्बूद्वीपं समावृत्य लक्षयोजनविस्तरः ।
मैत्रेय! वलयाकारः स्थितः क्षारोदधि र्बहिः ॥२८॥

पूर्वोक्तरीत्या - एकलक्ष - "१०००००" योजनप्रमितस्य वृत्ताकारस्य जम्बूद्वीपस्य नवखण्डानि सिद्धानि, तेषु नवखण्डेष्वपि यत् - नवमं खण्डं भारतवर्षं विद्यते, तस्य भारतवर्षस्यापि - इन्द्रद्वीपादीनि नवखण्डानि सिद्धानि; तेषु - इन्द्रद्वीपादिषु नवसुखण्डेष्वपि - दक्षिणक्षारसागरेण -पूर्वस्थ - पश्चिमस्थ -क्षारसागरेण च- संश्लिष्टं नवमं खण्डं भारताख्यमेव विद्यते- अद्यापि इति सिद्धम् ।

पुराणान्तरैः ग्रन्थान्तरैश्चापि भारतवर्षस्य नवखण्डान्येव-सिद्ध्यन्ति वक्ष्यमाणप्रकारेण—

श्रीमद्भागवते - महापुराणे - पञ्चमस्कन्धे - एकोनविंशे "१९" अध्याये श्रीशुकदेवो मुनिः वदति··· "जम्बूद्वीपस्य च राजन् - उपद्वीपान् - अष्टौ उपदिशन्ति- सगरात्मजैः- अश्वान्वेषणे - इमां महीं परितः निखनद्भिः उपकल्पितान्, तद् यथा··· (१) स्वर्णप्रस्थः, (२) चन्द्रशुक्लः (३) आवर्तनः, (४) रमणकः, (५) मन्दरः, (६) हरिणः, (७) पाञ्चजन्यः, (८) सिंहलः, (९) लङ्का ।

सगरपुत्रकृतसमुद्राणां विस्तारमाने साम्प्रतम् - विषमता कथं-अस्तीति प्रतिपादयामि—

"याम्यायां भारते वर्षे लङ्का तद्वन्महापुरी" इति सूर्यसिद्धान्तोक्तेः - भारतवर्षे "लङ्का" प्रधाननगरी - अस्ति, अत एव लङ्कायाः एव नामोच्चारणं कृतं भारतोपद्वीपद्योतनार्थं भागवते ।

शतयोजन - क्षारसमुद्रभाग - व्यतीतानन्तरं - क्षारसमुद्रे लङ्का नगरी - अस्ति,

अत एव भारतवर्षस्य अन्येषु - उपद्वीपेषु - अपि- शतयोजन- दक्षिणोत्तर- विस्तारयुक्तः समुद्राः विनिर्मिताः सगरपुत्रैः ।
समुद्रतटानां भूमिस्खलनहेतुभिः-तेषां सगरपुत्रकृतसमुद्राणां विस्तारमाने-अपि-असमानता दरीदृश्यते साम्प्रतम् ।

जम्बूद्वीपस्य - यत् - नवमं - खण्डं भारतवर्षमस्ति, तस्मिन् भारतवर्षेऽपि नव द्वीपाः पूर्वोक्ताः-वर्तन्ते, अतः-ते नवद्वीपाः उपद्वीपाः सन्तीति व्यवह्रियन्ते, "लङ्कायां-भारते वर्षे" इत्युक्तेः - लङ्का शब्देन - अत्र - भारतोपद्वीपस्यैव ग्रहणमस्ति ।

वायुपुराणेऽपि भारतस्य नवभेदाः प्रकीर्तिताः तानत्र लिखामि—

"खेमराज श्रीकृष्णदास" श्रीवैङ्कटेश्वर- स्टीम्- छापाखाना- वम्बईतः प्रकाशिते वायुपुराणे पूर्वार्धे - पञ्चचत्वारिंशत् (४५) प्रमिते अध्याये ···

भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदाः प्रकीर्तिताः ।
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम् ॥७८॥
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथवारुणः ॥७९॥
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम् ॥८०॥

उपर्युक्तवायुपुराणोक्तरीत्यापि-भारतवर्षस्य-इन्द्रद्वीपाद्याः नवभेदाः सिद्ध्यन्ति ।

वायुपुराणोक्तं सम्राट्-लक्षणमत्र लिखामि

यस्त्वयं नवमो द्वीपस्तिर्यगायत उच्यते ।
कृत्स्नं जयति यो ह्येनं स सम्राडिह कीर्त्यते ॥८६॥
अयं लोकस्तु वै सम्राडन्तरिक्षो विराट् स्मृतः ।
स्वराडन्यः स्मृतो लोकः पुन र्वक्ष्यामि विस्तरम् ॥८७॥

उक्तपद्ययोः अयं भावः— नवधा विभक्तस्य जम्बूद्वीपस्य यः - अयं नवमो द्वीपोऽस्ति भारतवर्षनामकः सः - तिर्यक् "दक्षिणोत्तरक्रमेण" आयतोऽस्ति, अर्थात् "विस्तृतोऽस्ति" ।

हि= इति निश्चयार्थे, यो नृपः - कृत्स्नम्= सम्पूर्णम्, एनम्= नवमद्वीपं= भारतोपद्वीपसहितम्, जयति - शास्ति, सः - नृपः - इह संसारे सम्राट् इति नाम्ना कीर्त्यते - समुच्यते । हिमालयार्धविस्तारसहितस्य- दशसहस्रयोजनप्रमितस्य भारतवर्षस्य सम्पूर्णेषु नवोपद्वीपेषु यो नृपः - शासनं करोति, स - नृपः - सम्राट् - अर्थात् चक्रवर्ती-नृपः - इति संज्ञया व्यवह्रियते, - मृत्युलोके नवद्वीपात्मकस्य नवसहस्र - "९०००" योजनप्रमितस्य हिमालयविस्तारार्धसहितेन तु-दशसहस्रयोजन दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तस्य भारतवर्षस्य भूमिः-मृत्युलोकनाम्ना समुच्यते, अन्तरिक्षः इन्द्रादिलोकः तत्रत्यो यः-नृपः इन्द्रः-स तु "विराट्" संज्ञकोऽस्ति, अन्ये ये लोकाः सन्ति, तेषामधिपाः नृपास्तु "स्वराट्" संज्ञकाः भवन्ति ।

विष्णुपुराणे द्वितीये - अंशे - चतुर्थे - अध्याये प्लक्षादिद्वीपानां स्थिति - वर्णनम्

क्षारोदेन यथा द्वीपो जम्बूसंज्ञोऽभिवेष्टितः ।
क्षारोदधिं तु संवेष्ट्य प्लक्षद्वीपस्तथा स्थितः ॥१॥
जम्बूद्वीपस्य विस्तारः शतसाहस्रसम्मितः ।
स एव द्विगुणो ब्रह्मन् ! प्लक्षद्वीप उदाहृतः ॥२॥
सप्तमेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य वै ।
ज्येष्ठः शान्तहयो नाम शिशिरस्तदनन्तरः ॥३॥
सुखोदयस्तथानन्दः शिवः क्षेमस्तथैव च ।
ध्रुवश्च सप्तमस्तेषां प्लक्षद्वीपेश्वरा हि ते ॥४॥
पूर्वं शान्तहयं वर्षं शिशिरं च सुखं तथा ।
आनन्दं च शिवं चैव क्षेमकं ध्रुवमेव च ॥५॥
मर्यादाकारकास्तेषां तथान्ये वर्षपर्वताः ।
तेषां सप्तैव नामानि शृणुष्व मुनिसत्तम! ॥६॥
गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा ।
सोमकः सुमनाश्चैव वैभ्राजश्चैव सप्तमः ॥७॥
वर्षाचलेषु रम्येषु सर्वेष्वेतेषु चानघाः ।
वसन्ति देवगन्धर्वसहिताः सततं प्रजाः ॥८॥
तेषु जनपदाः पुण्याश्चिराच्च म्रियते जनः ।
नाधयो व्याधयो वापि सर्वकालसुखं हि तत् ॥९॥
तेषां नद्यस्तु सप्तैव वर्षाणां च समुद्भवाः ।
नामतस्ताः प्रवक्ष्यामि श्रुताः पापं हरन्ति याः ॥१०॥
अनुतप्ता शिखी चैव विपाशा त्रिदिवा क्लमा ।
अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः ॥११॥
एते शैलास्तथा नद्यः प्रधानाः कथितास्तव ।
क्षुद्रशैलास्तथा नद्यस्तत्र सन्ति सहस्रशः ॥१२॥
ताः पिवन्ति, सदा हृष्टा नदी जंनपदास्तु ते ।
नैवापसर्पिणी तेषां न चैवोत्सर्पिणी द्विज! ॥१३॥
न त्वेवास्ति युगावस्था तेषु स्थानेषु सप्तसु ।
त्रेतायुगसमः कालः सर्वदैव महामते ! ॥१४॥
प्लक्षद्वीपादिषु ब्रह्मन् ! शाकद्वीपान्तिकेषु वै ।
दशवर्षसहस्राणि जना जीवन्त्यनामयाः ॥१५॥
धर्माः पञ्च तथैतेषु वर्णाश्रमविभागशः ।
वर्णाश्च तत्र चत्वारस्तान्निबोध वदामि ते ॥१६॥

आर्यका: कुरराश्चैव विदिश्या भाविनश्च ते।
विप्र - क्षत्रिय - वैश्यास्ते शूद्रस्त्र मुनिसत्तम! ॥१७॥

जम्बूवृक्षप्रमाणस्तु तन्मध्ये सुमहांस्तरुः।
प्लक्षस्तन्नामसंज्ञोऽयं प्लक्षद्वीपो द्विजोत्तम! ॥१८॥
भगवानिज्यते तत्र तैं वर्णैरार्यकादिभिः।
सोमरूपी जगत्स्रष्टा सर्वः सर्वेश्वरो हरिः ॥१९॥
प्लक्षद्वीपप्रमाणेन प्लक्षद्वीपः समावृतः।
तथैवेक्षुरसोदेन परिवेषानुकारिणा ॥२०॥
इत्येवं तव मैत्रेय! प्लक्षद्वीप उदाहृतः।
संक्षेपेण मया भूयः शाल्मलं मे निशामय ॥२१॥
शाल्मलस्येश्वरो वीरो वपुष्मान् तत्सुतान् शृणु।
तेषां तु नामसंज्ञानि सप्तवर्षाणि तानि वै ॥२२॥
श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा।
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभश्च महामुने! ॥२३॥
शाल्मलेन समुद्रोऽसौ द्वीपेनेक्षुरसोदकः।
विस्तारद्विगुणेनाथ सर्वतः संवृतः स्थितः ॥२४॥
तत्रापि पर्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः।
वर्षाभिव्यञ्जका ये तु तथा सप्त च निम्नगाः ॥२५॥
कुमुदश्चोन्नतश्चैव तृतीयश्च बलाहकः।
द्रोणो यत्र महौषध्यः स चतुर्थो महीधरः ॥२६॥
कङ्कस्तु पञ्चमः षष्ठो महिषः सप्तमस्तथा।
ककुद्मान् पर्वतश्रेष्ठः सरित्नामानि मे शृणु ॥२७॥
योनिस्तोया वितृष्णा च चन्द्रा मुक्ता विमोचनी।
निवृत्तिः सप्तमी तासां स्मृतास्ताः पापशान्तिदाः ॥२८॥
श्वेतं च हरितं चैव वैद्युतं मानसं तथा।
जीमूतं रोहितं चैव सुप्रभं चापि शोभनम् ॥२९॥
सप्तैतानि तु वर्षाणि चातुर्वर्ण्ययुतानि वै ॥३०॥
शाल्मले ये तु वर्णाश्च वसन्त्येते महामुने!।
कपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णाश्चैव पृथक् पृथक् ॥३१॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव यजन्ति तम्।
भगवन्तं समस्तस्य विष्णुमात्मानमव्ययम् ॥३२॥
वायुभूतं मखश्रेष्ठैर्यज्वानो यज्ञसंस्थितिम्।
देवानामत्र सान्निध्यमतीव सुमनोहरे! ॥३३॥
शाल्मलिः सुमहान् वृक्षो नाम्ना निर्वृत्तिकारकः।
एष द्वीपः समुद्रेण सुरोदेन समावृतः ॥३४॥

विस्ताराच्छाल्मलस्यैव समेन तु समन्वितः।
परितस्तु सुरोदकः कुशद्वीपेन संवृतः ॥३५॥
शाल्मलस्य तु विस्तारात् द्विगुणेन समन्ततः।
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्तपुत्राः शृणुष्व तान् ॥३६॥
उद्भिदो वेणुमांश्चैव वैरथो लम्बनो धृतिः।
प्रभाकरोऽथ तन्नामा कपिलो वर्षपद्धतिः ॥३७॥
वसन्ति मनुजास्तस्मिन् सह दैतेयदानवैः।
तथैव देवगन्धर्व - यक्ष - किम्पुरुषादयः ॥३८॥
वर्णास्तत्रापि चत्वारो निजानुष्ठानतत्पराः।
दमिनः शुष्मिणः स्नेहाः मन्देहाश्च महामुने! ॥३९॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः।
यथोक्तकर्मकर्तृत्वात् स्वाधिकारक्षयाय ते ॥४०॥
तत्रैव तं कुशद्वीपे ब्रह्मरूपं जनार्दनम्।
यजन्तः क्षपयन्त्युग्रमधिकारफलप्रदम् ४१॥
विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा।
कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः ॥४२॥
वर्षाचलास्तु सप्तैते तत्र द्वीपे महामुने।
नद्यश्च सप्त तासां तु शृणु नामान्यनुक्रमात् ॥४३॥
धूतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा।
विद्युदम्भा मही चान्या सर्वपापहरास्त्विमाः ॥४४॥
अन्याः सहस्रशस्तत्र क्षुद्रनद्यस्तथाचलाः।
कुशद्वीपे कुशस्तम्बः संज्ञया तस्य तत्कृतम् ॥४५॥
तत्प्रमाणेन स द्वीपो घृतोदेन समावृतः।
घृतोदश्च समुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन संवृतः ॥४६॥
क्रौञ्चद्वीपो महाभाग! श्रूयतां चापरो महान्।
कुशद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणो यस्य विस्तरः ॥४७॥
पुत्रा द्युतिमतस्तस्य क्रौञ्चद्वीपे महात्मनः।
तन्नामानि च वर्षाणि तेषां चक्रे महीपतिः ॥४८॥
कुशलो मन्दगश्चोष्णः पीवरोऽथान्धकारकः।
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तैते तत्सुता मुने! ॥४९॥
तत्रापि देवगन्धर्वसेविताः सुमनोहराः।
वर्षाचला महाबुद्धे तेषां नामानि मे शृणु ॥५०॥
क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः।
चतुर्थो रत्नशैलश्च स्वाहिनी हयसन्निभः ॥५१॥

दिवावृत् पञ्चमश्चात्र तथान्यः पुण्डरीकवान् ।
दुन्दुभिश्च महाशैलो द्विगुणास्ते परस्परम् ॥५२॥
द्वीपा द्वीपेषु ये शैला यथा द्वीपेषु ते तथा ।
वर्षेष्वेतेषु रम्येषु तथा शैलवरेषु च ॥५३॥
निवसन्ति निरातङ्काः सह देवगणैः प्रजाः ॥५४॥
पुष्कराः पुष्कला धन्या स्तिष्याख्या श्चमहामुने! ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः ॥५५॥
नदी मैत्रेय! ते तत्र याः पिबन्ति श्रृणुष्व ताः ।
सप्तप्रधानाः शतशस्तत्रान्याः क्षुद्रनिम्नगाः ॥५६॥
गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रि र्मनोजवा ।
क्षान्तिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगाः ॥५७॥
तत्रापि भगवान् विष्णुः पुष्कराद्यैर्जनार्दनः ।
यागैः - रुद्रस्वरूपो वै पूज्यते यज्ञसन्निधौ ॥५८॥
क्रौञ्चद्वीपः समुद्रेण दधिमण्डोदकने च ।
आवृतः सर्वतः क्रौञ्चद्वीपतुल्येन मानतः ॥५९॥
दधिमण्डोदकश्चापि शाकद्वीपेन संवृतः ।
क्रौञ्चद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन महामुने! ॥६०॥
पुष्करे सवनस्यापि महावीरोऽभवत्सुतः ।
धातकिश्चतयोस्तत्र द्वे वर्षे नामचिह्निते ॥६१॥
महावीरं तथैवान्यत् - धातकीखण्डसंज्ञितम् ।
एकश्चात्र महाभाग! प्रख्यातो वर्षपर्वतः ॥६२॥
मानसोत्तरसंज्ञो वै मध्यतो वलयाकृतिः ।
योजनानां सहस्राणि दशचोर्ध्वं समुच्छ्रितः ॥६३॥
तावदेव च विस्तीर्णः सर्वतः परिमण्डलः ।
पुष्करद्वीपवलयं मध्येन विभजन्निव ॥६४॥
स्थितोऽसौ तेन विच्छिन्नं जातं तद्वर्षकद्वयम् ।
वलयाकारमेकैकं तयोर्वर्षं तथा गिरिः ॥६५॥
दशवर्षसहस्राणि तत्र जीवन्ति मानवाः ।
निरामया विशोकाश्च रागद्वेष-विवर्जिताः ॥६६॥
नैवाधमोत्तमौ तेषु न वध्यवधकौ द्विज! ।
नेर्ष्यासूयाभयं द्वेषो दोषो लोभादिको न च ॥६७॥
महावीरं बहिर्वर्षं धातकीखण्डमन्ततः ।
मानसोत्तरशैलस्य देवदैत्यादिसेवितम् ॥६८॥
सत्यानृते न तत्रास्तां द्वीपे पुष्करसंज्ञिके ।
न तत्र नद्यः शैला वा द्वीपे वर्षद्वयान्विते ॥६९॥

तुल्यवेषास्तु मनुजा देवास्तत्रैकरूपिणः ।
वर्णाश्रमसदाचारै धर्माचरणवर्जितम् ॥७०॥
त्रयीवार्तादण्डनीति - शुश्रुषारहितं च यत् ।
वर्षद्वयं तु मैत्रेय! भौमः स्वर्गोऽयमुत्तमः ॥७१॥
सर्वर्तुसुखदः कालो जरारोगादिवर्जितः ।
धातकीखण्डसंज्ञेऽथ महावीरे च वै मुने! ॥७२॥
न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ।
तस्मिन्निवसति ब्रह्मा पूज्यमानः सुरासुरैः ७३॥
स्वादूदकसमुद्रेण पुष्करः परिवेष्टितः ।
समेन पुष्करस्यैव विस्तारान्मण्डलं तथा ॥७४॥
शाकद्वीपेश्वरस्यापि भव्यस्य सुमहात्मनः ।
सप्तैव तनयास्तेषां ददौ वर्षाणि सप्त सः ॥७५॥
जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मरीचकः ।
कुसुमोदश्च मौदाकिः सप्तमश्च महाद्रुमः ॥७६॥
तत्संज्ञान्येव तत्रापि सप्तवर्षाण्यनुक्रमात् ।
तत्रापि पर्वता सप्त वर्षविच्छेदकारिणः ॥७७॥
पूर्वस्तत्रोदयगिरिः जलधारस्तथापरः ।
यथा रैवतकः श्यामस्तथैवास्तगिरि द्विज ! ॥७८॥
आम्बिकेयस्तथा रम्यः केसरी पर्वतोत्तमः ।
शाकस्तत्र महावृक्षः सिद्धगन्धर्वसेवितः ॥७९॥
यत्रत्य - वातसंस्पर्शादाह्लादो जायते परः ।
तत्र पुण्या जनपदा श्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः ॥८०॥
नद्यश्चात्र महापुण्याः सर्वपापभयापहाः ।
सुकुमारी कुमारी च नलिनी धेनुका च या ॥८१॥
इक्षुश्च वेणुका चैव गभस्ती सप्तमी तथा ।
अन्याश्च शतशस्तत्र क्षुद्रनद्यो महामुने ! ॥८२॥
महीधरास्तथा सन्ति शतशोऽथ सहस्रशः ।
ताः पिबन्ति मुदा युक्ता जलदादिषु ये स्थिताः ॥८३॥
तत्र जनपदास्ते तु स्वर्गादभ्येत्य मेदिनीम् ।
धर्महानि र्न तेष्वस्ति न सङ्घर्षः परस्परम् ॥८४॥
मर्यादाव्युत्क्रमो नापि तेपु देशेपु सप्तसु ।
वङ्गाश्च मागधा श्चैव मानसा मन्दगास्तथा ॥८५॥
बङ्गा ब्राह्मणभूयिष्ठा मागधाः क्षत्रियास्तथा ।
वैश्यास्तु मानसास्तेषां शूद्रास्तेषां तु मन्दगाः ॥८६॥

शाकद्वीपे तु तं विष्णुः सूर्यरूपधरो मुने ! ।
यथोक्तैरिज्यते सम्यक् कर्मभि र्नियतात्मभिः ॥८७॥
शाकद्वीपस्तु मैत्रेय ! क्षीरोदेन समावृतः ।
शाकद्वीपप्रमाणेन वलयेनेव वेष्टितः ॥८८॥
क्षीराब्धिः सर्वतो ब्रह्मन् पुष्कराख्येन वेष्टितः ।
द्वीपेन शाकद्वीपात्तु द्विगुणेन समन्ततः ॥८९॥
एवंद्वीपाः समुद्रैश्च सप्त सप्तभिरावृताः ।
द्वीपश्चैव समुद्रश्च समानौ द्विगुणौ परौ ॥९०॥

समुद्रजलस्थितिवर्णनम्

पयांसि सर्वदा सर्वसमुद्रेषु समानि वै ।
न्यूनातिरिक्तता तेषां कदाचिन्नैव जायते ॥९१॥
स्थालीस्थमग्निसंयोगदुद्रे सलिलं यथा ।
इन्दुवृद्धौ तथा नीरमम्भोधौ मुनिसत्तम ! ॥९२॥
अन्यूनानतिरिक्ताश्च वर्धन्त्यापो ह्रसन्ति च ।
उदयास्तमनेष्विन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥९३॥
दशोत्तराणि पञ्चैव ह्यङ्गुलानां शतानि वै ।
अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ सामुद्रीणां महामुने ! ॥९४॥

सर्वसागरेषु जलवृद्धिस्तु - "१५००" अङ्गुलप्रमिता - उच्छ्रतौ भवति पूर्णिमातिथौ, एतावती एव हानिः भवति - अमायां तिथौ ।

पुष्करद्वीपे भोजनव्यवस्था निम्नांकिता अस्ति

भोजनं पुष्करद्वीपे तत्र स्वयमुपस्थितम् ।
षड्रसं भुञ्जते विप्र ! प्रजाः सर्वाः सदैव हि ॥९५॥

एतादृशी - एव भोजनव्यवस्था अन्येषु देवयुक्तद्वीपेषु भवति ।

स्वादूदकस्य परितः दृश्यते लोकसंस्थितिः ।
द्विगुणा काञ्चनी भूमिः सर्वजन्तुविवर्जिता ॥९६॥
लोकालोकस्ततः शैलो योजनायुतविस्तृतः ।
उच्छ्रायेण तु पञ्चाशत् - सहस्राण्यचलो हि सः ॥९७॥
ततस्तमः समावृत्य तं शैलं सर्वतः स्थितम् ।
तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात् परिवेष्टितम् ॥९८॥
पञ्चाशत्कोटिविस्तारा सेयमुर्वी महामुने! ।
सहैवाण्डकटाहेन सद्वीपाब्धिमहीधरा ॥९९॥
सेयं धात्री विधात्री च सर्वभूतगुणाधिका ।
आधाराभूता सर्वेषां मैत्रेय ! जगतामिति ॥१००॥

उपर्युक्तप्रकारेण सप्तसागराणां सप्तद्वीपानां च सम्यक्तया वर्णनं सम्पन्नम् । पर्वतानामुच्छ्रायादिविषये तु यत्र कुत्रापि पुराणेषु ग्रन्थान्तरेषु च मतभेदोऽस्ति, तस्य

मतभेदस्य परिहारस्तु - अयमस्ति - येन निवन्धकारेण ऋषिणा यत्र स्थित्वा निवन्ध-रचना कृता, तस्मात् प्रदेशात् द्वीपस्थित - पर्वतादीनां यावती उच्छ्रितिस्तावती - एव तेन लिखितेति सिद्धान्तपक्षोऽनुसन्धेयो विज्ञैः।

उपद्वीप भारत में मनुष्यजाति के निवासक्रम की व्यवस्था

सुन्दरी टीका—(१)—उपद्वीप भारत के पूर्वीय भाग में प्रायः किरात जाति के व्यक्ति अधिकतर निवास करते हैं। उपद्वीप भारत के पश्चिमीय भाग में प्रायः यवन जाति के व्यक्ति अधिकतर निवास करते हैं। उपद्वीप भारत के मध्य भाग में-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति के व्यक्ति प्रायः अधिकतर निवास करते हैं।

प्लक्षादि छैः द्वीपों की स्थिति का विवेचन

(२)- इसी छठे अध्याय के एक सौ अठत्तरवें (१७८वें) पृष्ठ पर सप्तद्वीपों के चित्र को देखिये—प्लक्षादि छैः द्वीपों की स्थिति का ज्ञान अच्छी तरह से हो जायगा। शाल्मलद्वीप में "**द्रोणपर्वत**" भी विद्यमान है, इस द्रोणपर्वत पर जड़ी वूटियों का और महत्वपूर्ण औषधियों का भण्डार है, राम - रावण-युद्ध में मेघनाद द्वारा -श्री लक्ष्मण जी के शक्ति नामक शस्त्र लगने पर मूर्छित हुए अथवा मरे हुए लक्ष्मण जी को पुनः जीवित और सचेष्ट करने के लिये- इसी द्रोण पर्वत से "**सञ्जीवनी**" नाम की जड़ी-वूटी=(औषधि) को पवनपुत्र श्री हनूमान् जी ने लाकर श्री लक्ष्मण जी को खिलवाया था, सञ्जीवनी वूटी का रस मुंह में गेरने पर श्री लक्ष्मण जी तुरन्त जीवित होकर पुनः मेघनाद से युद्ध करने लगे थे, और मेघनाद को सदा के लिये परास्त कर दिये थे।

महाकविकालिदास - भारवि - माघ - कृतकाव्येषु ये वर्तताः वर्णिताः- तानत्र लिखामि

कालिदासविरचिते - कुमारसम्भवे प्रथमे सर्गे—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥१॥
यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुहु र्धरित्रीम्" ॥२॥

महाकविकालिदासेन - उपर्युक्ते श्लोके - सर्वपर्वतेषु उच्चः=उच्छ्रितियुक्तः" सुमेरुपर्वतः अस्तीति विनिश्चित्य, गोरूपभूमेः - दोग्धा - अर्थात् दोहनकर्ता स्वीकृतोऽयं सुमेरुपर्वतः, अतः भूगोलस्थितसर्वपर्वतापेक्षायां - सुमेरुः - सर्वौषधियुक्तः-सर्वविधरत्नैः परिपूर्णः - सुवर्णमयश्च - अस्ति।

हिमालयपर्वतस्तु - सुमेरु - पर्वततः - उच्छ्रितौ "औच्चे" कनिष्ठो विद्यते, भारतभूमिमर्यादारूपेण स्थितः, अतएव - सः - हिमालयः - गोरूपभूमेः वत्सः- (वछड़ा) स्वीकृतः, यथा - दुग्दोहनकर्तुः - अपेक्षायां - वत्सस्य (वछड़ा के) उपयोगार्थं अथवा पानार्थं स्वल्पं दुग्धं अवशिष्यते, तथैव भूमेः सुवर्णरत्नादिदोहनकर्तृस्वरूप-सुमेरोः अपेक्षायां हिमालयः स्वल्पौषधिरत्नादियुक्तः अस्ति - इति सारांशः।

अभिज्ञानशाकुन्तले- चतुर्थेऽङ्केऽपि कालिदासमहाभागा लिखन्ति···

पादन्यासं क्षितिधरगुरोः मूर्ध्नि कृत्वा सुमेरोः—
क्रान्तं येन क्षपिततमसा मध्यमं धाम विष्णोः ।
सोऽयं चन्द्रः पतति गगनादल्पशेषै र्मयूखैः—
अत्यारूढि र्भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठा ॥५॥

उक्तश्लोकेऽपि महाकविना - सर्वपर्वतापेक्षातः सुमेरुपर्वतस्यैव- उच्छ्रितिः "ऊंचाई" अधिका समुक्ता ।

सुमेरुपर्वतस्य विषये किरातार्जुनीये द्वितीये सर्गे महाकविभारवि-महोदयाः लिखन्ति

अथोच्चकैरासनतः पारार्द्ध्यात् -—
उद्यन् स धूतारुणवल्कलाग्रः ।
रराज कीर्णाकपिकशांशुजालः—
शृङ्गात् सुमेरोरिव तिग्मरश्मिः ॥५७।

उपर्युक्ते श्लोके महाकविभारविमहाभागैः-अपि सर्वपर्वतापेक्षातः-सुमेरुपर्वतस्यैव-उच्छ्रितिः - अधिका - उक्ता ।

शिशुपालवधे चतुर्थे - सर्गे - महाकविमाघ - महोदयाः- विलिखन्ति

"व्योमस्पृशः प्रथयता कलधौतभित्तीरुन्निद्रपुष्पचणचम्पकपिङ्गभासः ।
सौमेरवीमधिगतेन नितम्बशोभामेतेन भारतमिलावृतवद् विभाति" ॥३१॥

उक्तश्लोकस्य - अयं भावः··· हिमालयपर्वतात् - दक्षिणस्यां दिशि स्थितस्य जम्बूद्वीपनवमभागस्य भारतवर्षस्य मध्ये - यः- समुच्छ्रितः "रैवतक" नामकः, पर्वतः स्थितोऽस्ति, तस्य रैवतकपर्वतस्य सन्निधौ चतुर्दिक्षु - यो भूमिभागः- सः - सुवर्णसदृश-कान्तिभिः युक्तो दरीदृश्यते, जम्बूद्वीपमध्यभागेऽपि यः : कनकाचलः - सुमेरुपर्वतः तिष्ठति, तस्य सुमेरोः चतुर्दिक्षु स्थितः - यः - इलावृतभागः - सः - इलावृतनामक-भूभागोऽपि सुवर्णमयपर्वतकान्तिभिः युक्तोऽस्ति, अतएव - सुमेरुपर्वतसदृशरैवतकपर्वतेन युक्तः - इलावृतसदृश - मध्यभागेन च युक्तः - अयं भारतवर्षनामको जम्बूद्वीस्य नवमो भागः - इलावृत इव शोभते, यथा जम्बूद्वीपमध्यभागस्य सुमेरुपर्वतेन शोभास्ति, तथैव-भारतवर्ष-मध्ये स्थितेन रैवतकपर्वतेन भारतवर्षस्य शोभास्ति, इति सारांशः ।

हे आधुनिकाः वैज्ञानिकाः ! क्वास्ति - इलावृतवर्ष इति विचारयन्तु, अध्याये-ऽस्मिन् षड्मुनिचन्द्रपृष्ठे= (१७६ पृष्ठे) स्थितम् मयानिर्मितं जम्बूद्वीपचित्रं तत्र च इलावृतवर्षं प्रपश्यन्तु ।

भारत के मध्य में रैवतकपर्वत—

सुन्दरी टीका—(१)—महाकविकालिदास, भारवि, माघ आदि कवियों ने—हिमालय, सुमेरु, रैवतक आदि पर्वतों की भौगोलिक स्थिति के सम्बन्ध में अपने काव्य ग्रन्थों में सुन्दर विवेचन किया है ।

"शिशुपालवध" काव्य के चौथे सर्ग में इकत्तीसवें श्लोक में महाकविमाघ ने

लिखा है कि— भारतवर्ष के मध्यभाग में स्थित "रैवतक पर्वत" के चारों ओर विद्यमान रमणीय भूमि से "भारतवर्ष" उसी प्रकार से सुशोभित है, जिस प्रकार से कि- इलावृतवर्ष के मध्यभाग में स्थित "सुमेरुपर्वत" के चारों ओर "विद्यमान" रमणीय भूमि से "इलावृतवर्ष" सुशोभित है।

रैवतकपर्वत को खोजने और उसे पहचानने का प्रकार

(२) क्षारसमुद्र के उत्तरी तट से - उज्जयनी और कुरुक्षेत्र की सीध में उत्तर- दिशा की ओर लगभग साढ़े चारहजार योजन= (४५०० योजन= ६५४५४ कि० मी० । ६०० गज) यात्रा करने पर सब से ऊंचा - दिखाई देने वाले पर्वत को ही "रैवतक पर्वत" समझना चाहिये, यह "रैवतकपर्वत" असली सिमालयपर्वत से दक्षिण दिशा की ओर लगभग साढ़े चार हजार योजन= (४५००० योजन=६५४५४कि० मी० । ६०० गज) की दूरी पर स्थित है।

आर्षवर्षा - वायु - विज्ञान - प्रतिपादनकानां - चतुर्दश - लोकानां स्थितिमत्र - उपस्थापयामि

श्रीविष्णुपुराणे द्वितीये - अंशे - सप्तमे - अध्याये ऊर्ध्वलोका: - वर्णिता:, - पञ्चमेऽध्याये च अधोलोका: वर्णिता: - तानेवात्र लिखामि......

रविचन्द्रमसो र्यावन्ममुखैं रवभास्यते ।
स समुद्र - सरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता ॥३॥
यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डलात् ।
नभस्तावत् प्रमाणं वैं व्यासमण्डलतो द्विज! ॥४॥

भूगोलत: - ऊर्ध्वं - ग्रहाणामुच्छ्रितिवर्णनम्......

भूमे र्योजनलक्षे तु सौरं मैत्रेय मण्डलम् ।
लक्षाद् दिवाकरस्यापि मण्डलं शशिन: स्थितम् ॥५॥
पूर्णेशतसहस्रे तु योजनानां निशाकरात् ।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात् प्रकाशते ॥६॥
द्वे लक्षे चोत्तरे ब्रह्मन्! बुधो नक्षत्रमण्डलात् ।
तावत्प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना: स्थिता: ॥७॥
अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थित: ।
लक्षद्वये तु भौमस्य स्थितो देवपुरोहित: ॥८॥
सौरि र्वृहस्पतेश्चोर्ध्वं द्विलक्षे समवस्थित: ।
सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षमेकं द्विजोत्तम! ॥९॥
ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शतादूर्ध्वं व्यवस्थित: ।
मेढीभूत: समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वैं ध्रुव: ॥१०॥
त्रैलोक्यमेतत्कथितमुत्सेधेन महामुने! ।
इज्या फलस्य भूरेषा - इज्या चात्र प्रतिष्ठिता ॥११॥

ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः ।
एकयोजनकोटिस्तु यत्र ते कल्पवासिनः ॥१२
द्वे कोटी तु जनो लोको यत्र ते ब्रह्मणः सुताः ।
सनन्दनाद्याः प्रथिता मैत्रेयामलचेतसः ॥१३॥
चतुर्गुणोत्तरे चोर्ध्वं जनलोकात्तपः स्थितम् ।
वैराजा यत्र ते देवाः स्थिता दाहविवर्जिताः ॥१४॥
षड्गुणेन तपो लोकात् सत्यलोको विराजते ।
अपुनर्मारका यत्र ब्रह्मलोको हि स स्मृतः ॥१५॥

षड्गुणेन - इत्यस्य - अयं भावः......

तपोलोकात् ऊर्ध्वं - षड्गुणेन - जनलोकेन = "२०००००००$\times$ ६ = १२००००००००" द्वादशकोटियोजनप्रमितः ब्रह्मलोकोऽस्ति । अत्र तपोलोकात् - षड्गुणेन इति तु न मन्तव्यम् । यतो हि तपोलोकस्य उच्छ्रायः - अष्टकोटियोजनप्रमितः = "८००००००० कोटियोजनप्रमितः" तपोलोके षड्गुणे कृते सति......

८००००००० $\times$ ६ = ४८००००००० कोटियोजनप्रमिते ब्रह्मलोकमाने स्वीकृते सति ब्रह्माण्डे स्मानाभावापत्तिः समुत्पद्यते, अतः—जनलोकस्यैव षड्गुणत्वमत्र विज्ञेयं विज्ञैः ।

अस्मिन् विषये श्रीधरस्वामिमहोदयैः - विष्णुपुराणस्य टीकाकारैः अपि स्वकृत-टीकायाम् जनलोकस्यैव - षड्गुणत्वव्यवस्था प्रदत्ता, न तु तपोलोकस्य षड्गुणत्वमुक्तम् ।
अत्रस्थले श्रीधरस्वामिनो विलिखन्ति......

"जनलोकापेक्षयैव षड्गुणेन - द्वादशकोट्युच्छ्रयेण तपोलोकानन्तरं सत्यलोकः "ब्रह्मलोकः" न तु तपो लोकात् षड्गुणेन इति मन्तव्यम्, तथा सति- अष्टचत्वारिंशत्-कोट्युच्छ्रायत्वेन ब्रह्माण्डे तस्यावकाशाभावात् ।

अपुनर्मारकाः - अर्थात् पुनर्मृत्युशून्याः ।

विष्णुचित्तीयटीकायां तु - अपुनर्मारकाः - सत्यलोकं प्राप्ता हि न पुनः संस-रन्ति । "ब्रह्मलोकमभिसम्पन्ना न पुनरिमं मानवमावर्तमावर्त्तन्ते" इति श्रुतेः-

"ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे ।
परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम्" ॥इति स्मृतेश्च॥

"यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम" ।

इति श्रीमद्भागवतगीतावचनमेव सर्वांशतः उपर्युक्तो - सङ्गच्छते ।

पादगम्यं तु यत् किञ्चिद् वस्त्वस्ति पृथिवीमयम् ।
स भूर्लोकः समाख्यातो विस्तारोऽस्य मयोदितः ॥१६॥
भूमिसूर्यान्तरं यच्च सिद्धादिमुनिसेवितम् ।
भुवर्लोकस्तु सोऽप्युक्तो द्वितीयो मुनिसत्तम ! ॥१७॥
ध्रुवसूर्यान्तरं यच्च नियुतानि चतुर्दश ।
स्वर्लोकः सोऽपि गदितो लोकसंस्थान - चिन्तकैः ॥१८॥

त्रैलोक्य कृतकं - चैतत् मैत्रेय ! परिपठ्यते ।
जनस्तपस्तथासत्यमिति चाकृतकत्रयम् ॥१९॥
कृतकाकृतयो मध्ये महर्लोक इति स्मृतः ।
शून्यं भवति कल्पान्ते योऽत्यन्तं न विनश्यति ॥२०॥
एते सप्त मया लोका मैत्रेय ! कथितास्तव ।
पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डस्यैष विस्तरः ॥२१॥

उक्तपद्यानां - अयं भावः...... (१) भूः, (२) भुवः, (३) स्वः, (४) महः, (५) जनः, (६) तपः, (७) सत्यम्, इमे सप्तलोकाः - ऊर्ध्वलोकसंज्ञकाः सन्ति । तेषु (१)भूः (२) भुवः (३) स्वः -इमे त्रयो लोकाः कृतसंज्ञकाः, (४)महः-लोकस्तु कृतकाकृत-संज्ञकोऽस्ति । (५) जनः (६) तपः (७) सत्यम् - इमे लोकाः अकृतसंज्ञकाः सन्ति । प्रलयकाले - भू - र्भुवः -स्वः - कृतसंज्ञकानां लोकानां प्रलयाग्निना विनाशो भवति । प्रलयाग्निप्रकोपसंतप्ताः - महर्लोक - निवासिनः - ऋषयो देवाश्च - महर्लोकं परि-त्यज्य योगबलेन जनलोकं गच्छन्ति, जनलोकस्थाः-एव ते प्रलयकालिकं दृश्यं स्वदिव्य-चक्षुषा पश्यन्ति सततम् ।

जनः - तपः सत्यलोकास्तु प्रलयकालेऽपि न विनश्यन्ति, अतस्तेषाम् - अकृत-संज्ञास्ति । महर्लोकस्य तु -स्वल्पांश एव विनाशमेति, न तु पूर्णरूपेण - विनाशं गच्छति, अत एव महर्लोकस्य - कृतकाकृतकसंज्ञा समुक्ता-शास्त्रेषु मुनिभिः ।

वायुपुराणोक्तां सूर्यादिग्रहोच्छ्रितिमत्र विलिखामि

वायुपुराणस्य - उत्तरार्धे -ऐकोनचत्वारिंशत् "३९" प्रमिते अध्याये-अधस्तनः-विषयःउपलभ्यते......

महीतलात् सहस्राणां शतादूर्ध्वं दिवाकरः ।
दिवाकरात् सहस्रेण तावदूर्ध्वं निशाकरः ॥१२९॥
पूर्णे शतसहस्रं तु योजनानां निशाकरात् ।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्ठात् प्रकाशते ॥१३०॥
शतं सहस्रं संख्यातो मेरु - द्विगुणितं पुनः ।
ग्रहान्तरमथैकैकमूर्ध्वं नक्षत्रमण्डलात् ॥१३१॥
ताराग्रहाणां सर्वेषामधस्ताच्चरते बुधः ।
तस्योर्ध्वं चरते शुक्र स्तमादूर्ध्वं च लोहितः ॥१३२॥
ततो बृहस्पति श्चोर्ध्वं तस्मादूर्ध्वं शनैश्चरः ।
ऊर्ध्वं शतसहस्रं तु योजनानां शनैश्चरात् ॥१३३॥
सप्तर्षिमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात् प्रकाशते ।
ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शतादूर्ध्वं विभाव्यते ॥१३४॥
योऽसौ तारामये दिव्ये विमाने ह्रस्वरूपके ।
उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि ॥१३५॥

"ध्रुवतारा" बोधकस्य - उत्तानपादपुत्रशब्दस्य - अत्र - प्रयोगस्तु - उत्तानपादनामकस्य राज्ञः पुत्रो-ध्रुवः-भगवतः-ईश्वरस्य-अद्वितीयः महान्-भक्तो जातः प्राक्तने काले। तस्य ध्रुवस्य भक्त्या सुप्रसन्नेन भगवता ईश्वरेण - वरदानं प्रदाय - ध्रुवलोके निरन्तरनिवासार्थं ध्रुवः-प्रेषितः। स च ध्रुवः सृष्ट्यन्तं यावत्तावत् - ध्रुवलोके-अर्थात्-विशिष्टे स्वर्गे एव-निवसति, अतः-ईश्वरपरमभक्तस्य-स्मरणार्थमेव-उत्तरानपादपुत्र-शब्दस्य प्रयोगः पुराणेषु - ग्रन्थान्तरेषु च ध्रुवताराबोधाय कृतः। वस्तुतस्तु उत्तानपादपुत्रो भक्तो ध्रुवः - भिन्नः, ध्रुवतारा च भिन्ना - विद्यते, आकाशे नहि भक्तो ध्रुवः - ध्रुवतारा - अस्तीति विज्ञेयं विज्ञैः।

महर्लोकादीनामुच्छ्रितिवर्णनमपि - तत्रैव वायुपुराणे-निम्नांकितरीत्या कृतम्

त्रैलोकयस्यैष उत्सेधो व्याख्यातो यौजनैं मया।
मन्वन्तरेषु देवानामिज्या यत्रैव लौकिकी ॥१३६॥
वर्णाश्रमेभ्य इज्या तु लोकेऽस्मिन् या प्रवर्तते।
सर्वेषां देवयोनीनां स्थितिहेतुः स वै स्मृतः ॥१३७॥
त्रैलोक्यमेतद् व्याख्यातमत ऊर्ध्वं निबोधत।
कृताद्रूर्ध्वं महर्लोको यस्मिन् ते कल्पवासिनः ॥१३८॥
एकयोजनकोटी सा इत्येवं निश्चयं गतम् ॥१३९॥
द्वै कोट्यौ तु महर्लोकाज्जनस्ते कल्पवासिनः।
यत्र ते ब्रह्मणः पुत्रा दक्षाद्याः साधकाः स्मृताः ॥१४०॥
चतुर्गुणोत्तरादूर्ध्वं जनलोकात्तपः स्मृतम्।
वैराजा यत्र ते देवा भूतदाहविवर्जिताः ॥१४१॥
षड्गुणं तु तपोलोकात् सत्यलोकान्तरं स्मृतम्।
अपुनर्मारकामानां ब्रह्मलोकः स उच्यते ॥१४२॥
यस्मान्नच्यवते भूयो ब्रह्माणं स उपासते ॥१४३॥

तपोलोकात् - ऊर्ध्वं यो ब्रह्मलोकः (सत्यलोकः) कथितः, तस्य योजनात्मकं मानं तु तदेव - ज्ञेयं यत् - जनलोकमाने षड्गुणे सति समापद्यते, इत्थं च - द्विकोटियोजनप्रमितं जनलोकस्य मानं विद्यते, तस्मिन् द्विकोटियोजनमाने षड्भिः गुणिते सति द्वादशकोटियोजनप्रमितं - सत्यलोकस्य ब्रह्मलोकपर्यायवाचकस्य मानं समायाति...तदेवात्र गणितेनापि - दर्शयामि...... "२०००००० कोटियोजन × ६ = १२००००००
— द्वादशकोटियोजनप्रमितं मानं - ब्रह्मलोकस्य सम्पद्यते।

योजनानां हि कोटिस्तु पंचाष्टनियुतानि च।
ऊर्ध्वभागस्ततोऽण्डस्य ब्रह्मलोकात् परः स्मृतः ॥१४४॥
चतुर्विंशतिकोट्यस्तु पंचाष्टनियुतानि च।
एष ऊर्ध्वविभागोऽस्य गत्यन्तश्च परः स्मृत. ॥१४५॥
ध्रुवाग्रादेव व्याख्यातं योजनाद्यं यथाश्रुतम्।
अधोगतीः प्रवक्ष्यामि भूतानां स्थानकल्पनाः ॥१४४॥

उपर्युक्तपद्यानां- अयं भावः...“सूर्याण्डगोलयो र्मध्ये कोट्यः स्युः पंर्चविंशतिः” इति श्रीमद्भागवते श्रीशुकदेवोक्तेः भूगोलोपरि - सर्वप्रथमः - सूर्यो भ्रमति, अतः- सूर्यगोलतः • ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डान्तं यावत्तावत् पंचविंशतिकोटियोजमप्रमितः - ब्रह्माण्डस्य भागोऽस्ति । सूर्यरश्मयस्तु - भूगोलोपरि निपतन्ति, अतः भूगोलात् - ऊर्ध्वं - पंचविंशतिकोटियोजनप्रमितः ब्रह्माण्डस्य भागो विद्यते, इति तु - अर्थतः एव सिद्ध्यति ।

पूर्वोक्तरीत्या भूगोलात् - ध्रुवस्य - उच्छ्रितिस्तु - पञ्चदशलक्षयोजन-प्रमिता ग्रहोच्यादिगणितेन सिद्ध्यति, ध्रुवात् - ऊर्ध्वं - ब्रह्माण्डान्तं यावत्तावत्-पञ्चदशलक्षोन पंचविंशतिकोटियोजनप्रमितः - अर्थात् - “२४८५००००० योजनप्रमितः” ब्रह्माण्डभागस्तिष्ठति, अस्मिन् ब्रह्माण्डभागेऽपि - ध्रुवात् - ऊर्ध्वं सत्यलोकान्तं= ब्रह्मलोकान्तम् यावत्तावत्-त्रयोविंशतिकोटियोजनप्रमितो ब्रह्माण्डस्य भागो भवति, अतः - ध्रुवात्-ऊर्ध्वस्थितात् समस्तब्रह्माण्डमानात् - त्रयोविंशतिकोटियोजनमाने संशोधिते सति - एककोटिपंचोत्तराशीतिलक्ष - योजनप्रमितं ब्रह्माण्डस्य मानमवशिष्यते, उपर्युक्तस्य गणितमपि अत्र दर्शयामि···

२४८५०००००	योजनानि एभ्यः
२३०००००००	योजनमाने शोधिते सति
–१८५०००००	= योजनमानवशिष्यते ।

अत्र स्थले बहुषु पुस्तकेषु नष्टभ्रष्टः पाठोऽस्ति, स पाठस्तु हेयो ज्ञेयो गवेषकैं विज्ञैः।

ईश्वरस्य दिव्यशरीरे श्रीमद्भागवत- महापुराणग्रन्थोक्तं चतुर्दशलोकविभागमत्र लिखामि···

भागवते द्वितीयस्कन्धे पंचमे - अध्याये···

वर्षपूगसहस्रान्ते तदण्डमुदके शयम् ।
कालकर्मस्वभावस्थो जीवोऽजीवमजीवयत् ॥३४॥
स एव पुरुषस्तस्मादण्डं निर्भिद्य निर्गतः ।
सहस्रोर्वङ्घ्रिबाह्वक्षः सहस्राननशीर्णवान् ॥३५॥
यस्येहावयवै र्लोकान् कल्पयन्ति मनीषिणः ।
कठ्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभिः ॥३६॥
पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः ।
ऊर्वो वैंश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत ॥३७॥
भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभित. ।
हृदा स्वगर्लोक उरसा महर्लोंको महात्मनः ॥३८॥
ग्रीवायां जनलोकश्च तपो लोकः स्तनद्वयात् ।
मूर्धभिः सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः ॥३९॥
तत्कट्यां चातलं कल्पतमूरुभ्यां वितलं विभोः ।
जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जङ्घाभ्यां तु तलातलम् ॥४०॥

"महीतलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम् ।
पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान् ॥४१॥
भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ।
स्वर्लोकः कल्पितो मूर्ध्नी इति वा लोककल्पना ॥४२॥

उपरिलिखितकथनेन - (१) भूः (२) भुवः (३) स्वः (४) महः (५) जनः (६) तपः (७) सत्यम् (८) अतलम् (९) वितलम् (१०) सुतलम् (११) तलातलम् (१२) महातलम् (१३) रसातलम् (१४) पातालम् इति चतुर्दशलोकाः ब्रह्माण्डान्तर्गताः सन्तीति सिद्ध्यति । एषां चतुर्दशलोकानां पूर्वोक्तप्रसङ्गे तु सुविवेचनं कृतमेव ।

आर्षवर्षा - वायुविज्ञान - विवेचनार्थाय - भूमिगर्भे स्थितानामतलादि-सप्तलोकानां - विषये श्रीविष्णुपुराणोक्तं वर्णनमत्र विलिखामि

श्री विष्णुपुराणस्य द्वितीये-अंशे-पञ्चमे अध्याये-श्रीपराशरो मुनिः कथयति...

विस्तार एष कथितः पृथिव्या भवतो मया ।
सप्ततिस्तुसहस्राणि द्विजोच्छ्रायोऽपि कथ्यते ॥१॥
दशसहस्रमेकैकं पातालं मुनिसत्तम ! ।
अतलं वितलं चैव नितलं च गभस्तिमत् ॥२॥

महाख्यं सुतलं चाग्र्यं पातालं चापि सप्तमम् ।
शुक्ल - कृष्णारुणाः पीताः शर्कराः शैलकाञ्चना ॥३॥
भूमयो यत्र मैत्रेय ! वरप्रासादमण्डिताः ।
तेषु दानवदैतेया यक्षाश्च शतशस्तथा ॥४॥
निवसन्ति महानागजातयश्च महामुने ! ।
स्वर्लोकादपिरम्याणि पातालानीति नारदः ॥५॥
प्राहस्वर्गसदां मध्ये पातालेभ्यो गतो दिवि ।
आह्लादकारिणः शुभ्रा मणयो यत्र सुप्रभाः ॥६॥
दिवार्करश्मयो यत्र प्रभां तन्वन्ति नातपम् ।
शशिरश्मि न शीताय निशि द्योताय केवलम् ॥७॥
पातलानामधश्चास्ते विष्णो या तामसी तनुः ।
शेषाख्यो यद्गुणान् वक्तुं न शक्ता दैत्यानवाः ॥८॥
आस्ते पातालमूलस्थः शेषोऽशेषसुरार्चितः ।
न हि वर्णयितुं शक्यं ज्ञातुं च त्रिदिशैरपि ॥९॥
यस्यैषा सकला पृथ्वी फणामणि - शिखारुणा ।
आस्ते कुसुममालेव कस्तद्वीर्यं वदिष्यति ॥१०॥
यदा विजृम्भतेऽनन्तो मदाघूर्णितलोचनः ।
तदा चलित भूरेषा साब्धितोया सकानना ॥११॥
तेनेयं नागवर्येण शिरसा विधृता मही ।
बिभर्ति मालां लोकानां सदेवासुरमानुषाम् ॥१२॥

पञ्चविंशति - कोटियोजन - विस्तार - युक्तस्य-एकलक्षयोजन प्रमितोच्छ्राय-युक्तस्य च भूगोलस्य उच्छ्रतौ - अतलादिलोकस्थितिबोधकं चित्रम्......

उत्तरदिशा

पश्चिमदिशा | पूर्वदिशा

नेमिः	१०१०	== योजनानि
(१)—अतलम्	६०००	= योजनानि
नेमिः	१०००	= योजनानि
(२)—वितलम्	६०००	= योजनानि
नेमिः	१०००	= योजनानि
(३)—सुतलम्	६०००	= योजनानि
(४)—नेमिः	१०००	= योजनानि
(४)—तलातलम्	६०००	= योजनानि
(५)—नेमिः	१०००	= योजनानि
(५)—महातलम्	६०००	= योजनानि
(६) नेमिः	१०००	= योजनानि
(६)—रसातलम्	६०००	= योजनानि
(७)—नेमिः	१०००	= योजनानि
(७)—पातालम्	६०००	= योजनानि
(८)—नमिः	१०००	= योजनानि
	२६०००	= योजनानि

भूगोलमूले अत्र भगवान् शेषाख्यः— "शेषनागस्वरूपः सङ्कर्षणः आस्ते।

१००००० योजनभूगोलोच्छ्रायः

दक्षिण दिशा

२४०पृष्ठस्थयोः-द्वितीयतृतीयपद्ययोः नितलशब्देन सुतलस्य ग्रहणम्, गभस्तिमत् शब्देन तलातलस्य ग्रहणम्, महाख्यशब्देन - महातलस्य, सुतलशब्देन रसातलस्य ग्रहणं अस्तीति ज्ञेयम् ।

पूर्वोक्तचित्रानुसारेण एकलक्षयोजनप्रमितोच्छ्राययुक्तस्य पंचविंशतिकोटि-योजन विस्तारयुक्तस्य च भूगोलस्य - उच्छ्रितौ अष्टौ विभागाः सम्पद्यन्ते । एकसहस्रयोजनानां किलोमीटराः = १४५४५ किलोमीटरः - ५०० गजाः भवन्ति । नवसहस्रयोजनानां किलोमीटराः = १३०९०९ किलोमीटराः - १०० गजाः, दशसहस्रयोजनानां किलोमीटराः = १४५४५४ किलोमीटराः - ६०० गजाः भवन्ति । त्रिशत्सहस्रयोजनानां किलोमीटराः = ४३६३६३ किलोमीटराः - ७०० गजाः भवन्ति, अस्मिन्प्रदेशे भगवान् संकर्षणः आस्ते ।

"मूलेरसायाः स्थित आत्मनन्त्रः" इति - भागवते श्रीशुकदेवोक्तेः ।

सप्तोच्छ्रितीनां - अस्तित्वे - विशेषविचारमत्र करोमि

दिल्ली - कलकत्ता - बम्बई - वाराणसी - प्रभृतिपु महानगरेपु - सप्ताष्टनवादिप्रासादयुक्तानि - अर्थात् - सप्ताष्टनवादिमंजिलयुक्तानि - सप्ताष्टनवादि - भूमिकानि वा गृहाणि - कारुकैः = "लोकप्रसिद्धराजसंज्ञकैः" अन्यैश्च शिल्पविज्ञानकलायुक्तैः यथा - साम्प्रतमपि निर्मीयन्ते, तथैव सृष्टिरचनाप्रवृत्तस्य चराचरजगन्नियन्तुः ईश्वरस्य - इच्छया समुत्पन्नेन - विश्वकर्मा नामकेन - इञ्जीनियरेण प्रसिद्धतमेन - शिल्पिना विनिर्मितानि भूमिगर्भे - स्थितानि - अतल - वितल - सुतलादि - संज्ञकानि सप्तगृहाणि - अतलादिलोकसंज्ञकानि सन्तीत्यत्र न कोऽपि सन्देहः कार्यः केनापि - आधुनिकेन - वैज्ञानिकेन ।

भूगर्भस्थितसप्तलोकानां तेषां सप्तनेमीनां चापि विस्तृतिवर्णनं - अनेकेपु आर्षग्रन्थेपु अनार्षग्रन्थेपु च - उपलभ्यते, अत्र नेमिशब्दः - लोकप्रसिद्धस्य "नीम-जड़-मूल" शब्दस्य द्योतकोऽस्ति ।

सप्ताष्टनवादिप्रासादयुक्तेषु - समुच्छ्रितेषु विशालेषु - भवनेषु साम्प्रतं लोके लैण्टरशब्देन प्रचलितेषु - आधारेपु क्रमशः स्थितेषु - वहुमञ्जिलयुक्तानि गृहाणि - भवनानि वा राजसंज्ञकैःआधुनिकैः मानवैः कारुकैश्च यथा-विनिर्मीयन्ते, तथैव सृष्ट्यारम्भ - समये - ईश्वरेच्छया - समुत्पन्नेन - "विश्वकर्मा" - इञ्जीनियरेण - अथवा - कारुणा - सप्ताधारभूतनेमिषु अर्थात् - प्रासादलैण्टरेषु - अतलादिसंज्ञकानि सप्तगृहाणि भूगर्भसप्तलोकव्यवहृतानि निर्मितानि, नात्रसन्देहो - विधेयः केनाऽपि ।

अतलादिसप्तलोकानां सप्तनेमीनां च शास्त्रीय - व्यवस्थाप्रतिपादनम् करोमि

श्री विष्णुपुराणे द्वितीये - अंशे - पञ्चमे - अध्याये प्रथमद्वितीयश्लोकौ स्तः...

"विस्तार एष कथितः पृथिव्या भवतो मया ।
सप्ततिस्तु सहस्राणि द्विजोच्छ्रायोऽपि कथ्यते ॥१॥
दशसाहस्रमेकैकं पातालं मुनिसत्तम! ॥२॥

उक्तश्लोकयोः - टीकावसरे आत्मप्रकाशाख्यटीकाकार - श्रीधरस्वामिमहोदयाः विलिखन्ति - प्रत्येकं सहस्रयोजनोच्छ्रिता नेमिः ततो नवसहस्रोच्छ्रितं - एकैकं पातालम् भूमिविवराणामित्यर्थः ।

"सहस्रयोजनान्येषां दलान्यन्तरभूमयः ।
प्रत्येकशोऽन्तराण्येषां सहस्राणि नवाध्वनाम् ।।" इति शिवरहस्योक्तेः ।।

उक्तश्लोकयोः स्पष्टीकरणं विष्णुपुराणे "विष्णुचित्तीय" टीकायामपि समुपलभ्यते, तत्र "विष्णुचित्तीय" - टीकाकारा लिखन्ति......

"सहस्रयोजनान्येषां दलान्यन्तरभूमयः ।
प्रत्येकशोऽन्तराण्येषां सहस्राणि नवाध्वनाम् ।।१।।
तदन्तरपुटाः सप्तनागासुरसमाश्रयाः ।
योजनान्ययुतानि च सप्त तत्वार्थचिन्तकैः ।।२।।

उपर्युक्तटीकास्थपद्ययोः - विस्फुटाभिप्रायस्तु - पूर्वविनिर्मितेन सप्तेनमिसप्तपातालबोधकेन चित्रणैव - विज्ञेयो विचारशीलैः विज्ञैः ।

भूर्भुवः स्वः प्रभृतीनां ऊर्ध्वलोकाना स्पष्टीकरणं तु अस्मिन् एव अध्याये मया-विनिर्मितेन - अतः पूर्वं स्थितेन चित्रैणेव सम्यक्तया भवति, तत्रैव तत् - विलोकनीयं विचारशीलैः विज्ञैः ।

उपर्युक्तप्रकारेण-चतुर्दश "१४" लोकानां स्थितेः स्पष्टीकरणं सुस्पष्टं सिद्ध्यति

अतलादिसप्तलोकेषु - प्रवेशमार्गः कुत्रातीति निर्णयं करोमि

विष्णुपुराणे द्वितीये अंशे पञ्चमे अध्याये पञ्चमः श्लोकः——

स्वर्लोकादपि रम्याणि पातालादीनि नारदः ।
प्राह स्वर्गसदां मध्ये पातालेभ्यो गतो दिवि ।।५।।

उक्तपद्यस्य - अयं - भावः......नारदः पतालेभ्यः स्वर्गलोकं गत्वा तत्र स्वर्ग-लोके देवानां सभामध्ये-पातालानि-अधोलोकानि स्वर्गादपि रम्याणि -श्रेष्ठानि सन्तीति-उवाच । उक्तपद्ये पातातादिलोकयात्रातो निवृत्तेनैव नारदेन स्वर्गलोकस्य यात्रा कृता-इत्येतादृशी व्यवस्था - उपलभ्यते विष्णुपुराणे ।

स्वर्गलोकस्तु जम्बूद्वीपमध्ये स्थितस्य - चतुराशीति सहस्रयोजनोच्छ्राय युक्तस्य-"८४००० योजनोच्छ्रायः - सुमेरुपर्वतस्य" उपरितेन भागे वर्तते । पातालेलोकेभ्यः सन्निवृत्तो नारदः सुमेरुमार्गेणैव स्वर्गं जगाम, उपर्युक्त - नारदीययात्रा - विधानेन - एतत् अनुमीयते - यत् - अतलादिलोकानां यात्रा सुमेरुमार्गणैव सम्पद्यते ।

भारतराष्ट्रस्य राजधानीदिल्ल्यां - स्थिते प्राचीनतमे जन्तरमन्तरालये-भारतप्रसिद्धः "कुतुवमीनार" नामकः अत्युछ्रितः स्तम्भः स्तूपो वा सुदृढैः - इष्टिकादिपदार्थैः विनिर्मितः आस्ते, सुदृढतमस्य तस्य-स्तम्भस्य विषये- गवेषणापरायणाः बहवो महानुभावाः - तथान्ये च बहवः - सुशिक्षिताः जनाः - प्रणिगदन्ति, यत् अयं - स्तम्भः श्री विक्रमादित्यस्य शासनकाले अद्यतः=(२०३०प्रचलित-विक्रमसम्वत्सरतः)त्रिंशदधिकद्वि-सहस्रवर्षपूर्वं-"२०३०वर्षपूर्वम्" वीरविक्रमादित्यस्य विद्वत्सभायां-सुप्रसिद्धेन- श्रीवराहमिहिराचार्येण-सुमेरुपर्वतस्य- आकृतिस्मारकः- तदानीन्तनशासनसाहाय्येन सुस्थापितः । सुमेरुपर्वतस्य रचनास्मारके तस्मिन्-"कुतुवमीनार" नामके विशिष्टस्तम्भे-कुतुवमीनारस्य मूलप्रदेशतः-आरभ्य तस्य कुतुबमीनारस्य-उच्चतमशिखरान्तं यावत्तावत् गमनागमनार्थाय

लोकप्रसिद्धानां सीढ़ीनां व्यवस्था वर्तते ।

यथाहि कस्यचिद् गृहस्य - उपरितेनप्रदेशे गमनार्थं सीढ़ीव्यवस्था="जीना-संज्ञका व्यवस्था"-शहीदस्मारकेषु - स्तम्भेषु मन्दिर - गिरिजाघर - मस्जिद-स्थितेषु-स्तूपेषु - स्तम्भेषु च - अहर्निशम् कारुकैः=लोकप्रसिद्धराजसंज्ञकैः- क्रियते, तथैव - सृष्ट्यारंभ-समये- ईश्वरेच्छया विनिर्मितस्य सुमेरुपर्वतस्यापि - मूलप्रदेशतः - आरम्य - शिखरान्तं यावत्तावत् - यात्राविधानाय - लोकप्रसिद्धा - सीढ़ीव्यवस्था विश्वकर्मणा कृता इत्यनुमीयते ।

तस्य सुमेरुपर्वतस्य - मूलप्रदेशतः आरभ्य सप्तसु -अतलादिलोकेषु गमनगमनाय अपि-सीढ़ी व्यवस्था ईश्वरेच्छया विनिर्मिता - अस्तीति श्रीनारदादियात्रा - प्रसङ्गतः एव सिद्ध्यति ।

अमरीका - रूस - जापान - ब्रिटेन - चीन भारतादि राष्ट्रेषु स्थिताः - हे वैज्ञानिकाः! भारतराष्ट्रस्य राजधानी - दिल्लीतः उत्तरस्यां दिशि - चत्वारिंशत्सहस्र-योजनप्रमितासन्नदूरप्रदेशं "४००००" योजनासन्नं अर्थात्-५८१८१८ किलोमीटराः - २०० गजाः प्रमितासन्नं पर्वतप्रदेशं गत्वा, सुमेरुपर्वतस्य - अन्वेषणं विधाय, तस्य सुमेरोः - मूलप्रदेशस्थमार्गेण - अतलादि - सप्तलोकानां स्वर्गलोकस्य च यात्रा विधेय -भवद्भिः, तदैव चतुर्दशलोकस्थितेः ज्ञानं चन्द्रग्रहलोकस्य च ज्ञानम् भविष्यति नान्यथेति।

एतेषु हि विलस्वर्गेषु - स्वर्गात् - अपि अधिक - काम - भोगैश्वर्यानन्दभूति-विभूतिभिः सुसमृद्धभवनोद्याननानाक्रीड़ाविहारेषु - दैत्य - दानव - काद्रवेयाः माया - विनोदाः - निवसन्ति ।

यत्र न भयं - अहोरात्रादिभिः कालविभागैः उपलक्ष्यते, यत्र हि - महाहि - प्रवरशिरोमणयः सर्वं तमः - प्रबाधन्ते ।

एतेषु - अतलादिलोकेषु वृष्टेः - वायो श्च व्यवस्थामत्र लिखामि

एतेषु - अतलादिसंज्ञकेषु सप्तबिलस्वर्गेषु - इन्द्रकृतौ - वृष्टिवायू - न भवतः। सूर्यादिग्रहैः - समुत्पन्नौ वृष्टिवायू - अपि तत्र न भवतः । तत्र तु ईश्वरेच्छया एव सर्वं स्वयमेव - समुपलब्धं भवति ।

ब्रह्माण्डस्य सप्तावरणक्रमो - विष्णुपुराणे द्वितीये - अंशे - सप्तमे - अध्याये समुक्तः, ततः - एव समुद्धृत्य प्रसङ्गागतं तं व्यवस्थाक्रमं - अत्र विलिखामि

सप्तसागरमानस्तु गर्तोदस्तदनन्तरम् ।
कोटियोजनमानस्तु कटाहः स व्यवस्थितः ।।१।।

इति स्वच्छन्दभैरवे समुक्तम्......

दशोत्तरेण पयसा मैत्रेयाण्डं च तद्वृतम् ।
सर्वोऽम्बुपरिधानोऽसौ वह्निना वेष्टितो बहिः ।।२।।
वह्निश्च वायुना वायुः मैत्रेय! नभसावृतः ।
भूतादिना नभः सोऽपि महता परिवेष्टितः ।।३।।

दशोत्तराण्यशेषाणि मैत्रेयैतानि सप्त वै ।
महान्तं च समावृत्य प्रधानं समवस्थितम् ।।४।।
अनन्तस्य न तस्यान्तः संख्यानं चापि विद्यते,
तदनन्तमसंख्यातप्रमाणं चापि वै यतः ।।५।।

प्रकृतौ - असंख्येयानि ब्रह्माण्डानि सन्ति…

"अण्डानां तु सहस्राणां सहस्राण्ययुतानि च ।
ईदृशानां तथा तत्र कोटिकोटिशतानि च" ।।
सोऽप्यंशः सर्वभूतस्य मैत्रेय ! परमात्मनः ।।

मत्स्यपुराणे - एकोत्तरषष्टि - "६१" प्रमिते - अध्याये…

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ मह जंनः ।
तपः सत्यं च सप्तैते देवलोकाः प्रकीर्तिताः ।।७।।

श्रीमद्भागवते पंचमस्कन्धे चतुर्विंशे - अध्याये - भूगर्भस्थितसप्तलोकानां यानि नामानि उक्तानि तानि अत्र विलिखामि

उपवर्णितं भूमेः यथासन्निवेशावस्थानम्, अवनेः - अपि— अधस्तात्-सप्तभू-विवराः - एकैकशो योजनायुतविस्तारेण-आयामविस्तारेण - उपक्लृप्ताः— (१)अतलम् (२)वितलम्(३)सुतलम्(४)तलातलम्(५)महातलम्(६)रसातलम्(७) पातालम्- इति ।

१. अतले मयपुत्रो वलो निवसति, ईश्वरोऽहं सिद्धोऽहमिति कत्थते मदान्धः इव ।

२. ततोऽधस्ताद्- वितले हरो भगवान् हाटकेश्वरो भवो- भवान्या सह मिथुनीभूतः - आस्ते ।

३. ततः अधस्तात् - सुतले - पुण्यश्लोको विरोचनात्मजः बलिः - आस्ते, यस्य भगवान् - स्वयम् - अखिलजगद्गुरुः - नारायणः- द्वारिगदापाणिः - अवतिष्ठते, येन अङ्गुष्ठेन पदा दशकन्धरो योजनायुतायुतं दिग्विजये ऊच्चाटितः ।

४. ततः - अधस्थात् - तलातले मयो नाम दानवेन्द्र आस्ते. ।

५. ततः - अधस्तात् - महातले - अनेकशिरसां - काद्रवेयाणां सर्पाणां समूहः - आस्ते । तस्मिन् सर्पसमूहे "गणे" कुहक - तक्षक- कालिय- सुषेणादिप्रधानाः महाभोगवन्तः - प्रमत्ताः - सर्पाः - विचरन्ति ।

६. ततः - अधस्तात्- रसातले - दैतेयाः - दानवाः पणयो नाम निवातकवचाः- विलेशया - इव वसन्ति ।

७. ततः - अधस्तात् - पाताले - नागलोकपतयः वासुकिप्रमुखाः- भयङ्करक्रोधशीलाः - महाभोगिनः - निवसन्ति ।

८. पाताललोकस्य सीमासमाप्त्यनन्तरम् - तस्य पातालस्य मूलप्रदेशे त्रिंशद्-योजनसहस्रान्तरे= "३०००० योजनप्रमिते प्रदेशे" भगवान् सङ्कर्षणः आस्ते । स एव - सङ्कर्षणः - अनन्तः - इत्यादि समुच्यते विज्ञैः ।

सहस्रशिरसः- अनन्तमूर्तेः भगवतः तस्य सङ्कर्षणस्य - एकस्मिन्नेव शीर्षणि-ध्रियमाणं - इदं समस्तं क्षितिमण्डलं सिद्धार्थः - इव - "सरसों के दाने के समान"

उपलक्ष्यते - अर्थात् - प्रतीयते । -

उक्तप्रकारेण - भगवतः - सङ्कर्षणस्य पुष्टिः - श्रीमद्भागवते - पञ्चमस्कन्धे पञ्चविंशे = "२५" अध्याये - द्वादश - त्रयोदश "१२ - १३" श्लोकयोः उपलभ्यते।

"मूर्धन्यर्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नो भूगोलं सगिरि - सरित्समुद्रसत्वम् ।
आनन्त्यादनिमितविक्रमस्य भूम्नः को वीर्याण्यधिगणयेत् सहस्रजिह्वः' ॥१२॥
एवं प्रभावो भगवाननन्तो दुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः ।
मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रो यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति ॥१३॥

उपर्युक्तयोः श्लोकयोः-अर्थस्तु सरलः एव अतोऽत्र मया व्याख्या न कृता तयोः।

श्रीमद्भागवतमहापुराणग्रन्थानुसारेण ग्रहोच्छ्रितिमत्र लिखामि

पंचमस्कन्धे विंशे - अध्याये - अग्निवेदप्रमिते "४३" श्लोके भूगोलतः ऊर्ध्वं सूर्योच्छ्रितिः···

"अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्यो र्यदन्तरम् ।
सूर्याण्डगोलयो र्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः ॥

उक्तपद्यस्य - अयं भावः··· सूर्यश्च - अण्डगोलश्च - सूर्याण्डगोलौ तयो र्मध्ये- इति सूर्याण्डगोलयो र्मध्ये - अर्थात् - सूर्यात् - ऊर्ध्वगोलान्तं यावत्तावत्- पंचविंशति- कोटिप्रमितं = "२५००००००० कोटियोजनप्रमितं" - यत् - अन्तरं तदेव - द्यावा- भूम्योः अर्थात् भूगोलब्रह्माण्डन्तयोः अन्तरमस्ति ।

ब्रह्माडस्य पूर्वकपालसंज्ञकः- पूर्वार्धभागः उत्तरकपाल संज्ञकश्च - उत्तरार्धभागो- ऽस्ति, तयो पूर्वोत्तरकपालयो र्मध्ये - भूगोलः - तिष्ठति, तस्य भूगोलस्य उच्छ्रितिमानं तु एकलक्षयोजन-प्रमितं - "१००००० योजनप्रमितं" अतलादि सप्तभूगर्भलोकप्रसङ्गे- प्रतिपादितमेव ।

ब्रह्माण्डस्य - मध्यगतं - एकलक्षयोजनोच्छ्रायतुल्यं - यद्भूगोलोच्छ्रायमानं तद्- भूगोलोच्छ्रायमानतुल्यमेव- भूगोलतः ऊर्ध्वं - सूर्योच्छ्रायमानं- अस्ति । अर्थात्- भूगोलात् उपरि एकलक्षयोजनप्रमिते आकाशस्य - ऊर्ध्वप्रदेशे सूर्यः परिभ्रमतीति सारांश. ।

भूगोलतश्चन्द्रोच्छ्रितिनिर्णयमत्र करोमि

पंचमस्कन्धे - द्वाविंशे - अध्याये - अष्टमे गद्ये- चन्द्रोच्छ्रितिः वर्णिता, तामेवात्र लिखामि ··· "एवं चन्द्रमा अर्कगभस्तिभ्यः उपरिष्टात् - लक्षयोजनतः उपलभ्यमानः- अर्कस्य- सम्वत्सरभुक्ति-पक्षाभ्याम्, मासभुक्ति सपादर्क्षाभ्याम्, दिनेन- एव पक्षभुक्तिम्, अग्रचारी द्रुततरगमनो भुङ्क्ते" ॥८॥

यः - एषः षोडशकलः पुरुषो भगवान् - मनोमयः - अन्नमयः अमृतमयः- देव- पितृ - मनुष्य - भूत - पशु - पक्षि - सरीसृप - वीरुधां -- प्राणाप्यायनशीलत्वात् सर्व- मयः - इति वर्णयन्ति ॥१०॥

उक्तगद्यभागयोः - अयं भावः – विशिष्टाग्निगोलकः - तेजोमयरश्मिसमूहः- एव सूर्यो गगने विचरति, रश्मिशब्दस्तु गभस्तिशब्दस्य पर्यायवाचकोऽस्ति । अतः अर्क- गभस्तिभ्यः - अर्थात् - सूर्यरश्मिभ्यः - सूर्यात् - इति सारांशः ।

उपरिष्टात्=उपरितनप्रदेशे विद्यमानात् लक्षयोजनतः- एकलक्षयोजनप्रमाणतः- चन्द्रमा - आकाशे विद्यते । सूर्यात् - एकलक्षयोजनप्रमिते ऊर्ध्वप्रदेशे- चन्द्रमाः परिभ्रमतीति भावः, उक्तरीत्या भूगोलतः-द्विलक्षयोजनप्रमिते "२००००० योजनप्रमिते" ऊर्ध्वभागे - खगोले चन्द्रोऽस्तीति सिद्ध्यति ।

नक्षत्राणामुच्छ्रितिनिर्णयः

"ततः -उपरिष्टात्-त्रिलक्षयोजनतो नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेनैव-कालायने "कालचक्रे" ईश्वरयोजितानि सहाभिजिताष्टाविंशतिः" ।

उक्तगद्यभागस्य- अयं भावः-- कालायनेऽर्थात् कालचक्रे -ईश्वरेण नियोजितानि अभिजित् नक्षत्रेण सह - अश्विन्यादीनि - अष्टाविंशतिनक्षत्राणि सुमेरुपर्वतं प्रदक्षिणाक्रमेण कालचक्रगत्या - नतु स्वगत्या भ्रमन्तः ततः - भूमिगोलात् त्रिलक्षयोजनतः= "३००००० योजनतः" उपरिष्टात्= ऊर्ध्वभागे- सन्ति । "अभिजिन्नामनक्षत्रमुपरिष्टादाषाढानामधस्ताच्छ्रोणायाः - इति श्रुतिः ।

बुधस्य- उच्छ्रिनिर्णयः

उशनसा बुधो व्याख्यातः - ततः - उपरिष्टात्- द्विलक्षयोजनतो बुधः सोमसुतः- उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृत्, यदा - अर्काद् व्यतिरिच्येत तदा - अतिवाताभ्रप्रायानावृष्ट्यादिमयम् - आशंसते ।

उक्तगद्यभागस्य - अयं भावः ...बुधो- ग्रहः - उशनसा शुक्रेण सह, पूर्वाचार्यैः इतिशेषः - व्याख्यातः - कथितः । बुधात्- ऊर्ध्वं - शुक्रस्य स्थितिः- पूर्वाचार्यैः समुक्ता।

ततः - तस्मात् - नक्षत्रमण्डलात्, द्विलक्षयोजनतः= "२००००० योजनतः" उपरिष्टात्= "ऊर्ध्वप्रदेशे" सोमसुतो बुधः - उपलभ्यमानः - अस्ति । अयं बुधग्रहः प्रायेण - शुभकृत् भवति, यदा - अर्कात् - सूर्यात्- व्यतिरिच्यते= अर्थात्- अधिकगतिशीलो भवेत् तदा अतिवायुं - अतिमेघं - अतिवृष्टिं अनावृष्ट्यादिमयोत्पादनकारकं वातावरणम् - आशंसते=सूचयति ।

शुक्रोच्छ्रिति - निर्णयः

ततः - उपरिष्टात् - उशना - द्विलक्षयोजनतः - उपलभ्यते पुरतः पश्चात्सहैव - अर्कस्य - शैघ्र्य - मान्द्य-साम्याभिः-गतिभिः-अर्कवत्-चरति, लोकानां नित्यदा-अनुकूलः - एव, प्रायेणवर्षयन् चारेण - अनुमीयते, स वृष्टिविष्टम्भग्रहोपशमनः ।

उक्तगद्यभागस्य- अयं भावः— ततः - बुधात् द्विलक्षयोजनतः "२००००० योजनतः" उपरिष्टात्=आकाशस्य - ऊर्ध्वप्रदेशे- इति भावः उशना - शुक्रग्रहः-अर्कस्य शैघ्र्य - मान्द्य - साम्य - संज्ञाभिः - गतिभिः- अर्कस्य - पुरतः-सूर्येण भोक्ष्यमाणे नक्षत्रे, पश्चात् - भुक्ते नक्षत्रे, सहैव - भुज्यमाने नक्षत्रे च चरति, स शुक्रः - सर्वदा- लोकानां प्रायः अनुकूलः - एव भवति । यदा राशेः - राश्यन्तरं गच्छति तदा स वृष्टिं करोति, वृष्ट्यवरोधकारकान् ग्रहान् शुक्रः - प्रशान्ति दत्वा - वृष्टिनिरोधं निवारयति ।

भौमस्य-उच्छ्रितिनिर्णयः

अतः - ऊर्ध्वं - अङ्गारकोऽपि योजनलक्षद्वितये - उपलभ्यमानः - त्रिभिः-त्रिभिः-

पक्षे:- एकैकशः - राशीन् - द्वादशानुभङ्क्ते, यदि न - अभिवर्तते, प्रायेण अशुभग्रहः- अघशंसः ।

उक्तगद्यभागस्य - अयं भावः— अतः- शुक्रात् - ऊर्ध्वं = द्विलक्षयोजनप्रमिते ="२००००० योजनप्रमित" आकाशस्य ऊर्ध्वभागे अङ्गारकः - भौमः ग्रहोऽस्ति, स भौमग्रहः - त्रिभिः - त्रिभिः पक्षैः - अर्थात् - सार्धैकमासेन एकराशिभोगं करोति, यदा-वक्रगत्या गच्छति गगने तदा तु - सार्धेकमासतोऽपि - अधिकेन कालेन राशिं भुङ्क्ते, भौमग्रहः प्रायेण - अघशंसः = दुःखसूचकः अस्ति ।

वृहस्पतेः - उच्छ्रितिनिर्णयः

ततः - उपरिष्टात्-द्विलक्षयोजनान्तरगतो भगवान् वृहस्पतिः एकैकस्मिन् राशौ-परिवत्सरं चरति, यदि न वक्रः स्यात्, प्रायेण - अनुकूलो ब्राह्मणकुलस्य ।

उक्तगद्यस्य - अयं भावः — अतः भौमग्रहात् - ऊर्ध्वं - द्विलक्षयोजनान्तरे "२००००० योजनान्तरे" ऊर्ध्वभागे - वृहस्पतिः - भ्रमति, स वृहस्पतिः - यदा वक्र-गत्या न गच्छति, तदा प्रायेण - एकराशिभोगं - एकस्मिन् वर्षे करोति, वक्रातिवक्राव-स्थायां - अतिचारावस्थायां तु एकवर्षतोऽपि - अधिकसमये - न्यूनसमये च एकराशि भोगं करोति, इति तु- अर्थतः - एव - सिद्ध्यति ।

शनैश्चरस्य - उच्छ्रिति - निर्णयः

ततः - उपरिष्टात् - योजनलक्षद्वयात् - प्रतीयमानः - शनैश्चरः- एकैकस्मिन् राशौ त्रिंशन्मासान् विलम्बमानः - सर्वान् - एव - अनुपर्येति तावद्भिः - अनुवत्सरैः, प्रायेण हि सर्वेषां - अशान्तिकरः ।

उक्तगद्यभागस्य - अयं भावः —ततः वृहस्पतितः - ऊर्ध्वं - गगनमण्डले-द्विलक्ष-योजनप्रमितान्तरे= "२००००० योजनप्रमितान्तरे" शनैश्चरो भ्रमति, स शनैश्चरो ग्रहः त्रिंशद्भि - मासैः अर्थात् - सार्धद्वयवर्षैः एकराशिभोगं करोति, इत्थं त्रिंशद्भिः "३०" वर्षे द्वादशराशिभोगं विदधाति, अयं शनैश्चरो ग्रहः प्रायः सर्वेषाम् - अशान्ति-करः वर्तते, आकाशे मन्दगतिः शनैश्चरोऽस्ति ।

सप्तर्षिमण्डलस्य - उच्छ्रितिनिर्णयः

ततः उत्तरस्मात् - ऋषयः - एकादशलक्षयोजनान्तरे उपलभ्यन्ते, ये- एव-लोकानां शं- अनुभावयन्तो भगवतो विष्णो र्यत् परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति ।

उक्तगद्यस्य - अयं भावः — ततः - अर्थात् - पूर्वोक्तात् - नक्षत्र - मण्डलात् ऊर्ध्वं - एकादशलक्षयोजनप्रमितान्तरे= "११०००० योजनप्रमितान्तरे" कश्यपादि-सप्तर्षिमण्डलमस्ति, ते च सप्तर्षयः - समस्तलोकानां- कल्याणं - अभिलषन्तः- भगवतः-विष्णोः - यत्परमं पदं अर्थात् ध्रुवस्थानम्, तस्य ध्रुवस्य - प्रदक्षिणम्=अर्थात्- परि-क्रमाम् - प्रक्रमन्ति प्रकुर्वन्तीति भावः ।

ध्रुवस्य - उच्छ्रितिनिर्णयः

अथ तस्मात् परतस्त्रयोदशलक्षयोजनान्तरतो ध्रुव उपवर्णितः ।

अयं भावः— तस्मात्= चन्द्रप्रदेशान्तात् - ऊर्ध्वं - त्रयोदशलक्षयोजनप्रमिता-

न्तरे "१३०००० योजनप्रमितान्तरे" ध्रुवः - आस्ते ।

यथा मेढीस्तम्भे - आक्रमणपशवः संयोजिताः त्रिभिः - त्रिभिः- सवनैः यथा स्थानं मण्डलानि चरन्ति, एवं भगणाः - ग्रहादयः - एतस्मिन् अन्तर्बहिर्योगेन - कालचक्रे आयोजिताः ध्रुवमेव - अवलम्ब्य - वायुना - उदीर्यमाणाः आकल्पान्तं परिचङ्क्रमन्ति ।

नभसि यथा मेघाः श्येनादयोः वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तन्ते, एवं ज्योतिर्गणाः प्रकृतिपुरुषसंयोगानुगृहीताः कर्मनिर्मितगतयो भुवि न पतन्ति । श्रीमद्भागवते पञ्चमस्कन्धे - त्रयोविंशे - अध्याये स्थितस्य - उपरितनगद्यभागस्य अयं भावः···

कृषिकर्मरतः कश्चित् - कृषकः - लोकप्रसिद्धानाम् गेहूँ - जौ - चना - मटर - बाजरा प्रभृतिधान्यानां ग्रहणयोग्य - संस्कारविधानार्थं लोकप्रसिद्धेषु - खलिहानेषु-पैरेषु वा लोकप्रसिद्ध - मेंढ़नामकं स्तम्भविशेषं - संस्थाप्य, तस्य मेंढ़नामकस्तम्भस्य परितः परिभ्रमणार्थं - लघु - मध्यम - विशद - रज्जुकाभिः परिभ्रमणशीलान् पशून् यथा निबध्नाति, रज्जुनिबद्धाः - ते च पशवः - यथा खलिहानस्थं-मेढं परितः परिभ्रमन्ति । तथैव - ईश्वरेच्छया वातरश्मिनिबद्धाः - सभगणाः ग्रहा - आकाशे नीचोच्चमार्गगाः ध्रुवं परितः - आकल्पान्तं यावत्तावत् परिभ्रमन्ति ।

मत्स्यपुराणे सप्तविंशाधिकशतप्रमितेऽध्याये - भूगोलतः - ऊर्ध्वं ग्रहस्थितिक्रमो - वर्णितः : तमत्र लिखामि

सर्वेषां तु ग्रहाणां वै सूर्योऽधस्तात् प्रसर्पति ।
विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्ध्वं चरते शशी ॥७१॥
नक्षत्रमण्डलं चापि सोमादूर्ध्वं प्रसर्पति ।
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधाच्चोर्ध्वं तु भार्गवः ॥७२॥
वक्रस्तु भार्गवादूर्ध्वं वक्रादूर्ध्वं बृहस्पतिः ।
तस्माच्छनैश्चरश्चोर्ध्वं देवाचार्योपरिस्थितः ॥७३॥
शनैश्चरात् तथा चोर्ध्वं ज्ञेयं सप्तर्षिमण्डलम् ।
सप्तर्षिभ्यो ध्रुवश्चोर्ध्वं समस्तं त्रिदिवं ध्रुवे ॥७४॥
द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च ।
ग्रहान्तरमथैकैकमूर्ध्वं नक्षत्रमण्डलात् ॥७५॥

उक्तपद्यानां अयं भावः......भूगोलतः - ऊर्ध्वं शतसहस्रयोजनप्रमितान्तरे - अर्थात् एकलक्षयोजनप्रमितोर्ध्वप्रदेशे=१००००० योजनप्रमिते "ऊर्ध्वप्रदेशे" सूर्यः प्रसर्पति । तस्मात् - सूर्यात् - ऊर्ध्वं एकलक्षयोजन = "१००००० योजनप्रमिते" ऊर्ध्वप्रदेशे विस्तीर्ण मण्डलं कृत्वा शशी "चन्द्रः" चरते । तस्मात् - चन्द्राच्च ऊर्ध्वं एकलक्ष—"१००००० योजनप्रमिते" ऊर्ध्वप्रदेशे - अभिजित्सहितानि - अष्टाविंशति-नक्षत्राणि सन्ति ।

नक्षत्रेभ्यः - ऊर्ध्वं योजनानां शतेषु - सहस्रेषु द्विगुणेषु - अर्थात् - एकलक्ष-योजनेषु द्विगुणेषु - द्विलक्ष="२०००००" योजनप्रमितेषु - ऊर्ध्वप्रदेशेषु - गगने क्रमशः बुध - शुक्र - भौम - गुरु - शनैश्चराः परिभ्रमन्ति ।

नक्षत्रेभ्यः-"२०००००" द्विलक्षयोजनोपरि बुधः बुधाच्च-द्विलक्ष="२०००००
योजनोपरि शुक्रः, शुक्राच्च -द्विलक्ष=२००००० योजनोपरि भौमः । भौमाच्च द्विलक्ष
२००००० योजनोपरि वृहस्पतिः । वृहस्पतेश्च द्विलक्ष = २००००० योजनोपरिशनै-
श्चरो भ्रमति । शनैश्चाराच्च - एकलक्ष = १००००० योजनोपरि - सप्तर्षिमण्डलं
भ्रमति । सप्तर्षिमण्डलाच्च - एकलक्ष=१००००० योजनोपरि ध्रुवः-मेढीभूतः-आस्ते ।

उपर्युक्तकथनस्य - अयंभावः......भूगोलतः ध्रुवान्तं यावत्तावत्-ग्रहाणां नक्षत्रा-
णां च - यावती दूरी - यश्च क्रमः - "वायु - विष्णु -श्रीमद्-भागवतपुराणादिषु समुक्तः,
मत्स्यपुराणेऽपि तावती एव ग्रहदूरी तादृशः - एव ग्रहादिस्थितिक्रमश्च - समुक्तः ।
अतः - पुराणान्तरोक्तया - ग्रहस्थिति - प्रभृतिव्यवस्थ्या सह मत्स्यपुराणोक्तस्य
-अपि एकवाक्यता सङ्गच्छते - एव ।

ग्रहेषु - मन्दचारिणः शीघ्रचारिणश्च ग्रहाः के सन्तीति व्यवस्थामत्र लिखामि मत्स्यपुराणतः

सौरश्चाङ्गिरसो वक्रो विज्ञेया मन्दचारिणः ।
तेभ्योऽधस्तात्तु चत्वारः पुनश्चान्ये महाग्रहाः ॥६९॥
सोमः सूर्यो बुधश्चैव भार्गवश्चातिशीघ्रगाः ।
यावन्ति चैव धिष्ण्यानि कोट्यस्तावन्ति तारकाः ॥७०॥

उक्तपद्यानां - अर्थस्तु स्पष्टः - एव । भूगोलतः - उर्ध्वं - आकाशमण्डले -
ग्रहाणां स्थितिक्रमव्यवस्थायाःप्रतिपादनेन- भूगोलतः - ऊर्ध्वं - एकलक्षयोजनोपरि=
"१००००० योजनोपरि" सूर्यः, सूर्यात् एकलक्षयोजनोपरि चन्द्रश्च सर्वैरेव स्वीकृतः
पुराणकारैः तत्वदर्शिभिः - ऋषिभिः - इति तु निर्विवादतया - सिद्ध्यति पक्षः ।

"द्वाविमौ पुरुषौ लोंके सूर्यमण्डलभेदिनौ ।
ज्ञानी वीरस्तु धर्मार्थे सङ्ग्रामे संमुखे हतः ॥"

लोकप्रसिद्धेषु - एतादृशेषु - शास्त्रीयवाक्येषु - अपि - भूगोलात् - ऊर्ध्वं सर्व-
प्रथमस्थितं सूर्यमण्डलं भित्वैव - ब्रह्माण्डे सर्वोपरितने भागे स्थितं ब्रह्मलोकं - प्रयाति
मुमुक्षु मानवः, तत्र च ब्रह्मलोकं सम्प्राप्य परमब्रह्मणि लयो भवति मुमुक्षोः ज्ञानिनः
पुरुषस्य, वीरगतिं प्राप्तस्य रणाङ्गणे सम्मुखे हतस्य पुरुषस्य च । परमब्रह्मणि विलये
सति - जीवलोके अर्थात् मृत्युलोके-पुनः पुनः गमनागमनकर्मतो निवृत्ति र्भवति प्राणिनः ।

इत्थं - उपर्युक्तया व्यवस्थया अपि - भूगोलात् - ऊर्ध्वं सर्वप्रथमं सूर्यमण्डल-
मेव - अस्ति, इति पक्षस्तु निर्विवादरूपेण सिद्ध्यति ।

उपर्युक्तरीत्या - चन्द्रादिग्रहाणां मण्डलानि तु - सूर्यमण्डलतः उपरितने - आका-
शस्य भागे एव - सन्तीति पुराणोक्तः पक्षः सर्वसम्मतः सिद्धः ।

सुन्दरी टीका— **सूर्यादिग्रहों की तथा महर्लोकादि की ऊंचाई का विवेचन**

(१) भूगोल से एक लाख योजन ऊँचाई पर सूर्यमण्डल है ।
(२) सूर्य से एकलाखयोजन ऊंचाई पर चन्द्रमण्डल है ।
(३) चन्द्रमा से एकलाखयोजन ऊचाई पर नक्षत्रमण्डल है ।
(४) नक्षत्रमण्डल से दो लाखयोजन ऊंचाई पर बुध है ।
(५) बुध से दो लाखयोजन ऊंचाई पर शुक्र है ।
(६) शुक्र से दो लाखयोजन ऊंचाई पर मंगल है ।
(७) मंगल से दोलाख योजन ऊंचाई पर वृहस्पति है ।

(८) बृहस्पति से दो लाखयोजन ऊंचाई पर शनैश्चर है।

(९) शनैश्चर से एकलाखयोजन ऊंचाई पर सप्तर्षिमण्डल है।

(१०) सप्तर्षिमण्डल से एकलाखयोजन ऊंचाई पर ध्रुव स्थित है।

(११) भूगोल से ऊपर आकाश में एकलाखयोजन ऊंचाई तक "भुवः लोक" माना जाता है। भुवः लोक से ऊपर चौदहलाख योजन ऊंचाई तक ध्रुव तक "स्वः-लोक" माना जाता है। इस प्रकार– "भूः, भुवः, स्वः" इन तीनों लोकों की ऊंचाई को समझ लेना चाहिये।

(१२) ध्रुव से ऊपर - एककरोड़योजन की ऊंचाई तक "महर्लोक" है।

(१३) महर्लोक से ऊपर दोकरोड़योजन की ऊंचाई तक जनलोक है।

(१४) जनलोक से ऊपर आठकरोड़ योजन की ऊंचाई तक तपोलोक है।

(१५) तपोलोक से ऊपर बारह करोड़ योजन की ऊंचाई तक सत्यलोक= (ब्रह्मलोक) है।

(१६) सत्यलोक=(ब्रह्मलोक)से ऊपर–ऐककरोड़-पिचासीलाख योजन ऊंचाई तक परलोक की स्थिति है।

(१७) भूः, भुवः, स्वः, इन तीनों लोकों की "कृतक" संज्ञा है। "महः लोक' की 'कृतकाकृतक" संज्ञा है। "जनः, तपः, सत्य" इन तीनों लोकों की "अकृतक" संज्ञा है।

(१८) प्रलयकाल के समय में "प्रलयाग्नि" से "भूः भुवः स्वः" ये तीनों लोक बिलकुल नष्ट हो जाते हैं, महर्लोक का पूर्णरूप से विनाश नहीं होता है, महर्लोक प्रलय कालीन अग्नि से जब झुलसने लगता है, तब प्रलयकाग्नि से सन्तप्त हुए महर्लोक निवासी ऋषिगण और देवतागण-महर्लोक का परित्याग करके योगबल से जनलोक में चले जाते हैं, जनलोक में निवास करने वाले अपने दिव्यचक्षुओं से = (दिव्यनेत्रों से) प्रलयकालीन दृश्य को देखा करते हैं।

(१९) भूगोल से ऊपर आकाशमण्डल में– (१) भूः (२)भुवः (४)स्वः (५) जनः (६) तपः (७) सत्य, नाम के ये सात लोक हैं।

भूगर्भ में भूगोल के भीतरी भाग में—(१) अतल (२) वितल (३) सुतल(४) तलातल (५) महातल (६)रसातल (७)पाताल, ये सात लोक हैं, सब लोकों का योग =७+७=१४ है।

(२०) पच्चीसकरोड़योजन वृत्ताकार (गोलाकार) भूगोल की मोटाई एकलाख योजन है।

अतलादि सातलोकों का विवेचन

(२१) सृष्टिरचनासमय के प्रसिद्ध इन्जीनियर विश्वकर्मा ने सृष्टिकर्ता ईश्वर की इच्छा के अनुसार भूगर्भ में स्थित अतलादि सातलोकों को इस ढंग से बनाया था कि— प्रत्येक अतलादि लोक दशहजारयोजन दक्षिणोत्तर चौड़ाई में और पच्चीस करोड़योजनव्यासयुक्त - वृत्ताकार भूगोल की पूर्वीयपरिधि से पश्चिमीय परिधि तक लम्बाई में स्थित है।

प्रत्येक अतलादि लोक में दक्षिणोत्तर एक हजारयोजन चौड़ी और पूर्वीयपरिधि

से पश्चिमीय परिधि तक लम्बी भूगोल की पट्टी नीव के रूप में= (आधारशिला= आधारभित्ति के रूप में) स्थित है। तथा नौ हजार योजन दक्षिणोत्तर चौड़ी और पूर्वीयपरिधि से पश्चिमीयपरिधि तक लम्बी भूगोल की पट्टी अतलादिलोकों में निवास करने वालों के निवासादि के लिये और क्रीड़ास्थलादि के लिये स्थित है।

(२२) एक लाखयोजन मोटी अथवा ऊंचि भूमि में से सत्तरहजारयोजन ऊंचा अथवा मोटा भाग अतलादि सात लोकों में विभक्त है, (१००००योजन×७= ७०००० योजन)।

(२३) अतलादि लोकगणना क्रम से सातवें पाताललोक के अन्त में- एकहजार योजन दक्षिणोत्तर चौड़ी आधारशिला विश्वकर्मा द्वारा लगाये जाने पर- उनतीसहजार योजन - भूगोल मोटाई अथवा ऊंचाई में शेष रहता है, यही भाग एकलाखयोजन ऊंचे =(मोटे) भूगोल का मूल भाग= (जड़ का भाग) है, इसी मूलभाग में सङ्कर्षण भगवान् शेषनाग के रूप में स्थित होकर अपनी योगमाया से पृथिवी को धारण करते हैं।

(२४)इसी छटे अध्याय के दो सौ इकतालीसवें=(२४१वें)पृष्ठ पर "अतलादि-स्थितिबोधक- चित्र" को देखिये, आसानी से सबकुछ समझ में आजायेगा।

अतलादिलोकों की यात्रा करने के मार्ग का विवेचन

(२५)विष्णुपुराण के द्वितीय अंश में पांचवें अध्याय के पांचवें श्लोक में लिखा है कि—

"स्वर्लोकादपि रम्याणि पातालादीनि नारदः।
प्राह स्वर्गसदां मध्ये पातालेभ्यो गतो दिवि" ॥५॥

इस श्लोक का सारांश यह है कि— पातालादि लोकों की यात्रा करने बाद सुमेरुमार्ग से इन्द्रलोक की यात्रा करके देवताओं की सभा में उपस्थित हुए श्रीनारदजी मुनि ने स्वर्ग से भी अधिक रमणीय "अतल, पाताल" आदि लोकों को बताया।

उपर्युक्त श्लोक से यह निष्कर्ष निकलता है कि— सुमेरुपर्वत के मूलप्रदेश में स्थित इलावृत प्रदेश की भूमि से अतलादि लोकों में जाने आने का मार्ग है।

वाल्मीकि रामायण में अतलादि लोकों की यात्रा के मार्ग का विवेचन

(२६) वाल्मीकि रामायणे उत्तराकाण्डे विंशे सर्गे —

तस्मिन् जिते जितं सर्वं भवत्येव न संशयः।
एवमुक्तस्तु लङ्केशो दीप्यमानं स्वतेजसा ॥१७॥
अब्रवीन्नारदं तत्र संप्रहस्याभिवाद्य च।
महर्षे! देवगन्धर्वविहार - समरप्रिय! ॥१८॥
अहं समुद्यतो गन्तुं विजयार्थं रसातलम्।
ततो लोकत्रयं जित्वा स्थाप्य नागान् सुरान् वशे ॥१९॥
समुद्रममृतार्थं च मथिष्यामि रसालयम् ॥१९+१/२॥

त्रयोविंशे सर्गे—

ततो रसातलं रक्षः प्रविष्टः पयसां निधिम्।
दैत्योरगगणाध्युष्टं वरुणेन सुरक्षितम् ॥४०॥

आगतस्तु पथा येन तेनैव विनिवृत्य सः ।
लङ्कामभिमुखो रक्षो नभस्तलगतो ययौ ॥५३॥

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड में स्थित बीसवें सर्ग के - सत्रह - अठारह और उन्नीसवें श्लोकों से तथा तेईसवें सर्ग के चौथे और त्रेपनवें श्लोकों में वर्णित रावण दिग्विजय यात्रा के प्रसङ्ग में "रसातल लोकादि" की रावण द्वारा की गयी युद्धयात्रा से भी यह स्पष्ट निष्कर्ष निकल रहा है कि-अतलादि लोको में पहुंचने के - कई मार्ग हैं, उन सभी मार्गों में सुमेरु पर्वत के मूलप्रदेश के सन्निकट में स्थित मार्ग भी सबसे प्रसिद्ध और सीधा तथा सरल है ।

अतलादिलोकों की यात्रा करने का सुझाव

(२७) अमरीका, रूस, भारत आदि राष्ट्रों के जो वैज्ञानिक-सूर्य और चन्द्रादि ग्रहलोकों की असम्भव यात्रा करने की योजनायें बना रहे हैं, उन्हें चाहिये कि—वे ग्रहलोकों की यात्रा करने से पहले भारत की राजधानी दिल्ली से उत्तर दिशा में-पाँच लाख - इक्यासी हजार - आठसौ - अठारह किलोमीटर=(५८१८१८ कि० मी०) के लगभग दूरी की यात्रा को वायुयानों द्वारा करके, इलावृतप्रदेश के मध्य भाग में स्थित "सुमेरुपर्वत" के इर्द-गिर्द में स्थित भूगर्भ मार्ग से - अतलादि सात लोकों में पहुँचकर, इन अतलादि लोकों की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान करके, भूगर्भ में स्थित इन सातों लोकों के चित्रों को अपने विशाल कैमरायन्त्रों से खींचकर "टेलीवीजन" आदि यन्त्रों के द्वारा उन चित्रों को जनता जनार्दन को दिखाने का प्रयत्न करें, तथा उनतीस लाख किलोमीटर से भी अधिक ऊँचाई पर स्थित "चन्द्रलोक तक जिस शटल ट्रेन को ले जाने का स्वप्न आधुनिक अन्तरिक्ष यात्री देख रहे हैं, वे उस शटल ट्रेन को - छैः लाख किलोमीटर की दूरी से भी कम दूरी पर उत्तर दिशा में स्थित "सुमेरुपर्वत" के मूल =(निचले भाग तक) ले जाकर अतलादि लोकों की यात्रा को करने में सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न करें ।

अतलादिलोकों के विषय में शङ्काओं का निराकरण

(२८) आजकल कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली आदि महानगरों में - लेन्टर पड़ी हुई बीस या पच्चीस मन्जिलों से भी अधिक मन्जिल वाले भवनों को साधारण राज और कारीगरों ने बना दिया है, तो फिर ईश्वर द्वारा नियुक्त "विश्वकर्मा" नाम के प्रसिद्ध इन्जीनियर या कारीगर ने-यदि सात मन्जिले तहखाने को भूगर्भ में=(भूगोल के भीतर) बना दिया, तो उसमें "ननु न च=नुक्ता चीनी" करने की अथवा विश्वास न करने की कोई गुन्जाइश ही नहीं रह जाती है । अज्ञान के वशीभूत होकर जो लोग अतलादि सात लोकों के सम्बन्ध में ऊटपटाँग शङ्कायें करते हैं, वे भ्रान्त हैं ।

(२९) भूगोल से ऊपर आकाश में ग्रहों की ऊँचाई आदि के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष-द्रष्टा सभी अतीन्द्रिय - ऋषियों ने अपने - अपने शोध ग्रन्थों में एकसा वर्णन विभिन्न-विभिन्न समयों में किया है । अतः - ग्रहों की ऊँचाई के सम्बन्ध में भी "ननु नच= नुक्ता चीनी" करने की लेशमात्र भी गुन्जाइश नहीं है । जो लोग ऊटपटांग शङ्कायें करके-आर्षोक्त ग्रहों की ऊँचाइयों में परिवर्तन या रद्दोबदल करने का प्रयत्न कर रहे हैं, उनके सभी प्रयत्न निराधार हैं, और वे सवयं ही भ्रान्त हैं ।

जम्बूद्वीप में स्थित मुख्यपर्वतों की ऊँचाई बोधक सारिणी

१. सुमेरु की ऊंचाई = ८४०००यो० =१२२१८१८ कि० मी० । २००गज।
२. गन्धमादन की ऊंचाई = ४००००यो० = ५८१८१८ कि० मी० । २००गज।
३. माल्यवान् की ऊंचाई= ४००००यो० = ५८१८१८ कि० मी० । २००गज।
४. नील की ऊंचाई = १००००यो० = १४५४५४ कि० मी० । ६००गज।
५. श्वेत की ऊंचाई = १००००यो० = १४५४५४ कि० मी० । ६००गज।
६. शृङ्गवान् की ऊंचाई = १००००यो० = १४५४५४ कि० मी० । ६००गज।
७. निषध की ऊंचाई = १००००यो० = १४५४५४ कि० मी० । ६००गज।
८. हेमकूट की ऊंचाई = १००००यो० = १४५४५४ कि० मी० । ६००गज।
९. हिमालय की ऊंचाई= १००००यो० = १४५४५४ कि० मी० । ६००गज।
१०. कैलास की ऊंचाई = १००००यो० = १४५४५४ कि० मी० । ६००गज।
११. भूगर्भ मेंप्रविष्टसुमेरु= १६०००यो० = २३२७२७ कि० मी० । ३००गज।
१२. सुमेरु का शीर्षभाग = ३२०००यो० = ४६५४५४ कि० मी० । ६००गज।
१३. वृत्ताकार जम्बूद्वीप =१०००००यो० =१४५४५४५ कि० मी० । ५००गज।

भूगोल से आकाश की ओर सूर्यादिग्रहों की ऊँचाई बोधक सारिणी

सूर्य की ऊंचाई = १०००००यो०= १४५४५४५कि० मी०।५००गज।
चन्द्रमा की ऊंचाई = २०००००यो०= २९०९०९०कि०मी०।१०००गज।
नक्षत्रमण्डल की ऊंचाई = ३०००००यो०= ४३६३६३६कि० मी०।४००गज।
बुध की ऊंचाई = ५०००००यो०= ७२७२७२७कि० मी०।३००गज।
शुक्र की ऊंचाई = ७०००००यो०= १०१८१८१८कि० मी०। २००गज।
मंगल की ऊंचाई = ९०००००यो०= १३०९०९०९कि० मी०। १००गज।
गुरु की ऊंचाई = ११०००००यो०= १६००००००कि० मी० । ००गज।
शनि की ऊंचाई = १३०००००यो०= १८९०९०९०कि०मी०। १०००गज।
सप्तर्षिमण्डलकीऊं० = १४०००००यो०= २०३६३६३६कि० मी० । ४००गज।
ध्रुव की ऊंचाई = १५०००००यो०= २१८१८१८१कि० मी० ।९००गज।
महर्लोक की ऊचाई = ११५०००००यो०= १६७२७२७२७कि० मी०। ३००गज।
जनलोक की ऊंचाई = ३१५०००००यो०= ४५८१८१८१८कि० मी० । २००गज।
तपोलोक की ऊंचाई=१११५०००००यो०=१६२१८१८१८१कि० मी० । ९००गज।
सत्यलोक की ऊंचाई=२३१५०००००यो०=३३६७२७२७२७कि० मी०। ३००गज।
स० से परलोककीऊं.= १८५०००००यो०= २६९०९०९०९कि० मी० । १००गज।
भू० से परलोककीऊं. =२५०००००००यो०=३६३६३६३६३६कि० मी० । ४००गज।
ब्रह्म:ण्ड का विस्तार =५००००००००यो०=७२७२७२७२७२कि० मी० । ८००गज।

चन्द्रादि ग्रहलोकों की यात्रा का खण्डन

जम्बूद्वीप के पर्वतों की ऊँचाई और ग्रहों की ऊँचाई की बोधक ऊपर लिखी दोनों सारिणियों को ध्यान से देखिये—बारहलाख और पाँचलाख किलोमीटर से भी अधिक ऊँचे पर्वत जम्बूद्वीप में हैं । चन्द्रमा=(चन्द्रलोक)उनतीसलाख किलोमीटर से भी अधिक ऊँचाई पर है । अमरीका आदि के अन्तरिक्षयात्री केवल चारलाख किलोमीटर ऊँचाई तक ही पहुँच पाये हैं, यह ऊँचाई माल्यवान् और गन्धमादन के शिखरों की ही है, चन्द्रलोक की नहीं है, अतएव चन्द्रलोक की यात्रा का प्रचार करना बिलकुल गलत और भ्रामक है ।

(क)—जम्बूद्वीपस्य नवमे खण्डे भारतवर्षे "रैवतक:" आदय: समुच्छ्रिता:-अनेके शतश:-सहस्रशश्च- पर्वता: - सन्ति ।

अमरीकास्था: चन्द्रलोकयात्रिण: वराका: वैज्ञानिकास्तु पूर्वोक्तानां - पर्वतानां मध्ये चतुर्लक्ष="४०००००किलोमीटर" उच्छ्राययुक्ते "ऊँचाई वाले' कस्यचित् पर्वतस्य प्रभागे - एव गता:, नतु चन्द्रलोके - गतास्ते वराका:, ते तु गन्धमादनपर्वते अथवा माल्यवान् पर्वते अथवा सुमेरुपर्वतस्य कस्मिन् - चित् प्रदेशे एव गतवन्त: चन्द्रलोकं मन्यन्ते तं प्रदेशं - अज्ञानत: ।

अतएव चन्द्रलोकयात्राया: तेषां घोषणा भ्रान्तिप्रदा एव अस्तीति मध्यस्थया धिया विवेचनीयं विज्ञै: ।

(ख)—पूर्वोक्तग्रहोच्छ्रितिगणिते निम्नाङ्कितोऽयं विषयोऽपि अनुसन्धेयो विज्ञै:—

ब्रह्माण्डान्तर्गतो द्वादशकोटिप्रमितो य: - सत्यलोक:="ब्रह्मलोक:" विनिर्णीत: तस्मिन् सत्यलोके - एव - कक्ष्यादिभेदेन वैकुण्ठादिलोकानामपि सत्ता ज्ञेया । तस्मिन् - एव - सत्यलोके वकुण्ठलोकोऽपि - अस्ति - इति तत्वार्थ: । पूर्वोक्तस्य पुष्टि: श्रीधर-स्वामिवर्यै: स्वविरचितायाम् - "आत्मप्रकाशाख्य" टीकायां श्री विष्णुपुराणस्य द्वितीये अंशे - सप्तमे - अध्याये - पञ्चदशप्रमितस्य श्लोकस्य टीकावसरे विहिता, श्रीधरस्वा-मिनस्तत्र विलिखन्ति... "सत्यलोके - एव कक्ष्यादिभेदेन ब्रह्मधिष्ण्यात् परं वैकुण्ठ-लोकादि ज्ञेयम्" ।

सत्यलोकात्-ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डस्य-पञ्चदशलक्षोनकोटिद्वयप्रमित:="१८५००००० योजनप्रमित:" यो भाग: अवशिष्ट: - तस्मिन्भागे एककोटि - योजनप्रमितप्रदेशे= "१००००००००"योजनप्रमिते भागे अर्थात्='१४५४५४५४५ किलोमीटरा:।५००गजा:। प्रमितप्रदेशे विद्यमानं सुरम्यं शिवपुरम्" विराजते । उक्तकथनस्य पुष्टि: वायुपुराणे शिवपुरवर्णनावसरे वायुना कृता साम्प्रतमपि - उपलभ्यते, तदुक्तं वायुपुराणे ......

पुरस्ताद् ब्रह्मलोकस्य ह्यण्डादर्वाक् च ब्रह्मण: ।
तयो र्मध्ये पुरं दिव्यं स्थानं यस्य मनोहरम् ॥१॥

तद्विग्रहवत: स्थानमीश्वरस्यामितौजस: ।
शिवनाम पुरं तत्र शरणं जन्मभीरुणाम् ॥२॥

सहस्राणां शतं पूर्णं योजनानां द्विजोत्तमा: !।
अभ्यन्तरे तु विस्तीर्णं महीमण्डलसंस्थितम् ॥३॥

मध्याह्लार्कप्रकाशेन परतेजोऽभिमर्दिना ।
शतकौम्भेन महता प्राकारेणार्कवर्चसा ॥४॥

द्वारैश्चतुर्भि: सौवर्णैर्मुक्तादामविभूषितै: ।
तपनीयनिभै: शुभ्रे गाढं सुकृतवेष्टनम् ॥५॥

तच्चाकाशे पुरं रम्यं दिव्यं घण्टानिनादितम् ।
न तत्र क्रमते ह्रत्यु र्न तापो न जरा श्रमा: ॥६॥

नैव तस्य पुरस्यान्यैरुपमां कर्तुमर्हति ।
सहस्राणां शतं पूर्णं योजनानां दिशो दश ॥७॥

श्रीविष्णुपुराणस्य द्वितीये - अंशे सप्तमे - अध्याये - द्वाविंशतिसंख्याप्रमितस्य श्लोकस्य टीकाया किंचिद् वैशिष्ट्यं समुक्तम्...

एतदण्डकटाहेन तिर्यक्चोर्ध्वमधस्तथा ।
कपित्थस्य यथा बीजं सर्वतो वै समावृतम् ॥८॥

उक्तपद्यस्य टीकावसरे श्रीधरस्वामिनः विलिखन्ति... एतत्-चतुर्दशभुवनात्मकं जगत्-अण्डकटाहेन समावृतम्, तदेव पृथिव्यावरणम्, स च कटाहः-कोटियोजनविस्तारः

"सप्तसागरमानस्तु गर्तोदस्तदनन्तरम् ।
कोटियोजनमानस्तु कटाहः स व्यवस्थितः ॥" इति स्वच्छन्दभैरवोक्तेः ॥

उक्तटीकानुसारेण-एककोटियोजनप्रमितः- कटाहोऽस्ति, स एव कटाहः पञ्चाशत्कोटियोजनप्रमितभूमेः कटाहस्वरूपेण व्यवस्थितः - सर्वदिक्षु - विदिक्षु च ।

शिवपुरस्य- उत्तरार्धभागे पञ्चदशलक्षयोजनात्मकः= (१५००००० योजनात्मकः)अन्तिमभागः कठोरदिव्यभूमियुक्तः अस्ति, भूमिकठोरत्वात् - एव- अस्य भागस्य गणनां कटाहे कृत्वा, एककोटियोजनविस्तारः कटाहस्य समुक्तः स्वच्छन्दभैरवे, स्वतन्त्ररूपेण कटाहस्य विस्तारस्तु पञ्चदशलक्षोन - एककोटियोजनप्रमितः= (८५००००० योजनप्रमितः) एव अस्ति— विष्णुपुराणे एककोटियोजन-शिवपुरमानोक्तत्वात् ।

चतुर्दशलोकानां वास्तविकस्थितिज्ञानाय- ऋषीणां पार्श्वे किं साधनमस्तीति प्रतिपादनमत्र करोमि—

चतुर्दशलोकानाम्, सप्तद्वीपानाम्, सप्तद्वीपसप्तसागराणाम्, जम्बूद्वीपनवखण्डानाम्, भारतवर्षस्य नवोपद्वीपानाम्, सप्तद्वीपादिपु, स्थानविशेषेषु संस्थितानां पर्वतानां द्वीपादिषु - संस्थित - सागर - नद - नदी-श्रोतसां तत्रत्य वृक्षविशेषादीनां च स्थितिवर्णनं स्वस्वनिवन्धग्रन्थेषु - ऋषिभिः - यत्कृतं - तत्तु योगाभ्यासवलेन - एव- कृतमिति ज्ञेयम् ।

यतो हि- योगवलेन - महत् - मध्यम - सूक्ष्मरूपधारिणो योगिनो मुनयो योगवलेन एव - सर्वत्र गत्वा, तत्रत्यानि तत्रस्थानि च सर्वाण्यपि - वृहत् - मध्यम- सूक्ष्मातिसूक्ष्म - वस्तूनि. तत्रस्थान् सर्वविधपदार्थान् च - अनायासेनैव- यथार्थरूपेण पश्यन्ति।

यत्र कुत्रापि स्थाने स्थित्वा योगिनः ते मुनयः - योगवलेन - एव- सर्वं चराचरं जगत् पश्यन्ति, तस्मिन् चराचरजगति स्थितानि सर्वविधवस्तूनि च पश्यन्ति-ते योगिनो मुनयः, अतएव"भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्" 'चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्' इति सूत्राभ्याम् पातञ्जलयोगदर्शने-चतुर्दशलोकानां ज्ञानस्य-चतुर्दशलोकेषु स्थितानां सर्वविधपदार्थानां सर्वविध वस्तूनां च ज्ञानस्य प्रकारः श्रीपतञ्जलिमुनिमहोदयैः समुक्तः ।

"भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्" "चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्" ।

उपर्युक्तसूत्रयोः - अयं भावः—मानवादिप्राणिनां शरीरेषु नाभिप्रदेशे कुण्डलाकारसर्पस्वरूपसदृशं महाशक्तियुक्तं कुन्डलिनीचक्रं तिष्ठति, तस्मात् - कुण्डलिनीचक्रात् दशनाड्यः "दशशिराः" शरीरस्य - ऊर्ध्वभागगाः - भवन्ति, दशनाड्यश्च शरीरस्य-

अधोभागगा भवन्ति, कुण्डलिनी चक्रात्- द्वे नाड्यौ द्वे शिरे दक्षिणकुक्षिभागगते भवतः, द्वे च वामकुक्षिभागगते भवतः ।

एताः चतुर्विंशतिनाड्यः - एव महाशक्तियुतस्य कुण्डलिनीचक्रस्य प्रधानमार्गाः- भवन्ति । ताभ्यः - एव - चतुर्विंशतिनाडीभ्यः सप्तोत्तर- सप्तशतनाड्यः= "७०७" नाड्यो जायन्ते, ताश्च सप्ताधिकसप्तशत= "७०७" नाड्यः एव - शरीरस्य अतिपोषिकाः - भवन्ति ।

यतो हि - भुक्ताहारस्य - समुत्पन्नं रसं - एताः - एव - नाड्यो वहन्ति, यत्र यत्र शरीरे ताः - नाड्यः प्रतताः - विस्तृताश्च सन्ति, तत्र तत्र कृताहार - पान-चोष्य-पदार्थादि - समुत्पन्नान् रसान् नयन्ति ताः - नाड्यः । तत्तन्मार्गगताश्च रसाः शरीरं पुष्णन्ति ।

तासां नाडीनां मध्ये-दशनाड्यः दशविधवायून् प्रवहन्ति, तासां दशविधनाडीनाम् १. इडा, २. पिङ्गला, ३. सुषुम्ना, ४. गान्धारी, ५. हस्तिजिह्विका, ६. पूषा, ७. यशा ८. व्यूषा, ९. कुहू, १०. शंखिनिका, एतानि नामानि सन्ति ।

शरीरस्थ - दशविधवायूनाम् - नामानि अत्र लिखामि

१- प्राणः, २. अपानः, ३. समानः, ४. उदानः, ५. व्यानः, ६. नागः, ७.कूर्मः ८.ककचः,९.देवदत्तः,१०.धनञ्जयः, इति नामानि सन्ति शरीरस्थानां दशविधवायूनाम्,

"इडा"-नाड्यां चन्द्रस्य संचारो भवति, "पिङ्गला" नाड्यां तु सूर्यस्य संचारो भवति, शरीरस्थनासिकावामपुटात् = "नाक के बायें नथौर से" यो वायुः संचरति, तस्मिन् वायौ चन्द्रस्य संचारो भवति, नासिकादक्षिणपुटात् "नाक के दायें नथौर से" यो वायुः संचरति, तस्मिन् वायौ सूर्यस्य संचारो भवति ।

अत्रायं विशेषः—इडा नाडी हृदयाद्- वामनासापुटाभिगामिनी भवति । पिङ्गला- नाडी तु - हृदयात् - दक्षिणनासा - पुटाभिगामिनी भवति । इडानाड्यां प्राण-नामकः - वायु र्वहति । पिङ्गलानाड्यां - उदानो वायु-र्वहति । गान्धारीनाडी- नाभेः - अधोभागगता भवति, तत्र - अपानो वायुः प्रवहति । जिह्विकानामनाडी - नाभिस्था भवति, तत्र समानो वायुः समानरूपेण सर्वदा वहति, व्यानो वायुः-सुषुम्नानाड्यां प्रवहति । एवं नागः, कूर्मः, ककचः, देवदत्तः, धनञ्जयः, एते पंचवायवः क्रमशः पूषा-यशा-व्यूषा - कुहू - शंखिनिकासु नाडीषु- प्रवहन्ति ।

पाञ्चभौतिकशरीरावयवस्थयोः नासिकापुटद्वयस्थयोः - चन्द्र - सूर्य- स्वरयोः अभ्यासरताः - ये योगिनो मुनयो विद्यन्ते, ते तु - यत्र कुत्रापि - स्थित्वा-भूत-भविष्य-वर्तमानकालस्य - सर्वविधघटनाचक्रज्ञानं अनायासेनैव सततं कुर्वन्ति ।

चराचरजगति - यानि वस्तूनि - यादृशानि यत्र स्थितानि ये च पदार्थाः- यत्र-यादृशाः स्थिता स्तांश्चापि सुजानन्ति योगिनः - जनाः ।

पूर्वोक्तस्य पुष्टिः - स्वरशास्त्र - योगशास्त्राभ्यां निम्नाङ्कितरीत्या भवति

कुण्डलिनी महाशक्ति र्नाभिस्थाहिस्वरूपिणी ।
ततो दशोर्ध्वगा नाड्यो दशचाधो गतास्ततः॥१॥

द्वे द्वे तिर्यग्गते नाड्यौ चतुर्विंशतिसंख्यया ।
कुण्डलिन्या महाशक्तेः मूलमार्गा भवन्त्यमीः॥२॥
ताभ्यः सूक्ष्ममुखा नाड्यः शरीरस्यातिपोषिकाः ।
शतानि सप्त जायन्ते सप्तोत्तराणि संख्यया ॥३॥
प्रधाना दशनाड्यस्तु दशवायुप्रवाहिकाः ।
नामानि नाडिकानां च वातानां च वदाम्यहम् ॥४॥
इडा- पिङ्गला - सुषुम्ना - गान्धारीहस्तिजिह्विका ।
पूषा यशा च व्यूषा च कुहूः शंखिनिका तथा ॥५॥
प्राणोऽपानः समानश्च - उदानो व्यान एव च ।
नागः कूर्मः - कृकश्चैव देवदत्तो धनञ्जयः ॥६॥
प्रकटो वायुसंचारो लक्ष्यते देहमध्यतः ।
इडापिङ्गलासुषुम्नाभि र्नाडीभिस्तिसृभिः बुधैः ॥७॥
इडानाडीस्थितश्चन्द्रः पिङ्गला भानुवाहिनी ।
सुषुम्ना शम्भुरूपेण शम्भु हंसस्वरूपकः ॥८॥
शक्तिरूपः स्थितश्चन्द्रो वामनाडीप्रवाहकः ।
दक्षनाडीप्रवाहश्च शिवरूपी दिवाकरः ॥९॥
सूर्यचन्द्रस्वराभ्यासं ये कुर्वन्ति सदा नराः ।
अतीतानागतं ज्ञानं तेषां हस्तगतं सदा ॥१०॥

नरपतिजयचर्यस्थानामुपर्युक्तानां पद्यानामर्थस्तु स्पष्टः - एव । शरीरस्थ-चन्द्र-सूर्य- स्वराभ्यासपरायणाः - योगिनः- ऋषयः - चराचरजगतः स्थितिं- ब्रह्माण्डान्तर्गत-सर्ववस्तूनां सर्वविधपदार्थानां च सुस्पष्टां स्थितिं - सर्वदैव विजानन्त्येव ।

अतएव- जम्बूद्वीपादि - सप्तद्वीपस्थानां - भारतनवद्वीपस्थानां - पर्वतानां विषये-नद - नदी सागरप्रभृतीनां च विषये - ऋषिप्रणीतेषु- निबन्धग्रन्थेषु यत् किमपि वर्णन-मुपलभ्यते, तत्सर्वमेव सत्यं विद्यते, सूर्य - चन्द्र - भौमादिग्रहाणां यावती दूरी भूगोलतो मुनिप्रणीतेषु निबन्धग्रन्थेषु - समुक्ता सा - एव - दूरी साधीयसी दरीदृश्यते निष्पक्षया दिव्यदृष्ट्या ।

जनः- तपः-महः, - प्रभृतीनाम् - ऊर्ध्वलोकानां च- यावान् विस्तारः यावती च दूरी - ऋषिप्रणीतेषु निबन्धग्रन्थेषु- प्रतिपादिता- सा- एव निष्पक्षया दृष्ट्या दरीदृश्यते-साधीयसी अद्यापि योगिभिः - जनैः ।

हिमालयतो दक्षिणस्यां दिशि नवसहस्र—"९०००" योजनप्रमिते अर्थात् "१३०९०९ किलोमीटराः, १०० गजाः" किलोमीटरात्मके दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्ते समस्तेऽपि भारत-वर्षभूभागे विद्यमानाः- अमरीका - रूस - चीन- ब्रिटेन- जापान लङ्का- उत्तरीवियत-नाम - दक्षिणीवियतनाम - बङ्गलादेश - पाकिस्तान - ईरान - वर्तमानभारत- प्रभृतयः येऽकेपि मानवानां देशाः सन्ति, ते सर्वेऽपि भारतवर्षभूमौ- एव विराजन्ते - अद्यापि ।

अतएव - पूर्वप्रतिपादिते - प्राक्तने काले= १९७१२२१०७४संख्याप्रमितवर्ष-पूर्वं-नवधाविभक्तस्य भारतवर्षस्यैव-यस्मिन्-कस्मिन्-अपि विभागे-विद्यमाना: अमरीका-रूस - ब्रिटेन-जापान'' प्रभृतिपु देशेपु-समुत्पन्ना:- अन्तरिक्षयात्रापरायणा: आधुनिका:-वैज्ञानिका: पूर्वप्रसङ्गप्रतिपादितेपु - जम्बूद्वीपस्थेपु पर्वतशिखरेपु एव - गत्वा - तानेव-पर्वतशिखरभागान् - चन्द्र - मंगल - शुक्र - ग्रह लोकान् मन्यन्ते, इति तु तेषां वैज्ञानि-कानां भ्रान्तिः एव अस्तीति निष्पक्षया मध्यस्थया शोधधिया विवेचनीयम् विज्ञैः ।

चौदहलोक और वैकुण्ठलोक की स्थिति का विवेचन

सुन्दरी टीका— (१) इसी छठे अध्याय के दोसौ चऊअनवें पृष्ठ पर स्थित "चतुर्दशलोक - स्थितिवोधक - चित्र" को ध्यान से देखिये, चौदह लोकों की स्थिति का ज्ञान सरलता से हो जायगा, चित्र में तपोलोक से ऊपर- ब्रह्मलोक="सत्यलोक" स्थित है, इसी ब्रह्मलोक को "वैकुण्ठलोक" के नाम से भी पुकारा जाता है।

परलोक में स्थित "शिवपुरम्" नाम के दिव्यनगर का विवेचन

(२) ब्रह्मलोक से ऊपर एककरोड़ योजन ऊंचाई तक परलोक की स्थिति है, इसी परलोक में "शिवपुरम्" नाम का दिव्यनगर है, यह दिव्यनगर ब्रह्माण्ड के समस्त नगरों ये उत्तम है, इस नगर मेंपरमब्रह्म परमात्मा का निवास है। इस नगर के निवासी जन्म, मृत्यु, सन्ताप, थकान आदि से सदा मुक्त रहते हैं, इस दिव्यनगर की वरावरी करने वाला इस संसार में कोई भी दूसरा नगर नहीं है।

चौदहलोकों की वास्तविक स्थिति को जानने के लिये ऋषियों के पास क्या साधन होते हैं. इस का विवेचन

(३) चौदह लोकों, सप्तद्वीपों, सातसमुद्रों, जम्वूद्वीप के नौ खण्डों, भारतवर्ष के नौ उपद्वीपों सप्तद्वीपों के विशेष स्थानों पर स्थित पर्वतों, नदियों, नदों, झरनों, वृक्षों आदि के सम्बन्ध में ऋषियों ने अपने अपने निवन्धग्रन्थों में जो कुछ भी वर्णन किया है, वह सव योगवल से प्रत्यक्ष देख कर ही किया है।

(४) योगविद्या के वल से- बड़े, मध्य, ओर सूक्ष्म रूपों को धरण करके योगी ऋषि - ब्रह्माण्ड के किसी भी स्थान पर स्वेच्छा से जा आ सकता है।

(५) किसी भी एक स्थान पर बैठ कर योगी चराचरजगत् के प्रत्येक पदार्थ को ओर प्रत्येक द्रव्य को यथार्थ रूप में प्रत्यक्ष देख सकता है।

ब्रह्माण्ड के समस्तलोकों और ग्रहनक्षत्रादि को योग द्वारा जानने का प्रकार

(६)–(१) "भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्" (२) "चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्" श्रीपतञ्-जलिमुनिप्रणीत "पातञ्जल योगदर्शन" के इन दोनों सूत्रों का अभिप्राय यह है कि— प्रत्येक मनुष्यादि प्राणियों के शरीर में नाभिप्रदेश में= (टूंडी- प्रदेश में) महाशक्ति-युक्त - कुण्डलाकारसर्पस्वरूपसदृश "कुण्डलिनीचक्र" होता है।

इस कुण्डलिनीचक्र से दश शिरायें=(१० नाडियाँ)वक्षःस्थल और मस्तिष्क की ओर जाती हैं, दश शिरायें नाभि से नीचे की ओर तथा दो नाडियाँ दाईं कोख की ओर तथा दो नाडियाँ बाईं कोख की ओर जाती हैं। ये चौबीस नाडियाँ ही कुण्डलिनी चक्र के प्रधान मार्ग माने जाते हैं।

इन चौवीस नाडियों से ही शाखाओं और प्रशाखाओं के रूप में– सातसौसात =(७०७) नाडियां शरीर के भीतरी भाग से निकली हुई हैं, ये नाडियां ही शरीर की पोषक मानी जाती हैं।

शरीर के अन्दर इन नाड़ियों का जाल विछा हुआ है, खाद्य, पेय और चोष्य पदार्थों से जो भी रस शरीर के अन्दर वनते हैं, उन रसों को शरीर के प्रत्येक भागों में पहुँचाकर ये नाड़ियां ही इस पाञ्चभौतिक शरीर की रक्षा और पालन, पोषण करती हैं।

शरीर में स्थित- मुख्य दशनाडियों तथा दश वायुओं के नामों और उन के कार्यों का विवेचन

७— (१) इडा (२) पिङ्गला (३) सुषुम्ना (४) गान्धारी (५)हस्तिजिह्विका (६) पूषा (७) यशा (८) व्यूषा (६) कुहू (१०) शंखिनिका, ये दश प्रधान नाड़ियां= (शिरायें) हैं। (१) प्राण (२) अपान (३) समान (४)उदान (५) व्यान (६)नाग (७) कूर्म (८) ऋकच (६) देवदत्त (१०) धनञ्जय ये दश प्रधान वायु हैं।

(८) इडा नाड़ी में चन्द्रमा का सञ्चार होता है। पिङ्गला नाडी में सूर्य का सञ्चार होता है। हृदय प्रदेश से ऊपर वी ओर नाक के वायें नथौर तक इडा नाडी रहती है, और पिङ्गला नाडी नाक के सीधे नथौर तक शरीर में ओतप्रोत रहती है। इडा नाडी में "प्राणवायु" चलता है। पिङ्गला नाडी में "उदान वायु" चलता है। गान्धारी नाडी नाभि से नीचे की ओर जाती है, इस गान्धारी नाडी में "अपानवायु" वहता है। हस्तिजिह्विका नाडी नाभि प्रदेश में स्थित रहती है, इस नाडी में "समान वायु" समानरूप से सदा चलता रहता है। सुषुम्ना नाडी में "व्यानवायु"चलता है। नाग, कूर्म, ऋकच, देवदत्त धनञ्जय, ये पाँचों प्रकार के वायु क्रमशः–पूषा, यशा,व्यूषा, कुहू, शंखिनिका, इन पाँच नाडियों में सदा चलते रहते हैं।

(६) योगाभ्यास में कुशल योगीजन - नाक के नथौरों की वायु से तथा नाक के नथौरों में वहन करने वाले सूर्य और चन्द्रमा के द्वारा - चराचरजगत् की सम्पूर्ण स्थिति को योगविद्या से तुरन्त ही जान लेते हैं।

योगविद्या से भूत - भविष्य - वर्तमान का ज्ञान

सूर्यचन्द्रस्वराभ्यासं ये कुर्वन्ति सदा नराः।
अतीतानागतं ज्ञानं तेषां हस्तगतं सदा ॥१०॥

सुन्दरी टीका—योगशास्त्र और स्वरशास्त्र के उपर्युक्त श्लोक का निष्कर्ष यह है कि– मनुष्य के पाञ्चभौतिक शरीर में स्थित नाक के सीधे और बायें नथौरों में क्रमशः– सूर्य और चन्द्रमा का सञ्चार वायु के साथ निरन्तर होता रहता है, अभ्यास शील योगी व्यक्ति - सूर्य और चन्द्रस्वर के योगाभ्यास से- भूत, भविष्य और वर्तमान की समस्त घटनाओं का तथा त्रिकाल में स्थित व्रह्माण्ड के समस्तपदार्थों और समस्त व्यों का ज्ञान तुरन्त करने में समर्थ होता है।

चन्द्रादिलोकों पर नहीं पहुंच सकने के सम्बन्ध में लेखकों और वैज्ञानिकों के लिये चेतावनी

(१०)अमरीका, रूस, चीन, ब्रिटेन, जापान, लङ्का, उत्तरीवियतनाम, दक्षिणी वियतनाम, वङ्गलादेश, पाकिस्तान, ईरान, भारत आदि राष्ट्रों के हे वैज्ञानिको ! सिद्धान्तरूप में आप सब भारत के ही निवासी हैं, अन्तर केवल इतना ही है कि किन्हीं राष्ट्रों ने- एकअरव - सत्तानवैकरोड़ - वारहलाख - इक्कीसहजार , चौहत्तरवर्ष पहले =(१९७१२२१०७४ वर्ष पहले) भारत से अलग होकर अपना अलग राष्ट्र वना लिया है, और किन्हीं ने इस के वाद में भारत से अलग होकर अपना पृथक् राष्ट्र वना लिया है, मूलरूप में सभी राष्ट्र भारत के ही अङ्गों और प्रत्यङ्गों के रूप में स्थित हैं, चिरकालपूर्व भारत से अलग हुए इन राष्ट्रों के भी अनेक टुकड़े हो चुके हैं, इसी छठे अध्याय में वर्णित गणित सिद्धान्तों के इस विषय में जीते जागते अनेक प्रत्यक्ष प्रमाण दिये गये हैं ।

(११) अव से लगभग पाँचहजारवर्ष और दो हजारवर्ष पूर्व के- संस्कृतगणित ग्रन्थों में वर्णित-भूगोल और खगोल की स्थिति पर निष्पक्ष अनुसन्धान करने पर आप सव इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि– आप लोग– वायुयानों के द्वारा अन्तरिक्ष में जहां तहाँ भटकते हुए अव तक जम्बूद्वीप के पर्वतों पर ही पहूँच पाये हैं, अज्ञान के वशीभूत होकर उन पर्वतों को ही चन्द्रलोक समझ कर, उन पर्वतों की चट्टानों पर ही सीड़ियाँ लगा कर कई वार चट्टानों पर चढ़ने उतरने और वहाँ की मिट्टियों तथा पत्थरों आदि को लाने का प्रयत्न किये हैं, और वहाँ पर अपने राष्ट्र के यन्त्रों और झण्डाओं को स्थापित किये हैं, भूगोल से उन्तीस लाख किलोमीटर से भीअधिक ऊंचाई पर= (२९०९०९०कि०मी०। १०००ग० ऊँचाई पर) आकाश में स्थित पीयूषपिण्ड=(अमृत-पिण्डमय)चन्द्रमा पर जन्मजन्मान्तरों में भी आप वायुयानों द्वारा जिन्दे नहीं पहुंच पायेंगे।

"स्वर्ग" और 'नरक' तथा लङ्का, अयोध्या, मथुरा आदि की स्थिति के सम्बन्ध में और वर्तमान समय में प्रचलित सृष्टि के वीते हुए वर्षों को जानने के सम्बन्ध में कुछ लेखकों ने समाचारपत्रों के माध्यम से कुछ लेख प्रकाशित करके, जो भी प्रश्न उठाये हैं, उन सव के समाधान भी - इस छटे अध्याय में किये गये हैं, शान्त चित्त से- इस शोध ग्रन्थ को पढ़ने पर - ब्रह्माण्ड की स्थिति के सम्बन्ध में सभी प्रश्नों का उत्तर मिलजायगा ।

इति षष्ठाध्यायः

——:o-o:——

सप्तमाध्यायः

पुराण - स्वरशास्त्रोक्तार्षवर्षा - वायुविज्ञान - प्रतिपादनाध्यायः सप्तमः

विष्णुपुराणवायुभ्यां मत्स्याद्भागवतात्तथा ।
चरकात् - स्वरशास्त्राच्च विज्ञानं यन्मयार्जितम् ॥१॥
तद्वर्षावायुविज्ञानं चाध्यायेऽस्मिन् निरूप्यते ।
मया विज्ञवरा विज्ञाः! तत्पश्यन्तु निवेदये ॥२॥

पुष्करावर्तमेघानां निर्णयमत्र करोमि

जलधारादयः=चन्द्रपर्वतादयः - ये महागिरयः सन्ति, तेभ्यः - एव इन्द्रो जलं गृह्णाति - वृष्ट्यर्थम् - इति तु पूर्वमेव प्रतिपादितं मया, पर्वतानां शिखराण्येव तेषां पक्षाः भवन्ति, चन्द्रादिपर्वतेभ्यो जलग्रहणसमये तेषां चन्द्रादिपर्वतानां शिखरैः "पक्षैः" बाधा समुत्पन्ना जाता जलग्रहणे, अतः - अतिप्राक्तनसमये, - स्ववज्रेण - इन्द्रेण तेषां पर्वतानां शिखराणि अर्थात् पक्षाः - छिन्ना "खण्डिताः" चन्द्रादिपर्वतानां ते पक्षाः - बहुजलयुक्ता भवन्ति, विस्फाटितेभ्यः - तेभ्यः-पर्वतपक्षेभ्यः "शिखरेभ्यः" इन्द्रो यदा - जलानि गृह्णाति, तदा - जलग्रहणसमये - आकाशे विनिर्मितेषु मेघेषु-पुष्कराः - अर्थात् पर्याप्ताः - आवर्ताः - अर्थात् - जलभ्रमाः 'जलचक्राकाराः" समुत्पद्यन्ते, अतस्तेषां मेघानाम् "पुष्करावर्त" इति संज्ञाः स्वीकृताः - पूर्वाचार्यैः ।

पुष्करावर्ताः ते मेघाः - प्रलयकाले - जगद्विनाशाय - समुत्थितं प्रचण्डं-अग्निं प्रभूताभिः जलधाराभिः वृष्ट्या च प्रशान्तिं नयन्ति, तेषां मेघानामनेके वर्णाः-महाघोर-शब्दाश्च भवन्ति सृष्टिप्रलयकाले ।

अगस्त सन् १८९२ ईसवीयाब्दे - उत्तरप्रदेशीय - राजधानी - लखनऊ - नगरान्तर्गत "मुन्शीनवलकिशोर - सी. आई. ई. प्रेसतः प्रकाशिते - मत्स्यपुराणे "चतुर्विंशत्याधिकशततमे "१२४" अध्याये "पुष्करावर्त" मेघानां वर्णनम् - उपलभ्यते, तत्रत्यान् श्लोकान् - वैज्ञानिकविदुषां विनोदाय - अत्र विलिखामि......

उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि ।
भ्रमते भ्रमयन्नित्यं चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह ॥५॥
भ्रमन्तमनुसर्पन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ।
ध्रुवस्य मनसा यो वै भ्रमते ज्योतिषां गणः ॥६॥
वातानीकमयैं बंन्धैं ध्रुंवे बद्धः प्रसर्पति ।
तेषां भेदश्च योगश्च तथा कालस्य निश्चयः ॥७॥

अस्तोदयास्तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे ।
विषुवद्ग्रहवर्णश्च सर्वमेतद् ध्रुवेरितम् ॥८॥
जीमूता नाम ते मेघा यदेभ्यो जीवसम्भवः ।
द्वितीय आवहन् वायु र्मेघास्ते त्वभिसंश्रिताः ॥९॥
इतो योजनमात्रास्ते ह्यध्यर्धं विकृता अपि ।
वृष्टिसर्गस्तथा तेषां धाराधाराः प्रकीर्तिताः ॥१०॥
पुष्करावर्तका नाम ये मेघाः पक्षसम्भवाः ।
शक्रेण पक्षछिन्ना वै पर्वतानां महौजसा ॥११॥
कामगानां समृद्धानां भूतानां नाशमिच्छताम् ॥१२॥
पुष्करा नाम ते पक्षा वृहन्तस्तोयधारिणः ।
पुष्करावर्तका नाम कारणेनेह शब्दिताः ॥१३॥
नानारूपधराश्चैव महाघोरस्वराश्च ते ।
कल्पान्ते वृष्टिकर्तारः कल्पान्ताग्ने र्नियामकाः ॥१४॥
वायुवाधारा वहन्ते वै सामृताः कल्पसाधकाः ।
यान्यस्याण्डस्य भिन्नस्य प्राकृतान्यभवंस्तदा ॥१५॥
यस्मिन् ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वक्त्रः स्वयं प्रभुः ।
तान्येवाण्डकपालानि सर्वे मेघाः प्रकीर्तिताः ॥१६॥
तेषामप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः ।
तेषां श्रेष्ठश्च पर्जन्य श्चत्वार श्चैव दिग्गजाः ॥१७॥
गजानां पर्वतानां च मेघानां भोगिभिः सह ।
कुलमेकं द्विधाभूतं योनिरेका जलं स्मृतम् ॥१८॥
पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसंभवम् ।
ते वर्षन्ति तुषारं वै वृद्धा ह्यन्नविवृद्धये ॥१९॥

नीहारवृष्टिः

षष्ठः परिवहो नाम वायुस्तेषां परायणः ।
यो वै बिभर्ति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम् ॥२०॥
दिव्यामृतजलां पुण्यां त्रिपथामिति विश्रुताम् ।
तस्या विस्पन्दितं तोयं दिग्गजाः पृथुभिः करैः ॥२१॥
शीकरान् सम्प्रमुञ्चन्ति नीहारं इति संस्मृतः ।

हेमकूटहिमालयपर्वताभ्यां तुषारादि-वृष्टि र्भवतीति निर्णयमत्र करोमि

दक्षिणेन गिरि र्योऽसौ हेम कूट इति स्मृतः ॥२२॥
उदग्-हेमवतः शैलस्योत्तरे चैव दक्षिणे ।
पुण्ड्रं नाम समाख्यातं सम्यग्वृष्टिविवृद्धये ॥२३॥
तस्मिन् प्रवर्तते वर्षं तत्तुषारसमुद्भवम् ।
ततो हिमवतो वायु र्हिमं तत्र समुद्भवम् ॥२४॥

आनयत्मात्मवेगेन सिञ्चयानो महागिरिम् ।
हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम् ॥२५॥
इभास्ये च ततः पश्चादिदम्भूतविवृद्धये ।
वर्षद्वयं समाख्यातं सम्यग्वृष्टिविवृद्धये ॥२६॥

तुषारवृष्ट्यादिप्रतिपादकानामुक्तपद्यानामयं भावः— सुमेरुपर्वततः दक्षिणस्यां दिशि - हिमालय - पर्वताच्च - उत्तरस्यां दिशि "हेमकूट" नामकः पर्वतोऽस्ति । हिमालयपर्वताच्चदक्षिणस्यां दिशि "पुण्ड्र" नामकः - एकः- पर्वतस्तिष्ठति, स पुण्ड्रनामकः पर्वतः सम्यग्वृष्टिविवृद्धये अस्तीति ऋषिभिः निर्णयः कृतः, तस्मिन् पुण्ड्रे नामके पर्वते या- वृष्टिः - भवति, सा वृष्टिः तुषारेण समुत्पन्ना ज्ञेया ।

हेमवतः= हिमालयपर्वतस्य वायुः, तत्र समुद्भवं= हिमालयपर्वतोपरिभवम्, हिमम् =लोकप्रसिद्धं बर्फनामकम्, आत्मवेगेन= स्वकीयवेगन सह आनयति, तं महा- गिरिम्= हिमालयपर्वतम्, हिमालयोत्पन्नो वायुः- हिमवर्षया सिञ्चन् सन्- हिमवन्तम् -अतिक्रम्य - अर्थात् हिमालयपर्वतस्य - अतिक्रमणं कृत्वा पुण्ड्रकनाम्नि गिरौ तथा च पुण्ड्रकस्य दक्षिणस्यां दिशि अपि - यदा-कदा भारतवर्षे-तुषारवृष्टि करोति ।

आकाशगङ्गायाः - जलैः - इभास्ये - हस्तिनां शुण्डदण्डाग्रे यस्याः वृष्ठेः-समुद्- गमो भवति, सा वृष्टिः तथा तुषार-"ओस" वृष्टिश्चापि भूतिविवृद्धये=अन्नप्राणिनां- वृद्धये भवति । तुषारवृष्टिः - इभास्यवृष्टिश्च वृष्टिसंवर्धनाख्ये भवतः ।

सूर्यमेघै र्वृष्टि र्जायते- इति प्रतिपादनमत्र करोमि

मेघाश्चाप्यायनं चैव सर्वमेतत् प्रकीर्तितम् ।
सूर्य एव तु वृष्टीनां स्रष्टा समुपदिश्यते ॥२७॥

उक्तपद्यस्य - अयं भावः— सर्वविधवृष्टीनां मेघाः एव आधारा भवन्ति । सूर्यश्च वृष्ट्युत्पादको भवति ।

विशेष विचारः

१- "वाय्वाधारा वहन्ते वै" (२) तेषामप्यायनं धूमः" (३) "योनिरेका जलं स्मृतम्" "मेघाश्चाप्यायनं चैव" (५) "सूर्यएव तु वृष्टीनां स्रष्टा" ।

इत्युपर्युक्तवचनैः-वायुः, धूमः, जलम्, मेघाः, सूर्यः, अग्निः एते-पञ्चसंख्यकाः- एव - पदार्थाः परस्परं मिलित्वा - वृष्टिनिर्माणकारकाः भवन्ति ।

उक्तपञ्चपदार्थानां संहतिः=अर्थात् -"सन्निपातः" एव - वृष्ट्युत्पन्नकारको भवति । अतएव - वैज्ञानिकप्रवरैः - श्रीमहाकविकालिदासमहाभागैः - अपि - "मेघ- दूतनाम्नि"ग्रन्थे···

"धूम - ज्योतिः - सलित - मरुतां सन्निपातः क्व मेघः" ।

इति वचनेन मेघलक्षणं विधाय, धूमः - ज्योतिः - सलिलम् - वायुः- मेघः-एषां पञ्चपदार्थानां समूहः - एव वृष्ट्युत्पादकः - प्रतिपादितः ।

वर्षादौ ध्रुवनक्षत्रस्य प्राधान्यमस्तीति निर्णयमत्र करोमि

वर्षघर्महिमं रात्रिः सन्ध्ये चैव दिनं तथा ।
शुभाशुभफलानीह ध्रुवात् सर्वं प्रवर्तते ॥२८॥

ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चापः सूर्यो वै गृह्य तिष्ठति ।
सर्वभूतशरीरेषु त्वापो ह्यानिश्चिताश्च याः ॥२९॥
दह्यमानेषु तेष्वेह जङ्गमस्थावरेषु च ।
धूमभूतास्तु ता ह्यापो निष्क्रामन्तीह सर्वशः ॥३०॥
तेन चाभ्राणि जायन्ते स्थानमभ्रमयं स्मृतम् ।
तोजोभिः सर्वलोकेभ्य आदत्ते रश्मिभि र्जलम् ॥३१॥

समुद्रादिजलाशयेभ्यः सूर्यः जलग्रहणं करोतीति निर्णयमत्र करोमि

समुद्राद् वायुसंयोगाद् वहन्त्यापो गमस्तयः ।
ततस्त्वृतुवशात् काले परिवर्तन दिवाकरः ॥३२॥

वर्षाप्रकारनिर्णयमत्र करोमि

नियच्छत्याप अभ्रेभ्यः शुक्लाः शुक्लैस्तु रश्मिभिः ।
अभ्रस्था प्रपतन्त्यापो वायूनां समुदीरिताः ॥३३॥
ततो वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये ।
वायुभिः स्तनितं चैव विद्युतस्त्वग्निजाः स्मृताः ॥३४॥
मेहनाच्च मिहे र्धातो र्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च ।
न भ्रश्यन्ते ततो ह्याप स्तस्भादभ्रस्य वै स्थितिः ॥३५॥
स्रष्टाऽसौ वृष्टिसर्गस्य ध्रुवेणाधिष्ठितो रविः ।
ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुः वृष्टिं संहरते पुनः ॥३६॥
ग्रहान्निवृत्यासूर्यात्तु चरते धिष्ण्यमण्डलम् ।
चारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण समधिष्ठितम् ॥३७॥

वृष्टिप्रसङ्गेऽत्र सर्वेग्रहास्ताराश्च ध्रुवे निबद्धाः सन्तीत्यत्र लिखामि

अस्मिन् प्रसङ्गे मत्स्यपुराणे षड्विंशत्यधिशततमे="१२६" अध्याये ये श्लोकास्तान् - अत्र विलिखामि···

सर्वे ध्रुवे निवद्धास्ते निवद्धा वातरश्मिभिः ।
एते वै भ्राम्यमाणास्ते यथायोगं वहन्ति वै ॥३८॥
वायव्याभिरदृश्याभिः प्रवद्धा वातरश्मिभिः ।
परिभ्रमन्ति तद्वद्धाश्चन्द्रसूर्यग्रहा दिवि ॥३९॥
यावत्तमनुपर्येति ध्रुवं वै ज्योतिषां गणः ।
यथा नद्युदके नौस्तु चोदकेन सहोह्यते ॥४०॥
यावन्त्यश्चैव ताराः स्युस्तावन्तोऽस्य मरीचयः ।
सर्वा ध्रुवनिबद्धास्ता भ्रमन्त्यो भ्रामयन्ति च ॥४१॥
तैलपीडं यथा चक्रं भ्रमते भ्रामयन्ति वै ।
तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातवद्धानि सर्वशः ॥४२॥
अलातचक्रवद् यान्ति वातचक्रेरितानि तु ।
यस्मात् प्रवहते तानि प्रवहस्तेन स स्मृतः ॥४३॥

एवं ध्रुवे नियुक्तोऽसौ भ्रमते ज्योतिषांगणः ।
एष तारामयः प्रोक्तः शिशुभारो ध्रुवो दिवि ॥४४॥
एष तारामयः स्तम्भो नास्तमेति नवोदयम् ।
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह ॥४५॥
तन्मुखाभिमुखाः सर्वे चक्रभूता दिवि स्थिताः ।
ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चैव ध्रुवमेवप्रदक्षिणम् ॥४६॥
परियान्ति सुरश्रेष्ठं मेढीभूतं ध्रुवं दिवि ।
आग्नीध्र - काश्यपानां तु तेषां स परमो ध्रुवः ॥४७॥
एक एव भ्रमत्येष मेरोरन्तरमूर्धनि ।
ज्योतिषां चक्रमादाय चाकर्षन्तमधोमुखः ॥४८॥
मेरुमालोकयन्नेव प्रतियातिप्रदक्षिणम् ॥४९॥

"अलातमुल्मुकम्=उर्धदग्धकाष्ठमित्यर्थः" इत्यमरकोषोक्तेः......
अलातचक्रवत् =अर्धदग्धकाष्ठचक्रवत् - इत्यर्थः ।
उपर्युक्तानां श्लोकानामर्थस्तु स्पष्टः - एव अतोऽत्र व्याख्या न कृता मया ।

नव्यमतखण्डनम्

वस्तुतस्तु - सर्वे ग्रहाः- ध्रुवे-"ध्रुवप्रोतवृत्तेषु च" एव निबद्धाः सन्ति । नव्यास्तु-कदम्बप्रोतवृत्तेषु - कदम्बे च एव ग्रहनिबद्धत्वं मन्यन्ते. तेषां नव्यानां तु - दुराग्रहमात्रं स्वातन्त्र्यमात्रं चास्ति, अतो न समीचीनं तेषां मतम्, अविचारितरमणीयत्वात् उपेक्षणीयम् चास्ति ।

वायुपुराणोक्तं वर्षावायुविज्ञानमत्र लिखामि

खेमराज-श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वरम्" स्ट्रीट-छापाखाना बम्बईतः "मुम्बईतः" प्रकाशितवायुपुराणे - पूर्वार्द्धे एकोत्तरपञ्चाशत्-प्रमिते-अध्याये - वर्षावर्णनम् उपलभ्यते, तत्रत्यश्लोकान् अत्र विलिखामि......

"योऽसौ चतुर्दिशं पुच्छे शिशुमारे व्यवस्थितः ।
उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढी भूतो ध्रुवो दिवि ॥१॥

उक्तपद्यस्थं वक्ष्यमाणं वैशिष्ट्यमवधेयं विज्ञैः, उत्तानपादराज पुत्रः "ध्रुवः" अतिप्राचीनतमे काले भूमौ समुत्पन्नो बभूव, सः - ध्रुवः परमधार्मिकः ईश्वरात् प्राप्त-वरश्च - बभूव, ईश्वरकृपया ध्रुवलोकं प्राप्तवान् ध्रुवः, अतएव - उत्तानपादपुत्रध्रुव-चरित्रस्य - स्मरणार्थं - प्रचारार्थं च बहुषु पुराणग्रन्थेषु ध्रुवनक्षत्रस्य नामोच्चारणमपि उत्तानपादपुत्रशब्देनैव व्यवहृतमिति ज्ञेयम् ।

वस्तुतस्तु - उत्तानपादपुत्रो ध्रुवः - ध्रुवसंज्ञकनक्षत्राद् - भिन्नः अस्तीति नात्र सन्देहावसरः ।

स - हि भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह ।
भ्रमन्तमनुगच्छन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥२॥

ध्रुवस्य मनसा चासौ सपंते भगणः स्वयम् ।
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह ॥३॥
वातानीकमयैं र्बन्धै ध्रुवे बद्धानि तानि वै ।
तेषां योगश्च भेदश्च कालचारस्तथैव च ॥४॥
अस्तोदयौ तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे ।
विष्णुवद्ग्रहवर्णाश्च ध्रुवात् सर्वं प्रवर्तते ॥५॥
वर्षा धर्मो हिमं रात्रिः सन्ध्या चैव दिनं तथा ।
शुभाशुभं प्रजानां च ध्रुवात् सर्वं प्रवर्तते ॥६॥
ध्रुवेणाधिकृतांश्चैव सूर्योऽपावृत्य तिष्ठति ।
तदेष दीप्तकिरणः स कालाग्नि दिवाकरः ॥७॥

आकर्षणशक्तियुक्तः-सूर्यः भूगोलतो जलं गृह्णातीति वैज्ञानिक - विवेचनमत्र करोमि——

सूर्यः किरणजालेन वायुयुक्तेन सर्वशः ।
जगतो जलमादत्ते कृत्स्नस्य द्विजत्तमाः! ॥८॥

उक्तपद्ये - अयं विशेषः - उक्तः - वायुपुराणे-"वायुयुक्तेन किरणजालेन जलं-आदत्ते" उक्तकथनेन इदं सिद्ध्यति - यत् - वायौ अपि - आकर्षणशक्तेः सत्ता विद्यते, अत एव - वायुयुक्तेन स्वकिरणजालेन जलमादत्ते सूर्यः । गतिशीलत्वं तु वायौ - एव - विद्यते, नान्यत्र । अतः - वायुना विना - रविः - अपि स्वकिरणसमुदायेन जलमादातुं - असमर्थः भवतीति तत्वार्थः......

आदित्यपीतसूर्याग्नेः सोमं संक्रमते जलम् ।
नाडीभि र्वायुयुक्ताभि र्लोकाधानं प्रवर्तते ॥९॥
यत् सोमात् स्रवते सूर्य स्तदभ्रेष्वतिष्ठते ।
मेघा वायुनिघातेन विसृजन्ति जलं भुवि ॥१०॥
एवमुत्क्षिप्यते चैव पतते च पुन र्जलम् ।
नानाप्रकारतो जलं तदेव परिवर्तते ॥११॥
सन्धारणाय भूतानां मायैषा विश्वनिर्मिता ।
अनया मायया व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१२॥
विश्वेशो लोककृद्देवः सहस्रांशुः प्रजापतिः ।
धाता कृत्स्नस्य लोकस्य प्रभु र्विष्णु र्दिवाकरः ॥१३॥
सर्वलौकिकमम्भो वै यत्सोमान्नभसः स्रुतम् ।
सोमाधारं जगत्सर्वमेतत्तथ्यं प्रकीर्तितम् ॥१४॥
सर्वभूतशरीरेषु चापो ह्यनुगता श्च याः ।
तेषु सन्दह्यमानेषु जङ्गमस्थावरेषु च ॥१५॥
धूमभूतास्तु ता आपो निष्क्रामन्तीह सर्वशः ।
तेन चाभ्राणि जायन्ते स्थानमत्राम्भसां स्मृतम् ॥१६॥

अर्कतेजो हि भूतेभ्यो ह्यादत्ते रश्मिभि र्जलम् ॥१७॥

समुद्रादिजलाशयेभ्यो वृष्ट्युत्पत्तिप्रकारमत्र लिखामि

समुद्राद् वायुसंयोगाद् वहन्त्यापो गभस्तयः ।
यतस्त्वृतुवशात् काले परिवर्तो दिवाकरः ॥१८॥
यच्छत्यापो हि मेघेभ्यः शुक्ला - शुक्लगभस्तिभिः ।
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः ॥१९॥
सर्वभूतहितार्थाय वायुभिश्च समन्ततः ।
ततो वर्षति षन्मासान् सर्वभूतविवृद्धये ॥२०॥
वायव्यं स्तनितं चैव वैद्युतं चाग्निसम्भवम् ।
मेहनाच्च मिहे र्धातो र्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च ॥२१॥
न भ्रश्यन्ति यतस्वापस्तदभ्रं कवयो विदुः ।
मेघानां पुनरुत्पत्तिस्त्रिविधायोनिरुच्यते ॥२२॥
आग्नेया ब्रह्मजाश्चैव पक्षजाश्च पृथग्विधाः ।
त्रिधाघनाः समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि सम्भवम् ॥२३॥
आग्नेयास्त्वर्णजाः प्रोक्ता स्तेषां तस्मात् प्रवर्तनम् ।
शीतदुर्दिनवाता ये स्वगुणास्ते व्यवस्थिताः ॥२४॥
महिषाश्च वराहाश्च मत्तमातङ्गगामिनः ।
भूत्वा धरणिमभेत्य विचरन्ति रमन्ति च ॥२५॥
जीमूता नाम ते मेघा एतेभ्यो जीवसम्भवाः ।
विद्युद्गुणविहीना श्च जलधाराविलम्बिनः ॥२६॥
मूका घना महाकायाः प्रवाहस्य वशानुगाः ।
क्रोशमात्राच्च वर्षन्ति क्रोशार्द्धादपि वा पुनः ॥२७॥
पर्वताग्रनितम्बेषु वर्षन्ति च रमन्ति च ।
बलाका गर्भदा श्चैव बलाका गर्भधारिणः ॥२८॥
ब्रह्मजा नाम ते मेघा ब्रह्मनिःश्वाससम्भवाः ।
ते हि विद्युद्गुणोपेताः स्तनयन्ति स्वनप्रियाः ॥२९॥
तेषां शब्दप्रणादेन भूमिः स्वाङ्गरुहोद्गमा ।
राज्ञी राज्ञाभिषिक्तेव पुन र्यौवनमश्नुते ॥३०॥
तेष्वियं प्रतिमासक्ता भूतानां जीवितोद्भवा ।
जीमूता नाम ते मेघास्तेभ्यो जीवस्य सम्भवः ॥३१॥
द्वितीयं प्रवहं वायुं मेघास्ते तु समाश्रिताः ॥३२॥
एते योजनमात्राच्च सार्द्धार्द्धा निष्कृतादपि।
वृष्टिसर्गस्तथा तेषां धाराधाराः प्रकीर्तिताः ॥

पुष्करावर्तमेघलक्षणमत्र लिखामि

पुष्करावर्तका नाम ये मेघाः पक्षसम्भवाः ।
शक्रेण पक्षच्छिन्ना ये पर्वतानां महौजसाम् ॥३३॥

कामणानां प्रवृद्धानां भूतानां शिवमिच्छिता ॥३४॥
पुष्करानाम ते मेघा वृहन्तस्तांयमत्सराः ।
पुष्करावर्तकारतेन कारणेनेह शब्दिताः ॥३५॥
नानारूपधरा श्चैव महाघोरतरा श्च ते ।
कल्पान्तवृष्टिस्रष्टारः संवर्ताग्ने र्नियामकाः ॥३६॥
वर्षन्त्येते युगान्तेपु तृतीयास्ते प्रकीर्तिताः ।
अनेकरूपसंस्थानाः पूरयन्तो महीतलम् ॥३७॥
वायुं परं वहन्तः स्युराश्रिताः कल्पसाधकाः ॥३८॥
यान्यस्याण्डकपालस्य प्राकृतस्याभवंस्तदा ।
तस्माद् ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वक्त्रः स्वयं भुवः ॥३९॥
तान्येवाण्डकपालस्य सर्वमेधाः प्रकीर्तिताः ॥४०॥
तेषामाप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः ।
तेषां श्रेष्ठस्तु पर्जन्य श्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ॥४१॥
गजानां पर्वतानां च मेघानां योनिभिः सह ।
कुलमेकं पृथग्भूतं योनिरेका जलं स्मृतम् ॥४२॥
पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवाः ।
तुषारवृष्टिदास्ते वै सर्वसस्यविवृद्धये ॥४३॥
श्रेष्ठः परिवहो नाम तेषां वायुरपाश्रयः ।
योऽसौ विभर्ति सम्पूर्णां गङ्गामाकाशगोचराम् ॥४४॥
दिव्यामतिजलां पुण्यां विद्यां स्वर्गपथि स्थिताम् ॥४५॥
तस्या निष्पन्दजं तोयं दिग्गजाः पृथुभिः करैः ।
शीकरं संप्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः ॥४६॥
दक्षिणेन गिरि र्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः ।
उदग्हिमवतः शैलादुत्तरस्य च दक्षिणे ॥४७॥
पुण्ड्रं नाम समाख्यातं नगरं तत्र वै स्मृतम् ।
तस्मिन् निपतितं वर्षं यत्तुषारसमुद्भवम् ॥४८॥
ततस्तदावहो वायु र्हिमशैलात् समुद्भवहन् ।
आनयत्यात्मवेगेन सिञ्चयानो महागिरिम् ॥४९॥
हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम् ।
इहाभ्येति ततः पश्चादपारान्नविवृद्धये ॥५०॥
मेघाश्चाप्यायनं चैव सर्वमेतत् प्रकीर्तितम् ।
सूर्य एव तु वृष्टीनां स्रष्टा समुपदिश्यते ॥५१॥
ध्रुवेणावेष्टितः सूर्यस्ताभ्यां वृष्टिः प्रवर्तते ।
ध्रुवेणावेष्टितो वायुः वृष्टिं संहरते पुनः ॥५२॥

अत्रायं विशेषः

पूर्वंमत्स्यपुराणे - वर्षावायुविज्ञानविषये यदुक्तं तेन सह - उपर्युक्तं वायुपुराणोक्तमपि सङ्गच्छते - एव, उभयोः - मत्स्यवायु-पुराणयोः प्रायः एकवाक्यतैव सिद्ध्यति।

भारतदेशात् - उत्तरस्यां दिशि संस्थितात् - हिमालयपर्वतात् उत्तरस्यां दिशि हेमकूटपर्वतस्य स्थितिः - अस्तीति - वायुपुराणेऽपि मत्स्यपुराणवदेव वर्णनमुपलभ्यते।

हिमालयपर्वताच्च - दक्षिणस्यां दिशि भारतदेशे- एव "पुण्ड्रक" नामकः पर्वतः वायुपुराणेऽपि मत्स्यपुराणवदेव स्वीकृतः। तस्मिन् पुण्ड्रकपर्वते - पुण्ड्रकनामकं नगरमस्तीति - वैशिष्ट्यं समुक्तं वायुपुराणे।

वायुभिः - सह - सूर्यरश्मयो भूगोलात् समुद्रादिजलाशयेभ्यश्च जलमाददति, इत्येतत् यदस्ति वायुपुराणे, तत् सर्वमपि - मत्स्यपुराणकथनेन सह एकवाक्यतां सङ्गच्छते एव।

विष्णुपुराणे द्वितीये - अंशे - अष्टमे - अध्याये - वृष्टिविचारः कृतः तमत्र लिखामि

यस्मिन् प्रतिष्ठितो भास्वान् मेढीभूतः स्वयं ध्रुवः।
ध्रुवे च सर्वज्योतींषि ज्योतिष्वम्भोमुचो द्विज! ॥१०६॥
मेघेषु सङ्तावृष्टिः वृष्टेः सृष्टेश्च पोषणम्।
आप्यायनं च सर्वेषां देवादीनां महामुने! ॥१०७॥
ततश्चाज्याहुतिद्वारा पोषितास्ते हविर्भुजः।
वृष्टेः कारणतां यान्ति भूतानां स्थितये पुनः ॥१०८॥
एवमेतत्पदं विष्णोस्तृतीयममलात्मकम्।
आधारभूतलोकानां त्रयाणां वृष्टिकारणम् ॥१०९॥
ततः प्रभवति ब्रह्मन्! सर्वपापहरा सरित्।
गङ्गा देवाङ्गनाङ्गानामनुलेपनविञ्जरा ॥११०॥
वामपादाम्बुजाङ्गुष्ठ - नखस्रोतोविनिर्गताम्।
विष्णो विभर्ति यां भक्त्या शिरसाहर्निशं ध्रुवः ॥१११॥
ततः सप्तर्षयो यस्याः प्राणायामपरायणाः।
तिष्ठन्ति वीचिमालाभिरुह्यमानजटाजले ॥११२॥
वार्यौघैः सन्ततै र्यस्याः प्लावितं शशिमण्डलम्।
भूयोऽधिकतरां कान्ति वहत्येतदुतक्षये ॥११३॥
मेरुपृष्ठे पतत्युच्चै र्निष्क्रान्ता शशिमण्डलात्।
जगतः पावनार्थाय प्रयाति च चतुर्दिशम् ॥११४॥

सूर्यरश्मिभि-र्जलग्रहणव्यवस्थास्ति - विष्णुपुराणे - द्वितीये - अंशे - नवमे अध्याये तामत्र लिखामि

विवस्वानष्टभिर्मासैरादायापो रसात्मिकाः।
वर्षत्यम्बु ततश्चान्नमन्नादप्यखिलं जगत् ॥८॥

विवस्वानंशुभिस्तीक्ष्णैरादायजगतो जलम् ।
सोमं पुष्णात्यथेन्दुश्च वायुनाडीमयैं दिवि ॥९॥
नालैं र्विक्षिप्तेऽभ्रेषु धूमाग्न्यनिलमूर्तिषु ।
न भ्रश्यन्ति यतस्तेभ्यो जलान्यभ्राणि तान्यतः ॥१०॥
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः ।
कालजनितसंस्कारं मैत्रेयासाद्य निर्मलाः ॥११॥
सरित्समुद्रभौमास्तु तथापः प्राणिसम्भवाः ।
चतुष्प्रकारतश्चाप आदत्ते सविता मुने! ॥१२॥

आकाशगङ्गाजलवृष्टिव्यवस्था

आकाशगङ्गासलिलं तथादाय गभस्तिमान् ।
अनभ्रगतमेवोर्व्यां सद्यः क्षिपति रश्मिभिः ॥१३॥
तस्य संस्पर्श - निर्धूत - पापपङ्को द्विजोत्तम! ।
न याति नरकं मर्त्यो दिव्यं स्नानं हि तत्स्मृतम् ॥१४॥
दृष्टसूर्यं हि यद्वारि पतत्यभ्रैं विना दिवः ।
आकाशगङ्गासलिलं तद्गोभिः क्षिप्यते रवेः ॥१५॥

दिग्गजकृतां आकाशगङ्गाजलवृष्टिव्यवस्थामत्र लिखामि

कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु विषमेषु च यद्दिवः ।
दृष्टार्कपतितं ज्ञेयं तद्गाङ्गं दिग्गजोज्झितम् ॥१६॥

सूर्यकृताकाशगङ्गाजलवृष्टिव्यवस्थामत्र लिखामि

युग्मर्क्षेषु च यत्तोयं पतत्यर्कोज्झितं दिवः ।
तत्सूर्यरश्मिभिः सर्वं समादाय निरस्यते ॥१७॥

गङ्गाजलवृष्टिजले स्नानफलम्

उभयं पुण्यमत्यर्थं नृणां पापभयापहम् ।
आकाशगङ्गासलिलं दिव्यं स्नानं महामुने! ॥१८॥

मेघकृतवृष्टिफजमत्र लिखामि

यत्तुमेघैः समुत्सृष्टं वारि तत्प्राणिनां द्विज !।
पुष्णात्योषधयः सर्वा जीवनायामृतं हि तत् ॥१९॥
तेन वृद्धि परां नीतः सकलश्चौषधीगणः ।
साधकः फलपाकान्तः प्रजानां द्विज! जायते ॥२०॥
तेन यज्ञान् यथा प्रोक्तान् मानवाः शास्त्रचक्षुषः।
कुर्वन्त्यहरहस्तैश्च देवानाप्याययन्ति ते ॥२१॥
एवं यज्ञाश्च वेदाश्च वर्णाश्च वृष्टिपूर्वकाः ।
सर्वे देवनिकाया श्च सर्वे भूतगणाश्च ये ॥२२॥
वृष्ट्या धृतमिदं सर्वमन्नं निष्पाद्यते यथा ।
सापि निष्पाद्यते वृष्टिः सवित्रा मुनिसत्तम! ॥२३॥

आधारभूतः सवितु र्ध्रुवो मुनिवरोत्तम!।
ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपिनारायणात्मकः ।।२४।।
हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य संस्थितः ।
विभर्ता सर्वभूतानामादिभूतः सनातनः ।।२५।।

श्रीमद्वाल्मीकिरामायणे युद्धकाण्डे त्रयोविंशे सर्गे मांसशोणितवृष्टिरुक्ता-तामत्र लिखामि

निमित्तानि - निमित्ताज्ञो दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः ।
सौमित्रिं संपरिष्वज्य - इदं वचनमब्रवीत् ।।१।।
परिगृह्योदकं शीतं वनानि फलवन्ति च ।
बलौघं संविभज्येमं व्यूह्य तिष्ठेम लक्ष्मण! ।।२।।
लोकक्षयकरं भीमं भयं पश्याम्युपस्थितम् ।
प्रवर्हणं प्रवीराणामृक्षवानररक्षसाम् ।।३।।
वाताश्च कलुषा वान्ति कम्पते च वसुन्धरा ।
पर्वताग्राणि वेपन्ते पतन्ति च महीरुहाः ।।४।।
मेघाः क्रव्यादसंकाशाः पुरुषाः पुरुषस्वनाः ।
क्रूराः क्रूरं प्रवर्षन्ति मिश्रं शोणितविन्दुभिः ।।५।।
रक्तचन्दनसंकाशा सन्ध्या परमदारुणा ।
ज्वलतः प्रपतत्येतदादित्यादग्निमण्डलम् ।।६।।

उपर्युक्तप्रसंगे - पञ्चमे श्लोके - मांसशोणितवृष्टेः प्रतिपादनं कृतं भगवता - श्रीरामचन्द्रेण मर्यादापुरुषोत्तमेन, षष्ठे पद्ये तु - रक्तसन्ध्यायाः रक्तसूर्यस्य च लक्षण-मुक्त्वा तयोः अशुभत्वं सूचितम् - इति उपलभ्यते ।

आकाशतः - मांस - शोणितवर्षा कथं भवति, कथं, चाकाशे-मांसशोणि-तादीनां निर्माणं भवतीति कुशङ्कायाः समाधानार्थमपि मयात्र विवेचनं क्रियते

विज्ञानोद्गमभूतेषु वेदमन्त्रेषु उक्तप्रश्नस्य सुसमाधानं कृतमुपलभ्यते । "आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते, तासां यः ष्ठविस्थो धातुस्तन्मूत्रं भवति-"यो मध्यमः तल्लोहितम्, योऽणिष्ठः स प्राणः ।।" इत्युक्तेः - आकाशस्थेषु जलेषु "पृथिवी - जलं - तेजः-वायुः-आकाशम्" इति पञ्चतत्वानि सदैव तिष्ठन्ति, यथा - उदराकाशे पञ्चसु तत्वेषु-विद्य-मानेषु सत्सु मांसशोणितादिकं - यकृत्-प्लीहादिमयं शरीरावयवादिकं समुत्पद्यते, तथैव-आकाशस्थेषु - पंचसु - तत्वेषु सत्सु तत्राकाशे - मांसशोणितरक्तादिकं- पंचतत्वप्रकृत्यैव समुत्पद्यते ।

"केंचुआ"- गेसाः= सर्पाः "मत्स्याः" "मेंढकादयश्च" अनेके जीवाः- आकाश-स्थेषु जलेषु "तोयसंज्ञकेषु" पंचतत्वसंमिश्रणप्रकृत्यैव सुतरामेव समुत्पद्यन्ते, अतएव-अने-केषु - आर्षेषु - अनार्षेषु च ग्रन्थेषु- मांसशोणितवर्षणम्- मत्स्य - मेंढक- "दादुर" गेसाः ="सर्प" केंचुआ, प्रभृतिजीवानां वर्षणं भवतीति समुक्तम् - विज्ञैः - विज्ञाननिष्ठैः-

रक्तोत्पत्तिसिद्धान्तमनुसृत्यैव - श्रीकल्याणवर्मणा - स्वरचितसारावली- नाम्नि ग्रन्थे - लिखितम् ...

"इन्दुर्जलं कुजोऽग्नि र्जलमसृगथवाग्निरेव पित्तं स्यात्" ।

उक्तपद्यस्य- अर्थस्तु - सरलः - एव मेघगर्भधारणानन्तरं सार्धषट्सुमासेषु मेघगर्भस्य प्रसवो भवति - इति सिद्धान्तात्- सार्धषट्मासससमये एव आकाशस्थजलेषु जीवाः समुत्पद्यन्ते, ते एव जीवाः वर्षया सह भूगोले यदा - कदा यत्र - तत्र वर्षन्ति, इति विज्ञेयं विचारशीलैः वैज्ञानिकैः ।

हे वैज्ञानिकाः ! तटस्थया निष्पक्षया धिया विचारयन्तु भवन्तः , मानवादिप्राणिनां शरीरतः जले निष्कासिते सति - रक्ताल्पता समुत्पद्यते, रक्ताल्पतायाम् - सत्याम् इंजैक्शनादिभिः - यन्त्रैः - शरीरस्थासु नाडीषु गुलूकोसादिपदार्थैः सह - यदा- पर्याप्तजलस्य प्रवेशनक्रियां डाक्टराः कुर्वन्ति, तदा - रक्ताद्युत्पत्तिः - संजायते, एतत् सर्वं - प्रत्यक्षमेव दरीदृश्यते लोके अहर्निशम्, अतः - पंचतत्वयुक्तात् आकाशात् - मांसशोणितादिवर्षणं श्रुत्वा-निरर्थकां कुशङ्कां ये कुर्वन्ति, भ्रान्तास्ते न जानन्ति जीवविज्ञानविषये कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुंशक्तस्य जगन्नियन्तुः - ईश्वरस्य विचित्रां जीवविज्ञानयुक्तलीलाम् ।

श्रीशुकदेवेन मुनिना श्रीमद्भागवते पञ्चमस्कन्धे द्वाविंशे अध्याये वर्षावायुविज्ञानविषये यः उपदेशः कृतः तमुपदेशमत्र लिखामि

ततः उपरिष्टात् - उशना द्विलक्षयोजनतः उपलभ्यते, अर्कस्य पुरतः पश्चात् सह एव - अर्कस्य- शैघ्र्य मान्द्य=साम्याभिः - गतिभिः- अर्कवत्- चरति, लोकानां नित्यादानुकूलः एव प्रायेण "वर्षयन्" चारेण-अनुमीयते, सः - "वृष्टि"- विष्टम्भग्रहोपशमनः ॥१२गद्यभागः ॥

उशनसा बुधो व्याख्यतः, ततः - उपरिष्टात् - द्विलक्षयोजनतः- बुधः सोमसुतः- उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृत्, यदा- अर्कात् व्यतिरिच्येत, तदा - अतिवात- अभ्र-प्राय- अनावृष्टि - आदि भयं - आशंसते ।

जीवविज्ञानप्रतिपादके - "चरक" ग्रन्थे वायुविज्ञानमधिकृत्य जीवविज्ञान- पारङ्गतैः "चरक" मुनिमहोदयैः आकाशे जीवोत्पत्तिविषये या व्यवस्था प्रदत्ता, तामत्र विलिखामि

१. प्रकृतिभूतस्य खलु - अस्य लोके चरतः- कर्माणि - इमानि-भवन्ति, तद्यथा- धरणीधारणम्, ज्वलनोज्वालनम्, आदित्य - चन्द्र - नक्षत्र ग्रहगणानां - सन्तानगतिविधानम्, सृष्टिश्च मेघानाम्, अपां विसर्गः प्रवर्तनं श्रोतसाम् पुष्पफलानां च-अभिनिवर्तनम् उद्भेदनं चौद्भिदानाम्, ऋतूनां प्रविभागः, विभागो धातूनाम्, धातुमान-संस्थान- व्यक्तिः बीजाभिसंस्कारः, शस्याभिवर्धनं- अविक्लेदनशोषणे, अवैकारिक-विकारश्चेति ।

२. प्रकुपितस्य खलु- अस्य लोकेषु चरतः- कर्माणि- इमानि - भवन्ति, तद्यथा- शिखरिशिखरावमन्थनम्, उन्मथनं - अनेकहानाम्, उत्पीडनं सागराणाम्, उद्वर्तनं सरसाम्, प्रतिसरणं - आपगानाम्, नीहार "वर्फः" निर्ह्लाद - "मेघेन विना शब्दः" पांशु-

सिकता "वालूरेत:" मत्स्य "मछली" भेक "मेंढक:" उरग "सर्पः" क्षार "क्षारीयदार्थः" रुधिर "रक्तमांसादिकम्" अश्म "ओला" अशनि "व्रजपातादि:" विसर्गः, व्यापादनं षण्णां ऋतूनाम्, सस्यानामसङ्घातः, भूतानां च - उपसर्गः भावानां च- अभावकरणम्, चतुर्युगान्तकराणां मेघ - सूर्य - अनल - अनिलानां विसर्गः ।

वायुः, उदक, देशः, कालः- इति, तत्र वातं- एवं- विधं- अनारोग्यकरं विद्यात्, तद्यथा — ऋतुविषमम् अतिस्मितम्, अतिचलम्, अतिपरुषम्, अतिशीतलम्, अत्युष्णम्, अतिरूक्षम्, अत्यभिष्यन्दिनम्, अतिभैरवारावम् अतिप्रतिहतपरस्परगतिम्, अतिकुण्डलिनम्, असात्म्यगन्ध - वाष्प - सिकता-पांशु- धूमोपहतम्, इति ।

उदकं तु खलु - अत्यर्थं - विकृत - गन्ध - वर्ण - रस - स्पर्शम्, क्लेदबहुलम्, अपक्रान्त - जलचर- विहङ्गम्- उपक्षीण-जलेशयम्, अप्रीतिकरम्, अपगतगुणं विद्यात्।

उपर्युक्तानां गद्यभागानां - अर्थस्तु सरलः एव ।

कुपितस्तु शरीरे वायुः - शरीरं नानाविधैः विकारैः उपतपति, बलवर्णसुखायुषाम्,- उपघाताय भवति, मनो व्याहर्षयति, सर्वेन्द्रियाणि- उपहन्ति, विनिहन्ति गर्भान्, विकृतिं- आपादयति, अतिकालं वा धारयति भय - शोक - मोह - दैन्य- अतिप्रलापान्, जनयति, प्राणान् च - उपरुणद्धि ।

श्रीमन्नरपतिकविविरचिते - नरपतिजयचर्या- स्वरोदयग्रन्थे- श्रीयामलीयस्वरोदयोक्तं "आर्षवर्षा - वायुविज्ञानम्" अत्र विलिखामि, वर्षावायुविज्ञानबोधार्थं सप्तनाडीचित्रमत्रपूर्वं लिखामि

सप्तनाडीचित्रम्

पूर्वदिशा

(वामे: उत्तरदिशा — दक्षिणे: दक्षिणदिशा)

नीरनाडी	जलनाडी	अमृतनाडी	सौम्यनाडी	चण्डनाडी	वातनाडी	दहननाडी
१	२	३	मध्या ४	५	६	७
शुक्रः	बुधः	चन्द्रः	गुरुः	शनिः	सूर्यः	भौमः
पुनर्वसु	पुष्य	श्लेषा	आर्द्रा	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरः
उ०फा०	पू०फा०	मघा	हस्त	विशाखा	स्वाती	चित्रा
उ०षा०	अभिजित्	श्रवण	पू० षा०	अनुराधा	ज्येष्ठा	मूल
पू०भा०	शतभिषा	धनिष्ठा	उ० भा०	भरणी	अश्विनी	रेवती

पश्चिमदिशा

उपरिष्टसप्तनाडीचित्रनिर्माणप्रकारमाह नरपतिकविः—

अथातः संप्रवक्ष्यामि यच्चक्रं सप्तनाडिकम् ।
अस्य विज्ञानमात्रेण वृष्टिं जानन्ति साधकाः ॥१॥

कृत्तिकादिलिखेद्भानि साभिजितिक्रमेण च ।
सप्तनाडीव्यधस्तत्र कर्तव्यः पन्नगाकृतिः ।।२।।

"पन्नगाकृतिः" इति कथनं न- अत्र- भवननिर्माणावसरे - अहिचक्रवत्- विलोम-गणना - एव - स्वीकार्या ।

ताराचतुष्कवेधेन नाडिकैका प्रजायते ।
तासां नामान्यहं वक्ष्ये तथा चैव फलानि च ।।३।।
कृत्तिका च विशाखा च मैत्राख्यं भरणी तथा ।
ऊर्ध्वाद्या शनिनाडी स्याच्चण्डनाड्यभिधीयते ।।४।।
रोहिणी - स्वाति - ज्येष्ठाश्वि द्वितीया नाडिका मता ।
आदित्यप्रभवा नाडी वायुनाडी तथैव च ।।५।।
सौम्यं चित्रा तथा मूलं पौष्णमृक्षं चतुर्थकम् ।
तृतीयाङ्गारकानाडी दहनाख्या तथैव च ।।६।।
रौद्रं हस्तं तथा पूर्वाषाढ़ा भाद्रपदोत्तरा ।
चतुर्थी जीवनाडी स्यात् सौम्यनाडी प्रकीर्तिता ।।७।।
पुनर्वसूत्तराफाल्गुन्युत्तराषाढ़तारकाः ।
पूर्वाभाद्रा च शुक्राख्या पंचमी नीरनाडिका ।।८।।
पुष्यर्क्षफाल्गुनीपूर्वा चाभिजिच्छततारका ।
षष्ठी नाडी च विज्ञेया बुधस्य जलनाडिका ।।९।।
आश्लेषार्क्षं मघाकर्ण - धनिष्ठा च तथैव च ।
अमृताख्या हि विज्ञेया सप्तमी चन्द्रनाडिका ।।१०।।

अत्र सप्तनाडीषु - मध्यमोत्तरदक्षिणविभागव्यवस्थामभि लिखामि

मध्यमार्गेस्थिता सौम्या नाडीमध्याग्रपृष्ठतः ।
सौम्ययाम्यगतं ज्ञेयं नाडिकानां त्रिकं त्रिकम् ।।११।।

उक्तपद्यस्य - अयं भावः— पूर्वं याः सप्तनाड्याः समुक्ताः - तासु- या सौम्य "सौम्यसंज्ञका" नाडी - वर्तते, सा मध्ये स्थिता - अस्ति ।

१. चण्डनाडी, २. तावनाडी, ३. दहननाडी एतास्तिस्रः - नाड्यः क्रूरसंज्ञकाः सन्ति आसाम् नाडीनां त्रिकं - सौम्यनाडीतः दक्षिणस्यां दिशि तिष्ठति ।

१. नीरनाडी, २. जलनाडी, ३. अमृतनाडी, एताः- तिस्रः सौम्यनाड्यः शुभ-संज्ञकाः सन्ति, आसाम् - नाडीनां त्रिकञ्च, उत्तरस्यां - दिशि तिष्ठति । मध्यसंज्ञक-नाडी तु क्रूर - सौम्यनाडीनां मध्यप्रदेशे - एव तिष्ठति ।

दक्षिणदिशास्थाः क्रूराः- नाड्यः उत्तरादिशास्थाश्च, सौम्याः- नाड्यः- ग्रहरूप-फलप्रदाः भवन्ति । शुभग्रहैः शुभफलम्, अशुभैश्च- अशुभफलं प्रयच्छन्ति ।

क्रूरा याम्यगता नाड्यः सौम्याः सौम्यदिगाश्रिताः ।
मध्यनाडी च मध्यस्था ग्रहरूपफलप्रदाः ।।१२।।

एकनाडीगताब्जाद्या ग्रहाः क्रूराः शुभा यदि ।
ततो नाडीफलं वाच्यं शुभं वा यदि वाशुभम् ॥१३॥
ग्रहाः कुर्यु र्महावातं गताश्चण्डाख्यनाडिकाम् ।
वायुनाडीं गता वायं दहन्यामतिदाहकाः ॥१४॥
सौम्यनाडीं गता मध्या नीरस्था मेघवाहका ।
जलायां वृष्टिदा चान्द्री नाडिका चातिवृष्टिदा ॥१५॥
एकोऽप्येतत्फलं दत्ते स्वनाडीसंस्थितो ग्रहः ।
कुभूतः सर्वनाडीस्थो दत्ते नाड्युद्भवं फलम् ॥१६॥
कुभूतशब्देनात्र भौमस्य ग्रहणं ज्ञेयम् ।

आर्द्रानक्षत्रगते रवौ वृष्टिविचारः

प्राट्काले समायाते रौद्रधिष्ण्यगते रवौ ।
नाडीवेधसमायोगे जलयोगं वदाम्यहम् ॥१७॥
यत्र नाडीस्थितश्चन्द्रस्तत्रस्थाः खेचरा यदि ।
क्रूरसौम्यविमिश्राश्च तद्दिने वृष्टिरुत्तमा ॥१८॥
एकधिष्ण्ये समायोगो जायते यदि खेचरैः ।
तत्र काले महावृष्टिर्यावत्तस्यांशके शशी ॥१९॥
केवलैः सौम्यपापै र्वा ग्रहै विंद्धो यदा शशी ।
तदातितुच्छपानीयं दुर्दिनं तु भवेद् ध्रुवम् ॥२०॥
यस्य ग्रहस्य नाडीस्थश्चन्द्रमास्तद्ग्रहेण चेत् ।
दृष्टो युक्तः करोत्यम्भो यदि क्षीणो न जायते ॥२१॥

वर्षादिनसंख्याज्ञानप्रकारमत्र लिखामि

पीयूष - नाडिगश्चन्द्रस्तत्र खेटा शुभाशुभाः ।
द्वि - चतुः पञ्च - पानीयं दिनान्येकत्रि - सप्तकम् ॥२२॥
एवं जलाख्यनाडीस्थे चन्द्रे मिश्रग्रहान्विते ।
दिनार्धं दिवसं पञ्चदिनानि जायते जलम् ॥२३॥
नीरनाडीस्थिते चन्द्रे तत्रस्थैः पूर्ववद्ग्रहैः ।
यामं दिनार्धकं त्रीणि दिनानि जायते जलम् ॥२४॥
अमृतादित्रये यत्र भवन्ति सर्वखेचराः ।
तत्र वृष्टिः क्रमात् ज्ञेया धृत्यर्करसवासरैः ॥२५॥
सौम्यनाडीगताः सर्वे वृष्टिदास्ते दिनत्रयम् ।
शेषनाड्यां महावात - दुष्ट - वृष्टिप्रदा ग्रहाः ॥२६॥
निर्जला जलदा नाडी भवेद् योगे शुभाधिके ।
क्रूराधिकसमायोगे जलदाप्यम्बुदाहका ॥२७॥
याम्यनाडीस्थिताः क्रूरा अनावृष्टिप्रसूचकाः ।
शुभयुक्ता जलांशस्थास्तेऽतिवृष्टिप्रदा ग्रहाः ॥२८॥

एकनाडीसमारूढ़ौ चन्द्रमाधरणीसतौ ।
यदि तत्र भवेज्जीवस्तदेकार्णवता मही ॥२९॥
बुधशुक्रौ यदैकत्र गुरुणा च समन्वितौ ।
चन्द्रयोगे तदा काले जायते वृष्टिरुत्तमा ॥३०॥
जलयोगे समायाते यदा चन्द्रसितौ ग्रहौ ।
क्रूरैः दृष्टौ युतौ वापि तदा मेघोऽल्पवृष्टिदः ॥३१॥
उदयास्तमये मार्गे वक्रयुक्ते च संक्रमे ।
जलनाडिगताः खेटा- महावृष्टिप्रदायकाः ॥३२॥
व्रजति यदि कुजः पतङ्गमार्गे घट इव भिन्नतले जलं ददाति ।
यदि भवति च भास्करानुगामी प्रलयघनानपि शोषितुं समर्थः ॥३३॥

नक्षत्राणां - पुरुष - नपुंसक - स्त्री संज्ञा

आर्द्रादिदशनारीणां विशाखात्रिनपुंसके ।
मूलाच्चतुर्दश ज्ञेयं पुसां च फलमीदृशम् ॥३४॥
स्त्रीपुंसि वर्षते मेघो वायु र्नारीनपुंसके ।
स्त्रीयोगे बहुशीतं च पुंयोगे बहुदाहकम् ॥३५॥

उपर्युक्तपद्ययोः - अयं भावः — आर्द्रानक्षत्रतः - आरभ्य दशनक्षत्राणि - "आर्द्रा, नुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, स्त्रीसंज्ञकानि भवन्ति । विशाखानक्षत्रात्-आरभ्य त्रीणि नक्षत्राणि="विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा" नपुंसकसंज्ञानि भवन्ति । मूलनक्षत्रतः - आरभ्य - चतुर्दशनक्षत्राणि - "मूल-पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिराः, पुरुषसंज्ञकानि भवन्ति ।

यथा नक्षत्राणां - स्त्री - नपुंसक- पुरुषसंज्ञाः भवन्ति, तथैव ग्रहाणां मपि- स्त्री नपुंसक - पुरुष - संज्ञाः - भवन्ति । ···

"बुधसूर्यसुतौ नपुंसकाख्यौ चन्द्रसितौ युवती नराश्च शेषाः" ॥

उक्तश्लोकार्धस्य - अयं भावः—बुधशनैश्चरो नपुंसकग्रहौ स्तः, चाद्रशुक्रो स्त्री ग्रहौ स्तः, सूर्य - गुरु - भौमाः पुरुषग्रहाः सन्ति । यदा वर्षाकाले पूर्वोक्तेषु स्त्रीसंज्ञक-नक्षत्रेषु - पूर्वोक्ताः पुरुषसंज्ञकाः- ग्रहाः सञ्चरन्ति, तदा मेघो वृष्टिं करोति ।

स्त्रीसंज्ञकनक्षत्रेषु यदा नपुंसकग्रहाः सञ्चरन्ति, तदा-अतिवायुः प्रवहति । यदा स्त्रीसंज्ञकनक्षत्रेषु स्त्रीसंज्ञकग्रहाः विचरन्ति, तदा बहुशीतम् "शैत्याधिक्यम्" भवति ।

यदा पुरुष - संज्ञकेषु नक्षत्रेषु - पुरुषग्रहाः विचरन्ति, तदा बहुदाहकम् - अर्थात् दाहाधिक्यं घर्माधिक्यं च भवति ।

वर्षाकालातिरिक्ते समयेऽपि उपर्युक्तफलस्य - सम्भावनायां सुविचारः कार्यः- विचारशीलैः - विज्ञैः ।

आकाशस्थग्रहाणां रश्मयः आकाशस्थितनक्षत्रेषु यादृशीं स्थितिं-अनुसृत्य-निपतन्ति-

तादृश्या स्थित्या : एव - शुभाशुभफलं वृष्ट्यादिविषये भवतीति - अनुसन्धेयं-निष्पक्षया धिया विज्ञै वैज्ञानिकैः ।

जीवधारिणां प्राणिनां - विषयेऽपि अनयैव रीत्या - शुभाशुभफलस्य निर्णयो विधेयो विज्ञैः ।

शुक्रचन्द्राभ्यां वृष्टिविचारः

ऋक्षप्रवेशे यदि भार्गवश्च चन्द्रे त्रिकोणे यदि केन्द्रगे वा ।
जलाशयस्थे भृगुजेक्षिते युते सम्पूर्णमेघा जलदा भवन्ति ॥३६॥

उक्तपद्यस्य - अयं - भावः—ऋक्षशब्देन - अत्र - राशे ग्रंहणमस्ति । भार्गवः - शुक्रः यदि - एकरांशि विहाय द्वितीय राशिं गच्छति, तस्मात् - शुक्रग्रहात् - चन्द्रे ग्रहे त्रिकोणे - नवमपञ्चमभावे यदि वा केन्द्रे=शुक्रेण सह प्रथमभवने-एव अथवा शुक्रात् - चतुर्थे, सप्तमे, दशमे भावे सति सम्पूर्णमेघाः - जलदाः=वृष्टिकारकाः - भवन्ति, अथवा यदा जलाशयस्थः=जलचरराशिस्थः चन्द्रः शुक्रेण, - ईक्षितः - दृष्टः, अथवा संयुक्तश्च भवेच्चेतर्हि तदापि - सम्पूर्ण - मेघाः - जलदा - भवन्ति, सुवृष्टि भंवतीति सारांशः ।

मत्स्ये कुलीरे मकरे वहूदकं कुंभे वृषे चापजलार्धमात्रम् ।
अली च तौली जलसंज्ञमाहुः सिंहादिशेषा अजला भवन्ति ॥३७॥

अस्य पद्यस्य - अर्थस्तु स्पष्टा एव......

नक्षत्रेषु सूर्यचन्द्रयो विभागम् अत्र करोमि

कृतिकादित्रयं धिष्यमारुद्रात् पंचभिः सह ।
पूर्वाषाढ़ाचतुष्कं च पूर्वाभाद्रपदान्तिमे ॥३८॥
एतानि चन्द्रधिष्यानि - रवेः शेषाणि सन्ति हि ।
सूर्ये सूर्ये भवेद्वायु श्चन्द्रे चन्द्रे न वर्षति ॥३९॥
सूर्याचन्द्रमसो र्योगस्तदा वर्षति माधवः ॥४०॥

उक्तपद्ययोः - अयंभावः......कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिराः, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाशाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपदा, रेवती, एतानि पञ्चदशनक्षत्राणि चन्द्रस्य भवन्ति । शेषाणि द्वादश नक्षत्राणि-अश्विनी, भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, - शतभिषा, सूर्यस्य भवन्ति ।

सूर्यसंज्ञकनक्षत्रेषु यदा सूर्यश्चरति तदा वायुः प्रचलति, वृष्टि र्न भवति । चन्द्र-संज्ञकनक्षत्रेषु यदा चन्द्रः सञ्चारं करोति, तदा वर्षा न भवति, वायुसञ्चारस्तु अर्थतः - एव सिद्ध्यति ।

यदा सूर्यसंज्ञकनक्षत्रेषु चन्द्रश्चरति, चन्द्रसंज्ञकनक्षत्रेषु च सूर्यश्चरति, तदा - माधवः-ईश्वरः अथवा इन्द्रो वर्षति, सूर्यचन्द्रयोः योगे एव वर्षा भवति इति सारांशः ।

नक्षत्रेषु सञ्चरणशीलानां भौमादिग्रहाणां फलम् तत्रैवोक्तम् तदत्र विलिखामि

स्वातीजलोत्तरारौद्रे प्राजापत्युत्तरासु च ।
यावत्तिष्ठति भूमीज स्तावदेव न वर्षति ॥४१॥

इन्दौ शनौ च रौद्रस्थे भानौ वा भूमिनन्दने ।
शिशोरिवाग्रुपो वर्षा भूलोके भूतिदा भवेत् ॥४२॥

भूमिजः पुरतो गच्छेद् भानुभार्गवयोरपि ।
तुषारवृष्टिदस्तत्र पर्जन्यो नात्र संशयः ॥४३॥

जलराशिस्थिते चन्द्रे जामित्रे नवमे तथा ।
अर्कसूनुः कुजस्तत्र चातिवृष्टि विमुञ्चति ॥४४॥

कुजज्ञौ रविजश्चैव शुक्रस्याग्रे सदा यदि ।
कुर्वन्ति वायुर्दुर्भिक्षान् जलनाशकरास्तथा ॥४५॥

प्रावृषीन्दुसितौ सप्तराशिगौ शुभवीक्षितौ ।
मन्दत्रिकोणसप्तमौ चाथवा वृष्टिकारकौ ॥४६॥

सौम्ये विशेषण पतंगपुत्राद् - यदि त्रिकोणेऽपि च केन्द्रगे वा ।
जलाशयस्थे भृगुजेक्षिते वा मेघास्त्र संपूर्णजला भवन्ति ॥४७॥

गुरौ सिते च जामित्रे सितादर्काद् गुरावपि ।
जामित्रेऽर्काद् ग्रहाः सर्वे ह्यनावृष्टिप्रदास्तदा ।
वृष्टि शीतकरो भृगुपुत्रात् सप्तमराशिगनः शुभदृष्टः ।
सूर्यसुतान्नवपञ्चमगो वा सप्तमगश्च जलागमनाय ॥४९॥

पूर्वे स्वातीत्रये भानौ पश्चिमे पितृपंचके ।
अनावृष्टि विजानीयाद् विपरीते प्रवर्षणम् ॥५०॥

पुरोऽङ्गारे ह्यनावृष्टिः पुरः शुक्रप्रवर्षणम् ।
पुरो देवगुरौ वह्निः पुरः सौम्येऽथवानिलः ॥५१॥

सूर्यात् - अग्रस्थाः श्लोकस्थाः ग्रहाः - श्लोकस्थं फलं कुर्वन्तीति सारांशः ।

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे रौद्रादिदशतारकाः ।
सजला निर्जला ज्ञेया निर्जलाः सजलाः सदा ॥५२॥

उक्तश्लोकस्य अयं भावः...ज्येष्ठमासस्य शुक्ले पक्षे - आर्द्रानक्षत्रतः प्रारम्य आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी हस्त, चित्रा, स्वाती, एषु दशनक्षत्रेषु वृष्टिविषयको विचारः कार्यः ।

उक्तदशनक्षत्राणां मध्ये यस्मिन् कस्मिन्नपि - नक्षत्रे वर्षायां सत्यां वृष्टिकाले अनावृष्टिकरो योगो भवतीति ज्ञेयम् ।

उक्तदशनक्षत्रेषु - शुक्लपक्षे ज्येष्ठमासे - वर्षा न भवेत् - चेत् तर्हि वर्षाकाले सुवृष्टि र्भविष्यीतति ज्ञेयम् ।

भाविवर्षाकाले वृष्टिस्थितिविनिर्णयार्थं - ज्येष्ठशुक्ले पक्षे-आर्द्रादिदशनक्षत्राणाम्

सुपरीक्षणं विधाय - आगामिनिवर्षाया: - शुभाशुभफलम् अनुसन्धेयं विचारशीलै: "दैवज्ञैः" अन्यैश्च शोधकार्यपरायणैः विज्ञैः ।

शुक्रोदयास्ताभ्यां वृष्ट्यादिविचारमत्र करोमि

आदित्ये वहुवातं च भूमिजे शत्रुपीडनम् ।
बुधे चैव तु दुर्भिक्षं शनिवारे महद्भयम् ॥५३॥
सोमे शुक्रे गुरौ वापि सुभिक्षं जायते ध्रुवम् ।
उदये भार्गवे चैत्रे वज्राणां निर्दिशेत् भयम् ॥५४॥
वैशाखे च भवेन्नाशः सर्वनाशश्चतुष्पदाम् ।
ज्येष्ठे च सजला पृथ्वी चाषाढ़े जलशोषकः ॥५५॥
श्रावणे कम्पिता भूमि धनं धान्यं नमस्यके ।
आश्विने कार्तिके चैत्रे संहितश्च प्रवर्तते ॥५६॥
पौषे चैव तथा माघे राष्ट्रभंगं विनिर्दिशेत् ।
फाल्गुने चाल्पवृष्टिश्च ह्युदयास्ते भृगोः फलम् ॥५७॥

मेघद्वारादिनक्षत्राणां वृष्ट्यादिविषये फलम्

भरण्याद्यष्टधिष्ण्यानि मेघद्वारं प्रकीर्तितम् ।
प्रभूतं वर्षते मेघः सुभिक्षं जायते ध्रुवम् ॥५८॥
मेघादिपञ्चधिष्ण्यानि वायुद्वारं प्रकीर्तितम् ।
उन्नताश्चैव मेघाश्च न वर्षन्ति कदाचन ॥५९॥
स्वात्यादित्रीणिधिष्ण्यानि धर्मद्वारं प्रकीर्तितम् ।
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं वहुवृष्टिश्च जायते ॥६०॥
ज्येष्ठादिपञ्चधिष्ण्यानि रेतद्वारं प्रकीर्तितम् ।
उन्नता अल्पमेघाश्च स्वल्पसौख्यं च जायते ॥६१॥
धनिष्ठादिरसर्क्षाणि हेमद्वारं प्रकीर्तितम् ।
सुभिक्षं जायते सर्वं मेघा वर्षन्ति निश्चितम् ॥६२॥

उपर्युक्तपद्यानां अर्थस्तु स्पष्टः - एव, अतोऽत्र - व्याख्या मया न कृता । वर्षाकाले चोक्तफलस्य चरितार्थता सम्यक्तया भवति । वर्षातिरिक्ते समये तु-साधारणतया उक्तफलस्य सार्थकतानुसन्धेया विज्ञैः ।

षड्विधमेलक्षणमत्र लिखामि

अतिवातं च निर्वातमत्युष्णं शीतशीतलम् ।
अत्यभ्रं च निरभ्रं च षड्विधं मेघलक्षणम् ॥६३॥
यावत् काकोदरा मेघा यावत् सूर्यः शशीसमः ।
यावन्नैऋतिको वायुस्तावद्देवो न वर्षति ॥६४॥
चित्रास्वातिविशाखासु श्रावणेऽतिजलं यदा ।
तदा मेघाकृतिं कृत्वा नदीतीरे ह्युपासनम् ॥६५॥

पञ्चोत्तरषष्ठि "६५" प्रमितस्य - पद्यस्य - अयं भावः...

यदा श्रावणे मासे चित्रा - स्वाती - विशाखा - नक्षत्रेषु - अतिजलवृष्टिर्भवेच्चेत्तर्हि तदा मेघीमेघयोः- आकृति - काष्ठनिर्मिताम् जीर्णशीर्णवस्त्रैः - निर्मिनां वा कृत्वा नदीतीरे नद्यादीनाम् - अभावे - जलाशयान्तरतीरे - कूपादिजलाशयसन्निधौ वा तस्याः आकृतेः - उपासनां - संस्थापनं विधाय, साक्षत - सिन्दूरादिपूजनोपकरणेन पूजां विधाय, वृष्टिनिवृत्तये - भगवतः - ईश्वरस्य समाराधनं श्रद्धया विधेयम् । इयं परम्परा अद्यापि लोके प्रचलिता दरीदृश्यते सर्वत्र यत्र तत्र......

श्रावणे स्वातिपञ्चम्यामस्तं याति दिवाकरः ।
अवृष्टि र्यदि पर्जन्यो जलद श्चापि सर्वदा ॥६६॥
उदयं सोमजो याति चास्तं याति मृगोः मुतः ।
श्रावणे चैत्रमासे तु जलपातं हि दुर्लभम् ॥६७॥
उत्तरापूर्वसस्या च परसस्या च रेवती ।
अश्विनी सर्वसस्या च यदि वर्षति कृत्तिका ।
स्वाती - ज्येष्ठा - मघार्द्रा च रोहिण्युत्तरमेव च ।
भूमिजस्तत्र चायाति ह्यनावृष्टिकरः स्मृतः ॥७०॥

उक्तपद्यानां स्पष्टः एवार्थः अतएव मया अत्र अर्थः न कृतः ॥

सुन्दरी टीका—(१)— सातवें अध्याय का सारांशमात्र हिन्दी में लिखना उचित समझा गया है, सर्वसाधारण की समझ में आजाने के उद्देश्य से सरलतम संस्कृत भाषा में विस्तृत विवेचन इस अध्याय में किया जा चुका है ।

पुष्करावर्तमेघों के लक्षण

(२)— पुष्करावर्त नाम के मेघ प्रलयकालीन अग्नि को शमन करने के लिये केवल सृष्टिप्रलय काल में ही ईश्वरेच्छानुसार पर्याप्त मात्रा में जल वर्षाते हैं । इन मेघों में जल की मात्रा बहुत अधिक रहा करती है ।

नीहार और तुषार वर्षा के लक्षण और कारण

(३)— परिवह नामके छटे वायु द्वारा आकाश में आकर्षणशक्ति से टिकी हुई आकाश गङ्गा की तरङ्गों=(लहरों)के अमृतमय जल को दिव्यलोक के दिग्गज=(हाथी)अपनी सूंढों में भरकर - अपने स्वभावानुसार इधर - उधर जब कभी फेंकते हैं, तभी ओस के रूप में वह जल भूगोल पर गिरता है, जो कि– ओस और नीहार आदि नामों से देशभाषानुसार पुकारा जाता है ।

(४)— हिमालयपर्वत में हेमकूट नाम का पर्वत है, हिमालय के दक्षिण में ''पुण्ड्र''नाम का पर्वत है, इस पर्वत पर ''पुण्ड्र'' नाम का एक नगर भी बसा हुआ है, कभी कभी शीत ऋतु में उत्तरदिशा से दक्षिणदिशा की ओर चलता हुआ प्रबलवायु-अपने वेग के साथ - हेमकूट और हिमालय से बर्फ के खण्डों को ''पुण्ड्र'' नगर तक तथा इससे भी दक्षिण में स्थित भारतवर्ष की भूमि के कुछ भागों तक खींच लाता है, जो कि यहाँ पर ''तुषारपात और बर्फपात'' के नाम से पुकारा जाता है ।

दिव्यलोकस्थ दिग्गजों= (हाथियों) द्वारा दिव्यगङ्गा= (आकाशगङ्गा) का

जो जल भूगोल पर हल्की बौछार- वर्षा के रूप में मृत्युलोक में गिराया जाता है, उस जल से अन्न - फल - शाकादि और घासादि की सुसमृद्धि हुआ करती है।

वर्षा के पाँच प्रधान तत्वों का विवेचन

(५)— (१) वायु (२) धूम= धुआँ (३) जल (४) मेघ= बादल (५) सूर्य =अग्नि, ये पाँच तत्व ही वर्षा के होने में प्रधान कारण माने जाते हैं।

ध्रुवतारा की विशेषताओं का विवेचन

(६)— सूर्यचन्द्रादि सभी ग्रह ध्रुवप्रोतवृत्तों में नियन्त्रित होकर अपनी अपनी कक्षाओं के अनुसार आकाशमार्ग में परिभ्रमणशील हैं, समस्त ग्रहों को नियन्त्रित रूप में घुमाने में= (चलाने में) ध्रुवतारा ही मूल कारण है, क्यों कि सभी ग्रह "ध्रुवप्रोत वृत्तों" में निबद्ध होकर ही तो नियन्त्रित रूप में सदा चलते हैं।

नव्यमत का खण्डन

आकाश और खगोल की स्थिति को वास्तविकरूप में नहीं समझने वाले आधुनिक कुछ लोग- कदम्बतारप्रोतवृत्तों-में ग्रहों को घूमता हुआ मानने लगे हैं, आधुनिकों की यह भारी भूल है।

सूर्य द्वारा आकर्षण शक्ति से जल खींचने का विवेचन

(७)— आकर्षणशक्ति युक्त सूर्य अपनी तीक्ष्ण रश्मियों=(किरणों) के द्वारा भूगोल से और भूगोल पर स्थित समस्त जलाशयों से तथा पाञ्चभौतिक शरीरधारी सब जीवों से जल को आकाश की ओर खींचता है, आकाश की ओर खींचा हुआ जल आकर्षणशक्ति युक्त विशेष प्रबल वायु के द्वारा आकाश में रोकलिया जाता है, वही जल साढ़ें छैः मास का समय पूरा होने पर - हजार गुणित होकर भूगोल पर वर्षा के रूप में गिर जाता है।

आकाशगङ्गा के जल की वर्षा का विवेचन

(८)— सूर्य अपनी किरणों से आकाश गङ्गा के जल को खींच कर धूप निकलते हुए समय में भी कभी कभी वर्षा देता है, धूप निकलते हुए समय में अचानक हुई वर्षा के जल में स्नान करने से अनेक प्रकार के चर्मरोगों की निवृत्ति होती है, इस वर्षा के जल को काँच की शीशी आदि बर्तनों में अथवा ताम्रकलशों (तांबे के बर्तनों) में भरकर रखलिया जाय, तथा इस जल को किसी भी प्रकार के रोगी को दिव्यौषधि के रूप में पिलाया जाये तो इस जल का सेवन करने से अनेक प्रकार के रोग भी दूर हो जाते हैं।

मांस- शोणितत - रक्त - केंचुआ - मछली मेंढक - आदि जीवों सहित वर्षा के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विवेचन

(९)—"आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते, तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति, यो मध्यमः - तल्लोहितम्, योऽणिष्ठः स प्राणः"।

विज्ञान के उद्गमस्थान वेदों में-उपर्युक्त मन्त्र में जल के सम्बन्ध में अनेक प्रकार से- वैज्ञानिक विवेचन करते हुए लिखा है कि—पिया हुआ जल पेट में पहुँचनेपर तीन विभागों में विभक्त हो जाता है= (तीन भागों में बंट जाता है) (१) पिये हुए जल

के स्थूल भाग से मूत्र=(पेशाव) वनता हैं, जो कि - मूत्रेन्द्रिय द्वारा पेशाव के रूप में शरीर से वाहर फेंक दिया जाता है। (२) पिये हुए जल के स्थूल की अपेक्षा में कुछ वारीक भाग= (मध्यम भाग) से "लोहित"= शरीर के अन्दर वहने वाला "रक्त" वनता है। (३) पिये हुए जल का जो सवसे सूक्ष्म भाग होता है, उस सूक्ष्म भाग का "प्राण" वनता है, इसी प्राण भाग के वल पर ही प्राणीमात्र जीवित रहता है, इसी लिये वेद मन्त्रों में "आपो वै प्राणा:" यह लिखकर वैज्ञानिक घोपणा की है कि-संसार के प्राणिमात्र जल से ही जीवित रह सकते हैं, जल के विना जीवित रहना सर्वथा असम्भव ही है, रस, दूध आदि सभी पेय पदार्थ जल के ही रूपान्तर हैं।

आकाश और उदराकाश में जीवोत्पत्ति का विवेचन

(१०)—पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, ये पांचों तत्व जैसे आकाशमण्डल में सदा - विद्यमान रहते हैं, ठीक उसी प्रकार से उदराकाश में= (आकाशस्वरूपपेट में) भी ये पाँचों तत्व विद्यमान रहते हैं।

स्त्री, पुरुषादि जीवों के पेट में स्थित पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पांच तत्वों की सत्ता से जिस प्रकार प्रकृति के अनुसार– "यकृत, प्लीहा, आदि मांस-शोणित पिण्ड वन जाते हैं, और केंचुआ= गेसा, आदि अनेक प्रकार के कीड़े मकौड़े वन कर, प्रत्यक्षरूप में उदराकाश से वाहर की ओर मल के साथ निकलकर - दिखाई देते हैं, पेट के कृमियों के सम्वन्ध में यदि किन्हीं को विश्वास नहीं हो रहा हो तो वे किसी भी कृमिविशेषज्ञ डाक्टर या वैद्य के यहां जा कर पेट के कीड़ों के अनेक प्रकार के भेदों को अपनी आखों से प्रत्यक्ष रूप में भी देख सकते हैं।

(११) उदराकाश की तरह - आकाश मण्डल में भी - अनेक प्रकार के- कीड़े-केंचुआ= गेसा, मछली, मेंढक आदि अनेक प्रकार के जीवों की उत्पत्ति तथा मांस, शोणित आदि पिण्डों की उत्पत्ति पञ्चतत्वों की प्रकृति के अनुसार हो जाया करती हैं, केंचुआ= गेसा, मछली, मेंढक आदि तथा मांस - शोणितादि की वर्षा आकाश से भूगोल पर वरसने वाले जल के साथ जहाँ तहाँजव तव प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देती है।

यह सव कुछ प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देते हुए भी आधुनिक कुछ वैज्ञानिकों द्वारा आर्षोक्त - मांसशोणितवर्षा और - मछली, मेंढक, गेसा आदि जीवों से मिश्रित वर्षा के सम्वन्ध जो - आक्षेप किये जाते हैं, वे आक्षेप - भ्रामक और निराधार तथा विवेक हीनता के ही द्योतक हैं।

सातनाढियों से वर्षा का विवेचन

(१२)= इसी सातवें अध्याय के दो सौ चौहत्तरवें= (२७४वें) पृष्ठ पर स्थित "सप्तनाडी चित्र" में "नीरनाडी, जलनाडी, अमृतनाडी, सौम्यनाडी, चण्डनाड़ी वातनाडी, दहननाडी" इन सात प्रकार की नाड़ियों के नीचे क्रमश: - शुक्र, वुध,चन्द्र, गुरु, शनि, सूर्य, भौम, इन सात ग्रहों का तथा प्रत्येक नाडी के नीचे चार चार नक्षत्रों का उल्लेख किया गया हैं, इस सप्तनाडी चक्र से वर्षा और वायुविज्ञान तथा सूखा आदि के सम्वन्ध में ज्ञान करने का विस्तृत विवेचत शास्त्रों में किया गया है।

वर्षा- वायु और सूखा आदि की स्थिति को सप्तनाडीचित्र से जानने के प्रकारों का विवेचन

(१३)— प्रत्येक नाडी के नीचे चार नक्षत्रों का न्यास है, अत एव - सातों नाडियों के नीचे स्थित नक्षत्रों की कुल संख्या— ४×७=२८ है। उत्तराषाढ़ानक्षत्र के चतुर्थचरण और श्रवण नक्षत्र के प्रथमचरण-इन दोनों चरणों के मध्य में 'अभिजित्' नक्षत्र- आकाश में विद्यमान रहता है, किन्तु-इस "अभिजित्" नक्षत्र का फल- उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के चतुर्थचरण और श्रवण नक्षत्र के प्रथमचरण द्वारा भूगोल पर होता है, अत एव - विज्ञानवेत्ता अतीन्द्रिय ऋषियों ने "अभिजित्" नक्षत्र के- अस्तित्व को- उत्तराषाढ़ा के चतुर्थ चरण में और श्रवण के प्रथमचरण में समाविष्ट करके, राशि निर्माण आदि कार्यों में - सत्ताईस नक्षत्रों को ही स्वीकार कर लिया है। निष्फल होने के कारण "अभिजित्" का परित्याग कर दिया है। कुछ चक्रों और चित्रों के निर्माण में 'अभिजित्' का प्रयोग नाममात्र के लिये किया है।

(१४)— जिस किसी महीना अथवा पक्ष में जब यह जानने की इच्छा हो कि— इस महीने या पक्ष में वर्षा - वायु और सूखा आदि की स्थिति कैसी रहेगी, तब अपने पास के किसी प्रामाणिक पञ्चाङ्ग= (पत्रा) में- अभिलषित मास या पक्ष में यह देखें कि कौन कौन ग्रह किन किन नक्षत्रों में सञ्चार= (भ्रमण) कर रहे हैं। जिन नक्षत्रों पर ग्रहों का भ्रमण = (सञ्चार) हो रहा है, वे नक्षत्र पूर्वोक्त सातों नाडियों में से जिस किसी नाडी के नीचे हों, उसी नाडी के नीचे उसी नक्षत्र पर उस समय सञ्चरणशील ग्रह को भी स्थापित करदें. शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के ग्रहों को अपने अपने सञ्चारनक्षत्र पर स्थापित करने के बाद - शुभाशुभ फल को विचार-पूर्वक कहें।

(१५)— पूर्वोक्त प्रकार से नक्षत्रों पर स्थापित किये गये ग्रह यदि "चण्ड-नाडी" के नीचे स्थापित हों तो महावात=(भयङ्कर वायु=आंधी आदि) से प्रजा में भय होता है, "वायु नाडी" के नीचे हों तो वायु के उपद्रवों से प्रजा को भय होता है, "दहन नाडी" के नीचे हों तो भयङ्कर गर्मी= (लू, गरमवायु, अग्निकाण्ड आदि) से प्रजा को भय होता है, सौम्यनाडी के नीचे ग्रह स्थित हों तो मध्यम फल देते हैं, नीर-नाडी के नीचे ग्रह हों तो: आकाश में बादल चलते हुए दिखाई देते हैं, बरसते नहीं है। जलनाडी के नीचे ग्रह स्थित हों तो वर्षा हुआ करती है, अमृतनाडी के नीचे ग्रह स्थित हों तो अतिवृष्टि= •(भयङ्करवर्षा) होती है। सप्तनाड़ी चित्र में अपनी नाडी के नीचे दिखाया गया ग्रह यदि अभीष्ट मास और पक्ष में भी अपनी नाडी के नीचे अवस्थित हो तो अकेला ही पूर्वोक्त फल को देने में समर्थ हो जाता है। मंगल सातों नाडियों में से किसी भी नाडी के शुभाशुभ फल को देने में समर्थ हो जाता है।

आर्द्रानक्षत्रस्थ सूर्य से वर्षा का विवेचन

(१६)—वर्षा ऋतु में - आर्द्रा नक्षत्र - पर सूर्य चल रहा हो और चन्द्रमा ग्रह

जिस नाडी के नीचे हो उस नाडी के नीचे क्रूर अथवा सौम्य=(अच्छे या बुरे) अथवा दोनों ही प्रकार के ग्रह स्थित हों तो उस दिन उत्तम वर्षा होगी यह घोषणा करनी चाहिये । एक ही नक्षत्र पर यदि कई ग्रह स्थित हों और चन्द्रमा भी उस नक्षत्र के ही किसी चरण पर हो तो - महावृष्टिकारक योग होता है, केवल अच्छे अथवा बुरे ग्रह चन्द्रमा का वेध करते हों तो बहुत ही थोड़ा पानी बरसता है, और दुर्दिन=(शीतादि से बुरा दिन)हो जाता है: जिस ग्रह की नाडी के नीचे पूर्ण और प्रबल चन्द्रमा स्थित हो, वह ग्रह भी यदि चन्द्रमा को देखता हो अथवा चन्द्रमा के साथ स्थित हो तो अवश्य ही जल बरसा करता है ।

निरन्तरवर्षा की दिनसंख्या को जानने का प्रकार

(१७)—पूर्वोक्त "पीयूष नाडी" के नीचे चन्द्रमा स्थित हो, शुभ और अशुभ ग्रह भी पीयूष नाडी के नीचे स्थित हों - तो २, ४, ५ दिन तक अथवा १, ३, ७ दिन तक निरन्तर वर्षा होती है ।इसी प्रकार - जलनाडी के नीचे स्थित चन्द्रमा के साथ - शुभ और अशुभ ग्रह स्थित हों तो - आधे दिन, एक दिन अथवा पांच दिन तक निरन्तर वर्षा होती रहती है । नीरनाडी में स्थित चन्द्रमा के साथ शुभ और अशुभ ग्रह हों तो - एक प्रहर अथवा आधे दिन अथवा तीन दिन तक निरन्तर वर्षा होती है ।

(१८)—अमृत नाडी में सब ग्रहों के होने पर अठारह दिन=(१८ दिन), सौम्यनाडी में सब ग्रह होने पर बारह दिन=(१२ दिन), नीरनाडी में सब ग्रह होने पर छैः दिन=(६ दिन) तक निरन्तर वर्षा हुआ करती है । सौम्य नाडी में सब ग्रह होने पर कभी-कभी बारह दिन तक वर्षा न होकर केवल तीन दिन तक ही निरन्तर वर्षा होती है । चण्ड, वात और दहन नाडियों में सब ग्रह होने पर - महावात= भयङ्करवायु और भयङ्कर वर्षा निरन्तर कई दिन तक हुआ करती है ।

(१९)—अधिक शुभ ग्रहों के योग से निर्जला नाडी भी जलदा हो जाती है। अधिक पाप ग्रहों के योग से जलदा नाडी भी निर्जला हो जाती है ।

(२०)—दक्षिण दिशा में स्थित—चण्ड, वात, दहन - नाडियों में स्थित अशुभ ग्रह - भयङ्कर अनावृष्टि के सूचक होते हैं, ये अशुभ ग्रह, यदि शुभ ग्रहों से युक्त हों अथवा जलचर राशियों के नवमांशों में स्थित हों तो अतिवृष्टिकारक होते हैं

(२१)—चन्द्रमा और मंगल यदि एक नाडी में वृहस्पति के साथ में स्थित हों तो भयङ्कर वर्षा से समस्त भूमि पर जल ही जल दिखायी देता है ।

(२२)—बुध और शुक्र दोनों किसी भी एक राशि पर वृहस्पति के साथ में बैठे हों अथवा वृहस्पति से देखे जा रहे हों, तो बुध और शुक्र के साथ जब चन्द्रमा का संयोग होता है, तब सुन्दर वर्षा होती है । वर्षा देने वाले योग में यदि शुक्र और चन्द्र अशुभ ग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हों तो बहुत कम वर्षा हुआ करती है ।

(२३)—मंगलादि ग्रहों के उदय और अस्त काल में तथा वक्री होने के समय

में अथवा एक राशि से दूसरी राशि पर सङ्क्रमण के समय में जलनाडी में स्थित होने के समय में प्राय: अतिवृष्टि हुआ ही करती है।

नक्षत्रों की पुरुष, नपुंसक, स्त्री संज्ञा का विवेचन

(२४)—आर्द्रा से दश नक्षत्र=(आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती) स्त्री संज्ञक होते हैं, विशाखा से तीन नक्षत्र=(विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा) नपुंसकसंज्ञक होते हैं, मूलनक्षत्र से चौदह नक्षत्र =(मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, भरणी. कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा) पुरुषसंज्ञक होते हैं।

ग्रहों की पुरुष, नपुंसक, स्त्री संज्ञा का विवेचन

बुध और शनैश्चर नपुंसक ग्रह होते हैं, चन्द्रमा और शुक्र स्त्री ग्रह होते हैं। सूर्य, गुरु, मंगल ये तीनों पुरुष ग्रह होते हैं।

२५—स्त्री संज्ञक नक्षत्रों पर जब पुरुष संज्ञक ग्रह सञ्चार करते हैं, तब वर्षा हुआ करती है, स्त्री संज्ञक नक्षत्रों पर जब नपुंसक ग्रह सञ्चार करते हैं, तब वर्षा न होकर वायुमात्र चला करता है। स्त्री संज्ञक नक्षत्रों पर जब स्त्री संज्ञक ग्रहों का सञ्चार होता है, तब अधिक शीत पड़ता है, पुरुषसंज्ञक नक्षत्रों पर जब पुरुषसंज्ञक ग्रह सञ्चार करते हैं, तब भूगोल के भागों पर अधिक गर्मी दाह=लूऐं आदि पड़ा करतीं हैं।

सूर्य और चन्द्रमा के नक्षत्रों के विभाग से वर्षा का विवेचन

२६—कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती ये पन्द्रह नक्षत्र चन्द्रमा के होते हैं। अश्विनी, भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, शतभिषा, ये बारह नक्षत्र सूर्य के होते हैं।

सूर्यसंज्ञक नक्षत्रों पर जब सूर्य सञ्चार करता है, तब वर्षा न होकर वायु वेग से चलता है। चन्द्रसंज्ञक नक्षत्रों पर जब चन्द्रसञ्चार होता है, तब भी वर्षा न होकर केवल वायुवेग से चलता है, जब सूर्य के नक्षत्रों पर चन्द्रमा और चन्द्रमा के नक्षत्रों पर सूर्य सञ्चार करता है, तब सुनिश्चित रूप से वर्षा हुआ करती है।

ज्येष्ठशुक्लपक्ष में अनावृष्टिकारक और वृष्टिकारक योग का विवेचन

२७—ज्येष्ठ शुक्लपक्ष में-आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, इन दश नक्षत्रों में से किसी भी नक्षत्र पर चन्द्रमा होने पर यदि वर्षा हो जाय तो—वर्षा ऋतु में वर्षा कमी के साथ होगी, यह समझ लेना चाहिये, यदि इन दश नक्षत्रों में वर्षा नहीं होवे तो वर्षा ऋतु में अच्छी वर्षा होगी, यह समझ लेना चाहिये।

नक्षत्रों की मेघद्वार आदि संज्ञाओं का विवेचन

(२८)—भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा. आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा

ये आठ नक्षत्र "मेघ द्वार" के होते हैं, इन में मेघ अच्छी वर्षा किया करते हैं, तथा इस वर्षा से सुभिक्ष होता है।

मघा, पुर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा ये पांच नक्षत्र "वायुद्वार" के होते हैं, इन नक्षत्रों में ऊंचे ऊंचे वादल आकाश में दिखाई देते हैं, किन्तु वरसते नहीं हैं। स्वाती, अनुराधा, विशाखा, ये तीन नक्षत्र "धर्मद्वार" के होते हैं, इन में सुभिक्ष और सुवृष्टि हुआ करती है।

ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा उत्तराषाढ़ा, श्रवण, ये पांच नक्षत्र "रेतद्वार" के होते हैं, इन नक्षत्रों में आकाश में ऊंचे ऊंचे वादल दृष्टिगोचर होते हैं, वर्षा कम होती है। घनिष्ठा, षतभिषा, पूर्वाभाद्रप्रदा उत्तराभाद्रप्रदा, रेवती, ये छै: नक्षत्र "हेमद्वार" के होते हैं, इन में सुभिक्ष और सुवृष्टि आदि हुआ करते हैं।

मेघों के छै:भेदों के लक्षणों का विवेचन

(२९)— (१) अतिवायु, (२) निर्वात - (३) अत्युष्ण, (४) शीतल, (५) अत्यभ्र, (६) निरभ्र मेघों के ये छै: भेद होते हैं। आकाश में जव तक वादलों का आकार काक = (कौआ और चील) के समान दिखाई दे, तथा सूर्य गर्मी से रहित होकर चन्द्रमा के समान मृदु दिखाई दे, और जव तक निऋति कोंण= (पश्चिम और दक्षिण के बीच का कोंण) का वायु चलता है, तव तक इन्द्र वर्षा को नहीं करता है।

मेघ और मेघी की आकृति का विवेचन

३०—श्रावण के महीना में—चित्रा, स्वाती, विशाखा, इन नक्षत्रों में कृषि आदि को नुकसान पहुंचाने वाली अधिक वर्षा होने पर—"मेघ-मेघी की प्रतिमा को काष्ठादि (ल ड़ी आदि) की वनाकर अथवा वढ़ई से वनवाकर, रोली तथा सिन्दूर आदि से उस प्रतिमा का श्रृङ्गार करके - वस्त्रादि को पहनाकर, वैदिक और पौराणिक मन्त्रों से यथाशक्ति पूजन करके किसी जलाशय=(नदी, पोखर, कुआं आदि) के पास उसे स्थापित कर दें, वर्षा वन्द होने के लिये अपने ज्ञान और सामर्थ्य के अनुसार भगवान् से प्रार्थनायें करें, इस प्रकार का विधान शास्त्रों में वताया है, यह प्रथा इस समय में लोक में भी प्रचलित है।

ग्रहों के उदयास्त से वर्षावायु का विवेचन

३१—श्रावणमास में बुध का उदय और शुक्र का अस्त हो तो वर्षा का होना उत्तम होता है। श्रावण मास में यदि कृत्तिका नक्षत्र में वर्षा हो तो—उत्तराफाल्गुनी, उत्तरापाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, पर हुई वर्षा से पूर्वधान्य की वृद्धि और रेवती पर हुई वर्षा से परधान्य की वृद्धि होती है। अश्विनी नक्षत्र पर हुई वर्षा से सभी धान्यों की वृद्धि और सुरक्षा होती है। स्वाती, ज्येष्ठा, मघा, आर्द्रा, रोहिणी, और तीनों उत्तरा, इन नक्षत्रों पर मंगल का सञ्चार होने पर "अनावृष्टि हुआ करती है।

इति सप्तमाध्याय:

—:०:—

अष्टमाध्यायः

आर्षसंहितोक्त - वृष्टिगर्भधारण - वृष्टिगर्भप्रसव - वृष्टिगर्भपातादि-विज्ञान - विवेचनाध्यायः अष्टमः

स्वनिर्मितेषु - पद्येषु - अध्यायारम्भ - प्रयोजनम्

नारदाद्यै र्वसिष्ठाद्यै गंर्गकाश्यपकश्यपैः ।
देवलसिद्धसेनाद्यै र्मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ॥१॥

वायुवर्षादिसम्बन्धे विज्ञानं यदुदीरितम् ।
वराहमिहिराचार्यैश्चार्षमुक्तं तथैव तु ॥२॥

तद्वर्षावायुविज्ञानं निबन्धेऽत्र मयोच्यते ।
सर्वराष्ट्र - समृद्ध्यर्थं तथान्नादिसमृद्धये ॥३॥

श्रीनारदमुनि - संहितोक्तं वर्षावायुविज्ञानमत्रलिखामि

नारदसंहितायां वर्षेशादिक्रमेणोक्तं वृष्टिज्ञानप्रकारमत्र - उपस्थापयामि......

चैत्राद्येष्वपि मासेषु मेषाद्याः संक्रमाः क्रमात् ।
चैत्रादितिथिवारेशस्तस्याब्दस्य त्वधीश्वरः ॥१॥

मेषसंक्रान्तिवारेशो भवेत् सोऽपि च भूपतिः ।
कर्कटस्य तु वारेशो सस्येशस्तत्फलं ततः ॥२॥

तुलासंक्रान्तिवारेशो रसानामधिपः स्मृतः ।
मकराधिपतिः साक्षाद् रसस्याधिपतिः क्रमात् ॥३॥

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा दिवाकरः ।
तस्मिन्नब्दे नृपक्रोधः स्वल्पसस्यार्धवृष्टिकृत् ॥४॥

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा निशाकरः ।
तस्मिन्नब्दे करोति क्ष्मां पूर्णां शालिफलेक्षुभिः ॥५॥

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा महीसुतः ।
तस्मिन्नब्दे चौरवह्नि-वृष्टिक्षुद्भयकृत् सदा ॥३॥

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा शशाङ्कजः ।
अतिवायुं स्वल्पवृष्टिं करोति नृपविग्रहम् ॥७॥

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा सुरार्चितः ।
करोत्यनूत्तमां धात्रीं यज्ञधान्यार्घवृष्टिभिः ॥८॥

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा भृगोः सुतः ।
करोति सर्वां सम्पूर्णां धात्रीं शालिफलेक्षुभिः ॥९॥

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वार्कनन्दनः।
अन्तकश्चौरवह्न्यम्बुधान्य - भूपभयप्रदः ॥१०॥
ज्ञात्वा वलावलं सम्यग् वदेत् फलनिरूपणम् ॥११॥
भास्करस्ताम्रसंकाशः शिशिरे कपिलोऽपि वा।
हेमन्ते प्रावृषि ग्रीष्मे रोगाणां वृष्टिभीतिकृत् ॥१२॥
मयूरपत्रसंकाशो द्वादशाब्दं न वर्षति।
शशरक्तनिभे भानौ संग्रामो ह्यचिराद् भवेत् ॥१३॥
घनै र्युद्धं खरोष्ट्राद्यैः पापरूपै र्भयप्रदः।
ऋतुकालानुरूपोऽर्कः सौम्यमूर्तिः शुभावहः ॥४१॥

चन्द्रश्रृङ्गोन्नतितो वर्षाविचारः......

सुभिक्षकृद्विशालेन्दुरविशालोऽर्घनाशनः।
अधो मुखे शस्त्रभयं कलहो दण्डसन्निभे ॥१॥
कुजाद्यै र्निहते श्रृङ्गे मण्डले वा यथाक्रमात्।
सेनार्धवृष्टिनृपतिजनानां नाशकृत् - शशी ॥२॥

भौमचारतो वर्षाविचारः......

सप्ताष्टनवमर्क्षेषु स्वोदयाद् वक्रिते कुजे।
तद्वक्रमुदितं तस्मिन् प्रजापीडाग्निसंभवः ॥१॥
दशमैकादशे ऋक्षे द्वादशे वा प्रतीपगे।
वक्रमल्पसुखं तस्मिन् तस्य वृष्टिविनाशनम् ॥२॥
मघामध्यगतो भौमस्तत्रैव च प्रतीपगः।
अवृष्टिशस्त्रभयदः पाण्डुदेशाधिपान्तकृत् ॥३॥
त्रिषूत्तरासु रोहिण्यां नैॠते श्रवणेन्दुभे।
अवृष्टिदश्चरन् भौमो रोहिणीदक्षिणे स्थितः ॥४॥

बुधचारतो वर्षाविचारः......

विनोत्पातेन शशिजः कदाचिन्नोदयं व्रजेत्।
अनावृष्ट्यग्निभयकृदनर्थं नृपविग्रहम् ॥१॥
वसुश्रवणविश्वेन्दुधातृभेषु चरन् बुधः।
भिनत्ति यदि तत्तारामवृष्टिव्याधिभीतिकृत् ॥२॥
पञ्चदशैकदशभिः दिवसैः शशिनन्दनः।
प्राकृतायां गतो सस्यक्षेमारोग्यसुवृष्टिकृत् ॥३॥

गुरुचारतो वर्षाविचारः......

द्विभा ऊर्जादिमासाः स्युः पञ्चान्त्येकादशास्त्रिभाः।
यद्धिष्ण्याभ्युदितो जीवस्तन्नक्षत्राह्ववत्सरः ॥१॥
अनावृष्टिः मृगे वर्षे मृगैः शलभभाण्डजैः।
सर्वसस्यवधो व्याधि वैरं राज्ञां परस्परम् ॥२॥

माघेऽब्दे सततं सर्वे वितृपूजनतत्पराः ।
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं वृष्टिःकर्षकसंमता ॥३॥
चौराश्च प्रबलाः स्त्रीणां दौर्भाग्यं स्वजनाः खलाः ।
क्वचिद् वृष्टिः क्वचित् सस्यं क्वचिद् वृष्टिश्च फाल्गुने ॥४॥
चैत्रेऽब्दे मध्यमा वृष्टिरुत्तमान्नं सुदुर्लभम् ।
सस्यार्घवृष्टयः स्वल्पा राजानः क्षेमकारिणः ॥५॥
क्वचिद् वृष्टिः क्वचित्सस्यं न तु सस्यं क्वचित् क्वचित् ।
आषाढेऽब्दे क्षितीशाः स्युरन्योऽन्यजयकांक्षिणः ॥६॥
अनेकसस्यसंपूर्णा सुरार्चनसमाकुला ।
पापपाखण्डहन्त्री भूः श्रावणेऽब्दे विराजते ॥७॥
पूर्वं तु सस्यसंपूर्ति नशिं यात्यपरं तु यत् ।
मध्यवृष्टिर्महत्सस्यं नृपाणां समरं महत् ॥८॥
अब्दे भाद्रपदे लोके क्षेमाक्षेमं क्वचित् क्वचित् ।
धनधान्यसमृद्धिश्च सुभिक्षमतिवृष्टयः ॥९॥
सुवृष्टिः सर्वसस्यानि फलितानि भवन्ति च ।
भवन्त्याश्वयुजे वर्षे सन्तुष्टाः सर्वजन्तवः ॥१०॥
अनावृष्टि तु धूम्राभः करोति सूरपूजितः ।
द्विवादृष्टो नृपवधस्त्वब्रा राजनाशनम् ॥११॥

सम्वत्सरशरीरवर्णनम्......

सम्वत्सरशरीरं स्यात् कृत्तिकारोहिणी उभे ।
नाभिस्त्वाषाढद्वितयमार्द्राहृत् कुसुमं मघा ॥१२॥
दुर्भिक्षाग्निमहद्भीतिः शरीरे क्रूरपीडिते ।
नाभ्यां तु क्षुद्भयं पुष्पे सम्यक्मूलफलक्षयम् ॥१३॥
हृदये निधनं प्रोक्तं शुभं स्यात्पीडिते शुभैः ।

मेषादिराशिगतगुरुचारवशाद् वर्षाज्ञानम्

मेषराशिगते जीवे त्वीति मेषविनाशनम् ।
सस्यवृद्धिः प्रजारोग्यं वृष्टिः कर्षकसंमता ॥१४॥
वृषराशिगते जीवे शिशुस्त्रीपशुनाशनम् ।
मध्यावृष्टिस्तु सस्यानां हानि र्युद्धश्च भूभृताम् ॥१५॥
जनानां भीतिरीतिश्च नृपाणां दारुणं रणम् ।
विप्रपीडा समा वृष्टिः सस्यवृद्धिस्तृतीयभे ॥१६॥
प्रभूतपयसो गावः सुजनाः सुखिनः स्त्रियः ।
कर्कराशौ मदोद्धता गुरौ सस्ययुता धरा ॥१७॥
सिंहराशिगते जीवे निःस्वा भूः स्युरसज्जनाः ।
अतिवृष्टिस्तथा सर्पभयं युद्धे नृपक्षयः ॥१८॥
जीवे कन्यागते वृष्टिः हृष्टाः स्वस्थाः क्षितीश्वराः ।
महोत्सुकाः क्षितीश्वराः स्वस्थाःस्यु निखिला जनाः ॥१९॥

जीवे तुलागते सर्वं धातुमूलातुलं जगत् ।
तथापि भूमिसंपूर्णा धनधान्यसुवृष्टिभिः ॥२०॥
मदोद्धतनृपाणां हि युद्धे जनपदक्षयः ।
अतुष्टा वृष्टिरत्युग्रं डामरं कीटगे गुरौ ॥२१॥
जीवे चापगते भीतिरीति भूपभयं महत् ।
अतुष्टावृष्टिरत्युग्रा पीडा निःस्वाः क्षितीश्वराः ॥२२॥
अशत्रवो जना धात्री पूर्णा सस्यार्घवृष्टिभिः ।
वीतरोगभयाः सर्वे मकरस्थे सुरार्चिते ॥२३॥
सुरस्पर्द्धिजना धात्री फलपुष्पार्घवृष्टिभिः ।
सम्पूर्णा कुम्भगे जीवे वीतरोगयुता धरा ॥२४॥
धान्यार्घवृष्टिसंपूर्णा क्वचिद्रोगः क्वचिद् भयम् ।
न्यायमार्गगता भूपाः सर्वे मीनस्थिते गुरौ ॥२५॥

शुक्रचारतो वर्षाविचारः......

सौम्य - मध्यम - याम्येषु मार्गेषु त्रित्रिवीथयः ।
शुक्रस्य दस्रभाद्यैश्च पर्यायैश्च त्रिभिस्त्रिभिः ॥१॥
नागेभैरावताश्चैव वृषभो गोजरद्गवः ।
मृगाजदहनाख्याः स्युः याम्यान्ता वीथयो नव ॥२॥

उक्तश्लोकयोः अयं भावः......उत्तर - मध्यम - दक्षिण-मार्गस्थेषु अश्विन्यादि-त्रित्रिनक्षत्रेषु सञ्चारं कुर्वतः शुक्रस्य नववीथयः भवन्ति ।

सौम्यवीथिः......
१—अश्विनी - भरणी - कृत्तिका ।
२—रोहिणी - मृगशिरः - आर्द्रा ।
३—पुनर्वसु - पुष्य - श्लेषा

मध्यमवीथिः......
४—मघा - पूर्वाफाल्गुनि - उत्तराफाल्गुनी
५—हस्त - चित्रा - स्वाती ।
६—विशाखा - अनुराधा - ज्येष्ठा

याम्यवीथिः......
७—मूल - पूर्वाषाढ़ा - उत्तराषाढ़ा ।
८—श्रवण - धनिष्ठा - शतभिषा ।
९—पूर्वाभाद्रपदा - उत्तराभाद्रपदा - रेवती ।

प्रथमपंक्तौ संस्थितानां सौम्यादिग्वीथीनां क्रमशः......
१—नागः, २—इभः, ३—ऐरावतः इति नामानि सन्ति ।
द्वितीयपंक्तौ संस्थितानां मध्यमवीथीनां क्रमशः......
१—वृषभः, २—गौः, ३जरद्गवः - इति नामानि सन्ति ।
तृतीयपंक्तौ संस्थितानां याम्यदिग्वीथीनां क्रमशः...
१—मृगः, २—अजः, ३—दहनः - इति नामानि सन्ति ।

॥वीथीनां फलम्॥

सौम्यमार्गेषु तेष्वेव चरन् वीथिषु भार्गवः ।
धान्यार्घवृष्टिसस्यानां परिपूर्तिं करोति सः ॥३॥
मध्यमार्गेषु तेष्वेव करोत्येषां तु मध्यमः ।
याम्यमार्गेषु सर्वेषु तेषामेवाधमं फलम् ॥४॥
पूर्वस्यां दिशि मेघश्च - शुभकृत् पितृपञ्चके ।
स्वातित्रये प्रतीच्यां तु सम्यक् शुक्रस्तथाविधः ॥५॥
विपरीते त्वनावृष्टिः वृष्टिकृत् बुधसंयुतः ।
कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्याममावास्यां यदा सितः ॥६॥
उदयास्तमयं याति तदा जलमयी क्षितिः ।
मिथः सप्तमराशिस्थौ पश्चात् प्राग्वीथिसंस्थितौ ॥७॥
गुरुशुक्रावनावृष्टि दुर्भिक्षमरणप्रदौ ।
कुजज्ञजीवसूर्यजाः शुक्रस्याग्रेसरा यदा ॥८॥
युद्धातिवायु दुर्भिक्षं जलनाशकरास्तदा ।
कृष्णरक्ततनुः शुक्रः पवनानां विनाशकृत् ॥९॥

शनिचारतो वर्षादिविचारः......

श्रवणानिलहस्तार्द्रा भरणीभाग्यमेषु च ।
चरन् शनैश्चरो नृणां सुभिक्षारोग्यसस्यकृत् ॥१॥
जलेशसार्यमाहेन्द्रनक्षत्रेषु सुभिक्षकृत् ।
क्षुत्शस्त्रावृष्टिदो मूलेऽहिर्बुधन्यान्त्यभयो र्भयम् ॥२॥

शनिशरीरे नक्षत्रन्यासः......

मूर्ध्नि चैकं मुखे त्रीणि गुह्ये द्वे नयने द्वयम् ।
हृदये पञ्चधिष्ण्यानि वामहस्ते चतुष्टयम् ॥३॥
वामपादे तथा त्रीणि देयानि त्रीणि दक्षिणे ।
दक्षहस्ते च चत्वारि जन्मभाद् रविजस्थितः ॥४॥
रोगोऽलाभस्तथा हानि र्लाभसौख्यं च बन्धनम् ।
आयासं चेष्टयात्रा च धनलाभः क्रमात् फलम् ॥५॥
वक्रकृद्रविजस्येह तद्वक्रफलमीदृशम् ।
करोत्येवं समः साम्यं शीघ्रगो व्युत्क्रमात् फलम् ॥६॥
अमृतास्वादनाद् राहुः शिरश्छिन्नोऽपि सोऽमृतः ।

राहुचाराद् वर्षाविचारः......

विष्णुना तेन चक्रेण तथापि ग्रहतां गतः ॥१॥
वरेणधातुरर्केन्दू ग्रसते सर्वपर्वणि ।
विक्षेपावनते वंशाद् राहुः दूरं गतस्तयोः ॥२॥
षण्मासवृद्धितः पर्व शोधयेद् रविचन्द्रयोः।
पर्वेशाः स्युस्तथा सप्त देवाः कल्पादितः क्रमात् ॥३॥

ब्रह्मेन्द्विन्द्रधनाधीशा वरुणाग्नियमाह्वयाः ।
पशुसस्यद्विजातीनां वृद्धि ब्राह्मे च पर्वणि ।४।।
उपर्युक्तस्य चतुर्थपद्यस्य - अयं भावः......

१—ब्रह्मा, २—चन्द्रः, ३—इन्द्रः, ४—धनाधीशः - "कुबेर" ५—वरुणः, ६—अग्निः, ७— यमः एते सप्तसंख्या प्रमिताः - देवाः क्रमशः षण्मासवृद्धौ समागतानां सप्तवर्णाम् अधिपतयो भवन्ति ।

यस्य पर्वणो ब्रह्मा- अधीश्वरः भवति, तस्मिन् पर्वणि- पशु- सस्य- द्विजातीनां - वृद्धि भंवति ।

तद्वदेव फलं सौम्ये बुधपीडा च पर्वणि ।
विरोधो भूभुजां दुःखमैन्द्रे सस्यविनाशनम् ।।५।।
धनिनामर्थहानिः स्यात् कौवेरे धान्यवर्धनम् ।
नृपाणामशिवं क्षेममितरेषां तु वारुणे ।।६।।
सस्यवृद्धिः प्रवर्षणं क्षेमं हौताशपर्वणि ।
अनावृष्टि तथा हानि दुर्भिक्षं याम्यपर्वणि ।।७।।
एकस्मिन्नेव मासे तु चन्द्रार्कग्रहणं यदा ।
विरोधं धरणीशानामर्थवृष्टिविनाशनम् ।।८।।
ग्रस्तोदितौ तथा चास्तौ नृपधान्यविनाशदौ ।
सर्वग्रस्ताविनेन्दूभौ क्षुद्वायुवग्निभयप्रदौ ।।९।।

केतुचाराद् वर्षाविचारः...

ह्रस्वः स्निग्धस्तथा केतुः श्वेतश्चैव सुभिक्षकृत् ।
प्रागस्तमयतां याति दीर्घकेतुः सुवृष्टिकृत् ।१।

मेषराशौ सूर्यसंक्रान्तितो वर्षाविचारः...

दिवाचेन्मेषसंक्रान्ति रनर्थकलहप्रदा ।
रात्रौ सुभिक्षदाक्रान्तिः सन्ध्ययोः वृष्टिनाशदा ।।१।।

करणेषु सूर्यसंक्रान्तितो वर्षाविचार...

चतुष्पात्तैतिले नागे सुप्तक्रान्ति करोति सः ।
धान्यार्घवृष्टिषु ज्ञेयमनिष्टं क्रमशस्तदा ।।२।।

ग्रहसंयोगवशात् - वर्षाज्ञानाय- ग्रहाणां - पुरुष - स्त्री - नपुंसक- संज्ञां नारदोक्तामत्रलिखामि

विदृशामिवशीतांशोः किरणा स्ते सुधामयाः ।
पुंग्रहाः सूर्य भौमार्याः स्त्रीग्रहौ शशिभार्गवौ ।।१।।
नपुंसकौ बुधः सौरिः शिरोमात्रो विधुंतुदः ।।२।।

प्रश्नकाल- ग्रहचार - शकुनप्रभृतिभि वर्षाज्ञानप्रकारं नारदोक्तमत्र विलिखामि

वर्षाप्रश्ने यदि चन्द्रे निजोच्चे लग्नगेऽपि वा ।
केन्द्रगे वा सिते पक्षे चातिवृष्टिः शुभेक्षिते ।।१।।

पापदृष्ट्याल्पवृष्टिः स्यात्-प्रावृट्काले चिराद् भवेत् ।
चन्द्रवद् भार्गवे सर्वमेवं विधगुणान्विते ॥२॥
प्रावृषीन्दुः सितात् सप्तराशिगः शुभवीक्षितः ।
मन्दात् त्रिकोणसप्तस्थो- यदि वा वृष्टिकृद् भवेत् ॥३॥
सद्यो वृष्टिकरः शुक्रो यदा बुधसमीपगः ।
तयो र्मध्यगते भानौ तदा वृष्टिविनाशनम् ॥४॥
मघादिपञ्चधिष्ण्यस्थः पूर्वास्वातित्रये परे ।
सुवर्षणं भृगुः कुर्याद् विपरीते न वर्षति ॥५॥
पुरतः पृष्ठतो भानो ग्रंहा यदि समीपगाः ।
तदा वृष्टिं प्रकुर्वन्ति न चेत्तेप्रतिलोमगाः ॥६॥
सौम्यमार्गगतः शुक्रो वृष्टिकृन्नतु याम्यगः ।
उदयास्तेषु वृष्टिः स्याद् भानोरार्द्राप्रवेशने ॥७॥
विपत्तिः सस्य हानिः स्यादहन्यार्द्राप्रवेशने ।
सन्ध्ययोः सस्यवृद्धिः स्यात् सर्वसम्पन्नृणां निशि ॥८॥
स्तोकवृष्टिरनर्घः स्यादवृष्टिः सस्यसंपदः ।
आर्द्राद्वये प्रभिन्ने चेद् भवेदीति नं संशयः ॥९॥
चन्द्रेज्ये ज्ञेऽथवा शुक्रे केन्द्रे त्वीति विनश्यति ।
पूर्वाषाढ़ागतो भानुर्जीमूतैः परिवेष्टितः ॥१७॥
वर्षत्यार्द्रादिमूलान्तं प्रत्यक्षं प्रत्यहं तथा ।
वृष्टिश्च पौष्णभे तस्माद् - दशर्क्षेषु न वर्षति ॥११॥
सिंहे भिन्ने कुतो वृष्टिरभिन्ने कर्कटे कुतः ।
कन्योदये प्रभिन्ने चेत् सर्वथा वृष्टिरुत्तमा ॥१२॥
पूर्वसस्ये त्वहिर्बध्न्ये परसस्या च रेवती ।
भरणी सर्वसस्या च सर्वनाशाय चाश्विनी ॥१३॥
गुरोः सप्तमराशिस्थः प्रत्यग्गो भृगुजो यदा ।
तदातिवर्षणं भूरिप्रावृष्ट्काले बलोज्झिते ॥१४॥

प्रकृतिलक्षणै वर्षावायुज्ञानम् :···

आसन्नमर्कशीतांशवोः परिवेषगतोत्तरा ।
विद्युत्प्रपूर्णमण्डूकस्त्वनावृष्टि र्भवेत्तदा ॥१५॥
यदा प्रत्यग्गता मेघाः स्वसद्मोपरिसंस्थिताः ।
पतन्ति दक्षिणस्था वा भवेद् वृष्टिस्तदाचिरात् ॥१६॥
नखैं लिखन्ति मार्जाराश्चावनि लोहसंस्थिताः ।
सेतुबन्धपराणां च बालानां वृष्टिहेतवः ॥१७॥
पिपीलिकाः शिरश्छिन्ना व्यवायः सर्पयोस्तथा ।
सर्पाणां च द्रुमारोहः प्रतीन्द्रः वृष्टिसूचकाः ॥१८॥

उदयास्तमये काले विवर्णार्कोऽथवा शशी ।
मधुवर्णोऽतिवायुश्चेदतिवृष्टि र्भवेत्तदा ॥१६॥

वर्षाबोधकरं परिवेषादिलक्षणं नारदोक्तमत्र - लिखामि···

किरणा वायुभि र्हता उच्छ्रिता मण्डलीकृताः ।
नानावर्णान्वितास्ते च परिवेषाः शशीनयोः ॥१॥
ते रक्तनील- पाण्डूर कपोताभ्रापिकापिलाः ।
सपीपशुकवर्णाभा प्रागादिदिक्षु वृष्टिदाः ॥२॥
मुहुर्मुहुः प्रलीयन्ते न संपूर्णफलप्रदाः ।
शुभास्तु कपिलास्निग्धा क्षीरतैलाम्वुसन्निभाः ॥३॥
चापशृङ्गाटकाकारा रथरक्तारुणाः शुभाः ।
अनेकवृक्षवर्णाश्च परिवेषा नृपान्तदाः ॥४॥
अहर्निशं यदा नित्यं चन्द्रार्कावरुणौ तदा ।
परिविष्टौ वधं राज्ञः कुरुतो लोहितौ सदा ॥५॥
द्विमण्डलश्चमूनाथं नृपघ्नो यस्त्रिमण्डलम् ।
परिवेषगतः सौरिः क्षुद्रधान्यविनाशकृत् ॥६॥
रणकृद् भूमिजो जीवः सर्वेषामभयप्रदः ।
ज्ञः सस्ये हानिदः शुक्रो दुर्भिक्षकलहप्रदः ॥७॥
परिवेषगतः केतु र्दुर्भिक्षकलहप्रदः ।
पीड़ां नृपवधं राहु र्गर्भच्छेदं करोति च ॥८॥
द्वौ ग्रहौ परिवेशस्थौ क्षितीशकलहप्रदौ ।
कुर्वन्ति कलहानर्घपरिवेषगतास्त्रयः ॥९॥
चत्वारः परिवेषस्था नृपस्यं मरणप्रदाः ।
परिवेषगताः पञ्च वलप्रवलदा ग्रहाः ॥१०॥
एवं वक्रग्रहास्तेषां ज्ञेयं फलनिरूपणम् ।
नृपहानिः कुजादीनां परिवेषे पृकक् पृथक् ॥११॥
परिवेषोऽपि धिष्ण्यानां फलमेवं द्वयोस्त्रिषु ।
परिवेशो द्विजातीनां नेष्टः प्रतिप्रदादिषु ॥१२॥
पञ्चम्यादिषु विज्ञेयो न शुभो नृपते स्तथा ।
अष्टम्यां युवराजस्य परिवेषोप्यभीष्टदः ॥१३॥
ततस्तिसृषु विज्ञेयो नृपाणामशुभप्रदाः ।
पुरोहितस्य द्वादश्यां विनाशाय भवेदसौ ॥१४॥
सैन्यक्षोभस्त्रयोदश्यां नृपरोधमथापि वा ।
राजपत्न्याश्चतुर्दश्यां परिवेषो गदप्रदः ॥१५॥
परिवेषश्च पूर्णायां क्षितीशानामनिष्टदः ।
परिवेषस्य मध्ये वा बाह्ये रेखा भवेद् यदि ॥१६॥

स्थायिनां मध्यमा नेष्टा यायिनां पार्श्वसंस्थिताः ।
प्रावृड्तौ च शारदे परिवेषा जलप्रदाः ॥१७॥
ऋतुषु चान्यसंज्ञेषु तदुक्तफलदायिनः ।
परिवेषाः भवन्तीति नारदाद्यैः प्रकीर्तिताः ॥१८॥

उक्तपद्यानामर्थस्तु स्पष्टः एव अतएव मयात्र व्याख्या न कृता ।

वर्षाज्ञानाय नारदोक्तमिन्द्रधनुषो लक्षणं फलं चात्र लिखामि

नानावर्णांशवो भानोः साभ्रवायुविघट्टिताः ।
यद् व्योम्नि चापसंस्थानमिन्द्रचापं प्रदृश्यते ॥१॥
अथवा शेष नागेन्द्रदीर्घनिःश्वाससंभवम् ।
विदिक्षुजं च दिक्षुजं तद्दिग्नृपविनाशनम् ॥२॥
पीत- पाटल- नीलैश्च वह्निशस्त्रास्त्रभीतिदम् ।
वृक्षजं व्याधिदं चापं भूमिदं सस्यनाशनम् ॥३॥
अतिवृष्टि जलोद्भूतं वल्मीके युद्धभीतिदम् ।
अवृष्टौ वृष्टिदं चैन्द्र्यां दिशि वृष्ट्यामवृष्टिदम् ॥४॥
सदैव वृष्टिदं पश्चाद् दिशोरितरयोस्तथा ।
शाक्र्यामिन्द्रधनुः प्राच्यां नृपहानि भवेद् यदि ॥५॥
याम्यां सेनापतिं हन्ति पश्चिमे नायकोत्तमम् ।
मन्त्रिणं सौम्यदिग्भागे सचिवं कोणसंभवम् ॥६॥
रात्र्यामिन्द्रधनुः शुक्लवर्णाढ्यं विप्रपूर्वकम् ।
हन्ति यद्दिग्भवं स्पष्टं तद्दिगीशनृपोत्तमम् ॥७॥
अवनीगाढमच्छिन्नं प्रतिकूलं धनुर्द्वयम् ।
नृपान्तकृद् यदा भवेदानुकूल्यं तु तच्छुभम् ॥८॥

उक्तपद्यानामर्थस्तु स्पष्टः एव । अतोऽत्र मया व्याख्या न कृता ।

नारदोक्तं गन्धर्वनगरदर्शनलक्षणमत्र सप्रसङ्गं लिखामि

गन्धर्वनगरं दिक्षु दृश्यतेऽनिष्टदं क्रमात् ।
भूभुजां वा चमूनाथ - सेनापतिपुरोधसाम् ॥१॥
पीतकृष्णं सितारक्तं विप्रादीनामनिष्टदम्
गन्धर्वनगरं रात्रौ धराधीशविनाशनम् ॥२॥
इन्द्र - चापाग्नि - धूमाभं सर्वेषामशुभप्रदम् ।
चित्रवर्णं विचित्राभं प्राकारध्वजतोरणम् ॥३॥
दृश्यते चेन्महायुद्धमन्योऽन्यं धरणीभुजाम् ॥४॥

आकाशे पूर्वोक्तलक्षणविशिष्टानां गन्धर्वनगराणां दर्शनं यदा भवति तदा-अनिष्ट-मेव फलं भवतीति तत्वार्थः ।

वर्षाप्रसङ्गेऽत्र नारदोक्तं प्रतिसूर्यलक्षणं लिखामि

प्रतिसूर्यनिभः स्निग्धः सूर्यः पार्श्वे शुभप्रदः ।
वैडूर्यदृशः स्वच्छः शुक्लो वापि सुभिक्षकृत् ॥१॥

पीताभो व्याधिदः कृष्णो मृत्युदो युद्धदारुणः ।
माला चेत् प्रतिसूर्याणां शश्वच्चौरभयप्रदः ॥२॥
जलदोदग्रवे बिम्बः भानोर्याम्येऽनिलप्रदः ।
उभयस्थोऽम्बुभीतिदो नृपघ्नश्चोपरिस्थितः ॥३॥
पराभवन्ति तीक्ष्णांशोः प्रतिसूर्याः समन्ततः ।
जगद्विनाशमाप्नोति तथाशीतद्युतेरपि ॥४॥

वर्षाप्रसंगे नारदोक्तं निर्घातलक्षणमत्र लिखामि

वायुनाभिहतो वायु र्गगनात् पतितः क्षितौ ।
यदा दीप्तस्तु चोत्पातः स निर्घातोऽतिदोषकृत् ॥१॥
निर्घातोऽर्कोदये नेष्टः क्षितीशानां विनाशदः ।
आयामात् प्राक् पुरस्थानां शूद्राणां चैव हानिदः ॥२॥
आमध्याह्नं तु विप्राणां नेष्टो राजोपजीविनाम् ।
तृतीये प्रहरे विशां जलजानामनिष्टदः ॥३॥
चतुर्थे चार्थनाशाय सन्ध्यायां हन्ति संकरान् ।
सस्यहानिस्तथाचाद्ये द्वितीये तु पिशाचकान् ॥४॥
तुरगान् चार्धरात्रे दु तृतीये शिल्पिलेखकान् ।
निर्घातस्तुर्ययामे तु पतन् हन्ति सदा जनान् ॥५॥
भीमजर्जरशब्दः स तत्र तत्र दिगीश्वरम् ॥६॥

वर्षाप्रसङ्गे नारदोक्तं दिग्दाहलक्षणमव लिखामि

दिग्दाहः पीतवर्णश्चेत् क्षितीशानां भयप्रदः ।
देशनाशोऽग्निवर्णे च रक्तवर्णोऽनिलप्रदः ॥१॥
धूमः सस्यविनाशाय कृष्णः सस्यभयप्रदः ।
प्राग्दाहः क्षत्रियाणां च नरेशानामनिष्टदः ॥२॥
आग्नेय्यां युवराजस्य शिल्पिनामशुभप्रदः ।
पीडां व्रजन्ति याम्यायां मूकवैश्यनराधमाः ॥३॥
नैर्ऋत्यां दिशि चौराश्च पुनर्भूः प्रमदा नृणाम् ।
प्रतीच्यां कृषिकर्तारो वायव्यां पशुजातयः ॥४॥
सौम्ये विप्रा दिगीशानां वैश्यानां खण्डिनोऽनिलाः ।
निर्मलः खेऽस्ति नाक्षत्र - गणः प्रदक्षिणेऽनिलः ॥५॥
दिग्दाहः स्वर्णवर्णाभो लोकानां मङ्गलप्रदः ॥६॥

वर्षाप्रसङ्गे रजोलक्षणं "धूलिलक्षणम्" नारदोक्तमत्र लिखामि

सितेन रजसा छन्ना दिग्ग्रामवनपर्वताः ।
यथा तथा भवन्त्येते निधनं यान्ति भूमिपाः ॥१॥
रजः समुद्भवो यस्यां दिशि तस्या विनाशनम् ।
तत्र तत्रापि जन्तूनां हानिदः शस्त्रकोपतः ॥२॥

मन्त्री जनपदानां च व्याधिदं चासितं रजः ।
अर्कोदये विजृम्भन्ति गगनं स्थापयन्ति च ॥३॥
दिनद्वयं दिनत्रयमत्युग्रभयदं रजः ।
रजस्तु चैकरात्रं वै नृपं हन्ति निरन्तरम् ॥४॥
परचक्रागमं न स्यात् द्विरात्रं सततं यदि ।
क्षामडामरमातङ्कस्त्रिरात्रं सततं यदि ॥५॥
ईतिदुर्भिक्षमत्युग्रं यदि रात्रचतुष्टयम् ।
पञ्चरात्रं निरन्तरं महाराजविनाशनम् ॥६॥
ऋतवो मकरार्कात्तु शिशिराद् रससंज्ञकः ॥७॥

वर्षाप्रसङ्गे नारदोक्तं भूकम्पलक्षणमत्र लिखामि

भूभारखिन्ननागेन्द्र - दीर्घनिःश्वाससंभवः ।
भूकम्पः सोऽपि लोकानामशुभाय भवेत् सदा ॥१॥
यामक्रमेण भूकम्पो द्विजातीनामनिष्टदः ।
अनिष्टदः क्षितीशानां सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥२॥
अर्यमाद् भानि चत्वारि दस्रेन्द्वदितिभानि च ।
वायव्यमण्डलं त्वेतदस्मिन् कम्पो भवेद् यदि ॥३॥
नृपसस्यवणिग्वैश्या - शिल्पवृष्टिविनाशदः ।
विशाखाभरणीपुष्य - पितृभाग्याजभानि हि ॥४॥
अग्नेय्यां मण्डलं त्वेतत् कम्पश्चास्मिन् भवेद् यदि ।
नृपवृष्ट्यर्घनाशाय हन्ति शाबरटङ्कणान् ॥५॥
अभिजिद्धातृवैश्वैन्द्र - वायुवैष्णवमैत्रभम् ।
वासवं मण्डलं त्वेदस्मिन् कम्पो भवेद् यदि ॥६॥
राजनाशाय कोपाय हन्ति माहेयदर्दुरान् ।
मूलाहिर्बुध्न्यवरुणपौष्णमार्द्राहिभानि च ॥७॥
वारुणं मण्डलं त्वेतदस्मिन् कंपो भवेद् यदि ।
राजनाशकरो हन्ति पौण्ड्रचीनपुलिन्दकान् ॥८॥
प्रायेण निखिलोत्पाताः क्षितीशानामनिष्टदः ।
षड्भि मासैश्च भूकम्पो द्वाभ्यां दाहफलप्रदः ॥

वसिष्ठसंहितोक्तं वर्षावायुविज्ञानमत्र लिखामि

सूर्यचारेण वृष्टिविचारः......

दास्रादिधिष्ण्यद्वयगे निदेशे वृष्टि र्भवेत् क्षेमकरी जनानाम् ।
वह्न्यर्क्षसंस्थे यदि वृष्टिरीतिब्रह्मद्वये स्यादतुलं सुभिक्षम् ॥१॥
प्रवेशकाले यदि रौद्रभस्य वृष्टि र्भवेदीतिरनर्घता च ।
शेषे तु पादत्रितयेषु भीतिरत्यल्पवृष्टि र्महती गदा च ॥२॥

आर्द्राप्रवेऽह्नि जगद्विपत्ति सस्यस्य नाशं कुरुतेऽल्पवृष्टिम् ।
क्षेमं सुभिक्षं निशि सस्यवृद्धि सुवृष्टिमत्यन्तजनानुरागम् ॥३॥
जलाधिदैवर्क्षगते पतंगे विद्युन्मरुद्वारिघनैश्च युक्ते ।
दिनेषु सार्धत्रितयेपु पश्चाद् रौद्रादिभेषु क्रमशः सुवृष्टिः ॥४॥
राहोः सुतास्तामसकीजकाद्याः कवन्ध - काकोष्ट्र - शृगालरूपाः ।
यदा रवे मंण्डलगास्तदानीं पतंगभूपाहवभीतिदाः स्युः ॥५॥
अधोमुखा धूमनिभाः क्षितीशान् वृष्टि पिशंगाश्च तथाविधास्ते ।
उक्त्वा फलं तामसकीलकानां फलं ततो मण्डलवर्णतश्च ॥६॥
लोहितवर्णो ग्रीष्मे लोकानां भीतिरीतिदः शश्वत् ।
हेमन्ते व्याधिभयं पीतः प्रावृष्यवृष्टिकृत् कृष्णः ॥७॥
आखण्डलचापनिभो भूपविरोधं परस्परं तत्र ।
यदि पत्रनिभो वर्हेद्वादशवर्षं न वर्षति क्षोण्याम् ॥८॥
भानोरुदयास्तमये चोल्कापतनं महाहवं राज्ञाम् ।
परिवेषयति प्रकटं पक्षं पक्षार्धमेव वा सततम् ॥९॥
यद्युपसूर्यकमस्यां सन्ध्यायामर्घनाशनं प्रचुरम् ।
क्षितिपतिकलहः शीघ्रं सलिलभयं वा भवेन्नूनम् ॥१०॥
ऋतौ वसन्ते खलु कुङ्कुमाभः शुभप्रदः कापिलसन्निभो वा ।
आनन्ददस्ताम्रनिभो विवस्वान् यः शैशिरे वा कपिलः सुभिक्षः ॥११॥
ग्रीष्मे सदा हेमनिभो विचित्रवर्णो नृणां क्षेमशुभप्रदश्च ।
अंभोजगर्भोपमशोभनश्च प्रावृष्यतीवाखिलसस्यवृद्ध्यै ॥१२॥
रक्तः सूर्यः शरदि विपुलाकीर्तिसौभाग्यदश्च–
हेमन्तेऽपि त्वखिलजगतः सस्यसंपद्विवृद्ध्यै ।
ज्ञात्वा चारं दशशतकरस्याखिलं दैववेदी–
पश्चात् सर्वं सशुभमशुभं वा दिशेत् कालरूपम् ॥१३॥

उक्तपद्यानां अर्थस्तु स्पष्टः एव - अतोऽत्र मया व्याख्या न कृता ।

चन्द्रचारेण- सुभिक्ष - दुर्भिक्ष - दृष्टिविचारः

असितचतुर्दशयन्ते प्रतिमासं चास्तमेति तुहिनकरः ।
सततं दर्शस्यान्ते तुलितो राश्यादिभि नियतम् ॥१॥
विमलः प्रतिपद्यन्ते उदयं संयाति भास्करात्-मुक्तः ।
द्वादशभागविवृद्ध्या तिथयश्चन्द्राच्च संभूताः ॥२॥
हिमद्युतेरम्युदितस्य श्रृङ्गे याम्योन्नते मेष - झषे सुसिक्षम् ।
जनागुरागं वृषकुंभयोश्च तुल्ये विषाणे जगतोऽखिलस्य ॥३॥
सौम्योन्नते जिह्ममृगास्ययोश्च मासद्वयं स्यास्थ्यमुपैति लोकः ।
सौम्योन्नते शीतनिभे सुवृष्टिः क्षेमं सदा कर्कटचापयोश्च ॥४॥

सस्याभिवृद्धि र्हरिकीटयोश्च सौम्योन्नते चापनिभे सुवृष्टिः ।
अनामयावृष्टिरतीव कन्यातुलाद्वयोः शूलनिभे तथैव ॥५॥
एवं क्रमेणाभ्युदितः शशाङ्कः क्षेमं सुभिक्षं जगतः करोति ।
व्यस्तोदितः प्रोक्तफलं समस्तं करोति नाशं कलहं नृपाणाम् ॥६॥
शृङ्गे व्रीहियवाकारे वृष्टिः स्यान्महदर्घता ।
तस्मिन् पिपीलिकाकारे पूर्वोक्तफलनाशनम् ॥७॥
विशालशुक्ले वृद्धिः स्यादविशालेत्वनर्घता ।
अधोमुखे भूपहानि र्दण्डाकारे नृपाहवः ॥८॥
नाशं ययुः नृपतयोऽन्तगताः किराता मन्दे हते हिमकरस्य नवे विषाणे ।
क्षुच्छस्त्रभीतिरतुला निहते कुजे च दुर्भिक्षवृष्टिभयमिन्दुसुते हतेऽस्मिन् ॥९॥
श्रेष्ठा नृपा युधि लयं त्वमरेन्द्रवन्द्ये - शुक्रे हते नियतमल्पनृपाश्च सर्वे ।
कृष्णे फलं त्वविकलं भवति प्रजाजानां-पक्षे सिते विफलमेति भवेच्च यद्वा ।१०।
विश्वाम्बु - मूलेन्द्र - विशाखमैत्रभानां यदा दक्षिणभागगेन्दुः ।
वह्ने र्भयं त्वीतिभयं जनानां करोति दुर्भिक्षमतीव युद्धम् ॥११।
अनुक्तभानां यदि याम्यवृत्ति करोति वृष्टि कलहं नृपाणाम् ।
प्रजापते र्भं यदि पैत्रिमं वा भिनत्तिचन्द्रोऽन्तकरः प्रजानाम् ॥१२॥
भानां यदा सौम्यगतस्तदानीं जानानुरागं सततं करोति ।
सदामयाप्रीतिरतीवदुःखं करोति याम्योपगश्च भानाम् ॥१३॥
जघन्यधिष्ण्यानि जलेशसार्परौद्रैन्द्रयाम्यानिलदैवतानि ।
अध्यर्धधिष्ण्यान्यदितिद्विदैवस्थिराणि शेषाणि समाह्वयन्ति ॥१४॥
चतुर्दशे श्लोके अस्मिन् "अध्यर्धधिष्ण्यानि= वृहत्संज्ञकानि नक्षत्राणि सन्ति,
अध्वर्धधिष्ण्येऽभ्युदितो शशाङ्कः करोति धान्यं महदर्घमन्तम् ।
जघन्यभेऽनर्घमसंशयेन समर्घमन्येषु च मासि मासि ॥१५॥

भौमचारेण वृष्टिविचारः...

यस्माद् विना भूमिसुतस्य चारं शुभाशुभं यज्जगतः सुसम्यक् ।
न ज्ञायते ज्ञानमनुत्तमं तत् तस्मात् प्रवक्ष्यामि समासतोऽत्र ॥१॥
स स्वोदयर्क्षान्नवमेऽष्टमे वा सप्तर्क्षके वा विचरेत् प्रतीपम् ।
तद् वक्रमुख्याह्वयमेव तत्र वह्ने र्भयं व्याधिभयं जनानाम् ॥२॥
एकादशे द्वादशमे प्रतीपे दशर्क्षगे वाश्रुमुखं प्रतीपम् ।
तत्राश्रुवक्त्रेऽर्घविवृद्धिपूर्वं रसादिकं नाशमुपैति नूनम् ॥३॥
त्रयोदशर्क्षेऽपि चतुर्दशर्क्षे वक्रे कुजे व्यालमुखाभिधानम् ।
तेभ्यो भयं तत्र सुवृष्टिसस्यसमृद्धिरर्घं च जनानुरागम् ॥४॥
विशाखाविश्वधिष्ण्यान्त्यभानां याम्यचरः कुजः ।
दुर्भिक्षवृष्टिभयकृदाहवे भुवि भूभुजाम् ॥५॥

बुधचारेण वृष्टिविचारः...

बुधोदयः सर्वजगद् विपत्त्यै भवेत् कदाचिद् भृशमन्यथा वा ।
वृष्ट्यर्घ - वाय्वग्निभयप्रदश्च तेभ्यो भयं कुत्रचिदन्यथा वा ॥१॥
पुरंदरश्रीपतिवैश्वदेव - वसुस्वयंभूड्षु चन्द्रसूनुः ।
चरन् करोति प्रचुरार्घवृष्टि नृपाहवाद् भीतिमतीवपीडाम् ॥२॥
आर्द्रादितीज्याहिमघासु मेषु चरन् प्रजानामतुलां च पीडाम् ।
करोति शीतांशुसुतो बलीयान् क्षुच्छस्त्रवृष्ट्यामयशत्रुभीश्च ॥३॥
आषाढमासद्वितये सपौषे वैशाखमासे यदि चन्द्रसूनुः ।
दृष्टः करोत्यामयराजपीडां विवर्षणं तस्करभीतिमुग्राम् ॥४॥

माणिक्यशङ्खकनकामलपुष्पराग–
कुन्देन्दुसन्मरकतोपमशुभ्रकान्तिः ।
स्निग्धः शशांङ्कतनयः प्रचुरार्घदश्च–
लोकेऽन्यमूर्तिरुदितो भयरोगकृत् सः ॥५॥

उपर्युक्तश्लोकानामर्थस्तु सरलः - एव, अतोऽत्र व्याख्या न कृता मया ।

गुरुचारेण वर्षावायुविचारः...

मासेषु चोर्जादिषु कृत्तिकादिद्वयं द्वयं च क्रमशोऽश्विभात् स्यात् ।
त्रिभान्नभस्येषतपस्यमासाः शुक्लान्तयुक्तर्क्षवशादजस्रम् ॥१॥
उदेति धिष्ण्येन सुरेन्द्रमन्त्री तेनैव तन्नाम भवेत् तु वर्षम् ।
ज्ञेयानि तत्कार्तिकपूर्वकाणि भवन्ति तेषां च फलं च सम्यक् ॥२॥
अश्वियुजेऽब्दे वृष्टि र्भवति च नानानिरामयं क्षेमम् ।
अपरं सस्यं न स्यात् कुत्रचिदीतिः प्रजा पीडा ॥३॥

भानां यदा सौम्यगतिः सुदेज्यस्तदा जनानामभयप्रदः सः।
व्याधिप्रदो दक्षिणमार्गगामी भूदेवभूमीश्वरनाशदश्च ॥४॥
वह्ने र्भयं वह्निसमानवर्णः पीतश्च रोगं हरितोऽरिभीतिम् ।
श्यामस्तु युद्धं सततं करोति रक्तः क्षितीशद्विजकामपीडाम् ॥५॥
वृष्टे र्भयं धूमनिभः पिशङ्गस्त्वीते र्भयं कांस्यनिभोऽन्तभीतिम् ।
क्षिप्रं नृपस्यान्तकरोह्यदृष्टश्चित्रो विचित्रं क्षितिपालयुद्धम् ॥६॥

वर्षशरीररचनाक्रमः......

वह्निमादद्वितयमब्दशरीरं नाभिरस्य जलवैश्वदैवभम् ।
सार्यमं हृदयमन्तरात्मकं पैतृभं विकसितं सुमनश्च ॥७॥
क्रूरग्रहे चास्य शरीरसंस्थे वह्ने र्भयं वायुभयं च तत्र ।
नाभिस्थितेऽनर्घभयं प्रभूतं हृदि स्थिते सस्य भयं जनानाम्॥८॥
मनः स्थिते मूलफलं विनाशं वक्रग्रहस्थे फलमुग्रमेतत् ।
सौम्यग्रहेष्वेषु च संस्थितेषु सर्वं शुभं मिश्रफलं च मिश्रैः ॥९॥

प्रभवादिसंवत्सरफलं विवक्षुः प्रभवादिज्ञानप्रकारमत्र वसिष्ठोक्तं लिखामि

सुरेज्याता भगणाः श्रुतिघ्ना "४" नखैरवाप्ताः'° श्रुतिराम "३४" हीनाः ।
विभाजिताश्चामरवत्मंतर्कै "६०" शेषाः स्युरत्रप्रभवादयोब्दाः ॥१०॥
१. प्रभवो, २. विभवः, ३.शुक्लः, ४.प्रमोदाख्यः, ५. प्रजापतिः ।
६. अङ्गिराः, ७. श्रीमुखो, ८. भावो, ९. युवा, धाता, ११. तथेश्वरः ॥११॥
१२. बहुधान्यः, १३. प्रमाथी च, १४. विक्रमो, १५. वृषवत्सरः ।
१६. चित्रभानुः, १७. सुभानुश्च, १८. तारणः, १९. पार्थिवो, २०. व्ययः ॥१२॥
२१. सर्वजित्, २२. सर्वधारी च, २३. विरोधी, २४. विकृतः, २५. खरः ।
२६. नन्दनो, २७. विजयश्चैव, २८. जयो, २९. मन्मथ, ३०. दुर्मुखो ॥१३॥
३१. हेमलम्बो, ३२. विलम्बश्च, ३३. विकारी, ३४. शार्वरी, ३५. प्लवः ।
३६. शुभकृत्, ३७. क्षोमकृत्, ३८. क्रोधी, ३९. विश्वावसु, ४०. पराभवौ ॥१४॥
४१. प्लवंगः, ४२. कीलकः, ४३. सौम्यः, ४४. साधारणो, ४५. विरोधकृत् ।
४६. परिधावी, ४७. प्रमादी, ४८. स्यादानन्दो, ४९. राक्षसो, ५०. नलः ॥१५॥
५१. पिङ्गलः, ५२. कालयुक्तश्च, ५३. सिद्धार्थो, ५४. रौद्र, ५५. दुर्मती ।
५६. दुन्दुभी, ५७. रुधिरोद्गारी, ५८. रक्ताक्षी, ५९. क्रोधनः, ६०. क्षयः ॥१६॥

उक्तषष्ट्यब्देषु द्वादशयुगव्यवस्थामत्र वसिष्ठोक्तां लिखामि

अब्दैर्युगं पंचभिरब्दषष्ट्या युगानि च द्वादश वै भवन्ति ।
पञ्चाब्दनाथाः प्रकमशो युगस्य वह्न्यर्कचन्द्राब्जजशंकराः स्युः ॥१७॥

उक्तपद्यस्य - अयं भावः......प्रभवादिभिः पंचभिः - अब्दैः - एकं युगं भवति । इत्थं षष्ट्यब्दैः - द्वादशयुगानि भवन्ति । '५×२=६०" एकस्मिन् युगे-पंचवर्षाणां स्वामिनः क्रमशः...(१) वह्निः (अग्निः), (२) अर्कः=(सूर्यः), (३) चन्द्रः, (४) अब्जजः (ब्रह्मा), (५) शङ्करः (शिवः), रीत्यानया युगान्तर्गतपञ्चाब्दानां क्रमशः - पंचाधिपतयो भवन्ति ।

एकस्मिन् युगे यानि पञ्चवर्षाणि भवन्ति, तेषां नामानि तेषां देवाश्च अत्र वराहमिहिराचार्योक्त्या विलिखामि......

बृहस्पतिचारे बृहत्संहितायां श्रीवराहमिहिराचार्याः लिखन्ति......

"संवत्सरोऽग्निः परिवत्सरोऽर्कः—
इदादिकं शीतमयूखमाली ।
प्रजापतिश्चाप्यनुवत्सरः स्यात्—
इद्वत्सरः शैलसुताधिपश्च ॥१॥

उक्तपद्यस्य - अयं भाव...यः सम्वत्सरनामकः प्रथमोऽब्दस्तस्य अग्नि र्देवता भवति, यो द्वितीयः परिवत्सरोऽब्दस्तस्य सूर्यः अधिपो भवति, यः - इदावत्सरोऽब्दस्तस्य शीतमूयूखमाली - अर्थात् चन्द्रः - अधिपतिः भवति, चतुर्थो यः अनुवत्सरस्तस्य प्रजापतिः = अर्थात् - ब्रह्मा अधिपतिः भवति, पञ्चमो यः इद्वत्सरस्तस्य शैलसुतापतिः - अर्थात् शिवः अधिपति र्भवति, यथा द्वादशयुगानां अधिपतयो भवन्ति, तथैव वर्षाणा-

मपि अधिपतयो भवन्ति, यस्मिन् वर्षे यः देवः तस्मिन् वर्षे तस्य देवस्य यागादिकविधानं सम्पत्यर्थं कल्याणकरं च भवति ।

षष्ट्यब्दान्तर्गत द्वादशयुगानां नामानि, तेषां च द्वादशयुगानां देवविशेषान् वसिष्ठोक्तान् अत्र लिखामि

कृष्णः सूरिस्त्विन्द्रो ज्वलनस्त्वष्टा चाहिर्बुध्न्यः पितरः ।
विश्वेचन्द्रस्त्विन्द्रदहनस्त्वश्विनाख्यो भगस्त्वपरः ॥१॥

उक्तश्लोकस्य - अयंभामः......"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" इत्युक्तेः कृष्ण-शब्दोऽत्र विष्णुपर्यायवाचकोऽस्ति, अतः प्रथमयुगस्य विष्णुः देवता भवति, विष्णुनामकप्रथमं युगं लोके व्यवह्रियते, अनयैव रीत्या द्वितीयुगं वृहस्पतिसंज्ञकं भवति, तस्य युगस्य च स्वामी - अपि गुरुः एव भवति, तृतीयं युगं च इन्द्रनामकं भवति अस्य-इन्द्रः एव देवता भवति, चतुर्थयुगं च - अग्निनामकं तस्य च अग्निदेवो भवति, पञ्चमं युगं त्वष्टा - अर्थात् प्रजापतिनामकं तस्य च प्रजापतिः - देवो भवति, षष्ठं युगं तु - अहिर्बुध्न्यसंज्ञकं तस्य च पितरः देवाः - भवन्ति, अष्टमं युगं विश्वनामकं तस्य तु - विश्वेदेवा देवता भवति, नवमं युगं सोमनामकं तस्य च सोमः अर्थात् "चन्द्रः" देवो भवति। दशमं युगं तु इन्द्राग्निसंज्ञकं तस्य तु इन्द्रानलदेवो भवति, एकादशमं युगं अश्विसंज्ञकं भवति, तस्य तु - अश्विनीकुमारदेवो भवति, द्वादशं युगं तु भगसंज्ञकं भवति, तस्य देवस्तु भगः=अर्थात् सूर्यविशेषः एव भवति ।

प्रभवादिसम्बत्सरफलानि वसिष्ठोक्तानि - अत्र लिखामि

अब्दे प्रवृत्ते प्रभवेऽग्निकोपा सन्तीतयः पैत्तकफाश्चरोगाः ।
स्तोकं जलं मुञ्चति वारिवाहः सदा प्रमोदन्ति जनाश्च सर्वे ॥१॥
वृष्टिः प्रभूताखिलस्यवृद्धि र्जनानुरागं विभवे प्रवृत्ते ।
अन्योऽन्ययुद्धैः क्षितिपालकानां न दुःखमाप्नोति जनस्तथापि ॥२॥
गावः प्रभूतपयसः सकला धरित्री मेघै र्विसृष्टसलिलैः परिपूर्णवप्रा ।
आरामसंवृतपुरौघविचित्रितांगी तुष्टा प्रजापतिवरे परिपूर्णलोकाः ॥३॥
धात्रीसुरप्रवरयज्ञवरौघपूर्वैः पूर्णातिरम्यपुरसंघविचित्रांगी ।
अब्दे यदांगिरसि भूरिजनै र्विकीर्णा शश्वत् सुवृष्टिनिकरैश्च तडागपूर्णा ॥४॥
निखिला धरणी सहिता रथतुरगगजादिभि र्बहुभिः ।
कुत्रचिदर्घंप्रचुरं न कुत्रचिद् घनरसं प्रमाथ्यब्दे ॥५॥
वृषभनिभा वृषभाब्दे क्षितिपतयः सप्रजाः स्वस्थाः ।
बहुविधसस्यसमृद्धिः कृषिजनमतवृष्टिरतुला स्यात् ॥६॥
नानाविधैः सस्यविचित्रिता भू र्विचित्रभानौ भुवि चित्रवृष्टिः ।
अन्योऽन्ययुद्धैः क्षितिपालकानां कपालकेशास्थिकवन्धचित्रा ॥७॥
तरन्ति दुःखान्यपि तारणाब्दे जनाः प्रमोदन्ति सपुत्रमित्रैः ।
यथेप्सितं वर्षति जंभभेदी तथापि सीदत्यपरं च सस्यम् ॥८॥

ये पार्थिवेन्द्रा विलयं ययुस्ते युद्धेषु सर्वे सुखिनः परे स्युः ।
मुञ्चन्ति तोयं प्रचुरं पयोदा भीतिर्ज्वरेभ्यः खलु पार्थिवेऽब्दे ॥९॥

व्ययान्विताः सर्वजना व्ययाब्दे निरन्तरं वारिमयी धरित्री ।
धर्मप्रसक्ताः खलु पार्थिवेन्द्राः सीदन्ति ये पापरताः सचौराः ॥१०॥

वारिधरा वारिभयं मुञ्चत्यल्पं क्वचित् क्वचिद् बहुलम् ।
अवनीपालकसंयति निस्खलिता भूश्च सर्वधार्यब्दे ॥११॥

धरामरा गोकुलराजवृन्दा धर्मप्रसक्ताः खलु हेमलंबे ।
सीदन्ति सर्वे विरलार्घसस्यैरवृष्टिभिः क्षुद्भयपीडिताश्च ॥१२॥

विलंविवर्षे त्वरिवृन्दरोगैः स्वल्पार्घवृष्ट्युद्धतचौरसंघैः ।
निःस्वाः प्रजाः सत्वविहीनमान - विदेशगाः स्वोदरपूरणाय ॥१३॥

स्तोकं जलं मुञ्चति वारिवाहस्तथापि नानाविधसस्यपूर्णा ।
विकारिवर्षे निखिला जनास्ते जीवन्ति नानाविधवृक्षमूलैः ॥१४॥

शुभकृच्छरदि विभाति क्षितिरतुलैं मंखमहोत्सवैः सततम् ।
नीतिपथक्षितिपतिभिर्बहुविधसस्यार्घवृष्टिभिः सकला ॥१५॥

प्लववर्षे निखिलजनाः स्थलजलभवपण्यजीविनस्तत्र ।
बहुवृष्टिभिरखिलधरा प्लवसदृशा भवति जलमध्ये ॥१६॥

अवृष्टिचौराहवरोगवह्निभीतान् जनान् वीक्ष्य - सुकीलकाब्दे ।
मूर्जीवयामीति कथं विचार्य विचित्रनानाकरदाचतेभ्यः ॥१७॥

सुवृष्टिसस्यार्घधरा विभाति धर्मप्रसक्तक्षितिपोत्सवाद्यैः ।
स्वमार्गसंसक्तजनैरजस्रं सौम्याह्वयाब्दे प्रविनष्टदोषैः ॥१८॥

विविधामयचोरभयं मध्यमवृष्ट्यर्घसस्यमयम् ।
भुवि साधारणवर्षे निखिलजनानां च चोरभयम् ॥१९॥

ईतिभयं चोरभयं पिंगलवर्षे भवेन्नशत्रुभयम् ।
स्तोकजलं निखिलभुवि द्विजसज्जनवैरमन्योऽन्यम् ॥२०॥

दुर्मतिवर्षे वर्षति पर्जन्यः सततमंबुधाराभिः ।
निखिलजनानां हाटकमखिलं गृह्णन्ति कितवचौराश्च ॥२१॥

नरानजानश्वखरोष्ट्रपक्षिमृगांश्च नागाखिलभूतराशीन् ।
त्रिभागशेषं कुरुते क्षयाब्दे महीत्वनावृष्टिनृपाहवैश्च ॥२२॥

कलहरतक्षितिपतयो वारिधराश्चापि कुत्रचिज्जलदाः ।
सस्यानां भवति भयं त्वांगिरसे मिथुनराशिस्थे ॥२३॥

अतुलितसस्यसमृद्धा भवति धरा वारिदाः पयोवाहाः ।
निवसतिकर्कटराशौ प्रभूतपयसस्तदा गावः ॥२४॥

विलयं यान्त्यवनीशाः संयति सुजनाऽवनीसुरा निःस्वाः ।
अनुपमवृष्टिभिरखिलं धरातलं परिपूरितं हरिगे ॥२५॥

बहुवृष्टिभिरखिलधरा बहुविधधान्यार्घसंपूर्णा ।
वृश्चिकराशौ जीवे सर्वे सुखिनोऽन्त्यजातिविलयः स्यात् ॥२६॥

संकरशवरनिशाचरनिधनं सुखिनः परे गुरौ धनुषि ।
अचलाचलसदृशांवुदनिकरैः संपूर्णवारिमयी ॥२७॥
गुरौमृगस्थेऽम्बुधराः प्रकामं वर्षन्ति वाप्यौघतडागपूर्णा ।
शरीरिणां स्थावरजंगमानामानन्ददाऽभीष्टफलै र्धरित्री ॥२८॥
कुंभस्थिते देवगुरौ धरित्री पुष्पैः फलैरुत्तमसस्यरम्या ।
मीनस्थिते देवगुरौ धरित्री रम्या क्षितीशाः सुखिनः प्रजाश्च ॥२९॥

शुक्रचारेण वृष्टिविचारः···

मध्यमरेखानियतं गोवीथि भंवति मध्यरेखातः ।
वृषभैरावतगजनागाख्या वीथयः कुवेरदिग्भागे ॥१॥
दक्षिणतोऽपि जरद्गवमृगाजदहनाश्च नव भेदाः ।
वीथेरेकैकस्यार्क्षत्रितयं क्रमेणधिष्ण्यानि ॥२॥
दिनकरधिष्ण्यात् त्रितयं गोवीथिगतं द्विदैवधिष्ण्यतः ।
द्वादशभानि क्रमशो दक्षिणवीथेश्चतुष्टयस्थानि ॥३॥
आश्विनभादिद्वादशधिष्ण्यान्युत्तरवीथेश्चुतुष्टयस्थानि ।
अथ कथयामि नवानां वीथीनां फलानि तान्यधुना ॥४॥

उक्तपद्यानां अयं भावः ··· दिनकरस्य- सूर्यस्य, धिष्ण्यम्=नक्षत्रम्, हस्त-नक्षत्रम् - इत्यर्थः ।

वीथीनाम् फलं यद्यपि नारदेन मुनिना स्वसंहितायां अपि विस्तारेण लिखितम्, तत् मया पूर्वप्रसंगे प्रतिपादितं एव, अत्र तु वसिष्ठेन मुनिना यद् वैशिष्ट्यं समुक्तम् तद् वक्ष्यमाणचक्रं दत्वा वीथीनाम् फलस्य स्पष्टीकरणं करोमि ।

उत्तरदिशास्थ- वीथयः

१,-नागवीथिः=अश्विनी, भरणी, कृत्तिका । २-.गजवीथिः=रोहिणी, मृगशिरा,आर्द्रा ।
३-ऐरावतथवीथिः=पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा । ४-वृषवीथिः=मघा, पू०फा०, उ०फा० ।
५-मध्यरेखास्थगोवीथिः=हस्त, चित्रा, स्वाती

दक्षिणदिशास्थ- वीथयः

६-जरद्गववीथिः=विशाखा,अनुराधा,ज्येष्ठा ।७-मृगवीथिः=मूल,पूर्वाषाढ़ा, उ०षा० ।
८-अजवीथिः=श्रवण,धनिष्ठा,शतभिषा।९.-दहनवीथिः=पूर्वाभाद्रपदा,उत्तराभाद्रपदा,रेवती

वसिष्ठेन गोवीथिः मध्यभागस्था स्वीकृता । गोवीथितः चतस्रः- वीथयः उत्तरस्यां दिशि कथिताः । चतस्रश्च दक्षिणस्यां दिशि कथिताः ।

नारदेन तु··· "सौम्य - मध्यम - याम्येषु - मार्गेषु त्रित्रिवीथयः ।
शुक्रस्य दस्रभाद्यैश्च पर्यायैश्च त्रिभिस्त्रिभिः ॥"

इत्युक्त्वा - नागगज - ऐरावतवीथयः उत्तरस्यां दिशि कथिताः । वृषगो-जरद्गव - वीथयः - मध्यभागस्था कथिताः । मृग - अज - दहन - वीथयः दक्षिणस्यां दिशि स्वीकृताः । इत्थं नववीथीनां स्थितिर्नारदोक्ताऽस्ति । वीथिनक्षत्रविन्यासक्रमस्तु-नारद - वसिष्ठयोः तुल्यः - एव - वर्तते ।

वसिष्ठोक्तं नववीथीनां फलं लिखामि

नागवीथिविचरन् भृगोः सुतः पश्चिमदिशि च वृष्टिविनाशकृत् ।
क्षेमकृत् सुखकरो गजवीथ्यामर्घवृद्धिमतुलां करोति सः ॥५॥
शालीक्षुगोधूमयवादिसस्यसंपूर्णधात्री नितरां विभाति ।
ऐरावतोक्षाह्वययोश्च वीथ्योः स्थिते सिते संयति राजनाशः ॥६॥
गोवीथिगे दैत्यपुरोहिते भू र्विभाति नानाविधसस्य वृद्ध्या ।
जरद्गवायां मृगसंज्ञितायां मध्यार्घवृष्टि र्महदाहवश्च ॥७॥
क्षितीशसंग्रामजभीतिरीति र्वह्नेर्भयं वारिभयं जनानाम् ।
अजाग्निवीथ्योरतुलाग्निभीतिः क्वचित् क्वचिद् वर्षति वासवेन्द्रः ॥८॥
उदग्वीथिषु दैत्येज्यश्चास्तगश्चोदितोऽपि वा ।
सुभिक्षकृन्मध्यवीथ्यां सामान्यो याम्यगोऽशुभः ॥९॥
स्वातित्रये पूर्वदिशि पश्चिमे पितृपञ्चके ।
अनावृष्टिकरः शुक्रो विपरीतः सुवृष्टिकृत् ॥१०॥
दृष्टः समस्तदिवसे भयदश्चामयोद्भवः ।
दिनार्धं प्रतिदृष्टश्चेत् परेषां बलभेदकृत् ॥११॥

रोहिणीशकटभेदलक्षणं तत्फलं चात्र लिखामि

भिनत्तिरोहिणीचक्रं शुक्रः पैतृभतारकाम् ।
यदा तदा करोत्येनां कपालास्थिमयीं धराम्॥१२॥अर्थस्तु स्पष्टःएव।

वराहमिहिराचार्योक्तं बृहत्संहितास्थं रोहिणीशकटभेदमत्र लिखामि

प्राजापत्ये शकटे भिन्ने कृत्वेव पातकं वसुधा ।
केशास्थिशकलशबला कापालमिवव्रतं धत्ते ॥१॥

उक्तपद्यस्य-अयं भावः···शुक्रेण रोहिण्याः शकटे भिन्ने वसुधा=भूमिः पातकम् =ब्रह्महत्यामिव कृत्वा, केशैः=मूर्धजैः, अस्थिशकलैः=अस्थिखण्डैः, शवला=मिश्रित शुक्लकृष्णा भवति, अतः - कापालं व्रतं - इव धत्ते= धारयति, ब्रह्महत्यायाः कापालं व्रतं प्रायश्चितं भवति , कापालिकश्च केशास्थिशवलैः शवलो भवति ।

ब्रह्मसिद्धान्तोक्तं रोहिणीशकटलक्षणमत्र लिखामि

विक्षेपोऽंश- द्वितयादधिको वृषभस्य सप्तदशभागे ।
यस्य ग्रहस्य याम्यो भिनत्ति शकटं स रोहिण्याः ॥

भानुभट्टोक्तं रोहिणीशकटभेदलक्षणमत्र लिखामि

वृषस्यांशे सप्तदशे विक्षेपो यस्य दक्षिणः ।
अंशद्वयाधिको भिन्द्याद्रोहिण्याः शकटं तु सः ॥

महाकविकालिदासविरचित - ज्योतिर्विदाभरणोक्तं रोहिणोशकटभेलक्षणम् अत्र लिखामि

गविहयकुमितांशे "१।१७"- यस्य याम्यः पृषक्तो-
द्रुहिणभशकटं साद्धांशयुग्माधिकोऽसौ ॥

भवति भुवनभीतिं व्योमगोऽपीति भित्वा-
सृजति विधुयमारा लोकनाशं सृजन्ति

उक्तपद्यस्य - अयं भावः··· गवि= वृषराशौ, हयकुमितांशे सप्तदशमिते-अंशे गते सति="१/१७" यस्य ग्रहस्य याम्यो=दक्षिणगतः, पृषक्तो वाणः, सार्धांशयुग्माधिकः= त्रिशत्कलासहितांशद्वयाधिकः यदा भवति, तदा - असौ, व्योमगो =ग्रहाः, द्रुहिणभं= ब्रह्मणो नक्षत्रं रोहिणी, तस्यशकटं भित्वा भुवनभीतिं सृजति - अपि· पुनः पूर्वोक्तवाणवक्तव्यतायां="१/१७" सत्याम् विधुः-चन्द्रः, यमः- शनिः, आरः=भौमः, एते ग्रहाः - लोकनाशं सृजन्ति ।

ग्रन्थान्तरेऽपि रोहिणीशकटभेदफलमुक्तम्

रोहिणीशकटमर्कनन्दनो यदि भिनत्तिरुधिरोऽथवा शिखी ।
किं वदामि यदनिष्टसागरे जगदशेषमुपयाति संक्षयम् ॥

उक्तपद्यस्य - अर्थस्तु स्पष्टः - एव ।

कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्याममायां यदि भार्गवः ।
उदयं चास्तमानं च करोत्यम्बुमयीं क्षितिम् ॥१३॥
प्राक्पश्चिमस्थौ सुरदानवेज्यौ परस्परं सप्तमराशिसंस्थौ ।
तदा जनानां भयदौ जलाग्निरोगास्त्रचौराग्निनिशाचरेभ्यः ॥१४॥
अग्रगाः पृष्ठगा वापि खेटाः सन्निहिता रवेः ।
तदाति वृष्टिं कुर्वन्ति न चेन्नीचारिराशिगाः ॥१५॥
चत्वारः पंच वा खेटा वलिनस्त्वेकराशिगाः ।
राजाहवभयं दद्युरर्घमामयभीतिदाः ॥१६॥
यदा प्रतीपगौ खेटौ नृपसंक्षोभदौ तदा ।
प्रतीपगा स्त्रयो यत्र युद्धवृष्टिभयप्रदाः ॥१७॥
राजान्यत्वं च कुर्वन्ति चत्वारो यदि वक्रिताः ।
प्रतीपगाः पञ्चखेटा राजराष्ट्रविनाशदाः ॥१८॥
वर्त्रेन्दुकुन्दकुमुदस्फटिकप्रवाल-वैडूर्यशंखदधिपुण्डहिमोपमाभः ।
मुक्ताफलप्रकरतुल्यविशालकान्ति-रेवं विधो भृगुसुतः शुभदो नराणाम् ॥१९॥

उक्तपद्यानामर्थस्तु स्पष्टः एव ।

शनिचारेण वृष्टिविचारः —

तयोरहिर्बुध्न्यभयाम्ययोश्च धराधिपानां कलहस्त्ववृष्टिः ।
अनुक्तभेष्वर्कसुतः प्रजानां चरन् तदा मध्यमवृष्टिदः स्यात् ॥१॥
कीटाजपञ्चाननकर्कटेषु चरन् - शनिः क्षुद्रप्रदः प्रजानाम् ।
वृष्टेर्भयं कुत्रचिदामयश्च तथापि जीवन्ति जना कथं चित् ॥२॥
प्रक्षुभ्यन्ति क्षितीशाः प्रचलति वसुधा मोदते दस्युवर्गो-
धीभ्रंशो वृद्धिभाजां जनपदहरणं चित्रवर्षी पयोदः ।
चन्द्रार्कौ मन्दरश्मी ग्रहगणसहितौ वान्ति वाताः प्रचण्डाः-
चक्राकारं समग्रं भ्रमति जगदिदं मीनगे सूर्यसूनौ ॥३॥

राहुचारेण वृष्टिविचारः —

राहुरसौ दनुजत्वाद् भुजगाकारेण गृह्णाति ।
भूगोलाधो भागे दर्पणसदृशे रवौ सदा भ्रमति ॥१॥
उद्भूताखिलधरणीछाया - छादयति सेन्दुमुपरिस्थम् ।
स्थगयति रविमुपरिस्थं पश्चादागत्य शीघ्रगश्चन्द्रः ॥२॥
अवनति - विक्षेप - वशाद् दूराद्दूरं गतःसततम् ।
षण्मासाभ्यन्तरिताद् ग्रहणं प्रायेण संभवति ॥३॥
गणितस्कन्धाद् ज्ञात्वा सृष्ट्यादेरिष्टपर्वपर्यन्तम् ।
पर्वसमूहं यत्तत्सप्तभिरवशिष्टपर्वेशाः ॥४॥

सप्तपर्वेशा भवन्ति

धातृशशीन्द्रकुवेरा वरुणाग्नियमाश्च विज्ञेयाः ।
एषां पर्वेशानां क्रमशस्तु फलानि वक्ष्यन्ते ॥५॥
ब्राह्मे पर्वणि सम्यग्द्विजगोपसुवृद्धिरपरिमिता ।
सौम्ये पर्वणि तद्वत् सज्जनहानिस्त्ववृष्टिजाद् भीतिः ॥६॥
शारदसस्यविनाशः क्षितिपतिकलहः सुवृष्टिरैन्द्रे स्यात् ।
धनिकानां धनहानिस्त्वतुलावृष्टिश्च कौवेरे ॥७॥
निखिलजनानां वृद्धिः क्षेमकरी वारुणे च नृपहानिः ।
आग्नेये चाग्निभयं त्वतुला वृष्टिः क्षितीशकलहश्च॥८॥
दुर्भिक्षकरं याम्यं लोकानां भीतिदं सततम् ।
पर्वाधिपफलमुक्तं यत्तद्- ज्ञातव्यं चेन्द्विनयो र्ग्रहणे ॥९॥
पर्यन्ते भवति तमो न तु मध्ये तमोऽन्तकः सोऽपि ।
ईतिभयं सस्यानां डामरमधिकं भवेत्तत्र ॥१०॥

ईतिलक्षणम्

अतिवृष्टिरनावृष्टिः मूषकाः शलभाः शुकाः ।
अत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः ॥११॥
दिनकररश्मिसमाने दुर्भिक्षं पक्षिसंघपीडा च ।
धूम्रनिभाः क्षेमकराः सस्यानां मन्दवृष्टिदाः सततम् ॥१२॥
दूर्वासमानवर्णे हारिद्रे वायुरुभयं जगतः ।
पाटलकुसुमसमानस्त्वशनाद्भीतिप्रदो राहुः॥१३॥
पङ्कविदूषितरूपः क्षत्रियकुलनाशदस्त्ववृष्टिकरः ।
बालार्काम्बुजसदृशस्त्वाहवदस्त्विन्द्रचापसदृशश्च ॥१४॥
ग्रहणसमयेऽति वृष्टिः पवनोत्पाता भवन्ति यदा ।
आतङ्कमरकभीति विपुला स्यात् क्षुद्भयं चैव ॥१५॥
सुभिक्षकृत्क्षेममतीववृष्टि र्मासे सहे पर्वणि रुक्प्रदः स्यात् ।
काश्मीरकान् कौशलकान् सपौण्ड्रान् दुनोति राहुः खलु यायजूकान् ।१६।

दुनोतिराहु र्मनुजांश्च माघे सस्यार्घवृष्टि प्रचुरां करोति ।
हानिप्रदः सस्यसुवृष्टिदश्च दृष्टं तमो भूपविरोधकश्च ॥१७॥
पीडाप्रदो देवपतिश्चराहुर्मासे मधौ पर्वणि मन्दवर्षी ।
प्रध्वंसमायान्ति तथा सुवृष्टि ज्येष्ठे च मासे ग्रहणं यदि स्यात् ॥१८॥
आषाढ़मासे ग्रहणं तडागवापीनदीदीर्घिकवप्रपूर्णाः ।
काश्मीरगान्धारपुलिन्दचीना लयं प्रयान्त्यल्पजनाः सुतुष्टाः ॥१९॥
निहन्तिदेवोऽपि च मन्दवर्षी दृष्ठो नभोमासि च सैंहिकेयः ।
स्त्रीणां च गर्भं विनिहन्ति राहु र्नभस्य मासे भुवि भूरिवृष्टिः ॥२०॥
पौषे द्विजक्षत्रजनोपतापस्त्वनर्घवृष्टी क्षितिपालभीतिः ।
आनर्तपौण्ड्रान् झपजश्च राहु र्निहन्ति मासे त्विषसंज्ञकेऽपि ॥२१॥
हनू च कुक्षी त्वथ पादभेदैः संछर्दनं यज्जरणं ततश्च ।
मध्ये विदारं च विदारमन्ते मोक्षप्रभेदा दश चन्द्रभान्वोः ॥२२॥

दक्षिणहनुभेदसंज्ञितमाग्नेय्यामपगमनमिन्दोश्च ।
अपि रुक्सस्यविमर्दनमतिवृष्टि र्नरपतेः क्षोभः ॥२३॥
अभिगमनं चैशान्यां वामो हनुभेदसंज्ञितः सोऽपि ।
शस्त्रभयं रोगभयं करोति वृष्टि च राजहानिं च ॥२४॥

केतुचारेण वृष्टिविचारः—

धूमनिभो याम्यायां कपालकेतुः वृहत्तनुः स्निग्धः ।
दिक्षु विदिक्षुप्रभवः क्षुन्मरकावृष्टिरोगकरः ॥१॥

बृहत्संहितायां - वराहमिहिराचार्योक्तम् - अगस्त्यचारेण वृष्टिज्ञानम्

सङ्ख्याविधानात् प्रमिदेशमस्य-विज्ञायसन्दर्शनमादिशेत् - ज्ञः ।
तच्चोज्जयिन्यामगतस्य कन्यां - भागैः स्वराख्यैः स्फुटभास्करस्य ॥१॥

उक्तपद्यस्य - अयं भावः— स्पष्टसूर्यः—यदा सिंहराशेः- त्रयोविंतिप्रमितान् "४।२३" - अंशान् - भुङ्क्ते, तदा अगस्त्यस्य उदयो दक्षिणस्यां दिशि भवति, सिंह-राशेः- त्रयोविंशतिभागभोगानन्तरं सिंहस्य चतुर्विंशतिप्रमिते- अंशे सूर्यसंक्रमणात् प्रागेव- अगस्त्योदयो दक्षिणस्यां दिशि भवतीति भावः ।

रोगान् करोति परुषः कपिलस्त्ववृष्टि- धूम्रो गवामशुभकृत् स्फुरणो भयाय ।
मांजिष्ठरागसदृशः क्षुधमाहवांश्च - कुर्यादणुश्च पुररोधमगस्त्यनामा ॥२॥
उल्कया विनिहतः शिखिना वा - क्षुद्भयं मरकमेव विधत्ते ।
दृश्यते स किल हस्तगतेऽर्के रोहिणीमुपगतेऽस्तमुपैति ॥३॥

उक्तपद्यस्य अयं भावः...यदा हस्तनक्षत्रगतो - अर्को भवति, तदा दक्षिणस्यां दिशि-अगस्त्यस्य-उदयो भवति । यदा रोहिणीनक्षत्रगतः सूर्यो भगति तदा अगस्त्यस्य - अस्तो भवति ।

हन्यादुल्कायदागस्त्यं केतु र्वाप्युपधूपयेत् ।
दुर्भिक्षं जनमारश्च तदा जगति जायते ॥४॥

सुस्निग्धवर्णःश्वेतश्च शातकुम्भसमप्रभः ।
मुनिः क्षेमसुभिक्षाय प्रजानामभयाय च ॥५॥
अत्र मुनिशब्देन-अगस्तस्यैव ग्रहणमस्ति ।

वर्षेश - मन्त्रि - धान्येश - रसेशानां तेषां फलानां च निर्णयः

चैत्रस्य शुक्लाद्यतिथेश्च वारनाथोऽब्दपस्तस्य चमूपतिः सः ।
मेषस्य संक्रान्तिथेश्च वारनाथस्तु सस्याधिपति र्भवेत् सः ॥१॥
कुलीरसंक्रान्तिजवारनाथो रसाधिपस्तौलिनिवासरेशः ।
फलं तथैषां क्रमश्चतुर्णां पृथक् पृथक् यत् प्रयतःप्रवक्ष्ये ॥२॥

उक्तपद्यानां अयं भावः...

१— चैत्रशुक्लप्रतिपदायां यो वारस्तस्य यः - अधिपति र्भवति, स एव वर्षे - श्वरो भवति ।

२—मेषसंक्रान्ति र्यस्मिन् दिने भवति, तद्दिनेशो ग्रहः - चमूपतिः= अर्थात् - मन्त्री भवति । अत्र - चमूपतिशब्देन - मन्त्रिणो ग्रहणमस्ति ।

३— कर्कसंक्रान्ति र्यस्मिन् दिने भवति, तद्दिनेशः ग्रहः सस्यस्य - अर्थात् - अन्नस्य - अधिपतिः = "धान्येशः" भवति ।

४—यस्मिन् दिने तुलासंक्रान्ति र्भवति, तद्दिनेशो ग्रहः - रसाधिपो भवति ।

वर्षेश - मन्त्रिणो विषये मतान्तरम्

वर्षाधिपो मेषदिनस्य वारश्चमूपतिश्चैत्रदिनादिवारः ।
हूणेषु वङ्गेषु खशेषु मागधेष्वेवपौण्ड्रेष्वपि टक्करेषु ॥३॥

उक्तपद्यस्य - अयं भावः......हूण - वङ्ग - खश - मागध - पौण्ड्र - टक्कर - देशेषु मेषसंक्रान्तिदिने यो वार स्तद्दिनेशो ग्रहः वर्षेशो भवति, इत्येतादृशो व्यवहारस्तेषु हूणादिदेशेषु प्रचलति, एवं च चैत्रप्रतिपदायां तिथौ यो वारो भवति, तद्वारेशो ग्रहः चमूपतिः=अर्थात् - मन्त्री भवति, इत्येतादृशो व्यवहारः - हूण - वङ्ग-खश-मागध-पौण्ड्र-टक्कर-देशमात्रेष्वेव कुत्रचिद् प्रचलित, न तु सर्वदेशेषु, अतः स्वल्पमान्योऽयं पक्षः - उपेक्षणीयोऽस्ति इति भावः ।

वर्षेशफलम्

अब्दाधिपे हिमपतौ खलुमध्यवृष्टि र्मन्दप्रभर्क्षगणशीतकरं नभश्च ।
हन्तुं सपत्नविषयान् निखिलक्षितीशा नित्यं चरन्ति भुवि भूरिबलावृताश्च ॥१॥
कुजेऽब्दनाथे पिटकामयाद्यैः सदाकुला वारिसुसस्यपूर्णा ।
प्रभूतवायु र्भुवि मध्यवृष्टि र्गदाहवप्रोद्धतराजकोपः ॥२॥
मध्यानि सस्यानि विचित्रवृष्टिश्चौरामयप्रोद्धतराजकोपः ।
यदुत्तरं सस्यमयं कुधान्यं सम्पूर्णमस्मिन् रविजेब्दनाथे ३

अन्ये ग्रहा यदा वर्षपतयो भवन्ति, तदा सुन्दरमेव फलं शास्त्रेषु वैज्ञानिकैः मुनिभिः समुक्तम् ।

वर्षमन्त्रिफलम्

मन्त्रिणि शशाङ्कतनये प्रभूतवायु र्निरन्तरं वाति ।
मध्यफलदा धरणी विभाति सुरसदृशलोकैश्च ॥१॥
सुरसचिवे मन्त्रिणि सति सुवृष्टि वहुसस्यसम्पूर्णम् ।
जगदखिलं जलपूर्णं प्रोद्धतराजाहवो ज्ञेयः ॥२॥
मन्दफला निखिलधरा न वारि मुञ्चन्ति वारिधराः ।
दिकरतनये सचिवे प्रभया रहितं वियत्सततम् ॥३॥

अन्ये ग्रहा यदा मन्त्रिणो भवन्ति, तदा नाति श्रेष्टं मध्यमं च फलं वर्षे भवति ।

वर्षे धान्येशफलम्

सस्याधीशे भास्वति भूमौ विरलानि सर्वसस्यानि ।
अतिविपुलं त्वीतिभयं कुलित्थचणकादिसंपूर्णम् ॥१॥
अनिलहतं सस्यचयं त्वतिमध्यमवृष्टिसम्पन्नम् ।
शशितनये सस्यपतौ त्वपरं धान्यं प्रभूतफलम् ॥२॥
सस्यपतौ त्रिदशगुरौ वहुविधसस्यार्घसंपूर्णम् ।
टङ्कणमागधदेशे मध्यमसस्यार्धवृष्टिः स्यात् ॥३॥

अन्ये ग्रहा यदा सस्येशा भवन्ति, तदा मध्यमं फलं भवति ।

वर्षे रसेशफलम्

चन्दन - कुङ्कुम - गुग्गुल-तिल - तैलैरण्डतैलमुख्यानि ।
प्रचुराणि रसान्यतुलं रसनाथे भास्करे सततम् ॥१॥
इक्षुविकारं त्वखिलं क्षीरविकारं च सर्वतैलानि ।
गन्धयुतानि च सर्वाण्यपि सुलभान्येव रसपतौ चन्द्रे ॥२॥

भौम - वुधशनैश्चराणां फलं नातिश्रेष्ठम्, अन्येषां तु प्रायः मध्यमं भवति ।

वृष्टिगर्भधारणादिलक्षणानां विवेचनमत्र - करोमि

वर्षागर्भादिविषये वराहमिहिराचार्योक्तं...आर्षमतं अत्र लिखामि......

अन्नं जगतः प्राणाः प्रावृट्कालस्य चान्नमायत्तम् ।
यस्मादतःपरीक्ष्यः प्रावृट्कालः प्रयत्नेन ॥१॥

सिद्धसेनमतमत्र लिखामि......

शुक्लपक्षमतिक्रम्य कार्तिकस्य विचारयेत् ।
गर्भाणां सम्भवं सम्यक् सस्यसम्पत्तिकारणम् ॥२॥

गर्गमतं लिखामि......

शुक्लादौ मार्गशीर्षस्य पूर्वाषाढ़ाव्यवस्थिते ।
निशाकरे तु गर्भाणां तत्रादौ लक्षणं वदेत् ॥३॥

कश्यपमतं लिखामि......

सितादौ मार्गशीर्षस्य प्रतिपद्दिवसे तथा ।
पूर्वाषाढ़ागते चन्द्रे गर्भाणां धारणं भवेत् ॥४॥

वराहमिहिराचार्यस्य - मतं - लिखामि......

यन्नक्षत्रमुपगते गर्भश्चन्द्रे भवेत् स चन्द्रवशात् ।
पञ्चनवते दिनशते तत्रैव प्रसवमायाति ॥५॥

उक्तपद्यस्य - अयं भाव...यस्मिन् नक्षत्रे चन्द्रे स्थिते - गर्भः संभूतः, सः गर्भः सार्धषड्भिः मासैः - अर्थात् सार्धषड्मासप्रमिते काले गते सति तस्मिन् गर्भधारणनक्षत्रे एव चन्द्रे स्थिते प्रसवं आयाति, अर्थात्- यस्मिन् नक्षत्रे वर्षागर्भस्थिति र्जाता तस्मिन्नेव नक्षत्रे पुनः चन्द्रस्थितौ सत्यां सार्धैः षडभिः = ६/१५ मासैः - गर्भस्य प्रसवः- अर्थाद्- वृष्टेः उत्पत्तिः भवतीति सारांशः ।

समाससंहितायां वराहमिहिराचार्याः लिखन्ति......

पौषासितपक्षाद्यैः श्रावणशुक्लादयो विनिर्देश्याः
सार्धैः षड्भि र्मासै र्गर्भविपाकः स नक्षत्रे ॥६॥
तस्मादेवं स्थिते चन्द्रे सावनमानवशाद् गर्भप्रसवो भवति ।

बृहत्संहितायां श्रीवराहमिहिराचार्याः लिखन्ति......

सितपक्षभवाः कृष्णे शुक्ले कृष्णा द्युसम्भवा रात्रौ ।
नक्तं प्रभवाश्चाहनि सन्ध्याजाताश्चसन्ध्यायाम् ॥७॥

वर्षाविषये गर्गमुनिमतमत्र लिखामि...

दिवा भवति यो गर्भो रात्रौ स इति पच्यते ।
शुक्ले पक्षे समुद्भूतः कृष्णे पक्षे च बर्षति ॥८॥
पौर्णमास्यामथोत्पन्नः सोऽमावास्यां प्रवर्षति ।
अमावास्यां समुद्भूतः पूर्णमास्यां प्रवर्षति ॥९॥
पूर्वसन्ध्यासमुद्भूतः पश्चिमायां प्रवर्षति ।
पश्चिमायां समुद्भूतः पूर्वसन्ध्यां प्रवर्षति ॥१०॥
पूर्वाह्णे यः समुद्भूतः पश्चाद्रात्रौ प्रवर्षति ।
निशायां पश्चिमे यश्च स पूर्वाह्णे प्रसूयते॥११॥
दिनार्धे तु समुत्पन्नः स निशार्धे प्रसूयते॥१२॥
माघेन श्रावणं विद्यान्नभस्यं फाल्गुनेन तु ।
चैत्रेणाश्वयुजं प्राहु - र्वैशाखेन तु कार्तिकम् ।
शुक्लपक्षेण कृष्णं तु कृष्णपक्षेण चेतरम् ।
रात्र्यह्नोश्च विपर्यासं कार्यं काले विनिश्चयम् ॥१४॥

वराहमिहिराचार्योक्तं मेघानां वायोश्च लक्षणम्

पूर्वोद्भूताः पश्चादपरोत्थाः प्राग्भवन्ति जीमूताः ।
शेषास्वपिदिक्ष्वेवं विपर्ययो भवति वायोश्च ॥१५॥

काश्यपमतमत्र - लिखामि......

शीतमभ्रं तथा वायुश्चन्द्रार्कपरिवेषणम् ।
माघेमासि परीक्षत श्रावणे वृष्टिमादिशेत् ॥१६॥

फाल्गुने चात्रसञ्जातं वृष्टिस्तनितमेव च ।
पुरो वाताश्च ये प्रोक्ता मासि भाद्रपदे शुभम् ॥१७॥
बहुपुष्पफला वृक्षा वाताः शर्करवर्षिणः ।
शीतवर्षं तथाभ्राणि चैत्रेणाश्वयुजं वदेत् ॥१८॥
वहन्ति मृदवो वाताः पुरः शीघ्रं प्रदक्षिणाः ।
वैशाखे तानि रूपाणि कार्तिके मासि वर्षति ॥१९॥

श्रीवराहमिहिराचार्योक्तं गर्भकाले मेघानां लक्षणम्

मुक्तारजतनिकाशास्तमालनीलोत्पलाञ्जनाभासः ।
जलचरसत्वाकारा गर्भेषु घनाः प्रभूतजलदाः ॥२०॥
तीव्रदिवाकरकिरणाभितापिता मन्दमारुता जलदाः ।
रुषिता इव धाराभि र्विसृजन्त्यम्भः प्रसवकाले ॥२१॥

गर्गोक्तं गर्भोपघातलक्षणम् - वृष्टिगर्भनष्टलक्षणमत्र लिखामि

अश्मवर्षं तमोवर्षं मांसशोणितवर्षणम् ।
उल्कानिर्घातकम्पश्च वज्रपातस्तथैव च ॥२२॥
परिवेषाः परिघयो वासवस्य धनूंषि च ।
अनभ्रस्तनितं वर्षं दिशां दाहस्तथैव च ॥२३॥
अनार्तवं पुष्पफलं वारुणीयेषु वर्षणम् ।
ग्रहयुद्धेषु घोरेषु हतान् गर्भान् विनिर्दिशेत् ॥२४॥

गर्भे संजाते - सति - अश्मवर्षादिप्रभृतिषु - उत्पातेषु सत्सु - पूर्वं - संभूताः गर्भाः विनष्टाः भवन्तीति सारांशः ।

गर्भे बहुतोयदनक्षत्राणि आर्षोक्तानि - वराहमिहिराचर्यैः उक्तानि तानि - अत्र लिखामि

भद्रपदाद्वय - विश्वाम्बुदेवपैतामहेष्वथर्क्षेषु ।
सर्वेष्वृतुषु विवृद्धो गर्भो बहुतोयदो भवति ॥२५॥

बहुदिनवर्षप्रदानि - वर्षागर्भनक्षत्राणि

शतभिषगाश्लेषार्द्रा - स्वातिमघासंयुतः शुभो गर्भः ।
पुष्णाति बहून् दिवसान् हन्त्युत्पातैर्हतस्त्रिविधैः ॥२६॥

गर्गोक्तानि बहुतोयदनक्षत्राणि अत्र लिखामि

प्राजापत्यं मघा श्लेषा रौद्रं चानिलवारुणम् ।
आषाढ़द्वितयं चैव तथा भाद्रपदाद्वयम् ॥२७॥
नक्षत्रदशकं चैतद् यदि स्याद् ग्रहदूषितम् ।
न गर्भाः सम्पदं यान्ति योगक्षेमं न कल्पते ॥२८॥
उल्कया निहतं वापि केतुनावाप्यधिष्ठितम् ।
न गर्भाः सम्पदं यान्ति वासवश्च न वर्षति ॥२९॥

उक्तपद्यानामर्थमस्तु सरल एव, अतोऽत्र व्याख्या न कृता मया ।

वर्षावायुविज्ञानविषये श्रीवराहमिहिराचार्याः लिखन्ति

मृगमासादिष्वष्टौ षट्षोडश विंशतिश्चतुर्युक्ता ।
विंशतिरथदिवसत्रयमेकतमर्क्षेण पञ्चम्यः ॥३०॥

उक्तपद्यस्य - अयं भावः......शतभिषा - आश्लेशा - आर्द्रा - स्वाति - मघा एषां पञ्चनक्षत्राणां मध्यतः - एकतमेन नक्षत्रेण निम्नाङ्कितवर्षादिनप्रमाणं भवति। उक्तपञ्चनक्षत्राणां मध्यतः किमपि एकं नक्षत्रं मार्गशीर्षमासे वर्षागर्भधारणादिने भवेत् चेत्तर्हि गर्भधारणदिनात् पञ्चनवते दिनशते अतिक्रान्ते - अर्थात् - व्यतीते सति अष्टौ दिवसान् - वासवो देवः "इन्द्रः" वर्षति, अष्टदिनान्तं यावत्तावद् वृष्टि र्भवति इति तत्वार्थः ।

एवं पौषे मासे गर्भधारणादिने उक्तनक्षात्रणां मध्यतः किमपि नक्षत्रं भवेच्चेत्तर्हि पञ्चनवते दिनशते, अर्थात् सार्धषड्मासे = "६/१५" व्यतीते सति षड्दिनान्तं यावत्तावद् वृष्टि र्भवति ।

एवं माघमासे - उक्तनक्षत्राणां मध्यतः किमपिनक्षत्रं गर्भधारणसमये भवेत् - चेत् - र्तह - षोडश दिनान्तं यावत् - तावद् वर्षा भवति ।

. इत्थं फाल्गुने मासे वर्षागर्भधारणसमये - उक्तनक्षत्रमध्यतः किमपि नक्षत्रं भवेच्चेत्तर्हि चतुर्विंशति —"२४" दिनान्तं यावत्तावद् वर्षा भवति पञ्चनवते दिनशतेऽतिक्रान्ते सति ।

एवं चैत्रमासे वर्षागर्भदिवसे उक्तपञ्चनक्षत्रेष्य - कस्मिन् - अपि नक्षत्रे सति-पञ्चनवते दिनशतेऽतीते विंशति "२०" दिनान्तं यावत्तावद् वर्षा भवति ।

उक्तरीत्या वैशाखमासे वर्षागर्भसमये उक्तनक्षत्रमध्यतः किमपिनक्षत्रं - भवेत् चेत्तर्हि पञ्चनवते दिनशते व्यतीते सति दिनत्रयं यावत्तावद् वर्षा भवति निरन्तरम् ।

अमुमेवार्थं - ऋषिपुत्रोक्तमत्र - लिखामि

माघे षोडशसंख्यास्तु षोडशाष्टौ च फाल्गुने ।
विंशतिश्चैत्रमासे तु त्रयश्चेन्द्रादिग्दैवते ॥३१॥
अष्टौ सौम्येऽथषट्पौषे संख्यास्तासु च वर्षति ॥३२॥

श्रीवराहमिहिराचार्या वृष्टिदूरीप्रमाणं कथयन्ति

पञ्चनिमित्तैः शतयोजनं तदर्द्धार्द्धमेकहान्याऽतः ।
वर्षति पञ्चनिमित्ताद् रूपेणैकेन यो गर्भः ॥३३॥

उक्तपद्यस्य - अयंभावः......वर्षागर्भधारणसमये (१) पवनः, (२) सलिलं, (३)विद्युत्, (४) गर्जनं, (५) मेघः, इति पञ्चनिमित्तानि भवन्ति । एषु पञ्चसु निमित्तेषु सत्सु - एव - परिपूर्णरूपेण - वृष्टिगर्भस्य धारणम् - भवति ।

यस्मिन् प्रदेशे दैवज्ञेन - वृष्टिगर्भस्य परीक्षणं कृतम्, तस्मिन् प्रदेशे स्थलविशेषे वा यदि - उपर्युक्तानि पञ्चनिमित्तानि वर्षागर्भधारणसमये जायन्ते, तदा तस्मात् प्रदेशात् - स्थलतो वा - शतयोजनभूमिप्रदेशान्तं यावतावद् वर्षा भवति, गर्भधारण-

दिनाद् - पञ्चनवते दिनशते अर्थात् - सार्धषड्मासे व्यतीते सति - आधुनिकगणितरीत्या तु "१४५४ किलोमीटराः/६०० गजाः" किलोमीटरान्तं यावत्तावद् भूमिप्रदेशे वर्षा जायते, इति भावः।

वृष्टिगर्भधारणसमये चतुर्निमित्तेषु सत्सु - पञ्चनवते दिनशतेऽतीते सति शतार्धम् अर्थात् - पञ्चाशत् योजनानि = (७२७ किलोमीटराः/३०० गजाश्च) भूमिप्रदेशमभिवाप्य वर्षा भवति, त्रिषु निमित्तेषु सत्सु - पञ्चाशदर्धम् - अर्थात् पञ्चविंशति - योजनानि - अभिवाप्य वर्षा भवति। गर्भधारणसमये द्विनिमित्तो - गर्भः सार्धद्वाशयोजनानि अभिव्याप्य वर्षति। एकनिमित्तो गर्भः - गर्भधारण स्थानात् - पञ्चयोजनभूमिप्रदेशं - अभिव्याप्य वर्षति।

श्रीवराहमिहिराचार्यः प्रत्येकनिमित्तसंयुक्तानां गर्भाणां जलमानप्रमाणं लिखन्ति

द्रोणः पचञ्चनिमित्ते गर्भे त्रीण्याढकानि पवनेन।
षड्विद्युता नवाभ्रैः स्तनितेन द्वादश प्रसवे ॥३४॥

वर्षाविषये वृद्धगर्गमतमत्र लिखामि

वाते तदाढकं विद्यात् स्तनिते द्वादशाढकम्।
नवाढकं तथाभ्रेषु द्योतितेषु षडाढकम् ॥३५॥
निमित्तपञ्चकोपेते द्रोणं वर्षति वासवः ॥३६॥

मत्स्य - करकाशनिवर्षाविधानम् श्रीवराहमिहिराचार्याः लिखन्ति

क्रूरग्रहसंयुक्ते करकाशनिमत्स्यवर्षदा गर्भाः।
शशिनि रवौ वा शुभसंयुतेक्षिते भूरिवृष्टिकराः ॥३७॥

उक्तपद्यस्य - अयं भावः......गर्भधारणकाले वर्षागर्भनक्षत्रे क्रूरग्रहसंयुक्ते सति वर्षागर्भाः करकावृष्टिम् अर्थात् - ओलावृष्टिम्, अशनिवृष्टिम् - विद्युद्वर्षाम् मत्स्य - वृष्टिम्=अर्थात् - मीनवर्षा=लोकप्रसिद्धमछलीयुक्तवर्षाम् प्रयच्छन्ति, क्रूरग्रहसंयुक्ते तस्मिन् - वर्षागर्भनक्षत्रे शशिनि - चन्द्रे रवौ - आदित्ये वा तत्र - स्थिते तस्मिन् च शुभग्रहे - बुध - गुरु - शुक्रैः संयुक्ते, अथवा - ईक्षिते = दृष्टे सति बहुवृष्टिप्रदाः - गर्भाः - जायन्ते।

वर्षागर्भस्रावलक्षणमत्र वराहमिहिराचार्योक्तं लिखामि

गर्भसमयेऽति वृष्टि गर्भाभावाय निर्निमित्तकृता।
द्रोणाष्टांशेऽभ्यधिके वृष्टे गर्भः स्रुतो भवति ॥३८॥

वर्षागर्भसमये निमित्तरहिता - अतिवृष्टिः वृष्टिगर्भस्रावकरा भवतीति भावः।

वर्षानिमित्तानि - वर्षाकारणानि श्रीवराहमिहिराचार्याः लिखन्ति

प्रायो ग्रहाणामुदयास्तकाले समागमे मण्डलसङ्क्रमे च।
पक्षक्षये तीक्ष्णकरायनान्ते वृष्टिर्गतेऽर्के नियमेन चार्द्राम् ॥३९॥

ओलामिश्रितवृष्टिकारणं श्रीवराहमिहिराचार्याः लिखन्ति

गर्भः पुष्टः प्रसवे ग्रहोपघातादिभि र्यदि न वृष्टः।
आत्मीयगर्भसमये करकामिश्रं ददात्यम्भः ॥४०॥

उक्तपद्यस्य - अयंभावः......योवर्षागर्भः - गर्भग्रहणकाले पुष्टः, प्रसवकाले तु पञ्चनवते दिनशते गते सति - ग्रहोपघातैः - अर्थात् - दिव्यान्तरिक्षभौमैः - उत्पातैः यदि न वृष्टस्तदा स पूर्वं धारितो गर्भः पुनः - आत्मीयगर्भसमये - अर्थात् - पुरस्तात् द्वितीयगर्भग्रहणकाले करकामिश्रम् - अर्थात्-उपल="ओला" संयुक्तं वर्षणम्-करोति ।

ओलावृष्टिविषये श्री वराहमिहिराचर्याः विशेषं लिखन्ति

काठिन्यं याति यथा चिरालधृतं पयः पयस्विन्याः ।
कालातीतं तद्वत् सलिलं काठिन्यमुपयाति ।।४१।।

वर्षागर्भस्य पुष्टिलक्षणं श्रीवराहमिहिराचर्याः लिखन्ति

पवन-सलिल-विद्युद्-गर्जिताभ्रान्वितो यः-स भवति वहुतोयः पञ्चरूपाभ्युपेतः।
विसृजति यदि तोयं गर्भकालेऽति भूरि-प्रसवसमयमित्वा शीकराम्भः करोति ।।

उक्तपद्यस्य अयंभावः... वर्षागर्भधारणसमये गर्भो यदि वहुतोयं विसृजति, तदा गर्भधारणदिनात् पञ्चनवते दिनशते गते सति शीकराम्भः करोति, जलविन्दून् ददाति, न प्रभूतं वर्षति जलम् ।

वायुधारणान् दिवसान् श्रीवराहमिहिराचार्याः लिखन्ति

ज्येष्ठसितेऽष्टम्याद्याश्चत्वारो वायुवारणा दिवसाः ।
मृदुशुभपवनाः शस्ताः स्निग्धघनस्थगितगगनाश्च ।।४३।।

उक्तपद्यस्य अयं भावः...... ज्येष्ठशुक्लपक्षस्य - अष्टमीतः-आरभ्य - चत्वारो दिवसाः - वायुधारणसंज्ञकाः भवन्ति, ते दिवसाः - वायुभिः - धार्यन्ते, अतस्ते-वायु - धारणा दिवसाः - इति व्यवह्रियन्ते, ते दिवसाः - मृदुशुभपवनाः शस्ताः - भवन्ति, तेषु दिवसेषु - मृदुः = सुखस्पर्शकरः, तथा च - उत्तर - ईशान - पूर्वदिशोत्पन्नो वायुः शुभो भवति, तेषु दिवसेषु च - यदा - स्निग्धैः=अरूक्षैः, घनैः=मेघैः, स्थगितम् = आच्छन्नम्, गगनम् = आकाशम् - भवति, तदा ते दिवसाः शस्ताः = श्रेष्ठाः भवन्ति, नान्यथेति भावः ।

अत्र श्रीवराहमिहिराचार्याः वैशिष्ट्यं लिखन्ति

तत्रैव स्वात्याद्ये वृष्टे भचतुष्टये क्रमान्मासाः ।
श्रावणपूर्वा ज्ञेयाः परिता धारणास्ताः स्युः ।।४।।

उक्तपद्यस्य - अयं भाव...... तत्रैव ज्येष्ठशुक्लपक्षे स्वात्याद्ये - भचतुष्टये - अर्थात् - स्वाती - विशाखा - अनुराधा - ज्येष्ठासंज्ञकनक्षत्रचतुष्टये - वृष्टे - अर्थात् वर्षासंभूते सति ताः - धारणाः परिस्रुताः भवेयुः, तासां धारणानां गर्भच्युतो भवतीति भावः । स्वाती - विशाखा - अनुराधा - ज्येष्ठा - संज्ञकेषु नक्षत्रेषु - क्रमशः - श्रावण-भाद्रपद - आश्विन - कार्तिक - मासाः ज्ञेयाः । अर्थात् - स्वातिनक्षत्रे वृष्टे - श्रावण-मासे अनावृष्टि र्भवति, विशाखानक्षत्रे वृष्टे भाद्रपदमासे अनावृष्टि र्भवति, अनुराधा नक्षत्रे वृष्टे -, आश्विने मासे - अनावृष्टि र्भवति, ज्येष्ठानक्षत्रे वृष्टे कार्तिकमासे अना-वृष्टि र्भवति, इति तत्वार्थः ।

वृष्टिविषये काश्यपमुनिमहोदयाः वदन्ति

ज्येष्ठस्य शुक्लाष्टम्यां तु नक्षत्रे भगदैवते ।
चत्वारो धारणाः प्रोक्ता मृदुवातसमीरिताः ॥४५॥
नीलाञ्जननिभै र्मेघै विद्युतस्थगितमारुतैः ।
विस्फुलिङ्गरजो धूम्रैश्छन्नो शशिदिवाकरौ ॥४६॥
एकरूपाः शुभा ज्ञेया अशुभाः सान्तराः स्मृताः ।
अनार्यैं स्तस्करै र्घोरैः पीडा चैव सरीसृपैः ॥४७॥
ततः स्वात्यादिनक्षत्रैश्चतुर्भिः श्रावणादयः ।
परिपूर्णाः शुभास्ताः स्युः सौम्याः शुभसुभिक्षकाः ॥४८॥
स्वाती तु श्रावणं हन्याद् वृष्टेऽथैन्द्रोऽग्निदैवते ।
भाद्रपदे त्ववृष्टिः स्यात् - मैत्रे चाश्वयुजे स्मृता ॥४९॥
ऐन्द्रे तु कार्तिके त्वेवं वृष्टेवृष्टि निहन्ति च ।
एतेषु यद्दिने दृष्टिस्तदा सौभिक्षलक्षणम् ॥५०॥

पूर्वोक्तधारणानां विषये वैशिष्ट्यमाह श्रीवराहमिहिराचार्यः

यदि ताः स्युरेकरुपाः शुभास्ततः सान्तरास्तु न शिवाय ।
तस्करभयदा श्चोक्ताः श्लोका श्चाप्यत्र वासिष्ठाः ॥५१॥

उक्तपद्यस्य अयं भावः...... यदि ताः - धारणाः - एकरूपाः -अर्थात् ज्येष्ठ-शुक्लाष्टमीप्रभृतिषु - चतुर्षु - अपि दिवसेषु सदृशा - समानरूपाः -भवेयुस्तदा -शुभाः-भवन्ति । यदि ताः धारणाः - सान्तराः = अन्तरेणसहिताः अर्थात् - विभिन्नरूपाः ताः धारणाः तस्करभयदाः=चौरभीतिप्रदाः कथिताः पूर्वाचार्यैः-सर्वैश्चापि ऋषिभिः, धारणानां शुभाशुफलकथनविषये अत्र - अस्मिन् स्थले - निम्नाङ्किताः - वासिष्ठाः - वसिष्ठमहर्षिणा - उक्ताः श्लोकाः - लिख्यन्ते ।

सविद्युतः सपृषदः सपांशूत्करमारुताः ।
सार्कचन्द्रपरिच्छन्ना धारणाः शुभधारणाः ॥५२॥
यदा तु विद्युतः श्रेष्ठाः शुभाशाः प्रत्युपस्थिताः ।
तदापि सर्वस्यानां वृद्धि ब्रूयाद् विचक्षणः ॥५३॥
सपांशुवर्षाः सापश्चशुभा वालक्रिया अपि ।
पक्षिणां सुस्वरावाचः क्रीडा पांशुजलादिषु ॥५४॥
रविचन्द्रपरीवेषाः स्निग्धा नात्यन्तदूषिताः ।
वृष्टिस्तदापि विज्ञेया सर्वसस्यार्थसाधिका ॥५५॥
मेघाः स्निग्धा संहताश्च प्रदक्षिणगतिक्रियाः ।
तदा स्यान्महती वृष्टिः सर्वसस्याभिवृद्धये ॥५६॥

गर्गोक्तं वर्षाज्ञाननिमित्तमत्रलिखामि

ज्येष्ठे मूलमतिक्रम्य मासि प्रतिपदग्रतः ।
वर्षासु वृष्टिज्ञानार्थं निमित्तान्युपलक्षयेत् ॥५७॥

अत्र चान्द्रमानेन - एव-ज्येष्ठमासस्य ग्रहणं ज्ञेयम् । शुक्लपक्षप्रतिप्रदा-तिथितः-आरभ्य अमावास्यान्तं यावत्तावद् - चान्द्रो मासो भवति ।

श्रीवराहमिहिराचार्याः अस्मिन् विषये लिखन्ति

ज्यैष्ठ्यां समतीतायां पूर्वाषाढ़ादिसम्प्रवृष्टेन ।
शुभमशुभं वा वाच्यं परिमाणं चाम्भसस्तद्ज्ञैः ।।५८।।

उक्तपद्यस्य अयं भावः...ज्येष्ठमासस्य पौर्णमास्यां व्यतीतायां पूर्वाषाढ़ानक्षत्रम् आरभ्य पूर्वाषाढ़ादिसर्वेषां नक्षत्राणां मध्ये यस्मिन् कस्मिन् अपि नक्षत्रे यदि वृष्टिः भवति, तदा तया वृष्ट्या - वर्षाख्ये - ऋतौ भाविवृष्टिविषये शुभाशुभफलस्य विचारो विधेयः विचारशीलेन दैवज्ञेन, तथैव वृष्ट्या भाविवृष्टिजलपरिमाणस्यापि विचारः कार्यः ।

वर्षाख्ये - ऋतौ - या वृष्टि र्भविष्यति, तत्र वृष्ट्यां जलस्य प्रमाणं कियन्मितं भविष्यतीत्यस्यापि विचारो वक्ष्यमाणरीत्या कार्यः - वृष्टि - चिन्तकैः ।

वृष्टिजलप्रमाणविषये श्रीवराहमिहिराचर्याः लिखन्ति

हस्तविशालं कुण्डमधिकृत्याम्बुप्रमाणनिर्देशः ।
पञ्चाशत्पलमाढकमनेन मिनुयाज्जलं पतितम् ।।५९।।

उक्तपद्यस्य - अयं भावः— ज्येष्ठपूर्णिमायां व्यतीतायां - एकहस्त-प्रमितमानेन समपरिवर्तुलं कुण्डं पात्रविशेषं कुत्रापि - अनाच्छादिते प्रदेशे संस्थाप्य, पूर्वाशढ़ादिषु नक्षत्रेषु वर्षायां जातायां तस्मिन् पात्रे यज्जलं समापतितं तेनैव भाविवर्षाजलप्रमाणा-नुमानं कुर्यात् ।

तस्मिन् पात्रे पतितस्य जलस्य प्रमाणं यदि पलशतद्वयं भवेच्चेत्तर्हि - द्रोणप्रमा-णप्रमिता वर्षाजाता, इति विनिश्चयो विधेयः, पञ्चाशत्पलैः- एकमाढकं मानं भवति वर्षायाः, चतुर्भिः - आढकैश्च - एकद्रोणप्रमितं मानं भवति वर्षायाः ।

येन धरित्री मुद्रा जनिता वा विन्दवस्तृणाग्रेषु ।
वृष्टेन तेन वाच्यं परिमाणं वारिणः प्रथमम् ।।६०।।

पूर्वाषाढ़ादौ प्रथमं येन नक्षत्रेण वर्षणं भवति, तेनैव नक्षत्रेण वर्षाजलप्रमाणं लोके वक्तव्यम्, नान्येन नक्षत्रेण, मुद्रा जनिता= विगतधूली जाता - इत्यर्थः, शेषार्थस्तु स्पष्टः एव ।

वृष्टिविषये कश्यपमुनिमतमत्र लिखामि

प्रवर्षणे यथादेशं वर्षणं यदि दृश्यते ।
वर्षाकालं समासाद्य वासवो बहु वर्षति ।।६१।।

वृष्टिविषये देवलमुनिमतमत्र लिखामि

प्रवर्षणे यदा वृष्टं दशयोजनमण्डलम् ।
वर्षाकालं समासाद्य वासवो बहु वर्षति ।।६२।।

दृष्टिविषये गर्गमुनिमतमत्र लिखामि

आषाढादिषु वृष्टेषु योजनद्वादशात्मके ।
प्रवृष्टे शोभनं वर्षं वर्षाकाले विनिर्दिशेत् ।।६३।।

वर्षाविषये श्रीवराहमिहिराचार्योक्तं वैशिष्ट्यमत्र लिखामि

येषु च भेष्वभिवृष्टं भूयस्तेष्वेव वर्षति प्रायः।
यदि नाप्यादिषु वृष्टं सर्वेषु तदा त्वनावृष्टिः ॥६४॥

उक्तपद्यस्य - अयं भावः— प्रवर्षाकाले - अर्थात् - वृष्टिनिमित्तपरीक्षणकाले येषु पूर्वाषाढ़ादिषु नक्षत्रेषु प्रवर्षणं भवति, पुनश्च प्रसवकाले तेष्वेव नक्षत्रेषु प्रायः गर्भः प्रवर्षति, वृष्टिनिमित्तपरीक्षणकाले यदि - आप्यादिषु अर्थात् - पूर्वाषाढ़ादिषु सप्तविंशेष्वपि नक्षत्रेषु न वर्षति, तदा तु प्रसवकाले अनावृष्टिरेव भवति।

श्रीवराहमिहिराचार्योक्तं नक्षत्राणां वृष्टिप्रमाणमत्र लिखामि

हस्ताप्यसौम्यचित्रापौष्णधनिष्ठासु षोडशद्रोणाः।
शतभिषगैन्द्रस्वातिषु चत्वारः कृत्तिकासु दश ॥६५॥
श्रवणे मघानुराधाभरणीमूलेषु दशचतुर्युक्ताः।
फल्गुन्यां पञ्चकृतिः पुनर्वसौ विंशति द्रोणाः ॥६६॥
ऐन्द्राग्न्याख्ये वैश्वे च विंशतिः सार्पभे दशत्र्यधिकाः।
आहिर्बुध्न्यार्यम्णप्राजापत्येषु पञ्चकृतिः ॥६७॥
पञ्चदशाजे पुष्ये च कीर्तिता वाजिभे दश द्वौ च।
रौद्रेऽष्टादश कथिता द्रोणा निरुपद्रवेष्वेते ॥६८॥

उक्तपद्यानां अयं भाव :— हस्तः आप्यं = पूर्वाषाढ़ा, सौम्यं= मृगशिराः चित्रा, पौष्णं= रेवती, धनिष्ठा एषां नक्षत्राणां मध्ये यस्मिन् कस्मिन् अपि नक्षत्रे वृष्टिनैमित्तिकं प्रवर्षणं भवेत् चैत्तर्हि वृष्टिप्रसवकाले षोडद्रोणप्रमिता वर्षा भवति, एवं-शतभिषा, ऐन्द्र=ज्येष्ठा, स्वातिः एषु नक्षत्रेषु प्रवर्षणे सति - प्रसवकाले चत्वारो द्रोणाः गर्भाः वर्षन्ति। कृत्तिकासु दशद्रोणमिता वर्षा भवति ॥६५॥

श्रवण - मघा - अनुराधा - भरणी - मूल - नक्षत्रेषु वृष्टिनिमित्तद्योतके प्रवर्षणे सति चतुर्दशद्रोणप्रमिता वर्षा भवति प्रसवकाले।

पूर्वाफाल्गुन्यां पंचविंशति द्रोणाः, पुनर्वसौ च विंशति द्रोणा- वर्षा - ज्ञेया-प्रसव काले ॥६६॥ ऐन्द्राग्नेये - विशाखायाम्, वैश्वे= उत्तराषाढ़ायाम् विंशतिद्रोणप्रमिता वर्षा भवति। सार्पभे= आश्लेषायाम्, दशत्र्यधिकाः= त्रयोदशद्रोणाः, अहिर्बुध्न्ये= उत्तराभाद्रपदायाम्, अर्यम्णे= उत्तराफाल्गुन्याम्, प्राजापत्ये - रोहिण्याम्, एषु नक्षत्रेषु पञ्चकृतिः= पंचविंशति-द्रोणप्रमिता वर्षा भवति ॥६७॥ अजे= पूर्वाभाद्रपदायाम्, पुष्ये च पञ्चदश-द्रोणा वृष्टिः कीर्तिता पूर्वाचार्यैः। वाजिभे= अश्विन्याम्, दशद्वौ =द्वादशद्रोणाः रौद्रे - आर्द्रायाम् - च - अष्टादशद्रोणा वृष्टि भवति।

प्रवर्षणकाले - नक्षत्रेषु - ये द्रोणा उक्तास्ते - निरुपद्रवेषु= उपद्रवरहितेषु-एव नक्षत्रेषु वाच्याः, न तु सोपद्रवेषु भेषु ॥६८॥

वृष्टिविषये श्रीवराहमिहिराचार्योक्तं उपद्रवलक्षणमत्र लिखामि

रवि - रविसुत - केतु - पीडिते भे -क्षितितनयत्रिविधाद्भुताहते च।
भवति च न शिवं न चापि वृष्टिः- शुभसहिते निरुपद्रवे शिवं च ॥६९॥

त्रिविधाद्भुतशब्देनात्र = दिव्यान्तरिक्षभौमोत्पाताः - ग्राह्याः अन्यार्थस्तु स्पष्ट एव ।

वर्षोपद्रवविषये गर्गोक्तमत्र लिखामि

सूर्यसौराहते वाच्यं नक्षत्रं भौमघातिते ।
उत्पातै स्त्रिविधै र्वापि राहुणा केतुनापि वा ॥७०॥
अवृष्टिमशुभं विद्याद् - विपरीते शुभं वदेत् ॥७१॥

अस्यार्थस्तु सरलः - एव ।

गर्गोक्तं चान्द्रमानेन-आषाढ़कृष्णपक्षे रोहिणीचन्द्रयोगविचारमत्र लिखामि

नगराद्रुपनिष्क्रम्य दिशं प्रागुत्तरां शुचिः ।
विविक्ते प्रस्थले देशे देवतायतनेऽपि वा ॥७२॥
राज्ञा नियुक्तो दैवज्ञः कृतशौचो जितेन्द्रियः ।
विनीतकुशलो धीरः शुक्लाम्बरसमावृतः ॥७३॥
उपवासमथातिष्ठेदष्टमों संयतव्रतः ।
ततोऽष्टम्याः परे यस्मिन् दिने संयुज्यते शशी ॥७४॥
प्राजापत्येन च ततो निमित्तान्युपलक्षयेत् ॥७५॥

प्राजापत्यशब्देन - अत्र - रोहिणीनक्षत्रस्य ग्रहणम् कार्यम् ।

तदहश्चोदयाद्रूर्ध्वं चतुर्धाहो विभज्य च ।
हिताहितार्थं मासानां चतुर्णामुपलक्षयेत् ॥७६॥
दिनार्धमथवा वायु द्वौ मासौ तत्र वर्षति ।
चतुर्भागेन मासं तु शक्रोऽत्यर्थं प्रवर्षति ॥७७॥
पूर्वे चैवार्धदिवसे पूर्वौ मासौ तु वर्षति ।
अह्नस्तु पश्चिमे भागे पश्चिमौ द्वौ तु वर्षति ॥७८॥
अथपूर्वं व्यतिक्रम्य भागं तत्पश्चिमं ततः ।
मध्याह्ने वाति चेद्वायु र्मध्यौ मासौ तु वर्षति ॥७९॥
भाद्रपदोऽश्वयुक्चैव मासावेतौ तु मध्यमौ ।
एतयोरपि निर्देश्या वर्षारम्भस्य सम्पदः ॥८०॥

वृष्टिविषये ऋषिपुत्रोक्तं विचारमत्रलिखामि

दिनार्धं वाति चेद्वायुः पूर्वं पश्चिममेव वा ।
मासद्वयं तदा वर्षो विभागः पूर्वपश्चिमे ॥८१॥
समग्रं दिवसं वायु र्यदि वाति सुलक्षणः ।
मासास्तु श्रावणाद्या ये तेषां सम्पद्विनिर्दिशेत् ॥८२॥
वायन्तं मारुतं चापि यो वायुः प्रतिवायति ।
तत्र यो बलवान् वायु स्तस्यैव फलमादिशेत् ॥८३॥
योगे ह्यनुद्धता वाता ह्लादयन्तः सुखप्रदाः ।
प्रदक्षिणाः श्रेष्ठतमाः पूर्वपूर्वोत्तरा इति ॥८४॥

वृष्टिवषये गर्गोक्तं विचारमत्र लिखामि

दधिरोप्यामलक्रौञ्च - ताम्राभारुण - सन्निभाः ।
शुककोशेयमाञ्जिष्ठास्तपनीयसमप्रभाः ॥८५॥
अच्छिन्नमूलाः सुस्निग्धाः पर्वताकारसन्निभाः ।
घनाघना प्रशस्यन्ते विद्युत् स्तनितसङ्कुलाः॥८६॥
छिन्नमूलाश्च वृक्षाश्च शुष्का वाष्पाकुलीकृताः ।
पापसत्वानुकाराश्च मेघाः पापफलप्रदा ॥८७॥

रोहिणीचन्द्रयोगस्य शुभाशुभफलज्ञानार्थं नगरात्-उत्तरस्यां दिशि-पूजास्थले चतुर्दिक्षु स्थापितकलशैः वृष्टिज्ञानं गर्गोक्तमत्र लिखामि—

सौम्ये तु श्रावणं विन्द्यात् पूर्वे भाद्रपदं वदेत् ।
दक्षिणेऽश्वयुजो ज्ञेयः पश्चिमे कार्तिकं विदुः ॥८८॥
सर्वे कुम्भाः सुपूर्णाः स्युरभग्नाः कान्तिसंयुताः ।
चतुरो वार्षिकान् मासान् सर्वान् वर्षति वासवः ॥८९॥
सर्वैः स्रुतैरवृष्टिः स्यादर्धै मध्यमवर्षणम् ।
द्रवै स्तथा विधा वृष्टि र्वक्तव्या जलमानतः ॥९०॥

वृष्टिविषये काश्यपोक्तमत्र लिखामि

अन्यदेशाङ्किताः कुम्भा भिद्यन्ते च स्रवन्ति च ।
बन्धहीना वितोयाश्चतेऽभियोज्या नृपेण वै॥९१॥

रोहिण्याः शकटमध्यगते चन्द्रे श्रीवराहमिहिराचार्योक्तं फलमत्र लिखामि

रोहिणीशकटमध्यसंस्थिते - चन्द्रमस्यशरणीकृता जनाः ।
क्वापि यान्ति शिशुयाचिताशनाः- सूर्यतप्तपिठराम्बुपायिनः ॥९२॥

उक्तपद्यस्य अयं भावः—षट्तारकत्वाद् रोहिण्याः शकटसदृशः समूहः रोहिण्याः शकटमध्यसंस्थिते चन्द्रे जनाः = लोकाः अशरणीकृताः = निःशरणीभूताः क्वापि यान्ति कुत्रापि गच्छन्ति, कीदृशाः जनास्ते शिशुयाचिताशनाः=शिशूनां भोजनं वाच्य-मानाः सूर्येण पिठरे=पात्रविशेषे परितापितं यत् - जलं तत्पायिनः=परितप्तजलपान-शीलाः, एतेन जलाभावः सूचितः ।

शकटभेदलक्षणं ब्रह्मगुप्तकृत— ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते समुक्तं तदत्र लिखामि

विक्षेपोऽशद्वितयादधिको वृषभस्यसप्तदशभागगे ।
यस्य ग्रहस्य याम्यो भिनत्ति शकटं स रोहिण्याः॥९३

प्रसंगवशादत्र - योगतारा लक्षणं लिखामि

सतारागणमध्ये तु या तारा दीप्तिमत्तरा ।
योगतारेति सा प्रोक्ता नक्षत्राणां पुरातनैः ॥९४॥

रोहिणीचन्द्रयोगपरीक्षणदिने परीक्षणान्तरेणापि वृष्टिज्ञानम् श्रीवराहमिहिराचार्योक्तमत्र लिखामि

गोप्रवेशसमयेऽग्रतो वृषो - याति कृष्णपशुरेव वा पुरः ।
भूरिवारि शबले तु मध्यमम् - नो सितेऽम्बुपरिकल्पनापरैः ॥९५॥

शबलशब्देनात्र कृष्णश्वेतः पशुः ग्राह्यः । सिते श्वेतवर्णे न किञ्चदम्बु "जलम्' भवति, अपरैः - वर्णैः - जलपरिकल्पना स्वबुद्ध्यैव कार्या ।

गर्गोक्तं विचारमत्र लिखामि

प्राक्प्रवेशे तु यूथस्य पुरतो वृषभो यदा ।
प्रवेशे कृष्णवर्णो वा पशु र्बहुजलप्रदः ॥९६॥
कृष्णा तु गौः सुभिक्षाय क्षेमारोग्यायचोच्यते ।
गौर्यामथ च नीलायां मध्यमाः सस्यसम्पदः ॥९७॥
अनावृष्टिकरी श्वेता वाताय कपिला स्मृता ।
पाटला सस्य नाशाय रोगाय करटा स्मृता ॥९८॥
एकदेशायशवला चित्रं चित्रा तु वर्षति ।
पाण्डुरा मध्यमाङ्गी वा ग्रीष्मधान्यविवर्धिनी ॥९९॥
कपिला पश्चिमं वर्षं शोणा त्वग्रे प्रवर्षति ॥१००॥

अत्र हि - विचारणीयोऽयं विषयोऽस्ति, यस्मिन् - ग्रामे नगरे प्रभागे वा- उक्त-शकुनं दृश्यते, तत्रैव - ग्रामे - नगरे - प्रदेशे वा - उपर्युक्तस्य फलस्य चरितार्थता ज्ञेया, न तु सर्वत्र प्रदेशेषु ।

आषाढ़शुक्लपक्षे स्वात्याषाढ़स्थे चन्द्रे वृष्टिविचारं श्रीवराहमिहिरा-चार्योक्तमत्र लिखामि

यद्रोहिणीयोगफलं तदेव -स्वातावषाढ़ासहिते च चन्द्रे ।
आषाढ़शुक्ले निखिलं विचिन्त्यम् - योऽस्मिन् विशेषस्तमहं प्रवक्ष्ये ॥१०१॥

उक्तपद्यस्य - अर्थस्तु स्पष्टः एव, रोहिणीस्थे चन्द्रे यत्फलं पूर्वं समुक्तम्, तत्-सर्वं-अत्रापि वेदितव्यम्, रोहिणीचन्द्रयोगे समागमफलं यदुक्तम् तथा च यद् 'गोप्रवेश-समयेऽग्रतोवृषे" इत्यादिकं फलं यदुक्तं तत्सर्वं यथासम्भवम् अत्रापि वेदितव्यमेव ।

श्रीवराहमिहिराचार्याः अत्र लिखन्ति

स्वातौ निशांशे प्रथमेऽभिवृष्टे - सस्यानि सर्वाण्युपयान्ति वृद्धिम् ।
भागे द्वितीये तिलमुद्गमाषा - ग्रैष्मं तृतीयेऽस्ति न शारदानि ॥१०२॥

विविधकीटकृमि 'सर्प"= गेसा="केंचुआ" वृष्टियोगमत्र लिखामि

वृष्टेऽह्निभागे प्रथमे सुवृष्टिः - तद्वद् द्वितीये तु सकीटसर्पाः ।
वृष्टिस्तु मध्यापरभागवृष्टेः - निश्छिद्रवृष्टि र्द्युनिशं प्रवृष्टे ॥१०३॥

उक्तपद्यस्य - अर्थस्तु - सरलः - एव । दिनमानस्य भागत्रयम्, रात्रिमानस्य च भागत्रयं विधाय - उपर्युक्तफलस्य व्यवस्थानुसन्धेया विज्ञैः विद्वद्भिः ।

द्युनिशम्- अर्थात्- सम्पूर्णमहोरात्रं प्रवृष्टे सति निश्छिद्रा निर्दोषा वृष्टि र्भवति । गर्गमुनिना - उक्तपद्ये सकीटसर्पा वृष्टि र्भवतीति यदुक्तम्, तत्प्रतिपादनं तु जीवविज्ञा-नस्य सिद्धान्तान् - अनुसृत्य यथावसरं यथास्थानं च अग्रे करिष्यामि । अतः प्रागपि मया अस्मिन् विषये विचारः कृताः ।

स्वातिचन्द्रयोगे गर्गोक्तं वृष्टिलक्षणमत्र लिखामि

स्वातीयोगे यदा युक्ते पूर्वसत्रे प्रवर्षति ।
ग्रीष्मशारदसम्पन्नां तां समामभिनिर्दिशेत् ॥१०४॥

रात्रे द्विभागमाश्रित्य स्वातियोगेऽभिवर्षति ।
सम्पदो मुद्गमाषाणां तिलानां चावधारयेत् ॥१०५॥
त्रिभागशेषे शर्वर्याः स्वातियोगेऽभिवर्षति ।
ग्रैष्मं सम्पद्यते सस्यं शारदं तु विनश्यति ॥१०६।

कृमि - सरीसृप - वृष्टियोगं गर्गोक्तमत्र लिखामि

अह्नस्तु प्रथमे भागे वर्षाक्षेमसुवृष्टये ।
द्वितीये शोभना वृष्टिः बहुसस्यसरीसृपाः ॥१०७॥
अह्नस्तु तृतीये भागे मध्यमां कुरुते समाम् ।
अहोरात्रं यदा वर्षं स्वातियोगे पुरन्दरः ॥१०९॥
तदा तु चतुरो मासान् सर्वान् वर्षति वासवः ॥१०८॥

उपर्युक्तपद्ये गर्गमुनिना - सरीसृपाणां वर्षा भवतीति समुक्तम् । अत्र सरीसृप-शब्देन-सर्पाकारवन्तः लोकप्रसिद्धाः केंचुआः-अथवा लोकव्यवहारे व्यवहृताः-गेसा ज्ञेयाः ।

तेषां सरीसृपादिकीटानां समुत्पत्तिः आकाशस्थजलेषु कथं भवति, कथं ते सरीसृपकीटादयो वृष्ट्या सह भूमौ पतन्तीत्यादिविषयस्य - गम्भीरतापूर्वकं विवेचनं जीव-विज्ञानसिद्धान्तैः यथास्थानमग्रे करिष्यामि । प्रागपि च कृतं मया ।

वृष्टिविषये "अपांवत्स" तारालक्षणं श्रीवराहमिहिराचार्योक्तं अत्र लिखामि

सममुत्तरेणतारा चित्रायाः कीर्त्यते ह्यपांवत्सः ।
तस्यासन्ने चन्द्रे स्वाते योगः शिवो भवति ॥११०॥

उक्तपद्यस्य - अयं भावः — चित्रानक्षत्रेण सह चित्रातः - उत्तरस्यां दिशि तिर्यग्गतः या तारा "नक्षत्रम्" भवति, तस्याः ताराया: "अपांवत्सः" इति संज्ञा व्यवह्रियते, तस्य - अपांवत्सस्य आसन्ने निकटस्थे चन्द्रे सति, स्वातिनक्षत्रेण सह चन्द्रस्य योगः शिवः - अर्थात् कल्याणकरः भवति ।

चन्द्रस्वातियोगस्य समये श्रीवराहमिहिराचार्योक्तं विशेषमत्र लिखामि

सप्तम्यां स्वातियोगे यदि पतति हिमं माघमासान्धकारे
वायु र्वा चण्डवेगः सजलजलधरो वापिगर्जत्यजस्रम् ।
विद्युन्मालाकुलं वा यदि भवति नभो नष्टचक्रार्कतारम्
विज्ञेया प्रावृडेषा मुदितजनपदा सर्वसस्यैरुपेता ॥१११॥

पूर्वश्लोकोक्तविशिष्टे समये प्रावृट्= "वर्षा" मुदितजनपदा = प्रहृष्टलोका, सर्वसस्यैरूपेता सर्वैं सम्पूर्णैः सस्यैः=धान्यैः= उपेता=संयुक्ता विज्ञेया=विज्ञातव्या ।

श्रीवराहमिहिराचार्योक्तं अन्यदपि - शुभाशुभलक्षणमत्र लिखामि

तथैव फाल्गुने चैत्रे वैशाखस्यासितेऽपि वा ।
स्वातियोगं विजानीयादाषाढ़े च विशेषतः ॥११२॥

उक्तपद्यस्य अयं भावः—'सप्तम्यां स्वातियोगे यदि पतति हिमं माघमांसान्धकारे" इत्यादि फलं यथा समुक्तं तथैव - फाल्गुने, चैत्रमासे, एवं च वैशाखमासस्य-

असिते= कृष्णपक्षे अपि विज्ञेयं विज्ञैः, आषाढ़मासे तु स्वातिचन्द्रयोगो विशेषरूपेण विचिन्त्यः- वृष्टिचिन्तकैः विज्ञैः ।

श्रीवराहमिहिराचार्योक्तं - आषाढ़पौर्णमास्यां - वायुपरीक्षणमत्र लिखामि

आषाढ़पौर्णमास्यां तु यद्यैशानोऽनिलो भवेत् ।
अस्तं गच्छति तीक्ष्णांशौ सस्यसम्पत्तिरुत्तमा ॥११३॥

पूर्वदिशावायोः फलम्

पूर्वः पूर्वसमुद्रवीचिशिखरप्रस्फालनाघूर्णितः-
चन्द्रार्कांशुसटाकलापकलितो वायु र्यदाकाशतः ।
नैकान्तस्थितनीलमेघपटला शारद्यसंवर्धिता-
वासन्तोत्कटसस्यमण्डिततला सर्वा मही शोभते ॥११४॥

उक्तपद्यस्य अयं भावः— आषाढ़पौर्णमास्यां यदा= यस्मिन् काले पूर्वः= पूर्वदिशातः वायुः आकाशतः= आकाशमार्गतः वहति = प्रचलति, कीदशः स वायुः पूर्वसमुद्रस्य याः वीचयः=तरङ्गाः - तासां ये शिखराः - "अग्राणि" तेषां शिखराणां प्रस्फालनम्= चालनम्, तेन चालनेन आघूर्णितः=भ्रमितः । पुनः कथं भूतः-स वायुः चन्द्रार्कयोः= चन्द्रसूर्ययोः ये अंशवः रश्मयः - ते - एव सटा- स्कन्धावलम्बिनः- केशा इव तेषां यः कलापः= समूहः- विस्तारः - तेन कलितः= मिश्रितः उपर्युक्तलक्षण-लक्षिते वायौ प्रवहति सति मही कीदृशीभवतीति वर्णयन् - आह··· नैकान्तम्= अत्यर्थमेव सर्वत्र ये स्थिताः नीलवर्णानां मेघानां पटलाः-समूहाः तैः समूहैः शोभिता, तथाच शारद्यसम्र्बधिता= शारद्यैः= सस्यैः=सर्वविधधान्यादिभिः सम्र्वधिता=समृद्धियुक्ता मही भवति, एवं च - वासन्तैः= वसन्तसम्भवैः - उत्कटैः = अतिसमृद्धैः - सस्यैः= धान्यैः, मण्डितम्= भू षितं तलं= पृष्ठं यस्याः सा तथा भूता, सर्वा = निःशेषा= सम्पूर्णा - भूः=भूमिः शोभते= विराजते इति सारांशः ।

आग्नेयकोणवायोः फलम्

यदा वह्नौ वायु र्वहति गगनेऽखण्डिततनुः -
प्लवत्यस्मिन् योगे भगवति पतङ्गे प्रवसति ।
तदा नित्योद्दीप्ता ज्वलनशिखरालिङ्गिततला-
स्वगात्रोष्मोच्छ्वासै र्वमति वसुधा भस्मनिकरम्॥११५॥

दक्षिणदिशावायोः फलम्

तालीपत्रलतावितानतरुभिः शाखामृगान्नर्तयन्-
योगेऽस्मिन् प्लवति ध्वनिः सपरुषो वायु र्यदा दक्षिणः ।
तद्वद्योगसमुत्थितस्तु गजवत्तालाङ्कुशैर्घट्टिताः-
कीनाशा इव मन्दवारिकणिका मुञ्चन्ति मेघास्तदा ॥११६॥

नैर्ऋत्यकोणवायोः फलम्

सूक्ष्मैला - लवली - लवङ्गनिचयान् व्याघूर्णयन् सागरे ।
भानोरस्तमये प्लवत्यविरतो वायु र्यदा नैर्ऋतः ।
क्षुत्तृष्णावृतमानुषास्थिशकलप्रस्तारभारच्छदा -
मत्ताप्रेतवधूरिवोग्रचपला भूमिस्तदा लक्ष्यते । ११७॥

पश्चिमदिशावायोः फलम्

यदा रेणूत्पातैः प्रविचलसटाटोपचपलः
प्रवातः पश्चात् - चेद्दिनकरकरायातसमये ।
तदा सस्योपेता प्रवरनिकराबद्धसमरा -
क्षितिः स्थानस्थानेष्वविरत - वसा - मांस - रुधिरा ॥११८॥

वायव्यकोणवायोः फलम्

आषाढ़ी - पर्वकाले यदि किरणपतेरस्तकालोपपत्तौ -
वायव्यो वृद्धवेगः पवनघनतनुः पन्नगार्धानुकारी ।
जानीयाद् - वारिधाराप्रमुदितमुदितामुक्तमण्डूककण्ठाम् -
सस्योद्भासैकचिह्नां सुखबहुलतया भाग्यसेनामिवोर्वीम् ॥११९॥

उत्तरदिशावायोः फलम्

मेरुग्रस्तमरीचिमण्डलतले ग्रीष्मावसाने रवौ -
वात्यामोदकदम्बगन्धसुरभिर्वायु र्यदा चोत्तरः ।
विद्युद्भ्रान्तिसमस्तकान्तिकलना मत्तास्तदा तोयदाः -
उन्मत्ता इव नष्टचन्द्रकिरणां गां पूरयन्त्यम्बुभिः ॥१२०॥

उक्तपद्यानामर्थस्तु प्रायः स्पष्ट एव, अतोऽत्र व्याख्या न कृता मया ।

वर्षाविषये गर्गोक्तं सन्ध्यालक्षणफलमत्र लिखामि

वसन्ते मधुवर्णाभाऽथवा रुधिरसन्निभा ।
ग्रीष्मे श्वेता रजोध्वस्ता पांशुवर्णा च शस्यते ॥१२१॥
नीललोहितशुक्लाभा सन्ध्या वर्षासु वार्षिका ।
माञ्जिष्ठवर्णा शरदि पीयूषाभा च शस्यते ॥१२२॥
हेमन्ते बभ्रुवर्णा च पिङ्गला चापि पूजिता ।
शिशिरे शोणवर्णा च सन्ध्या क्षेमसुखप्रदा ॥१२३॥
स्निग्धा प्रसन्ना विमला सप्रभा नाकुलापि वा ।
सन्ध्या यथर्तुवर्णाभा शान्तद्विजमृगा शुभा ॥१२४॥

वर्षाविषये पराशरमुनिसमुक्तम् सन्ध्यालक्षणफलमत्र लिखामि

प्रतिसूर्यः शक्रधनुर्दण्डकः परिवेषणम् ।
तथैरावतमत्स्याश्च स्निग्धा ये चार्करश्मयः ॥१२५॥
विद्युतो भूरिकाराश्च वर्णा ये च प्रदक्षिणाः ।
सन्ध्यासु यदि दृश्यन्ते सद्योवर्षणलक्षणम् ॥१२६॥

वृष्टिविषये कश्यपमुनिसमुक्तम् लक्षणमत्र लिखामि

दिनरात्र्यन्तरं सन्ध्या सूर्यस्यार्धं प्रदृश्यते ।
यावच्च तावदारभ्य शुभा वाप्यशुभापि वा ॥१२७॥
नभोऽमलं शुभदिशः पद्मारुणसमप्रभाः ।
मारुतो वाति सुरभिः सुखदो मृदुशीतलः ॥१२८॥

एषा सन्ध्या शुभा ज्ञेया विपरीताऽशुभा स्मृता ।
रुक्षा च सविकारार्का क्रव्यादखरनादिता ॥१२९॥

स्निग्धा दण्डपरीवेषा सुरचापविभूषिता ।
क्षिप्रं वर्षप्रदा सन्ध्या जयाऽरोग्यविवृद्धिता ॥१३०॥

वृष्टिविषये सन्ध्यादिभिः - देवलो विशेषं वदति

सन्ध्या तु योजनं याति विद्युद्मासा षडेव हि ।
मेघशब्दस्तु पञ्चानां शुभा वाऽप्यशुभापि वा ॥१३१॥

उक्तपद्यस्य - अयं भावः...... सन्ध्या स्वदीप्त्या - एकं योजनं प्रकाशयति, यावत् प्रदेशे सन्ध्याप्रकाशस्तावत् प्रदेशे एव - तस्या फलम् - भवतीति ज्ञेयम् । विद्युत्-कान्तिस्तु षड्योजनान्तं यावत्तावत् फलं ददाति । मेघगर्जनं तु-पञ्चयोजनान्तं यावत्तावत् फलं ददाति । वुभा - अथवा - अशुभा - उल्का - सर्वत्र प्रदेशे फलदा भवति ।

काश्यपमुनिसमुक्तम् दिग्दाहफलमत्र लिखामि

प्राच्यां दिशि प्रदीप्तायां श्रेणीनां भयमादिशेत् ।
आग्नेय्यां तु कुमाराणां वैश्यानां दक्षिणे तथा १३२॥
नैर्ऋत्यां च स्त्रियो हन्ति शूद्रान् पश्चिमतस्तथा ।
वायव्यां चौरभयं विप्रणामुत्तरे तथा ॥१३३॥
पाखण्डिवणिजां पीडा ह्यैशानी यदि दीप्यते ॥१३४॥

वृष्टिविषये भूकम्पकारणविवेचनमत्र करोमि

काश्यपो मुनिः - भूकम्पकारणमाह......

वारुणस्योपरिपृथ्वी सशैलवनकानना ।
स्थिता जलजसत्वाश्च स्क्षोभा श्चालयन्ति ताम् ॥१३५॥

गर्गो मुनिः - भूकम्पकारणमाह......

चत्वारः पृथिवीं नागा धारयन्ति चतुर्दिशम् ।
वर्धमानः सुवृद्धश्चातिवृद्धश्च पृथुश्रवाः ॥१३६॥
वर्धमानो दिशां पूर्वां सुवृद्धो दक्षिणां दिशम् ।
पश्चिमामतिवृद्धस्तु सौम्याशां तु पृथुश्रवाः ॥१३७॥
नियोगाद् ब्रह्मणो ह्येते धारयन्ति वसुन्धराम् ॥१४८॥
ते श्वसन्ति यदा शान्ताः स वायुः श्वसितो महान् ।
वेगान् महीं चालयन्ति भावाभावाय देहिनाम् ॥१४९॥

वसिष्ठमुनिसमुक्तं भूकम्पकारणमत्र लिखामि......

यदा तु बलवान् वायुरन्तरिक्षानिलाहतः ।
पतत्याशु स निर्घातो भवेदनिलसम्भवः ॥१४०॥
तस्य वेगान्निपततश्चलत्यन्न्याहता मही ।
सोऽभिघातसमुत्थः स्यात् सनिर्घातमहीचलः ॥१४१॥

वृद्धगर्गोमुनिः - भूकम्पकारणंफलं च प्राह......

प्रजाधर्मरता यत्र तत्र कम्पं शुभं वदेत् ।
जनानां श्रेयसे नित्यं विसृजन्ति सुरोत्तमाः ॥१४२॥

विपरीता स्थिता यत्र जनास्तत्राशुवं तथा ।
विसृजन्ति प्रजानां तु दुःखशोकाभिवृद्धये ।।१४३।।

उक्तपद्यानामर्थस्तु स्पष्टः - एव अतः अत्र व्याख्या मया न कृता ।

गर्गमुनिसमुक्तं चतुर्षु भागेषु विभक्तं भूकम्पलक्षणमत्र लिखामि......

कृत्वा चतुर्धाऽहोरात्रं द्विधाहोऽथ द्विधानिशम् ।
देवताश्रययोगाच्च चतुर्धा भगणं तथा ।।१४४।।
पूर्वो दिनार्धेवायव्य आग्नेयोऽर्धे तु पश्चिमे ।
ऐन्द्रः पूर्वे च रात्र्यर्द्धे पश्चिमार्द्धे तु वारुणः १४५।।
चत्वार एवमेते स्युरहोरात्रविकल्पजाः ।
निमित्तभूता लोकानामुल्कानिर्घातभूचलाः ।।१४६।।

गर्गमुनिसमुक्तं भूकम्पदिनात् प्रागेव - भूकम्पसूचकलक्षणज्ञानप्रकारमत्र लिखामि.........

प्रथमेऽह्नि चतुर्भागे निर्घातोल्कामहीचलाः ।
सौम्यादित्यार्यम्णहस्तचित्रास्वात्यश्विनीषु च ।।१४७।।
भवन्त्यनिलजाः सर्वे लक्षणान्यवधारय ।
धूमव्याप्ता दिशः सर्वा नभस्वान् प्रक्षिपन् रजः ।।१४८।।
द्रुमांश्च भञ्जन् - चरति रविस्तपति शीतलः ।
सप्तमेऽहनि कम्पः स्याद् भूमेरनिलसम्भवः ।।१४९।।
द्वितीयेऽह्नि चतुर्भागे निर्घातोल्कामहीचलाः ।
पित्र्यभाग्याजपुष्याग्निविशाखायमदैवतैः ।।१५०।।
भवन्त्यनिलजास्ते च लक्षणानि निबोध मे ।
तारोल्कापातदिग्दाहैरादीप्तं लक्ष्यते नभः ।।१५१।।
मरुत्सहायः सप्तार्चिः सप्ताहान्तश्चरत्यपि ।
सप्तमेऽहनि विज्ञेयः कम्पश्चानलसम्भवः ।।१५२।।
निशार्धे तु यदा पूर्वे उल्कानिर्घातभूचला. ।
मैत्रेन्द्र - वैश्व - श्रवणाभिजिद्रोहिणिवासवैः ।।१५३।।
स्यादिन्द्रसम्भवः कम्पो लक्षणानि च मे शृणु ।
वर्षन्ति वहवो मेघा वराहमहिषोपमाः ।।१५४।।
धुन्वन्तो मधुरान् रावान् विद्युद्भासितभूतलाः ।
सप्तमेऽहनि सम्प्राप्ते कम्पः स्यादिन्द्रसम्भवः ।।१५५।।
निशायां पश्चिमे भागे निर्घातोल्कामहीचलाः ।
पौष्णाप्यार्द्रोरगा मूलाहिर्बुध्न्यं वरुणं तथा ।।१५६।।
कम्पो वारुण एभिः स्यात् - शृणु तस्यैव लक्षणम् ।
वर्षन्ति जलदास्तत्र नीलाञ्जनचयोपमाः ।।१५७।।

विद्युद्‌भासितदेहा श्च मधुरस्वरभूषिताः ।
सप्तमेऽह्नि सम्प्राप्ते कम्पः स्याद् वारुणस्तदा ॥१५८॥

इन्द्रधनुषः फलं गर्गमुनिसमुक्तमत्र लिखामि......

पूर्वस्यां दिशि सङ्ग्रामे भवतीन्द्रधनु र्यदि ।
पश्चिमे च प्रयातानां जयस्तत्र न संशयः ॥१५९॥
येषां प्रवृत्ते सङ्ग्रामे पश्चादिन्द्रधनु र्भवेत् ।
पूर्वेण तु प्रयातानां जयस्तत्र न संशयः ॥१६०॥
येषां प्रवृत्ते सङ्ग्रामे वामपार्श्वे च पृष्ठतः ।
धनुः प्रादुर्भवेदैन्द्रं जयस्तेषां न संशयः ॥१६१॥
येषां प्रवृत्ते सङ्ग्रामे पुरस्ताद्दक्षिणेन वा ।
धनुः प्रादुर्भवेदैन्द्रं बधं तेषां विनिर्दिशेत् ॥१६२॥
पश्चिमे तु दिशो भागे भवतीन्द्रधनुर्यदि ।
समेघगमनं स्निग्धं वैदूर्यविमलद्युति ॥१६३॥
विद्युच्च निर्मला भाति पूर्वे वायुर्यदा भवेत् ।
सप्तरात्रं महावर्षं निर्दिशेत् - दैवचिन्तकः ॥१६४॥

काश्यपो मुनिः इन्द्रधनुषः फलं प्राह......

अवृष्टौ वर्षणं कुर्यादैन्द्रीं दिशमुपाश्रितम् ।
पश्चिमायां महद्वर्षं करोतीन्द्रधनुः सदा ॥१६५॥
रात्रौ चैत् - दृश्यते पूर्वे भयं नरपतेः भवेत् ।
याम्यायां बलमुख्यश्च विनाशमभिगच्छति ॥१६६॥
स्निग्धवर्णै र्घनैः शुभ्रैर्वारुण्यां दिशि दृश्यते ॥१६७॥
बहूदकं सुभिक्षं च शिवं सस्यप्रदं भवेत् ॥१६८॥

गर्गमुनिसमुक्तं निर्घातलक्षणफलमत्र लिखामि......

यदान्तरिक्षे बलवान् मारुतो मारुताहतः ।
पतत्यधः स निर्घातो भवेदनिलसम्भवः ॥१६९॥
यदा सूर्योदये प्राप्ते निर्घातः श्रूयते भुवि ।
क्षत्रिया योधमुख्याश्च पीड्यन्तेऽत्र न संशयः ॥१७०॥
प्रहरांशे तथा वैश्यान् हन्याद् गोजीविनस्तथा ।
परिवृत्ते हरौ वैश्या अपराह्णे तु दस्यवः ॥१७१॥
नीचचौरांश्च हन्यात् स अस्तमेति दिवाकरे ।
प्रथमे प्रहरे सस्यान्यर्धरात्रे तु राक्षसान् ॥१७२॥
रात्रित्रिभागे वैश्यांश्च प्रत्यूषे चाहितो भवेत् ।
यां दिशं चाभिहन्येत निर्घातो भैरवः स्वनः ॥१७३॥
तद्‌देश्यान् हन्ति देशांश्च सर्वदिग्भवतयस्तथा ॥१७४॥

श्रीवराहमिहिराचार्योक्तां वृष्टिनिमित्तपरीक्षणव्यवस्थामत्र लिखामि......

उल्कापात - गन्धर्वनगर-केतुदर्शनादीनि यानि वृष्टिनिमित्तानि पूर्वं प्रतिपादितानि तेषां वृष्टिनिमित्तानां सम्यग्ज्ञानं एकेन - एव पुरुषेण - कर्तुं - अयुक्तं असाध्यं च भवति, यतो हि उल्कापातादीनि निमित्तानि - अनयासमेव - शीघ्रं समागत्य - शीघ्रातिशीघ्रमेव - अदर्शनं यान्ति, तस्याश्च उल्कायाः - आकृतिः - वर्णः, प्रमाणादिकं भिन्नं भिन्नं भवति, अतः - तेषां ज्ञानार्थं त्रिस्कन्ध - ज्यौतिषशास्त्रे-प्रवीणानां षोडश—"१६" दैवज्ञानां व्यवस्था नियुक्तिः वा राज्ञा कार्या, सुनिर्वाहयोग्यं प्रचुरं धनं च तेभ्यो दैवज्ञेभ्यो प्रशासनेन प्रदेयम्, येन खगोलीयवृष्टिनिमित्तचिन्तकानां दैवज्ञानां चित्तेषु शान्तिः भवेत्, शान्तमनसैव सुचिन्तनं भवति न तु - अशान्तमनसा ।

प्रशासनेन नियुक्तास्ते च षोडशदैवज्ञाः अहोरात्रान्तर्गतेषु अष्टसु प्रहरेषु क्रमशः शान्तचेतसा - वृष्टिनिमित्तानां - परिवेषेन्द्रधनुः - सन्ध्यारागादीनां सुपरीक्षणं विधाय, यदा राष्ट्रस्य शुभाशुभफलविषये यन्निर्णयं कुर्वन्ति, तन्निर्णयफलं तु अवश्यमेव संघटते राष्ट्रे ।

खगोलविज्ञानशून्याः - ये केचन महानुभावाः ज्यौतिषशास्त्रान्तर्गत - खगोलविज्ञानं विनिन्दन्ति, ते तु भ्रान्ता - एव नात्रसन्देहावसरः ।

नेत्रनवाष्टचन्द्र = "१८९२" ईसवीयाब्दे - लखनऊतः प्रकाशिते मत्स्यपुराणे नेत्राग्निनेत्र = "२३२" प्रमिते अध्याये "मांसशोणितवर्षणम्" समुक्तं तदत्र लिखामि...

"अनृतौ तु दिवानन्ता वृष्टि र्ज्ञेया भयानका ।
अतिवृष्टिरनावृष्टिर्दुर्भिक्षादिभयं मतम् ॥१॥
अनभ्रे वैकृताश्चैव विज्ञेया राजमृत्यवे ।
शीतोष्णानां विपर्यासे नृपाणां रिपुजं भयम् ॥२॥
शोणितं वर्षते यत्र तत्र शस्त्रभयं भवेत् ।
अङ्गारपांसुवर्षेषु नगरं तद् विनश्यति ॥३॥
मज्जास्थिस्नेहमांसानां जनमारभयं भवेत् ।
फलं पुष्पं तथा धान्यं परेणातिभयाय तु ॥४॥"

उपर्युक्तानाम् पद्यानां अर्थस्तु स्पष्ट एव, पूर्वोक्तेषु पद्येषु मांसशोणितवर्षायाः सुस्पष्टः - उल्लेखः - उपलभ्यते ।

आधुनिकाः ये वैज्ञानिकाः भूगोलखगोलयोः स्थितिं न जानन्ति, ये च आर्षोक्तं विज्ञानं न जानन्ति, ते सर्वे मांसशोणितवर्षणम् शास्त्रेषु श्रुत्वा, प्रत्यक्षं च मत्स्य - गेसा - मेंढ़क - प्रभृतीन् वर्षायाम् दृष्ट्वा, नानाप्रकारेण कुतर्कम् कुर्वन्ति, ते तु अज्ञाः भ्रान्ताः एव इति विज्ञेयं विज्ञैः ।

सुन्दरी टीका—आठवें अध्याय का निष्कर्ष सुन्दरी टीका में दिया जा रहा है, नारद, वसिष्ठ, गर्ग, काश्यप, देवल, सिद्धसेन, व्यास, पराशर, शुकदेव आदि तत्वदर्शी वैज्ञानिक ऋषियों के मतानुसार और वराहमिहिराचार्य प्रभृति वैज्ञानिकों के मतानुसार

"वर्षावायुविज्ञान" का प्रतिपादन सभी राष्ट्रों और अन्नादि की समृद्धि के लिये कर रहा हूँ।

१—वर्षावायुविज्ञान के सम्वन्ध में दो सौ अठासीवें पृष्ठ से दोसौ इक्यावन वें पृष्ठ तक = (२८८ से २९१ पृष्ठ तक) लिखे गये श्लोकों का अर्थ अत्यन्त सरल है, अतएव इन श्लोकों की व्याख्या को करना अनावश्यक समझा है।

शुक्रसञ्चार से वर्षावायुविज्ञान का विवेचन

२—अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों पर सञ्चरणशील शुक्र के नौ मार्ग वताये गये हैं, मार्ग और वीथि ये दोनों शब्द एक दूसरे के पर्यायवाचक हैं, तीन-तीन नक्षत्रों के क्रम से शुक्र के नौ मार्गों को, (१) सौम्य=उत्तर, (२) मध्यम (३) दक्षिण इन तीन वीथियों में विभक्त किया गया है, प्रत्येक वीथि में अश्विनी आदि क्रम से नौ नौ नक्षत्र होते हैं।

(१) अश्विनी, भरणी, कृत्तिता, (२) रोहिणी-मृगशिरा - आर्द्रा, (३) पुनर्वसु, पुष्य - श्लेषा। इन नौ नक्षत्रों को सूर्य जव भोगता है, तव शुक्र का यह भोग अथवा सञ्चार सौम्यवीथि = उत्तरदिशा मार्ग के अन्तर्गत माना जाता है। (४) मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, (५) हस्त, चित्रा, स्वाती (६) विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, इन नौ नक्षत्रों को शुक्र जव भोगता है, तव शुक्र का यह भोग अथवा सञ्चार मध्यवीथि के अन्तर्गत माना जाता है। (७) मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, (८) श्रवण, धनिष्ठा, शतिभिषा, (९) पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, इन नौ नक्षत्रों को जव शुक्र भोगता है, तव शुक्र का यह भोग अथवा सञ्चार दक्षिणवीथि के अन्तर्गत माना जाता है।

३—सौम्यवीथि के अन्तर्गत स्थित नौ नक्षत्रों में तीन - तीन नक्षत्रों के क्रम से क्रमशः (१) नाग (२) इभ (३) ऐरावत, नाम की तीन वीथियाँ होती हैं। मध्यवीथि के अन्तर्गत नौ नक्षत्रों में तीथ - तीन नक्षतों के क्रम से क्रमशः (४) वृषभ (५) गौ, (६) जरद्गव, नाम की तीन वीथियाँ होती हैं। याम्यवीथि = दक्षिणवीथि के अन्तर्गत नौ नक्षत्रों में तीन - तीन नक्षत्रों के क्रम से क्रमशः (७) मृग, (८) अज (९) दहन, नाम की तीन वीथियाँ होती हैं।

वीथियों के फल

४—सौम्यवीथि में शुक्र का सञ्चार होने पर अन्न, धन-धान्य, भाव और वर्षा अच्छे रहा करते हैं। मध्यवीथि में शुक्र का सञ्चार होने पर अन्न, धन, धान्य, भाव और वर्षा मध्यम कोटि में रहा करते हैं। याम्यवीथि = दक्षिणवीथि में शुक्र का सञ्चार होने पर अन्न, धन, धान्य, भाव और वर्षा आदि कमी के साथ हुआ करते हैं।

जन्मनक्षत्र के क्रम से शनैश्चर के शुभाशुभफल का विचार

(५)—जिस नक्षत्र में व्यक्ति का जन्म हुआ हो, उस नक्षत्र से गणना करके क्रमशः—१ नक्षत्र सिर में, ३ नक्षत्र मुंह में, २ नक्षत्र गुप्ताङ्ग में, २ नक्षत्र नेत्रों में,

को शनैश्चर=(दोनों नेत्रों में एक एक), ५ नक्षत्र हृदय मे, ४ नक्षत्र वायें हाथ में, ३ नक्षत्र वायें पैर में, ३ नक्षत्र सीधे पैर में, ४ नक्षत्र सीधे हाथ में, इस प्रकार २७ नक्षत्रों को शनैश्चर स्वरूप व्यक्ति के शरीर में विभक्त मानकर फलादेश का विचार करना चाहिये।

सिर के नक्षत्र पर शनैश्चर का सञ्चार होने पर व्यक्ति रोगयुक्त हो जाता है, मुंह के नक्षत्रों पर शनैश्चर का सञ्चार होने पर आमदनी में रुकावटें पड़ने लगती हैं, गुप्ताङ्ग के नक्षत्रों पर शनिचार होने पर शारीरिक, मानसिक, और आर्थिक हानि हुआ करतीहै, दोनों नेत्रों के दोनों नक्षत्रों पर शनिचार होने पर लाभ होता है, हृदय के नक्षत्र पर शनिचार होने पर सुख मिलता है, वायें हाथ के नक्षत्रों पर शनिचार होने पर वन्धन = (जेलयात्रा आदि) करनी पड़ती है:

वायें पैर के नक्षत्रों पर शनैश्चर का सञ्चार होने पर विशेप परिश्रम और थकान का अनुभव करना पड़ता है, सीधे पैर के नक्षत्रों पर शनि का सञ्चार होने पर मनचाही यात्रा करनी पड़ती है, सीधे हाथ के नक्षत्रों पर शनि का सञ्चार होने पर धन का लाभ हुआ करता है।

परिवेष का विवेचन

६—जव सूर्य और चन्द्रमा की रश्मियाँ वायु से टकराकर अनेक प्रकार के रंगरूपों के माथ सूर्य और चन्द्रमा के चारों ओर गोलमण्डलाकार रूप में दिखाई देने लगती हैं, तव इन सूर्यचन्द्र की गोलाकार = (मण्डलाकार) रश्मियों को "परिवेप" नाम से पुकारा जाता है, अनेक प्रकार के परिवेषों से वर्षावायुविज्ञान के सम्वन्ध में तथा राष्ट्रों से सम्वन्धित अनेक प्रकांर के शुभाशुभ फलादेशों के सम्वन्ध में विचार किया जाता है।

इन्द्रधनुष के लक्षण और फल का विवेचन

७—सूर्य की अनेक प्रकार की रश्मियाँ मेघों और वायुओं से टकराकर अनेक प्रकार के रङ्ग - विरङ्गों से परिपूर्ण धनुषाकार "इन्द्रधनुष" आकाश में कभी - कभी दिखाई देने लगता है, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान, वायव्य, नैऋत्य, आग्नेय, इन आठों दिशाओं में जिस किसी दिशा में "इन्द्रधनुष" दिखाई दे, उस दिशा के अनुसार धनुष का शुभाशुभफल समझना चाहिये।

८—आकाश में "इन्द्रधनुष" यदि - पीला पाटल = (हल्की लालिमायुक्त) अथवा नीला दिखाई पड़े तो इन्द्रधनुष से अग्नि और शस्त्रास्त्रों के प्रकोप से प्रजा को सन्निकट भविष्य में भय होने का संकेत मिलता है।

इन्द्रधनुष पर वल्मीकि=(दीमक नाम के कृमियों द्वारा वनाये गये मिट्टी के चट्टानों के आकार) दिखाई दें, तो प्रजा में अनेक प्रकार की व्याधियों = (रोगों) से तथा भूस्खलनों से, अन्नादि के नाश होने से, अतिवृष्टि से,और युद्ध से भय तथा आतङ्क का वानावरण व्याप्त हो जाता है।

९—वर्षाऋतु के अतिरिक्त अन्य किसी भी ऋतु में पूर्वदिशा में "इन्द्रधनुष" दिखायी पड़े तो सन्निकट भविष्य में वर्षा होगी यह समझ लेना चाहिये। वर्षा ऋतु में पूर्व दिशा में यदि "इन्द्रधनुष" दिखाई पड़े तो वर्षा के अभाव का सूचक "इन्द्रधनुष"

को समझना चाहिये, पश्चिम दिशा में दिखाई दिये "इन्द्रधनुष" से हमेशा सन्निकट भविष्य में वर्षा होने वाली है, यह समझना चाहिये , उत्तर और दक्षिण दिशाओं में दिखाई दिये "इन्द्रधनुष" से भी सन्निकट भविष्य में होने वाली वर्षा को ही समझ लेना चाहिये, पूर्वदिशा में दिखाई दिये इन्द्रधनुष से पश्चिम दिशा के राजा को हानि होगी, यह समझना चाहिये।

१०—दक्षिण दिशा में दिखाई दिये धनुष से सेनापति को सन्निकट भयिष्य में हानि पहुँचेगी, यह समझना चाहिये, पश्चिम बिशा में दिखाई दिये धनुष से राष्ट्र के किसी मुख्य कर्णधार = (नायक, लीडर) को हानि पहुँचने का संकेत समझ लेना चाहिये, उत्तर दिशा में दिखाई दिये "इन्द्रधनुष" से राष्ट्र के किसी इने - गिने मन्त्री की हानि होने का संकेत मिलता है, ईशान, वायव्य, नैऋत्य, आग्नेय, इन चारों कोणों में से किसी भी कोण में दिखाई दिये "इन्द्रधनुष" से राष्ट्र के गण्यमान्य "सचिव" को क्षति पहुँचने का संकेत मिलता है।

११—रात्रि में शुक्लवर्ण = (सफेदरङ्ग) का "इन्द्रधनुष" जिस दिशा में दिखाई दिया हो, उस दिशा के ब्राह्मणवर्ण के व्यक्तियों को हानि पहुँचने का संकेत मिलता है।

१२—जिस दिशा में इन्द्रधनुष दिखाई दे, उस दिशा के किसी गण्यमान्य राजा को हानि पहुंचने का संकेत मिलता है।

(१३)—आमने सामने की दो दिशाओं में दो इन्द्रधनुष इस प्रकार दिखाई दें कि इन धनुषों के छोर पृथिवी को स्पर्श कर रहे हों, इस प्रकार के धनुष यदि पूर्वोक्त बुरे लक्षणों से युक्त हों तो उस राष्ट्र के राजा की विशेष हानि होने वाली है, इस बात का संकेत इन दोनों इन्द्रधनुषों से मिला करता है, यदि शुभ लक्षणों से युक्त हों, तो राष्ट्र के राजा को शुभफल प्राप्ति होने का संकेत इन्द्रधनुषों से मिला करता है।

आकाश में दिखाई दिये गन्धर्व नगरों से शुभाशुभ का विवेचन

आकाश में–लाल, हरे, पीले, नीले आदि रंगों के मेघों और ताराओं से नगर जैसा बसा हुआ दिखाई दे, तो वह "गन्धर्वनगर" मानाजाता है।

इस प्रकार के गन्धर्वनगर जिस राष्ट्र के आकाश में दिखाई दें, उस राष्ट्र के राजा, प्रजा, सेना, सेनानी आदि को युद्धादि के द्वारा क्षति पहुँचने का पूर्वाभासित सङ्केत समझना चाहिये।

प्रतिसूर्य के लक्षणों और फलों का विवेचन

१५—सूर्य के सन्निकट में प्रतिबिम्बित दूसरा सूर्य- स्निग्ध, सफेद=(स्वच्छ) और वैडूर्य मणि के समान (लालिमायुक्त) दिखाई देने पर राष्ट्र की प्रजा को अच्छा शुभफल मिलने का सङ्केत हुआ समझना चाहिए, पीले वर्ण के सूर्य प्रतिबिम्ब से रोग की वृद्धि, काले रङ्ग के सूर्यप्रतिबिम्ब से भयङ्कर युद्ध और मृत्यु, सूर्यप्रतिबिम्ब की माला से चोरी, डकैति का भय होने का सङ्केत राष्ट्र की प्रजा के लिये समझलेना चाहिये।

निर्घात के लक्षणों और फलों का विवेचन

आकाश में प्रचलित प्रचण्ड वायु के वेग से विलोमदिशा की ओर से प्रचलित प्रचण्डवायु का वेग टकराकर भयङ्कर शब्द करता हुआ जब भूगोल की ओर गिरता है, तब उसे "निर्घात" नाम से पुकारा जाता है, इस प्रकार का निर्घात जिस किसी राष्ट्र अथवा प्रदेश में जब कभी होता है, तब उस राष्ट्र या प्रदेश के राजा=(प्रधान-लीडर) और प्रजा का अनिष्ट सन्निकट भविष्य में होने का सूचक निर्घात माना है।

दिग्दाह के लक्षणों और फलों का विवेचन

१७— वर्षा ऋतु के अतिरिक्त अन्य किसी ऋतु में - किसी भी दिशा में-भयङ्कर रूप धारण किये हुए भयभीत और चकित करने वाला अनायास ही विशेष प्रकाश दिखाई देने पर उसे "दिग्दाह" नाम से पुकारा जाता है, इस प्रकार का 'दिग्दाह' जिस राष्ट्र अथवा प्रदेश में यदि दिखाई दे तो उस राष्ट्र और प्रवेश के लिये विशेष अनिष्ट का सूचक माना जाता है।

धूलिलक्षणों और फलों का विवेचम

१८—सफेद रङ्ग की धूलि से युक्त सफेद आंधी किसी भी दिशा से सनसनाहट की आवाज करती हुई जिस राष्ट्र अथवा प्रदेश के जितने भाग में व्याप्त हो जाय, उतने ही भाग की प्रजा और राजा तथा उस राष्ट्र के कर्णधार लीडर को हानि पहुँचने का स्पष्ट संकेत धूलियुक्त अन्धड़= (धूलियुक्त आंधी) से मिला करता है।

जिस दिशा सें धूलि युक्त भयङ्कर अन्धड़=(आंधी) उठ कर आती है, उस दिशा की प्रजा और प्रवन्ध तथा - सुव्यवस्था का प्रायः सर्वनाश हो जाता है, यह अन्धड़ उस प्रदेश और उस राष्ट्र में- भयङ्कर उत्पात, महामारी, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि अनावृष्टि, युद्ध, शस्त्रप्रकोप, राजभय आदि का सूचक होता है।

भूकम्प के लक्षणों और फलों का विवेचन

१९— शेषनाग= (ईश्वर) की शक्ति= (आकर्षणशक्ति) से "भूगोल"-खगोल के मध्य में= (आकाश के मध्य भाग में) स्थित है। भूगोल के अन्तर्गत— (१)पृथिवी, (२)जल, (३) तेज=अग्नि,(४) वायु, (५) आकाश, ये पाँच तत्व विद्यमान रहते हैं। पाञ्चभौतिकपिण्ड को धारण करने की विशेषशक्ति वायु में ही हुआ करती है, अधिकभार और आर्द्रता=(गीलेपन)से प्रकुपित होकर वायु पाञ्चभौतिक-पिण्ड में कम्पना = (कंपकंपी) उत्पन्न= (पैदा) कर देता है, तदनुसार पर्वतीयक्षेत्रों में और जलीयक्षेत्रों में भूस्खलन और भूकम्प की घटनायें प्रायः अधिकतर होती हुई दिखाई दिया करती हैं। भारहीन और जलहीन प्रदेशों में भूस्खलन और भूकम्प की घटनायें वहुत कम ही हुआ करतीं हैं।

२०—भूगोल के भार और आर्द्रता=(गीलेपन)से प्रकुपित हुआ वायु पाञ्च-भौतिक पिण्ड के जिस भाग से अलग होकर इधर उधर आकाश की ओर चला जाता है, भूगोल के उसी भाग में - "भूस्खलन" और "भूकम्प" के झटके लगने लगते हैं,

कुछ लोग भूकम्प के झटकों को "भूचाल" नाम से भी पुकारा करते हैं।

२१— कई दिनों तक निरन्तर भयङ्कर वर्षा और आँधी तूफानों के होने पर तथा– आधुनिक विज्ञान से निर्मित "एटमवम" आदि का परीक्षण करने पर प्रकुपित हुए भूवायु के कारणों से ही "भूकम्प और भूस्खलन" हुआ करते हैं, इन भूकम्प और भूस्खलनों से संसार भर के प्राणि मात्र का विशेष अनिष्ट हुआ करता है।

नक्षत्र मण्डलों से भूकम्प का विवेचन

२३— उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, इन सात नक्षत्रों का समुदाय भूकम्प विचार विमर्श के सम्बन्ध में "वायव्यकोण= उत्तर पश्चिम के बीच के कोंण" में स्थित माना जाता है, वायव्यकोण के इन सात नक्षत्रों में से किसी भी नक्षत्र पर यदि "भूकम्प" हो तो उस वायव्य दिशा के राजा, धन-धान्य, व्यापारीवर्ग, वैश्यवर्ग, कलाकारों और दस्तकारवर्ग को भारी क्षती उठानी पड़ती है, तथा उस भूभाग में वर्षा भी कम हुआ करती है।

२४— विशाखा, भरणी, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, इन नक्षत्रों का मण्डल= (समूह) "आग्नेय कोण= पूर्व दक्षिण के बीच के कोण में स्थित माना जाता है, इन नक्षत्रों में भूकम्प होने पर आग्नेय कोण के राजा और प्रजा को हानी होती है, तथा इस दिशा में वर्षा कम होती है, अन्नादि के भाव वढ़कर महगाई से हाहाकार मचने लगता है, शावर और टकंण देश के व्यक्तियों को भी हानि उठानी पड़ती है।

२३— अभिजित्, रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, ज्येष्ठा, श्रवण, अनुराधा, ये नक्षत्र, "वासव" मण्डल के होते हैं, मूल, उत्तराभाद्रपदा, शतभिषा, रेवती, आर्द्रा, आश्लेषा, ये नक्षत्र "वारुण" मण्डल के माने जाते हैं, इन "वासव ओर वारुण" मण्डल के नक्षत्रों में भूकम्प होने पर - "पुण्ड्र, चीन, और पुलिन्द" देशों में भारी क्षति होती है, जिस राष्ट्र या प्रदेश में भूकम्पादि उत्पात होते हैं, उस राष्ट्र या प्रदेश के राजा को=(शासन कर्ता लीडर) को वहुत परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

२५— वर्षावायुविज्ञान के सम्वन्ध में इसी आठवें अध्याय के २६९वें पृष्ठ से ३०४ वें पृष्ठ तक लिखे गये पद्यों का अर्थ अत्यन्त सरल है, अत एव उन पद्यों की व्याख्या को करना अनावश्यक समझा गया है।

२६— शुक्रचार के अन्तर्गत वीथियों के सम्वन्ध में इसी आठवें अध्याय में नारद, वसिष्ठादि ऋषियों के मतानुसार तथा वराहमिहिराचार्यादि वैज्ञानिकों के मतानुसार संस्कृत भाषा में - विस्तृत विवेचन २९१, २९२, ३०५, ३०६ पृष्टों पर, और सुन्दरी टीका हिन्दी भाषा में स्पष्ट विवेचन तीनसौ तीस=(३३०) पृष्ठ पर किया जा चुका है, ध्यान से पढ़ने पर भली प्रकार समझ में आजायगा।

रोहिणी - शकट के नाम और भेदों तथा फलों का विवेचन

२८–आकाश में हजारों छोटी छोटी ताराओं के समूह से "रोहिणी नक्षत्र" का निर्माण हुआ है, "शकट" शब्द वैलगाढ़ी का पर्यायवाची है, रात्रि के समय स्वच्छ

आकाश में दूरवीक्षण यन्त्रादि साधनों के विना भी ''रोहिणी नक्षत्र'' का आकार शकट = 'गाढ़ी' के समान दिखाई देता है, इसीलिये इसे ''रोहिणीशकट'' नाम से पुकारा जाता है। व्याकरण शास्त्र के अनुसार "भिद् विदारणे" धातु से "भेद" शब्द बनता है, तदनुसार किसी द्रव्य अथवा पदार्थ को जब कोई ग्रह, व्यक्ति अथवा अन्य कोई शक्ति चीरती, विदारण करती, भेदन करती, या अलग करती है, तब उस अलगाव अथवा चिराव अथवा विदारण की क्रिया को "भेद" शब्द से भी पुकारा जाता है।

रोहिणी शकट भेद के लक्षण और प्रकार का विवेचन

२९—खगोलीय गणित में ग्रहों के "उत्तर और दक्षिण" शरों=बाणों का विस्तृत विवेचन किया गया है, खगोलीय गणित के अनुसार "शुक्र" अथवा अन्य कोई ग्रह वृष राशि के सत्रह अंशों का भोग कर चुका हो = १/१७ युक्त हो = १ राशि, १७ अंश भोग चुका है, और उस शुक्रादि ग्रह का दो अंश तीस कला = २/३० से कुछ अधिक दक्षिणशर हो, तो वह शुक्रादि ग्रह "रोहिणीशकट" का भेद = (भेदन =विदारण = छिन्न-भिन्न) करता है।

रोहिणीशकटभेद का फल

३०—शुक्र ग्रह जब "रोहिणी - शकट - भेद" करता है, तब विश्व में भयङ्कर युद्ध, महामारी, दुर्भिक्ष, कलह, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, आदि के कारणों से धन और जनसमुदाय का विशेष रूप से विनाश होता है। चन्द्र और शनैश्चर मंगल ग्रहों में से भी यदि कोई ग्रह ' रोहिणीशकटभेद" को करता है, तो भी विश्व में जन-धनादि का संहार = (विशेष विनाश) होता है।

३१—वसिष्ठ, नारदादि ऋषियों ने तथा वैज्ञानिक महाकवि वराहमिहिराचार्य और महाकवि कालिदास प्रभृति वैज्ञानिकों ने "रोहिणीशकटभेद" के एक से लक्षणों और एक से फलादेशों को कहा है।

३२—३०७ पृष्ठ पर स्थित शनैश्चर चार से ३०९ पृष्ठ पर स्थित केतुचार तक के श्लोकों का अर्थ अत्यन्त सरल है, अतएव उनकी टीका को नहीं किया गया है।

अगस्त्यतारा के उदय का विवेचन

३३—स्पष्टसूर्य चार राशि तेईस अंश =(४/२३) होने पर दक्षिण दिशा में "अगस्त्य" का उदय होता है। उदित अगस्त्य का स्वरूप रूक्षवर्ण का दिखाई देने पर प्रजा में रोगों से भय होता है, कपिलवर्ण का दीखने पर अनावृष्टि="सूखा" पड़ा करती है, धूम्रवर्ण का दिखाई देने पर पशुओं में अनेक प्रकार के रोग और प्रजा में भय का वातावरण व्याप्त हो जाता है। माञ्जिष्ट वर्ण का दिखाई देने पर भुखमरी, अकाल, और युद्ध की स्थितियों का सामना प्रजा को करना पड़ता है।

३४—हस्तनक्षत्र पर सूर्य का भोग होने पर अगस्त्य का उदय और रोहिणी नक्षत्र पर सूर्य का भोग होने पर अगस्त्य का अस्त हुआ करता है। उदित हुआ अगस्त्य का तारा स्निग्ध और मनोहर वर्ण का दिखाई दे तो प्रजा में अनेक प्रकार से कल्याण और सुभिक्ष होने का संकेत देता है।

३१० और ३११ = (तीन सौ दश और तीन सौ ग्यारह) पृष्ठों पर वर्षेश, मन्त्री, धान्येश और रसेश के सम्बन्ध में लिखे गये श्लोकों का अर्थ सरल है।

मेघों के गर्भधारण, गर्भप्रसव और गर्भस्राव का विवेचन

३५–संसार के प्राणियों के प्राण अन्न से सुरक्षित रहते हैं, अन्न की उत्पत्ति वर्षा और जल, वायु से हुआ करती है, अतएव वर्षा और जलवायु के सम्बन्ध में विवेचन करना उचित और अत्यावश्यक है।

मेघों = (बादलों) के गर्भधारण के समय का विवेचन

३६—कार्तिक शुक्लपक्ष के व्यतीत होने पर कभी कभी मार्गशीर्षमास के कृष्ण पक्ष में और अधिकतर मार्गशीर्षमास = (अघहन मास) के शुक्लपक्ष में जिस दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र पर चन्द्रमा का सञ्चार = (भ्रमण=भोग) होता है, उसी दिन से आकाशमण्डल में बादल = (मेघ) दिखाई देने लगते हैं, और उसी दिन से मेघों में = (बादलों में) वर्षा के गर्भ को धारण करने का कार्य प्रारम्भ हो जाता है, अतएव मार्गशीर्ष मास में आकाश में मेघ = (बादल) दिखाई देने लगते हैं।

मेघगर्भधारण के मासों का विवेचन

(१) मार्गशीर्ष, (२) पौष, (३) माघ, (४) फाल्गुन, (५) चैत्र, (६) वैशाख, इन छः मासों में मेघगर्भधारण (वर्षागर्भधारण) होते हैं।

मेघगर्भधारण के निरीक्षण करने का विवेचन

३७—राष्ट्र के वास्तविक शुभचिन्तक राष्ट्रनायकों का कर्तव्य है कि— वे अपने अपने राष्ट्रों में प्रजा की सुव्यवस्था और सुख, समृद्धि के लिये - प्रत्येक वर्ष के प्रारम्भ में यह जानने का प्रयत्न करें कि–हमारे राष्ट्र में इस वर्ष वर्षा और अन्न, जल, वायु, की स्थिति कब कैसी रहेगी, राष्ट्र के किन प्रदेशों, जिलों और तहसीलों में - वर्षा और जल, वायु तथा अन्नादि के पैदावार की स्थिति सन्निकट भविष्य में कैसी रहेगी।

३८—पूर्वोक्त वर्षा - वायु और अन्न, जल आदि के सम्बन्ध में भविष्यकाल की सही स्थिति का पता लगाने के लिये राष्ट्र के प्रत्येक जिला और तहसील में कार्यरत - शासनतन्त्र के माध्यम से खगोलशास्त्र के जानने वाले व्यक्तियों के द्वारा "मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, इन छः महीनों में प्रत्येक दिन आकाश का निरीक्षण कराकर "मेघगर्भधारण" होने अथवा नहीं होने की सही जानकारी करके, यह निष्कर्ष निकाल लेना चाहिये, कि राष्ट्र के किन किन जिलाओं और किन किन तहसीलों में "वर्षा, वायु, और जल तथा अन्न" की स्थिति भविष्य में कैसी रहेगी, कहाँ कहाँ अतिवृष्टि और अनावृष्टि (सूखा) के प्रकोप से अन्नादि की हानि होगी, कहाँ कहाँ सुवृष्टि से अन्नादि की पैदावार अच्छी होगी।

३९— मार्गशीर्षादि छः मासों में जिस दिन आकाश में बादल दिखाई देकर - हल्की वर्षा, विजली की चमक, बादलों की गड़गड़ाहट, और वायु की सनसनाहट= (हवा का चलना) दिखाई दें, उसी दिन यह समझ लेना चाहिये कि आज मेघों का "गर्भधारण" हुआ है।

मेघों के गर्भधारण में आकाश में पाँच निमित्त="५ कारण" मुख्य रूप से दिखाई दिया करते हैं, पाँचौ कारणों = (नमित्तों) के नाम "(१)बादल(२) वायु, (३) हल्की वर्षा, (४) विजली का चमकना, (५)वादलों में गड़गड़ाहट का होना, इन पांच निमित्तों के अभाव में मेघों में वर्षा के गर्भधारण नहीं हुआ करते हैं ।

मेघों के गर्भप्रसव का विवेचन

४०— आकाश में मेघों ने जिस दिन वर्षा के गर्भ को धारण किया हो, उस षिन आकाश में मेघगर्भधारण के समय चन्द्रमा जिस नक्षत्र पर सञ्चार कर रहा हो, गर्भधारण के दिन से एक सौ पिचानवें दिन = (१९५ वें दिन) साढ़े छैः मास पूर्ण होने पर जिस नक्षत्र पर मेघगर्भधारण हुआ था, उसी नक्षत्र पर चन्द्रमा का सञ्चार होने पर मेघों के गर्भों के प्रसव = (वर्षा का होना) हुआ करता है । मेगगर्भधारण के समय जिस दिशा का वायु चल रहा हो, जिस दिशा में बादल दिखाई दिये हों, जिस दिशा में विजली चमकी हो, जिस दिशा से हल्की वर्षा का होना शुरू हुआ हो जिस दिशा में वादल गरजे हों, ये सव वातें मेघप्रसव = (वर्षा) होने के समय गर्भधारण की दिशा के सामने वाली दिशा से=(विलोम विशा से) हुआ करतीं हैं ।

तदनुसार मेघगर्भधारण के समय यदि - पूर्व दिशा में - वादल, गड़गढ़ाहट, वायु, विजली, हल्की वर्षा शुरू हुई हो, तौ मेघगर्भप्रसव के समय पश्चिम दिशा में - वादल, गड़गड़ाहट, वायु, विजली चमक कर पश्चिम दिशा की ओर से ही वर्षा आती हुई दिखाई देगी, इसी प्रकार से अन्य दिशाओं में भी मेगगर्भधारण की दिशा के विलोमदिशा= (सामने वाली दिशा) से मेघगर्भप्रसव होना=(वर्षा का होना) समझ लेना चाहिये ।

४१— मेघगर्भधारण के समय पूर्वोक्त पाँच निमित्त=(मेघ, वायु, विजली, गड़गड़ाहट, हल्को वर्षा) पूर्ण रूप से न हों, पाँचों निमित्तों में से कुछ ही निमित्त हों, तौ मेगगर्भधारण पूर्ण रूप से नहीं हो सके हैं, यह समझ लेना चाहिये । पूर्ण रूप से मेघगर्भधारण न होने पर मेघगर्भप्रसव के समय बहुत ही कम वर्षा का होना समझ लेना चाहिये ।

मेघगर्भस्राव=(मेघगर्भपात) का विवेचन

४२— मेघगर्भधारण के समय "मेघ, वायु, बिजली, गड़गड़ाहट," इन चारों निमित्तों के होने पर भी पाँचवाँ निमित्त हल्की वर्षा न होकर यदि अधिक वर्षा हो जाय, तौ मेघों के गर्भ का स्राव = "मेघगर्भपात" होना समझ लेना चाहिये । मेघों के गर्भपात होने पर गर्भधारण के दिन से साढ़े छैः मास पूर्ण होने पर साधारण रूप में ठण्डी बूंदा बाँदी मात्र होगी यह समझ लेना चाहिये ।

मेघगर्भधारण और मेघगर्भप्रसव का विशेष विवेचन

४३—(१) मार्गशीर्ष मास के मेघगर्भ ज्येष्ठ मास में वर्षा करते हैं ।

(२) पौषमास के मेघगर्भ आषाढ़मास में वर्षा करते हैं ।

(३) माघमास के गर्भ श्रावणमास में वर्षा करते हैं ।

(४) फाल्गुनमास के गर्भ भाद्रपदमास में वर्षा करते हैं।
(५) चैत्रमास के गर्भ आश्विनमास में वर्षा करते हैं।
(६) वैशाखमास के गर्भ कार्तिकमास में वर्षा करते हैं।
(७) दिन में धारण हुआ मेघगर्भ रात्रि में वर्षा करता है।
(८) शुक्लपक्ष में धारण हुआ मेघगर्भ कृष्णपक्ष में वर्षा करता है।
(९) पूर्णिमासी में धारण हुआ मेघगर्भ अमावास्या में वर्षा करता है।
(१०) अमावास्या में धारण हुआ गर्भ प्रसव के समय पूर्णिमा में वर्षा करता है।
(११) प्रातःकालीन सन्ध्या में धारण हुआ गर्भ सायं सन्ध्या में वर्षा करता है।
(१२) सायं सन्ध्या में धारण हुआ मेघगर्भ प्रातः सन्ध्या में वर्षा करता है।
(१३) पूर्वाह्न में धारण हुआ मेघगर्भ आधीरात के बाद वर्षा करता है।
(१४) आधीरात के बाद धारण हुआ मेघगर्भ पूर्वाह्न में वर्षा करता है।
(१५) मध्याह्न में धारण हुआ मेघगर्भ आधीरात में वर्षा करता है।

मेघगर्भधारण के समय से साढ़े छैः मास पूरे होने पर मेघगर्भधारण के नक्षत्र पर ही मेघगर्भप्रसव के समय चन्द्रमा स्थित हुआ करता है, उसी प्रसव समय का उपर्युक्त विवेचन किया गया है।

मेघगर्भ नष्ट होने के लक्षणों का विवेचन

४४— मार्गशीर्षादि छैः मासों में आकाश में मेघों के गर्भधारण होने के सुदृढ लक्षण दिखाई देने के पश्चात् - ओलों की वर्षा, कोहिरा की वर्षा = (सूर्योदय होने पर अन्धकारयुक्त वातावरण होकर ओस के समान हल्की बूंदों का गिरना) तथा मांस और शोणित की वर्षा का होना, उल्कापात, निर्घात, भूकम्प, बज्रपात का होना सूर्य और चन्द्रमा का परिवेष, परिधि, इन्द्रधनुष, और बादलों के विना आकाश में गर्जने की आवाज होना, दिशाओं में चमकाव होना, विना ऋतु के समय के विपरीत पुष्पों और फलों का विकास होना, ग्रहों में आकाश में युद्ध होना, इन लक्षणों में से किसी भी लक्षण के होने पर धारण किये हुए मेघगर्भ को नष्ट कर देने का सूचक होता है।

बहुत जल वर्षाने वले मेघगर्भों का विवेचन

४५—पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाप्रपदा, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, रोहिणी, इन नक्षत्रों में मेघों के गर्भधारण होने पर मेघगर्भप्रसवकाल में अधिक मात्रा में पानी बरसता है।

कई दिनों तक निरन्तर वर्षा होते रहने का विवेचन

४६— शतभिषा, आश्लेषा, आर्द्रा, स्वाति, मघा, इन नक्षत्रों में मेघगर्भधारण होने पर कई दिनों तक लगातार वर्षा मेघप्रसव के समय हुआ करती है।

रोहिणी, मघा, आश्लेषा, आर्द्रा, स्वाति, शतभिषा, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, इन दश नक्षत्रों में मेघों के गर्भधारण होने पर प्रसव के समय अधिक मात्रा में जल बरसता है, इन दश नक्षत्रों में भी मेघगर्भधारण होने के बाद उल्कापात बज्राघात, आदि भयङ्कर उत्पातों के हो जाने पर धारित मेघगर्भों को नष्ट भ्रष्ट हुआ समझ लेना चाहिये।

लगातार वर्षा होने के दिनों की संख्या को जानने का प्रकार

४७—शतभिषा, आश्लेषा, आर्द्रा, स्वाति, मघा, इन पाँचों नक्षत्रों में से कोई भी एक नक्षत्र मेघगर्भधारण होने के समय मार्गशीर्षमास में हो, तो गर्भधारण के दिन से १९५ दिन= (साढ़े छैः मास) बीतने पर आठ दिनों तक लगतार वर्षा होती रहती है, पौषमास में गर्भधारण के समय उक्त पांच नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र हो तो प्रसव के समय छैः दिन तक लगातार वर्षा होती रहती हैं।

माघमास में मेघगर्भधारण के समय उक्त पाँचों नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र हो तो सोलह दिन तक लगातार वर्षा हुआ करती है।

फाल्गुन मास में मेघगर्भधारण के समय उक्त पाँचों नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र हो, तो चौबीस दिन तक लगातार वर्षा मेघगर्भप्रसव के समय हुआ करती है।

चैत्रमास में मेघगर्भधारण के समय - शतभिषा, आश्लेषा, आर्द्रा, स्वाति, मघा इन पांचों नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र हो तो १९५ दिन=(साढ़े छैः मास) पूरे होने पर वीस दिन तक लगातार वर्षा हुआ करती है।

वर्षा की दूरी के प्रमाणका विवेचन

४८—जिस स्थान पर मेघगर्भ धारण का परीक्षण हो रहा हो, मेघगर्भधारण के समय– (१) वायु, (२) जल, (३) विजली, (४) मेघों में गर्जन, (५) मेघ, इन पांचों निमित्तों का अस्तित्व रहने पर मेघगर्भधारण होने के स्थान से लेकर- एकसौ योजन की दूरी तक= (१४५४ किलोमीटर और ६०० गज की दूरी तक) वर्षा का होना समझ लेना चाहिये।

मेघगर्भधारण के समय चार निमित्तों के होने पर पचासयोजन दूरी तक = (७२७ किलोमीटर,३०० गज की दूरी तक) वर्षा होगी यह समझ लेना चाहिये, तीन निमित्तों के होने पर पच्चीसयोजन दूरी तक, दो निमित्तों के होने पर साढ़े बारह योजन की दूरी तक और एक निमित्त के होने पर पाँच योजन की दूरी तक वर्षा का होना समझ लेना चाहिये।

मछली, ओला, विजली आदि गिरने के साथ वर्षा का विवेचन

४९—वर्षा के गर्भ को मेघों ने जिस दिन धारण किया है,उस दिन गर्भधारण के समय का नक्षत्र यदि किसी क्रूर ग्रह से आक्रान्त हो, तो गर्भधारण के दिन से१९५ दिन पूरे होने पर— "ओला, विजली, मछली, गेसा, मेंढ़क आदि" भी वर्षा के साथ वरसेंगे, तथा अनिष्टकारिणी वर्षा होगी, यह समझ लेना चाहिये, गर्भधारण ठीक प्रकार से होने पर भी ग्रहोपघातादि के कारण से यदि मेघगर्भप्रसव के समय वर्षा न हो सके तो पुनः मेघगर्भधारण होने के समय में - करका= (ओला) युक्त वर्षा हुआ करती है।

५०— गाय अथवा भेंस के एन में (स्तनों) में कई महीने तक(चिरकालतक) रुका हुआ दूध जिस प्रकार कठोरता को प्राप्त हो जाता है, ठीक उसी प्रकार से आकाश में ग्रहोपघातादि के कारणों से चिरकाल तक रुका हुआ जल कठोरता को प्राप्त होकर

करका= (ओला) आदि के रूप में परिवर्तित हो जाता है ।

५१—ग्रहों के उदय और अस्त के समय में तथा कर्क और मकर की सङ्क्रान्ति होने के समय में, और आर्द्रा नक्षत्र पर सूर्य के सञ्चार के समय में, तथा चान्द्रमासके किसी एक पक्ष का क्षय होने के समय में, प्रायः वर्षा हुआ ही करती है ।

वायुधारणदिनों का विवेचन

ज्येष्ठ शुक्लपक्ष में - अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी इन चार तिथियों के चार दिन "वायु धारणदिन" माने जाते हैं, वायु के द्वारा इन चारों दिनों के पुष्ट होने पर अच्छी वर्षा का होना, और अपुष्ट होने पर वर्षा का नहीं होना, अथवा निकृष्ट-वर्षा का होना माना जाता है, इन चारों तिथियों के चारों दिनों में शरीर को स्पर्श करने पर अच्छा लगने वाला, रूक्षता रहित - उत्तर, ईशान, पूर्व दिशा का मनोहर वायु चले तथा प्रिय लगने वाले वादलों से आकाश मण्डल घिरा हुआ दिखाई दे, तो ये लक्षण अच्छी वर्षा होने के सूचक माने जाते हैं, इस के विपरीत लक्षणों से अति-वृष्टि और अनावृष्टि तथा कुवृष्टि होने के लक्षणों का अनुमान लगाया जाता है, ज्येष्ठ शुक्लपक्ष की अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, में वायु से मेघगर्भ धारण होने का विचार किया जाता है ।

५२—खगोलीय गणित के अनुसार शास्त्रीय शुद्ध गणित द्वारा निर्मित पंचाङ्गों में प्रत्येक ज्येष्ठ शुक्लपक्ष में - "स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा" ये चार नक्षत्र अवश्य हुआ करते हैं ।

ज्येष्ठ शुक्लपक्ष की "अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी" इन चारों तिथियों से तथा "स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा" इन चारों नक्षत्रों से- क्रमशः- श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक इन चार महीनों की वर्षा का विचार किया जाता है, अष्टमी आदि चारों तिथियों में सुन्दर वायु के चलने से तथा आकाश में सुन्दर वादलों के मँडराने से- श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, इन चारों मासों में अच्छी वर्षा होगी यह समझ लेना चाहिये, स्वाती आदि चारों नक्षत्रों में वर्षा और आंधी ज्येष्ठ शुक्लपक्ष में यदि हो तो क्रमशः - पूर्वोक्त अष्टमी आदि चारों तिथियों के मेघगर्भों का स्राव=(गर्भपात) हुआ समझ लेना चाहिये ।

ज्येष्ठ शुक्लपक्ष में स्वातिनक्षत्र में वर्षा होने पर श्रावण, विशाखानक्षत्र में वर्षा होने पर भाद्रपद, अनुराधा नक्षत्र में वर्षा होने पर आश्विन और ज्येष्ठा नक्षत्र में वर्षा होने पर कार्तिक, मासों में वर्षा का अभाव होना समझ लेना चाहिये ।

५३— ३१७ पृष्ठ से ३२० पृष्ठ तक के पद्यों का अर्थ अत्यन्त सरल है, अत एव इन पद्यों की व्याख्या को करना अनावश्यक समझा गया है ।

५४— ३३४ और ३३५ पृष्ठों पर सुन्दरी टीका में "रोहिणी शकट भेद" के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से विवेचन किया जा चुका है, अत एव - ३२१ पृष्ठ पर स्थित "रोहिणीशकट भेद" से सम्बन्धित श्लोकों की व्याख्या को करना अनावश्यक समझा गया है ।

शकुन से वर्षा का विवेचन

५५— ज्येष्ठमास की पूर्णिमा व्यतीत होने पर आषाढ़ मास में जिस दिन रोहिणी नक्षत्र पर चन्द्रमा रहे, उसदिन नगर अथवा गांव से उत्तरदिशा में किसी पवित्र स्थान पर - स्वच्छता के साथ मिट्टी के चार घड़ों में जल भर कर "उत्तर - पूर्व - दक्षिण - पश्चिम" इन चारों दिशाओं में सायङ्काल के समय में उन जलपूर्ण कलशों को स्थापित कर दें, दूसरे दिन प्रातः काल उन चारों कलशों=(मिट्टी के घड़ों)का निरीक्षण करें, उत्तरदिशास्थ घड़े से श्रावणमास, पूर्वदिशास्थ घड़े से भाद्रपद मास, दक्षिणदिशास्थ घड़े से आश्विनमास, पश्चिमदिशास्थ घड़े से कार्तिक मास को जानें, यदि चारों कलश जल से परिपूर्ण रहें तो श्रावण, भादों, क्वार, कार्तिक इन चारों मासों में अच्छी वर्षा होगी, यह जान लेना चाहिये,जिस किसी दिशा के कलश में जल की कमी दिखाई दे, अथवा जल का रिसना दिखाई दे, उसी दिशापरक महीना में वर्षा की कमी अथवा वर्षा के गर्भ का स्राव=(मेघगर्भपात) हुआ समझलेना चाहिये, जिस नगर या तहसील में यह घड़ों का परीक्षण किया है, उसी नगर और तहसील में घड़ों के जलों की पूर्णता, अपूर्णता, और जलस्राव के आधार पर- क्रमशः-पूर्णवृष्टि, अपूर्ण-वृष्टि अथवा वर्षा का अभाव समझ लेना चाहिये।

आषाढ़मास में- स्वातिनक्षत्रगत - चन्द्रमा से वर्षा का विवेचन

५६—खगोलीय गणित के अनुसार आषाढ़मास के शुक्लपक्ष में "स्वातिनक्षत्र' का अस्तित्व अवश्य ही रहा करता है। जिस दिन स्वाति नक्षत्र आषाढ़ शुक्लपक्ष में हो उस दिन को- पूर्व मध्य, अन्त्य इन तीन भागों में विभक्त कर लेना चाहिये, इसी प्रकार से उस दिन की रात्रि को भी तीन भागों में=(पूर्व, मध्यम, अन्त्य भागों में) विभक्त कर लेना चाहिये, स्वातिनक्षत्र वाले दिन और रात्रि के जिस किसी भी भाग में वर्षा हो, उसी के आधार पर अच्छे अथवा बुरे फलादेश का विचार भी कर लेना चाहिये।

५७— आषाढ़ शुक्लपक्ष में स्वाति नक्षत्र में रात्रि के प्रथमभाग में वर्षा हो तो अच्छी वर्षा होगी यह समझ कर - सब प्रकार के अन्न, घास आदि की समृद्धि की सूचक उस वर्षा को समझलेना चाहिये।

रात्रि के द्वितीय भाग में स्वाति नक्षत्र में यदि वर्षा हो तो तिल, मूंग, उड़द, आदि- तैलप्रद और दालप्रद अन्नों की पैदावार अच्छी होगी, यह समझ लेना चाहिये।

रात्रि के तृतीय भाग में स्वाति नक्षत्र में वर्षा हो तो मध्यम कोटि में वर्षा होगी, तथा मध्यम कोटि की पैदवार होगी, यह समझ लेना चाहिये, रात्रि में- स्वाति नक्षत्र पर रात्रि के तृतीय भाग में हुई वर्षा से ग्रीष्म ऋतु के अन्न अच्छे होंगे, और शरद ऋतु के अन्न कुछ कम होंगे, यह भी समझ लेना चाहिये।

गेसादिकृमियुक्तवर्षा का विवेचन

५८—आषाढ़ शुक्लपक्ष में जिस दिन स्वाति नक्षत्र हो, उस दिन के घट्यादि-मान को तीन विभागों में विभक्त कर दें, दिन के प्रथमभाग में स्वाति नक्षत्र में वर्षा होने पर सुवृष्टि = (अच्छी वर्षा) होगी, यह समझना चाहिये, दिन के द्वितीय भाग में स्वाति नक्षत्र में यदि वर्षा हो तो—कीड़े, मकोड़े, सर्प=गेसा=केंचुआ, मेंढक,

मछली, आदि से मिश्रित वर्षा होगी, यह समझ लेना चाहिये, दिन के तृतीय भाग में स्वाति नक्षत्र में वर्षा हो तो मध्य कोटि में वर्षा होगी, यह समझ लेना चाहिये। स्वाति नक्षत्र में दिनरात वर्षा हो तो निष्कण्टक अच्छी वर्षा का होना समझ लेना चाहिये।

५९—जिस प्रकार आषाढ़ शुक्ल पक्ष में स्वाति नक्षत्रगत चन्द्रमा से वर्षा का शुभाशुभविचार किया गया है, इसी प्रकार से—फाल्गुन, चैत्र, वैशाख मासों में भी स्वाति योग से दिनरात्रि के विभागानुसार वर्षा का विचार कर लेना चाहिए।

६०—३२४ पृष्ठ से ३२९ वें पृष्ठ तक स्थित समस्त श्लोकों का अर्थ सरल है, अतएव—इन श्लोकों की व्याख्या को करना अनावश्यक समझा गया है।

मांसशोणितवर्षा आदि का विवेचन

६१—सन् १८९२ ईसवी में भारत राष्ट्र के उत्तर प्रदेश - लखनऊ से प्रकाशित "मत्स्यपुराण" नामके ग्रन्थ में दोसौबत्तीसवें = (२३२ वें) अध्याय में "मांस-शोणित - वर्षा" के सम्बन्ध में स्पष्ट विवेचन किया गया है, जोकि इस शोधग्रन्थ के तीनसौ उन्तीसवें = (३२९ वें) पृष्ठ पर संस्कृत श्लोकों में अङ्कित है।

इन श्लोकों का निष्कर्ष यह है कि—वर्षाऋतु के विना दिन में अधिक वर्षा हो तो वह वर्षा सन्निकट भविष्य में होने वाले भय का सङ्केत करती है, इस प्रकार की वर्षा से भविष्य में होने वाली अतिवृष्टि और अनावृष्टि आदि के भय की पूर्व सूचना मिला करती है।

६२—जिस राष्ट्र या प्रदेश या जिला में बादलों के विना आकस्मिक = (सहसा) घोरवर्षा हो जाय, उस राष्ट्र या प्रदेश या जिला के मुख्यनेता = (प्रधान-लीडर) को हानि सन्निकट भविष्य मै होने वाली है, इसका सङ्केत इस प्रकार की वर्षा से मिला करता है।

६३—शीतकाल में गर्मी की लहर और गर्मी के काल में शीतलहर के होने से सन्निकट भविष्य मे होने वाले शत्रुभय का सङ्केत मिलता है।

६४—जिस राष्ट्र, प्रदेश, जिला में मांसशोणितमिश्रित वर्षा हो, = (मरे हुए गेसा, मेंढक, आदि के शरीरों से रक्त बहता हुआ वर्षा के साथ भूगोल पर गिरे) उस राष्ट्र, प्रदेश, जिला पर सन्निकट भविष्य में दुश्मनों के प्रहार से भयङ्कर सङ्कटों के बादल मंडराने वाले हैं, इस प्रकार की घटनाओं का पूर्व सङ्केत - मांसशोणित मिश्रित वर्षा से मिला करता है।

६५—भयङ्कर लूओं से = भयङ्कर गर्म हवा से, व्यक्तियों और हरे - भरे पौधों के झुलस जाने पर तथा मृत्यु हो जाने पर भी शत्रु द्वारा होने वाली बम वर्षा तथा होने वाले आग्नेयास्त्रों के प्रयोग का पूर्वसङ्केत इन भयङ्कर हवाओं और लूओं से मिला करता है।

६६—जो लोग खगोल विज्ञान की हलचलों के परिणामों को जाने विना ही खगोलविज्ञान के ज्ञानदाता "ज्योतिर्विज्ञान = ज्यौतिष शास्त्र की निन्दा करते हैं, वे लोग अज्ञ हैं, और भ्रान्त हैं।

—इति अष्टमाध्यायः—

—:❁:—

नवमाध्यायः

सर्वविध - लता - वृक्ष - पुष्प - फल - अन्नादि - कृमिरोग-चिकित्सा - विधानस्य, नरक-पितृलोक-स्थितेश्च - बोधकः - नवमाध्यायः

अन्न - फल - पुष्पादि - दायकेषु वृक्षेषु ये रोगाः जायन्ते, तेषां रोगाणां चिकित्साप्रकारमत्र लिखामि......

वैज्ञानिकैः श्रीवराहमिहिराचार्यैः - बृहत्संहितायां "वृक्षायुर्वेदाध्याये" वृक्षरोग-लक्षणानि - उक्त्वा, तेषां रोगाणां चिकित्साप्रकारोऽपि लिखितः, तमेवप्रकारमत्र लिखामि......

शीतवातातपैः - रोगो - जायते पाण्डुपत्रता ।
अवृद्धि श्च प्रवालानां शाखाशोषो रसस्रुतिः ॥१॥

चिकित्सितमथैतेषां शस्त्रेणादौ विशोधनम् ।
विडङ्गघृतपङ्काक्तान् सेचयेत् क्षीरवारिणा ॥२॥

फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्‌गैस्तिलै र्यवैः ।
शृतशीतपयः सेकः फमपुष्पविवृद्धये ॥३॥

उक्तपद्यानामयं भावः...... शीत - वायु - उष्णादिकारणैः - फलदातृवृक्षेषु सर्वविधान्नदातृवृक्षेषु - पुष्पदातृवृक्षेषु च - अनेके रोगाः - जायन्ते ।

रोगार्तेषु तेषु वृक्षेषु - अवृद्धि जायते, तेषां पत्राणां पाण्डुवर्णत्वं जायते, शाखा-प्रशाखानां च शोषो भवति, वृक्षेभ्यः - रसस्रुतिश्च भवति, एषु लक्षणेषु सत्सु वृक्षाः रोगार्ताः ज्ञेयाः ।

तत्र ये वृक्षाः शस्त्रेण कर्तनार्हाः - तेषां वृक्षाणां रोगग्रसितं - भागं शस्त्रेण छित्वा-वृक्षात् - पृथक्कार्यः, ततश्च विडङ्गः=वायविडङ्गः घृतम्=आज्यम्, पङ्कः= गोमयपङ्कः = (राख) एषां सर्वेषां योगं विधाय, रोगार्तान् वृक्षान् - लेपयेत्, ततः प्रतिदिनं दुग्धमिश्रितेन जलेन, तेषां वृक्षाणां अभिषेक कुर्यात्, एवं कृते सति सर्ववृक्षाणां सर्वविधरोगविनाशो भवति ।

यदा फलदातृवृक्षाणां फलनष्टकरः कश्चित् रोगो जायते, तदा "कुलत्थः = कुलथी, माष=उड़द, मुद्‌ग=मूंग, तिल, यव=जौ" एषां योगं विधाय=ऐक्यीकरणं कृत्वा, जलेन सह क्वाथं विधाय, समुत्पन्नं तं क्वाथं शीतलावस्थापन्नं नीत्वा, गेहूँ-आलू - गोभी - मक्का, -बाजरा, ज्वार, नामतः लोकप्रसिद्धान्नेषु तथा च आम्र - अनार -

आंडू-मौसमी-प्रभृतिषु सर्वविधवृक्षेषु च सेकः "छिड़काव" कार्यः, एवं कृते सति - वृक्षेषु समुत्पन्नानां सर्वविधरोगाणां निवृत्तिः-भवति, फल-पुष्पदातृवृक्षाः-बहूनि - पुष्पफलानि दातुं समर्थाः भवन्ति ।

अन्नदातृवृक्षाश्च अन्नानि दातुं समर्थाः भवन्ति, सर्वविधाः - रोगाः सर्वविधाः अन्नकीटाणवश्च विनश्यन्ति ।

फलपुष्पान्नादीनां सम्वर्धनाय - कश्यपमुनिना या व्यवस्था प्रदत्ता तामत्र लिखामि——

शाखाविटपपत्रैश्च छायया विहताश्च ये ।
येऽपि पर्णफलै र्हीना रूक्षपत्रैश्च पाण्डुरैः ॥१॥
शीतोष्णवर्षवाताद्यैः मूलै र्व्यामिश्रितैरपि ।
शाखिनां तु भवेद् रोगो द्विपानां लेखनेन च ॥२॥
चिकित्सा तेषु कर्तव्या ये च भूयुः पुनर्नवाः ।
शोधयेत् प्रथमं शस्त्रैः प्रलेपं दापयेत् ततः ॥३॥
कर्दमेन विडङ्गैश्च घृतमिश्रैश्च लेपयेत् ।
क्षीरतोयेन सेकः स्याद् रोहणं सर्वशाखिनाम् ॥४॥

आर्षवर्षा-वायुविज्ञानप्रसङ्गे नरकाणां स्थितिः क्वास्ति, तत्र च वर्षा भवति नवेति विचारमत्र-करोमि

श्रीमद्भागवते पंचमस्कन्धे षड्विंशे "२६" प्रमिते अध्याये नरकाणां स्थिति-विषये श्रीशुकदेवेन मुनिना साधीयसी व्यवस्था प्रदत्ता, तामेवात्र लिखामि......

राजा - परीक्षित् - प्रश्नं करोति......

नरका नाम भगवन् किं देशविशेषाः - अथवा वहिस्त्रिलोक्याः, आहोस्वित् - अन्तराले एव" ?

श्रीशुकदेवो मुनिः - उत्तरं ददाति......

"अन्तराले-एव-त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणस्याम्, अधस्तात् भूमेः, उपरिष्टाच्च जलात्, यस्यां - अग्निष्वात्तादयः पितृगणाः दिशि स्वानां गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या - एव-आशिषः - आशासानाः - निवसन्ति" ॥ गद्यभाग ५ ॥

यत्र भगवान् पितृराजो वैवस्वतः-स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैः-जन्तुषु-सम्परेतेषु यथा कर्मावद्यं दोषमेव-अनुल्लङ्घित-भगवच्छासनः सगणो दमं धारयति ॥ ग० भा० ६ ॥

श्रीविष्णुपुराणे - द्वितीये - अंशे - षष्ठे - अध्याये अपि - नरकाणां स्थिति - विषये विचारोऽस्ति——

ततश्च नरका विप्र! भुवोऽधः सलिलस्य च ।
पापिनो तेषु पात्यन्ते ताञ्छृणुष्व महामुने! ॥१॥
यमस्य विषये घोरा शस्त्राग्निभयदायिनः ।
पतन्ति येषु पुरुषाः पापकर्मरतास्तु ये ॥२॥

पूर्वोक्तानां गद्यपद्यानां अर्थस्य स्पष्टीकरणमत्र करोमि.........

यमस्य = यमराजस्य, विषयः = देशस्तु सुमेरुपर्वततः - भारतवर्षतश्च दक्षिणस्यां दिशि पुष्करद्वीपमध्ये मानसोत्तरपर्वतोपरिस्थित- "संयमनी" = "यमपुरी" नामक - यमराजधान्याः - सन्निधौ - पुष्करद्वीपेऽस्ति , अतः - यमराजधान्याः- समीपे एव पुष्करद्वीपस्य भूमौ - भूपृष्ठात् - अधः - प्रदेशे भूगर्भस्थित - जलाच्च - ऊर्ध्वप्रदेशे भूमिगर्भे एव- नरकाः सन्ति, तत्रैव पापिनो निरात्यन्तेऽधोलोकेपु- यमपुरुषैः ।

तत्र तु - नरकेषु - ईन्द्रकृता - मेघगर्भकृता च वर्षा - न भवति, न च तत्र-वायुविज्ञानस्य प्रवृत्ति र्भवति, यमराजस्य स्वतन्त्रप्रदेशत्वात् ।

पितृणां निवासस्थानस्य विषये विचारमत्र करोमि—

नेत्रनवाष्टचन्द्र = "१८९२" ईसवीयाब्दे लखनऊतः प्रकाशिते "मत्स्यपुराणे' पञ्चदशे "१५" अध्याये पितृलोकानां व्यवस्था प्रदत्ता, तामेवात्र लिखामि···

"मरीचिगर्भा" नाम्ना तु लोका मार्तण्डमण्डले ।
पितरो यत्र तिष्ठन्ति हविष्यन्तोऽङ्गिरःसुताः ॥१६॥
लोकाः कामदुघा नाम कामभोगफलप्रदाः ।
सुस्वधा नाम पितरो यत्र तिष्ठन्ति सुव्रताः॥२०॥
लोकास्तु मानसा नाम ब्रह्माण्डोपरिसंस्थिताः ।
सोमपा नाम पितरो यत्र तिष्ठन्ति शाश्वताः ॥२६॥
पितृणामम्बरं स्थानं दक्षिणा दिक्प्रशस्यते ।
प्राचीनवीतमुदकं तिलाः सव्याङ्गमेव च ॥३३॥

उपर्युक्ते षोडशसंख्याप्रमिते पद्ये- "मार्तण्डमण्डले = सूर्यमण्डले" मरीचिगर्भाः = रश्मिगर्भाः = पितृलोकाः समुक्ताः- मत्स्यपुराणे, अत्र मया विचारः क्रियते···

पुष्करद्वीपमध्ये - नवसहस्र "९०००" योजनव्यासयुक्तम्, सप्तविंशतिसहस्र = "२७०००" योजनप्रमितं सूर्यस्य मण्डलं मानसोत्तरे पर्वते सूर्यरथं भ्रमति ।

पुष्करद्वीपसन्निधौ - एव स्थिते शाकद्वीपे "चन्द्र" नामकः = विधुपर्यायवाचकः पर्वतोऽस्ति, तस्य प्रतिपादनं तु मया प्रागेवकृतम् , तत्र सूर्यमण्डलस्य सान्निध्यत्वात्-तस्मिन्-चन्द्रपर्वते सूर्यमण्डलस्य महान् प्रकाशः समापतति, अत-एव-मार्तण्डमण्डलान्तर्गतः = सूर्यमण्डलान्तर्गतः, ते पितृलोकाः व्यवह्रियन्ते, इति-प्रतीयते । तत्रैव शाकद्वीपमध्य-स्थिते चन्द्रपर्वते पितरः - अपि निवसन्ति , इत्यनुमीयते । सूर्यः - मानसोत्तरपर्वते स्व-रथारूढः परिभ्रमन् सन् - अमावास्यायां तिथौ "विधुः = चन्द्रः = तस्य विधोः, चन्द्रस्य वा ऊर्ध्वभागगो भवति , अतः - चन्द्रपर्वते स्थितपितृलोकस्थिताः पितरः स्वोर्ध्वस्थितं सूर्य - अमावास्यायां तिथौ पश्यन्ति इत्यनुमीयते ।

यथाहि - भूगोलगताः - मानवाः - भारतवर्षपर्यायवाचके - मृत्युलोके स्थिताः-सूर्य पश्यन्ति, देवास्तु - जम्बूद्वीपमध्ये स्थिते- सुमेरुपर्वते स्थिताः सूर्यं पश्यन्ति, तथैव पितरः अपि शाकद्वीपस्थिते चन्द्र = विधु- नामकपर्वते - स्थिताः - स्वोर्ध्वगतं सूर्यं पश्यन्ति, इत्यत्र - न किमपि- आश्चर्यं कार्यम् केनापि ।

१. यतोहि-भूगोलमध्ये भूपृष्ठे एव स्थितस्य जम्बूद्वीपस्य नवमे भागे मृत्युलोकः भारतवर्षपर्यायवाचकः- तिष्ठति ।

२. जम्बूद्वीपमध्यगते सुमेरुपर्वतस्य शीर्षभागे- इन्द्रलोकः = देवलोकः तिष्ठति ।

३. शाकद्वीपे स्थिते -, चन्द्रपर्वते च पितृलोकः तिष्ठति ।

इत्येतादृशी- ईश्वरकृतैव - व्यवस्था अस्ति । न तत्र आश्चर्यंकरस्य उपर्युक्तस्य विषयस्य विषये आशंकायाः आवश्यक्ता अस्ति ।

"स्वर्ग - पितृलोकयोः" इद्रकृता वर्षा न भवति, केवलं मृत्युलोके - एव-इन्द्र-कृता वर्षा भवति इति - व्यवस्था ज्ञेया ।

पितृलोकविषये विचारशीलैः विद्वद्भिः गवेषकैश्च - अतः अग्रेऽपि विचारो विधेयः - इति निवेदयेऽहम् ।

लता - वृक्ष - पुष्प - फल - अन्नादि के कृमिरोगादि की चिकित्सा का विवेचन

सुन्दरी टीका— अन्न, फल, पुष्पादि को देनेवाले वृक्षों और लताओं आदिमें अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होकर "अन्न - फल - पुष्पादि" की पैदावार को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं, अत एव इस नवें अध्याय में "अन्न, फल, पुष्पादि" की अनेकप्रकार की चिकित्साओं का विवेचन करना अत्यावश्वक और उचित समझा गया है ।

२.—राष्ट्र के शुभचिन्तक वैज्ञानिकप्रवर श्रीवराहमिहिराचार्य ने "बृहत्संहिता' नाम के अपने ग्रन्थ में "वृक्षायुर्वेदाध्याय" में अतीन्द्रिय महर्षियों की पद्धतियों के अनुसार "अन्न, फल, पुष्प, वृक्ष, लताओं आदि" के अनेकरोगों का विवेचन करते हुए समस्तरोगों की चिकित्सा करने का विवेचन भी अच्छे ढंग से किया है ।

वृक्षों और लताओं के रोगों और उन की चिकित्साओं का विवेचन

३.—शीत, वायु और गरमी के प्रकोप से वृक्षों और लताओं में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, रोगोत्पन्न होने पर पत्ते पीले पड़जाते हैं, वृक्षों और लताओं आदि का बढ़ना रुक जाता है, शाखायें और प्रशाखायें सूखने लगतीं हैं, वृक्षों और लताओं से रस चुह कर जमीन पर गिरने लगता है, इस प्रकार के लक्षण वृक्षों और लताओं में दिखाई देने पर उन्हें रोगी समझ लेना चाहिये ।

वृक्षों और लताओं के रोगों का चिकित्सा का विवेचन

४— वृक्षों और लताओं के जो पत्ते पीले पड़ गये हों, तथा जो शाखायें और प्रशाखायें सूख गयी हों, उन सब को शस्त्र केंची आदि से काटकर अलग फेंक देना चाहिये, वायविड़ङ्ग(पन्सारी के यहां मिलजाता है) के चूर्ण को उपलाओं की राख में मिलाकर उस वायविड़ङ्ग के चूर्ण और उपलाओं की राख में घी मिलाकर वृक्षों और लताओं के कटे हुए भागों में लगाकर वृक्षों और लताओं के ऊपर पूर्वोक्त मिश्रित= (मिली हुई) तीनों वस्तुओं का छिड़काव करने के कुछ समय बाद- गाय, भैंस अथवा बकरी के दूध मिले हुए पानी को वृक्षों और लताओं के ऊपर छिड़काव कर दें, वृक्षों और लताओं तथा पौधों की जड़ों में पानी लगादें, ऐसा करने से वृक्षों और लताओं का सूखना तथा पीला पड़ना बन्द हो कर, वृक्ष और लताऐं, बढ़ने और फलने फूलने लगते हैं ।

वृक्षों और लताओं के फल पुष्पों को नष्ट होने से बचाने की चिकित्सा

५—कुलत्थ = (कुलथी), माष = (उड़द), मुद्ग = (मूंग), तिल, यव = (जौ) इन पांचों अन्नों को बराबर पर्याप्त मात्रा में लेकर छिड़काव करने के क्षेत्र

= (खेत) और वृक्षों तथा लताओं की मात्रा के अनुपात से पर्याप्त मात्रा में पानी को किसी बड़े वर्तन (कड़ाह आदि) में भरकर इन पाँचों अन्नों को औटाकर (उबाल-कर) अच्छा खासा क्वाथ = बना लें, उस पतले क्वाथ का छिड़काव फलदार वृक्षों और लताओं – आम, अनार, नाशपाती, मौसमी, अण्डखरबूज, आड़ू, सेव, सन्तरा, लीची, अमरूद, केला, वेर, टमाटर, वेंगन, करेला, आलू, गोभी, मेंथी, धनियाँ, तर-बूज, अङ्गूर, खरबूज, ककड़ी आदि के पौधों और इनके ऊपर लगे पुष्पों तथा फलों पर करने से प्रत्येक प्रकार के फलों और पुष्पों की पैदावार में वृद्धि होकर, इन फल, पुष्पों के वृक्षों और लताओं तथा पौधों के समस्त रोग दूर हो जाते हैं।

६—पूर्वोक्त - कुलथी, उड़द, मूंग, तिल, जौ इन पाँचों अन्नों के पतले क्वाथ = (काढ़े) का छिड़काव—मक्का, वाजरा, उड़द, मूंग अरहर धान, आदि की फसलों पर, तथा गेहूँ, जौ, चना, मटर, मसूर, सरसों, बङ्गा, तरा =(दुआं) आदि की फसलों पर करने से फसलों को नष्ट करने वाले समस्त कीटाणुओं और कृमियों का विनाश हो जाता है। सभी अन्नों के पौधों पर पुष्पों और फसल के आने के समय उक्त क्वाथ का छिड़काव करने पर पुष्पों और अन्न फलों को नष्ट करने वाले कीटा-णुओं और कृमियों का सर्वनाश होकर अच्छे खासे अन्न की पैदावार अधिक मात्रा में होती है।

राष्ट्र की पुष्टि और समृद्धि के लिये क्वाथ के छिड़काव की आवश्यकता

७—कृषिजपदार्थों और अन्नादिपदार्थों की सुरक्षा के लिये आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा जिन रासायनिक पदार्थों का आविष्कार छिड़काव करने के लिये किया गया है, प्रायः उन रासायनिक पदार्थों में विषाक्तता = जहरीलापन पाया जाता है, उस जहरीलेपन से कृषि को नुकसान पहुंचाने वाले कीटाणुओं का तो अवश्य विनाश हो जाता है, किन्तु छिड़के गये उन रासायनिक पदार्थों का जहरीलापन "अन्नों, फलों, सब्जियों, शाकों, के माध्यम से राष्ट्र के मनुष्यों और पशुओं के पेटों में पहुँचकर अनेक प्रकार के रोगों को पैदा करके राष्ट्र के प्राणिमात्र के स्वास्थ्य को विकृत कर के जीवन भर के लिये अनेक रोगों का शिकार बना देता है, भारत की कृषि पर जबसे रासायनिक खादों और रासायनिक छिड़कावों का श्रीगणेश "प्रारम्भ" हुआ है, तभी से अनेक प्रकार के उदरविकारों = (पेट के कीड़ों, पेट में गैस आदि रोगों) में प्रत्यक्ष रूप से वृद्धि हुई है, अन्य जिन राष्ट्रों की कृषियों पर आधुनिक रासायनिक पदार्थों के छिड़काव होते चले आ रहे हैं, उन राष्ट्रों के प्राणी भी पेट के विकारों आदि से अधिकतर प्रपीड़ित रहते चले आ रहे हैं।

८—भारत आदि राष्ट्रों की कृषि पर उपर्युक्त आर्ष - पद्धति से निर्मित छिड़-काव के करने पर प्रत्येक राष्ट्र में कृषिजपदार्थों के अनेक अवगुण और अनेक रोग नष्ट हो जायेंगे, राष्ट्रों के जनों और धनों की सुरक्षा के लिये भी उपर्युक्त "कुलथी, उड़द, मूंग, तिल, जौ" के क्वाथ का छिड़काव अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

९—आकाशवाणी और समाचारपत्रों आदि के माध्यमों से उपर्युक्त क्वाथ के उपयोग का प्रचार करके जिलों, तहसीलों, ब्लाकों और ग्राम पञ्चायतों के माध्यम से

प्रत्येक कास्तकार को बहुत कम मूल्य पर 'क्वाथ' छिड़काव के लिये उपलब्ध कराकर इस योजना को चालू करने से प्रत्येक राष्ट्र का हित हो सकता है।

नरकों की स्थिति का विवेचन

१०—सुमेरुपर्वत और भारतवर्ष से दक्षिणदिशा में पुष्कर द्वीप के मध्य में मानसोत्तर पर्वत पर 'यमलोक' = यम की राजधानी संयमनी नगरी स्थित है, उसी संयमनी नगरी के इर्द गिर्द में पुष्कर द्वीप में पातालीय जलों से ऊपर के भाग में तथा भूगोल के अन्दरूनी भाग में तहखाने के रूप में बने स्थानों में नरक स्थित है।

११—इन नरकों में वर्षा और वायु की स्थिति मृत्युलोक के वर्षा और वायु की स्थिति से बिल्कुल भिन्न होती है।

पितृलोक और पितरो के निवास का निर्णय

१२—सन् १८९२ ईसवी में भारत राष्ट्र के उत्तरप्रदेश की राजधानी लखनऊ से प्रकाशित "मत्स्यपुराण" के पन्द्रहवें अध्याय में पितृलोक और पितरों के सम्बन्ध में अच्छा विवेचन किया गया है।

१३—"पुष्करद्वीप" के पूर्वार्ध से सटा हुआ = (मिला हुआ) "शाकद्वीप" स्थित है, इस शाकद्वीप के मध्यभाग में अगाध जलाशयों से परिपूर्ण "विधुनाम का पर्वत" = 'चन्द्र' नामका पर्वत बहुत ऊँचाई के साथ स्थित है। सूर्यमण्डल के भ्रमण मार्ग 'मानसोत्तरपर्वत' के समीप में 'चन्द्रपर्वत' होने के कारण सूर्यमण्डल की रश्मियाँ 'चन्द्रपर्वत' पर पूर्णरूप से पड़कर अच्छा प्रकाश किया करतीं हैं।

इसी चन्द्रपर्वत पर 'मरीचिगर्भाः' 'कामदुघाः' 'सुस्वधाः' "सोमपाः' आदि नामों से प्रसिद्ध पितृलोकों और पितरों का निवास रहता है, इसीलिये भास्कराचार्य प्रभृति विद्वानों ने 'सिद्धान्तशिरोमणि' प्रभृति ग्रन्थों में 'विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः' लिखकर पितरों का निवास स्थान 'चन्द्रपर्वत का उच्चतम भाग' माना है। अमावास्या के दिन इस चन्द्रपर्वत के शीर्ष प्रदेश पर = (शिरोभाग पर) सूर्य की रश्मियों का सम्पात होता है, तदनुसार चन्द्रपर्वतनिवासी पितर अपने मस्तिष्क के ऊपर = (सिर के ऊपर) भ्रमण करते हुए सूर्यमण्डल का दर्शन किया करते हैं, इसी लिये इस अमावास्या तिथि में पितरों का मध्याह्न काल माना जाता है, अतः अमावास्या तिथि में पितरों के निमित्त श्राद्धादि करने का विशेष विधान अतीन्द्रिय महर्षियों ने अपने अपने निबन्ध ग्रन्थों में लिखा है।

१४—तिल, चावल, गङ्गोदक, दूध आदि सोमरस प्रधान द्रव्यों से श्राद्धादि को करने का विधान शास्त्रों में वर्णित है।

१५—पितृलोक में इन्द्रकृतवर्षा, और मेघगर्भधारणकृत वर्षा का तथा वायु का कोई महत्व इसलिये नहीं माना जाता है, क्योंकि वहाँ दैवीसृष्टि का अस्तित्व होने से वर्षा वायु आदि की पूर्तियाँ स्वयं ही हो जाया करतीं हैं।

×इति नवमाध्यायः×

—:×:—

दशमाध्यायः

आर्षवर्षांवायुविज्ञान-प्रतिपादक-भूगोल-चलाचलसमीक्षा-बोधक- दशमाध्यायः

अचलामपि मन्यन्ते सचलां ये वसुन्धराम् ।
अध्यायेऽस्मिन् करिष्यामि तेषां भ्रान्तिनिवारणम् ॥१॥
निष्पक्षया धिया विज्ञाः ! प्रकुर्वन्तु समीक्षणम् ।
वेदादिसर्वशास्त्रेभ्यो विज्ञानं यन्मयोदितम् ॥२॥

भूगोलश्चलतीति नव्यमतस्य समीक्षात्मकं खण्डनमत्र करोमि

१.—भूगोलः पूर्वदिशानुक्रमेण भ्रमति= "चलति" इति आधुनिकाः नवीनाः वैज्ञानिकाः वदन्ति ।

यदि भूगोलो भ्रमति="चलति" चेत्तर्हि यस्यां दिशि भूगोलस्य गतिः-अस्ति, तस्यां दिशि - एव - गमनशीलभूमिगतितुल्यगतियुक्तं किमपि वायुयानादिकं प्रक्षेपयन्त्रं वा निर्माय, राजधानीदिल्लीत- अथवा अमरीकातः, अथवा रूसतः, ब्रिटेनतः, चीनादितो वा, आकाशमार्गे प्रक्षिप्य, आधुनिके वैज्ञानिके युगे वैज्ञानिकैः - भूगोले गतिसिद्ध्यर्थं - वक्ष्यमाणप्रकारेण परीक्षणं कार्यम्......

भूगोलगतितुल्यगतियुक्तं- भूगोलो यस्यां दिशि चलति तस्यामेव दिशि भूगोलेन सह गमनशीलं तद् वायुयानादिकं "प्रक्षेपयन्त्रं" - यस्मात् - स्थानात्- गगने प्रक्षिप्यते, भूगोलगतितुल्यगतिमत् सत् - अपि- तद् वायुयानादिकं प्रक्षेपयन्त्रं - प्रेक्षपस्थानात् अग्रतने प्रदेशे गच्छति, यस्मात् स्थानात् तद्यन्त्रं भूमिगत्या सह गमनशीलं प्रक्षिप्तम्, तत् स्थानं तु पृष्ठतः - एव तिष्ठति प्रक्षेपयन्त्रतः, तत् प्रक्षेपयन्त्रं तु यन्त्रप्रक्षेपस्थानात् दूरातिदूरप्रदेशे - एव दरीदृश्यते प्रत्यक्षम् ।

अतोऽनुमीयते - भूमि र्न चलति, अपि तु स्थिरैवास्ति भूमिः- स्वगतितुल्यप्रक्षेपयन्त्रात्- अपि दूरातिदूरप्रदेशे- एव-विद्यमानत्वात्, तत् प्रक्षेप-यन्त्रं च अग्रे स्थितत्वात् ।

प्रत्यक्षसिद्धस्य - अपि - उपर्युक्तस्य अनुमानस्य खण्डनं नव्यास्तु निम्नाङ्कितेन-अयुक्तेन गणितसिद्धान्तविरुद्धेन प्रकारेण कुतर्केण च कुर्वन्ति ।

भूमिगमन- दुराग्रह-ग्रसित- बुद्धयः- आधुनिकाः-वैज्ञानिकाः - नव्याः-अत्र प्रणिगदन्ति,"भूमिगतितुल्या या गतिः - वायुयानादिके प्रक्षेपयन्त्रे विनिर्मिता- सा गतिस्तु-तद्यन्त्रस्य-एव-भवति, तया गत्या तु यन्त्रं भूमिगमनदिशि स्वगत्यैव चलति, भूमौ यावती गतिरस्ति, तावती गतिस्तु-तद्यन्त्रे-भूम्याकर्षणशक्तेः-सुतरां निहिता भवति,अतः-आकर्षणशक्तिनामकभूमिगतिः+प्रक्षेपयन्त्रगतिः=भूमिगतितो द्विगुणा गतिः- तस्मिन् प्रक्षेप -

यन्त्रे जायते, अतः - तत् प्रक्षेपयन्त्रं - भूगोलतः - स्वगतितुल्यान्तरे - प्रदेशे - गत्वा, दूरातिदूरप्रदेशे गतमिति स्वयं सिद्धा प्रतीति र्भवति, अतः दूरादिदूरप्रदेशे स्थितेन अपि तेन प्रक्षेपयन्त्रादिना - भूमिश्चलति, इत्येव सिद्ध्यति, नतु स्थिरत्वं सिद्ध्यति भूमेः ।

आधुनिकवैज्ञानिकानां नवीनानां उपर्युक्तस्य- कुतर्कस्य गणितसिद्धान्त- विरुद्ध-कथनस्य निराकरणं वक्ष्यमाणशैल्या - गणितेन अत्र - अहं - करोमि...

कल्प्यताम्-पूर्वदिशाक्रमतः - भूगोलः चलति, भूमिगतितुल्यगतियुक्तं- आकाशे प्रक्षिप्तं वायुयानादिकं प्रक्षेपयन्त्रं अपि-पूर्वदिशाक्रमतः-एव चालितं भवेत्,चेत् तर्हि-तस्य यन्त्रस्य गतौ भूमिगतितुल्या आकर्षणशक्तिनामधेया - गतिः स्वयं प्रविष्टत्वात्-तद्यन्त्रस्य - गतिः भूगोलगतितः- द्विगुणा जायते, अतः - तद्यन्त्रं-यस्मात्-भूमिप्रदेशात् आकाशे प्रक्षिप्तं ततोऽग्रस्थे भूमिप्रदेशे-एव दृष्टं भवति, तस्य प्रक्षेपयन्त्रस्य गतौ भूमि-गतितो द्विगुणत्व - विद्यमानत्वात् ।

"प्रक्षेप यन्त्रम् + भूगोलगतिः + भूगोलगतितुल्याकर्षणशक्विगतिः" एतादृशी स्थितिः पूर्वदिशि गमने यन्त्रे प्रजायते । अत एव भूगोलगतितो द्विगुणगतियुक्तत्वात् तद्यन्त्रं प्रक्षेपस्थानात् अग्रिमभूमिप्रदेशे प्रचलितं दरीदृश्यते, इत्येव वदन्ति नव्याः ।

आकर्षणशक्तियुक्तपदार्थस्य यस्यां दिशि गतिः भवति, तस्यां एव दिशि-स्वगत्या सह पदार्थान्तरं समाकृष्य, प्रगच्छति आकर्षणशक्तियुक्तः पदार्थः, अत एव पूर्वस्यां दिशि गमनशीलः भूगोलः अपि निजाकर्षणशक्त्या पदार्थान्तरं समाकृष्य, स्वगत्या सह तं पदार्थं पूर्वस्यां एव दिशि नयति, वहति वा । भूगोलगतिसमानगतियुक्तं तत्क्षेपयन्त्रं भूगोल-गति-विपरीतदिशायां पश्चिमायां प्रचालितं भवेत्, चेत् तर्हि पश्चिमदिशि प्रयान्तं तत् प्रक्षेपयन्त्रं भूगोलगतिसमानाकर्षणशक्तिः समाकृष्य, भूगोलेन सह पूर्वस्यां दिशि नयति, अत एव - प्रक्षेपयन्त्रम् + भूगोलगतिः – भूगोलगतिसमानाकर्षणशक्तिगतिः एतादृशी स्थितिः पश्चिमदिग्गमने प्रक्षेपयन्त्रे प्रजायते , अस्यां स्थितौ प्रक्षेपयन्त्रे भूगोलगतिसान-गतियोगः भूगोलगतिसमानाकर्षणशक्तिगतिवियोगश्च प्रजायते ।

तदनुसारेण पश्चिमदिशि गमनशीले तस्मिन् प्रक्षेपयन्त्रे=भूमिगतेः घनं ऋणं च जायते, "घनर्णयोरन्तरमेव योगः" इति गणितशास्त्रीयप्रत्यक्षसिद्धसिद्धान्तानुसारेण तद्यन्त्रं यस्मात् - भूमिप्रदेशात् यस्मिन् आकाशप्रदेशे प्रक्षिप्तम्, तस्मिन् - एव - भूमिप्रदेशे-तस्मिन्- एव आकाशप्रदेशे च - तेन यन्त्रेण भाव्यम् ।

किन्तु - एवं कर्तुं - भूतलेऽस्मिन् कोऽपि वैज्ञानिकः - अद्यावधिः समर्थो न जातः, न वर्तते, न च भविष्यति ।

यतो हि - गतिशीलयुक्तं तद्यन्त्रं भूगोलगतितो विलोमदिशि प्रचालितं सत्-प्रचालितात् अपि - भूमिभागात् - प्रचालिताकाशप्रदेशाच्च अन्यत्र गतमेव प्रत्यक्षं-दरी -

दृश्यते अहर्निशम् ।

अतः - भूगोलश्चलतीति = भ्रमतीति वदतां पक्षः - भूगोलभ्रमणविदये निराधारः अस्तीति - सिद्धो भवति ।

भूगोलाकर्षणशक्तिसीमातः बहिर्गताकाशमण्डले - भूगोलगति-समानगतियुक्त - प्रक्षेपयन्त्र-सञ्चारतः - भूगोल-स्थिरत्व - प्रतिपादनमत्र करोमि

२—एकस्मिन् योजने चतुर्दशकिलोमीटराः षट्शतगजाश्च भवन्तीति मया चतुर्थाध्याये एव प्रतिपादितम्, १योजनम् = १४ किलोमीटराः/६०० गजाः । द्वादश-योजनानि = १७४किलोमीटराः । ६००गजाः ।

"भूमे र्बहि द्वादशयोजनानि भूवायुरत्राम्बुदविद्युदाद्यम्" इति सिद्धान्तशिरोमणो गोलाध्याये श्रीभास्कराचार्योक्तेः — भूगोलात् - ऊर्ध्वं आकाशमण्डले द्वादशयोजनान्तं यावत्तावत् = १७४ कि० मी० । ६०० ग० । ऊर्ध्वाकाश - प्रदेशान्तं यावत्तावत् भूवायोः सञ्चारः भवति, आकाशमण्डले भूवायु - सञ्चार - प्रदेशान्तं यावत् तावत् एव "भूगोलाकर्षणशक्तिसत्ता" प्रभवति, भूगोलात् ऊर्ध्वं आकाशमण्डले द्वादश-योजनानन्तरं भूगोलाकर्षणशक्तेः अभावः भवति, भूगोलगतितुल्यगतियुक्तं विनिर्मितं तद्वायुयानादिकं अथवा प्रक्षेपयन्त्रादिकं भूगोलतः ऊर्ध्वाकाशप्रदेशे द्वादशयोजनानन्तरं प्रचलति, चेत्तर्हि तद्वायुयानादिकं यन्त्रं "भूगोलाकर्षणशक्ति" सीमातः वहिर्गतमेव प्रचलति, अतः तस्मिन् वायुयानादिके यन्त्रे - भूगोलाकर्षणशक्तेः कोऽपि प्रभावः न भवति, भूगोलाकर्षणशक्तिप्रभावस्य अभावे सत्यपि भूगोलगतिसमानगतियुक्तं तद्वायुयानादिकं यन्त्रं यस्मात् नगरात् अथवा यतः वेधशालातः आकाशमण्डले प्रक्षिप्तम्, तत् - नगरम् अथवा तां वेधशालां च स्वपृष्ठभागे - एव विधाय, तस्मात् नगरात् - वेधशालातश्च- अग्रभागे एव - प्रधावति प्रक्षेपयन्त्रम्, न तु प्रक्षिप्तनगरवेधशालालम्बगो भवति -तत्प्रक्षेपयन्त्रस्य लम्बः, इति - प्रत्यक्षं दरीदृश्यते - अहर्निशं आकाशमण्डले ।

प्रत्यक्षसिद्धेन-अनेन प्रमाणेन भूगोलस्य स्थिरत्वमेव नूनं सिद्ध्यति, भ्रमितबुद्धयः ये केचन - आधुनिकाः महानुभावाः - भूगोलस्य चलत्वं स्वीकुर्वन्ति, ते न जानन्ति - भूगोल-खगोलयोः वास्तविक-स्थितिम्, अतः भ्रान्ताः ते सन्तीति नास्त्यत्र सन्देहावसरः ।

भूगोलस्य अचलत्वविषये "अथर्ववेदे - १२ काण्डे - ५२ प्रमिते मन्त्रे सुविचारः कृतः उपलभ्यते......

३—यस्यां कृष्णमरुणं च सहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।

वर्षेण भूमिः पृथिवी वृत्ता, वृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनि धामनि ।।"

एकस्मिन् सौरवर्षे सूर्यः दक्षिणायनोत्तरायण - संज्ञकं - अहोरात्रं विधाय, भूमेः परिक्रमां करोतीति प्रतिपादनं कृतं उपर्युक्ते मन्त्रे, उक्तमन्त्रस्य अयं भावः......

यस्यां भूम्यां "सूर्यः - इति शेषः" कृष्णम् = कृष्णस्वरूपान्धकारसहितम् = रात्रिस्वरूपं, अरुणम् = प्रकाशस्वरूपदिनस्वरूपं = दिनम्, विधाय, अहोरात्रं विदधाति, अतः भूम्यां सूर्यकृते - अहोरात्रे - कृष्णारुणसहिते भवतः,

सः एव सूर्यः - इति शेषः - वर्षेण = एकेन - एव सौरवर्षेण, मेषादिष द्वादशराशिषु परिक्रमां कृत्वा, वर्षेण एव भूमिं परिक्रामति, अतः पृथिवी सुविस्तार-युक्ता, भुमिः = भूगोलः वर्षेण = सौरवर्षेण, सूर्यद्वारा वृत्ता = वर्तिता = भुक्ता भवति, वृत्ताकारां भूमिं सूर्यः- एकेन सौरवर्षेण भुङ्क्ते-इति भावः।

हेप्रिये भद्रया = सतोगुणयुक्तया भावनया वृता = पूजिता, सा भूमिः नो = अस्माकम्, धामनि धामनि गृहे गृहे दधातु = पालनपोषणं करोतु। अथर्ववेदोक्तेन - उपर्युक्तमन्त्रेण भूगोलस्य अचलता = स्थिरता एव सिद्ध्यति।

भूगोलस्य स्थिरत्वविषये यजुर्वेदे - अपि सुविचारः कृतः उपलभ्यते

४— आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च।
हिरण्ययेन सविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन्" ॥

यजुर्वेदोक्तस्य - उक्तमंत्रस्य - अयं भावः......

चराचरजगन्नियन्ता - भगवान् स्वरूपः - ईश्वरः - सूर्यः सविता देवः हिरण्मयेन रथेन भुवनानि पश्यन् याति = गच्छति।

उपर्युक्तेन मन्त्रेणापि - भूमेः अचलता = स्थिवरता - एव सिद्ध्यति।

सूर्यसिद्धान्तेऽपि भूगोलविषये विचारः

सूर्यसिद्धान्तस्य भूगोलाध्याये कृपालुः सूर्यांशपुरुषः - उपदेशं करोति......

"मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥३२॥"

उपर्युक्तपद्ये 'तिष्ठति' इति प्रयोगस्तु 'ष्ठागतिनिवृत्तौ' इत्यस्माद्धातोः-सिद्ध्यति, अतः उक्तवचनेन - अपि - भूगोलः - गतिरहितः = अर्थात् - स्थिर एव सिद्ध्यति।

कोषेषु - अपि भूगोलस्थिरविषये विचारः

'भूर्भूमिरचलानन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा ॥'

इति अमरकोषे - भूमिवर्गे अस्ति, उक्तपद्ये 'अचला, स्थिरा' स्पष्टकथनेन भूगोलः - स्थिरः एव सिद्ध्यति।

सिद्धान्ततत्वविवेके मध्यमाधिकारेऽपि भूगोलस्थिरत्वविषये श्रीकमलाकरभट्टेन विचारः कृतः—

'असद्भूभ्रमणं चैन्द्रयामनार्षं स्वीकृतं तु यत्।
भूमावपि ध्रुवायोगात् तत् तुच्छं प्रवहे गते ॥' ६९ श्लोकः ॥

उक्तकथनेन - अपि - भूगोलः - स्थिरः एव सिद्ध्यति।

सिद्धान्तशिरोमणौ गोलाध्याये भुवनकोशे श्रीभास्कराचार्यैरपि भूगोलस्थिरत्वविषये विचारः कृतः

यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता विधौ द्रुतिः के कठिनत्वमश्मनि।
मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो यतो विचित्रा वत वस्तुशक्तयः ॥५॥

उपर्युक्ते श्लोके 'भूः स्वभावतः एव - अचला' अस्ति, इति उक्त्वा, भूमेः-सदा स्थिरता = अचलता - एव स्वीकृता श्रीभास्कराचार्यैः।

वेदमन्त्रैः शास्त्रवचनैश्च सूर्यगतिं भूस्थिरत्वं च प्रतिपादयामि

"आयं गौः पृश्निरक्रमीदसन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥"

यजुर्वेदसंहितायां तृतीयाध्याये षष्ठसंख्या = (६ संख्या) प्रमितस्य अस्य मन्त्रस्य अर्थं करोमि——प्राचीनतमेषु वेदभाष्येषु - अस्य मन्त्रस्य सर्पराज्ञी, कद्रू - ऋषिः, गायत्रीछन्दः, अग्निः देवता कथितः, यस्य मन्त्रस्य यः देवः भवति, तस्य देवविषयस्य एव वर्णनं तस्मिन् मन्त्रे भवति, इत्येतादृशः नियमः वेदमन्त्राणाम् - अर्थविधानावसरे सर्वत्र दरीदृश्यते, अतएव पूर्वोक्तमन्त्रे अपि तेजोमयपिण्डस्य = अग्निगोलाकारस्य सूर्यदेवस्य एव वर्णनमस्ति, न तु भूगोलचलनस्य वर्णनमस्ति, "नभो विष्टपं वृषो गौ र्ना पृश्निश्चापि सुरालयः" इति रत्नमालायां पृश्निशब्दस्य अर्थः कथितः, अमरकोषे - कालवर्गे प्रथमकाण्डे त्र्यधिकत्रिंशत् "३३" प्रमिते श्लोके 'व्याख्यासुधा' टीकायाम्...

किरणोस्रमयूखांशु - गभस्ति - घृणि - पृश्नयः ।
भानुः करो मरीचिः स्त्रीपुंसयो र्दीधितिः स्त्रियाम् ॥३३॥'

सर्वविधकोषादिप्रमाणैः 'पृश्निशब्दः' सूर्य - सूर्यकिरण - सुरालय - वाचकोऽस्ति इति सिद्ध्यति, अमरकोषे द्वितीये काण्डे क्षत्रियवर्गे द्विसप्ततिप्रमितः = (७२ प्रमितः) श्लोकः——

पुरोगाग्रेसरपृष्ठाग्रतः सरपुरः सराः ।
पुरोगमः पुरोगामी मन्दगामी तु मन्थरः ॥७ ॥

भूगोलतः ऊर्ध्वं आकाशमण्डले सर्वग्रहाणां पूर्वं सूर्यः एव स्वकक्षायां गच्छति, इति तु मया अस्य शोधग्रन्थस्य षष्ठाध्याये "ब्रह्माण्डस्थितिबोधकचित्रे" प्रागेव प्रतिपादितम्, अतः सर्वग्रहेभ्यः प्राक् सूर्यः एव गच्छति गगने, तस्मात् कारणात् पुरोगः सूर्यः कथितः वेदादिशास्त्रेषु, गच्छतीति गौः - इत्येतादृशः अर्थः 'गौः' शब्दस्यास्ति, निरुक्ते नैघण्टुककाण्डे 'य ईं चकार-इत्यादिमन्त्रस्य" व्याख्यावसरे- त्रिवृतिभाष्यकारैः—"मातुः = निर्मातुः = अन्तरिक्षलोकस्य" ग्रहणं 'मातृशब्देन' कृतम्, दुर्गभाष्ये ऽपि 'स मातु र्योनौ' इत्यस्य भाष्यावसरे 'मातान्तरिक्षम् योनिः = अन्तरिक्षम् इत्येतादृशं भाष्यं कृत्वा, 'मातृशब्दः' अन्तरिक्षस्य एव बोधकः स्वीकृतः' पूर्वोक्ते यजुर्वेदीये 'आयं गौः - इत्यादि' मन्त्रेऽपि 'मातृशब्दः' अन्तरिक्षस्य - एव बोधकः अस्ति ।

आयं गौः— इत्यादिमन्त्रस्य - अन्वयसहितः अर्थः

अन्वयः— गौः - आयम् - पृश्निः - पुरः- मातरम् - असदत्, पितरम् - च - स्वः - प्रयन् - (भुवनानि - इति शेषः) अक्रमीत् ।

अर्थः— गौः= गमनशीलः अथवा गतिशीलः, आयम्= अयम्= (वैदिकभाषायां - अयम् - इत्यस्य स्थाने आयम् - इत्युच्यते) पृश्निः=तेजोमयरश्मिजालपरिमण्डलः=अग्निगोलकः सूर्यः, (ईश्वरेच्छया= ईश्वरकृतखगोलीयसृष्टिरचनाव्यवस्थया) पुरः= प्रथमम्, मातरम्= अन्तरिक्षम्= खगोलम् , असदत् = आविवेश=प्राप्तवान् - इत्यर्थः । पितरम्=पितृलोकम्, च=पुनः, स्वः=स्वर्गलोकम् प्रयन्=गच्छन्, पृश्निः=सूर्यः,(भुवनानि इति शेषः)अक्रमीत्=चक्राम=(पादविक्षेपं कृतवान्- इत्यर्थः)

सूर्यः देवः भुवनानि पश्यन् = लोकानां परिक्रमां कुर्वन् गच्छतीत्यर्थस्य - एव प्रतिपादनं कृतं मन्त्रे ऽस्मिन्, अयं मन्त्रः —भूगोलगतिप्रतिपादकः नास्ति, अपि तु सूर्य-गतिप्रतिपादकः एव-अस्ति मन्त्रोऽयम्, ये केचन महानुभावाः उपर्युक्तं मन्त्रं भूमिभ्रमण-परकं = (भूगतिपरकम्) मन्यन्ते, तेषां भ्रमयुक्तप्रमादः एव - अस्तीति, निष्पक्षया मध्यस्थया धिया विवेचनीयं विज्ञैः ।

६— "समुद्रादिवनोपेता सा रुरोह मही नभः"

मार्कण्डेयपुराणोक्ते - अस्मिन् - पद्यभागे "रुरोह" क्रियायाः सिद्धिस्तु-भ्वादि-गणपठितात् - "रुह- प्रादुर्भावे" इत्यर्थबोधकात् - अनिट्- रुहधातोः- भूतार्थपरकलिटि-लकारे भवति, अत एव "समुद्रादिवनोपेता सा मही नभः= नभसि - अथवा आकाश-मण्डले, जगन्नियन्तुः- सृष्टिकर्तुः. ईश्वरस्य - इच्छया, रुरोह=प्रादुर्बभूव" इत्येतादृशः एव - अर्थः - उपर्युक्तपद्यस्य वरीवर्ति, भूमिगतिप्रतिपादनपरकः कोऽपि सम्बन्धः अस्य पद्यस्य नास्ति ।

श्रीवराहमिहिराचार्यकृत- बृहत्संहितायां- द्वितीयाध्याये सांवत्सराणां ज्ञातव्यविषयसूची-प्रतिपादनावसरे परिघ - पवनोल्कापात- दिग्दाह - वज्रपातादिभिः भयङ्करैः महोत्पातैः भूकम्पः भवतीति - क्षितिचलन - शब्दस्य प्रयोगं कृत्वा, भूकम्पनस्य = भूकम्पस्य - ज्ञातव्यविषयत्वं सूचितम्, न तु भूचलनशब्देन भूगतिप्रतिपादनं कृतं कुत्रापि श्रीवराहैः।

(क)—"धराभ्रमः" नाम्नि ग्रन्थे महामहोपाध्यायश्रीसुधाकरद्विवेदिमहोदयैः- अपि भूगोलः - अचलः - एव प्रतिपादितः ।

सिद्धान्ततत्वविवेके मध्यमाधिकारे श्रीकमलाकरभट्टैः भूभ्रमकथनस्य यत् खण्डनं कृतं तदत्र लिखामि—

स्थिरं प्रत्यक्चलं भाति खस्थं प्राग्भूभ्रभात् - नृणाम् ।
प्रवहो व्यर्थ इत्यार्यभट्टोक्तेः शृण्विहोत्तरम् ।।६७।।
यत् सर्वतो निराधारं स्वोर्ध्वदेशगतं गुरु ।
स्वस्थान एव तन्नूनं पततीत्यपि निर्णये ।।६८।।
असद् भूभ्रमणं चन्द्र्यामनार्षं स्वीकृतं तु यत् ।
भूमावपि ध्रुवायोगात् तत् तुच्छं प्रवहे गते ।।६६।।

श्रीकमलाकरभट्टैः—भूगतिप्रतिपादकस्य - अयुक्तस्य आर्यभट्टमतस्य खण्डनं कृतं - उक्तपद्येषु ।

सिद्धान्ततत्वविवेके - टीकाकारगङ्गाधरमिश्रमतस्य खण्डनम्

स्वटीकायां श्रीगङ्गाधरमिश्रमहोदयाः लिखन्ति— "अत्र भूवायौ भूचलनवशेन विकारो न भवतीति वदन्ति नूतनाः, वस्तुतो नवीनाः भुवो भ्रमणद्वयं वदन्ति, एकः कक्षाभ्रमः - तेन वर्षपूर्तिः, अन्यः स्वाङ्गभ्रमः - एतेन दिनरात्रि-व्यवस्थासिद्धिः ।

श्रीगङ्गाधरमिश्रमहोदयैः नवीनमतानुसारेण भूभ्रमणद्वयं विलिख्य, "इदमपिमतं वेदोक्तमेव-इति उक्त्वा, वेदोक्तमन्त्राणाम्, मार्कण्डेयपुराणस्थपद्यभागस्य, बृहत्संहितास्थ-ज्ञातव्यविषयक्षितिचलनस्य= भूकम्पस्य च, भ्रान्तिप्रदं निराधारं अर्थं कृत्वा, वेदादि-

शास्त्रेषु - अपि - भूभ्रमणद्वयपरकं मतद्वयं दृश्यते, इति यदुक्तं स्वटीकायां तत्तु भ्रान्ति-प्रदं - अविचारितरमणीयं निराधारं - उपेक्षणीयं च अस्तीति निष्पक्षया तटस्थया धिया विवेचनीयं विज्ञैः ।

पूर्वप्रतिपादितैः प्रत्यक्षसिद्धैः प्रथम '१' द्वितीय '२' प्रकारैः तथा च अथर्ववेद, यजुर्वेद, - सूर्यसिद्धान्त - कोष - सिद्धान्ततत्त्वविवेक - सिद्धान्त शिरोमणिस्थैः प्रमाणैश्च भूगोलः 'अचलः' एव सिद्ध्यति ।

प्रत्यक्षपरीक्षणेन वेदादिशास्त्रप्रमाणैश्च "अचलम्" अपि भूगोलं दुराग्रहग्रहण-ग्रसितबुद्धयः ये नवीनाः - आधुनिकाः - वैज्ञानिकाः - 'चलम्' मन्यन्ते, ते तु भ्रान्ताः - निष्पक्षया शोधधिया विवेचनीयं विज्ञैः ।

स्वनिर्मितेषु श्लोकेषु नवीनानां मतस्य समीक्षात्मकं खण्डनमत्र करोमि

नवीना वदन्ति स्थिरा नास्ति भूमिः—
न युक्तं तदुक्तं, कुतः क्षिप्तयानम् ।
सदाऽन्यत्रलब्धं तु प्रत्यक्षसिद्धम्—
दरीदृश्यते, भूस्थिरा तेन सिद्धा ॥१॥

नवीने मते दूषणानां प्रवाहम्—
विलोक्यैव धीरैः नं तन्माननीयम् ।
नवीनं मतं गोलदृष्ट्या विरुद्धं—
न सम्माननीयमसन्माननीयम् ॥२॥

अतः सुस्थिरा भूर्मता वेदसिद्धा—
ग्रहा वामगा वायुवेगैरतन्ति ।
प्रयान्तोऽपि प्राच्यां विभान्तः प्रतीच्याम्—
अहोरात्ररूपां व्यवस्थां वहन्ति ॥३॥

उपर्युक्तेन वैज्ञानिकविवेचनेन भूगोलः स्थिरः एव सिद्ध्यति । ग्रहास्तु चलाः एव सिद्ध्यन्ति ।

अतः 'आर्षवर्षा - वायु - विज्ञान प्रतिपादकेषु- ऋषिप्रणीतेषु - 'वेद-पुराणादि-ग्रन्थेषु' 'संहिताग्रन्थेषु' च मेघगर्भधारणसमये यस्यां दिशि वायुः प्रवहति, गर्भमोक्षसमये तु - गर्भधारणदिशातः - विलोमदिशि वायुः - प्रवहति, इति यदुक्तं तत्तु भूगोलं स्थिरं स्वकृत्यैव - समुक्तं तैः - ऋषिभिः ।

१—सुन्दरी टीका—आर्षवर्षा - वायुविज्ञान का प्रतिपादक भूगोल अचल है, इसका समीक्षात्मक विवेचन इस दशमाध्याय की सुन्दरी टीका में किया जा रहा है । अचल भूगोल को जो व्यक्ति सचल मानते हैं, उनकी भ्रान्तियों का निवारण इस दशवें अध्याय में कर रहा हूँ ॥१॥

प्रत्यक्ष परीक्षणों से और वेदादिशास्त्रों के प्रमाणों से भूगोल को 'अचल' सिद्ध करने के लिये मैंने जिस विज्ञान का वर्णन किया है, उसकी निष्पक्ष समीक्षा और परी-क्षण करने और कराने का प्रयास पाठकवृन्द करेंगे ॥२॥

भूगोल को चल मानने वाले आधुनिक वैज्ञानिकों के मतों का खण्डन

२—अनेक प्रकार की गतिविधियों वाले वायुयानों और प्रक्षेपयन्त्रों के द्वारा चन्द्रादिग्रहलोकों की यात्रा करने का दावा जो वैज्ञानिक कर रहे हैं, तथा भूगोल को पूर्वदिशा की ओर गतिशील = (पूर्वदिशा की ओर गमनशील) बताकर, एकवर्ष, एक मास, एक दिन में भूगोल जितना चलता है, इसका निर्णय भी कर चुकने का जो वैज्ञानिक दावा करते हैं, उन वैज्ञानिकों का कर्तव्य है कि—ये सब वैज्ञानिक आपस में विचार विमर्श करके, ऐसे वायुयानों और प्रक्षेपयन्त्रों का निर्माण कर लें, जिन वायुयानों और प्रक्षेपयन्त्रों में भूगोल की गति के बराबर गति हो, भूगोल, वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र में समान गति होने पर—एक वर्ष, एक मास, एक दिन, एक घण्टा आदि समय में पूर्वदिशा की ओर चलकर या घूमकर जितने मार्ग की यात्रा भूगोल करेगा, उतने ही मार्ग की यात्रा को पूर्वदिशा की ओर चलाया गया वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र भी एकवर्ष, एक मास, एक दिन, एक घन्टा आदि समय में अवश्य करेगा।

३—भारत की राजधानी दिल्ली, अमरीका, रूस, ब्रिटेन, चीन, जापान आदि राष्ट्रों की किसी भी वेधशाला अथवा नगर आदि स्थान के आकाश में पूर्वोक्त वायुयान अथवा प्रक्षेपयन्त्र को लेजाकर पूर्व की ओर पूरी गति से चलाने पर वह वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र जहाँ से उड़े है, उस वेधशाला अथवा उस नगर के ऊपर के आकाश के मध्यवर्ती 'लम्ब' की सीध में ही उड़ते हुए दिखाई देने चाहिये, क्योंकि वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र में भूगोल की गति के बराबर ही गति निहित की गई है, अतएव—पूर्वदिशा की ओर गमनशील भूगोल से चिपके हुए वेधशाला और नगर भूगोल के साथ जितनी दूरी तक आगे की ओर पूर्वदिशा में चलेंगे, उतनी ही दूरी तक भूगोल की गति के बराबर गति वाले वायुयान और प्रक्षेप यन्त्र भी पूर्वदिशा में अवश्य ही चलेंगे, तदनुसार उक्त वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र; ये दोनों उक्त वेधशाला और उक्त नगर के ऊपर के आकाश मण्डल में ही उड़ते हुए और पूर्वदिशा की ओर यात्रा करते हुए दिखाई पड़ने चाहिये, किन्तु प्रत्यक्ष में यह देखा जाता है कि—भूगोल, वायुयान, प्रक्षेपयन्त्र में समान गति होते हुए भी जिस वेधशाला और नगर से पूर्वदिशा की ओर वायुयान को उड़ाया जाता है, उस वेधशाला और नगर को अपने से पीछे छोड़कर पूर्वोक्त प्रकार के वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र पूर्वोक्त वेधशाला और पूर्वोक्त नगर के आकाश से बहुत ही आगे की यात्रा को तय करके वेधशाला और नगर के ऊपर के आकाश से बहुत आगे के आकाश में उड़ते हुए दिखाई देते हैं।

४— पूर्वोक्त परीक्षण करने पर यह प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देता है कि भूगोल में अपनी कोई गति नहीं है, भूगोल गतिहीन हैं, इसीलिये—पूर्वोक्त वायुयान और प्रक्षेप यन्त्र प्रक्षेप स्थान—वेधशाला या नगर से बहुत दूरी पर अग्रिम आकाश में उड़ते हुए दिखाई दिये हैं, यदि भूगोल में भी अपनी गति होती तो भूगोल से चिपके हुए उक्त वेधशाला और नगर, ये दोनों भी उक्त वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र के आकाश के नीचे ही पूर्व की ओर भूगोल के साथ चलते हुए दिखाई पड़ते, ऐसा नहीं होने से यह निष्कर्ष

निकलता है कि—भूगोल स्थिर है ।

५— भूगोल में गति सिद्ध करने के लिये आधुनिक वैज्ञानिक कहते हैं कि—भूगोल में अपनी गति के समान गति वाली "आकर्षणशक्ति" भी विद्यमान रहती है, अतएव - परीक्षण करने के समय में - वेधशाला या नगर से पूर्व की ओर उड़ाये गये वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र को - भूगोल की गति के समान गति वाली भूगोल की "आकर्षणशक्ति" प्रक्षेपस्थान =वेधशाला और नगर के आकाश से - अग्रिम आकाश की ओर खींचकर ले जाती है, इसीलिये प्रक्षेपस्थान वेधशाला और नगर के ऊपर के आकाश से आगे पूर्व दिशा के आकाश में उड़ते हुए वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र से भूगोल की आकर्षणशक्ति का ही प्रत्यक्षीकरण सिद्ध होता है, न कि भूगोल में गति का अभाव सिद्ध होता है, अतएव हम सब आधुनिक वैज्ञानिकों ने जो यह निर्णय किया है कि—भूगोल में पूर्व की ओर चलने वाली गति और आकर्षणशक्ति, ये दोनों सदा विद्यमान रहती हैं, इसकी पुष्टि - उक्त परीक्षण से प्रत्यक्षरूप में हो जाती है, क्योंकि—भूगोल की गति के समान गति वाली "आकर्षणशक्ति ने ही भूगोल की गति के समान गति वाले वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र को प्रक्षेपस्थान वेधशाला अथवा नगर के आकाश से आगे की ओर खींचकर अग्रिम आकाश में उड़ने के लिये बाध्य कर दिया है, अतएव हम - आधुनिक वैज्ञानिकों ने - भूगोल में पूर्व दिशा की ओर 'गति' और गति के समान ही उसमें "आकर्षणशक्ति" होने की जो खोज की है, वह उक्त परीक्षण की कसौटी पर कसने पर बिलकुल खरी और सही पाई गई है ।

आधुनिक वैज्ञानिकों की भूगोलगति का खण्डन

६— संस्कृतवाङ्मय के वेदादि शास्त्रों में सृष्टि के प्रारम्भ से ही भूगोल में "आकर्षणशक्ति होने का विस्तृत विवेचन किया गया है, अतएव-आधुनिक वैज्ञानिकों का यह कहना कि—हम आधुनिक वैज्ञानिकों ने ही भूगोल में "आकर्षणशक्ति" होने की खोज की है, यह आधुनिक वैज्ञानिकों का भ्रममात्र ही है ।

भूगोल की गति के समान गति वाले वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र को प्रक्षेप स्थान— वेधशाला अथवा नगर से पश्चिमदिशा की ओर आकाश में उड़ाये जाने पर वायुयान और प्रक्षेप यन्त्र ये दोनों भूगोल की गति की विलोम दिशा=(पश्चिमदिशा) के आकाश में उड़ेंगे, भूगोल से चिपके हुए प्रक्षेपस्थान वेधशाला और नगर भूगोल के साथ पूर्वदिशा की ओर चलते रहेंगे, भूगोल की गति के समान गति से पश्चिम की ओर उड़ते हुए - वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र को भूगोल की गति के समान गति वाली भूगोल की "आकर्षणशक्ति"पूर्व दिशा की ओर खींचकर अपने साथ रघीटती (खींचती) हुई पूर्वदिशा में भूगोल के साथ चलती रहेगी, तदनुसार— वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र जितने पश्चिम की ओर चलेंगे, उतने ही पूर्व की ओर आकर्षणशक्ति द्वारा- खिचते रहेंगे, उक्त परिस्थिति में - वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र पश्चिम दिशा की ओर लेशमात्र भी नहीं चल सकेंगे, अतएव वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र ये दोनों प्रक्षेपस्थान वेधशाला और प्रक्षेप नगर के ऊपर आकाश मण्डल में ही उड़ते हुए दिखाई देने चाहिये, किन्तु-

परीक्षण करने के समय में वे - प्रक्षेप स्थान- वेधशाला और नगर के ऊपर के आकाश से बहुत दूरी पर पश्चिम दिशा के आकाश में ही उड़ते हुए दिखाई देते हैं, यदि भूगोल भी गति युक्त होता तो पश्चिमदिशा में उड़ान भरने पर भूगोल की गति के समान गति वाली "भूगोलाकर्षणशक्ति" से आकर्षित भूगोल की गति के समान गति वाले वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र प्रक्षेपस्थान के आकाश में ही उड़ते हुए दिखाई देते रहते, किन्तु ऐसा न होने से भूगोल का अचलत्व सिद्ध होता है।

७— उपर्युक्त परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि– भूगोल में केवल आकर्षणशक्ति ही है, गति का अस्तित्व लेशमात्र भी नहीं है, भूगोल स्थिर तथा अचल ही है।

आकर्षण शक्ति की सीमा से ऊपर के आकाश में पूर्वदिशा की ओर उड़ते हुए वायुयान और प्रक्षेप यन्त्र द्वारा भूगोल की गति का खण्डन

८— भूगोल से ऊपर आकाशमण्डल में वारह योजन आधुनिक परिभाषा के अनुसार एक सौ चौहत्तर किलोमीटर और छः सौ गज=(१७४कि० मी०। ६००गज) की ऊँचाई तक भूगोल के वायु का तथा भूगोल की आकर्षणशक्ति का सञ्चार हुआ-करता है, भूवायु और आकर्षणशक्ति के इसी प्रदेश से भूगोल पर वर्षा और आंधी आया करती है, इसी प्रदेश में– वादलों का सञ्चार और बिजली का चमकाव हुआ करता है। १७४ कि० मी०। ६०० गज के ऊपरी भाग के आकाश में भूवायु और भूगोल की आकर्षणशक्ति का कोई भी प्रभाव नहीं रहता है।

९— आधुनिक वैज्ञानिकों के मतानुसार यदि भूगोल में गति है, तो भूगोल की गति के समान गति वाले वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र को– प्रक्षेपस्थान - वेधशाला या नगर के ऊपर भूगोल की आकर्षणशक्तिसीमा से ऊपर के आकाश में ले जाकर पूर्वदिशा की ओर चलाने पर - प्रक्षिप्तस्थान - वेधशाला और नगर के आकाश के ऊपर ही भूगोल की गति के समान गति वाले वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र को उड़ताहुआ दिखाई पड़ते रहना चाहिये, किन्तु परीक्षणों के अवसरों पर वायुयान और प्रक्षेपयन्त्र प्रक्षेप स्थान के आकाश से अग्रिम आकाश में वहुत ही दूरी पर पूर्वदिशा की ओर उड़ते हुए दिखाई देते हैं।

इस परीक्षण से भी भूगोल अचल और स्थिर ही सिद्ध होता है, भूगोल में गति का अभाव भी उक्त रपीक्षण से प्रत्यक्षरूप में दिखाई देता है।

१०— अतीन्द्रिय महर्षियों ने समस्तपरीक्षणों को वैज्ञानिक ढंग से करने के पश्चात् ही भूगोल को अचल और स्थिर माना है।

११—आधुनिक वैज्ञानिक भूगोल को स्थिर और अचल मानने में आनाकानी करते हैं, वे पूर्वोक्त परीक्षणों को करके भूगोल को प्रत्यक्ष रूप में गतिहीन, अचल,तथा स्थिर देख सकते हैं।

१२— तीन सौ इक्यावन और तीनसौ बावन= (३५१–३५२) पृष्ठों पर स्थित "यस्यां कृष्णमरूणम् - इत्यादि" अथर्ववेद के मन्त्र की संस्कृत-व्याख्या से तथा "आकृष्णेन रजसा - इत्यादि" यजुर्वेद के मन्त्र की संस्कृत-व्याख्या से भूगोल का

अचलत्व और स्थिरत्व सिद्ध किया जा चुका है।

१३— तीन सौ वावनवें = (३५२ वें) पृष्ठ पर स्थित सूर्यसिद्धान्त, कोप, सिद्धान्ततत्वविवेक, सिद्धान्त शिरोमणि, के प्रमाणों से भी भूगोल अचल और स्थिर ही सिद्ध होता है।

१४— तीन सौ त्रेपनवें पृष्ठ पर स्थित "आयं गौः - इत्यादि" मन्त्र की सुविस्तृत की गई संस्कृत- व्याख्या का निष्कर्ष यह है कि– खगोलीय - सृष्टिरचना के समय ईश्वरेच्छा से उत्पन्न हुए गतिशील सूर्य ने ही सब ग्रहों से पहले आकाशमण्डल में भूगोल से एकलाखयोजन ऊँचाई पर घूमना प्रारम्भ किया था, ईश्वरेच्छा से उत्पन्न हुआ गौः= गतिशील अथवा गमनशील, आयम् = यह, पृश्निः = तेजरश्मियों के जाल से परिपूर्ण - अग्निमयगोलाकार- सूर्य, पुरः = सर्वप्रथम, मातरम्= आकाश- मण्डल को, असदत्= प्राप्तकिया, आकाश को प्राप्त करके यह सूर्य पितरम्= पितृ- लोक को, च= और स्वः= स्वर्गलोक को, प्रयन्=जाता हुआ, अथवा प्राप्त करता हुआ, भुवनानि= समस्त लोकों को जाता हुआ, अक्रमीत्= समस्त लोकों की परि- क्रमा को पूरा किया, समस्त लोकों=सम्पूर्ण भुवनों को अपनी तेजोमय रश्मियों द्वारा देखते हुए सूर्य ने लोकों के ऊपर निरन्तर घूमना प्रारम्भ कर दिया।

१५— सृष्टि के आरम्भ से सृष्टि के अन्त तक सूर्यादिग्रह समस्त लोकों के आकाशमण्डल में निरन्तर घूमते रहते हैं, उपर्युक्त "आयं गौ - इत्यादि" मन्त्र का यही निष्कर्ष है, इस मन्त्र का भूमिभ्रमण= (भूमिगति) से लेशमात्र भी सम्वन्ध नहीं है, जो महानुभाव उक्त मन्त्र को भूगोलगति का समर्थक मान कर भूगोल की गति के प्रमाण में "आयं गौः- इत्यादि" मन्त्र को प्रस्तुत करते हैं, इस से उन की वड़ी भारी भूल, भ्रम और अज्ञानता का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है।

१६— "समुद्रादिवनोपेता सा रुरोह मही नभः" मार्कण्डेयपुराण के इस वचन में स्थित "रुह-प्रादुर्भावे" धातु से लिट् लकार में निष्पन्न "रुरोह" क्रिया से यह स्पष्ट अर्थ निकलता है कि– ईश्वरेच्छा के अनुसार सृष्टिरचना के समय में - समुद्र, वन, आदि से युक्त पृथिवी आकाश के वीच में प्रकट हुई थी, इस वचन का भूमिगति से लेशमात्र सम्वन्ध नहीं होने पर भी जो महानुभाव मार्कण्डेयपुराण के इस वचन को भूगोल में गति सिद्ध करने के लिये प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करते हैं, वे भ्रान्त हैं।

१७— श्री वराहमिहिराचार्य द्वारा विरचित - "वृहत्संहिता" नाम के ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में सांवत्सरों="ज्यौतिषशास्त्रज्ञों" के ज्ञातव्यविषयों की सूची में- निर्घात, उल्कापात, दिग्दाह, वज्राघात, आदि कारणों से होने वाले "भूकम्पों" को "क्षितिचलन=भूकम्पन" नाम से लिखा गया है, भूमिगति से भूकम्पन और क्षिति- चलन भिन्न हैं। बृहत्संहिता में भूकम्प को ही "क्षितिचलन और भूकम्पन नामों, शब्दों से पुकारा गया है, जो महानुभाव क्षितिचलन कहने से भूगोल में गति को सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, उनकी यह वड़ी भारी भूल और भ्रान्ति ही है।

१८— महामहोपाध्याय श्री सुधाकर द्विवेदी जी ने अपने "धराभ्रम" नाम

के ग्रन्थ में भूभ्रमण=(भूगोल की गति) का अच्छे ढंग से खण्डन किया है, - ब्रिटिश शासन काल में ज्योतिषाचार्य महामहोपाध्याय श्री सुधाकर द्विवेदी जी संस्कृतवाङ्मय और अंग्रेजी भाषा के माध्यम से गूढ़ विषयों का प्रतिपादन करने वालों में गणमान्य माने जाते थे ।

१९— सिद्धान्ततत्वविवेक के टीकाकार श्री गङ्गाधरमिश्र ने सिद्धान्ततत्व-विवेक के मध्यमाधिकार में स्थित सत्तानवें, अठानवें, निन्यानवें वें=(९७, ९८, ९९वें) श्लोकों की टीका करते समय वेदोक्त कुछ मन्त्रों का तथा तथा मार्कण्डेयपुराण के "समुद्रादिवनोपेता सा रुरोह मही नभः" इस पद्य का बिलकुल गलत और भ्रामक अर्थ करके "भूमिगति" को सिद्ध करने का प्रयास किया है, किन्तु अपने प्रयास में श्री मिश्र जी को असफलता ही मिली है ।

२०— सिद्धान्त तत्वविवेक के मध्यमाधिकार में स्थित "स्थिरं सम्यक्चलं भाति" इत्यादि से लेकर "असद् भूभ्रमणं चैन्द्रयाम् - इत्यादि" ९७, ९८, ९९ वें श्लोकों में "आर्यभट्ट" की तथा आधुनिक वैज्ञानिकों की भूमिगति="भूभ्रमण" का खण्डन अच्छे ढंग से किया है, इस खण्डन का विस्तृत विवेचन संस्कृतभाषा में इसी शोधग्रन्थ के तीन सौ चऊवनवें=(३५४ वें) पृष्ठ पर किया जा चुका है ।

२१— आधुनिक नवीन वैज्ञानिकों के भूभ्रमण का खण्डन इस दशमाध्याय में अनेक प्रकार से करने के बाद, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि—भूगोल - अचल और स्थिर ही है, भूभ्रमण को मानने वाले नवीन वैज्ञानिकों के मत का खण्डन कई प्रकार के प्रत्यक्ष परीक्षणों से तथा वेदादि समस्त संस्कृत वाङ्मय के अनेक प्रमाणों से हो चुका है अतएव - भूगोलीय और खगोलीय गणित के अनुसार - भूगोल "अचल और स्थिर ही सिद्ध होता है

भूभ्रमवादी आधुनिक वैज्ञानिकों का,"भूभ्रमणवाद" अनेक दोषों से भरा हुआ है, और प्रक्षेपयन्त्र द्वारा कसी गई वैज्ञानिक कसौटी=(प्रत्यक्ष परीक्षण) करने पर बिलकुल गलत और भ्रामक सिद्ध हो गया है ।

अतएव "भूभ्रमण" का प्रलाप करना नितान्त असङ्गत, अवैज्ञानिक, और भ्रामक ही है ।

[इति दशमाध्याय:]

—:×:—

एकादशाध्यायः

आर्षवर्षावायुविज्ञान-पोषक-चन्द्रादिग्रहलोकयात्राभ्रान्तिनिवारक एकादशाध्यायः

अमरीकाभवै विज्ञस्तथा रूससमुद्भवैः ।
ब्रिटेनादिषु सञ्जातै विज्ञाने डाक्टराभिधैः ॥१॥
अन्तरिक्षे कृता यात्रा शोधकार्यपरायणैः ।
कृतानि शोधकार्याणि वायुयानस्थडाक्टरैः ॥२॥
अपोलो संज्ञकैः कैश्चित् - लूनाखोदादिनामकैः ।
चन्द्रवग्घीति विख्यातै स्तथैवान्यान्यसंज्ञकैः ॥३॥
डाक्टराः कृतवन्तस्ते यात्रां यानै र्नवै र्नवैः ।
कौतूहलप्रदा यात्रा कृता तै र्नात्र संशयः ॥४॥
अन्तरिक्षे भ्रमस्तेषां शोधकानां महानभूत् ।
पर्वतस्यान्तरिक्षस्थं भागं गत्वैव डाक्टराः ॥५॥
आत्मानं चन्द्रलोकस्थं मन्यन्ते नात्र संशयः ।
टेलीवीजनयन्त्राद्यैः प्रचारस्तै र्महान् कृतः ॥६॥
चन्द्रलोकस्य यात्रायाः घोषणा तै र्भ्रमात् कृता ।
अज्ञानं वर्धितं लोके तया घोषणया महत् ॥७॥
अज्ञानस्य करिष्यामि ह्यध्यायेऽस्मिन् समीक्षणम् ।
खण्डनं च करिष्यामि तस्याज्ञानस्य निश्चितम् ॥८॥
विज्ञानं भारते राष्ट्रे यदस्ति वेदवाङ्मयम् ।
तस्य गौरवरक्षार्थं भ्रान्ताज्ञानस्य खण्डनम् ॥९॥
मया कृतं न विद्वेषात् - शोधयैव धिया कृतम् ।
विचारयन्तु हे विज्ञाः! विनम्रो विनिवेदये । १०।

चन्द्रादिग्रहलोकयात्राविषये - नवीनवैज्ञानिकानां घोषणादिनाङ्काः—

अमरीकादिदेशस्थैः - अन्तरिक्षयात्राशीलैः - आधुनिकवैज्ञानिकैः - स्वकृतघोषणासु भूगोलतः- चन्द्रलोकस्य यावती दूरी समुक्ता, अमरीकाकृतघोषणानुसारेण तावती एव दूरी भारतराष्ट्रराजधानीदिल्लीतः प्रकाशितेषु "हिन्दी - हिन्दुस्तान" प्रभृतिषु समाचारपत्रेषु अपि - प्रकाशिता सम्पादकैः ।

येषु दिनाङ्केषु यादृशी घोषणा कृता, तादृशीं एव घोषणां दिनाङ्कसहिताम् अत्र लिखामि···

हिन्दीहिन्दुस्तानपत्रस्य सम्पादकैः - येषु दिनाङ्केषु चन्द्रोच्छ्रिति - विषयस्य प्रकाशनं कृतम्, तान् दिनाङ्कान् समाचारापत्र - पाठकानाम् स्मरणार्थं प्रतीत्यर्थं च- अत्र लिखामि···

१.— १८ जौलाई १९६९ ईसवीयाब्दे हिन्दुस्तानपत्रे सप्तमाष्टमयोः कालमयोः प्रारम्भे भूगोलतः चन्द्रलोकस्य दूरी - चतुर्लक्ष "४०००००" किलोमीटर - प्रमिता प्रकाशिता पत्रकारैः ।

२.— २१ जौलाई १९६९ ईसवीयवर्षे हिन्दुस्तानपत्रे प्रथमपृष्ठे द्वितीयतृतीय-कालमयोः प्रारम्भे - एव - पृथिवीतः चन्द्रलोकस्य दूरी - चतुर्लक्ष = "४०००००" किलोमीटरप्रमिता प्रकाशिता सम्पादकैः ।

३.— २२ जौलाई १९६९ ईसवीयाब्दे राजधानीदिल्लीतः प्रकाशिते "नव-भारतटाइम्स" पत्रे पञ्चमे पृष्ठे तृतीये कालमे भूगोलतः - चत्वारिंशत्-सहस्राधिक-द्वि-लक्ष= "२४००००" मील="३८४०००" किलोमीटरदूरी चन्द्रलोकस्य प्रकाशिता पत्रकारैः- अमरीकाकृतघोषणानुसारेण ।

४.—२३ नवम्बर १९६९ ईसवीयाब्दे - हिन्दीहिन्दुस्तानपत्रे सम्पादकेन वैज्ञा-निकानां अन्तरिक्षे- भूगोलतः ऊर्ध्वं ३१९८५४ किलोमीटरदूरी कथिता, चन्द्रतः-अधो-भागे च - अन्तरिक्षयात्रिणां दूरी - ७२३४८ किलोमीटरात्मकप्रमिता कथिता, उभयो-रपि - दूरीमानयोः योगे कृते सति- ३१९८५४+७२३४८=३९२२०२= त्रिलक्ष-द्विनवतिसहस्र - द्व्यधिकद्विशत- किलोमीटरप्रमिता - दूरी चन्द्रलोकस्य प्रकाशिता पत्र-कारैः - अमरीकाकृतघोषणानुसारेणैव ।

५.— २३ सितम्बर १९७० ईसवीयाब्दे - हिन्दीहिन्दुस्तानपत्रे रूसदेशस्य घोषणानुसारेण "लूना-१६" लूनाषोडश- नामकस्य - अन्तरिक्षयानस्य दूरी-भूगोलतः- चतुर्लक्ष= "४०००००" किलोमीटरप्रमिता प्रकाशिता प्रकाशकैः ।

६.— अमरीकादेशस्य घोषणानुसारेण- ८ फरवरी १९७१ ईसवीयाब्दे-हिन्दी-हिन्दुस्तानपत्रे पञ्चम- षष्ठ- सप्तम - कालमानां प्रारम्भे-एव अपोलो-१४ "अपोलो-चतुर्दश" - नामकस्य अन्तरिक्षयानविशेषस्य दूरी - भूगोलतः सार्धद्वयलक्षमील = "२५०००० मील"= "४०००००" किलोमीटरप्रमिता प्रकाशिता पत्रकारैः ।

७.— अमरीकादेशकृत - घोषणानुसारेण- ३० जौलाई १९७१ ईसवीयाब्दे-हिन्दी-हिन्दुस्तानपत्रे अपोलो-१५ "अपोलो- पञ्चदश" - नामकस्य - अन्तरिक्षयानस्य दूरी - पृथिवीतः - त्रिलक्ष - चतुरशीतिसहस्र - सप्तशत= "३८४७००" किलोमीटर-प्रमिता प्रकाशिता पत्रसम्पादकमहोदयैः ।

८.— अमरीकाराष्ट्रकृत - घोषणानुसारेण- ३ अगस्त १९७१ ईसवीयाब्दे-हिन्दी - हिन्दुस्तानपत्रे - सप्तमाष्टमयोः - कालमयोः "अपोलो- १५" अपोलो-पञ्च-दश" नाम्नः-अन्तरिक्षयानविशेषस्य दूरी- भूगोलतः - चतुर्लक्ष= "४०००००"किलो-मीटरप्रमिता प्रकाशिता पत्रकारैः ।

९.— अमरीकाकृत - घोषणानुसारेण - हिन्दी - हिन्दुस्तानपत्रे अष्टमे कालमे

६ अगस्त १९७१ ईसवीयाब्दे भूगोलतः - त्रिलक्ष - विंषतिसहस्र = "३२००००" किलोमीटरप्रमिते - सुदूरस्थिते - गहने अन्तरिक्षप्रदेशे—"अपोलो - १५" अपोलोपञ्चदश नाम्नि - अन्तरिक्षयानविशेषे- अन्तरिक्षयात्राशीलैः वैज्ञानिकैः चन्द्रलोकस्य यात्रावसरे मानवस्य प्राथमिक— चहलकदमी कृता इत्येतादृशः समाचारः प्रकाशितः पत्रसम्पादकेन ।

१०—अमरीकाराष्ट्रकृत - घोषणानुसारेण- "अपोलो—१६" -अपोलोषोडशनामकस्य-अन्तरिक्षयानविशेषस्य यात्रिभिः - चन्द्रलोकयात्रावसरे अन्तरिक्षे - भूगोलतः - त्रिलक्ष ="३०००००" किलोमीटरप्रमिते - ऊर्ध्वप्रदेशे- विशिष्टकैमरायन्त्रैः- फिल्मसंज्ञकानि बहूनि चित्राणि - नीतानि, तानि च प्रकाशितानि, इत्येतादृशः समाचारः- हिन्दीहिन्दुस्तानपत्रे २७ अप्रैल १९७२ ईसवीयाब्दे भारतराष्ट्र - राजधानी- दिल्लीस्थैः पत्रकारैः प्रकाशितः ।

११— अमरीकाराष्ट्रकृत - घोषणानुसारेण चन्द्रलोकयात्राकरणाय - 'अपोलो - १७" अपोलो - सप्तदश - नामकेन - अन्तरिक्षयानेन यदा - अमरीकाराष्ट्रस्य भूमितः चन्द्रलोकयात्रा कृता तदा भूगोलतः = "अमरीकाभूमितः" चन्द्रलोकस्य दूरी = उच्छ्रितिः = "ऊंचाई" चतुर्लक्ष = '४०००००" किलोमीटरप्रमिता - आसीत्, इत्येतादृशः समाचारः - हिन्दी - हिन्दुस्तानपत्रे ८. दिसम्बर १९७२ ईसवीयाब्दे प्रकाशितः भारतराजधानी - दिल्लीस्थैः पत्रकारैः ।

१२— चन्द्रग्रहलोकयात्राभ्रमनिमग्नैः अमरीकादिराष्ट्रस्थैः आधुनिकैः - वैज्ञानिकैः अन्तरिक्षप्रदेशस्थपर्वतभूभागतः - यानि पर्वतखण्डानि - मृत्तिकापाषाणप्रभृतीनां च यानि खण्डानि समानीतानि, तेषां खण्डानां प्राचीनता विषये अमरीकादिदेशस्थैः आधुनिकैः वैज्ञानिकैः विभिन्नानि- स्वस्वमतानि प्रकाशितानि, अतः - तेषां पाषाणादिखण्डानां वास्तविक - प्राचीनत्वविनिर्णयात् - पूर्वं - आधुनिकानां वैज्ञानिकानां मतं उपस्थापयामि ।

१३—अमरीकाराष्ट्रकृत- घोषणानुसारेण "अपोलो—१४"=अपोलो- चतुर्दशनामकेअन्तरिक्षयाने समारुह्य- चन्द्रलोकस्य यात्रां कृत्वा, नमूनादायकानि - यानि - पर्वतखण्डादीनि वस्तूनि - अमरीकास्थैः वैज्ञानिकैः समानीतानि, तानि- चतुः - अरब-चत्वारिंशत्कोटि= "४४०००००००" प्रमितवर्षपूर्वं विनिर्मितानि, इत्येतादृशो विनिर्णयः अमरीकावेधशालास्थैः वैज्ञानिकैः डाक्टरैः - कृतः, एतादृशो लेखः २३ मार्च १९७१ ईसवीयाब्दे भारतराष्ट्रराजधानीदिल्लीतः - प्रकाशिते - हिन्दी - हिन्दुस्तानपत्रे - प्रकाशितः पत्रकारैः ।

१४ — अमरीकाराष्ट्रकृत- घोषणानुसारेण "अपोलो— १६" = अपोलो षोडश नामके अन्तरिक्षयाने समारुह्य चन्द्रलोकस्य यात्रां कृत्वा, अमरीकास्थैः-वैज्ञानिकैः पाषाणखण्डादीनि - नमूना - प्रदायकानि यानि वस्तूनि चन्द्रलोकतः-'अमरीकाराष्ट्रस्य-वेधशालासु समानीतानि, तेषां - पाषाणादिखण्डानां परीक्षणं विधाय, अमरीकाराष्ट्रस्य वेधशालास्थाः वैज्ञानिकाः डाक्टराः - चतुः अरब "४००००००००"प्रमित-

वर्षपूर्वं - तेषां पर्वतखण्डादीनाम् निर्माणं जातम् , इति मन्यन्ते, एतादृशो लेखः २४ अप्रैल १९७२ ईसवीयाब्दे - हिन्दी - हिन्दुस्तानपत्रे प्रकाशितः दिल्लीराजधानीस्थैः - पत्रकारैः ।

१५— अमरीकाराष्ट्रकृत - घोषणानुसारेण अन्तरिक्षयात्रिणः "अपोलो–१७" अपोलो - सप्तदश - अन्तरिक्षयाने समारुह्य, चन्द्रलोकस्य यात्रां कृत्वा, चन्द्रलोकतः यानि - पर्वतखण्डादिवस्तूनि नीत्वा अमरीकाराष्ट्रस्य भूमौ समागमिष्यन्ति, वैज्ञानिकैः- चन्द्रलोकतः समानीतानि वस्तूनि - षट्चत्वारिंशत् - अरब = "४६०००००००००" प्रमितवर्षपूर्वं विनिर्मितानि सन्ति, इति एतादृशस्य - अनुसन्धानकर्मणः - पूर्तिः - भविष्यति तैः - वस्तुभिः, एतादृशो लेखो - हिन्दी - हिन्दस्तानपत्रे - १३ दिसम्बर १९७२ ईसवीयाब्दे भारतराष्ट्रस्य - राजधानीदिल्लीथैः पत्रकारैः प्रकाशितः ।

सुमेरुपर्वतशीर्षभागेन जम्बूद्वीपस्य कियान्प्रदेशः आच्छादितः इतिनिर्णयमत्र - करोमि

जम्वूद्वीपमध्ये स्थितसुमेरुपर्वतशीर्षभागस्य विस्तारः-द्वात्रिंशत्सहस्र="३२०००" योजनप्रमितः = "४६५४५४ किलोमीटराः। ६०० गजाः" एतावान् प्रमितः प्रतिपादितः पूर्वम् ।

जम्वूद्वीपस्य मध्ये तु - चतुर्स्त्रिंशत्सहस्र = "३४०००" योजनप्रमितः = '४९४५४५ किलोमीटराः, ५०० गजाः" एतावान् विस्तारयुक्तः - समानचतुर्भुज - क्षेत्रात्मकः - इलावृतप्रदेशः - अस्ति ।

इलावृतप्रदेशः = ४९४५४५ किलोमीटराः । ५००गजाः ।

सुमेरुशीर्षप्रदेशः = ४६५४५४ किलोमीटराः । ६००गजाः ।

उभयोः अन्तरम् = २९०९० किलोमीटराः । १००० गजाः - अवशिष्टः - इलावृतप्रदेशस्य भागः ।

एकोनत्रिंशत्सहस्रनवति किलोमीटराः - एकसहस्रगजाः सुमेरुपर्वतशीर्षभाग - मानात् २९०९० किलोमीटराः - १००० गजाश्च, एतावत् - प्रमितमेव आधिक्यं विद्यते इलावृतप्रदेशे, अधिकमानस्य अर्धम् = १४५४५ किलोमीटराः ५०० गजाश्च एतावदेव प्रमितं तन्मानम् - इलावृतदेशास्य चतुर्दिक्षु सीमासु संलग्नम् - इलावृतदेशस्य आधिक्यं द्योतयति - सुमेरुशीर्षभागप्रमाणतः ।

उपर्युक्तप्रकारेण इलावृतप्रदेशः एकसहस्रयोजनप्रमितः पूर्व - पश्चिम दक्षिणो- त्तरदिक्षु-अधिकः सिद्ध्यति सुमेरुपर्वतस्य शीर्षभागमानात् सुमेरुपर्वतमध्यभागतः 'केन्द्रात्' जम्वूद्वीपस्य केन्द्रभागाच्च ।

चन्द्रादिग्रहलोकयात्रायाः - समीक्षात्मकं खण्डनामत्र करोमि

इतः प्राक् प्रतिपादितप्रसङ्गे मया सुमेरुपर्वतस्य गन्धमादनमाल्यवान्-पर्वतयोः- चन्द्रलोकस्य -च उच्छ्रितिमानं प्रतिपाद्य, अन्तरिक्षयात्रिणाम् - आधुनिकानां वैज्ञानिकानां - अन्तरिक्षयात्रयाः उच्छ्रितिमानमपि प्रतिपादितम् ।

सुमेरुपर्वतस्य-उच्छ्रितिमानम्=८४०००योजनानि=१२२१८१८किलोमीटराः।२००ग

गन्धमादन-माल्यवान्पर्वतयोः - उच्छ्रितिमानम्=४०००० यो०=५८१८१८ किमी०।
२०० गजाः।

चन्द्रलोकस्य-उच्छ्रितिमानाम्=२००००० यो०=२९०९०९० किमी०/१०००ग जः।

अन्तरिक्षयात्रिणां यात्रोच्छ्रितिमानम्=२७३५०+५०/११७यो०=४००००० किमी०

(१) सुमेरुपर्वतस्य - उच्छ्रितिः = १२२१८१८ कि०मी०।२००ग०
अन्तरिक्षयात्रिणां यात्रा =—४००००० किलोमीटराः
उभयोः अन्तरमानम् = ८२१८१८ किलोमीटराः।२००ग०

(२) गन्धमादन-माल्यवान्पर्वतयोः-उच्छ्रितिः=५८१८१८=कि०मी०।२००ग०
अन्तरिक्षयात्रिणां यात्रा =—४०००००=किलोमीटराः
उभयोः - अन्तरमानम् =१८१८१८किलोमीटराः।२००ग०

(३) चन्द्रलोकस्य - उच्छ्रितिमानम् =२९०९०९०कि०मी०। १०००ग
अन्तरिक्षयात्रिणां यात्रा =—४००००० किलोमीटराः
उभयोः अन्तरमानम् =२५०९०९०कि०मी०। १०००ग

(४) उपर्युक्तगणितानुसारेण - आधुनिकानाम् - अन्तरिक्षयात्रिणां यात्रोच्छ्रिति-मानतः सुमेरुपर्वतस्य - उच्छ्रितिमानम् - अष्टलक्ष एकविंशतिसहस्र - अष्टशत - अष्टा-दश '८२१८१८' कि०मी।२००गजः, अधिकम् अस्ति ।

(५) आधुनिकयात्रिणां यात्रोच्छ्रितिमानतः - गन्धमादन माल्यवान्पर्वतयोः - उच्छ्रितिमानम् एकलक्षएकाशीतिसहस्र-अष्टशत-अष्टादश='१८१८१८' कि०मी०।२००ग० - अधिकम् - अस्ति। अतोऽनुमीयते - गन्धमादन - माल्यवान् - पर्वतयोः-उपरि-तने प्रदेशे- यात्रा कृता - आधुनिकै वैज्ञानिकैः।

आधुनिकयात्रिणां यात्रोच्छ्रितिमानतः - चन्द्रग्रहस्य - चन्द्रलोकस्य च - उच्छ्रितिमानम्=पंचविंशतिलक्षनवसहस्र नवति कि०मी०।१०००ग०="२५०९०९०की०" १०००ग०। अधिकम् अस्ति, अतः-चन्द्रलोके - आधुनिकवैज्ञानिकैः यात्रा न कृता-इत्यपि सिद्ध्यति- पूर्वोक्तगणितेन ।

अमरीकादिराष्ट्रस्थानाम् - अन्तरिक्षयात्रिणां मतस्य खण्डनम्

वृत्ताकारसुमेरुपर्वततः - हिमालयपर्वततश्च - दक्षिणस्यां दिशि - जम्बूद्वीपस्य नवमे भागे भारतवर्षभूमौ स्थिताः - तत्रैव च समुत्पन्नाः अमरीकादिराष्ट्रजाः-अन्तरिक्ष-यात्रिणः - आधुनिकाः वैज्ञानिकाः तत्रत्यवेधशालास्थैः - यन्त्रविशेषैः सुमेरुपर्वतस्य उच्च-तमं भागं वृक्षादिसमन्वितं दृष्ट्वा, वृत्ताकारं तमेव भागं च वृत्ताकारचन्द्रलोकं मत्वा, अन्तरिक्षयात्रायानविशेषैः - सुमेरुपर्वतस्य सन्निधौ गन्धमादनपर्वतेऽथवा माल्यवान् पर्वते यात्रां कृत्वा, तस्मादेव सुमेरुपर्वत - समीपस्थात् गन्धमादनपर्वतात् माल्यवानपर्वताद् वा विविधानि पाषाणखण्डानि - मृत्तिकादिवस्तूनि च नीत्वा, चन्द्रलोकस्य-यात्रा कृता-अम-रीकादिदेशजैः - अस्माभिः, इत्येतादृशः प्रचारः अज्ञानतः - भ्रान्त्या च कृतः - तैः वराकैः अन्तरिक्षयात्रापरायणैः वैज्ञानिकैः।

सुमेरुपर्वतस्य समीपे गन्धमादन - माल्यवान् - पर्वतयोः उपरि - स्थित्वा अन्त-रिक्षयात्रिभिः वृत्ताकारमयानि यानि - अनेकानि चित्राणि - कैमरायन्त्रविशेषैः नीत्वा,

वेधशालासु प्रेषितानि, अनेकेषु समाचारपत्रेषु च प्रकाशितानि, तानि सर्वाणि अपि चित्रादीनि - वृत्ताकारसुमेरुपर्वतस्यैव सन्ति, न तु चन्द्रलोकस्य नवा चन्द्रग्रहस्य तानि चित्राणि सन्ति, इति मध्यस्थया धिया विद्वद्भिः वैज्ञानिकैश्च विवेचनीयम् ।

ब्रह्माण्डमध्ये स्थिते भूगोले - सुवर्ण-रजत - अनेकरत्न - प्रभृतीनि यानि कानि अपि वस्तूनि सन्ति, तानि सर्वाणि - अपि सुमेरुपर्वते - सन्ति, तानि च साम्प्रतमपि उपलभ्यन्ते, अतएव - सूर्यसिद्धान्तादिगणितग्रन्थेषु......

"अनेकरत्ननिचयो जाम्बूनदमयो गिरिः ।
भूगोलमध्यगो मेरुरुभयत्र विनिर्गतः ॥"

इत्येतादृशलक्षणलक्षितः सुमेरुः पर्वतः कथितः, उभयत्र - विनिर्गतः इत्यंशस्य तु अयं भावः - सः - सुमेरुः - भूगोलतः भूगोलपृष्ठतः ऊर्ध्वप्रदेशे - अर्थात् अन्तरिक्षे - भूगोलपृष्ठभागतः-अधः प्रदेशे-अर्थात्-भूगोलगर्भे च विनिर्गतः=प्रविष्टः इति तत्वार्थः ।

अभ्रकादीनि यानि - कानि - अपि धातूनि भूगोले सन्ति, तानि सर्वाण्यपि - पर्वतप्रदेशेषु विद्यन्ते, अतएव - तेषु पर्वतप्रदेशेषु गत्वा आधुनिकाः वराकाः - अन्तरिक्ष-यात्रिणः - अभ्रकादिधातुविशेषयुक्तानि-पाषाण-मृत्तिकाप्रभृतिखण्डानि तेभ्यः पर्वतेभ्यः स्वसार्धं समानयन्ति, तानि - अभ्रकादिधातुमयानि - पाषाणादिखण्डानि - स्वदेशस्थासु वेधशालासु स्थापयन्ति, तत्रत्याः - वैज्ञानिकाश्च तेषां धातुविशेषाणां विविधरीत्या परीक्षणं कुर्वन्ति, इत्यत्र न किमपि आश्चर्यकरं वृत्तं अस्तीतिनिष्पक्षया मध्यस्थया धिया विवेचनीयं विज्ञैः वैज्ञानिकैश्च ।

आधुनिकशिक्षापद्धतेः - दुष्परिणामः

साम्प्रतं भूगोल - खगोलयोः वास्तविकस्थितेः - ज्ञानं-स्कूल - कालेजेषु विश्व - विद्यालयेषु च प्रचलितासु शिक्षासु - न विद्यते, अत एव साम्प्रतिकाः - अध्यापकाः छात्राश्च भूगोलखगोलयोः वास्तविकस्थिति-ज्ञानशून्याः - वर्तन्ते, साम्प्रतं प्रचलितायाः शिक्षायाः एतादृशः - दुष्परिणामः प्रत्यक्षं दरीदृश्यते, यत् पर्वतप्रदेशं - एव - चन्द्रलोकं मन्यन्ते वराकाः वैज्ञानिकाः अपि ।

अमरीका - रूस ब्रिटेन - चीन - जापान - लङ्का - प्रभृतयः सर्वेऽपि मानव-देशाः भारतवर्षस्यैव - अङ्गभूताः सन्ति, इत्यपि विस्मृतं आधुनिकैः वैज्ञानिकैः अन्यैश्च शिक्षाध्यापनाध्ययनपरायणैः महानुभावैः ।

संस्कृतविज्ञानस्य उपेक्षायाः दुष्परिणामः

संस्कृतवाङ्मये-येषु ग्रन्थेषु-भूगोलखगोलयोः वास्तविकस्थितेः वर्णनम्-उपलभ्यते, तेषां ग्रन्थानां प्रचलितशिक्षाप्रणाल्यां कुत्रापि चञ्चु प्रवेशः अपि नास्ति, अतः तेन - भूगोल - खगोल - स्थिति ज्ञानेन विना - महतः - अज्ञानस्य प्रचारः कृतः अमरीका-प्रभृतिदेशजैः वैज्ञानिकैः ।

अज्ञानवर्धकः निराधारश्च चन्द्रलोकयात्रादिप्रचारः समर्थितः भूगोलखगोलयोः स्थितेः अनभिज्ञैः कैश्चित् आधुनिकैः महानुभावैः ।

अस्य - अध्यायस्य सारांशः......

गोलानभिज्ञधिषणै र्गदितं सुज्ञात्वा—
चन्द्रादिलोकगमनं गणिताद् विरुद्धम् ।
तत्खण्डनं कृतमवाप्य गुरोः प्रसादम्—
ब्रह्माण्डगोलगणितेन मयाऽत्र विद्वन्! ॥१॥

सुन्दरी टीका— ग्यरहवें अध्याय का सारांश सुन्दरी टीका में दिया जा रहा है, इस ग्यारहवें अध्याय में चन्द्रादि ग्रहलोकों की यात्रा का समीक्षात्मक खण्डन किया गया है ।

अध्याय के आरम्भ में स्थित स्वरचित दशपद्यों का सारांश

१—अमरीका, रूस, ब्रिटेन, आदि देशों में जन्मलेने वाले अन्तरिक्ष=(खगोलीय) शोधकार्य करने में संलग्न विज्ञान में डाक्टर की उपाधि को अपने राष्ट्र के शिक्षाविभाग से प्राप्तकिये हुए कुछ वैज्ञानिकों ने "अपोलो, लूनाखोद, चन्द्रवग्घी'आदि नये नये नामों के वायुयानों में वैठकर कई वार अन्तरिक्ष=(खगोल=आकाश मण्डल) की लम्वी यात्रायें की हैं । आधुनिक वैज्ञानिकों की इन अन्तरिक्ष यात्राओं से प्रत्येक राष्ट्र के व्यक्तियों के हृदयों और मस्तिष्कों में चन्द्रमा आदि ग्रहलोकों से सम्वन्धित आकाशमण्डल की वास्तविक स्थिति को जानने के लिये कौतूहल = (उतावलापन) उत्पन्न हो गया है।

२— प्रायः प्रत्येक व्यक्ति यह जानने का इच्छुक है कि संस्कृतवाङ्मय के वेद आदि शास्त्रों में और संस्कृत के समस्त काव्यादिग्रन्थों में तथा इतिहास - पुराण - दर्शनशास्त्रादि के ग्रन्थों में - चन्द्रमा को पियूषपिण्ड= (अमृतपिण्ड) तथा प्राणिमात्र के मनों का अधीश्वर और आकर्षणशक्तियुक्त- सौन्दर्यादिगुणों से परिपूर्ण बताया है , कवियों ने भी विशेषाकर्षणशक्तियुक्त-सौन्दर्यादिगुणों से सम्पन्न युवतियों के मुखों की उपमा को चन्द्रमा से ही देकर उन्हें "चन्द्रमुखी" होने का उपहार भेंट किया है ।

३—अन्तरिक्ष की खोज करने के लिये आकाश में अनेक प्रकार के वायुयानों द्वारा लम्वी यात्रायें=(ऊंची उड़ानें) करने वाले आधुनिक अन्तरिक्ष यात्रियों ने अपनी खोज के अनुसार– पहाड़ों, पत्थरों, क्रैटरों, चट्टानों, ज्वालामुखियों, नहरों, जलशून्य प्रदेशों, अनेक प्रकार की मिट्टियों और वृक्षों आदि से युक्त चन्द्रमा को वताकर चन्द्रमा के प्रदेश को ऊवड़ खावड़, ऊँचा, नीचा, सिद्ध कर दिया है, तदनुसार चन्द्रमा न तो पीयूषपिण्ड है, और न चन्द्रमुखी के मुख का उपमान वनने की योग्यता को ही रखता है, अत एव - वेदादिशास्त्रों ने तथा दर्शनादिशास्त्रों ने और कवियों ने चन्द्रमा के सम्वन्ध में जो कुछ भी वर्णन किया है, वह आधुनिक अन्तरिक्षयात्री वैज्ञानिकों की नयी खोज से विलकुल गलत सिद्ध हो गया है,

४— उक्त परिस्थिति में चन्द्रमा के सम्वन्ध में वेदादिशास्त्रों का मत ठीक माना जाय, अथवा आधुनिक अन्तरिक्षयात्रियों द्वारा खोजे गये चन्द्रमा के - सम्वन्ध में की गई जानकारियों को ही ठीक माना जाय, इन दोनों पक्षों में से कौन सा पक्ष

ठीक है, इस प्रकार के प्रश्न और उन प्रश्नों के उत्तरों को जानने की उथल पुथल का कौतूहल प्रत्येक राष्ट्र के प्रत्येक समझदार, ज्ञानशील और शोधशील व्यक्ति के हृदय और मस्तिष्क को झकझोर रहा है।

आकाशीय विषय क्लिष्ट होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति सही निर्णय देने में अपनी अन्तरात्मा को असमर्थ समझ कर ठीक निर्णय देने से कतरा रहा है।

५—अन्तरिक्षयात्री "गगारिन" की अन्तरिक्षयात्राओं से पूर्व ही मैंने संस्कृत-वाङ्मय के ग्रन्थों में लिखे गये भूगोल, खगोल को तथा आधुनिक गन्थों में लिखे गये भूगोल, खगोल को ज्ञानोपार्जन के दृष्टिकोण से पढ़ा था। गगारिन के बाद आधुनिक अन्तरिक्षयात्री वैज्ञानिकों ने चन्द्रलोक आदि के सम्बन्ध में जो कुछ भी वर्णन किया है, उसका तथा संस्कृतवाङ्मय के प्रामाणिकशास्त्रों में चन्द्रलोक आदि के सम्बन्ध में जो कुछ वर्णन किया है उस का, तुलनात्मक और समीक्षात्मक-निष्पक्ष-गहन-विवेचन- करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि— अमरीका प्रभृति राष्ट्रों के अन्तरिक्ष यात्री अब तक— जम्बूद्वीप के "गन्धमादन, माल्यवान्, सुमेरु" आदि पर्वतों के शिखरों पर ही पहूँच पाये हैं, उन पर्वत शिखरों को ही चन्द्रलोक समझ कर उन पर्वतों से ही पत्थर, मिट्टी आदि लाये हैं, इन अन्तरिक्षयात्रियों ने केवल चारलाख क्लिोमीटर कीं ऊँचाई तक यात्रायें की हैं, चन्द्रमा और चन्द्रलोक उनतीसलाखकिलोमीटर से भी अधिक ऊंचाई पर है, माल्यवान्, गन्धमादन पर्वत पाँचलाख किलोमीटर से भी अधिक ऊंचे हैं, सुमेरुपर्वत वारहलाख किलोमीटर से भी अधिक ऊंचा है, इसी शोधग्रन्थ के छटे अध्याय में दो सौ चऊअन वें==(२५४वें) पृष्ठ पर जम्बूद्वीप के पर्वतों और सूर्यादिग्रहों की ऊंचाईयों की सारिणी को देखिये, सब कुछ समझ में आजायगा।

६— चन्द्रादि लोकों की तथा जम्वूद्वीपादि की स्थिति से अनभिज्ञ ये बेचारे अमरीका आदि के आधुनिक अन्तरिक्षयात्री वैज्ञानिक पर्वतों को ही चन्द्रलोक समझ कर उन पर्वतों पर अपने राष्ट्र के झण्डा आदि उपकरणों को छोड़ कर, प्रभावशाली - कैमराओं से उस पर्वतीय क्षेत्र के ही चित्रों को "टेलीवीजन" आदि के माध्यम से घर घरों में दिखाकर, अनेक प्रकार के अज्ञानवर्धन और भ्रामक - प्रचारों तथा घोषणाओं को किये हैं।

७— इन अन्तरिक्षयात्रियों की अज्ञानवर्धक और भ्रामक घोषणाओं के कारण संस्कृतवाङ्मय के वेदादिशास्त्रों, इतिहासों, पुराणों, दर्शनग्रन्थों, काव्यग्रन्थों, और आर्षगणितसिद्धान्तग्रन्थों में वर्णन किये गये भूगोलीय और खगोली विज्ञान का अनुचित तथा अवैज्ञानिक और भ्रामक ढंग से खण्डन हो गया है, अत एव- इन आधुनिक अन्तरिक्षयात्री वैज्ञानिकों द्वारा विश्वभर में फैलाये गये अज्ञानमय अन्धकार की निवृत्ति के लिये, तथा वेदादिसंस्कृतवाङ्मय में प्रतिपादित दिव्यविज्ञान की सुरक्षा के लिये मैं ने इन अन्तरिक्षयात्रियों की भ्रामक यात्राओं का खण्डन इस शोधनिवन्ध में किया है, विज्ञजन नीरक्षीर-विवेकिनी - निर्मल-निष्पक्ष-मध्यस्थ - वुद्धि से मेरे द्वारा प्रतिपादित किये गये विषय पर गम्भीरता पूर्वक विचार करेंगे।

चन्द्रादिग्रहलोकों की यात्राओं के विषय में अमरीका आदि के अन्तरिक्ष-यात्रियों द्वारा की गई घोषणाओं और दिनाङ्कों का विवेचन

८— दिनाङ्क १८ और २१ जौलाई १६६६ ईसवी को भारत की राजधानी दिल्ली से प्रकाशित हिन्दी के हिन्दुस्तान समाचारपत्र में अमरीका की घोषणानुसार—क्रमश:– ७, ८, १, २, कालमों पर भूगोल से चारलाख "४०००००" किलोमीटर ऊंचाई चन्द्रलोक की सम्पादक महोदय ने प्रकाशित की है।

९— २२ जौलाई १६६६ ई० के नवभारयटाईम्स में ३८४००० किलोमीटर ऊंचाई और २३ नवम्बर १६६६ के हिन्दुस्तानपत्र में ३६२२०२ किलोमीटर ऊँचाई चन्द्रलोक की प्रकाशित की गई है।

१०— २३ सितम्बर १६७० ई० के और ८ फरवरी १६७१ ई० के हिन्दुस्तानपत्र में भूगोल से चारलाख "४०००००" किलोमीटर ऊंचाई चन्द्रलोक की प्रकाशित की गई है।

११— दिनाङ्क ३० जौलाई १६७१ ई०, ३ अगस्त १६७१ ई०, ६ अगस्त १६७१ ई० के हिन्दुस्तानसमाचारपत्र में क्रकश:— ३८४७०० किलोमीटर, ४००००० किलोमीटर, ३२००० किलोमीटर ऊंचाई भूगोल से चन्द्रलोक की प्रकाशित हुई है।

१२— दिनाङ्क २७ अप्रैल १६७२ ई० के हिन्दुस्तानपत्र में तीनलाख'३००००० किलोमीटर ऊँचाई पर चन्द्रमा की फिल्म खींचने का समाचार और ८ दिसम्बर-१६७२ ई० के हिन्दुस्तानपत्र में भूगोल से चन्द्रमा की चारलाख "४०००००" किलो' मीटर ऊंचाई होने का समाचार प्रकाशित हुआ है।

चन्द्रलोक से लाये गये पत्थरों और मिट्टियों आदि के परीक्षणों से चन्द्रलोक की प्राचीनता के सम्बन्ध में अमरीका के वैज्ञानिकों की अटकलों का विवेचन

१३— अमरीका की घोषणानुसार २३ मार्च १६७१ ई० के हिन्दुस्तानपत्र में तथा २४ अप्रैल १६७२ ई० के हिन्दुस्तानपत्र में और १३ दिसम्बर १२७२ ई० के हिन्दुस्तानसमाचारपत्र में प्रकाशित समाचारों के अनुसार क्रमश:— अन्तरिक्षयान अपोलो १४, अपोलो १६, अपोलो १७, द्वारा चन्द्रलोक से लाये गये पत्थरों और मिट्टियों आदि के परीक्षणों के सनुसार-क्रकम:–चारअरबचालीसकरोड़'४४00000000' तथा चार अरब "४000000000" और छ्यालीस अरब "४६000000000" वर्ष पुराने चन्द्रलोक के पत्थरों और मिट्टियों के होने का अनुमान अमरीका की वेधशालाओं के वैज्ञानिक डाक्टरों ने लगाया है।

अमरीका आदि के अन्तरिक्षयात्रियों और वेधशालाओं के वैज्ञानिकों की अटकलों और गलत अनुमानों का समीक्षात्मक खण्डन

१४— इसी शोधग्रन्थ के छटे अध्याय में दो सौ तेरह और दोसो चौदहवें= (२१३ – २१४ वें) पृष्ठों को देखिये, इन पृष्ठों पर सृष्टि के आरम्भ से विक्रमसम्वत् २०३६ तदनुसार सन् १६७६ ईसवी तक प्रचलित सृष्टि के विगतवर्षों= (बीते हुए

वर्षों) के गणित को स्पष्टरूप में लिखा गया है, इस गणित से यह सिद्ध हो गया है कि– "एक अरब - सतानवें करोड़ - बारहलाख - इक्कीस हजार - अस्सी - वर्ष = १९७१२२१०८० वर्ष" प्रचलित सृष्टि के व्यतीत हुए हैं।

उक्त गणित से यह सिद्ध हो रहा है कि वर्तमान समय में प्रचलित सृष्टि दो अरब वर्षों से भी कम पुरानी है।

"सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्"

इस वेद मन्त्र के अनुसार तथा २१३ – २१४ पृष्ठों पर स्थित सृष्टिगणित के अनुसार इस समय में प्रचलित– "सूर्य - चन्द्र" आदि कोई भी दृष्टिगोचर अथवा अदृष्टिगोचर द्रव्य और पदार्थ "दो अरब वर्ष से भी कम वर्ष पुराना ही है, उक्त परिस्थिति में अमरीका आदि की वेधशालाओं के डाक्टरों ने अन्तरिक्षयात्रियों द्वारा लाये गये "गन्धमादन और माल्यवान् आदि पर्वतों" से ही लाये गये पत्थरों और मिट्टियों, अभ्रकों आदि पदार्थों को चालीसअरबवर्ष अथवा चवालीस अरबवर्ष अथवा छ्यालीसअरबवर्ष पुराने होने की घोषणायें करके, "सृष्टि - द्रव्य - पदार्थ - विज्ञान" का गला घोट देने जैसी असाधारण भूलें = (गलतियां) की हैं। अमरीका आदि के अन्तरिक्षयात्री वैज्ञानिकों और वेधशालाओं में स्थित द्रव्य - पदार्थ - विज्ञान के वैज्ञानिक डाक्टरों की भूलयुक्त = (गलतीयुक्त) अवैज्ञानिक घोषणाओं से विश्व में अज्ञानमय अवैज्ञानिक अन्धकार फैल गया है।

आधुनिक वैज्ञानिकों से निवेदन

१५— अमरीका आदि अन्तरिक्षयात्री वैज्ञानिकों से और वेधशालास्थ "द्रव्य- गुण - पदार्थ - विज्ञान" के डाक्टरों से मेरा निवेदन है कि— ईश्वरीय सृष्टि के– "सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि" के सम्बन्ध में "निराधार, भ्रामक और अज्ञानवर्धक' घोषणाओं को भविष्य में आप महानुभाव यदि नहीं करेंगे तो अज्ञानमय अन्धकार से बचे हुए प्रत्येकराष्ट्र के मानवसमाज का कल्याण ही होगा।

आधुनिक शिक्षापद्धतियों के दुष्परिणाम

१६—वर्तमान समय के स्कूलों, कालेजों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में प्रचलित शिक्षापद्धति के अनुसार– भूगोल और खगोल से सम्बन्धित जो कोर्स = (पुस्तकें) अध्ययन अध्यापन के क्षेत्र में प्रचलित है, उन कोर्सों से भूगोल और खगोल की अनेक वस्तुओं की वास्तविक और सही जानकारी बहुत ही कम हो पाती है, भूगोल की अचलता और सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि ग्रहों की ऊंचाईयों का तथा गन्धयादन, माल्यवान्, सुमेरु आदि पर्वतों की स्थितियों और ऊँचाईयों का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं हो पाता है।

१७— इस दूषित शिक्षापद्धति का दुष्परिणाम प्रत्यक्ष रूप में हम सब के सामने यह है कि– अमरीका आदि के वैज्ञानिक भूगोल के पर्वतों को ही चन्द्रलोक = (चन्द्रमा) मानकर घन्द्रलोक पर पहुँचने का दुष्प्रचार जोरों और शोरों से कर रहे हैं, आधुनिक शिक्षापद्धति के अनुसार पढ़े लिखे भूगोल - खगोल के ज्ञाता डाक्टर भी

मौनव्रतधारण करके मूकवने हुए बैठे हैं।

अमरीका, रूस ब्रिटेन, चीन, जापान आदि मनुष्यजाति के सभी राष्ट्र अब से लगभग पौने दो अरब वर्ष पहले भारत के ही अङ्ग थे, इन सब बातों के ज्ञान से भी आजके भूगोलज्ञ बिलकुल वञ्चित ही रह गये हैं।

संस्कृतवाङ्मय की उपेक्षा के दुष्परिणाम

१८— संस्कृतवाङ्मय के जिन ग्रन्थों में भूगोल - खगोल - का वर्णन किया गया है, उन संस्कृत ग्रन्थों का चञ्चुप्रवेश भी आज की शिक्षापद्धति में शासकवर्ग ने नहीं होने दिया है, इसी का यह दुष्परिणाम है कि-अमरीका आदि के अन्तरिक्षयात्रियों द्वारा पर्वतों से लाये गये पत्थरों के और मिट्टियों के टुकड़ों को भी चन्द्रलोक और चन्द्रमा के टुकड़े बता कर सभी राष्ट्रों के मानवसमाज को अज्ञानमय अन्धकार का शिकार बनना पड़ रहा है।

राष्ट्र के कर्णधारों के लिये सुझाव

१९— संस्कृतवाङ्मय के जिन आर्षग्रन्थों में भूगोल - खगोल - का विस्तृत विवेचन किया गया है, ऋषिप्रणीत उन आर्षग्रन्थों को आज की शिक्षापद्धति के भूगोल खगोल के विषयों और कोर्षों में अध्ययन - अध्यापन के लिये रखना राष्ट्र के कर्णधारों का ही कर्तव्य है, अत एव— भूगोल - खगोल का सही ज्ञान करने के लिये— भूगोल - खगोल से सम्बन्धित संस्कृत ग्रन्थों का समावेश— शिक्षापद्धति में राष्ट्र के हितों के लिये तथा मानवजाति के ज्ञानसम्वर्धन के लिये करना अत्यावश्यक है।

विद्वानों और वैज्ञानिकों से निवेदन

२०— भुगोल और खगोल की वास्तविक स्थिति को नहीं जानने वाले अमरीका आदि के आधुनिक अन्तरिक्षयात्री वैज्ञानिकों द्वारा ब्रह्माण्डगोलीय गणित के विरुद्ध की गई चन्द्रादिग्रहलोकों की यात्राओं का खण्डन मैंने ब्रह्माण्डगोलीयगणित के सिद्धान्तानुसारेण ही किया है, माननीय विद्वानों से और माननीय वैज्ञानिकों से मेरा नम्र निवेदन है कि - नीर - क्षीर - विवेकिनीं - निष्पक्ष - मध्यस्थ बुद्धि से वास्तविकतथ्यों को स्वीकार करने का प्रयत्न करेंगे।

[इति एकादशाध्यायः]

—:X:—

द्वादशाध्यायः

आर्षवर्षा - वायुविज्ञान - पोषक - ज्यौतिष - पुराण- विरोधाभास - परिहारबोधक - द्वादशाध्यायः

द्वादशाध्यायस्य प्रयोजनमत्र स्वरचितपद्येषु लिखामि

ज्ञानार्णवपुराणानां त्रिस्कन्धज्यौतिषस्य च ।
सम्यग्ज्ञानमकृत्वैव केचिञ्जल्पन्ति भ्रान्तितः ॥१॥
पुराणे यन्मितं मानं कीर्तितं योजनात्मकम् ।
ज्यौतिषे तन्मितं नैव भूगोलस्य प्रकीर्तितम् ॥२॥
पुराणे यः क्रमः प्रोक्तो गगने ग्रहसंस्थितौ ।
ज्यौतिषे न तथा प्रोक्तः क्रमः खेजरसंस्थितौ ॥३॥
ज्यौतिषपुराणयोस्तु विरोधीऽतो महान् स्थितः ।
पौराणिकं मतं सत्यमथवा ज्यौतिषं मतम्? ॥४॥
एवं कुर्वन्ति साक्षेपं कटाक्षं मुनिनिर्णये ।
सुवर्षावायुविज्ञाने चार्षे पौराणिके तथा ॥५॥
साक्षेपस्य कटाक्षस्य विरोधस्य निवारणम् ।
अध्यायेऽस्मिन् करिष्यामि ज्ञानिनां विदुषां मुदे ॥६॥
अविरोधे विरोधस्तु यत्र क्वापि प्रतीयते ।
विरोधस्तत्र नैवास्ति - विरोधाभास एव हि ॥७॥
ज्यौतिषपुराणयोस्तु विरोधो नास्ति कुत्रचित् ।
यत्र तत्र तयोरस्ति विरोधाभाससंस्थितिः ॥८॥
विरोधाभासकस्यास्य परिहारं सुनिश्चितम् ।
अध्यायेऽस्मिन् करिष्यामि ज्ञानिनां मोददायकम् ॥९॥
विलोकयन्तु हे विज्ञाः ! परिहारं मयोदितम् ।
नीर - क्षीर - विवेकिन्या धिया नम्रो निवेदये ॥१०॥

ज्यौतिष - पुराण- विरोधाभास - परिहाराध्यायप्रसङ्गे "पुराण" शब्दस्य - व्युत्पत्तिम् - अर्थं - च - अत्र - करोमि

अमरकोषस्य तृतीये काण्डे - अव्ययवर्गे "२५३" प्रतिते श्लोके 'स्यात्प्रबन्धे-चिरातीते निकटागामिके पुरा" "पुरा पुराणे निकटे प्रबन्धातीतभाविषु" इति मेदिनी-कोषे - च "पुरा" अव्ययस्यार्थः - कृतः ।

भूतभविष्यार्थबोधकः "पुरा" अव्ययो वर्तते ।

अथवा—

"पुर - अग्रगमने" इति - तुदादिगणपठितपरस्मैपदधातोः पुरति = अग्रेगच्छतीति विग्रहे - बाहुलकात् - "का" प्रत्ययेकृतेऽनुबन्धलोपे हल्वर्णसंयोगे सति "पुरा" शब्दः सिद्ध्यति, इति महामहोपाध्याय श्री भट्टोजिदीक्षितात्मज- विद्वद्वर- श्रीभानुजिदीक्षितकृतायां "व्याख्यासुधा"= रामाश्रमी व्याख्यायाम् अमरकोषेऽपि पुराशब्दस्य सिद्धिः उपलभ्यते ।

अथवा—

पुरतीतिविग्रहे "क" प्रत्यये "टाप्" प्रत्यये च कृते "पुर् + क + टाप्" अनुबन्धलोपे "पुर् + अ + आ" इति स्थितौ हल्वर्णसंयोगे "पुर + आ"इत्यत्र अकः सवर्णे दीर्घः इति दीर्घे कृते "पुरा" शब्दः सिद्ध्यति ।

पुराभवः अथवा पुरा भवम् - इति विग्रहे "सायं चिरं प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च - ४ । ३ । २३" इति सिद्धान्तकौमुद्यां शैषिकप्रकरणस्थ-पाणिनि-सूत्रेण- "ट्यु" प्रत्ययेऽनुवन्धलोपे "पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः - समानाधिकरणेन - २ । १ ४९" इत्यस्मिन् सिद्धान्तकौमुदी- तत्पुरुषसमासप्रकरणस्थे सूत्रे तथा च "पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मण- कल्पेषु - ४ । १०५" इत्यस्मिन् शैषिकसूत्रे "पुराण" शब्दप्रयोगात् - निपातनात् "तुट्" प्रत्ययस्य अभावात् "पुरा + यु" इति स्थितौ सत्याम् "युवोरनाकौ" इति सूत्रेण "यु" इत्यस्य स्थाने - अनादेशे कृते "पुरा + अन्" इति स्थितौ दीर्घे णत्वे च कृते "पुराण" शब्दः सिद्ध्यति ।

अथवा—

पुरापूर्वकात् "अण् शब्दे" इति सिद्धान्तकौमुद्यां भ्वादिगणपठित-परस्मैपदस्य - सेट् धातोः पुरा = अर्थात् अतीतानागतौ - अर्थौ - अणति - इति विग्रहे - पचादिराकृतिगणत्वात् "नन्दिग्रहिपचादिभ्योल्युणिन्यचः" इति सूत्रेण 'अच्' प्रत्यये कृतेऽनुबन्धलोपे हल्वर्णसंयोगे पुरा + अण, इति स्थितौ - दीर्घे कृते- सति "पुराण" शब्दः निष्पन्नो भवति, नपुंसकत्वविवक्षायां तु "पुराणम्" इति रूपं सिद्ध्यतीति ।

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
भूम्यादेश्चैव संस्थानं पुराणं पञ्चलक्षणम्" ॥

उक्तपद्यस्य "तृतीयपादे" भूम्यादेश्चैव "इत्यस्य स्थाने" वंशानुचरितं चैव इति पाठान्तरं क्वचित् - उपलभ्यते । उक्तकथनन्य - अयं भावः—
व्यासादिमुनिप्रणीत - वेदार्थवर्णित-पञ्चलक्षणान्वितशास्त्रं" श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, वायुपुराणम्, विष्णुपुराणम्, मत्स्यपुराणादिकं च "पुराण" शब्देन व्यवह्रियते ।

अथवा—

भ्वादिगणपठितात् उभयपदस्थात् "णीञ् - प्रापणे" इत्यस्माद्धातोः-पुरा नीयते इति विग्रहे 'ड' प्रत्यये कृते "पुरा + नी + ड" इति स्थितौ अनुबन्धलोपे-ईकार लोपे णत्वे च कृते - हल्वर्णसंयोगे सति "पुराण" शब्दः सिद्ध्यति ।

अथवा—

पुरापि नवमिति विग्रहे "पुरा + नव" इति स्थितौ "पुराणप्रोक्तेषु- ब्राह्मणकल्पेषु " इतिपाणिनमुनिसूत्रे "पुराण" शब्दप्रयोगात् - अत्र निपातनात् वकारलोपे" णत्वे च कृते नपुंसकत्वविवक्षायां पुराणम् इति सिद्ध्यति ।

"पुराणविषये" तु वक्ष्यमाणं - इदं वैशिष्ट्यं विज्ञेयं विज्ञैः......

यथा हि साम्प्रतम् - भारतवर्षे - रूस - अमरीका - ब्रिटेन प्रभृतिषु राष्ट्रेषु "पुरातत्वविभागाः" प्रचलन्ति, पुरातत्वविभागस्थाः मानवाः - पुरातन - पदार्थानां- पुरातनतत्वानाम् च - अन्वेषणं विधाय, तेन अन्वेषणेन च यस्य ज्ञानस्य - उपलब्धि कुर्वन्ति, तस्य ज्ञानस्य प्रकाशनमपि शोधनिबन्धग्रन्थेषु कुर्वन्ति, तथैव प्राचीनसमयेऽपि- चक्रवर्तिनृपाणां शासनकाले - शासनपद्धतौ - "पुरातत्वविभागाः" प्रचलन्तिस्म, तेषु "पुरातत्वविभागेषु त्रिकालतत्वज्ञाः" अर्थात् "भूत - भविष्य - वर्तमान कालेषु" - येषां तत्वानां सत्तायाः अस्तित्वं भवतिस्म, तेषां तत्वानां ज्ञातारः योगविद्यायाम्-पारङ्गताः- ऋषयः - एव स्वतन्त्ररूपेण - अनुसन्धानकार्यं कुर्वन्तिस्म ।

प्राचीनसमये पुरातत्वविभागेषु कार्यं कुर्वद्भिः योगविद्यायां पारङ्गतैः त्रिकाल- दर्शिभिः ऋषिभि - भूतकाले समुत्पन्नानाम् द्रव्य - गुण-कर्म - सामान्य विशेष समवाय, अभावसंज्ञकानां सप्तपदार्थानां विषये , एवं च पृथिवी - जल - तेजः वायु - आकाश - काल - दिशा - आत्मा - मनः इति संज्ञकानाम् - नव द्रव्याणां विषये, तथा च द्रव्या - न्तर्गतानां - पर्वत - नद- - नदी - समुद्र - सूर्य - चन्द्रादि नवग्रहाणां विषये नृपादीनां च विषये योगबलेन अनुसन्धानं = "शोधकार्य" विधाय, यद्ज्ञानमुपार्जितं तद्ज्ञानं स्वस्वशोधनिबन्ध- ग्रन्थेषु निबद्धम् - ऋषिभिः ।

एवं भविष्यकालेऽपि-सप्तपदार्थेषु नवद्रव्येषु च यत्किमपि वैशिष्ट्यं भविष्यति यद्वा न भविष्यति, भूतले कदा कस्मिन् समये कीदृशाः किन्नामधेयाश्च - भूपतयो भविष्यन्ति, इत्यादिभविष्यविषयेऽपि योगबलेन यद् विज्ञानमुपार्जितं तद्विज्ञानस्यापि समुल्लेखः - स्वस्वशोधनिबन्धग्रन्थेषु अनेकशः - कृतः शोधकार्यतत्परैः-ऋषिभिः ।

ब्रह्माण्डान्तर्गतचतुर्दशलोकेषु भूतकाल - भविष्यकालयोः यस्मिन्काले यादृशी विशेषघटनाघटिता घटिष्यति वा , सप्तपदार्थेषु - नवद्रव्येषु च भूतकाले कदा कस्मिन् समये - किमपि वैशिष्ट्यं भूतं यद्वा न भूतम्, भविष्यकाले च कदा कस्मिन् समये किमपि वैशिष्ट्यं भविष्यति अथवा न भविष्यति, इत्थं भूत-भविष्यकाल-सर्वविधघटना- वर्णनं - स्व - स्वशोधनिबन्धग्रन्थेषु कृतं ऋषिभिः ।

निबन्ध - प्रबन्ध - शब्दौ परस्परं पर्यायवाचकौ स्तः, यतोहि - ऋषिप्रणीतेषु- शोधनिबन्धग्रन्थेषु - भूतकाले समुत्पन्नानां सत्व - रजस्तमोगुणमयानां सप्तपदार्थ - नवद्रव्याणां तदन्तर्गतानां - ग्रह - नक्षत्र - राशि - भूगोल-पर्वत-नद - नदी-समुद्राणां,- जरायुजानाम्, स्वेदजानाम्, अण्डजानाम्, उद्भिजानाम्, सर्वविधवृक्षाणां - लता-गुल्मा- दिजातिपदार्थानाम् - एषां चतुर्विध - सृष्टि - जीवानां - देवानां - ऋषीणां - पितृणाम्, अन्तरिक्षाकाशादीनां तथा सर्वविधभूतकालिकानां घटनानां भविष्यकालिकानां च

घटनानां वर्णनं पुराणेषु कृतं - ऋषिभिः ।

अतएव - "पुरा - पुराणे निकटे प्रबन्धातीतभाविषु" इत्युक्तेः - भूत- भविष्य- कालयोः सप्तपदार्थं - नवद्रव्यसर्वविध- घटनाक्रम- बोधकं - विज्ञानयुक्तशोध- निबन्ध- द्योतकं "पुरा" शब्दं स्वीकृत्य, पुराभवम् - इति विग्रहेण सिद्धम् "पुराणम्" इति नामकरणं स्वशोधनिबन्धग्रन्थानां कृतं तत्वदर्शिभिः ऋषिभिः ।

वर्तमानसमये कराले कलिकाले ये केचन महानुभावाः पुराणस्थं प्रत्यक्षसिद्धं विज्ञानम् अज्ञात्वैव - पुराणोपरि आक्षेपं कटुकटाक्षं च कुर्वन्ति, ते मूढास्तु भ्रान्ता एवेति निष्पक्षया मध्यस्थया धिया विवेचनीयं विज्ञैः ।

ऋषीणां योगिनां च पार्श्वे सिद्धयो भवन्तीति प्रतिपादनमत्र करोमि

श्रीमद्भागवते - महापुराणे श्रीशुकदेवमुनिना सिद्धीनां विषये निम्नाङ्कितः उपदेशः कृतः.........

सिद्धयोऽष्टादशप्रोक्ता धारणायोगपारगैः ।
तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुणहेतवः ॥३॥
अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः ।
प्राकाम्यं श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ॥४॥
गुणेष्वसङ्गो वशिता यत्कामस्तदवस्यति ।
एता मे सिद्धयः सौम्य! अष्टौ चौत्पत्तिका मताः ॥५॥
अनूर्मिमत्वं देहेऽस्मिन् दूरश्रवणदर्शनम् ।
मनोजवः कामरूपं परकायप्रवेशनम् ॥६॥
स्वच्छन्दमृत्यु देवानां सहक्रीडानुदर्शनम् ।
यथासकल्पसंसिद्धिराज्ञाप्रतिहता गतिः ॥७॥
त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं परचित्ताद्यभिज्ञता ।
अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टम्भोऽपराजयः ॥८॥

उक्तवचनानामयं भावः ......

(१) अणिमा (२) महिमा (३) लघिमा (४) प्राप्तिः(५) प्राकाम्यं (६)ईशिता (७) वशिता (८) कामावसायिता, उक्ताः-अष्टसिद्धयः परमेश्वरस्य पार्श्वे तु स्वभावतः एव भवन्ति, यस्मै भगवान् ईश्वरः ददाति, तस्मै-अंशतः अष्टौ सिद्धयः प्राप्ताः भवन्ति ।

निम्नाङ्किताः पञ्चदश "१५" सिद्ध्यस्तु - ऋषीणां योगिनां पार्श्वे सर्वतो भावेन भवन्त्येव......

१— अनूर्मिमत्वम्=शरीरे क्षुधापिपासादिवेगानामभावः ।

२— दूरदर्शनम्=सुबहुदूरस्थितानां सर्वविधवस्तूनां दर्शनम् ।

३ — दूरश्रवणम्=सुबहुदूरस्थितानां सर्वविधवार्तानां श्रवणम् ।

४— मनोजवः=येन वेगेन मनः - इन्द्रियं यत्स्थानं गच्छति=प्राप्नोति तेनैव वेगेन मनसा सहैव योगी - ऋषिः - सशरीरः तत्स्थानं गच्छति - प्राप्नोतीत्यर्थः ।

५— कामरूपम्=यादृशं स्वरूपं - इच्छति, तादृशमेव स्वरूपं योगबलेन -

आदधाति=गृह्णातीत्यर्थः ।

६— परकाप्रवेशनम्=अन्यशरीरेषु प्रवेशनम् ।

७— स्वच्छन्दमृत्युः=यदा - इच्छति तदैव शरीरं विजहाति ।

८— देवक्रीडानुदर्शनम्=देवाङ्गनाप्रभृतिभिःसह देवाः क्रीडन्ति, तां क्रीडां योगी - ऋषिः - द्रष्टुं समर्थः भवति ।

९— संकल्पसिद्धिः=ऋषिः यस्य कार्यस्य विधातुं यथा सङ्कल्पं करोति, तथैव तस्य कार्यस्य पूर्तिं करोति, एतादृशं सामर्थ्यं - ऋषिषु भवति ।

१०— अप्रतिहता - आज्ञा=यस्मै आज्ञां ददाति योगी - ऋषिः - सः-सर्वतोभावेन आज्ञापालनं करोति, अर्थात् - कुत्रापि - आज्ञायाः - अवहेलना न भवति ।

११— त्रिकालज्ञत्वम्=भूत - भविष्य - वर्तमानकालेषु याः घटनाः - भूताः याश्च - भविष्यन्ति, याश्च वर्तन्ते, ताः घटनाः जानन्ति - ऋषयो योगिनः ।

१२— अद्वन्द्वम्=सुख-दुःख, इच्छाद्वेष, शीतोष्ण, प्रभृतिभिः - द्वन्द्वैः - रहितो भवति योगी ।

१३— परचित्ताद्यभिज्ञता=अन्यमनसि - स्थिताभिलषितज्ञानं कर्तुं अपि समर्थः भवति योगी ।

१४— प्रतिष्टम्भः = अग्न्यर्काम्बुविषादीनां शक्तेः निरस्तकरणाय समर्थः भवति योगी ।

१५— अपराजयः = केनापि - अपराभवत्वम् = सर्वत्रविजयप्राप्तिशीलः भवति योगी ।

उपर्युक्ताः पञ्चदशसिद्धयस्तु स्वभावतः एव - ऋषीणां योगिनां च पार्श्वे सततं विराजन्ते इति - भावः ।

पूर्वोक्त - लक्षण-लक्षितैः योगनिष्ठैः-ऋषिभिः एव - पुराणानि विनिर्मितानि ।

ज्यौतिषपुराणयोः परस्परं विरोधाभासस्य परिहारक्रममत्र लिखामि

अस्मिन् विषये - सूर्यसिद्धान्तस्य-ग्रहयुत्यधिकारोक्तां युद्धसमागमादि - लक्षण-व्यवस्थामत्र विलिखामि......

उल्लेखं तारकास्पर्शाद् भेदे भेदः प्रकीर्त्यते ।
युद्धमंशुविमर्दाख्यमंशुयोगे परस्परम् ॥१८॥
अंशादूनेऽपसव्याख्यं युद्धमेकोऽत्र चेदणुः ।
समागमोऽंशादधिके भवतश्चेद् बलान्वितौ ॥१९॥
अपसव्ये जितो युद्धे पिहितोऽणुरदीप्तिमान् ।
रूक्षो विवर्णो विध्वस्तो विजितो दक्षिणाश्रितः ॥२०॥
उदक्स्थो दीप्तिमान् स्थूलो जयी याम्येऽपि यो बली ॥२१॥
आसन्नावप्युभौ दीप्तौ भवतश्चेद् समागमः ।
स्वल्पौ द्वावपि विध्वस्तौ भवेतां कूटविग्रहौ ॥२॥
उदक्स्थो दक्षिणस्थो वा भार्गवः प्रायशो जयी ।
शशाङ्केनैवमेतेषां कुर्यात् संयोगसाधनम् ॥२३॥

उपर्युक्तपद्यानां - अयं भावः...... आकाशमण्डले - परस्परं सुदूरवर्तिषु - विभिन्नकक्षामण्डलेषु-संस्थितेषु-अपि - ग्रहेषु - परस्परं-उल्लेख-भेद- युद्ध समागमादयः भवन्ति, इति व्यवस्था समुक्ता - सूर्यांशपुरुषेण ।

आकाशस्थानां ग्रहाणां ग्रहयोः वा समागमे संजाते सति भूगोलस्थानां भूपालानां तथान्येषां प्राणिनां अपि परस्परं प्रीतिः समुत्पद्यते, आकाशमण्डले ग्रहाणां ग्रहयोः वा परस्परं युद्धे संजाते सति-भूगोलस्थानां राज्ञां तथान्येषां च मानवानामपि परस्परं युद्धं संजायते, आकाशे यस्यां दिशि - ग्रहः - विजयी भवति, तस्यां दिशि स्थितस्यैव नृपस्य विजयो भवति, यस्यां दिशि स्थितस्य ग्रहस्य पराजयो भवति, तस्यां दिशि स्थितस्य - युद्धरतस्य नृपस्य अपि पराजयः भवति ।

आकाशे ग्रहाणां ग्रहयोः वा परस्परं समागमे सति भूगोलस्थानां जीवानां अपि परस्परं स्नेहो वर्धते, आकाशमण्डले ग्रहविग्रहे सति भूगोले - अपि - प्राणिनां दरस्परं युद्धमेव संजायते ।

आकाशस्थग्रहाणां रश्मयो भूगोले भूगोलस्थानां जीवानां च - उपरि निपतन्ति, ग्रहाणां ते रश्मयः-यदि शुभा श्चेत्तर्हि भूगोलेऽपि शुभं फलं प्रयच्छन्ति, अशुभाश्चेत्तर्हि - भूगोले - अपि अशुभमेव फलं प्रयच्छन्ति ।

आकर्षणशक्तियुक्तास्ते ग्रहरश्मयः-भूगोले यदा यादृशाः निपतन्ति,तदा रश्मिभिः समाकर्षिता मानवादीनां स्वभादयोऽपि तादृशाः एव समुत्पद्यन्ते-इति सारांशः ।

अत्रायं प्रश्नः समुदेति... आकाशे परस्परं सुबहुदूरस्थितासु - स्वस्वकक्षासु स्वस्वगत्या पृथक् पृथक् -भ्रमन्तः ग्रहाः परस्परं कया रीतया युध्यन्ते, कथं च तेषां समागमो जायते , कथं च भेदः समुत्पद्यते , केन प्रकारेण च तेषां उल्लेखप्रभृतयो जायन्ते ।

उपर्युक्तप्रश्नानां सुसमाधानं तु अस्मिन् एव ग्रहयुत्यधिकारे चतुर्विंशे श्लोके सूर्यांशपुरुषेण वक्ष्यमाणप्रकारेण कृतमुपलभ्यते ।

सूर्यांशपुरुषः कथयतिः......

"भावाभावाय लोकानां कल्पनेयं प्रदर्शिता ।
स्वमार्गगाः प्रयान्त्येते दूरमन्योऽन्यमास्थिताः" ॥२४"

उक्तपद्यस्य-अयं भावः...... मया सूर्यांशपुरुषेण लोकानां-अर्थात् - भूगोलस्थ-नृपतीनाँ पुरुषस्त्रीप्रभृतिप्राणिनां भावाभावाय - अर्थात् शुभाशुभफल- ज्ञानाय - इयं - पूर्वोक्त - रीत्या - उल्लेख - युद्ध - समागम - ग्रहयुति - प्रभृतीनां कल्पना प्रदर्शिता , प्रकर्षेण दर्शिता इत्यर्थः ।

वस्तुतस्तु एते ग्रहाः स्वस्वकक्षासु स्थिताः स्वमार्गगाः=स्वस्वमार्गे एव- विचरणशीलाः , अन्योऽन्यम्= परस्परम्, दूरमाश्रिताः = दूरान्तरिताः - सन्तः - प्रयान्ति प्रगच्छन्ति - आकाशमण्डले, अर्थात् एषां ग्रहाणां युतिसमयेऽपि बिम्बयोगो न भवति, केवलं दर्शने - एव - पूर्वपरयोः - अन्तरयोः - अभावः - प्रतीयते, एवं च दक्षिणोत्तरान्तराभावोऽपि प्रतीयते, ऊर्ध्वाधरान्तरं तु विभिन्नकक्षास्थत्वात् सर्वदा भवत्येव ।

वस्तुतस्तु - आकाशमण्डले ग्रहाणां यत्र वास्तविकं स्थानं विद्यते, यत्र च स्व-स्ववास्तविकेषु स्थानेषु ग्रहाः सततं परिभ्रमन्ति, तत्र स्थानेषु तु - ग्रहाणां दर्शनं यन्त्रादिसाधनैः - अपि मानवदृष्ट्या न भवति, मानवास्तु - केवलं दृश्यगोले - एव ग्रहाणां बिम्बानि प्रतिबिम्बानि - च तेजोमयानि मण्डलाकृतिस्वरूपाणि विलोकितुं समर्थाः भवन्ति।

वस्तुतः - परस्परं - अतिदूरान्तरिताः - ग्रहाः - परस्परं - अमिलिताः अपि-मिलिता इव दृश्यन्ते।

चन्द्रकक्षायामेव ग्रहाः - दृश्यन्ते

उपर्युक्तपक्षस्यैव पुष्टिः शाकल्यसंहितास्थवाक्येनापि जायते, वैज्ञानिक-वरिष्ठः शाकल्यः - ऋषिः - लिखति—

"अन्तरुहृन्नतवृक्षाश्च वनप्रान्ते स्थिता इव।
दूरत्वाच्चन्द्र - कक्षायां दृश्यन्ते सकला ग्रहाः॥"

उक्तपद्यस्य - अयं भावः— आकाशमण्डले यत्र यत्र ग्रहाः स्वस्व- वास्तविक-स्थानेषु स्वगत्या विचरन्ति, ऊर्ध्वस्थितेभ्यः तेभ्यो ग्रहस्थानेभ्यः- ग्रहाणां प्रतिबिम्बानि-अधः प्रदेशे "अधः - आकाशमार्गे" भूगोलदिशि निपतन्ति।

सर्वग्रहेषु चन्द्रो ग्रहः - अतिशीघ्रगतिशीलोऽस्ति , अतः- तस्य चन्द्रग्रहस्य प्रति-बिम्बं - अपि - स्ववास्तविकात् स्थानात् - अधः आकाशे - भूगोलदिशि निपतति, तस्य चन्द्रग्रहस्य प्रतिबिम्बं दृश्यगोले यत्र दृश्यते, तत्रैव अन्यानि- अपि ग्रहबिम्बानि- मानव-दृष्ट्या दर्शनार्हाणि - अर्थात् - दर्शनयोग्यानि जायन्ते, स्ववास्तविकात् स्थानात् अधोभागे आगत्य - यत्राकाशे "दृश्यगोले" चन्द्रबिम्बं परिभ्रमति, तत्रैव दृश्यगोले चन्द्रकक्षा - दृश्यव्यवहाराय - एव स्वीकृता- व्यवहारशीलैः विज्ञैः मुनिभिः, तत्रैव चन्द्र-कक्षायां अथवा - यत्र कुत्रापि दृश्यलोके - समापतितानि सर्वग्रहबिम्बानि - परिभ्रमन्ति स्वस्वगत्या, तत्रैव च तेषां ग्रहबिम्बानां दर्शनं भवति, अतएव तानि ग्रहबिम्बानि चन्द्रकक्षायां=दृश्यगोले वा परिणतानि परिवर्तितानि वा इति व्यवह्रियन्ते।

अत्रायं विशेषः—

हिमालयतो दक्षिणस्यां दिशि - मृत्युलोकसंज्ञके भारतवर्षे - एव-ग्रहजन्यं - शुभाशुभं फलं भवति, नान्यत्र देशेषु

ग्रहजन्यशुभाशुभफलस्य चरितार्थता तु केवलं मानवादिप्राणिषु एव- भवति, न तु देवयोनिषु - समुत्पन्नेषु देवादिषु।

मानवादिसृष्टिस्तु— जम्बूद्विपस्य - नवमो यो भागः- जम्बूद्वीपस्य- दक्षिणस्यां दिशि स्थितः - तस्मिन् - एव- भारतवर्षभागे समुत्पद्यते, नतु- अन्यस्मिन् कस्मिन् अपि प्रविभागे - मानवादिसृष्ट्युत्पत्तिः भवति।

सूर्यसिद्धान्तादिग्रन्थेषु - आकाशस्थग्रहाणां यत्प्रतिपादनं कृतं - यच्च-शुभाशुभं फलं समुक्तं- तत्तु केवलं दक्षिणोत्तरेण दशसहस्रयोजनात्मके "१४५४५४ किलोमीटराः

६०० गजाः" प्रमिते प्रदेशे अर्थात् भारतवर्षे समुत्पन्नानां मानवादिप्राणिनां हेतवे एव-
अस्ति, नान्येषां हेतवे ।

आकाशे ग्रहाणां स्थितिक्रमविषये विरोधाभासस्य परिहारं करोमि

आकाशे ग्रहनक्षत्रादीनां स्थितिक्रमविषये पुराणग्रन्थैः सह ज्योतिषग्रन्थानां यः-
विरोधाभासः प्रतीयते, तस्य विरोधाभासस्य परिहारमत्र करोमि—

१— आकर्षणशक्तियुक्तस्य पदार्थस्य अन्यस्थानापेक्षातः- "केन्द्रे" आकर्षण-
शक्तेः- आधिक्यं भवतीति विदन्त्येव वैज्ञानिकाः, जम्बूद्वीपस्तु समस्तभूमण्डलस्य ब्रह्मा-
ण्डस्य च केन्द्रे तिष्ठति, अत एव - आकर्षणशक्तेः - आधिक्यं वर्तते जम्बूद्वीपे स्थाना-
न्तरापेक्षातः, एकलक्षयोजन "१००००० योजन" प्रमितस्य जम्बूद्वीपस्यापि मध्ये
केन्द्रस्थानभूतः षोडशसहस्र "१६०००" योजनविस्तारयुक्तः वृत्ताकारः सुमेरुः पर्वतः
आस्ते ।

२— आकाशे ग्रहगतिविशलक्षणत्वात् - जम्बूद्वीपकेन्द्रे समाकृष्टानां ग्रहनक्षत्रा-
दिविम्बानां स्थितिक्रकस्तु चन्द्रकक्षायां = दृश्यगोले क्रमशः - चन्द्रः वुधः शुक्रः, सूर्यः -
भौमः - गुरुः - शनिः नक्षत्राणि च, इत्येतादृशः समुक्तः - दरीदृश्यते सूर्यसिद्धान्तादिषु-
ज्यौतिषग्रन्थेषु ।

३— योगविद्यायां निष्णातैः योगवलेन प्रत्यक्षदर्शिभिः - ऋषिभिः- आकाश-
मण्डले - ग्रहाणां - स्थितौ - उच्छ्रितौ च यः वास्तविकः क्रमः - दृष्टः स एव क्रमः
पुराणग्रन्थेषु प्रतिपादितः तैः - मुमिभिः ।

अत एव पुराणग्रन्थेषु - सर्वत्र - सूर्यः - चन्द्रः - नक्षत्राणि वुधः - शुक्रः- भौमः-
गुरुः- शनिः इत्येतादृशः क्रमः- वास्तविकस्थितिवोधकः दरीदृश्यते ।

४—आकर्षणशक्तियुक्तेन जम्बूद्वीपकेन्द्रेण समाकृष्टः अयमेव वास्तविकः क्रमः-
ग्रहगतिविलक्षणत्वात् आकाशे दृश्यगोले = चन्द्रकक्षायाम् . चन्द्रः - वुधः - शुक्रः -
सूर्यः - भौमः - गुरुः - शनिः नक्षत्राणि च इत्येतादृशः - परिवर्तितः अथवा परिणतः
दृश्यते, अत एव ज्योतिषग्रन्थेषु सर्वत्र दृश्यगोलगतः एव क्रमः वर्णितः दरीदृश्यते ।

ग्रहगति - क्रमानुसारेण - दृश्यगोले - ग्रहस्थिति - विवेचनमत्र करोमि

५— भूगोलतः - ऊर्ध्वं - क्रमशः - सूर्य - चन्द्र - नक्षत्र - वुध- शुक्र - भौम-
गुरु - शनीनां स्थितिं विधाय, ग्रहसृष्टिरचनावसरे ईश्वरेण - सर्वेषां ग्रहाणां मध्ये
"चन्द्रे" शीघ्रगतित्वं निहितम्. ततः- क्रमशः - वुध- शुक्र- सूर्य- भौम - गुरु- शनिग्रहेषु
उत्तररोत्तरं गतिन्यूनत्वं निहितम्, नक्षत्रेपु तु गतिशून्यत्वं प्रतिपादितं भगवता, ग्रहाणां
बिम्बानि प्रतिबिम्बानि च आकर्षणशक्त्या भूगोले निपतन्ति, तैरेव - विम्वनिपातैः
शुभाशुभं फलं जायते भूगोले, इति स्वीकुर्वन्त्येव सर्वेऽपि वैज्ञानिकाः तथान्ये च विचार-
शीलाः जनाः ।

६— आकर्षण - शक्तियुक्त - भूमण्डल - केन्द्रस्थितेन विशिष्टाकर्षणशक्ति-
युक्तेन - जम्बूद्वीपकेन्द्रभूभागेन - समाकृष्टानि - ग्रहाणां बिम्बानि - प्रतिबिम्बानि च-

आकाशमण्डले चन्द्रकक्षायाम् = दृश्यगोले दृष्टानि भवन्ति, तत्रैव च दृश्यगोले सञ्च-रन्ति - ग्रहविम्बप्रतिविम्बानि ।

७—ईश्वरेण - यस्य - ग्रहस्य - गतौ सर्वग्रहगतितो आधिक्यं निहितम्, तस्यैव ग्रहस्य विम्बं अथवा प्रतिबिम्बं भूकेन्द्राकर्षणशक्त्या शीघ्रातिशीघ्रं समाकृष्टं सत् - जम्बूद्वीपकेन्द्रे स्थितस्य सुमेरुपर्वतस्य परिक्रमाम् दृश्यगोलतः स्वस्थितिवशेन एव - करोति, दृश्यगोले शीघ्रगतिग्रहविम्बस्य - सुमेरुपरिक्रमापरिधिः स्वल्पः भवति- मन्द-गतिग्रहविम्बस्य परिधितः ।

८— तदनन्तरं क्रमशः - ग्रहाणां गत्यनुसारेण अन्यान्यपि - ग्रहविम्बानि - प्रतिविम्बानि च दृश्यगोले भूकेन्द्राकर्षणशक्त्या समाकृष्टानि भूत्वा, स्व- स्व-ग्रहगत्यनु-सारेण दृश्यगोलतः एव सुमेरुं परिक्रमन्ति, ग्रहाणां परिभ्रमणपरिधिषु - ग्रहगतिन्यूना-धिक्यानुसारेणैव - न्यूनाधिकत्वं जायते, यस्य ग्रहस्य मन्दगतिः भवति, तस्य प्रति-विम्बपरिभ्रमणपरिधिः अधिकः भवति, यस्य ग्रहस्य शीघ्रगतिः भवति, तस्य प्रतिविम्ब-परिभ्रमणपरिधिः न्यूनः भवति ।

९— खगोले स्वस्वगत्यनुसारेण भिन्न - भिन्न मार्गेषु - परिधिरूपेषु परिभ्र-मन्तो ग्रहाः "दृश्यगोलरूपायां - चन्द्रकक्षायामेव" - अवलोक्यन्ते - यन्त्रादिसाधनैः - भूस्थैः - मानवादिभिः ।

१०— उपर्युक्तया - वैज्ञानिकव्यवस्थयैव - भूगोलतः ऊर्ध्वं दृश्यगोले = चन्द्रकक्षायाम् क्रमशः—चन्द्र- बुध - शुक्र - सूर्य - भौम गुरु - शनि -ग्रहाणां विम्बानि नक्षत्राणि च दृष्टिगोचराणि भवन्ति, अत एव - ज्यौतिषशास्त्रे - भूगोलतः ऊर्ध्वं खगोले क्रमशः - चन्द्र -बुध - शुक्र - सूर्य - भौम - गुरु - शनि ग्रहाणां नक्षत्राणां च स्थितिः स्वीकृता - तत्र चन्द्रकक्षायां ग्रहविम्बस्वरूपसत्वात् ।

११— नक्षत्रेषु तु गतिः न भवति, अतः नक्षत्राणां स्थितिः - सर्वेषां ग्रहाणां-उपरितने भागे - दृश्यगोले समुक्ता ज्यौतिषशास्त्रे, नक्षत्रेषु गतेः - अभावत्वात् तेषां नक्षत्राणां विम्बानि - ग्रहविम्बेभ्यः - उपरितने प्रदेशे - दृश्यगोले = चन्द्रकक्षायां दृष्टिगोचराणि भवन्ति ।

१२— योगनिष्ठैः प्रत्यक्षदर्शिभिः ऋषिभिः-तु-स्वस्वयोगवलेन आकाशमण्डले ग्रह-नक्षत्रादयः क्रमशः - सूर्यः - चन्द्रः - नक्षत्राणि - बुधः - शुक्रः - भौमः - गुरुः- शनैश्चरः इत्येतादृशक्रमेण वास्तविकस्वरूपेणैव दृष्टाः, न तु प्रतिविम्बरूपेण, अतएव तैस्तु पुराणग्रन्थेषु सूर्यः चन्द्रः नक्षत्राणि बुधः शुक्रः भौमः गुरुः [१] शनैश्चरः, इति क्रमेणैव सूर्यादिग्रहाणां स्थितिः वर्णिता ।

१३— इत्थं उपर्युक्तप्रकारेण पुराणग्रन्थैः सह ज्यौतिषग्रन्थानां कोऽपि विरोधः नास्तीति सिद्ध्यति, उक्तरीत्या पुराण- ज्यौतिष- विरोधाभासस्य अपि सुस्पष्टः परिहारो भवतीति सिद्ध्यति ।

उभयोः - ज्यौतिषग्रन्थपक्ष-पुराणग्रन्थपक्षयोः केवलं एतावानेव भेदोऽस्ति,

सूर्यसिद्धान्तादिज्यौतिषग्रन्थेषु दृश्यगोलस्थ - ग्रहबिम्ब-प्रतिबिम्बस्थिति - रीत्या ग्रहाणां क्रमः समुक्तः ।

पुराणग्रन्थेषु च वास्तविकग्रहस्थानस्थित्या ग्रहस्थितिक्रमः समुक्तः, न तु - प्रतिबिम्बीयो ग्रहस्थितिक्रमः समुक्तः ऋषिभिः ।

उपर्युक्तरीत्या उभयोः ज्योतिषपक्ष - पुराणपक्षयोः - परस्परविरोधाभासस्य निवृत्तिः सुसम्पन्ना भवति ।

सर्वविध - विरोधाभास - परिहारं लिखामि

१४— 'छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद् भवेत् ।
भूछायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ ॥'

इति सूर्यसिद्धान्तस्थवाक्यस्य पुराणोक्त - ग्रहस्थितिक्रमव्यवस्थया सह न कोऽपि विरोधः संपद्यते । एवं च···

"मन्दादधः क्रमेण स्युश्चतुर्था दिवसाधिपाः" ।

इति वाक्यस्यापि न पुराणस्थव्यवस्थया सह कोऽपि विरोधः सिद्ध्यति, तथा च···

"शनि - गुरु - कुज - सूर्याः शुक्रविद् - रोहिणेयाः ।
क्रमश इति नभोगाः संस्थिताः सन्त्यधोऽधः ॥"

मन्दामरेज्य - भूपुत्र - सूर्य - शुक्रेन्दुजेन्दवः ।
परिभ्रमन्त्यधोऽधःस्थाः सिद्धा विद्याधरा घनाः ॥

इत्यादि- ज्यौतिषग्रन्थवाक्येषु प्रतिपादितायाः - व्यवस्थायाः अपि पुराणग्रन्थेषु प्रतिपादित - व्यवस्थया सह न कोऽपि विरोधः समायाति, न च सिद्ध्यति, उपर्युक्त - रीत्या - एकवाक्यतैव - दरीदृश्येते ज्योतिषपुराणयोः सर्वत्र, न कयापि रीत्या विरोधः सिद्ध्यति ।

ग्रहस्थितिप्रसङ्गे रव्यादिवारगणनाक्रममत्र लिखामि

१५—रविः, सोमः, भौमः, बुधः, गुरुः, शुक्रः, शनिः, इत्येतादृशं रव्यादिवार-गणनाक्रमज्ञानं तु ज्ञानयुक्तेषु पुरुषस्त्रीप्रभृतिषु प्रचलितं दरीदृश्यते, न तु ज्ञानरहितेषु-पशुपक्षिप्रभृतिषु वारगणनाक्रमस्य व्यवहारः प्रचलति, ज्ञानिनः एव वारक्रमस्य अस्तित्वं स्वीकुर्वन्ति, न तु अज्ञानिनः पशवः पक्षिणश्च स्वीकुर्वन्ति ।

१६— वारगणनाक्रमव्यवस्थाविषये तु वेदेषु वेदाङ्गेषु च वैज्ञानिकदृष्ट्या सुविवेचनं समुपलभ्यते सर्वत्र, मानवादिप्राणिनां पाञ्चभौतिकशरीरेषु आकाशस्थग्रहाणां येन क्रमेण अस्तित्वं विद्यते, तेनैव क्रमेण ग्रहाणां अस्तित्वद्योतनाय ग्रहोपलक्षिता वार-क्रमगणना व्यवहृता, समावृता च विचारशीलैः मानवप्रभृतिवैज्ञानिकैः ।

"सूर्य आत्मा जगत स्तस्थुषश्च चन्द्रमा मनसो जातः" ॥१॥

इत्यादिवेदवाक्यैः तथा च......

'आत्मा रविः शीतकरस्तु चेतः सत्वं धराजः शशिजोऽथ वाणी ।
ज्ञानं सुखं चेन्द्रगुरु र्मदश्च शुक्रः शनिः कालनरस्य दुःखम् ॥२॥
आत्मादयो गगनगै र्बलिभि र्बलवत्तराः ।
दुर्बलै र्दुर्बला ज्ञेया विपरीतः शनिः स्मृतः ॥३॥

इत्यादिवेदाङ्गवाक्यैश्च वैज्ञानिकदृष्ट्या - मानवादिप्राणिनां शरीरेषु आका-शस्थसूर्येण आत्मा समुत्पद्यते, चन्द्रेण तु मनः इन्द्रियं समुत्पद्यते, ततः भौमेन ग्रहेण सत्वम्='बलम्' उत्पद्यते, ततो बुधेन ग्रहेण वाणी उत्पद्यते, ततः गुरुसंज्ञकेन ग्रहेण ज्ञान-सुखयोः उत्पत्ति र्भवति शरीरेषु, तदनन्तरम् मदस्य='शुक्रस्य=वीर्यस्य' समुत्पत्तिस्तु शुक्रग्रहेण भवति, दुःखस्य उत्पत्तिकारकस्तु शनिः ग्रहो भवति ।

१७—उपर्युक्तप्रकारेण प्राणिनां शरीरेषु आत्मा, मनः सत्वम्, वाणी, ज्ञानं, सुखं, मदः, दुखं च - एतेषां सत्ता क्रमशः सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनैश्चरैः ग्रहैः समुत्पद्यते, मानवप्रभृतिज्ञानिनां प्राणिनां शरीरेषु येन क्रमेण ग्रहाणां सत्ता समुत्पन्ना जाता, तेनैव क्रमेण ग्रहोपलक्षिता वारगणनापि सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, इत्येतादृशरूपा स्वीकृता ज्ञानशीलैः मानवादिप्राणिविशेषैः ।

अतः उपर्युक्तरीत्या सूर्यादिवारगणना क्रमेण सह पुराणोक्तग्रहस्थितिक्रमपक्षस्य सूर्यसिद्धान्तादिज्यौतिषग्रन्थोक्तग्रहस्थितिक्रमपक्षस्य च न कोऽपि विरोधः समुत्पद्यते, यतो हि—चन्द्रकक्षायां तु चन्द्र - बुध - शुक्र-सूर्य-भौम-गुरु-शनि-नक्षत्र- क्रमतः-ग्रहप्रति-बिम्बदर्शनत्वात्, न तु तत्र चन्द्रकक्षायां वास्तविकग्रहदर्शनत्वात् ।

ये केचन महानुभावाः प्रकारान्तरेण वारगणनाक्रमस्य उपपत्तिं यत्र तत्र प्रणिग-दन्ति, तेषां कथनेन सह अपि उपर्युक्तकथनस्य कयापि रीत्या विरोधो न समायाति, यतो हि......'मन्दादधः क्रमेणस्युश्चतुर्थः दिवसाधिपः' इतिवाक्यस्यक्रमः तु चन्द्रकक्षा-स्थानां ग्रहाणां - बिम्बेषु च एव चरितार्थो भवति, अतः निष्पक्षया धिया उपर्युक्तावार-गणनोपपत्तिमपि स्वीकुर्वन्त्येव विज्ञाः विद्वांसः ।

पुराणोक्तग्रहमण्डलेन सह - सूर्यसिद्धान्तोक्तग्रहमण्डलस्य एकवाक्यतामत्र करोमि

१८—नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः ।
मण्डलं त्रिगुणं चास्य विस्ताराद् भास्करस्य तु ।।५७।।
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद् विस्तारः शशिनः स्मृतः ।
त्रिगुणं मण्डलं चास्य वैपुल्याच्छशिनः स्मृतम् ।।५८।।

मत्स्यपुराणे सप्तविंशाधिकशत-'१२७' प्रमिते - अध्याये स्थितयोः उक्ततद्वयोः अयंभावः - नवयोजनसहस्रप्रमितः = '९००० योजनसहस्रप्रमितः' अर्थात् '१३०९०९ किलोमीटराः, १०० गजाश्च' एतत्प्रमितः सूर्यग्रहस्य विष्कम्भः = व्यासः अस्ति गगने, व्यासमानात् - त्रिगुणितप्रमितं = '२७०००' योजनसहस्रप्रमितम्' अर्थात् ३९२७२७ किलोमीटराः, ३०० गजाः, एतत्प्रमितं सूर्यग्रहस्य - मण्डलम् - अर्थात् वृत्ताकारगोल-स्वरूपम् अस्ति - आकाशे ।

आकाशे चन्द्रस्य व्यासः - अर्थात् - विस्तारः सूर्यात् - द्विगुणो विद्यते, व्यासात् अर्थात् - विस्तारमानात् - च त्रिगुणं - मण्डलं - अस्ति ।

उक्तरीत्या—'९००० × २ = १८००० सहस्रयोजन' प्रमितः = '२६१८१८ किलोमीटराः, २०० गजाश्च' एतत्प्रमितः - चन्द्रस्य व्यासः = 'विस्तारः' आकाश-मण्डलेऽस्ति ।

विस्तारात् - त्रिगुणं च मण्डलं विद्यते, उक्तरीत्या सूर्यमण्डलम् = २७००० सहस्रयोजनप्रमितम् = ३९२७२७ किलोमीटरा:, ३०० गजा:' एतत्सूर्यमण्डलमानं द्विगुणितं सत् चन्द्रमण्डलमानं सम्पद्यते , अत:...२७००० × २ = ५४००० सहस्रयोज - नात्मकम् =७८५४५४ किलोमीटरा:, ६०० गजाश्च' एतत्प्रमितं वृत्ताकार - गोलस्व- रूपं - चन्द्रमण्डलं गगने अस्ति ।

पुराणोक्त- सूर्यसिद्धान्तोक्त- ग्रहमण्डलविरोधाभासस्य परिहारमत्र करोमि

१९—सूर्यांशपुरुषेण तु सूर्यसिद्धान्ते चन्द्रग्रहणाधिकारे......

' सार्धानि षट्सहस्राणि योजनानि विवस्वतः ।
विष्कम्भो मण्डलस्येन्दोः सहाशीत्या चतुः शतम् ।।"

इत्यस्मिन् पद्ये - सूर्यमण्डलस्य विष्कम्भः अर्थात् - व्यासः - सार्धषट्सहस्र- योजनप्रमितः = '६५०० योजनप्रमितः' समुक्तः ।

चन्द्रमण्डलस्य व्यासस्तु - अशीत्यधिकचतुःशतयोजनप्रमितः अर्थात् '४८० योजनप्रमितः समुक्तः ।

उक्तरीत्या - सूर्यसिद्धान्तोक्तौ - सूर्यचन्द्रमण्डलव्यासौ - पुराणोक्तव्यासमण्डल मानतो भिन्नौ स्तः, अतः - सूर्यसिद्धान्तपक्ष-पुराणपक्षयोः परस्परं विरोधः समायाति, इति तु माशङ्कनीयम् । यतो हि......

"भावाभावाय लोकानां कल्पनेयं प्रदर्शिता ।
स्वमार्गगाः प्रयान्त्येते दूरमन्योऽन्यमाश्रिताः ।।"

इति ग्रहयुत्यधिकारे वक्ष्यमाणां ग्रहविषये स्वव्यवस्थां समनुसृत्यैव - सूर्यांशपुरु- षेण सूर्यचन्द्रयोः - वास्तविकस्थानात् - अधः प्रदेशे चन्द्रकक्षायां दृश्यगोले आकाशमण्डले स्थितयोः दृश्यमण्डलगयोः सूर्यचन्द्रप्रतिविम्वमण्डलयोः व्यासौ समुक्तौ, न तु - वास्त- विकस्थानस्थितयोः सूर्यचन्द्रयोर्मण्डलमाने समुक्ते तेन सूर्यांशपुरुषेण ।

२०—वस्तुतस्तु - वास्तविकस्थानात् - सुवहुयोजनप्रमिते अधोभागे दृश्यगोले स्थितयोः सूर्यचन्द्रप्रतिबिम्वमण्डलयोः व्यासमानयोस्तु न्यूनत्वं समायात्येव, अतएव सूर्यांशपुरुषेण प्रतिविम्बमण्डलोर्व्यासमाने न्यूनत्वं समुक्तम् , पुराणग्रन्थेषु तु वास्तविक- स्थानस्थितयोः - सूर्यचन्द्रमण्डलयो र्व्यासमाने - अधिकत्वं समुक्तम्, तेन सह न कोऽपि विरोधोऽस्ति सूर्यसिद्धान्तस्य ।

उक्तरीत्या विरोधाभासस्य परिहारो भवति, एकवाक्यता च सिद्ध्यति, सूर्य- चन्द्रग्रहयोः मण्डलयोश्च ।

येकेचन ग्रहयोः मण्डलयोश्च विरोधं प्रणिगदन्ति, ते तु महानुभावाः भ्रान्ताः एव इत्यत्र नास्ति संदेहावसरः ।

वस्तुतस्तु ऋषिभिः पुराणेषु योगवलेन यदुक्तम् तेन सह सूर्यसिद्धान्तस्य अन्येषां च दर्शनग्रन्थानाम् एकवाक्यता सर्वदा समुपद्यते एव ।

आर्षवर्षावायुविज्ञानसाधकानां ग्रहाणां व्यासमण्डलयोः माननिर्णयं करोमि

२१—नेत्र - नवाष्ट - चन्द्र '१८९२' ईसवीयाब्दे - अगस्तमासे - उत्तरप्रदेशीय- 'लखनऊ' नगरस्थात् 'मुन्शीनवलकिशोर - सी. आई. ई. - छापाखाना' नामकप्रेसतः

प्रकाशिते 'मत्स्य पुराणे' सप्त - नेत्र - चन्द्र '१२७' प्रमिते अध्याये सूर्यादिग्रहाणां व्यासस्य मण्डलस्य च मानं समुक्तं मुनिभिः तत् सर्वं अद्यापि 'मत्स्यपुराण' नामक-ग्रन्थे समुपलभ्यते......

"नवयोजन - साहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः ।
मण्डलं त्रिगुणं चास्य विस्ताराद् भास्करस्य तु ॥५७॥
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद् विस्तारः शशिनः स्मृतः ।
त्रिगुणं मण्डलं चास्य वैपुल्याच्छशिनः स्मृतम् ॥५८॥
चन्द्रतः षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते ।
विष्कम्भात् - मण्डलाच्चैव योजनानां तु स स्मृतः ॥६३॥
भार्गवात् पादहीनश्च विज्ञेयो वै बृहस्पतिः ।
बृहस्पतेः पादहीनो केतुवक्रावुभौ स्मृतौ ॥६४॥
विस्तारमण्डलाभ्यां तु पादहीनस्तयो र्बुधः
तारानक्षरूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै ॥६५॥
बुधेन समरूपाणि विस्तारात् - मण्डलात्तु वै ॥६७॥
तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम् ॥६८॥
शतानि - पञ्च - चत्वारि त्रीणि द्वे चैकमेव च ।
योजनार्धप्रमाणानि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते ॥६७॥

विष्कम्भशब्दार्थः......"विष्कम्भो योगयोः स्याद् विस्तारप्रतिबन्धयोः, कपाटाङ्ग - प्रभेदे च" इति मेदिनी कोषोक्तेः, अत्र विष्कम्भशब्दः व्यासबोधकः अथवा, विस्तारबोधकोऽस्तीति सारांशः ।

ग्रहव्यासमण्डलयोः मानं सगणितं लिखामि

२२— सूर्यस्य व्यासः=९००० योजनानि= १३०९०९ किलोमीटराः । १००गजाः
सूर्यस्य मण्डलम्=९००० × ३ =२७०००योजनानि=३९२७२७कि०मी०।३०००ग०
चन्द्रस्यव्यासः=९००० × २ × १८०००योजनानि =२६१८१८कि०मी० ।२००गजाः।
चन्द्रस्यमण्डलम्=२७००० × २=५४०००योजनानि=७८५४५४कि०मी०।६००गजाः
शुक्रस्यव्यासः=११२५ योजनानि=१६३६३ कि०मी० । ७०० गजाः ।
शुक्रस्यमण्डलम्=११२५ × ३ =३३७५योजनानि =४९०९९०कि०मी०।१०००गजाः।
गुरोः व्यासः=८४३ योजनानि । ३क्रोशाः=१२२७२कि०मी० । ८०० गजाः ।
गुरोः मण्डलम्=२५३०योजनानि । १क्रोशः=३६८१८ कि०मी० । २००गजाः ।
केतुभौमयोःव्यासः=६३२योजनानि । ३क्रोशाः+ ५००धनूंषि =९२०४कि०।६००ग०।
केतुभौमयोर्मण्डलम्=१८९८ यो० । १ क्रोशः । १५००धनूंषि =२७६१२कि०७००ग०
बुधस्यव्यासः=४७४ योजनानि । ०क्रोशाः ।३७५ धनूंषि =६९०३कि०।४५०ग० ।
बुधस्य म०=४७४ × ३=१४२२यो० । ०क्रोशः।१११५।धनूंषि=२०७१०किमी०।२०ग०

मत्स्यपुराणात् राहोः स्थितिमत्र लिखामि

२३—तुल्यो भूत्वा तु स्वर्भानुस्तदधस्तात् प्रसर्पति ।
उद्धृत्य पार्थिवीं छायां निर्मितां मण्डलाकृतिम् ॥६०॥
ब्रह्मणा निर्मितं स्थानं तृतीयं तु तमोमयम् ।
आदित्यात् स तु निष्क्रम्य सोमं गच्छति पर्वसु ॥६१॥
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु ।
स्वभासा तुदते यस्मात् स्वर्भानुरिति स स्मृतः ॥६२॥

श्रीविष्णुपुराणे द्वितीये - अंशे - द्वादशप्रमिते - अध्याये राहोः-विषये यद् विवेचनं - तदत्र लिखामि

आदित्यान्निःसृतो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु ।
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु ॥२२॥

वायुपुराणे ज्यौतिषवर्णनाध्याये - सूर्यचन्द्रयो र्व्यासमानम्

अस्य भारतवर्षस्य विषकम्भतुल्य - विस्तरम् ।
मण्डलं भास्करस्याथ योजनानां निबोधत ॥६२॥
नवयोजनसाहस्रो विस्तारो भास्करस्य तु ।
विस्तारात् त्रिगुणश्चास्य परिणाहोऽथ मण्डलम् ॥६३॥
विषकम्भे मण्डले चैव भास्कराद् द्विगुणः शशी ॥६४॥

उपर्युक्तरीत्या सूर्यचन्द्रयोः व्यासो - रामुक्तौ प्रत्यक्षदर्शिभिः ऋषिभिः स्वस्वनिबन्धेषु ।

षष्ठे अध्याये चतुर्दशलोक - स्थितिबोधके चित्रे ग्रहाणां स्थितिबोधकः उच्छ्रितिबोधकश्च यः-क्रमः लिखितः, स एव क्रमः मत्स्यपुराण-वायुपुराण-विष्णुपुराण-श्रीमद्भागवतमहापुराण-प्रभृतिषु पुराणग्रन्थेषु-ग्रहाणां - उच्छ्रितिविषये - स्थितिविषये - च समुक्तः, अतएव सर्वेष्वपि पुराणग्रन्थेषु लोकस्थितिविषये ग्रहोच्छ्रितिविषये च एकवाक्यता सिद्ध्यति ।

२४—कुजार्किज्ञामरेज्यानां त्रिंशदर्धार्धवर्धिताः ।
विष्कम्भाश्चन्द्रकक्षायां भृगोः षष्टिरुदाहृता ॥१३॥
त्रिचतुःकर्णयुत्याप्तास्ते द्विघ्नास्त्रिज्ययोद्धृताः ।
स्फुटाः स्वकर्णास्तिथ्याप्ता भवेयुर्मानलिप्तिकाः ॥१४॥
"अन्तरुन्नतवृक्षाश्च वनप्रान्ते स्थिता इव ।
दूरत्वाच्चन्द्रकक्षायां दृश्यन्ते सकला ग्रहाः ॥"

इति सूर्यसिद्धान्तस्थ ग्रहयुत्यधिकारोक्तेन ग्रहदर्शनसिद्धान्तेन तथा श्रीशाकल्य-मुनिना-उक्तेन ग्रहदर्शन-सिद्धान्तेन च खगोले उपरितेन भागे स्थितानां ग्रहाणां ग्रहगति-शीघ्रमान्द्यवशात् दृश्यगोले चन्द्रकक्षायां एव - चन्द्र - बुध - शुक्र अर्क -भौम - गुरु - शनि - नक्षत्रक्रमेण-ग्रहनक्षत्रप्रतिविम्बदृष्टत्वात् पुराणोक्तव्यवस्थया - सह-ज्यौतिषोक्त-ग्रहक्रम-व्यवस्थायाः न कोऽपि विरोधोऽस्तीति मध्यस्थया धिया विवेचनीयं विज्ञैः ।

२५— ध्रुवाधीनाः सूर्यादयो ग्रहाः वर्षावायुविज्ञानदाः सिद्ध्यन्ति ।

अतएव-अन्वेषणशीलैः तत्वदर्शिभिः योगिभिः - ऋषिभिः-सूर्यादिग्रहाणां ध्रुवादीनां च उच्छ्रितिः - स्वस्वनिबन्धग्रन्थेषु पुराणादिषु निबद्धा ।

आधुनिकैः - वैज्ञानिकैः - ऋषिप्रणीतायाः व्यवस्थायाः - उपरि - ये - आक्षेपाः कृताः ते तु भ्रान्त्यैव विहिताः - इति - निष्पक्षया धिया विवेचनीयं विचारशीलैः शोधशीलैश्च वैज्ञानिकैः ।

अमरीकास्थ - चन्द्रलोकयात्रिणां - वैज्ञानिकानां - मतखण्डनम्

२६— अमरीकादिदेशेषु स्थितैः - अन्तरिक्षयात्राशीलैः - आधुनिकैः वैज्ञानिकैः आकाशमण्डले - चन्द्रस्य उच्छ्रितिः - चतुर्लक्ष = "४०००००" किलोमीटरप्रमितैव भूगोलतः समुक्ता ।

एवं च - भौमादीनां ग्रहाणां उच्छ्रितिमानमपि तैः स्वेच्छयैव समुक्तम् ।

वस्तुतः आधुनिकैः चन्द्रादिग्रहलोकस्य यात्रा न कृता, इति आर्षगणितानुसारेण सिद्ध्यति, यतो हि - चन्द्रग्रहस्य - उच्छ्रितिस्तु - भूगोलतः शून्यनव-शून्यनव-शून्यनवनेत्र =अंकानां वामतो गतिः इति गणितशास्त्र - सिद्धान्तात् "२९०९०९०" किलोमीटर-प्रमिता अस्ति । यत्र - आधुनिकाः - वैज्ञानिकाः - अन्तरिक्षे गताः तत्र तु - भूगोलात् - समुच्छ्रितानां पर्वतानामेव स्थितिः वर्णिता प्रत्यक्षदर्शिभिः - ऋषिभिः स्वस्वनिबन्धेषु सर्वत्र ।

केनापि यन्त्रादिसाधनेन मानवादीनां मांसचक्षुषा ग्रहाणां वास्तविकं स्थानं दृष्टिगोचरं न भवति-दूरातिदूरत्वात्, अतः-ग्रहाणां बिम्बानि-प्रतिबिम्बानि च एव आकाशमण्डले दर्शनार्हाणि भवन्ति दृश्यगोले, ग्रहबिम्बेषु - प्रतिबिम्बेषु छायारूपेषु - दृश्यगोले-आधुनिकैः वैज्ञानिकैः कथं स्थितिः कृता, ग्रहछायातः - पाषाणमृत्तिकादीनि वस्तूनि कथं समानीतानि-इति निष्पक्षया नीर-क्षीरविवेकिन्या शोधधिया विवेचनीयं विज्ञैः ।

२७— सुमेरुकेन्द्रात् - एकपार्वस्थस्थभूगोलस्य योजनात्मकः योगः शून्य - शून्य-शून्य - शून्य - पञ्चाग्नि-पञ्च-नेत्र - प्रमितः=२५३५०००० योजनप्रमितः समायाति, एवं च सुमेरोः केन्द्रात् सर्वदिक्षु एतावदेव मानं सिद्ध्यति, अतएव शैवतन्त्रेऽपि एतावदेव मानं समुक्तं भूमेः ।

शैवतन्त्रे......

"कोटिद्वयं त्रिपञ्चाशल्लक्षाणि च ततःपरम् ।
पञ्चाशच्च सहस्राणि सप्तद्वीपाः ससागराः ॥१॥"
ततो हेममयी भूमि र्दशकोटयो वरानने! ।
देवानां क्रीडनार्थाय लोकालोकस्ततः परम् ॥२॥

इमौ श्लोकौ श्रीमद्भागवत - महापुराणे पञ्चमस्कन्धे विंशे - अध्याये-शराग्नि "३५" प्रमितस्य गद्यस्य टीकायां श्रीधरस्वामिभिः विलिखितौ स्तः ।

पुष्करद्वीपस्य - अन्ते शुद्धोदकसागरोऽस्ति, तस्मात् शुद्धोदकसागरात् - अनन्तरं सार्धसप्तलक्षोत्तर - सार्धकोटि = "१५७५००००" योजनप्रमिता भूमिः - एतादृशी

अस्ति, यत्र प्राणिविशेषाः - निवसन्ति, देवाश्च तत्र क्रीडन्ति।

एतादृशभूमिभागानन्तरं - एकोनचत्वारिंशत् - लक्षोत्तर - कोट्यष्टक = "८३९००००००" योजनप्रमिता सुवर्णमयी = (काञ्चनमयी) भूमिः अन्या - अस्ति। यत्र देवा एव क्रीडादिकं कुर्वन्ति, अन्येषां सर्वविधप्राणिनां तत्र गतिः सत्ता च नास्ति।

२५३५०००० = सुमेरुपर्वतकेन्द्रात् - सर्वदिक्षु - एकपार्श्वस्थ - सप्तसागर - सप्तद्वीपभूमिमानं योजनात्मकम्।
+१५७५०००० = शुद्धोदकसागरानन्तरं-सर्वदिक्षु-एकपार्श्वस्थ-काञ्चनमयीभूमिमानं योजनात्मकम्, अत्र प्राणिविशेषः निवसन्ति।
+८३९०००००० = काञ्चनमयीभूमितोऽनन्तरं- सर्वदिक्षु-एकपार्श्वस्थ-देवानां क्रीडनार्थाय सर्वविधजीव- विवर्जिता योजनात्मकभूमिः।

१२५०००००० = सर्वविधभूमीनां योगः योजनात्मकः।

शैवतन्त्रोक्ते द्वितीये पद्ये देवानां क्रीडनार्थाय दशकोटियोजनात्मकं भूमिमानं यदुक्तं तत्तु - देवक्रीडाभूमितः पूर्ववर्तिना भूमिमानेन संयुक्तं ज्ञेयम्।

पूर्ववर्तिभूमिसंयुक्तक्रमं अत्र लिखामि......

८३९०००००० = देवक्रीडाभूमिमानं योजनात्मकम्।
१५७५०००० = जीवनिवासयोग्यभूमिमानं योजनात्मकम्।
+ ३५०००० = स्वादूदकसागरस्य भूखण्डमानं योजनात्मकम्।

१०००००००० = सर्वेषां योगः दशकोटियोजनात्मकः।

लोकालोकपर्वतान्तर्गत - भूगोलगणितविवेचनम्

२८— २५३५०००० = सप्तसागरसहितसप्तद्वीपभूमियोजनमानम्।
+१५७५०००० ==स्वादूदकात् परतः-प्राणिनिवासयोग्यभूमियोजनमानम्।

४११००००० = सुमेरुकेन्द्रात् - सुमेरोः परितः - प्राणिनिवासयोग्य-भूमिमानं योजनात्मकं चैतदस्ति।

१२५०००००० = सुमेरुकेन्द्रात् सुमेरोः परितः - लोकालोकपर्वतं यावत् तावत् - योजनात्मकं भूमिमानमस्ति।
— ४११००००० =सुमेरुकेन्द्रात्-सुमेरोः परितः प्राणिनिवासयोग्यभू०मा०

८३९०००००० = सुमेरुकेन्द्रात् - सुमेरोः परितः प्राणिनिवास विहीनं-योजनात्मकं भूमिमानम्, देवक्रीडनार्थाय सुवर्णमयभूभागप्रदेशस्य - योजनात्मकं मानं विद्यते चैतत्।

एवं गणिते कृते सति "सा च - एकोनचत्वारिंशत्- लक्षोत्तर-कोट्यष्टक = "८३९००००००० योजन" परिमिता ज्ञेया" इति श्रीमद्भागवतटीकायां पञ्चमस्कन्धे सङ्गतिः- सङ्गच्छते - एव।

सुमेरोः केन्द्रात् - सुमेरुपर्वतस्य परितः—

"कोटिद्वयं त्रिपञ्चाशल्लक्षाणि - च ततः परम्।
पञ्चाशच्चसहस्राणि सप्तद्वीपाः ससागराः॥ : इति शैवतन्त्रोक्तेः।

२५३५०००० = योजनप्रमिता वृत्ताकारा भूमिः - अस्ति, अस्मात् - भूमिमानात्-चतुःषष्टिलक्ष-योजनप्रमिते स्वादूदकसागरस्य विस्तारमाने शोधिते सति

२५३५०००० = सप्तसागरसहित - सप्तद्वीपभूमिमानं योजनात्मकम् ।

—६४००००० = स्वादूदकसागरभूमिमानं योजनात्मकम् ।

१८९५०००० = सुमेरुकेन्द्रात् एकपार्श्वे पुष्करद्वीपान्तं यावत् तावद् भूमियोजनमानं विद्यते ।

×२

३७९००००० = सुमेरुकेन्द्रात्- सर्वदिक्षु- सुमेरोः उभयपार्श्वे पुष्करद्वीपान्तं यावत् तावत् भूमियोजनमानं गणितेन सिद्ध्यति ।

२९—नेत्र- नवाष्ट- चन्द्र - "१८९२" प्रमिते- ईसवीयाब्दे उत्तरप्रदेशान्तर्गत-लखनऊ नगरस्थात् - मुन्शीनवलकिशोर - सी० आई० ई० छापाखाना - नामक-प्रेसतः प्रकाशिते "मत्स्यपुराणे" नेत्राष्टचन्द्र "१८२" प्रमिते- अध्याये स्थिताभ्यां निम्नाङ्किताभ्यां पद्याभ्यां सह- उपर्युक्तस्य गणितस्य सङ्गतिः सङ्गच्छते ।

"पृथिव्या विस्तरं कृत्स्नं योजनैस्तन्निबोधत ।
तिस्रः कोट्यस्तु विस्तारात् संख्यातास्तु चतुर्दिशम् ॥१५
तथा शतसहस्राणामेकोनाशीतिरुच्यते ।
सप्तद्वीपसमुद्रायाः पृथिव्याः स तुविस्तरः ॥१६॥

"व्यासात् - त्रिगुणः परिधिः" भवतीति प्रत्यक्षसिद्धं सिद्धान्तमनुसृत्य तत्रैव "मत्स्यपुराणे" उपर्युक्तस्य - भूगोलस्य वृत्ताकारस्य परिधिमानं अपि समुक्तम्-तदत्र गणितेन - अपि दर्शयामि—

३७९००००० = सुमेरुकेन्द्रात् परितः पुष्करद्वीपान्तं यावत् तावद् योजनात्मकं भूमिमानम् ।

×३

११३७००००० = सुमेरुकेन्द्रात् - पुष्करद्वीपान्तं यावत्तावत् परिधिमानम् ।

"विस्तारत्रिगुणं चैव पृथिव्यन्तरमण्डलम् ।
गणितं योजनानां तु कोट्यस्त्वेकादश स्मृताः ॥१७॥
तथा शतसहस्राणां सप्तत्रिंशाधिकास्तु ताः ।
इत्येतद् वै समाख्यातं पृथिव्यन्तरमण्डलम् ॥१८॥

मत्स्यपुराणस्थाभ्यां - उक्त श्लोकाभ्यां - उपर्युतं गणितं प्रत्यक्षं सङ्गच्छते । पूर्वोक्तरीत्या पञ्चविंशतिकोटि = "२५००००००" योजनप्रमिता भूमिः सिद्ध्यति, वृत्ताकारस्य पञ्चविंशतिकोटि- योजनप्रमितस्य - एकलक्ष- "१०००००" योजनप्रमितोच्छ्रितियुक्तस्य भूगोलस्य - पञ्चविंशति कोटियोजनप्रमितः एव व्यासोऽस्ति इत्यपि सिद्धत्येव ।

पञ्चविंशतिकोटियोजन = "२५०००००० योजन" प्रमितस्य वृत्ताकारस्य अस्य भूगोलस्य केन्द्रे - एकलक्षयोजन = "१००००० योजन" प्रमितः - जम्बूद्वीपस्तिष्ठति, इति तु मया प्रागेव प्रतिपादितम् ।

जम्बूद्वीपस्य प्रामाणिकतामत्र - उपस्थापयामि

३०— अमरकोषे प्रथमकाण्डे वारिवर्गे "द्वीप" शब्दस्य परिभाषा - अस्ति, तत्रैव श्रीभट्टोजिदीक्षितपुत्रैः श्रीभानुजिदीक्षितमहोदयैः स्वकृतायां "व्याख्यासुधा" नामकटीकायां द्वीपशब्दस्य विषये साधुतमं स्पष्टीकरणं कृतम् - तदत्र विलिखामि…

"द्वीपोऽस्त्रियामन्तरीपं यदन्तर्वारिणस्तटम्"

द्विर्गताः - अन्तर्गताः - वा - आपो यत्र स द्वीपः,

द्वे- "जलमध्यस्थानस्य, तोयोत्थितं तत्पुलिनम्'।

इति अमरकोषस्य टीकायामुपलभ्यते।

वायुपुराणोक्तं सप्तद्वीपार्धमानम्

३१— मेरुमध्यात् प्रतिदिशं कोटिरेका च सा स्मृता।
तथाशतसहस्राणि - एकोननवतिः पुनः ॥६९॥
पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्या वार्धविस्तरः ॥७०॥

उक्तपद्यस्य - अयं भावः—

मेरुमध्यात्=सुमेरुपर्वतकेन्द्रमध्यात् पुष्करद्वीपान्तं यावत्तावत् प्रतिदिशं परितः सप्तद्वीपार्धभागप्रमिता सा पृथिवी - एककोटिप्रमिता तथा च शतसहस्राणि अर्थात् - लक्षसंख्याबोधकानि - एकोननवतिप्रमितानि च पुनः पञ्चाशत्सहस्राणि अर्थात् - "१८९५0000" योजनप्रमितः पृथिव्याः= भूमेः वा= अथवा, विस्तरः =विस्तारः अस्ति, सुमेरुकेन्द्रात् - पुष्करद्वीपान्तं यावत्तावत् - परितः सर्वदिक्षु एककोटि - एकोननवतिलक्ष - पञ्चाशत्सहस्रयोजनप्रमिता - भूमिः सप्तद्वीपार्धमाने अस्तीति सारांशः, एतद्द्वीपार्धमाने द्विगुणे कृते सति - जम्बूद्वीपात् पूष्करद्वीपान्तं यावत्तावत् सप्तद्वीपान्तर्गतं सम्पूर्णं भूमिमानं समायाति।

तदेव गणितेनात्रोपस्थापयामि—

१८९५0000 = सप्तद्वीपार्धभूमिमानम्= (३८८पृष्ठेऽपि प्रतिपादितम्)
×२

३७९00000 = सप्तद्वीपभूमिमानं योजनात्मकमस्ति।

एवदेव मानं वायुपुराणेऽपि निम्नाङ्कितपद्ययोर्लिखितम्…

"पृथिव्या विस्तरं कृत्स्नं योजनै तन्निबोधत।
तिस्रः कोट्यस्तु विस्तारः संख्यातः स चतुर्दिम् ॥७१।)
तथा शतसहस्राणामेकोनाशीतिरुच्यते।
सप्तद्वीपसमुद्रायाः पृथिव्यास्त्वेष विस्तरः ॥७२॥

३२—सप्तद्वीपविस्तारोऽयं सप्तद्वीपव्यासशब्देनापि व्यवह्रियते, व्यासमाने त्रिगुणे कृते सति "व्यासात् त्रिगुणः परिधिः" इतिसिद्धान्तानुसारेणात्र सप्तद्वीपान्तर्गतभूमिपरिधिमानं उपस्थापयामि …

३७९00000×३=११३७00000= सप्तद्वीपभूपरिधियोजनमानम्।

एतदेवमानं वायुपुराणेऽपि निम्नाङ्कितपद्ययोः समुक्तम्...

विस्तारात् त्रिगुणं चैव पृथिव्यन्तस्य मण्डलम् ।
गणितं योजनैस्तास्तु कोट्यस्त्वेकादश स्मृताः ॥७३॥
तथा शतसहस्रं तु सप्तत्रिंशाधिकानि तु ।
इत्येतद् वै प्रसङ्ख्यातं पृथिव्यन्तस्य मण्डलम् ॥७४॥

उपर्युक्तगणितेन - जम्बूद्वीपस्य मानं - एकलक्षयोजनं "१००००० योजन" प्रमितम् सिद्ध्यति ।

३३— आकाशस्थितेषु - ग्रह - नक्षत्र - राशिषु - भूगोले च आकर्षणशक्तिः- अस्तीति - स्वीकुर्वन्त्येव विचारशीलाः वैज्ञनिकाः ।

३४— आकर्षणशक्तियुक्तपदार्थानां केन्द्रे विशिष्टाकर्षणशक्तिः तिष्ठतीति मन्यन्ते वैज्ञानिकाः ।

३५— आकर्षणशक्तियुक्तस्य भूमण्डलस्य केन्द्रस्थानभूते जम्बूद्वीपे विशिष्टाकर्षणशक्तेः-अस्तित्वं तिष्ठति ।

३६— एकलक्षयोजन= "१००००० योजन" प्रमितस्य - जम्बूद्वीपस्यापि - केन्द्रस्थानभूते षोडशसहस्रयोजन... "१६००० योजन"[२] प्रमिते सुवर्णमय - सुमेरु - पर्वतस्य प्रदेशे विशिष्टाकर्षणशक्तिः - तिष्ठतीति आकर्षणशक्तियुक्तपदार्थकेन्द्रस्थित-विशिष्टाकर्षणशक्तिसिद्धान्तेन सिद्ध्यति ।

३७— अतः आकर्षणशक्तियुक्तग्रहाणां - नक्षत्र - राशीनां च विशिष्टाकर्षणं विशिष्टाकर्षणशक्तियुक्ते षोडशसहस्रयोजनप्रमिते = "१६००० योजनप्रमिते" जम्बूद्वीपकेन्द्रस्थे - सुमेरुपर्वतप्रदेशे - एव भवतीति वैज्ञानिकसिद्धान्तमनुसृत्य, जम्बूद्वीपकेन्द्रादेव - जम्बूद्वीपभागेषु भारतादिवर्षेषु ग्रह - राशि - नक्षत्र - जन्य - शुभाशुभफलज्ञानाय-सूर्यसिद्धान्तादिगणितग्रन्थेषु आर्षप्रणीतेषु - आनुपातिकस्यैव - ग्रहगणितस्य व्यवस्था प्रदत्ता - तत्व-दर्शिभिः - ऋषिभिः ।

३८—केन्द्रस्थानस्य - अन्वेषणे कृते सति केन्द्रानुसारेणैव सर्वं व्यावहारिकं कार्यं व्यावहारिकं च गणितादिकं कर्म प्रचलति, अतः भारतवर्षकेन्द्रस्य - त्रैराशिकगणितानुपातेन अन्वेषणं कृत्वा, सूर्यांशपुरुषेण भारतवर्षकेन्द्रस्य व्यासः "कर्णपर्यायवाचकः" सूर्यसिद्धान्ते - मध्यमाधिकारे चन्द्रषट्= "६१" प्रमिते पद्ये समुपदिष्टः ।

भारतवर्षस्य केन्द्रान्वेषणे - अनुपातव्यवस्था

३९—एकलक्षयोजन = "१००००० योजन" प्रमिते जम्बूद्वीपे यदि षोडशसहस्र-योजनप्रमितं = (१६००० योजनप्रमितम्) केन्द्रस्थितभूकर्णमानं= (भून्यासमानम्) लभ्यते, चेत्तर्हि - दशसहस्रयोजन= (१०००० योजन) प्रमिते भारतवर्षे केन्द्रस्थान-भूतस्य भूव्यासस्य= (भूकर्णस्य) कियन्मितं मानं लब्धं भविष्यतीति त्रैराशिकगणितानु—पातं-अत्र स्थापयामि $= \dfrac{१६००० \times १००००}{१०००००} =$ १६०० योजन-प्रमितम्= (षोडशशतयोजनप्रमितम्) भारतवर्ष - केन्द्रस्थितभूकर्णमानं लब्धं भवतीति सिद्ध्यति ।

सूर्यसिद्धान्तोक्त- भारतवर्णभूकर्णमानतः= षोडशशतयोजनप्रमितभूकर्णमानतः =(१६०० योजनमानतः) जम्बूद्वीपस्य मानं एकलक्षयोजनप्रमितं लब्धं भवति।

उपर्युक्तत्रैराशिकगणितानुसारेण - एकलक्षयोजन - प्रमितो जम्बूद्वीपः सिद्ध्यति सूर्यसिद्धान्तोक्तभूमिकेन्द्रव्यासतः।

भारतवर्षव्यासतः - जम्बूद्वीपमानानयनम्

४०—यदि षोडशशतयोजनप्रमितेन = "१६०० योजनप्रमितेन" भारतभूमिकेन्द्र-गतव्यासमानेन दशसहस्रयोजन= "१०००० योजन" प्रमितं भारतवर्ण - भूमिमानं लभ्यते चेत्तर्हि षोडशसहस्रयोजनप्रमितेन "१६००० योजनप्रमितेन" जम्बूद्वीपकेन्द्रगत-भूमिव्यासमानेन कियन्मितस्य जम्बूद्वीपभूमिमानस्य लाभो भविष्यतीति त्रैराशिकं गणितं

अत्र- उपस्थापयामि $= \frac{१००००\times१६०००}{१६००} =$ १००००० = एकलक्षयोजनप्रमितस्यजम्बूद्वीपभूमिमानस्य लाभो भवतीति सिद्ध्यति।

४१—उपर्युक्तत्रैराशिक - गणितसिद्धान्तानुसारेण भारतवर्णजम्बूद्वीपयोः - भूमिमान-योजन - द्योतनार्थैव कृतालुना सूर्यांशपुरुषेण ...."योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु" इति उक्तं सूर्यसिद्धान्ते।

भारतवर्णस्य केन्द्रगत - भूमिव्यासमानं = "भूकर्णमानम्" षोडशशतयोजन - "१६०० योजन" प्रमितमस्तीति उक्तकथनस्य वर्ततेऽभिप्रायः।

पुराणज्यौतिषयोः - एकवाक्यता

४२—" योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु "

इति सूर्यांशपुरुषकथनं तु - वायुपुराण - मत्स्यपुराण - विष्णुपुराण - भागवत-पुराण - पातञ्जलयोगदर्शन - वैयासिकभाष्य" प्रभृतिषु समुक्तया भूगोलयोजन-मान - व्यवस्थया सह गच्छते - एव।

यतो हि - सर्वेष्वपि - ऋषिप्रणीतेषु - आर्णग्रन्थेषु एकलक्षयोजनप्रमितः = "१००००० योजनप्रमितः" जम्बूद्वीपः, दशसहस्रयोजनप्रमितश्च "१०००० योजन प्रमितः" भारतवर्णदेशश्च समुक्तः।

सूर्यसिद्धान्तोक्तभूव्यासमानरीत्यापि उपर्युक्तत्रैराशिकगणितानुसारेण -एकलक्ष-योजनप्रमितो जम्बूद्वीपः, दशसहस्रयोजनप्रमितश्च भारतवर्णदेशः सिद्ध्यति।

अतः सूर्यसिद्धान्ते सूर्यांशपुरुषकथनस्य आर्णग्रन्थेषु - आर्णकथनस्य च - एक-वाक्यता सिद्ध्यति, न कोऽपि विरोधः परस्परं समायाति।

४३—खगोल - भूगोल - जम्बूद्वीपविषये सूर्यसिद्धान्ताभिप्रायं - पुराण - दर्शनाद्यार्ण-ग्रन्थाभिप्रायं च - अज्ञात्वैव ये केचन महानुभावाः - समस्तस्य भूमण्डलस्य व्यासमानं केवलं षोडशशतयोजन - "१६०० योजन" प्रमितं अथवा शोडशशतयोजनादपि न्यूनं-एव - मन्यन्ते, तेषां मननं कथनं च - अयुक्तं - ब्रह्माण्डस्थितिविरुद्धं - पुराणदर्शनाद्या-र्णग्रन्थविरुद्धं - अविचारितरमणीयं - भ्रान्तिप्रदं च - अस्तीति - निष्पक्षया मध्यस्थया-नीरक्षीरविवेकिन्या धिया विवेचनीयं विचारशीलैः विज्ञैः।

१— वारहवें अध्याय का सारांश सुन्दरी टीका में दिया जा रहा है।

सुन्दरी टीका— ज्यौतिषपुराण के परस्पर विरोधाभास का परिहार इस वारहवें अध्याय की सुन्दरी टीका में लिख रहा हूँ।

ज्ञान और विज्ञान से परिपूर्ण पुराणों का तथा त्रिस्कन्धज्यौतिषशास्त्र का अच्छी तरह से ज्ञान न करके भ्रान्तमस्तिष्क कुछ महानुभाव यह कहते हैं कि—पुराणों में जितना योजनात्मकमान भूगोल का वताया गया है, उतना योजनात्मकमान ज्योतिष ग्रन्थों में भूगोल का नहीं वताया गया है, पुराणों में भूगोल से ऊपर आकाशमण्डल में ग्रहों की स्थिति को जिस क्रम से वताया गया है, ज्यौतिषग्रन्थों में पुराणोक्तग्रहक्रम-स्थिति से भिन्न ग्रहक्रमस्थिति को वताया गया है, इस प्रकार ज्यौतिषशास्त्र और पुराणशास्त्र एक दूसरे के विरोधी हैं, उक्तपरिस्थिति में ज्यौतिषशास्त्र का मत सही माना जाय, अथवा पुराणशास्त्र का मत सही माना जाय, यह पेचीदा प्रश्न विचारशील व्यक्तियों के मस्तिष्कों को भी डामाडोल वनाये हुए है, पुराणशास्त्र और ज्यौतिष-शास्त्र के विरोधाभासात्मक इस क्लिष्ट विषय को नहीं समझने वाले अनेक महानुभाव-पुराणशास्त्रों और ज्यौतिषशास्त्रों पर अनेक प्रकार के तीखे आक्षेप और तीखे कर्णकटु-कटाक्ष करते हैं।

२— इस वारहवें अध्याय में पुराणशास्त्र और आर्षज्यौतिषशास्त्र के परस्पर विरोधाभास का शास्त्रीयवैज्ञानिक ढंग से परिहार करते हुए, प्रत्येक आक्षेप और कटाक्ष का समुचित समाधान विद्वानों और वैज्ञानिकों के प्रमोद के लिये कर रहा हूं, मेरे द्वारा प्रस्तुत किये गये "विरोधाभासपरिहार" को विज्ञजन नीर- क्षीर विवेकिनी निष्पक्ष तटस्थवुद्धि से समझने का प्रयास करेंगे।

३—जहां पर परस्पर एक दूसरे के विरोधी नहीं होते हुए भी विरोध होने की प्रतीति होती है, वहाँ पर विरोधाभास माना जाता है।

४— आर्षपुराणशास्त्रों और आर्षज्यौतिषशास्त्रों= (ऋषिप्रणीतपुरणशास्त्रों और ऋषिप्रणीत ज्यौतिषशास्त्रों) में वर्णित भूगोल के योजनात्मक मानों में और आकाशस्थग्रहस्थितिक्रम में परस्पर विरोध नहीं होते हुए भी यत्र तत्र विरोध की प्रतीति होती है, अत एव - इसे विरोध नहीं मानकर विरोधाभास मात्र ही मानना चाहिये।

"पुराण" शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ का विवेचन

५— इस शोधग्रन्थ के वारहवें अध्याय में पृष्ठसंख्या तीन सौ वहत्तर से तीन सौ पिचहत्तर तक = (३७२ से ३७५ तक) "पुराण' की व्युत्पत्ति और अर्थ का विस्तृत विवेचन संस्कृत भाषा में किया जा चुका है, इस विवेचन का सारांश यह है कि— वर्तमान समय में जिस प्रकार - भारत, रूस, अमरीका, चीन, जापान, ब्रिटेन आदि राष्ट्रों में प्रचलित "पुरातत्वविभाग" के वैज्ञानिकों द्वारा पुरातत्वों की खोजें की जा रही हैं, इसी प्रकार से प्राचीन समय में चक्रवर्ती राजाओं के शासनकालों में भी "पुरातत्वविभाग" प्रचलित थे, उस समय के "पुरातत्वविभाग" में - भूत-भविष्य वर्तमानकाल की समस्त घटनाओं और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के समस्तपदार्थों द्रव्यों और

गुणों आदि की सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थितियों को भी योगविद्या से जानने वाले त्रिकालदर्शी अतीन्द्रिय योगी ऋषि स्वतन्त्र रूप से राष्ट्र के हितों के लिये अनुसन्धान का कार्य किया करते थे, भूत- भविष्य - वर्तमान इन तीनों कालों के चराचरजगत् के समस्त पदार्थों और द्रव्यों, गुणों, अवगुणों का प्रत्यक्ष ज्ञान त्रिकालदर्शी योगियों को हुआ करता था, उसी प्रत्यक्षज्ञान को त्रिकालदर्शी योगी ऋषियों ने अपने अपने शोधग्रन्थों में राष्ट्र के प्राणिमात्र के हितों के लिये विभिन्न विभिन्न समयों में लिखा है।

६— संस्कृतवाङ्मय के समस्तकोषों और ग्रन्थों में भूत - भविष्य- वर्तमान- इन तीनों कालों का बोधक "पुरा' अव्यय माना गया है, ईश्वरनिर्मित - चराचरजगत् के भूत- भविष्य- वर्तमान कालों में - ईश्वरनिर्मित - समस्तपदार्थों का प्रत्यक्ष- अनुसन्धानात्मक - विवेचन - जिन ग्रन्थों में लिखा जाता है, उन ग्रन्थों को ही "पुराण-ग्रन्थ" नाम से पुकारा जाता है, ऋषिप्रणीत होने के कारण वे पुराणग्रन्थ आर्षग्रन्थ माने जाते हैं, उपर्युक्त अभिप्राय को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से ही त्रिकालज्ञ योगी ऋषियों ने अपने अपने शोधग्रन्थों का नाम "पुराण" रखना उचित समझा है।

७—पुराणग्रन्थों में वर्णित भूगोल - खगोल के सम्पूर्ण विज्ञान का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन और अध्यापन और ज्ञानोपार्जन किये विना ही जो महानुभाव विज्ञान से ओत-प्रोत पुराणों के ऊपर आक्षेप और कटुकटाक्ष करते हैं, वे भ्रामक और अज्ञ ही हैं।

पुराणदर्शनादि ग्रन्थों और त्रिस्कन्धज्यौतिषग्रन्थों के लेखक योगीऋषियों के समीपस्थ सिद्धियों का विवेचन

८—(१) अणिमा (२) महिमा (३) लघिमा (४) प्राप्ति (५) प्राकाम्य (६) ईशिता (७) वशिता (८) कामावसायिता, ये आठ सिद्धियां परमात्मा ईश्वर के पास ही सदा रहती हैं, भगवान् ईश्वर जिस किसी पर अधिक कृपा करते हैं, उसके लिये उक्त आठ सिद्धियों में से किसी भी सिद्धि का कुछ अंश ही प्रदान करते हैं।

९— योगी ऋषियों के पास पन्द्रह सिद्धियां = (१५ सिद्धियां) सदा रहा करती हैं।

(१) अनूर्मिमत्वम् = शरीर में भूख, प्यास आदि का अभाव रहना। और झुर्रियों= (सलवटों) का न पड़ना।
(२) दूरदर्शनम् = अत्यन्त दूरी पर स्थित सब पदार्थों को देखना।
(३) दूरश्रवणम् = अत्यन्त दूरी के शब्दों और वार्तालापों को सुनना।
(४) मनोजवः = मन की गति के समान शीघ्रगति से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचना।
(५) कामरूपम् = स्वेच्छानुसार शरीर और स्वरूप को बदलना।
(६) परकायप्रवेशनम् = अपने शरीर से भिन्न दूसरे शरीर में प्रवेश करना।
(७) स्वच्छन्दमृत्युः = स्वेच्छानुसार मरना।
(८) देवक्रीड़ानुदर्शनम् = देव और देवाङ्गनाओं की विविधक्रीडाओं को देखने का सामर्थ्य होना।
(९) संकल्पसिद्धिः = संकल्पानुसार कार्य की पूर्ति करना।

(१०) अप्रतिहता आज्ञा = सर्वत्र आज्ञा की पूर्ति होना।

(११) त्रिकालज्ञत्वम् = भूत - भविष्य - वर्तमान - इन तीनों कालों की समस्त घटनाओं को जानना।

(१२) अद्वन्द्वम् = सुख दुःख, इच्छाद्वेष, शीतोष्ण, रागद्वेष आदि द्वन्दों से अलग रहना।

(१३) परचित्ताद्यभिज्ञता = दूसरे के मन की अभिलाषा को जानना।

(१४) प्रतिष्टम्भः = अग्नि, सूर्य, जल आदि के वेगों को और शक्तियों को स्तम्भन तथा निरस्त कर देने का सामर्थ्य रखना।

(१५) अपराजयः = कहीं पर भी पराजय नहीं होना, सर्वत्र विजयी होना। पूर्वोक्त पन्द्रह सिद्धियां योगी ऋषियों के पास स्वाभाविक रूप से ही रहती हैं।

१०—पूर्वोक्त सिद्धियों से युक्त योगी ऋषियों द्वारा लिखेगये पुराणग्रन्थों और दर्शन आदिग्रन्थों के विषय में भ्रान्त और अल्पज्ञ व्यक्तियों द्वारा निराधार किये गये "ननु नच" और कटुकटाक्ष उनकी भ्रान्तियों और अल्पज्ञता के ही परिचायक सिद्ध होते हैं।

ज्यौतिष और पुराणों में ररस्पर विरोधाभास के परिहार का उपक्रम

११—आकाशमण्डल में अधिक ऊंचाईयों पर स्थित ग्रहों में परस्पर "उल्लेख, भेद, युद्ध, समागम" हुआ करते हैं, ग्रहों की इन चारों प्रकार की हलचलों का प्रभाव भूगोलनिवासी प्राणियों पर पड़ा करता है, आकाशस्थ ग्रहों का परस्पर में समागम होने पर भूगोलनिवासी राजाओं का तथा अन्यव्यवितयों का आपस में "समागम = मेलमिलाप" हुआ करता है, आकाश में ग्रहों का युद्ध होने पर भूगोलनिवासी राजाओं में तथा अन्यव्यक्तियों में युद्ध छिड़ जाता है।

१२— आकर्षणक्तियुक्त ग्रहों और नक्षत्रों तथा राशियों की अच्छी रश्मियाँ जब आकर्षणशक्तियुक्त भूगोल की ओर गिरती हैं, तब भूगोल पर अनेक प्रकार की अच्छाइयाँ हुआ करती हैं, भूगोल पर ग्रहों की बुरी रश्मियां गिरने से भूगोल पर अनेक प्रकार की बुराईयां ही हुआ करती हैं, ग्रहों की अच्छी रश्मियों से भूगोलस्थ व्यक्तियों के अच्छे स्वभाव बनते हैं, और बुरी रश्मियों से व्यक्तियों के बुरे स्वभाव बना करते हैं।

१३— आकाशमण्डल में अधिक ऊंचाइयों पर पृथक् पृथक् अपनी अपनी कक्षाओं में भ्रमणशील ग्रहों की रश्मियों, बिम्बों और प्रतिबिम्बों का उल्लेख, भेद, युद्ध, समागम आदि' चन्द्रमा ग्रह के बिम्ब की कक्षा में हुआ करता है, ग्रहों के वास्तविक स्वरूपों का युद्ध, समागम, आदि होना सर्वथा असम्भव ही होता है. क्योंकि— आकाश में ग्रहों की कक्षायें पृथक् पृथक् लाखों योजनों के अन्तर पर स्थित होने के कारण ग्रहों के वास्तविकपिन्ड आपस में कभी मिल ही नहीं सकते हैं।

ग्रहों के अदृश्यगोलों और दृश्यगोली का विवेचन

१४— पुराण और दर्शन आदि शास्त्रों के प्रणेता योगी ऋषियों ने अपने अपने शोधग्रन्थों में ग्रहों के वास्तविक पिण्डों को खगोल में जितनी ऊंचाइयों पर

भ्रमण करते हुए योगवल से देखा है, ग्रहों की उतनी ही ऊंचाईयों का वर्णन अपने अपने शोधग्रन्थों में विभिन्न विभिन्न समयों में किया है, ग्रहों की ऊचाईयों और क्रमों के सम्वन्ध में सभी ऋषि एक मत ही हैं, योगी ऋषियों द्वारा वर्णित ग्रहों की ऊचाईयों को किसी भी वीक्षणादि यन्त्र से देखना अधिक ऊंचाई होने के कारण सर्वथा असंभव पाया जाता है, अत एव - योगी ऋषियों द्वारा वर्णित ग्रहों के वास्तविक पिण्डों को अदृश्य गोलों में माना जाता है।

१५— सूर्यादि सभी ग्रहों के विम्वों और प्रतिविम्वों को चन्द्रमा ग्रह के विम्व की कक्षा में ही वीक्षणादियन्त्रों द्वारा देखा जाता है, अत एव - परिभ्रमण-शील ग्रहों के परिभ्रमणशील विम्त्रों को जिस आकाशमण्डल में=(आकाशगोल में)देखा जाता है, उसी आकाशगोल को "दृश्यगोल" नाम से पुकारा जाता है।

१६— ज्यौतीपशास्त्र के सूर्यसिद्धान्तादि आर्षगणितग्रन्थों में "दृश्यगोल' में परिभ्रमणशील ग्रहविम्वों और प्रतिविम्वों के अनुसार मृत्युलोक = (दक्षिणोत्तरदश हजारयोजन व्यासयुक्त सम्पूर्णभारतवर्ष)के व्यक्तियों तथा अन्य जीवधारियों के शुभा-शुभ फलों का विवेचन करने के उद्देश्य से ग्रहविम्वों का वर्णन किया है।

आकाश में ग्रहों की स्थितिक्रम के सम्बन्ध में पुराणग्रन्थों और ज्यौतिष ग्रन्थों में विरोधाभास के परिहार का विवेचन

१७— पुराणग्रन्थों में खगोल में क्रमशः – सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वुध, शुक्र,- भौम, गुरु, शनि, वास्तविक ग्रहों की स्थिती का वर्णन वास्तविक ग्रहपिण्डो की ऊंचाई के अनुसार किया गया है

१८— सूर्यसिद्धान्तादि ज्यौतिषग्रन्थों में वास्तविक ग्रहपिण्डों का वर्णन न करके सूर्यादिग्रहों के विम्व - चन्द्रविम्वीय कक्षा में जिस क्रम से दिखाई देते हैं, उसी क्रम से ग्रहविम्वों की स्थितियों का वर्णन किया गया है, अत एव सूर्यसिद्धान्तादि ज्यौतिषग्रन्थों में चन्द्रविम्वीय कक्षा में दृश्य ग्रहविम्वों के अनुसारः— चन्द्र, वुध, शुक्र सूर्य, भौम, गुरु, शनि, नक्षत्र, की विम्वीयस्थिति का क्रमशः वर्णन किया गया है।

ग्रहों की गति के अनुसार चन्द्रबिम्बीय कक्षा में ग्रहविम्बों की स्थिति के क्रम का वैज्ञानिक विवेचन

१९—सृष्टिकर्ता ईश्वर ने अन्य सव ग्रहों से अधिक गतिशील चन्द्रमा को वनाया है, चन्द्रमा से कम गति वुध में, वुध से कम गति शुक्र में, शुक्र से कम गति सूर्य में, सूर्य से कम गति मंगल में, मंगल से कम गति गुरु में, गुरु से कम गति शनैश्चर में,ईश्वर ने निहित की है, नक्षत्रों को ईश्वर ने गतिहीन वनाया है, सभी ग्रह नक्षत्र और भूगोल आकर्षणशिक्त से युक्त हैं, सूर्य की रश्मियों के प्रभाव से सभी ग्रहों में और नक्षत्रादि को में तेज= (चमकीलापन) दिखाई पड़ता है।

२०— आकर्षणशिक्त के द्वारा मन्दगतिग्रहविम्वों की अपेक्षा शीघ्रगतिग्रहविम्वों का आकर्षण भूगोल की ओर शीघ्रता से हुआ करता है, अत एव ईश्वर द्वारा निर्मित और निहितग्रहगति के क्रमानुसार-चन्द्र, वुध, शुक, सूर्य, भौम,गुरु, शनि, ग्रहों के विम्व

अदृश्यगोल से क्रमशः भूगोल की ओर आकृष्ट होकर दृश्यगोल=(चन्द्रबिम्बीय कक्षा) में पहुँचकर पूर्वाभिमुखी अपनी गति से भूगोल के केन्द्र में स्थित विशिष्टाकर्षणशक्ति-युक्त सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करते हुए वीक्षणयन्त्रादि साधनों द्वारा प्रत्यक्षरूप में दिखाई पड़ते हैं- गतिहीन होने के कारण नक्षत्र मण्डल ग्रहों से ऊपर आकाश में दिखाई पड़ता है।

सूर्यादि ग्रहों के बिम्ब पूर्वदिशाभिमुख गमनशील होते हुए भीप्रवहवायु के वेगों द्वारा पश्चिम दिशा की ओर तेजी से घुमाये गये "भपञ्जरचक्र" के साथ प्रतिदिन पश्चिमाभिमुख घूमते हुए = (चलते हुए) प्रतीत होते हैं।

पूर्वोक्त कथन का निष्कर्ष

२१— अदृश्यगोल=(पारमार्थिकगोल) में ग्रहों की वास्तविक स्थिति सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, बुध, शुक्र, भौम, गुरु, शनि, इस क्रम के अनुसार है, इसी वास्तविक क्रम का वर्णन पुराणग्रन्थों में है।

(क)—दृश्यगोल=(चन्द्रबिम्बीयकक्षा) में ग्रहबिम्बों की स्थिति - चन्द्र, बुध, शुक्र, सूर्य, भौम, गुरु, शनि, नक्षत्र इस क्रम से है, इसी ग्रहबिम्बीय स्थिति का वर्णन सूर्य सिद्धान्तादि ज्यौतिषग्रन्थों में है।

(ख)— पुराण और ज्यौतिष दोनों के मत में अदृश्यगोल में सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, बुध, शुक्र, भौम, गुरु, शनि, इस क्रम से ग्रह स्थित हैं।

(ग)— पुराण और ज्यौतिष दोनों के मत में दृश्यगोल में चन्द्रबिम्ब, बुधबिम्ब, शुक्रबिम्ब, सूर्यबिम्ब, भौमबिम्ब, गुरुबिम्ब, शनिबिम्ब, नक्षत्रबिम्ब, इस क्रम से ग्रहों के बिम्ब स्थित हैं, इसी ग्रहबिम्बीय क्रम का वर्णन ज्यौतिषग्रन्थों में है।

(घ)— आकाश में ग्रहों की स्थिति के सम्बन्ध में पुराणग्रन्थों और ज्यौतिष-ग्रन्थों में परस्परलेशमात्र भी विरोध नहीं है, पुराणों में अतीन्द्रियमहर्षियों ने अदृश्य-गोलस्थ वातविक ग्रहपिण्डों की स्थिति के क्रम का वर्णन किया है।

(ङ)— उक्त विवेचन से पुराणग्रन्थों और ज्यौतिषग्रन्थों की एकवाक्यता ग्रहों की स्थिति से क्रम में सिद्ध होकर स्पष्टरूप से विरोधाभास का परिहार हो रहा है।

सम्पूर्ण विरोधाभासों का परिहार

२२— "छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद् भवेत्"

सूर्यसिद्धान्त के इस वाक्य में दृश्यगोलीय सूर्यबिम्ब से नीचे की ओर स्थित दृश्यगोलीय चन्द्रबिम्ब को सूर्यग्रहण में छादक और सूर्यबिम्ब को छाद्य बताया गया है, अतएव - दृश्यगोलीय - छादक और छाद्य का वर्णन होने मात्र से सूर्यसिद्धान्तादि ज्यौतिषग्रन्थों का पुराणग्रन्थों के साथ विरोध न होकर विरोधाभास की प्रतीतिमात्र है, पूर्वोक्त रीति से विरोधाभास की प्रतीति का परिहार सरलता से हो जाता है।

२३— "मन्दादधः क्रमेण स्युश्चतुर्थः दिवसाधिपः"

सूर्यसिद्धान्त का यह वाक्य दृश्यगोलीय बिम्बस्थिति क्रम के अनुसार शनिबिम्ब

से चतुर्थग्रहविम्ब के क्रमानुसार रवि आदि वारगणना क्रम का प्रतिपादक है, इस का पुराण और ज्यौतिषग्रन्थों के विरोधाभास अथवा विरोध से कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

वारगणना क्रम में वैज्ञानिकता का विवेचन

२४— रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि इस प्रकार की वारगणना के क्रम का उपयोग ज्ञानशील मनुष्यजाति मात्र के लिये ही होता है। अज्ञानशील पशु-पक्षी आदि वारगणना के क्रम का उपयोग लेशमात्र भी नहीं कर पाते हैं।

(य)— प्राणिमात्र के शरीर में - सूर्य से आत्मा, चन्द्रमा से मन, मंगल से सत्व=(ओज=वल) बुध से वाणी, गुरु से ज्ञान और सुख, शुक्र से मद=(वीर्य) शनि से दु:ख, का निर्माण ईश्वरीय विधान के अनुसार हुआ करता है।

(र)— मनुष्यजाति के पाञ्चभौतिकशरीररथ को सुचारुरूप से सञ्चालन और संरक्षण करने के लिये - क्रमश:-(१) आत्मा, (२) मन, (३) सत्व=वल, (४) वाणी, (५) ज्ञान और सुख, (६) वीर्य=पराक्रम, (७) दु:ख, की आवश्यकतायें हुआ करती हैं, सूर्यादि सात ग्रहों से क्रमश: - आत्मा आदि सातो आवश्यकताओं की प्राप्ति मनुष्य के शरीररूपी रथ के लिये हुआ करती है, अतएव ज्ञानशील मनुष्य ने अपने पाञ्चभौतिक शरीर की - क्रमश: आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले ग्रहों को स्मरण करने के लिये=(याद रखने के लिये) क्रमश: — (१) सूर्य, (२) चन्द्र, (३) मंगल, (४) बुध (५) गुरु, (६) शुक्र, (७) शनि, इन दिनों को ग्रहों के नाम पर व्यवहार में प्रयोग करना स्वीकार कर लिया है।

सूर्यादिग्रहों के व्यासों और परिधिमानों का विवेचन

२५— तीन सौ व्यासीवें पृष्ठ से तीन सौ चौरासीवें पृष्ठ तक=(३८२से३८४वें पृष्ठ तक) पुराणग्रन्थों और सूर्यसिद्धान्तादि ज्योतिष की एकवाक्यतानुसार सूर्यादिग्रहों के व्यासमानों और परिधिमानों का स्पष्ट विवेचन सरल संस्कृत भाषा में गणित के रूप में किया गया है, पाठकमहानुभावों की समझ में सरलता से आसकने के योग्य होने के कारण इस प्रसङ्ग की टीका को करना अनावश्यक ही समझा गया हैं।

२६— इस शोधग्रन्थ के तीन सौ पिचासीवें पृष्ठ से तीन सौ नवासीवें पृष्ठ तक "शैवतन्त्र, मत्स्यपुराण, वायुपुराण" के प्रमाणों के अनुसार की गई गणित का निष्कर्ष यह है कि— सुमेरुपर्वत के केन्द्र से सव दिशाओं में एकपार्श्वस्थ सप्तद्वीपों और सप्तसागरों की भूमि का योजनात्मक मान - दोकरोड़ - त्रेपनलाख - पचासहजार - योजन है, शुद्धोदकसागर के पश्चात् - एककरोड़ - सत्तावनलाख - पचासहजार - योजन भूमिकाञ्चनमयी=(सुवर्णमयी) है, इस भूमि में देवता क्रीडायें किया करते हैं, और अन्य प्रकार के कुछ प्राणी भी इस भूमि में निवास करते हैं, इस भूमि के पश्चात् - आठकरोड़ - उनतालीसलाख योजन - आदर्शतलोपमा-सुवर्णमयी भूमि है, इसमें देवता अनेक प्रकार की क्रीडायें किया करते हैं, इस भूमि में देवताओं के अलावा अन्य किसी

भी प्रकार के प्राणियों की स्थिति नहीं हुआ करती है।

२७— स्वादूदक सागर के तीन लाख - पचास हजार - योजन - भूभाग को मिलाकर तथा स्वादूदकसागर के वाद के जीवनिवास करने के योग्य-एककरोड़-सत्तावनलाख - पचासहजार भूभाग को मिलाकर और आठकरोड़ - उनतालीसलाख योजन भूभाग को मिलाकर - दशकरोड़ योजन भूगोल को देवताओं की क्रीडा के लिये शैवतन्त्र के पूर्वोक्त द्वितीय पद्य में कहा गया है, स्वादूदकसागर के भूभाग और स्वादूदक सागर से वाद के जीवनिवास योग्य भूभाग के विना - आठ करोड़ - उनतालीसलाख योजन भूभाग ही देवक्रीडामात्र के लिये गणित से सिद्ध होता है।

(त)— सुमेरुपर्वत के केन्द्र से पुष्करद्वीप के अन्त तक सुमेरु के दोंनों पार्श्वस्थ भूगोल का मान तीनकरोड़ उनासीलाखयोजन= (३७९००००० योजन) गणित से सिद्ध होता है।

(थ)— "व्यासात् त्रिगुणः परिधिः" परिधि गणित के इस सिद्धान्तानुसार - सुमेरुकेन्द्र के दोंनो पार्श्वस्थ पुष्करद्वीप के अन्त तक भूगोल की परिधि का मान ग्यारह करोड़ - सेंतीसलाख योजन=(११३७००००० योजन)गणित से सिद्ध होता है।

ग्रह - नक्षत्र - राशि - भूगोल में आकर्षणशक्ति का विवेचन

२८— आकाश में स्थित ग्रह - नक्षत्र - राशि और भूगोल में आकर्षणशक्ति है, इस तथ्य को सभी विद्वान् और वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं।

(च) वैज्ञानिक यह भी स्वीकार करते हैं कि— आकर्षणशक्तियुक्त पदार्थों के केन्द्र में विशिष्टाकर्षणशक्ति रहा करती है।

(छ) आकर्षणशक्तियुक्त भूगोल के केन्द्रस्थान जम्बूद्वीप में विशिष्टाकर्षणशक्ति है।

(ज) एकलाख योजन - वृत्ताकार-जम्भूद्वीप के केन्द्रस्थान=(मध्यभाग) में स्थित सोलह हजार योजन वृत्ताकार = (१६००० योजन गोलाई युक्त) सुमेरुपर्वत के प्रदेश में = (भूभाग में) विशिष्टाकर्षणशक्ति की सत्ता सदा बनी रहती है, इसी वैज्ञानिक सिद्धान्त को मानकर ही तत्वदर्शी ऋषियों ने आर्षग्रन्थों में जम्बूद्वीप के केन्द्र से ही भारतादि वर्षों में ग्रहगणित की आनुपातिक व्यवस्था करने का वैज्ञानिक निर्देश दिया है।

(झ) जम्बूद्वीप का मान एकलाख योजन=(१००००० योजन) , जम्बूद्वींप के केन्द्र का मान सोलह हजार योजन=(१६००० योजन) , भारतवर्ष का मान दशहजार योजन है।

भारतवर्ष के योजनात्मक केन्द्रमान को जानने के लिये त्रैराशिक गणित का उपयोग

२९— एकलाख योजन जम्बूद्वीप में सोलहहजार योजन केन्द्रमान प्राप्त होता है, तो दशहजार योजन भारतवर्ष में कितना केन्द्रमान प्राप्त होगा ?

आनुपातिक त्रैराशिक गणित की क्रिया का प्रदर्शन

$$(\text{प})\ \frac{१६००० \text{ योजन} \times १०००० \text{ योजन}}{१००००० \text{ योजन}}$$ = १६०० योजन भारतवर्ष की भूमि का केन्द्र मान प्राप्त होता है।

त्रैराशिकगणित से जम्बूद्वीप और भारतवर्ष के मान को जानने का प्रकार

३०— सोलह सौ योजन भारतवर्ष के भूकेन्द्रव्यास = (भूकर्ण) में यदि दशहजार योजन भारतवर्ष का भूमान प्राप्त होता है तो सोलहहजार योजन जम्बूद्वीप के भूकेन्द्र-व्यास=(भूकर्ण) में जम्बूद्वीप की भूमि का कितना मान प्राप्त होगा ?

आनुपातिक क्रिया का प्रदर्शन

$$(\text{फ})\ \frac{१०००० \text{ योजन} \times १६००० \text{ योजन}}{१६०० \text{ योजन}}$$ = १००००० योजन जम्बूद्वीप का भूमान प्राप्त होता है।

$$(\text{व})\ \frac{१००००० \text{ योजन} \times १६०० \text{ योजन}}{१६००० \text{ योजन}}$$ = १०००० योजन भारतवर्ष भूमान प्राप्त होता है।

३१— पूर्वोक्त विवेचनानुसार ज्यौतिष और पुराणग्रन्थों में भूगोल का मान एक-वरावर = (एकसा) वर्णन किया गया है, तदनुसार पुराण और ज्यौतिष में लेशमात्र भी विरोध नहीं है, अपितु एकवाक्यता ही सिद्ध होती है। भूगोलमान और ग्रहों के स्थितिक्रम आदि के सम्वन्ध में ज्यौतिष और पुराण का परस्रर में विरोध नहीं होने पर भी जो सज्जन विरोध होने का प्रलाप करते हैं, वे भ्रान्त ही हैं।

[इति द्वादशाध्यायः]

—:×:—

त्रयोदशाध्यायः

आर्षवर्षावायुविज्ञानपोषक - जम्बूद्वीपादिभूगोलपरिधिव्यास - विवेचक -त्रयोदशाध्यायः

प्रथमद्वितीयभास्कराचार्ययोः - कमलाकरभट्टस्य च परिचयोऽत्र मया शोध-निबन्ध - पुष्टये दीयेते,

भारतवर्षे विख्यातौ द्वौ भास्कराचार्यौ बभूवतुः , यः प्रथमो भास्कराचार्यः स आयुर्वेदस्य संहिताकारकः व्याकरणग्रन्थानां च कारकः बभूव, अयमेव प्रथमः भास्कराचार्यः - स्वशिष्यैः प्रशिष्यैश्च-आयुर्वेदस्य प्रचारकः, वेद-वेदाङ्गादि - समस्तशास्त्राणां च विशेषज्ञः बभूव ।

यो द्वितीयो भास्कराचार्यः स व्याकरण - साहित्य-गणितशास्त्रेषु पटीयान् - "बीजगणित - लीलावती - सिद्धान्तशिरोमणि" प्रभृतिग्रन्थान् लोकप्रसिद्धान् चकार ।

(१) प्रथमभास्कराचार्यस्य समुत्पत्तिस्तु - प्रलयावसानानन्तरं - सृष्ट्यारम्भकाले एव-बभूव, अस्य प्रथमभाकराचार्यस्य विषये "ब्रह्मावैवर्ते षोडशे १६"अध्याये विस्तृत-वर्णनं अद्यापि - उपलभ्यते ।

ब्रह्मावैवर्तोक्तमत्र लिखामि......

"ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः ।
विचिन्त्य तेषामर्थं चैवायुर्वेदमवीवदत् ॥१॥
कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः ।
स्वतन्त्रां संहितां तस्माद् भाकरश्च चकार सः ॥२॥
भास्करश्च स्वशिष्येभ्य आयुर्वेदं स्वसंहिताम् ।
प्रददौ पाठयामास ते चक्रुः संहितास्ततः ॥३॥
तेषां नामानि विदुषां तन्त्राणि तत्कृतानि च ।
व्याधिप्रणाशबीजानि साध्वि! मत्तो निशामय ॥४॥
धन्वन्तरि दिवोदासः काशिराजोऽस्विनीसुतौ ।
नकुलः सहदेवार्की च्यवनो जनको बुधः ॥५॥
जाबालो जाजलिः पैलः करभोऽगस्त्य एव च ।
एते - वेदाङ्गवेदज्ञा - षोडश - व्याधिनाशकाः ॥६॥
चिकित्सातत्त्वविज्ञानं नाम तन्त्रमनोपमम् ।
धन्वन्तरिश्च भगवान् चकार प्रथमं ततः ॥७॥

चिकित्सादर्पणं नाम दिवोदासश्चकार ह ।
चिकित्साकौमुदीं दिव्यां काशिराजश्चकार सः ॥८॥
चकार सहदेवश्च व्याधिसिन्धुविमर्दनम् ।
ज्ञानार्णवं महातन्त्रं यमराजश्चकार सः ॥९॥
च्यवनो जीवदानं च चकार भगवानृषिः ।
चकार जनको योगी वैद्यसन्देह - भञ्जनम् ॥१०॥
सर्वसारं चन्द्रसुतो जावालस्तन्त्रसारकम् ।
वेदाङ्गसारं तन्त्रं च चकार जाजलि र्मुनिः ॥११॥
पैलो निदानं करभस्तन्त्रं सर्वधरं परम् ।
द्वैधनिर्णयतन्त्रं च चकार कुम्भसम्भवः ॥१२॥
चिकित्सशास्त्रबीजानि तन्त्राण्येतानि षोडश ।
व्याधिप्रणाशबीजानि बलाधानकरणानि च ॥१३॥
मथित्वा ज्ञानमन्थानैरायुर्वेदपयोनिधिम् ।
ततस्तन्त्राणि चोज्जह्रु नंवनीतानि कोविदाः ॥१४॥
एतानि क्रमशो दृष्ट्वा दिव्यां भास्करसंहिताम् ।
आयुर्वेदं सर्वबीजं सर्वं जानामि सुन्दरि! ॥१५॥
व्याधेस्तत्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ।
एतद् वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥१६॥
आयुर्वेदस्य विज्ञाता चिकित्सासु यथार्थवित् ।
धर्मिष्ठश्च दयालुश्च तेन वैद्यः प्रकीर्तितः ॥१७॥

उपर्युक्तः परिचयस्तु प्रथमभास्कराचार्यस्य अस्ति ।

(२) द्वितीयभास्कराचार्यस्य परिचयः......

सिद्धान्तशिरोमणेः निर्माणकारकेण द्वितीयभास्कराचार्येण गोलाध्यायान्तर्गत - प्रश्नाध्यायान्ते स्वयमेव स्वकीयः परिचयः प्रदत्तः, सिद्धान्तशिरोमणी-श्रीभास्कराचार्याः विलिखन्ति......

आसीत् सह्यकुलाचलाश्रितपुरे त्रैविद्यविद्वज्जने -
नानासज्जनधाम्नि - विज्डविडे शाण्डिल्यगोत्रो द्विजः ।
श्रौतस्मार्त - विचारसारचतुरो निःशेषविद्यानिधिः -
साधूनामवधिर्महेश्वरकृती दैवज्ञचूडामणिः ॥१॥
तज्जस्तच्चरणारविन्दयुगल - प्राप्तप्रसादः सुधीः
मुग्धोद्बोधकरं विदग्धगणकप्रीतिप्रदं प्रस्फुटम् ।
एतद् - व्यक्त - सदुक्ति - युक्तिबहुलं हेलावगम्यं विदाम् -
सिद्धान्तग्रथनं कुबुद्धिमथनं चक्रे कवि र्भास्करः ॥२॥
रसगुणपूर्णमही - "१०३६" - समशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः ।
रसगुण - '३६" वर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणी रचितः ॥३॥

गणितस्कन्धसन्दर्भोऽदभ्रदर्भाग्रधीमतः ।
उचितोऽनुचितो यन्मे धार्ष्ट्यं तत् क्षम्यतां विदः ॥४॥

ये वृद्धा लघवोऽपि येऽत्र गणका वद्ध्वाञ्जलिं वच्मि तान् -
क्षन्तव्यं मम तै मया यदधुना पूर्वोक्तयो दूषिताः ।
कर्तव्ये स्फुटवासनाप्रकथने पूर्वोक्तविश्वासिनाम् -
तत्तद् दूषणमन्तरेण नितरां नास्ति प्रतीति र्यतः ॥५॥

वर्तमानसमये - शर-नव - अष्ट - चन्द्र="१८९५" प्रमितः श्रीशालिवाहन - नृपशकः प्रचलित, सिद्धान्तशिरोमणि-निर्माणकालस्तु षट्त्रिंशाधिकैकसहस्र - "१०३६" शालिवाहननृपशकोऽस्ति, वर्तमानात् शरनवाष्टचन्द्र= १८९५ प्रमितात् - शालिवाहन-शकात् सिद्धातशिरोमणिनिर्माणकालबोधके - षडग्निशून्यचन्द्र = "१०३६" प्रमिते शालिवाहनशके शोधिते सति=१८९५—१०३६=८५९=एकोनषष्ट्युत्तरअष्टशत - वर्षपूर्वं सिद्धान्तशिरोमणिकारकस्य श्री भास्कराचार्यस्य-उत्पत्ति र्वभूव, इति सिद्ध्यति।

रसगुण - "३६"वर्षवयः प्रमितेन श्रीभाकराचार्येण सिद्धान्तशिरोमणेः - रचना कृता, अतः - १०३६+३६= १०७२ प्रमिते शालिवाहननृपशके - सिद्धान्तशिरो - मणेः - रचना सम्पन्ना इत्यपि सिद्ध्यति ।

वर्तमानसमये प्रचलितात् - १८९५ प्रमितात् शालिवाहननृपशकात् - सिद्धान्त-शिरोमणेः - रचनासम्पन्नशके=१०७२ प्रमिते संशोधितेसति =१८९५—१०७२= ८२३ त्रयोविंशाधिकाष्टशतवर्षप्रमितप्राचीनः सिद्धान्तशिरोमणिः अस्तीति सिद्ध्यति।

रसगुणवर्षवयः प्रमितेन श्री भास्कराचार्येण सिद्धान्तशिरोमणेः - रचना कृता, अतः सिद्धान्तशिरोमणेः प्राचीनताद्योतकेषु गतवर्षेषु षट्त्रिंशद्वर्षयुक्तेषु सत्सु - ८२३ +३६=८५९ वर्षप्राचीनः - भास्कराचार्यः एव सिद्धान्तशिरोमणिकारकः सिद्ध्यति।

सिद्धान्तशिरोमणिनिर्माणकारकेण द्वितीय - भास्कराचार्येण - आयुर्वेदशास्त्रस्य - तर्कशास्त्रस्य व्याकरणशास्त्रस्य च न कोऽपि ग्रन्थो विरचितः, ब्रह्मावर्तोक्तः प्रथमः - एव - भास्कराचार्यः - आयुर्वेददादिसंहिताकारको बभूव ।

द्वितीयभास्कराचार्यविषये श्रीमुरलीधरठक्कुरमहोदयमतस्य खण्डनमत्र करोमि

श्री हरिकृष्णनिबन्धभवन - वाराणसीतः - वेद - नव - नन्द-चन्द्र "१९९४" प्रमिते वैक्रमाब्दे प्रकाशिते - श्रीभास्करार्य - विरचित "लीलावती" नामकगणितग्रन्थे टीकाकारैः - ग्रन्थभूमिकालेखकैश्च ज्यौतिषाचार्य श्रीमुरलीधरठक्कुरमहोदयैः यद् - विलिखितम्......

अष्टौ व्याकरणानि षट् च भिषजां व्याचष्ट ताः संहिताः -
षट्तर्कान् गणितानि पञ्च चतुरो वेदानधीते स्म यः ।
रत्नानां त्रितयं द्वयं च बुबुधे मीमासयोरन्तरम् -
सद् ब्रह्मैकमगाधबोधमहिमा सोऽस्याः कवि र्भास्करः ॥१॥
भास्करस्य गिरां सारं भास्करो वा सरस्वती ।
चतुर्मुखोऽथवा वेत्ति विदु र्नान्ये तु मादृशाः ॥२॥

उक्तश्लोकयोः सिद्धान्तशिरोमणि - लीलावती - बीजगणितादिज्यौतिषगणित-ग्रन्थ - रचयितुः श्रीभास्कराचार्यस्य - विषये - श्रीमुरलीधर - ठक्कुरमहोदयानां कथनं तु - निराधारं भ्रान्तिप्रदं अयुक्तं च - वरीवर्ति, इति - निष्पक्षया मध्यस्थया - धिया विवेचनीयं तटस्थैः विद्वद्भिः, यतो हि - एतादृशलक्षण - लक्षितस्तु-श्रीब्रह्मावैवर्तोक्तः - प्रथमः - एव भास्करो बभूव, न तु अयं सिद्धान्तशिरोमणिकारको - वराको द्वितीयो भास्करः ।

सिद्धान्तशिरोमणिकारकस्य द्वितीयस्य - अस्य - भास्कराचार्यस्य युक्तियुक्तं खण्डनं - श्रीकमलाकरभट्टमहोदयैः - स्वनिर्मिते - "सिद्धान्ततत्वविवेके,' कृतम् इति तु विदन्त्येव - विद्वांसः ।

सिद्धान्ततत्वविवेकस्य टीकाकारैः ज्यौतिषाचार्य श्री गङ्गाधरमिश्रमहोदयैः - स्वकृतटीकायां - बहुषु - स्थलेषु - श्रीकमलाकरभट्टोपरि अयुक्ताः - आक्षेपाः - कृताः, बहुषु स्थलेषु च - श्रीभास्कराचार्यस्य-अयुक्तमेव समर्थनं कृतम्......इति, तु प्रत्यक्ष-मेवास्ति निष्पक्षसमीक्षावतां विदुषाम् ।

श्रीकमलाकरभट्टस्य परिचयोऽपि - अत्रैव प्रसङ्गे मया दीयते

दृग्गोलज - क्षेत्र - विचार - युक्त्या पूर्वोक्तितः श्रीकमलाकराख्यः ।
समस्त - सिद्धान्त - सुगोल - तत्वविवेक - संज्ञं- किल- सौरतन्त्रम् ॥१३॥
खनागपञ्चेन्दुशके - व्यतीते - सिद्धान्तमार्याभिमतं समग्रम् ।
भागीरथी - सौम्यतटोपकण्ठ - वाराणसीस्थो रचयां बभूव ॥१४॥

उक्तौ श्लोकौ सिद्धान्ततत्वविवेके ग्रन्थोपसंहाराध्याये - स्तः, उक्तश्लोकानु-सारेण "खनागपञ्चेन्दुशके= "१५८०" प्रमिते शालिवाहन-शके श्रीकमलाकअभट्टेन सिद्धान्ततत्वविवेकस्य रचना कृता इति सिद्ध्यति ।

साम्प्रतं तु - एकसहस्र - अष्टशत - पञ्चोत्तरनवतिप्रमितः="१८९५प्रमितः' शालिवाहनशकाब्दः - गतः, अतः– १८९५ – १५८०=३५१ =(पञ्चदशोत्तरत्रिशत वर्षप्राचीनः) सिद्धान्ततत्वविवेकः सिद्ध्यति ।

सह्यकुलाचलाश्रितपुरे= "सह्य" नामकपर्वस्य समीपे "विज्जडविड" नाम्नि-ग्रामेऽथवा नगरे - तत्रैव "महेश्वर" नामकविदुषः- गृहे "रसगुणपूर्णमही"='१०३६' संख्याप्रमिते शालिवाहनशके श्रीभास्कराचार्यस्य - उत्पत्तिः - बभूव ।

साम्प्रतं तु - एकसहस्र - अष्टशत - पञ्चोत्तरनवतिप्रमितः="१८९५प्रमितः" शालिवाहनशकाब्दः गतः ।

अतः १८९५ – १०३६=८५९=उभयोः - अन्तरे कृते सति वर्तमानसमयतः अष्टशतैकोनषष्टि='८५९' वर्षपूर्वं भास्कराचार्यः-समुत्पन्नः इति सिद्ध्यति ।

जन्मशकाब्दानन्तरं - षट्त्रिंशत् - "३६" प्रमितेषु वर्षेषु गतेषु सत्सु षट्त्रिंशत्-प्रमिते वयसि श्रीभास्कराचार्यैः - सिद्धान्तशिरोमणिः विरचितः ,

अतः= १०३६+३६ = १०७२= सिद्धान्तशिरोमणेः रचनाशकः ।

१८९५ = वर्तमानकालिकः शकः ।
−१०७२ = सिद्धान्तशिरोमणेः रचनाशकः ।

८२३ = अष्टशत - त्रयोविंशति - वर्ष पूर्वं सिद्धान्तशिरोमणेः' रचना कृता भास्कराचार्येण - इति सिद्ध्यति ।

अतः ८२३ वर्षप्रमितकालप्राचीनः सिद्धान्तशिरोमणिः अस्तीति सिद्ध्यति ।

८२३ = वर्षप्राचीनः सिद्धान्तशिरोमणिः ।
−३१५ = वर्षप्राचीनः सिद्धान्ततत्वविवेकः ।

५०८ = अष्टशून्यपञ्च-वर्षप्रमितं - सिद्धान्तशिरोमणि - सिद्धान्त. तत्वविवेकयोः- निर्माणकाले- अन्तरमस्तीति सिद्ध्यति ।

अतः सिद्धान्तसिरोमणिः - सिद्धान्ततत्वविवेकात् अष्टोत्तरपंचशत "५०८"वर्षं पूर्वं निर्मितः इति सिद्ध्यति ।

श्रीमद्भागवत - महापुराणानुसारेण "व्यासात् त्रिगुणः परिधिः"- भवतीतिप्रतिपादनमत्र करोमि

जम्बूद्वीपमध्ये स्थितस्य सुमेरुपर्वतस्य केन्द्रतः आरभ्य- पुष्करद्वीपमध्ये स्थितस्य मानसोत्तरपर्वतस्य प्रारम्भप्रदेशं यावत् तावत्-एककोटि-सप्तोत्तरपंचाशल्लक्ष-पञ्चाशत्. सहस्र= "१५७५००००" योजनप्रमितं दूरीमानमस्ति ।

सुमेरुपर्वतमध्यभाग - मानसोत्तरपर्वतप्रारम्भभागयोः मध्ये विद्यमानं१५७५००००' योजनप्रमितभूमिमानं व्यासार्धरूपमस्तीति भावः ।

व्यासार्धे द्विगुणे कृते सति पूर्णव्यासस्य मानं सम्पद्यते, अत १५७५००००×२ = ३१५००००" वृत्ताकारमानसोत्तरपर्वते - एकलक्षयोजनविस्तार "व्यास" युक्तं रविरथचक्रं "सूर्य के रथ का पहिया" भ्रमति , अतः पूर्वोक्ते व्यासार्धे - एकलक्ष योजन "१०००००' प्रमिते रविरथचक्रव्यासमाने संयुक्ते सति - १५७५०००० + १००००० = १५८५०००० योजनप्रमितं रविभ्रमणमार्गस्य व्यासार्धमानं समायाति, व्यासार्धमानेद्विगुणे ते सति- १५८५×२= ३१७०००००" योजनप्रमितं रविभ्रमण-मार्गस्य व्यासमानं सिद्ध्यति, "व्यासात् त्रिगुणः परिधिः भवति" इतिसिद्धान्तात्-अत्र व्यासमाने त्रिगुणे कृते सति = ३१७०००००×३ = ९५१००००० योजनप्रमितं-वृत्ताकारे मानसोत्तरपर्वते परिभ्रमणात्मकं परिधिमानं सिद्ध्यति ।

उपर्युक्तस्य गणितस्य पुष्टिः श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे कृता श्रीशुकदेवप्रभृतिभिः ऋषिभिः - निम्नाङ्कितरीत्या ।

"एवं नवकोटयः एकपञ्चाशल्लक्षाणि योजनानाम् - मानसोत्तरगिरिपरिवर्तनस्य - उपदिशन्ति, तस्मिन् "ऐन्द्रीं पुरीं पूर्वस्मात् · मेरोः देवधानीं नाम, दक्षिणतो याम्यां संयमनीं नाम, पश्चाद् वारुणीं - निम्लोचनीं नाम, उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम, तासु उदय - मध्याह्न - अस्तमयनिशीथानि - इति भूतानां - प्रवृत्ति - निवृत्ति-निमित्तानि - समयविशेषेण मेरोः - चतुर्दिशम् ।

श्रीविष्णुपुराणमत्स्यपुराण- "वायुपुराणेषु - अपि व्यासात् त्रिगुणः परिधिः - भवति, इत्यस्यैव सिद्धान्तपक्षस्य प्रतिपादनमुपलभ्यते सर्वत्र ।

"व्यासात् - त्रिगुणः परिधिः" 'वृत्तस्य षण्णत्यंशो दण्डवत् परिदृश्यते' इत्यस्य प्रत्यक्षबोध - प्रकारं प्रतिपाद्य, परिधिविषये श्रीभास्कराचार्यमतस्य - खण्डनमत्र करोमि

(१)— लोकप्रसिद्धे साम्प्रतं व्यवहारे प्रचलिते "पैमाना" संज्ञके दण्डे द्वादश-इञ्चाः - भवन्ति, एकस्मिन् - इञ्चे समानाः तुल्यान्तरिताश्च दशभागाः भवन्ति, ते च भागाः- भारतीयभाषायां भारतस्थैः - जनैः "सूत" संज्ञकाः - अन्यत्रस्थैः - जनैश्च-अन्यान्यसंज्ञकाः - उच्यन्ते ।

(२)— अष्टचत्वारिंशत्सूततुल्यं= "४८ सूततुल्यम्" अर्थात् - द्विसूतोन-पञ्चेञ्च - तुल्यं- व्यासार्धं प्रकल्य, तेन व्यासार्धेन वृत्तं कार्यम् ।

(३)— अष्टचत्वारिंशत्="४८" सूतप्रमिते - प्रकल्पिते व्यासार्धे - द्विगुणे कृते सति "४८×२ = ९६" = षण्णवतिसूतप्रमितं सम्पूर्णव्यासमानं समायाति ।

(४)— "व्यासात् - त्रिगुणः परिधिः" इति - आर्षगणितसिद्धान्तानुसारेण व्यासमाने त्रिगुणिते सति = "९६×३ = २८८" अष्टोत्तराशीत्यधिक-द्विशत-सूत-प्रमितं परिधिमानं सिद्ध्यति ।

(५)— स्वनिर्मितायां "साकल्यसंहितायाम्" प्रत्यक्षदर्शिना "साकल्य' नाम्ना प्रसिद्धेन-ऋषिणा- "वृत्तस्य षण्णवत्यंशो दण्डवत् परिदृश्यते" इति वृत्तगणितसिद्धान्तोक्तत्वात् - अष्टाशीत्यधिकद्विशत- "२८८" सूतप्रमिते- परिधिमाने - षण्णवति- "९६' संख्यया विभक्ते सति= २८८/१÷९६/१=२८८/१×१/९६= ३ त्रिसूतप्रमितः षण्णवत्यंशः दण्डाकारः ऐव प्रत्यक्षं दरीदृश्यते वृत्ते ।

(६)— "य- र- ल- व" वृत्तं १यर, २रल, ३लव, ४वय, इति चतुर्षु चरणेषु विभज्य स्थापनीयम् , 'य- र- ल- व" वृत्ते स्थितस्य "य- र" चरणस्य त्रित्रिसूततुल्य-खण्डेषु = "अंशेषु=भागेषु" कृतेषु सत्सु दण्डाकाराः समानान्तरिताः समानमानाश्च चतुर्विंशति "२४" अंशाः== "भागाः" उपलभ्यन्ते, ते च भागाः- २४×३= ७२ सूतसमाः - भवन्ति - एकस्मिन् - एव वृत्तचरणे, वृत्तस्य चतुर्षु चरणेषु तु= ७२×४ =२८८ सूताः"= २४×४= ९६ अंशाः= भागाः भवन्ति, वृत्तस्य निर्माणावसरे एतावान् एव षण्णवति = "९६" सूतप्रमितः - व्यासः कल्पितो मया ।

(७)— अतः - उपर्युक्तवृत्तगणितरीत्या "व्यासात् त्रिगुणः परिधिः "वृत्तस्य-षण्णवत्यंशः दण्डवत् परिदृश्यते" इति - आर्षगणितोक्तौ - उभौ - अपि - सिद्धान्तौ प्रत्यक्षसिद्धौ भवतः ।

(८)— वृत्तस्य षण्णवति=९६ प्रमिते भागे - एव वृत्तत्वनिवृत्तिः - भवति , दण्डाकारत्वं समत्वं च समायाति, कस्यापि वृत्तस्य षण्णवति = "९६" भागेभ्योऽपि-अधिकेषु भागेषु कृतेषु - दण्डाकारभागस्य खण्डानि - दण्डाकाराणि - एव जायन्ते,

प्रथमावसरोत्पन्नदण्डाकारस्य विनिवृत्तिश्चापि जायते तत्र, अतः षण्णवति '९६" अंशप्रमिते एव - दण्डाकारविधानार्थं - षण्णवतिभागेभ्यः- अधिकभागकरणं - तु-अनावश्यकं पिष्टपेषणं भवतीति गणितसिद्धान्तं स्वीकृत्य "वृत्तस्य षण्णवत्यंशो दण्डवत् परिदृश्यतें" इत्येतादृशः - गणितसिद्धान्तस्य डास्तविकः पक्षः प्रतिपादितः प्रत्यक्षदर्शिभिः ऋषिभिः।

वृत्तस्य षण्णवत्यंशः दण्डाकारः भवतीति प्रत्यक्षबोधकं चित्रम्
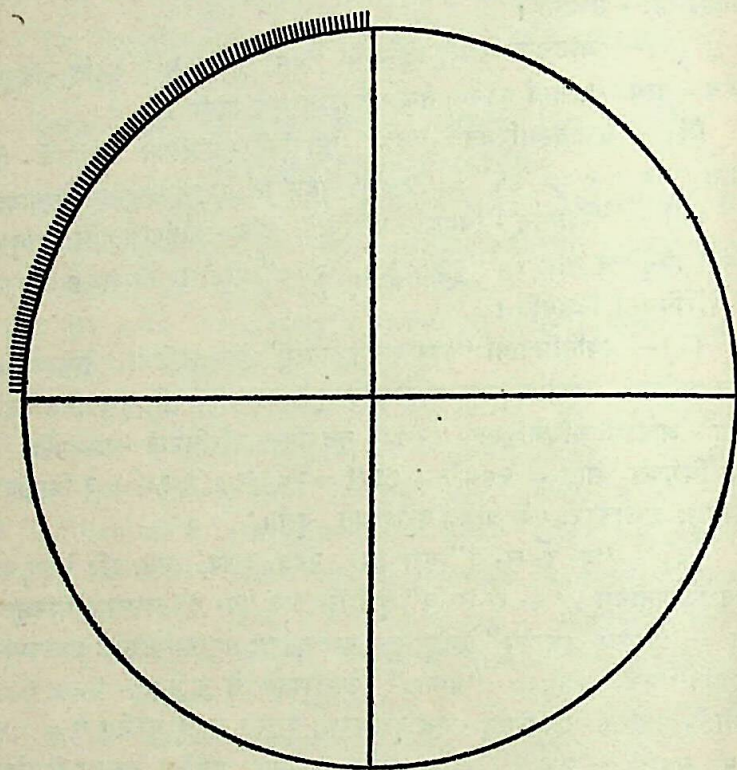
सिद्धान्तशिरोमणिकार - भास्कराचार्यमतस्य खण्डनम्

(९)— गोलाध्याये भुवनकोशे त्रयोदशे श्लोके श्रीभास्कराचार्याः लिखन्ति— "समो यतः स्यात् परिधेः शतांशः" इत्यत्र परिधेः शतांश - एव समः = दण्डाकारः समुक्तः भास्कराचार्यैः, एवं च कुभुजङ्गसायकभुवः = १५८१ प्रमितं भूव्यासमानं स्वीकृत्य, तस्य भूव्यासस्य सप्ताङ्गनन्दाब्धयः = ४९६७ प्रमितः परिधिः- कथितः भास्कराचार्यैः, भास्कराचार्योक्तः अयं परिधिः त्रिगुणात् व्यासमानात् अपि अधिकः वर्तते

मयापूर्वं श्रीभास्कराचार्यस्य यत् खण्डनं कृतं तस्य सारांशमत्र स्वरचितसरलपद्येषु लिखामि—

(१०)— श्रीभास्कराचार्योक्तौ भूपरिधिव्यासौ प्रत्यक्षतः विरुद्धौ अशुद्धौ अविचारितरमणीयौ भ्रान्तिप्रदौ आर्षमतविरुद्धौ च स्तः, इत्यत्र निष्पक्षया शोधधिया विचारो विधेयो विचारशीलैः गवेषकैः विद्वद्भिः ।

११— परिधिरूपवृत्तस्य समसंज्ञः शतांशकः ।
अयुक्तो भास्कराचार्यैं दण्डाकारः प्रकीर्तितः ॥४१॥
परिधिरूपवृत्तस्य षण्णवत्यंशकस्तु यः ।
दण्डाकारसमो वृत्ते दृष्टियुक्तैं विलोक्यते ॥४२॥
दण्डाकारः शतांशस्तु परिधे नैंव जायते ।
दण्डस्य जायते खण्डं शतांशः परिधेः सदा ॥४३॥
शाकल्यसंहितायां तु तैः प्रत्यक्षानुमोदितः ।
वृत्तस्यषण्णवत्यंशो दण्डवत् परिकीर्तितः ॥४४॥
त्रिगुणः परिधि र्व्यासात् सदा प्रत्यक्षगोचरः ।
परिधौ च त्रिभि र्भक्ते व्यासोऽपि दृष्टिगोचरः ॥४५॥
जायते परिधि र्व्यासाद्व्यासस्तु परिधेः सदा ।
समीचीनौ सदा दृग्भ्यां लोकितौ तौ मुनीश्वरैः ॥४६॥
शिरोमणौ समुक्तौ तौ परिधिव्याससंज्ञकौ ।
श्रीमद्भिः भास्कराचार्यैं स्त्वार्षमतविरोधकौ ॥४७॥
वृत्तस्य षण्णवत्यंशो दण्डवत् परिदृश्यते ।
इति प्रोचुः सदा सर्वे शाकल्यादिमुनीश्वराः ॥४८॥
प्रत्यक्षस्य विरोधस्तु भास्करैः भ्रान्तितः कृतः ।
शिरोमणौ तटस्थैः स विचिन्त्यो विनिवेदये ॥४९॥
पैमानासंज्ञकं दण्डं हस्ते नीत्वा प्रयत्नतः ।
आर्षोक्तं भास्करोक्तं च मयोक्तं हे सुधीवराः! ॥५०॥
तटस्थया धिया विज्ञाः ! निष्पक्षेणैव चेतसा ।
विचारयन्तु विद्वांसो विनम्रो विनिवेदये ॥५१॥
लल्लोक्तं भास्करोक्तं च मयोक्तं शोधया धिया ।
प्रयत्नतः प्रपश्यन्तु विद्वांसो विनिवेदये ॥५२।
भास्कराचार्यवर्याणां यत्र कुत्रापि खण्डनम् ।
मया कृतं न विद्वेषात् - शोधबुध्यैव खण्डनम् ॥५३॥
आर्षग्रन्थविरुद्धं तु लल्लाद्यै र्यत्र चोदितम् ।
मया तत्र कृतं तेषां लल्लादीनां प्रखण्डनम् ॥५४॥
गोलाकारे तु भूगोले द्वीपसागरसंस्थितिम् ।
लल्लाद्या भास्कराद्याश्च वक्तुं नैव समर्थकाः ॥५५॥]

लल्लोक्तौ भ्रान्तिदौ सिद्धौ चाक्षेपौ गणितागमात् ।
आर्षोक्तात् तु मया विज्ञाः ! भ्रान्तिघ्नं खण्डनं कृतम् ॥५६॥

स्वरचितेषु - निम्नलिखितेषु पद्येषु - लल्लादीनामुपरि- आक्षेपमत्र करोमि

१२— लल्लश्रीपतिभास्करैरार्यभट्टमुनीश्वरैः ।
विभिन्नौ परिधिव्यासौ प्रोक्तौ स्वस्वमतानुगौ ॥५७॥
शुक - व्यास - पराशरै- र्वायुमत्स्यपुराणगैः ।
ऋषिभिः परिधिव्यासौ तुल्योक्तौ तत्वदर्शिभिः ॥५८॥
आर्षग्रन्थेषु सर्वेषु विरोधो न परस्परम् ।
परस्परविरोधस्तु ह्यनार्षेष्वेव वर्तते ॥५९॥
ऋषिभिः परिधिव्यासौ योगदृष्ट्यावलोकितौ ।
वास्तविकावतो नैव भेदो लब्धो मुनीश्वरैः ॥६०॥
अनार्षैः परिधिव्यासौ स्वदृष्ट्या नैव लोकितौ ।
अतो भिन्नौ समुक्तौ तौ स्वकीयेनानुमानतः ॥६१॥

मया विनिर्मितेषु उपर्युक्तेषु पद्येषु सिद्धान्तपक्षस्य प्रतिपादनमस्ति नवा इति विद्वद्भिः गवेषकैश्च निष्पक्षया धिया विचारो विधेयः ।

"गोलाध्याये श्रीभास्कराचार्यैः या - अव्यवस्था कृता - तस्याः- अव्यवस्थायाः - स्पष्टीकरणं स्वरचितेषु पद्येषु - अत्र - करोमि"—

१३— कतियोजनमानं हि जम्बूद्वीपस्य वर्तते ।
मानं क्षारसमुद्रस्य वर्तते कति योजनम् ॥६२॥
द्वीपानां तु तथान्येषां सागराणां तथैव च ।
षण्णां योजनमानं तद्वर्तते हि किमयन्मितम् ॥६३॥
शिरोमणौ न कुत्रापि प्रोक्तं विज्ञैस्तु भास्करैः ।
मानेनैव विना धीरैः कृतं द्वीपादिवर्णनम् ॥६४॥
भूमिमध्यगता प्रोक्ता क्षारसागरसंस्थितिः ।
ततस्तु चोत्तरे भागे जम्बूद्वीपस्य संस्थितिः ॥६५॥
षड्द्वीपाः सागराः षट् च दक्षिणे कीर्तितास्तु तैः ।
निरक्षः कथितो देशो जम्बूक्षीराब्धिसन्धितः ॥६६॥
भूर्लोको दक्षिणे भागे निरक्षात् तैस्तु भास्करैः ।
सौम्यभागे भुवः प्रोक्तः स्वश्च मेरौ प्रकीर्तितः ॥६७॥
महो जनस्तपः सत्यमाकाशे क्रमशः स्थिताः ।
प्रोक्ताः श्रीभास्कराचार्यै र्योजनमानवर्जिताः ॥६८॥
निराधारा स्वतन्त्रै स्तैः कल्पनेयं शिरोमणौ ।
स्वतन्त्रै र्भास्कराचार्यैः कृता नास्त्यत्र संशयः ॥६९॥

द्वीपसागरसंस्थानं चतुर्दशलोकवर्णनम् ।
स्वकल्पितं कृतं प्राज्ञै र्भास्करै र्नात्र संशयः ॥७०॥

अतः उपर्युक्तप्रत्यक्षसिद्धगणितसिद्धान्तानुसारेण - एकलक्षयोजन=(१००००० योजन) वृत्ताकारस्य जम्बूद्वीपस्य - एकलक्षयोजनप्रमितो व्यासः त्रिलक्षयोजन= "३०००००" प्रमितश्च परिधिः सिद्ध्यति ।

सुन्दरी टीका— आर्षवर्षा-वायुविज्ञान के पोषक जम्बूद्वीपादि द्वीपों के परिधि और व्यास के मानों के विवेचक तेरहवें अध्याय का निष्कर्ष इस अध्याय की सुन्दरी टीका में दिया जा रहा है ।

विश्वविख्यात भारतवर्ष के प्रथम भास्कराचार्य का परिचय

(१)— प्रलयकाल के अनन्तर सृष्टि के आरम्भ में अब से लगभग पौने दो अरब वर्षपूर्व भारत में उत्पन्न हुए प्रथम भास्कराचार्य का परिचय "ब्रह्मावैवर्तपुराण" के सोलहवें अध्याय में प्रथम श्लोक से सत्रहवें श्लोक तक - (१ श्लोक से १७वें श्लोक तक) विस्तारपूर्वक दिया गया है, इन श्लोकों का सारांश यह है कि— सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के मुखारविन्द के श्वासों से "ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद" इन चारो वेदों के प्रकट होने के बाद "आयुर्वेद" का प्रादुर्भाव भी ब्रह्मा के निःश्वास से हुआ था, सृष्टितर्ता ब्रह्मा ने प्रसार और प्रचार के उद्देश्य से आयुर्वेदशास्त्र को उस समय की सृष्टि के "भास्कराचार्य" को सौंप दिया था, समस्त वेदों और वेदाङ्गों के दिग्गज विद्वान् सृष्टिप्रारम्भकालीन भास्कराचार्य ने ईश्वरप्रदत्त अपनी अद्भुत प्रतिभा से आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थों की रचनायें करके, अपने शिष्यों और प्रशिष्यों के द्वारा आयुर्वेद का अच्छे ढंग से प्रचार और प्रसार किया था, इन भास्कराचार्य ने ही व्याकरण-न्याय - दर्शनादिशास्त्रों के अनेक ग्रन्थ भी लिखे थे ।

द्वितीय भास्कराचार्य का परिचय

(२)— अठारह सौ पिचानवै=(१८९५)शालिवाहन शक से आठ सौ उनसठ =(८५९) वर्ष पूर्व द्वितीय भास्कराचार्य का जन्म भारतवर्ष में हुआ था, ये द्वितीय भास्कराचार्य व्याकरण - साहित्य - ज्योतिष आदि अनेक विषयों के प्रकाण्ड विद्वान् थे, इन द्वितीय भास्कराचार्य ने ही अठारहसौ पिचानवै=(१८९५) शालिवाहन शक से आठ सौ तेईस=(८२३) वर्ष पूर्व ,'सिद्धान्तशिरोमणि" नाम के अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ को बनाया था , "सिद्धान्तशिरोमणि" की रचना करने से पूर्व श्री भास्कराचार्य ने "लीलावती" और "भास्करीय बीजगणित" नाम के प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की थी ।

(क)— आयुर्वेदसंहिता, अथवा व्याकरण और न्याय, दर्शन, मीमांसा, आदि का कोई भी ग्रन्थ इन द्वितीय भास्कराचार्य ने नहीं बनाया था ।

द्वितीय भास्कराचार्य के सम्बन्ध में श्री मुरलीधर ठक्कुर के मत का खण्डन

(३)— उन्नीससौ चौरानवै=(१९९४) विक्रम सम्वत् में श्री हरिकृष्ण निबन्ध-भवन वाराणसी(उत्तर प्रदेश) से प्रकाशित "लीलावती" ग्रन्थ के टीकाकार "श्रीमुरलीधर

ठक्कुर" ने लीलावती की भूमिका में स्वरचित दोनों श्लोकों में लीलावतीकार द्वितीय भास्कराचार्य के सम्बन्ध में लिखा है कि— आठों व्याकरणों और आयुर्वेद के संहिताग्रन्थों तथा तर्कशास्त्रादि के अनेक ग्रन्थों की रचनाओं के कर्ता भास्कराचार्य ने "लीलावती" को बनाया है, इन भास्कराचार्य की वाणी का सार चतुर्मुख ब्रह्मा अथवा सरस्वती ही जानने में समर्थ हो सकते हैं, लीलावती ग्रन्थ का टीकाकार मैं मुरलीधर ठक्कुर लीलावतीकार भास्कराचार्य द्वारा लिखे गये ग्रन्थ का सार जानने में कैसे समर्थ हो सकता हूँ।

श्री मुरलीधर ठक्कुर का उपर्युक्त कथन असङ्गत और नितान्त भ्रामक है, क्योंकि— व्याकरण और आयुर्वेद आदि शास्त्रों के संहिताग्रन्थों की रचना ब्रह्मा-वैवर्तोक्त प्रथम भास्कराचार्य ने ही की थी, लीलावतीकार द्वितीय भास्कराचार्य ने व्याकरण अथवा आयुर्वेदादिसंहिता की कभी कोई रचना नहीं की थी।

सिद्धान्ततत्वविवेककार श्री कमलाकरभट्ट का परिचय

(४)— शालिवाहन शक अठारहसौ पिचानवें=(१८९५) से तीन सौ पन्द्रह =(३१५) वर्ष पूर्व पन्द्रप सौ अस्सी=(१५८०) शालिवाहन शक में "सिद्धान्ततत्व-विवेक" नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना श्री कमाकरभट्ट ने की थी, श्री भट्ट ने अपने इस ग्रन्थ में "आर्यभट्ट और भास्कराचार्य" आदि विद्वानों के मतों का खण्डन अनेक स्थलों पर युक्तिसङ्गत और वास्तविक रूप में ही किया है।

शालिवाहनशक १८९५ में आठ सौ तेईस=(८२३) वर्ष पुराना "सिद्धान्त-शिरोमणि" ग्रन्थ और तीन सौ पन्द्रह=(३१५) वर्ष पुराना "सिद्धान्ततत्वविवेक" ग्रन्थ सिद्ध होता है, तत्वविवेक से शिरोमणि पाँच सौ आठ=(५०८) वर्ष पहले का बना हुआ सिद्ध होता है।

व्यासमान से त्रिगुणित परिधिमान होने के सम्बन्ध में और परिधिमान का छयानवें वां भाग दण्डाकार होने के सम्बन्ध में आर्ष सिद्धान्तों का विवेचन

(५)— इस तेरहवें अध्याय में चारसौ चार और चारसौ पाँचवें=(४०४, ४०५वें)पृष्ठों पर स्थित प्रत्यक्षसिद्ध अनेक प्रमाणों और अनेक गणितों से तथा चार सौ छः वें=(४०६वें) पृष्ठ पर स्थित चित्र में प्रतिपादित वृत्त परिधि - के छ्यानवें भागों से यह प्रत्यक्ष रूप में सिद्ध हो रहा है कि— किसी भी वृत्त के व्यास मान को त्रिगुणित=(तीन गुना) कर देने पर उस वृत्त की परिधि के मान का ज्ञान हो जाता है, तथा वृत्त का प्रत्येक छ्यानवेंवाँ भाग प्रत्यक्ष रूप में दण्डाकार = (दण्डा के समान सीधा) दिखाई पड़ने लगता है, तदनुसार वृत्त के प्रत्येक छयानवेंवें भाग पर वृत्त का वृत्तत्व=(वृत्ताकारत्व=गोलाकारत्व=गोलाईपन) समाप्त हो टाता है।

सिद्धान्तशिरोमणिकार भास्कराचार्य के मत का खण्डन

(६)— सिद्धान्तशिरोमणि - गोलाध्याय - भुवनुकोश के तेरहवें श्लोक में "समो यतः स्यात् परिधेः शतांशः" यह लिखकर श्री भास्कराचार्य ने परिधि के

शतांश = (सौवें भाग) को दण्डाकार बताया है, पन्द्रह सौ इक्यासी = (१५८१) भूव्यास मान बताकर उनन्चास सौ सड़सठ = (४९६७) भूपरिधिमान कहा है, भास्कराचार्योक्त यह भूपरिधि मान त्रिगुणित व्यासमान से भी अधिक है, परिधि के छ्यानवें वें भाग पर उत्पन्न हुए दण्डाकार को पुनः दण्डाकार करनेपर ही परिधि का शतांश दण्डाकार होता है, तदनुसार वृत्तपरिधि के शतांश को ही दण्डाकार कहना भास्राचार्य का भ्रममात्र है।

(७)— श्री भास्कराचार्योक्त भूपरिधिमान और भूव्यासमान प्रत्यक्षसिद्ध आर्षमत के विरुद्ध होने के कारण अविचारितरमणीय तथा भ्रान्तिप्रद होने से उपेक्षणीय ही हैं।

(८)— इस तेरहवें अध्याय में व्यास ओर परिधि के मानों के सम्वन्ध में तथा वृत्त की धरिधि के दण्डाकारत्व भाग के सम्वन्ध में श्री भास्कराचार्यादि के मतों के खण्डन का सारांश स्वरचित इकतालीसवें पद्य से इकसठवें पद्य तक=(४१वें पद्य के ६१वें पद्य तक) इसी अध्याय में किया गया है, इन पद्यों का निष्कर्ष यह है कि— वृत्त के समान= (एक बराबर) छ्यानवें भाग कर लेने पर वृत्त का वृत्तत्व दूर होकर प्रत्येक भाग दण्डाकार "सीधा" दिखाई देने लगता है, छ्यानवेंवें भाग से आगे जितने भी अधिक भाग किये जायेंगे, वे सब दण्डाकार से ही दण्डार बनेंगे, इसी लिये ऋषि प्रणीत ग्रन्थों में वृत्त के छ्वानवेंवें "९६वें" भाग को ही दण्डाकार प्रत्यक्ष रूप में माना है। श्री भास्कराचार्य ने वृत्त के सौवें भाग को दण्डाकार कहकर दण्डाकार को पुनः दण्डाकार बनाने को कहा हैं, अत एव भास्कराचार्य का कथन असङ्गत और भ्रामक है।

सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय में श्री भास्कराचार्य की अव्यवस्था का प्रदर्शन

(९)— सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय में श्री भास्कराचार्य ने सप्तद्वीपों और सप्तसागरों आदि का मान कितने योजन है, यह कहीं भी नहीं कहा है, श्री भास्कराचार्य की लेखन शैली से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन्हें=(श्री भास्कराचार्य को) ब्रह्माण्ड की स्थिति का तथा ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत स्थित जम्बूद्वीपादि सप्तद्वीपों और क्षारसागरादि सप्तसागरों के योजनमानों का ज्ञान ही नहीं था।

[इति त्रयोदशाध्यायः]

—:×:—

चतुर्दशाध्याय:

आर्णवर्षावायुविज्ञान - प्रतिपादक-पुराणोपरि-श्रीलल्ल-भास्कराचार्य-कृताक्षेप - निराकरणबोधक - चतुर्दशाध्याय:

लल्लेन भास्कराचार्यैश्चाक्षेपा भ्रान्तिदाः कृताः ।
मुन्युक्तेषु पुराणेषु वृष्टिविज्ञानदेषु वै ॥१॥
तेषां समीक्षणं कृत्वा हे विज्ञा! विज्ञविद्वराः ।
अध्यायेऽस्मिन् करिष्यामि खण्डनं शास्त्रसम्मतम् ॥२॥

पुराणोक्तभूगोलमानेऽपि...उत्तराक्षांशानां दक्षिणाक्षांशानां च व्यवस्था अस्तीति प्रतिपादनमत्र करोमि

जम्बूद्वीपभूगोलस्य स्थितिस्वरूपमत्र लिखामि......

श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे षोडशे '१६' अध्याये श्री शुकदेवेन मुनिना 'जम्बूद्वीपभूगोलस्य - स्वरूपम्' योगबलेन यथादृष्टं तथैव उपदिष्टम् । श्रीशुकदेवो मुनिः परीक्षिते नृपाय उपदेशं करोति......

यो वायं द्वीपः कुवलय - कमल - कोशाभ्यन्तरकोशः नियुतयोजनविशालः = '१००००० योजनविशालः' समवर्तुलः यथा पुष्करपत्रम्='यथा कमलपत्रम्'

यथा कमलपत्रं नतोन्नताकारयुक्तम् = 'ऊँचाई नीचाई से युक्त वृत्ताकार' भवति, तथैव नतोन्नताकारयुक्तः एकलक्षयोजन = -१०००००' वृत्ताकारः - अयं जम्बूद्वीपोऽस्ति इति भावः ।

यथा पुष्करपत्रम् इति कथनेन नतोन्नतभूमियुक्ते जम्बूद्वीपे तदन्तर्गते भारतवर्षे च दक्षिणोत्तर - नवसहस्र = ९००० योजनभूभागयुक्ते' उत्तरक्षांशानां दक्षिणाक्षांशानां च व्यवस्था स्वयं सिद्धा भवति ।

अतएव - पुराणेषु - ऋषिभिः यादृशं भूगोलस्य स्वरूपं वर्णितम्,-तादृशे भूगोल-स्वरूपे स्वीकृते सति उत्तराक्षांशानां दक्षिणाक्षांशानां च अव्यवस्था समापतिष्यति वदतां आधुनिकानां नवीनानां कथनं तु कुतर्कान्वितं असङ्गतं अविचारितरमणीयं - उपेक्षणीयं च अस्तीति निष्पक्षया मध्यस्थया धिया विवेचनीयं विज्ञैः विद्वद्भिः वैज्ञानिकैश्च विचारशीलैः, श्रीमद्भागवतमहापुराणोक्तसदृशः एव भूगोलाकारः श्रीविष्णुपुराण - वायुपुराण - मत्स्यपुराणेषु - योगदर्शन - वैयासिकभाष्ये तथा च योगवासिष्ठप्रभृतिषु सर्वेष्वपि आर्षग्रन्थेषु कथितः ।

भास्कराचार्यादीनां मतेन जम्बूद्वीपभूगोलस्वरूपमत्र लिखामि

लङ्का कुमध्ये यमकोटिरस्याः प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनं च ।
अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुः सौम्येऽथयाम्ये वडवानलश्च ॥१७॥

कुवृत्तपादान्तरितानि तानि स्थानानि षड्गोलविदो वदन्ति ॥१८॥
भूमेरर्धं क्षारसिन्धोरुदक्स्थं जम्बूद्वीपं प्राहुराचार्यवर्याः।
अर्धेऽन्यस्मिन् द्वीपषट्कस्य याम्ये क्षीरक्षाराद्यम्बुधीनां निवेशः।२१।
भूर्लोकाख्यो दक्षिणे व्यक्षदेशात् तस्मात् सौम्योऽयं भुवःस्वश्च मेरुः ४३।

इत्येतादृशी व्यवस्था श्रीभास्कराचार्यैः स्वरचित - सिद्धान्तशिरोमणौ गोलाध्याये भुवनकोशे प्रदत्ता।

हे विचारशीलाः विद्वांसः ! अत्रस्थले निष्पक्षया सुगम्भीरविचारधारया सुविचारयन्तु भवन्तः—

श्रीभास्कराचार्यैः - सिद्धान्तशिरोमणौ एव - भुवनकोशस्य - अन्ते नवतर्क= "९६" प्रमिते श्लोके...

"ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा" इति - उक्त्वा ब्रह्माण्डज्ञाने स्वकीयं - असामर्थ्यं प्रकटितम्, उपर्युक्तश्लोकेषु तु "गोलविदो वदन्ति" "प्राहुराचार्यवर्याः" इति निगदद्भिः - भास्कराचार्यैः - भूगोल - खगोलयोः स्थितिज्ञाने - भ्रान्तस्य स्वगुरोः लल्लाचार्यस्यैव मतं समुद्धृतमत्र।

भूगोल- खगोल- स्थिति - विषये - स्वगुरुलल्लाचार्योपदेशेऽपि सन्देहं कुर्वद्भिः श्रीभास्कराचार्यैः - पुराणग्रन्थानामपि आश्रयो नीतः।

किन्तु - तेषु पुराणग्रन्थेषु - ब्रह्माण्डविषये भूगोलखगोलविषये - जम्बूद्वीपविषये च यया क्लिष्टतमशैल्या प्रतिपादनं कृतं तत्वदर्शिभिः - प्रत्यक्षदर्शिभिश्च ऋषिभिः, क्लिष्टातिविलष्टत्वात् - सा शैली श्रीभास्कराचार्यैः - सम्यक्तया नावगता, किन्तु - श्रीभास्कराचार्यस्य अन्तः - करणे - "पुराणोक्तं सत्यम्, अथवा स्वगुरुलल्लाचार्योक्तं सत्यम्, इत्येतादृशी-शङ्का सुदृढरूपेण जागृता, स्वबुध्या च - अत्र स्थले कोऽपि निर्णयः न कृतः तैः महानुभावैः, अतएव "गोलविदो वदन्ति, प्राहुराचार्यवर्याः इति - उक्त्वा, "पुराणविदोऽमुमवर्णयन्, पौराणिकाः सूरयः" इति च - उक्त्वा - उभयमतस्य स्थापनां विधाय, "ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा" इति च उक्त्वा - उभयमतेऽपि - अविश्वासः सुस्पष्टरूपेण प्रकटीकृतः श्रीभास्कराचार्यैः।

द्वैविध्यभावग्रसितैः - एव श्रीभास्कराचार्यैः - शिरोमणौ - भुवनकोशे—

"यदि समा मुकुरोदरसन्निभा - भगवती धरणी तरणिः क्षितेः।
उपरि - दूरगतोऽपि परिभ्रमन् किमुनरैरमरैवि नेक्ष्यते" ॥११॥
इत्यादिषु श्लोकेषु पुराणोपरि - अज्ञानतः एव - आक्षेपाः कृताः।
"नान्येन तेन जगुरुक्तमहीप्रमाणप्रामाण्यमन्वययुजा व्यतिरेककेण।१६।"

इत्येतादृशं कथनमपि - अज्ञानमूलम् एव - अस्ति, यतो हि...

"एवं नवकोटयः- एकपञ्चाशल्लक्षाणि योजनानाम् ="९५१०००००योजन" मानसोत्तरगिरिपरिवर्तनस्य - उपदिशन्तिमागंम्" इत्येतादृशी व्यवस्था- श्रीमद्भागवत-महापुराणे, श्रीविष्णुपुराणे, श्रीमत्स्यपुराणे, श्रीवायुपुराणे, योगवासिष्ठ - प्रभृतिषु च

सर्वेष्वपि आर्षग्रन्थेषु - प्रत्यक्षदर्शिभिः - ऋषिभिः समुक्ता ।

अनयैव व्यवस्थया... "दर्शः सूर्येन्दुसङ्गमः" इत्यादि - श्रुति - स्मृति - पुराणोक्तस्य - सिद्धान्तस्य प्रत्यक्षरूपेण चरितार्थता प्रत्येकस्मिन् मासे - अमावास्यायां तिथौ दरीदृश्यते, अमावास्यायां तिथौ - सूर्य - चन्द्रयोः विभिन्न- कक्षास्थयोः- अपि एकस्यामेव लम्बाकाररेखायां यः - योगो जायते, श्रीलल्लाचार्यः - श्रीभास्कराचार्यः अन्यो वा कश्चित् - तदनुयायी महानुभावः - अमावास्यायां तिथौ आर्षमतानुसारेण - आर्षगणितानुसारेण च - समुत्पन्नस्य - सूर्याचन्द्रमसोः योगस्य - अवरोधं कर्तुं न समर्थः भवति संसारेऽस्मिन् त्रिकालेऽपि ।

अतः - श्रीभास्कराचार्यादिभिः आर्षमतोपरि ये आक्षेपाः कृताः- ते तु भ्रान्तिप्रदाः - अज्ञानपरकराश्च सन्तीति - निष्पक्षया - नीरक्षीर - विवेकिन्या मध्यस्थया दृष्ट्या विवेचनीयं विज्ञैः ।

आर्षमतोपरि श्रीभास्कराचार्यप्रभृतिभिः - ये आक्षेपाः कृताः तेषां निराकरणं अग्रे करिष्यामि तत्रैव दृष्टव्यम् ।

आर्णवर्षा - वायुविज्ञान - प्रतिपादक- पुराणोपर- श्रीलल्लाचार्य श्रीभास्कराचार्याभ्यां ये - अक्षेपाः कृतास्तेषां - समीक्षात्मकं खण्डनं विधित्सुरहम् तयो र्लल्लभास्करयो र्मतमत्र - उपस्थापयामि...

श्रीलल्लाचार्यः- कथयति...

"समता यदि विद्यते भुवस्तरवस्तालनिभा बहूच्छ्रयाः ।
कथमेव न दृष्टिगोचरं नुरहो यान्ति सुदूरसंस्थिताः ॥१॥

अमिता यदि भूरियोजना स्यात् क्षितिरह्नापरिवर्त्यते कथं भैः ।
परिधेः खलु षोडशे स्थितांशे नच लङ्काविषयाद् भवत्यवन्ती" ।२।

उपर्युक्तौ श्लोकौ - तर्काष्टनवचन्द्र= १९८६ वैक्रमाब्दे चौखम्बा - संस्कृत - सीरिज - आफिस - विद्याविलासप्रेस - वाराणसीतः प्रकाशिते = सिद्धान्तशिरोमणौ भुवनकोशे - गोलाध्याये स्तः ।

गोलाध्याये भुवनकोशे श्रीभास्कराचार्याः - लिखन्ति

यदि समा मुकुरोदरसन्निभा भगवती धरणी तरणिः क्षितेः ।
उपरिदूरगतोऽपि परिभ्रमन् किमुनरैरमरै रिव नेक्ष्यते ॥११॥

यदि निशाजनकः कनकाचलः किमु तदन्तरगः स न दृश्यते ।
उदगयं ननु मेरुरथांशुमान् कथमुदेति स दक्षिणभागके ॥१२॥

समो यतः स्यात् परिधेः शतांशः पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान् ।
नरश्च तत्पृष्ठगतश्च कृत्स्ना समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा ॥१३॥

निरक्षदेशात् क्षितिषोडशांशे भवेदवन्ती गणितेन यस्मात् ।
तदन्तरं षोडशसंगुणं स्याद् भूमानमस्माद् बहु किं तदुक्तम् ॥१५॥

शृङ्गोन्नतिग्रहयुतिग्रहणोदयास्तच्छायादिकं परिधिना घटतेऽमुना हि ।
नान्येन तेन जगुरुक्तमहीप्रमाण- प्रमाण्य - मन्वययुजा व्यतिरेककेण ।१६।

"समता यदि विद्यते भुवः"-इति लल्लाचार्यकृतस्य प्रथमाक्षेपस्य-अयं भावः...

आर्षमते भुवः समता समुक्ता सर्वत्र, यदि भुवः - समता विद्यते चेत्तर्हि - तालनिभाः - तालवृक्षसदृशाः बहूच्छ्रयाः = बहूच्छ्रायवन्तः, सुदूरसंस्थिताः=बहुदूर-स्थिताः तरवः = वृक्षाः, नुः = नरस्य, अहो - इति आश्चर्यार्थेऽव्ययः, दृष्टिगोचरम् = दृष्टिपथम् कथं = कस्मात् कारणात्, एव इति निश्चयार्थे अव्ययः, न यान्ति= न गच्छन्ति ।

यदि भूमिः समानाकारयुक्ता समतला विद्यते चेत्तर्हि तस्यां भूमौ संस्थितान्-बहूच्छाययुक्तान् - वृक्षान् भूमिस्थाः - जनाः केन कारणेन न पश्यन्ति, अतोऽनुमीयते गोलाकारो भूगोलोऽस्ति, अतः - मनुष्यः भूमौ यस्मिन् प्रदेशे स्थितो भवति, तस्माद् प्रदेशात् - निम्नतरभूमिप्रदेशे "भूमेः अधोभागे" बहूच्छायवन्तः - वृक्षाः - भूमौ - विद्यन्ते, अतस्ते दृष्टिगोचरं न समागच्छन्ति ।

पूर्वोक्तस्य प्रथमाक्षेपस्य निराकरणं मया निम्नाङ्कितरीत्या क्रियते...मानवा-दीनां नेत्रेषु वस्तुदर्शनशक्तेः सीमा भवति, दृष्टिदर्शनशक्तिसीमान्तर्गतान् एव वृक्षादि-पदार्थान् द्रष्टुं समर्थः भवति कोऽपि मानवः, अतः दृष्टिसीमातो वहिर्गतान् वृक्षादि-पदार्थान् द्रष्टुं समर्थाः लल्लादयो ग्रन्थकाराः अन्ये च मानवाः कदाचिदपि न भूताः न भविष्यन्ति न च वर्तन्ते, दृष्टि सीमान्तर्गतान् पदार्थान् तु सर्वेऽपि पश्यन्त्येव न चान्धा पश्यन्ति ।

दृष्ट्या सह दूरवीक्षणयन्त्राणि निधाय दूरदर्शनसीमा एव स्वीकृता आधुनिकैरपि विचारशीलैः वैज्ञानिकैः, दूरवीक्षणयन्त्रदर्शनशक्तिसीमातः वहिर्गतान् पदार्थान् द्रष्टुं न कोऽपि समर्थो भवति वैज्ञानिकः अद्यापि, अतएव श्रीलल्लोक्तः प्रथमाक्षेपः निराधारः अविचारितरमणीयश्च अस्तीति निष्पक्षया मध्यस्थया धिया विवेचनीयं विज्ञैः ।

लल्लकृतप्रथमाक्षेपनिराकरणस्य सारांशः स्वरचितेषु सरलपद्येषु मया अत्र लिख्यते...

दूरदर्शनशक्तिस्तु सर्वनेत्रेषु संस्थिता ।
दृष्टिसीमागतमतो नराः पश्यन्ति सर्वदा ॥२९॥
दृष्टिसीमाबहिर्भूता यदि वृक्षा न लोकिताः ।
लल्लेन तत्र को दोषः - ऋषीणां तत्वदर्शिनाम् ।३०॥
नेत्रान्धा नैव पश्यन्ति दूरस्थं च समीपगम् ।
अतो लल्लकृताक्षेपो निराधारो मयोदितः ॥३१॥
वृत्ताकारसगा भूमिः खे स्थिता मुनिभिः सदा ।
लोकिता दिव्यदृष्ट्या हि योगिभिस्तत्वदर्शिभिः ॥३२॥
वृत्ताकारगता भूमि लक्षयोजनमानतः ।
स्थौल्येऽस्ति सा तु विस्तारे पञ्चविंशतिकोटिगा ॥३३॥
स्थौल्यं कियन्मितं भूमे नोक्तं लल्लेन कुत्रचित् ।
भास्करेणापि तन्नोक्तं नोक्तं केनापि कुत्रचित् ॥३४॥

योगिनो योगनिष्ठा ये मुनयो भूमिसंस्थिताः ।
तैरेव भूमिविस्तारः स्थौल्यं चापि प्रकीर्तितम् ॥३५॥
वहुविस्तारयुक्तस्तु स्वल्पस्थौल्ययुतस्तथा ।
पदार्थः खे निराधारः स्थातुं शक्यो न चान्यथा ॥३६॥
गोलाकारसमानस्तु पदार्थः खे कदाचन ।
नैव स्थातुं भवेच्छक्यो वहुभारान्वितो यतः ॥३७॥
गोलाकारे तु भूगोले द्वीपसागरसंस्थितिम् ।
लल्लाद्या भास्कराद्याश्च वक्तुं नैव समर्थकाः ॥३८॥
गोलाकारसमाना भू र्लल्लाद्यै भस्करैस्तथा ।
आकाशे संस्थिता प्रोक्ता भ्रान्तिदा नात्र संशयः ॥३६॥

द्वितीयाक्षेपस्य निराकरणम्

'अमिता यदि भूरियोजना स्यात् क्षितिरह्ना परिवर्त्यते कथं भैः ।
परिधेः खलु षोडशे स्थितांशे न च लङ्काविषयाद् भवत्यवन्ती ॥२॥

लल्लाचार्यकृतस्य उपर्युक्तस्य द्वितीयाक्षेपस्य अयं भावः...

भूरियोजना = पञ्चविंशतिकोटि = '२५०००००' योजनप्रमिता - अमिता =मापितुं अयोग्या, यदि क्षितिः = भूमिः स्यात् - तेद् तर्हि - अह्ना = एकेन दिनेन भैः = नक्षत्रैः, कथम् = केन प्रकारेण, परिवर्त्यंते, एकस्मिन् एव दिने नक्षत्राणि भूगोलस्य परिक्रमां कर्तुं केन प्रकारेण समर्थानि भवन्ति, अर्थात् पञ्चविंशतिकोटियोजन-प्रमितायाः भूमेः परिक्रमां - एकस्मिन् = एकदिने न कयापि रीत्या कर्तुं समर्थाः सूर्यादिग्रहाः नक्षत्रादयश्च भविष्यन्ति, प्रत्यक्षदर्शने कृते सति नक्षत्राणि ग्रहादयश्च एकेनैव दिनेन 'चतुर्विंशतिघण्टासु - इत्यर्थः' भूमिपरिक्रमां कुर्वन्नि ।

अतः नक्षत्रकृतभूमिपरिक्रमणेन ज्ञायते, यत् भूगोलमानं स्वल्पयोजनप्रमितमेवास्ति, न तु भूरियोजनप्रमितमस्ति, इति सारांशः, वहुयोजनप्रमिते भूमिमाने स्वीकृते सति - अवन्ती=उज्जयनीनगरी, लङ्काविषयात्=राक्षसपुरीलङ्काराजधानीप्रदेशात्, परिधेः=भूमिगरिधेः षोडशांशे=षोडशप्रमिते भागे, खलु=इति निश्चयार्थेऽव्ययः न च - स्थिता भवति ।

अतः पञ्चविंशति कोटियोजनप्रमितं भूमिमानं यदुक्तं मुनिभिस्तन्न समीचीन - मस्तीति लल्लाचार्यकथनस्य - वर्ततेऽभिप्रायः ।

उपर्युक्तरीत्या द्वितीयः आक्षेपः कृतो लल्लेन मुनीनामुपरि स्वकीये सिद्धान्ते ।

लल्लकृतस्य अस्य द्विनीयाक्षेपस्य निराकरणं निम्नाङ्कितरीत्या मया अत्र क्रियते

'यदा चैन्द्रयाः पुर्याः प्रचलते पञ्चदश ='१५' घटिकाभिः याम्यां सपादकोटि-द्वयं योजनानां सार्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि द्विकोटिसप्तत्रिंश - ल्लक्ष - पञ्चसप्तति- = '२३७७५०००' योजनानि यावत्तावत् चोपयाति च उपगच्छति, एवं ततो वारुणीं, सौम्याम्-ऐन्द्रीं च, पुनस्तथान्ये च ग्रहाः सोमादयः नक्षत्रैः सह ज्योतिश्चक्रे समभ्युद्यन्ति,

सह वा निम्लोचन्ति, इति श्रीमद्भागवतपुराणे पञ्चमस्कन्धे एकविंशतिप्रमिते अध्याये श्री शुकोक्तेः......

प्रवहवायुवेगैः समाहृतानि नक्षत्राणि प्रवहवायुवेगेन सहैव - पूर्व - दक्षिण - पश्चिमोत्तर - दिशासु - प्रदक्षिणाक्रमेण मानसोत्तरपर्वते - निरन्तरं परिभ्रमणशीलेन भपञ्जरचक्रेण सह अर्थात् ज्यौतिषचक्रेण सह परिभ्रमन्ति, नियतसमये च उदयं-अस्तं च गच्छन्ति

पञ्चदशघटीनां गतियोजनमाने चतुर्गुणिते कृते सति षष्टिघटीनां गतियोजनमानं समागच्छति, पञ्चदशघटिकासु गतियोजनमानम् = २३७७५००० × ४ = ९५१०००००=नवकोटिएकपञ्चाशल्लक्षयोजनप्रमितं भवति, अथवा यदिचेत् पञ्चदशघटीषु २३७७५००० योजनमानं लभ्यते, तर्हि षष्टिघटीषु किं लब्धं भविष्यति,= २३७७५०००×६०/१५=९५१००००० योजनात्मकं मानं त्रैराशिकगणितेन लब्धं भवति, अतएव श्रीमद्भागवते पञ्चमस्कन्धे एकविंशतिप्रमिते - अध्याये एवं नवकोटयः एकपञ्चाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरपरिवर्तनस्य - उपदिशन्ति - इति श्री शुकदेवोक्तिरपि उपर्युक्तगणितेन सह सङ्गच्छते ।

उपर्युक्तरीत्या - षष्टिघटिकाप्रमितेन ='६० घटीप्रमितेन' एकेन एव अह्ना =दिनेन, नक्षत्रैः 'भैः' भूपरियोजना=अमिता भूमिः परिवर्त्यते, इति सिद्ध्यति एव।

अतः श्री लल्लाचार्यैः - यः - द्वितीयः अपेक्षः "अमिता यदि भूरियोजना स्यात् क्षितिरह्ना परिवर्त्यते कथं भैः" इत्येतादृशः कृतः - स तु भ्रान्त्युपादकः - अविचारितरमणीयः - अयुक्तः - उपेक्षणीयश्चास्तीति मध्यस्थया धिया विवेचनीयं विज्ञैः ।

प्रचलितेऽस्मिन् वाराहकल्पे लङ्कादेशात् = निरक्षदेशात् परिधेः = षोडशांशे अवन्ती = उज्जयनीनगरी कदाचिदपि न भूता, न चास्ति, न च भविष्यति कदाचित्, अतः...'परिधेः खलु षोडशे स्थितांशे न च लङ्का विषयात् भवत्यवन्ती' इत्येतादृशी आशङ्का श्रीलल्लाचार्यकृता तु भ्रान्तिप्रदैव अस्तीत्यपि निष्पक्षया धिया विवेचनीयं विचारशीलैः विज्ञैः ।

उपर्युक्तस्य सारांशोऽत्र मया स्वरचिते पद्ये निबध्यते......

"लल्लोक्तौ भ्रान्तिदौ सिद्धौ चाक्षेपौ गणितागमात् ।
आर्षोक्त्या तु मया विज्ञाः! भ्रान्तिघ्नं खण्डनं कृतम्" ॥४०॥

भूमिमानविषये श्रीभास्कराचार्यैः - ये - निराधाराः - आक्षेपाः आर्षमतोपरिकृताः - तेषां - निराधाराक्षेपाणां चापि खण्डनं - वक्ष्यमाणरीत्या अत्र करोमि

लल्लस्य - अनुकरणं कुर्वद्भिः श्रीभास्कराचार्यैः सिद्धान्तशिरोमणौ गोलाध्याये भुवनकोशे निम्नाङ्कितौ द्वौ श्लोकौ समुक्तौ आक्षेपकरौ......

"निरक्षदेशात् क्षितिषोडशांशे भवेदवन्ती गणितेन यस्मात् ।
तदन्तर षोडशसंगुणं स्याद् भूमानमस्माद् बहु किं तदुक्तम् ॥१५॥

शृङ्गोन्नति - ग्रहयुति - ग्रहणोदयास्त - च्छायादिकं परिधिना घटतेऽमुना हि ।
नान्येन तेन जगुरुक्तमहीप्रमाण - प्रामाण्य-मन्वययुजा - व्यतिरेककेण' ॥१६॥

उपर्युक्तश्लोकयोः अयं भावः......यस्मात् - 'क्योंकि' निरक्षदेशात्=लङ्कादिनगरीतः = अक्षांशरहितदेशात्-इत्यर्थः, क्षितिषोडशांशे = भूमिषोडशप्रमिते भागे,

अवन्ती=उज्जयनी नगरी गणितेन = गणितक्रियाविधानेन, "साध्या - इतिशेषः" भवेत् = भवतीति भावः, तदन्तरम् = तयोः - अन्तरं तदन्तरम्=अवन्तीनिरक्ष-देशयोः - अन्तरमित्यर्थः, षोडशसंगुणम् = षोडश='१६' संख्यागुणितं सत् = भू-मानम् = भूमिमानं सम्पूर्णं भवति, अस्माद् - भूमिमानाद्' बहु=अधिकम्, पुराणेषु मुनिभिः यदुक्तम्, तत् किम् = न किमप्यस्तीति भावः, अर्थात् - पुराणोक्तं - पञ्च-विंशतिकोटियोजन = '२५०००००० योजन' प्रमितं मानं भूमेः नास्तीति भास्करोक्तेः-अभिप्रायः, 'तद्व्यासः कुभुजङ्गसायकभुवः = १५८१' इति श्रीभास्कराचार्योक्तेः भूव्यासमानम्=१५८१ योजनप्रमितमस्ति, अस्य व्यासस्य षोडशांशस्तु=१५८१ ÷ १६ =१५८१ × १/१६=१५८१/१६=९८ + १३/१६ योजनप्रमितः षोडशांशोऽस्ति निरक्षदेशात् अत्रैव षोडशांशे - अवन्ती = उज्जयनीनगरी अस्ति भास्कराचार्यमते ।

निरक्षदेशावन्तीनगर्योः-अन्तरं द्योतयति भूषोडशांशोऽयम् । षोडशांशे षोडषभिः गुणिते सति समस्तभूगोलमानं भवति, क्षितिषोडशांशः=९८ + १३/१६=१५८१/१६ × १६/१=१५८१ योजन प्रमितं समस्तक्षितिमानं समायाति श्रीभास्कराचार्यमतेन ।

कुभुजङ्गसायकभुवः = '१५८१' योजनप्रमितस्य अस्य भूगोलस्य परिधेः मानं श्रीभास्कराचार्यैः - सप्ताङ्गनन्दाब्धयः = '४९६७' योजनप्रमितं समुक्तम् ।

पञ्चविंशतिकोटियोजनप्रमितस्य भूगोलस्य परिधिस्तु 'व्यासात्-त्रिगुणः परिधिः' इति प्रत्यक्षसिद्धेन आर्षोक्तगणितसिद्धान्तानुसारेण पञ्चविंशतिकोटियोजनप्रमितस्य ='२५००००००' योजनप्रमितस्य भूगोलस्य पञ्चविंशतिकोटि "२५००००००" योजनप्रमितः एव व्यासोऽस्ति, अयं व्यासः-त्रिगुणः सन् भूपरिधिः-भवति-२५०००००० × ३=७५०००००० योजनप्रमितः परिधिः समस्तस्य भूगोलस्य सिद्ध्यति, पञ्च-विंशतिकोटियोजनप्रमितस्य भूगोलस्य अर्धभागे अर्थात् सुमेरुकेन्द्रात् सार्धद्वादशकोटि-योजनप्रमिते = '१२५००००० योजनप्रमिते' उत्तरदिशास्थे भूगोलार्धप्रदेशे एवं च सार्धद्वादशकोटियोजनप्रमिते='१२५०००००' योजनप्रमिते दक्षिणदिशास्थे भूगोलार्ध-प्रदेशे, तथैव च सुमेरुकेन्द्रात्-पूर्वस्यां दिशि सार्धद्वादशकोटियोजन = "१२५००००० योजनप्रमिते भूगोलार्धप्रदेशे पश्चिमदिशास्थे च सार्धद्वादशकोटियोजन='१२५००००० योजन' प्रमिते च भूगोलार्धप्रदेशे वृत्ताकारः - लोकालोकपर्वतः स्थितोऽस्ति ।

लोकालोकपर्वतात् सुमेरुपर्वतदिशि उभयतः स्थितः पञ्चविंशतिकोटियोजन-प्रमितः = '१२५००००० योजन + १२५००००० योजन = २५०००००० योजनप्रमितः भूगोलभागः सूर्यप्रकाशयुक्तो भवति, लोकालोकपर्वतात् वहिः स्थश्च सर्वदिक्षु - उभयतः पञ्चविंशतिकोटियोजन प्रमितः = २५०००००० योजनप्रमितः ब्रह्माण्डार्धभागश्च उभयतः सर्वदिक्षु - अप्रकाशयुक्तः=अन्धकारमयः अस्ति ।

सूर्यप्राकाशयुक्तस्य पंचविंशतिकोटियोजनप्रमितस्य भूगोलस्य परिधिस्तु "व्यासात् त्रिगुणः परिधिः" इति सिद्धान्तानुसारेण = "२५०००००० × ३= ७५०००००० योजनप्रमितः, अर्थात् पञ्चसप्ततिकोटियोजनप्रमितः सिद्ध्यति ।

पुष्करद्वीपान्तर्गतक्रान्तिवृत्ताभिधे वृत्ताकारे मानसोत्तरपर्वते यत्र सूर्यः परिभ्रमति तस्य मानसोत्तरपर्वतस्य - अन्तर्गत- भूव्यासस्तु - त्रिकोटिसप्तदशलक्ष - योजनप्रमितः = "३१७००००० योजनप्रमितः" प्रागेव प्रतिपादतो मया, मानसोत्तरपर्वते सूर्यपरिभ्रमणमार्गस्य परिधिः - अपि नवकोटि - एकपञ्चाशत् - लक्ष - योजनप्रमितः

="९५१००००० योजनप्रमितः" प्रागेव प्रतिपादितः मया- अनेकैः - प्रस्फुटैः प्रमाणैः- गणितप्रकारैश्च ।

ऋषिप्रणीतेषु - "मत्स्यपुराण, वायुपुराण, श्रीविष्णुपुराण, श्रीमद्भागवतमहापुराण" नामकेषु - आर्षग्रन्थेषु - एकवाक्यतया यावान् परिधिः - व्यासश्च भूगोलस्य समुक्तः - तेन परिधिना व्यासेन च - शृङ्गोन्नति - ग्रहयुति - ग्रहणोदयास्त-छायादयः सर्वदा सङ्गच्छन्ते, = घटन्ते च एव ।

किन्तु श्रीभास्कराचार्यैस्तु - स्वतन्त्रे सिद्धान्तशिरोमणौ="सप्ताङ्गनन्दाब्धयः = ४९६७ योजनप्रमितः - यः परिधिः समुक्तः - अमुना = सिद्धान्तशिरोमणिस्थेन परिधिना - एव शृङ्गोन्नति - ग्रहयुति - ग्रहणोदयास्तच्छायादिकं घटते, अन्येन = सूर्यसिद्धान्तादिगणितग्रन्थस्थेन परिधिना तथा च मत्स्य - वायु - विष्णु - भागवतादि- पुराणोक्तेन परिधना न घटते, इति - उक्त्वा श्रीभास्कराचार्यैः- सरलशब्दैः अनायासेन- एव आर्षमतस्य खण्डनमत्र यत् कृतं शिरोमणौ तत् - तु - आर्षमतं- अज्ञात्वैव भ्रान्त्यैव कृतम्, इत्यत्र निष्पक्षया शोधधिया विचारो विधेयो विज्ञैः ।

स्वमतं दृढीकुर्वन् श्रीभास्कराचार्यस्तत्रैव गोलाध्याये भुवनकोशे षोडश- "१६" -संख्याप्रमिते श्लोके कथयति "तेनजगुरुक्तमहीप्रमाण- प्रामाण्यमन्वययुजा व्यतिरेककेण, अस्य श्लोकस्य अयं भावः...

आर्षग्रन्थेषु - ऋषिभिः - प्रतिपादितेन - परिधिना शृङ्गोन्नत्यादिकं न घटते, सिद्धान्तशिरोमणौ मया प्रतिपादितेन अमुना "सप्ताङ्गनन्दाब्धयः" = ४९६७ योजनप्रमितेन" परिधिना - एव शृङ्गोन्नत्यादिकं घटते, अतः - तेन - कारणेन अन्वययुजा व्यतिरेककेण = अन्वययुक्त - व्यतिरेककेण "अन्वयव्यतिरेककेण-इत्यर्थः' महीप्रमाणप्रामाण्यम् = भूमिप्रमाणप्रामाण्यम्= "कुभुजङ्गसायकभुवः" = १५८१ योजनप्रमाणप्रमितः - भूमिव्यासः यः - मयोक्तः सिद्धान्तशिरोमणौ तस्य - कुभुजङ्ग- सायकभुवः = १५८१ योजनप्रमितव्यासयुक्तस्य भूगोलस्य एव प्रामाण्यम् - प्रामाणि- कताम् - निम्नाङ्कितैः लल्लकृतश्लोकस्थैः कारणैः जगुः = ऊचुः लल्लादयः-आचार्याः ।

"समता यदि विद्यते भुवस्तरवस्तालनिभा बहूच्छ्रयाः ।
कथमेव न दृष्टिगोचरं नुरहो यान्ति सुदूरसंस्थिताः ॥१॥
अमिता यदि भूरियोजना स्यात् क्षितिरह्नो परिवर्त्यते कथं भैः ।
परिधेः खलु षोडशे स्थितांशे न च लङ्काविषयाद् भवत्यवन्ती ॥२॥"

"नान्येनतेन जगुरुक्त - महीप्रमाण - प्रामाण्य - मन्वययुजा - व्यतितिरेककेण'

"षोडशसंख्याप्रमितस्य श्लोकस्य" उत्तरार्धे - चतुर्थचरणान्ते श्रीभास्कराचार्याः "अन्वययुजा व्यतिरेककेण" इति न्यायशास्त्रस्य शब्दप्रयोगं कृत्वा, मम भास्कराचार्यस्य न्यायशास्त्रेऽपि पाण्डित्यमस्तीति सूचयन्ति स्म ।

स्वकृतमिताक्षरे वासानाभाष्ये च भास्करैः "अन्वययुजा-व्यतिरेककेण" इत्यस्य स्पष्टीकरणमपि न कृतम् , अतोऽत्र मया न्यायशास्त्ररीत्या भास्करोक्तस्य स्पष्टी - करणं क्रियते ···

"स्वार्थानुमिति - परार्थानुमित्यो - लिङ्गपरामर्श एव करणम्, तस्मात्-लिङ्ग- परामर्शोऽनुमानम्. लिङ्ग - त्रिविधम् – (१) अन्वयव्यतिरेकि, (२) केवलान्वयि, (३) केवलव्यतिरकि, चेति, अन्वयेन व्यतिरेकेण च - व्याप्तिमत् - अन्वयव्यतिरेकि,

यथा वह्नौ साध्यत्वे - "धूमवत्वम्"- यत्र यत्र धूमः - तत्र - तत्र - अग्निः - यथा महानसम् - इति - अन्वयव्याप्तिः, यत्र वह्निः - नास्ति, तत्र धूमोऽपिनास्ति, यथा: ह्रदः - इति - व्यतिरेकव्याप्तिः ।

यस्मिन् स्थले - अथवा विषये हेतुसाध्ययोः - व्याप्तिः - भवति, तत्रैव स्थले विषये वा "अन्वयव्याप्तिः" भवति, यथा महानसम्, अत्र महानसे = भोजनपाकस्थाने "रसोईघर में" धूमं दृष्ट्वा कश्चित् कथयति, अस्मिन् महानसे धूमो दरीदृश्यते, अतः- अत्र - अग्निः - अपि अस्ति, यतो हि - यत्र - यत्र धूमो भवति तत्र तत्र - अग्निः-अपि भवति, अत्र स्थले - साध्यः - अग्निः - अस्ति हेतुश्चधूमोऽस्ति ।

महानसे = भोजनपाकशालायां = भोजनालये हेतुसाध्ययोः = धूमवह्न्योः- अस्तित्वं दरीदृश्यते, अतः - अत्र - हेतु- साध्ययोः व्याप्तित्वात्-अन्वयव्यतिरेकि नामकं लिङ्गं - अस्तीति सिद्ध्यति ।

यत्र वह्निः - नास्ति, तत्र धूमः - अपि नास्ति, यथा ह्रदे - हेतुसाध्ययोः - धूमवह्न्योः अभावत्वात् "व्यतिरकव्याप्तिः - अस्तीति सिद्ध्यति ।

तदभावयोः - तयोः हेतुसाध्ययोः अभावौ- तदभावौ तयोः—हेतुसाध्याभावयोः व्याप्तिः - एव - व्यतिरेकव्याप्तिः- भवति ।

प्रकृतस्थले तु.........

ब्रह्माण्डस्थभूगोलः - सप्ताङ्गनन्दाब्धयः="४९६७" योजनप्रमित - परिधि- मान्, कुभुजङ्गसायकभुवः="१५८१" योजनप्रमितव्यासवान् च अस्ति, शृङ्गोन्नति - ग्रहयुति - ग्रहणोदयास्तच्छायादिकप्रत्यक्षकरणे घटकत्वात्, अत्र भास्कराचार्योक्तः - सप्ताङ्गनन्दाब्धयः "४९६७" योजनप्रमितः परिधिः कुभुजङ्गसायकभुवः "१५८१" योजनप्रमितो व्यासश्च - साध्यौ स्तः, शृङ्गोन्नति - ग्रहयुति - ग्रहणोदयास्त - छाया- दिकप्रत्यक्षकरणघटकत्वं - हेतुः - अस्ति, यत्र भूगोले शृङ्गोन्नति - ग्रहयुति - ग्रहणोद- यास्त - छायादिकप्रत्यक्षकरणघटकत्वमस्ति, तत्र "सप्ताङ्गनन्दाब्धयः = ४९६७" योजनप्रमितो भूगोलपरिधिः "कुभुजङ्गसायकभुवः = १५८१" योजनप्रमितः - भूव्या- सश्च - अस्ति, इति - अन्वव्याप्तिः ।

यत्र भूगोले - "सप्ताङ्गनन्दाब्धयः = ४९६७" योजनप्रमितो भूगोलपरिधिः- नास्ति, कुभुजङ्गसायकभुवः = १५८१ योजनप्रमितो भूगोलव्यासश्च नास्ति, तत्र - शृङ्गोन्नति - ग्रहयुति - ग्रहणोदयास्त - छायादिक - प्रत्यक्षकरण-घटकत्वमपि नास्ति, इति व्यतिरेकव्याप्तिः।

अस्मिन् - एव - अध्याये - भूगोल - भूव्यास - भूपरिधि विवेचनावसरे मया श्रीलल्लाचार्यस्य यया रीत्या यत् खण्डनं कृतम्, तयैव रीप्या - तदेव खण्डनं श्रीभास्क- राचार्योक्तस्य शृङ्गोन्नति- इत्यादिकस्य अस्तीति, विज्ञेयं निष्पक्षया शोधधिया तटस्थैः विद्वद्भिः, निबन्धविस्तारभयादेवात्र मया पिष्टपेषणं न कृतम् ।

श्रीकमलाकरभट्टैः - अपि - श्रीभास्कराचार्यस्य- खण्डनं कृतम्
बहुषु स्थलेषु

सिद्धान्तशिरोमणौ श्रीभास्कराचार्यस्य असाधारणां- अक्षम्यां च भ्रान्तिं दृष्ट्वैव

"सिद्धान्त - तत्व - विवेककार:" श्री कमलाकरभट्ट: - अपि - सिद्धान्ततत्वविवेके - बहुषु स्थलेषु - श्रीभास्कराचार्यस्य युक्तियुक्तं साधुतमं च खण्डनं कृत्वा, "आर्षगणित-प्रकारानभिज्ञो भास्कराचार्य:" "स्वतन्त्रो भास्कररराचार्य: मूढ़ो भास्कराचार्य:" इत्यादि-तात्विकैः शब्दैः सिद्धान्तपक्षसंरक्षणाय - एव उच्चस्वरेण कोलाहलं चकार।

सिद्धान्तशिरोमणौ मध्यमाधिकारे कालमानाध्याये श्रीभास्कराचार्यः लिखति

"लङ्कानगर्यामुदयाच्च मानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव।
मधोः सिादे दिनमासवर्ष-युगादिकानां युगपत् प्रवृत्तिः ॥१॥"

रविवासरे चैत्रशूक्लप्रतिपदायां तिथौ - लङ्कानगर्यां यस्मिन् समये सूर्योदयः बभूव, तस्मात् - समयादेव - आरम्य दिन - मास - वर्ष - युगादिकानां प्रारम्भः श्रीगणेशः "एककालावच्छेदेन" एकस्मिन् "एव समये" बभूव।

लङ्कानगर्यां सूर्योदये सति - एव सृष्ट्यारम्भो बभूव, इति - भास्कराचार्य - कथनस्य - वर्ततेऽभिप्रायः।

उक्तकथनेन लङ्कार्धरात्रितः - सृष्ट्यारम्भः सूर्यसिद्धान्ते यः समुक्तः तस्य खण्डनं कृतं भास्करेण, एवं च - "अतीतायाः रात्रेः पश्चार्धेन आगामिन्याः पूवार्द्धेन च सहितो दिवसोऽद्यतनः पूर्वाचार्यैः परिभाषितः" - इति व्याकरण - शास्त्रस्य - पाणिनि-पतञ्जलिप्रभृतिभिः मुनिभिः समुक्तस्य अद्यतन "आजके" सिद्धान्तस्य - अपि खण्डनं कृतं भास्करैः, अतः अत्रस्थले श्रीकमलाकरभट्टैः युक्तियुक्तम् खण्डनम् - कृत्वा भास्क-राचार्यस्य आर्षगणित - प्रकारानभिज्ञता प्रतिपादिता, भास्कराचार्यः आर्षगणितप्रकारं न जानाति मूढोऽस्ति इत्यादयः शब्दाः प्रयुक्ताः।

अत्र श्रीसूर्यसिद्धान्तविरुद्धं पाणिनि - पतञ्जलि - व्यास - शुकदेव - पराशर-प्रभृति - मुनीनाम् - विरुद्धं श्रीभास्कराचार्यैः यदुक्तम् तत् ......निष्पक्षया शोधधिया त्रिवेचनीयं विद्वद्भिः।

अथाग्रे "यदि समासुकुरोदरसन्निभा" इति प्रथमाक्षेपस्य, यदि निशाजनकः इति द्वितीयाक्षेपस्य च निराकरणं करोमि

१— आक्षेपप्रतिपादकयोः - उपर्युक्तश्लोकयोः - अयं भावः......

भगवती धरणी = पुराणेषु भूमिः आदर्शोदरसन्निभा = मुकुरोदरसन्निभा दर्पणतलसमा = "शीशा के तल के समान चौरस समतला" कथ्यते, यदि सा भूमिः समानतला चेत्तर्हि - क्षितेः - उपरिगतः = भूमेः ऊर्ध्वभागे भ्रमणशीलः, तरणिः = सूर्यः - दूरगतोऽपि = सुदूरस्थितोऽपि परिभ्रमन् - अमरैः=देवैः इव, नरैः=मनुष्यैः अस्मदादिभिः, किमु = कथं=केन कारणेन न = नहि = ईक्ष्यते = अवलोक्यते, सुदूरस्थं परिभ्रमन्तं सूर्यं यथा देवाः पश्यन्ति, तथैव - अस्मदादयो नराः = प्राणिनः कथं न पश्यन्ति, अतोऽनुमीयते-दर्पणोदराकारा समतला भूमिः नास्तीति भास्कराचार्य-कथनस्य वर्ततेऽभिप्रायः।

२— एवं च पुराणेपु = कनकाचलः = सुमेरुपर्वतः निशाजनकः = रात्र्यु-त्पादकः = अर्थात् - मेरुणा पर्वतेन सूर्यः अन्तर्हितो भवति = आच्छादितो भवति, अतः सुमेरुः रात्रिजनको भवति, यदि - एवं निशाजनकेन कनकाचलेन = सुमेरुपर्वतेन

- अन्तर्हितः सूर्यः भवति, चेत्तर्हि - उत्तरदिशास्थः सः सुमेरुः किमु = कथं नरैः = अस्मदादिभिः, न दृश्यते, = न अवलोक्यते ।

३— ननु - इति शङ्काद्योतकार्थेऽव्ययः, अयं मेरुः = अयं सुमेरुपर्वतः-उत्तरस्यां दिशि स्थितोऽस्ति, यदि सुमेरुपर्वतश्रृङ्गात् - अथवा सुमेरुपर्वततटात् निर्गत्य - सूर्यस्य - उदयो भवेत् चेत्तर्हि सर्वदा उत्तरतः - एव सूर्योदयेन भवितव्यम्, न तु दक्षिणभागे कदाचिदपि सूर्योदयेन भवितव्यम्, किन्तु दक्षिणभागेऽपि - उद्गच्छन् सूर्यः प्रत्यक्षमेव दरीदृश्यये समयानुसारेण सततम् ,

४— यदि सुमेरुपर्वतः एव - सूर्योदये - सूर्यास्ते च कारणं चेत् - तर्हि - अंशुमान् = सूर्यः, दक्षिणभागके = पूर्वनः - दक्षिणीयप्रदेशे च कथम् = केनप्रकारेण उदेति = उद्गच्छति. अतोऽनुमीयते - सुमेरुपर्वतः = कनकाचलः, निशाजनकः = रात्र्युत्पादकः, दिनोत्पादकश्च नास्ति, अतः - भूमिः - अपि-दर्पणोदराकारा समा नास्ति, अपितु भूमिः गोलाकारा - एव अस्तीति सिद्ध्यति · उपर्युक्तैः हेतुभिः, अतः यदा सूर्यः भूमेः अधोभागे गच्छति तदा रात्रिः भवति, यदा भूमेः ऊर्ध्वभागे च गच्छति तदा दिनं भवति, इत्येतादृश. - एव - अभिप्रायोऽस्ति श्रीभास्कराचार्यकथनस्य ।

मानसोत्तरपर्वते - मेषादिद्वादशराशिबोधकं - चित्रम्
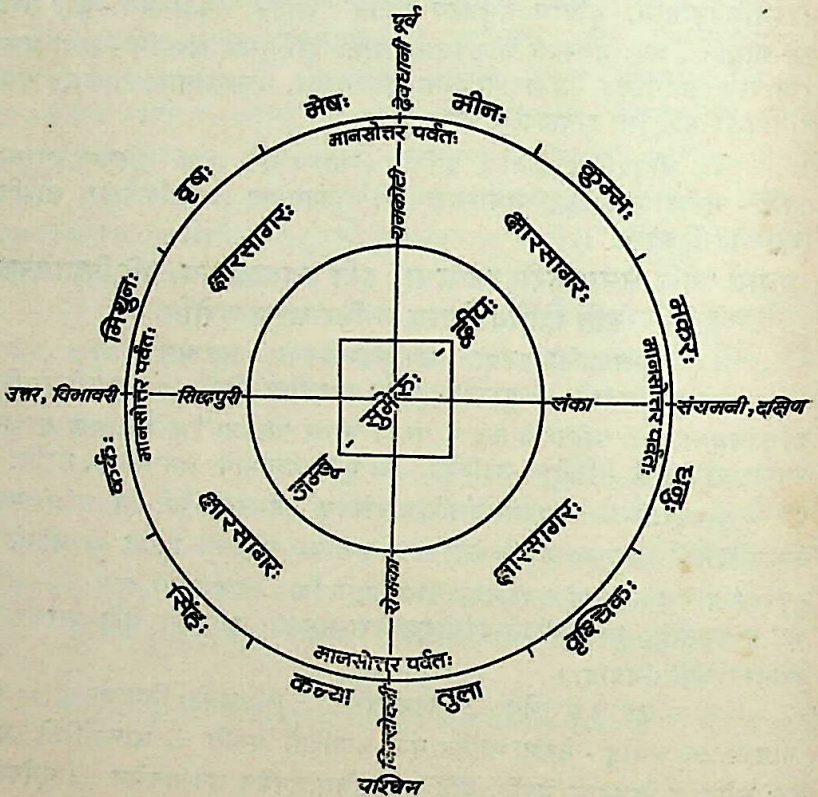
१— उपर्युक्तचित्रे जम्बूद्वीपस्य मध्ये सुमेरुपर्वतः स्थितोऽस्ति ।

२— ततः - जम्बूद्वीप - परिधौ परिधिचतुर्थभागान्तरिताः-पूर्वादिदिक्षु क्रमशः यमकोटी, लङ्का, रोमका, सिद्धपुरी, नगर्यः सन्ति ।

३— ततः पुष्करद्वीपस्य मध्ये वृत्ताकारः-मानसोत्ततपर्वतः स्थितोऽस्ति ।

तस्मिन् मानसोत्तरपर्वते = "क्रान्तिवृत्तपर्यायवाचके" विलोमपरिक्रमाक्रमेण मेषादिद्वादशराशयः स्थिता सन्ति, तस्मिन् - एव - पर्वते - पूर्वादिदिशाक्रमेण - प्रदक्षिणाक्रमेण च देवधानी, संयमनी, निम्लोचनी, विभावरी, नगर्यः स्थिताः सन्ति ।

उत्तरायण - दक्षिणायनयोर्व्यवस्था

"मेषादावुदितः सूर्यस्त्रीन् राशीनुदगुत्तरम् ।
सञ्चरन् प्रागहर्मध्यं पूरयेन्मेरुवासिनाम् ॥४८॥
कर्कादीन् सञ्चरंस्तद्वदह्नः पश्चार्धमेव सः ।
तुलादींस्त्रीन् मृगादींश्च तद्वदेवसुरद्विषाम् ॥४९॥

उपर्युक्तपद्ययोः - अयं भावः......

सुमेरुपर्वतस्य केन्द्रगता पूर्वापररेखा पञ्चविंशतिकोटियोजन=(२५००००००० योजन) प्रमितस्य भूगोलस्य विभागद्वयं करोति, पूर्वापररेखातः उत्तरस्यां दिशिस्थं भूगोलार्धं उत्तरभूगोलार्धसंज्ञकं - व्यवह्रियते, दक्षिणस्यां दिशि स्थितं भूगोलार्धं च दक्षिणभूगोलार्धमिति नाम्ना व्यवहृतं भवति ।

पूर्वापररेखातः उत्तरभूगोलार्धे - क्रमशः १- मेषः, २- वृषः, ३- मिथुनः, ४- कर्कः, ५- सिंहः, ६- कन्या, इति षड्राशयः सन्ति, उत्तरभूगोलार्धे - मेषराशौ - उदितः सूर्यः, उत्तरं = यथोत्तरं = क्रमेण - इत्यर्थः, उदक् = उत्तरभागस्थान् त्रीन् राशीन् = मेष - वृष - मिथुनान्, सञ्चरन् सन् = गच्छन् सन्, मेरुवासिनां = मेरुपर्वतनिवासिनां - देवानां प्रागहर्मध्यम् = प्रथमं दिनस्यार्धं - पूरयेत् = पूर्णं करोति । मिथुनान्ते सूर्ये मेरुनिवासिनां देवानां मध्याह्नं भवतीति भावः ।

कर्कादीन् - त्रीन् राशीन् = कर्क - सिंह - कन्यासंज्ञकान् - त्रीन् राशीन् - सचचरन् सन् सः - सूर्यः, अह्नः - दिनस्य, पश्चार्धं = परभागम् तद्वत् = कर्कं, सिंहं - कन्यां च क्रमेण पूर्ववत् सञ्चरन् - परभागं पूरयेत्, एव-इति निश्चयार्थे अव्ययः कन्यान्ते देवदिनस्य परभागसमाप्तौ सत्यां मेरुपर्वतस्थानां देवानां सूर्यास्तः भवतीति सारांशः ।

दक्षिणभूगोलार्धे - स्थितान् तुलादीन् - त्रीन् - राशीन् = (तुला - वृश्चिक-धनुः संज्ञकान् त्रीन् राशीन्) सूर्यः सञ्चरन् सन्, सुरद्विषाम् =(लङ्काराजधानीप्रदेशादिनिवासिनां - दैत्यानाम्) तद्वत् = पूर्वोक्तप्रकारेण-अह्नः=दिनस्य पूर्वार्धं पूरयेत्, धनुः राश्यन्ते सूर्ये सति दैत्यानां मध्याह्नं भवति ।

मृगादींश्च=मकर - कुम्भ - मीन-संज्ञकान् त्रीन् राशीन् यदा सूर्यः सञ्चरति, तदा तद्वत् = पूर्वोक्तप्रकारेण, सुरद्विषाम् दैत्यानां दिनस्य पश्चार्धं पूरयति, मीनान्ते सूर्ये सति दैत्यानां सूर्यास्तः - भवतीति सारांशः ।

"अतो दिनक्षपे तेषामन्योऽन्यं हि विपर्ययात् ।
अहोरात्रप्रमाणं च भानो र्भगणपूरणात् ।।५०।।"

उपर्युक्तपद्यस्य अयं भावः......

अतः = पूर्वोक्तप्रकारेण - देवासुगणां दिनरात्रिव्यवस्थाकरणात्, तेषाम् = देवासुराणां - अन्योऽन्यं विपर्ययात् विपरीतभावात् - दिनपक्षे = दिनरात्री भवतः, हि - इति निश्चयार्थेऽत्र - अव्ययः ।

१— यदा देवानां दिनं भवति, तदा असुराणां रात्रिः भवति ।

२— यदा - असुराणां दिनं भवति, तदा देवानां रात्रिः भवति ।

भानोः = सूर्यस्य, भगणपूरणात् - मेषादिद्वादशराशिभोगपूरणात् - एव तेषां देवासुराणाम् - अहोरात्रप्रमाणं भवति, द्वादशराशिभागे अपूर्णे सति - अहोरात्रस्यापि- अपूर्तिः भवतीति भावः ।

दिनक्षपार्धमेतेषामयनान्ते विपर्ययात् ।
उपर्यात्मानमन्योऽन्यं कल्पयन्ति सुरासुराः ।।५१।।

उक्तपदस्य - अयं भावः —

पञ्चविंशतिकोटियोजन = (२५००००००० योजन) प्रमितस्य वृत्ताकारस्य भूमण्डलस्य केन्द्रस्थाने - एकलक्ष "१०००००" योजनप्रमितः - वृत्ताकारः- जम्बूद्वीपः स्थितोऽस्ति. तस्य च जम्बूद्वीपस्य सर्वदिक्षु = "परितः" एकलक्ष= "१०००००" योजनविस्तारयुक्तः क्षारसमुद्रः परिवेष्टितः अस्ति, जम्बूद्वीपस्यापि केन्द्रे षोडशसस्त्र- ="१६०००" योजनप्रमितः भूमौ प्रविष्टः=(निर्गतः) चतुरशीतिसहस्र "८४०००" योजनप्रमितश्च जम्बूद्वीपस्य भूमितः - ऊर्ध्वं - अन्तरिक्षप्रदेशे निर्गतः = (प्रविष्टः) इत्थं - एकलक्ष-"१०००००" योजनोच्छ्राययुक्तः सुमेरुपर्वतः स्थितोऽस्ति —

समन्तान्मेरुमध्यात् तु तुल्यभागेषु तोयधेः ।
द्वीपेषु दिक्षु पूर्वादिनगर्यो देवनिर्मिताः ।।३७।।

इति - सूर्यसिद्धान्तस्थे - भूगोलाध्याये - सप्तत्रिंशत् "३७" प्रमितश्लोकोक्तेः- सुमेरुपर्वतकेन्द्रात् पूर्वादिचतुर्दिक्षु - तोयधेः "क्षारसमुद्रस्य" "तुल्यभागेषु" समाना- न्तरितेषु भागेषु द्वीपेषु - देवनिर्मिताः - चतस्रः - नगर्यः तिष्ठन्ति, क्षारसमुद्रद्वीपे- पूर्वस्यां दिशि "यमकोटि" नगरी - अस्ति, क्षारसमुद्रस्य दक्षिणस्यां दिशि - "लङ्का" नगरी - अस्ति,पश्चिमदिशि "रोमका" नगरी अस्ति, क्षारसमुद्रद्वीपे - उत्तरस्यां दिशि "सिद्धपुरी" नगरी - अस्ति, क्षारसमुद्रस्यापि - सर्वदिक्षु-"अष्टदिक्षु" "परितः- इति- भावः" अन्येऽपि - षड्द्वीपाः षट्- समुद्राश्च क्रमशः - मण्डलाकृतिरूपेण परिवेष्टिताः स्थिताः सन्ति ।

उपर्युक्तप्रकारेण ताश्चतस्रः - नगर्यः - जम्बूद्वीपस्य परिधौ तुल्यान्तरेषु - क्षार- समुद्रस्य द्वीपेषु स्थाताः सन्ति ।

ताश्चतस्रः - नगर्यः - समसूत्रस्थाः सन्ति, समसूत्ररुपायाः - दक्षिणोत्तररेखायाः उत्तरस्यां दिशि "सिद्धपुरी" नगरी - अस्ति, दक्षिणस्यां दिशि च "लङ्का" नगरी - अस्ति याम्योत्तररेखारूपे समसूत्रे निबद्धा ।

एवं च पूर्वापररेखारूपे समसूत्रे निवद्धा "यमकोटि" नगरी पूर्वस्यां दिशि अस्ति, पश्चिमदिशि च पूर्वापररेखारुपसमसूत्रे निवद्धा "रोमका" नगरी - अस्ति, समानसूत्ररूपा याम्योत्तररेखाजम्वूद्वीपभूगोलस्य समानौ द्वौ भागौ विदधाति, पूर्वीय-जम्वूद्वीपार्ध - पश्चिमीयजम्वूद्वीपार्ध - संज्ञकौ तौ द्वौ भागौ स्तः, पूर्वापरभूगोलार्धनाम्ना अपि - व्यवहृतौ तौ द्वौ भागौ स्तः ।

पुष्करद्वीपमध्ये स्थिते मानसोत्तरपर्वते मेषादिद्वादशराशिषु परिभ्रमणशीलस्य सूर्यस्य - उत्तरायणदक्षिणायनसंज्ञया व्यवहृते द्वे - अयने स्तः,

"अयन" शव्देन - अत्र ... "अयनं - वर्त्म - मार्गाध्व- पन्थानः पदवी-सृतिः" "अनये द्वे गति - रुदग्दक्षिणार्कस्य" इति - अमरकोषोक्तेः, तथा च··· "अयनं पथि गेहेऽर्कस्योदग्दक्षिणतो गतौ" इति हैमकोषोक्तेश्च, "अयन' शव्देन - अत्र सूर्यस्य-उत्तर-दिशामार्ग - दक्षिणदिशामार्गयोश्च ग्रहणमस्ति ।

सूर्यस्य - उत्तरायण - दक्षिणानयोः = (उत्तरदक्षिणमार्गयोः) व्यवस्थामत्र लिखामि

वृत्ताकारमानसोत्तरपर्वते क्रान्तिवृत्तसंज्ञके पूर्वाभिमुखस्वगत्या परिभ्रमतः सूर्यस्य यदा जम्वूद्वीपस्य पूर्वीयभूगोलार्धे रश्मयो निपतन्ति, तदा - उत्तर- दिशाभि-मुखः सूर्यः चलति, तस्य सूर्यस्य - उत्तरदिशास्थमार्गे गमनत्वात्" उत्तरायणं इति नाम - भवति ।

जम्वूद्वीपस्य - पूर्वीयभूगोलार्धे यः - दक्षिणदिशास्थः प्रारम्भिकः - भागः - अस्ति, तस्मिन् प्रारंभिके भागे- अन्तरिक्षे स्थितस्य मकरराशेः विम्वम् निपतति, तत्रैव च सः मकरराशिः विम्वरूपेण तिष्ठति, ततः आरभ्यैव मकरराशेः प्रारंभः भवति, उत्तरदिशास्थ - जम्वूद्वीपस्य - पूर्वीयभूगोलार्धस्य - प्रान्तभागे तु - आकाशस्थस्य मिथुनराशेः विम्वं निपतति, तत्रैव च स मिथुनराशि विम्वरूपेण तिष्ठति, तस्मिन् प्रान्तभागे - एव - मिथुनान्तो भवति, अतः - मकरादिमिथुनान्तयोः - मध्ये स्थितस्य-जम्वूदीपस्य पूर्वीयभूगोलार्धस्य - उपरि - आकाशस्थानां - मकर -कुम्भ - मीन - मेष वृष - मिथुन संज्ञकानां षड्राशीनां विम्वानि निपतन्ति , तत्रैव च तानि विम्वानि स्थितानि सन्ति, तेषु विम्वेषु यदा सूर्यरश्मयः - सूर्यस्य स्वकीयगत्या निपतन्ति, तदा तेषु मकरादिषड्राशिषु सूर्यगमनशीलत्वात्-उत्तरदिशाभिमुखगमनत्वाच्च "उत्तरायणम्' व्यवहृतं भवति सूर्यस्य ।

जम्वूद्वीपस्य पश्चिमीयभूगोलार्धे तु - अकाशस्थानां - कर्क - सिंह - कन्या - तुला - वृश्चिक - धनुः - संज्ञकानां षड्राशीनां विम्वानि - समानभागान्तरितानि निपतन्ति, तत्रैव च तानि स्थितानि सन्ति, उत्तरदिशास्थप्रारंभिके जम्वूद्वीपस्य पश्चिमीयभूगोलार्धे कर्कराशेः विम्वं निपतितम् - अस्ति, दक्षिणदिशास्थपश्चिमीय-भूगोलार्धान्ते च 'प्रान्तभागे" धनुः- राशेः विम्वं निपतति, तत्रैव च तस्व स्थितिः- अस्ति, कर्कराशितः आरभ्य - सूर्यः स्वगत्याषट्सु राशिषु दक्षिणाभिमुखः- चलति, अतः

कर्कतः - धनुरन्तं यावत् तावत्- दक्षिणमार्गाभिमुखं गमनत्वात् सूर्यस्य- "दक्षिणायनम्" "दक्षिणमार्गगमनम्" भवतीति स्वीकृतं सर्वैरेव वैज्ञानिकैः - ऋषिभिः ।

जम्बूद्वीपस्य पूर्वीयभूगोलार्ध - पश्चिमीयभूगोलार्धयोः - योगस्तु - याम्योत्तर - रेखायाम् उत्तरस्यां दिशि - बिम्बरूपयोः मिथुनान्त - कर्कादिप्रान्तयोः योगः एव पूर्वीयपश्चिमीयगोलसन्धिसंज्ञकः भवति, दक्षिणस्यां दिशि तु - याम्योत्तर - रेखायां धनुरन्त - मकरादिप्रान्तयोः बिम्बरूपयोः योगः- एव पूर्वीयपश्चिमीय - भूगोलार्धयोः सन्धिसंज्ञकः भवति ।

पूर्वस्यां दिशि जम्बूद्वीपस्य सुमेरुपर्वतस्य च - मध्यगतायां= (केन्द्रगतायाम्) पूर्वापररेखायां तु मीनान्तमेषादिभागयोः बिम्बरूपयोः योगो भवति, पश्चिमदिशि तु जम्बूद्वीपस्य मध्यगतायां पूर्वापररेखायां - कन्यान्ततुलादिभागयोः बिम्बरूपयोः योगो भवति, पूर्वापररेखया समस्तस्य भूगोलस्य जम्बूद्वीपभूगोलसहितस्य उत्तर - दक्षिणसंज्ञकौ गोलौ भवतः, पूर्वापररेखातः - उत्तरस्यां दिशि स्थितस्य- उत्तरगोलसंज्ञा, दक्षिणस्यां दिशि स्थितस्य तु - दक्षिणगोलसंज्ञा भवति ।

१— पूर्वापरसमसूत्ररूपायां सरलरेखायां पूर्वस्यां दिशि - जम्बूद्वीपप्रान्ते यत्र बिम्बरूपयोः - मीनान्तमेषादिराशिभागयोः - योगो भवति, स योगः दक्षिणोत्तर - गोलयोः - पूर्वसन्धिसंज्ञकः - व्यवह्रियते, तत्रैव - च पूर्वसन्धौ "यमकोटि" नगर्याः स्थितिः - अस्ति ।

२— पूर्वापरसमसूत्ररूपायां सरलरेखायां पश्चिमायां दिशि जम्बूद्वीपप्रान्ते यत्र बिम्बरूपयोः कन्यान्त - तुलादि - राशिभागयोः योगो भवति, स योगः दक्षिणोत्तर - गोलयोः पश्चिमसन्धिसंज्ञकः - व्यवह्रियते, तत्रैव च पश्चिमसन्धौ "रोमका" नगर्याः स्थितिः अस्ति ।

३— दक्षिणोत्तरसमसूत्ररूपायां सरलरेखायां उत्तरस्यां दिशि जम्बूद्वीपप्रान्ते यत्र बिम्बरूपयोः - मिथुनान्त - कर्कादिराशिभागयोः - योगो भवति, स तत्र योगः पूर्वापरगोलयोः उत्तरसन्धिसंज्ञको व्यवहृतो भवति , तत्रैव सन्धौ "सिद्धपुरीनगर्याः" स्थितिः अस्ति ।

४— दक्षिणोत्तरसमसूत्ररूपायां सरलरेखायां दक्षिणस्यां दिशि - जम्बूद्वीपस्य प्रान्ते यत्र बिम्बरूपयोः - धनुरन्त - मकर दि - राशिभागयोः योगो भवति, स योगः- पूर्वापरगोलयोः दक्षिणसन्धिसंज्ञको व्यवहृतो भवति, तत्रैव दक्षिणसन्धौ ' लङ्का" नगर्याः स्थितिः अस्ति ।

५— पूर्वसन्धितः - मेषराशेः प्रथमांशारम्भप्रदेशतः आरभ्य - उत्तरसन्धि यावत्तावत् = मिथुनराशेः अन्तिमभागान्तं यावत्तावत् देवानां दिनार्धं= दिनस्य - पूर्वार्धम् - भवति, मिथुनराशिप्रान्ते च सूर्ये सति देवानां मध्याह्नकालो भवति ।

६— कर्कराशेः प्रथमांशतः - आरभ्य - पश्चिमसन्धि यावत्तावत् - कन्या - राशेः - अन्तिमांशान्तं यावत्तावत् - देवानां दिनस्य - उत्तरार्धम् भवति , मेषराशेः प्रथमांशे सूर्ये प्रविष्टे सति देवानां सूर्योदयः भवति, कन्यान्तांशे च सूर्ये प्रविष्टे सति

सूर्यास्तकालः भवतीति सारांशः।

७— एवं च तुलाराशेः प्रथमांशे सूर्ये प्रविष्टे सति असुराणां सूर्योदयो भवति, देवानां च रात्रिप्रारंभः भवति।

८— दक्षिणसन्धौ "लङ्कानगर्याम्" धनुरन्ते सूर्ये प्रविष्टे सति - असुराणां मध्याह्नकालः भवति, देवानां च स रात्र्यर्धकालः भवति।

९— मीनान्ते च सूर्ये प्रविष्टे सति - असुराणां दिनस्य समाप्तिकालः- भवति, देवानां च सूर्योदयकालः भवति।

१०— यः- देवानां सूर्योदयकालः - स एव असुराणां-रात्र्यारम्भकालो भवति।

११— यश्च देवानां मध्याह्नकालो भवति, स एव असुराणां रात्र्यर्धकालो - भवति, अतः - उपर्युक्तरीत्या - देवानां - असुराणां च क्रमशः - उत्तरायणान्ते - दक्षिण यनान्ते च विपर्ययात् - व्यत्ययात् निदक्षपार्वम् = दिनरात्र्यर्धम् भवति, उत्तराय - णान्ते देवानां दिनार्धं भवति, = (दिनमध्यम्) भवति, असुराणां तु रात्र्यर्धम् भवति, दक्षिणायनान्ते तु - असुराणां दिनार्धं = दिनमध्यं भवति, देवानां तु रात्र्यर्धं भवति।

जम्बूद्वीपस्य परिधौ दक्षिणोत्तर - रेखाप्रान्तभागयो - उत्तरस्यां दिशि सिद्धपुरीनगर्यां स्थिता - देवा - दक्षिणस्यां दिशि च लङ्कानगरीप्रदेशे स्थितान् असुरान् अधः स्थितान् प्रकल्प्य - आत्मानं - असुरेभ्य उपरि = ऊर्ध्वभागे स्थितं कल्पयन्ति = आमनन्ति।

एवं लङ्कानगरीप्रदेशस्थिताः राक्षसाः अपि आत्मानं देवेभ्यः-ऊर्ध्वभागे स्थितं मन्यन्ते, इत्थं ते देवासुराः समसूत्रस्था अपि समकक्षा - गतभूगोलस्थाः-अपि अन्योऽन्यं उपरितनभागे स्थितं आत्मानं वृथैव कल्पयन्ति, वस्तुतस्तु ते समभूमिस्थाः एव सन्ति - जम्बूद्वीप-परिधिगतभूमौ क्षारसमुद्रद्वीपेषु स्थितत्वात्।

यथा हि—समानरूपायां भूमौ स्थितौ अपि गुरुशिष्यौ यदा तिष्ठतः, तदा गुरुः भूमिगतं स्वस्थानं शिष्यस्थानात् उच्चस्थं कल्पयति, शिष्यश्च स्वस्थानं निम्नगतं कल्प-यति, समायां अपि खट्वायां स्थितौ द्वौ पुरुषौ एकः खट्वाशिरोभागगतं स्वस्थानम् 'सिराहने की तरफ के अपने बैठने के भाग को' उपरिगतं कल्पयति, अन्यः द्वितीय-भागतः = शिरोभागतः अन्यभागस्थितः पुरुषः अधोगतं आत्मानं कल्पयति, वस्तुतस्तु तौ द्वौ अपि पुरुषौ खट्वायाः समानभागे स्थितौ स्तः, उच्चाधोभागकल्पना तु तयोः - वृथैव अस्ति, भूमिसमत्वात् खट्वासमत्वाच्च।

तथैव जम्बूद्वीपस्य परिधौ समानभूमिस्थितानां देवासुराणामपि उच्चाधोभाग-भूमिकल्पना केवलं कल्पना मात्रैवास्ति, न तु तेषां देवासुराणां द्वीपस्थितानां उच्चाधो-भागभूमौ स्थितिः अपितु समानायामेव भूमौ ते निवसन्ति।

अतएव कृपालुना सूर्यांशपुरुषेण भूगोलाध्याये सूर्यसिद्धान्ते द्विपञ्चाशत् "५२" प्रमिते श्लोके 'यमकोटी - रोमका - सिद्धपुरी - लङ्का' नगरीणां स्थितिः परिधिरूपायां समानभूमौ एव समुक्ता, अन्यापि व्यवस्था समुक्ता।

"अन्येऽपि समसूत्रस्था मन्यन्तेऽधः परस्परम् ।
भद्राश्वकेतुमालास्था लङ्कासिद्धपुराश्रिताः ॥५२॥'

उक्तपद्यस्य अर्थस्तु स्पष्टः एवास्ति ।

भूगोलपृष्ठोपरिनिवासिनां - ऊर्ध्वाधरानिवासस्थितिकथनस्य व्यवहारस्तु काल्पनिकः - एव न तु वास्तविकः, इति दृढ़यन् - सूर्यांशपुरुषः कथयति निम्नाङ्कितश्लोकाभ्याम् —

सर्वत्रैव महीगोले स्वस्थानमुपरिस्थितम् ।
मन्यन्ते, खे यतो गोलस्तस्य क्वोर्ध्वं क्ववाप्यधः ॥५३॥
अल्पकायतया लोकाः स्वस्थानात् सर्वतो मुखम् ।
पश्यन्ति वृत्तामप्येतां चक्राकारां वसुन्धराम् ॥५४॥

वृत्ताकारामपि एतां = प्रत्यक्षां वसुन्धराम् चक्राकारसदृशां पश्यन्ति ।

चक्राङ्गाकारां मन्यन्ते इति सारांशः ।

वृत्ताकारतुल्यगोलाकाराम्, इमां पृथिवीम् = चक्राकाराम् = यथा चक्रस्य 'लोकप्रसिद्धस्य पहियानाम्नः' आकारो भवति, तत्र चक्रे तु एकस्य अङ्गस्य सम्मुखे द्वितीयस्य चक्रावयवस्य पुट्ठीपदवाचकस्य चक्राङ्गस्य स्थितिः भवति, द्वितीयाङ्गं तु अधोभागस्थं भवति, तथैव अत्रापि वृत्ताकारे भूगोले चक्राकारवत् नगरीप्रभृतीनां ऊर्ध्वाधरस्थितिकल्पनां भ्रान्त्यैव कुर्वन्ति, इति सारांशः ।

लङ्कानगर्याः - अधोभागे - सिद्धपुरी नगरी अस्तीति श्रीभास्कराचार्यमतस्य समीक्षात्मकं खण्डनमत्र करोमि

श्रीभास्कराचार्यैस्तु सिद्धान्तशिरोमणौ गोलाध्याये भुवनकोशे निम्नाङ्कितौ श्लोकौ समुक्तौ—

लङ्का कुमध्ये यमकोटिरस्याः प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनं च ।
अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुः सौम्येऽथ याम्ये वडवानलश्च ॥१७॥
कुवृत्तपादान्तरितानि तानि स्थानानि षड्गोलविदो विदन्ति ॥१८॥
लङ्कापुरेऽर्कस्य यदोदयः स्यात् तदा दिनार्धं यमकोटिपुर्याम् ।
अधस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकालः स्याद्रोमके रात्रिदलं तदैव ॥४४॥

पूर्वोक्तयोः श्लोकयोः 'सिद्धपुरी' नगर्याः या अधः स्थितिः समुक्ताः, सा तु - अयुक्तैवास्ति, यतो हि - सिद्धपुरी नगरी तु - जम्बूद्वीपस्य परिधिरूपभूमौ उत्तरीयक्षारसमुद्रद्वीपे यमकोटी - लङ्का रोमकानगरीणामिव समसूत्ररूपायां सरलरेखायामेव स्थिता अस्ति, अतः सिद्धपुरी नगर्याः अधः स्थितिकथनं तु कयापि रीत्या न सिद्ध्यति ।

श्रीभास्कराचार्यकथनानुसारेण तु भूगोलस्य अधोभागे सिद्धपुरीनगर्याः स्थितिः स्वीक्रियते चेत्तर्हि सिद्धपुरीसंलग्नस्य क्षारसमुद्रस्य स्थितिः क्वास्ति, जम्बूद्वीपक्षारसमुद्राभ्यां सह संलग्नानां अन्येषां षड्द्वीपानां षड्सागराणां च स्थितिः क्वास्तीति प्रश्नः समुदेति, समुदितस्यास्यप्रश्नस्य समाधानं तु न भवति कयापि रीत्या - अधः स्थितायां सिद्धपुरीनगर्यां सत्याम्, सूर्यसिद्धान्तादिषु सर्वेष्वपि आर्षगणितग्रन्थेषु

समसूत्रस्थाः जम्बूद्वीपस्य परिधिस्थिताः एव उपर्युक्ताः चतस्रः नगर्यः स्वीकृताः न तु अधः ऊर्ध्वस्थाः, 'मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रः' इति श्रीमद्भागवतमहापुराणोक्तेः श्रीविष्णुपुराण - श्रीवायुपुराण - श्रीमत्स्यपुराणोक्तेश्च भूगोलस्य अधोभागे तु आत्मतन्त्रः = भगवान् शेषः सङ्कर्षणाख्यः ईश्वरः एव स्थितः अस्ति ।

भास्कराचार्यैः सिद्धपुरीनगरी तु लङ्कायाः अधोभागे कल्पिता, लङ्कानगरी च सिद्धपुरीनगर्याः ऊर्ध्वभागे भूगोलमध्ये कल्पिता, अन्यानि अपि यानि स्थानानि कल्पितानि भास्कराचार्यैः तानि न रोचते मह्यम् आर्षगणितविरुद्धत्वात् ब्रह्माण्डगणितविरुद्धत्वात् च ।

सार्धद्वयघटीभिः = (२+१/२ घटीभिः) एका घण्टा भवति, एकघण्टायां च षष्टिमिनटाः भवन्ति = (१ घण्टा = ६० मिनटाः) एकमिनटे च षष्टिसैकेण्डाः - भवन्ति = (१ मिनटः = ६० सैकेण्डाः) पञ्चदशघटीनां षड्घन्टाः - भवन्ति = (१५ घट्यः = ६ घण्टाः) ।

१— यतो हि षड्घण्टाभिः = (पञ्चदशघटीभिः) सूर्यः पुष्करद्वीपे मानसोत्तरपर्वते द्विकोटि - सप्तत्रिंशल्लक्ष - पञ्चोत्तरसप्ततिसहस्र - योजननानि = (२३७७५००० योजनानि) चलति, चेत्तर्हि - ऐकया घन्टया कतियोजनानि चलति, इति त्रैराशिकगणितानुपातेन - एकघन्टाया सूर्यगतियोजनानि समानेयानि निम्नाङ्कितरीत्या ।

$$\frac{\text{२३७७५००० यो०} \times \text{१घं०}}{\text{६ घं०}} = \text{३९६२५००} = \text{एकघन्टागतियोजनानिसूर्यस्य,}$$

२— यतो हि एकघन्टान्तर्गतैः - षष्टिमिनटैः - "६० मिनटैः" पुष्करद्वीपे सूर्यः - एकोनचत्वारिंशल्लक्ष - द्विषष्ठिसहस्र - पञ्चशत - योजनानि= (३९६२५०० योजनानि) चलति, चेत्तर्हि - एकेन मिनटेन कतियोजनानि चलति, इति त्रैराशिकगणितानुपातेन - एकस्मिन् मिनटे सूर्यगतियोजनानि समानेयानि ।

$$\frac{\text{३९६२५००} \times \text{१ मिनट}}{\text{६० मिनट}} = \text{६६०४१}\frac{\text{२}}{\text{३}}\text{— योजनानि एकमिनटे प्रचलति सूर्यः पुष्करद्वीपे ।}$$

३— यतो हि एकमिन्टान्तर्गतैः - षष्टि "६०" सैकेन्डैः = १९८१२५/३ योजनानि सूर्यश्चलति चेत्- तर्हि - एकेन सैकेन्डेन कतियोजनानि चलति, इति त्रैराशिकगणितानुपातेन एकसैकेन्डे सूर्यगतियोजनानि समानेयानि—

$$\frac{\frac{\text{१९८१२५ योजन}}{\text{३}} \times \text{१ सैं०}}{\text{६० सैं०}} = \frac{\text{१९८१२५}}{\text{३}} \div \frac{\text{६०}}{\text{१}}$$

$$= \frac{१९८१२५}{३} \times \frac{१}{६०} = \frac{१९८१२५}{१८०} = ११०० \frac{२५}{३६} \text{ योजनानि एक सैकण्ड}$$

सूर्यः - चलति पुष्करद्वीपे ।

जम्बूद्वीपस्य व्यासमानं - एकलक्ष="१00000" योजनप्रमितमस्ति, व्यासात् त्रिगुणः परिधिः इति सिद्धान्तानुसारेण — १00000 × ३ = ३00000 त्रिलक्षयोजनप्रमितः जम्बूद्वीपस्य परिधिः मया प्रागेव प्रतिपादितः ।

४— यतो हि षष्टिघटीभिः = (६० घटीभिः) = चतुर्विंशति "२४" घन्टाभिः - त्रिलक्षयोजन = (३०००००) प्रमितपरिधौ सूर्यविम्वः भ्रमति, चेत्तर्हि - पञ्चदश "१५" घटीभिः = (षड्घन्टाभिः "६ घन्टाभिः") कतियोजनानि भ्रमति, इति त्रैराशिकगणितानुपातेन निम्नाङ्कितरीत्या षड्घन्टासु - सूर्यविम्बपरिभ्रमण - योजनानयनं विधेयम् —

$$\frac{३००००० \times ६\text{घं०}}{२४\text{घं०}} = ७५००० \text{ योजनप्रमितं सूर्यविम्वभ्रमणमानं समायाति षड्घन्टासु ।}$$

५—यतो हि षड्घन्टाभिः="६ घन्टाभिः" पञ्चोत्तरसप्ततिसहस्र "७५००० योजनप्रमितं" भ्रमणं सूर्यविम्वं करोति, चेत्तर्हि-एकघन्टया कतियोजनानां भ्रमणं करोति इति त्रैराशिकगणितानुपातेन- एकघन्टा भ्रमणे योजनमानानि समानेयानि निम्नाङ्कितरीत्या ···

$$\frac{७५००० \text{ यो०} \times १\text{घं०}}{६ \text{ घं०}} = १२५०० \text{ योजनानि एकघन्टायां सूर्यविम्वभ्रमणस्य समायान्ति ।}$$

६—यतो हि-एकघन्टान्तर्गतैः षष्टिमिनटैः=(६० मिनटैः)द्वादशसस्र-पञ्चशत-योजन = (१२५०० योजन) प्रमितं भ्रमणं सूर्यविम्वं करोति, चेत्तर्हि-एकेन मिनटेन कतियोजनानां भ्रमणं करोति, इति त्रैराशिकगणितानुपातेन एकमिनटसमये- सूर्यविम्व-भ्रमणयोजनमानं समानेयं निम्नाङ्कितरीत्या ···

$$\frac{१२५०० \text{ यो०} \times १ \text{ मि०}}{६० \text{ मि०}} = \frac{६२५}{३} \text{ योजनानि} = २०८\frac{१}{३} \text{ योजनानि एक मिनटे सूर्यगति-योजनमानस्य जम्बूद्वीपे भवन्ति}$$

$२०८\frac{१}{३}$ योजनप्रमितं - एकमिनटे - सूर्यविम्वपरिभ्रमणमानं समायाति जम्बूद्वीपे

७— यतो हि - एकमिनटान्तर्गतैः - षष्टि - "६०" सैकेन्डैः ६२५/३योजन-प्रमितं सूर्यविम्वभ्रमणं करोति, चेत् तर्हि - एकस्मिन् सैकेण्डे कतियोजनानां भ्रमणं करोतीति त्रैराशिकगणितेन योजनमानं समानेयं निम्नाङ्कितरीत्या...

$$\frac{\frac{६२५ \text{ यो} \times १ \text{ सै०}}{३}}{६० \text{ सै०}} = \frac{६२५ \text{ यो०}}{३} \div \frac{६०}{१} = \frac{६२५}{३} \times \frac{१}{६०}$$

$= \frac{६२५}{१८०}$ योजनानि $= \frac{१२५}{३६}$ योजनानि $= ३\frac{१७}{३६}$ योजनप्रमितं-एक सैकेन्डे चलति सूर्य विम्बं जम्बूद्वीपे।

जम्बूद्वीपे - सूर्योदय - मध्याह्न - सूर्यास्त- रात्र्यर्ध-व्यवस्था - सूर्यांशपुरुषेण समुक्ता

"भद्राश्वोपरिगः कुर्यात् भारते तूदयं रविः।
रात्र्यर्धं केतुमाले तु कुरावस्तमयं तदा ॥७०॥
भारतादिषु वर्षेषु तद्वदेव परिभ्रमन्।
मध्योदयार्धरात्र्यस्तकालान् कुर्यात् प्रदक्षिणम्" ॥७१॥

उक्तपद्ययोः अयं भावः — भद्राश्वोपरिगः = भद्राश्ववर्षे यमकोटीनगर्याः उपरि यदा सूर्यः- गच्छति तदा भद्राश्ववर्षे मध्याह्नकालः भवति, भद्राश्ववर्षे मध्याह्नकाले सति भारते = भारतवर्षे - लङ्कानगर्यां तु - उदयं करोति, यदा यमकोट्यां मध्याह्नो भवति तदा लङ्कायां सूर्योदयो भवति - इति सारांशः, यदा यमकोट्यां मध्याह्नो भवति, तदा केतुमालवर्षे रोमकानगर्यां रात्र्यर्धं = मध्यरात्रिः भवति, यदा यमकोट्यां मध्याह्नो भवति तदा कुरौ = कुरुवर्षे सिद्धपुर्यां नगर्यां सूर्यः- अस्तमयम् = सूर्यास्तकालं करोति, यमकोट्यां मध्याह्ने सति कुरुवर्षे सिद्धपुरीनगर्यां- सूर्यास्तकालो भवतीति भावः।

भारतादिषु त्रिषु वर्षेषु = भारत - केतुमाल-कुरुसंज्ञकेषु त्रिषु वर्षेषु तदवदेव = भद्राश्ववर्षवदेव - मध्योदयार्धरात्र्यस्तकालान् प्रदक्षिणं यथा - स्यात्तथा प्रदक्षिणाक्रमेणेतिभावः सूर्यः कुर्यात् "करोतीति भावः"।

लङ्कायां मध्याह्ने सति - रोमकानगर्यां सूर्योदयः सिद्धपुर्यां अर्धरात्रिः यमकोट्यां च सूर्यास्तकालो भवति, रोमकानगर्यां मध्याह्ने सति - सिद्धपुर्यां सूर्योदयः यमकोट्यां - अर्धरात्रिः - लङ्कायां सूर्यास्तकालो भवति, सिद्धपुर्यां मध्याह्ने सति यमकोट्यां सूर्योदयः लङ्कायां - अर्धरात्रिः - रोमकानगर्यां च सूर्यास्तकालो भवति, अनयैवरीत्या - अन्येषु अपि अन्तरालवर्तिदेशेषु अपि - मध्याह्नः- सूर्योदयः-अर्धरात्रिः - सूर्यास्तश्च रवेः ज्ञेयः।

"भद्राश्वोपरिगः कुर्यात् भारते तू दयं रविः।
रात्र्यर्धं केतुमाले तु कुरावस्तमयं तथा ॥७०॥
भारतादिषु वर्षेषु तद्वदेवपरिभ्रमन्।
मध्योदयार्धरात्र्यस्तकालान् कुर्यात् प्रदशिक्षणम् ॥७१॥"

इत्येतादृशी सूर्यसिद्धान्तोक्ता सूर्यभ्रमणस्य व्यवस्था तासु - उदय - मध्याह्न - अस्तमय - निशीथानीति - भूतानां - प्रवृत्ति - निवृत्ति - निमित्तानि - समयविशेषेण मेरोश्चतुर्दिशम्" इति श्रीमद्भागनतमहापुराणे . पञ्चमस्कन्धे- उक्तया ' सूर्यपरिभ्रमणव्यवस्थया सह सङ्गच्छते एव।

एतादृशी - एव - सूर्यपरिभ्रमणव्यवस्था श्रीविष्णुपुराणे - श्रीमत्स्यपुराणे -

श्रीवायुपुराणे च समुक्ता दरीदृश्यते सर्वत्र ।

पुराणग्रन्थेषु तु - समस्तस्य ब्रह्माण्डस्य वर्णनं कुर्वद्भिः योगिभिः महर्षिभिः पुष्करद्वीपमध्ये मानसोत्तरपर्वते पूर्वादिचतुर्दिक्षु - भूमिपादान्तरे संस्थितासु...... (१) देवधानी (२) संयमनी (३) निम्लोचनी (४) विभावरी, नाम्ना - प्रसिद्धासु नगरीषु प्रदक्षिणाक्रमेण - मेरोश्चतुर्दिशम्-प्रवहवायुवेगेन परिभ्रमणशीलस्य-सूर्यस्य उदय-मध्याह्न - सायाह्न - रात्र्यर्धं - व्यवस्था समुक्ता, सा - एव - व्यवस्था - जम्बूद्वीपे - पूर्वादिचतुर्दिक्षु - स्थितासु - (१) यमकोटी (२) लङ्का (३) रोमका (४) सिद्धपुरी नाम्ना प्रसिद्धासु नगरीष्वपि - स्वयंसिद्धरूपेणैव चरितार्थतां गच्छति ।

सूर्यसिद्धान्तग्रन्थे तु - कृपालुना सूर्यांशपुरुषेण- जम्बूद्वीपे स्थितासु (१)यमकोटी (२) लङ्का (३) रोमका (४) सिद्धपुरी, नगपीषु एव - सूर्यपरिभ्रमणव्यवस्था समुक्ता, देवधानी संयमनी, निम्लोचनी, विभावरीनगरीषु च सूर्यसिद्धान्तरीत्यैव-सूर्यपरिभ्रमण-व्यवस्था स्वयंसिद्धैव सिद्ध्यति ।

सूर्यांशपुरुषेण तु - समस्तस्य ब्रह्माण्डस्य - गणितविधान-व्यवस्था सूर्यसिद्धान्ते न समुक्ता, केवलं - जम्बूद्वीपस्यैव गणितविधान- व्यवस्था -समुक्ता सूर्यांशपुरुषेण, यतो हि-जम्बूद्वीपस्य दक्षिणभागे हिमालयपर्वतात्-दक्षिणस्यां दिशि मृत्युलोकनाम्ना प्रसिद्धस्य भारतवर्षस्य स्थितिः - अस्ति, हिमालयात् - उत्तरस्यां दिशि - किम्पुरुषादिषु - अष्टसु जम्बूद्वीपखण्डेषु देवाः - एव निवसन्ति, तेषु - देवेषु देवदेशेषु च......

यानि किम्पुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ मसामुने! ।
न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयादिकम् ।।५३।।
स्वस्थाः प्रजा निरातङ्काः सर्वदुःखविवर्जिताः ।
दश - द्वादश - वर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः ।।५४।।
न तेषु वर्षते देवो भौमान्यम्भांसि तेषु वै ।
कृत - त्रेतादिकं नैव तेषु स्थानेषु कल्पना ।।५५।।
सर्वेष्वेतेषु वर्षेषु सप्तसप्तकुलाचलाः ।
नद्यश्च शतशस्तेभ्यः प्रसूता या द्विजोत्तम ।।५६।।

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीये - अंशे - द्वितीये अध्याये . समुक्तेः......

ग्रहाणां शुभाशुभप्रभावो न भवति अवशिष्टेषु - षट्सु - द्वीपेषु, अवशिष्टे च समस्तेऽपि ब्रह्माण्डे - सूर्यादिग्रहाणां शुभाशुभफलस्य चरितार्थता न भवति, ग्रहाणां शुभाशुभचरितार्थता तु मृत्युलोकसंज्ञके भारतवर्षे - एव - भवति, न तु अन्यत्र कुत्रापि, अतएव कृपालुना सूर्यांशपुरुषेण जम्बूद्वीपस्य भारतवर्षनाम्ना व्यवहृतस्य - मृत्यु-लोकस्य च शुभाशुभफलविवक्षया जम्बूद्वीपस्य भारतवर्षस्यैव च ग्रहगणितव्यवस्था समुक्ता सूर्यसिद्धान्ते, न तु समस्तस्य ब्रह्माण्डस्य ।

विष्णुपुराणे द्वितीये अंशे प्रथमे अध्याये ब्रह्माण्डस्वरूपवर्णनम्

मेरुरुल्वमभूत्तस्य जरायुश्च महीधराः ।
गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासन् सुमहात्मनः ।।५७।।

साद्रिद्वीपसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः ।
तस्मिन्नण्डेऽभवद् विप्र! सदेवासुरभानुषाः ॥५८॥
वारि - वन्ह्यनिलाकाशै स्ततो भूतादिना वहिः ।
वृतं दशगुणैरण्डं भूतादि र्महता तथा ॥५९॥
अव्यक्तेनावृतो ब्रह्म स्तैः सर्वैः सहितो महान् ।
एभिरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैः वृतम् ॥६०॥
नारिकेलफलस्यान्तर्वीजं वाह्यदलैरिव ॥६१॥

देव - राक्षसयोः - दिनारम्भव्यवस्था भूगोलाध्याये सूर्यसिद्धान्ते सूर्यांशपुरुषेण समुक्ता तामत्र लिखामि

"मेषादौ देवभागस्थे देवानां याति दर्शनम् ।
असुराणां तुलादौ तु सूर्यस्तद्भागसञ्चरः ॥४५॥"

उक्तपद्यस्य अयं भावः......सुमेरुकेन्द्रगता या पूर्वापररेखास्ति, ततः रेखातः आरभ्य - उत्तरस्यां दिशि - उत्तरभूगोलार्धं तिष्ठति, तस्मिन् भूगोलार्धे मानसोत्तर-पर्वतगताः 'मेष - वृष - मिथुन - कर्क - सिंह - कन्या षड्राशयः' सन्ति, मेषादौ यदा सूर्यः सङ्क्रमति तदा तस्मादेव संक्रमणकालात् आरभ्य कन्यान्तं यावत् तावत् षड्-राशिषु स्वगत्या सङ्क्रमणशीलं सूर्यं षड्मासान्तं यावत्तावत् पश्यन्ति सुमेरुपर्वत-गतपूर्वापररेखातः उत्तरभूगोलार्धस्थाः देवाः, उक्तरीत्या मेषराशौ सूर्यस्य प्रवेशकाले देवानां दिनारम्भो भवति, उद्यन्तं सूर्यं च देवाः पश्यन्ति प्रथमदिने ।

सुमेरुपर्वतात्-दक्षिणास्थाः दैत्यास्तु मेषराशिगतं सूर्यं अस्तं गच्छन्तं पश्यन्ति । तुलाप्रथमांशे यदा सूर्यः उदेति, संक्रमणं वा करोति, तदा सुमेरुतः उत्तरदिशा-गतभूगोलार्धस्थाः देवाः अस्तं गच्छन्तं सूर्यं पश्यन्ति, सुमेरुतः दक्षिणभूगोलार्धस्थाः असुरास्तु तुलाराशिप्रवेशार्कं उद्यन्तमेव पश्यन्ति, प्रथमसूर्योदयदिनं तत् तेषां भवति, उत्तरदिशास्थभूगोलार्धगते सूर्ये देवानां दिनं भवति, असुराणां च रात्रि र्भवति, दक्षिण-दिशास्थभूगोलार्धगते सूर्ये असुराणां दिनं भवति, देवानां च रात्रि र्भवति, इति सारांशः।

"अत्यासन्नतया तेन ग्रीष्मे तीव्रकराः रवेः ।
देवभागे सुराणां तु हेमन्ते मन्दताऽन्यथा ॥४६॥"

उक्तपद्यस्य अयं भावः......तेन उत्तरदक्षिणगोलयोः सूर्यस्य सञ्चाररूपकार-णेन ग्रीष्मे ग्रीष्मर्तौ, रवेः = सूर्यस्य, देवभागे = उत्तरगोले अत्यासन्नतया = अत्यन्त-निकटस्थत्वेन, सुराणां = देवानां कृते, तीव्रकराः = तीव्ररश्मयो भवन्ति सूर्यस्य - इति शेषः, हेमन्ते = हेमन्तर्तौ तु अन्यथा = सूर्यस्य दूरस्थित्वेन मन्दता = अयुष्ण-तायाः अभावो भवति उत्तरगोले ।

एवं च दक्षिणगोले यदा सूर्यः भ्रमति, तदा दक्षिणगोलनिवासिनां अत्यासन्नतया सूर्यस्य तीव्रकराः भवन्ति, उत्तरगोले यदा सञ्चरति सूर्यस्तदा दक्षिणगोलनिवासिनां कृते सूर्यस्य रश्मयः = मन्दताम् = अतीव्रकरत्वम् प्रवहन्ति विशेषोष्णतायाः अभावो भवति तदानीं दक्षिणगोले सूर्यस्थितिदूरगतत्वात् ।

"देवासुरा विष्णुवति क्षितिजस्थं दिवाकरम् ।
पश्यन्त्यन्योऽन्यमेतेषां वामसव्ये दिनक्षपे ॥४७॥

उक्तपद्यस्य अयं भावः......देवासुराः विष्णुवति क्षितिजस्थं दिवाकरं पश्यन्ति, देवाः - विष्णुवति मेषादौ क्षितिजस्थं सूर्यं उद्यन्तं पश्यन्ति, दैत्यास्तु = अस्तं गच्छन्तं सूर्यं मेषादौ पश्यन्ति, तुलादौ विष्णुवति देवाः अस्तं गच्छन्तं सूर्यं पश्यन्ति, असुरास्तु - तुलादौ विष्णुवति उद्यन्तं सूर्यं पश्यन्ति, एवां देवासुराणां दिनक्षपे = दिनरात्री, वामसव्ये = अपसव्यदक्षिणे भवतः, सव्यं वामं स्मृतं प्राज्ञैरपसव्यं तु दक्षिणम्' इत्युक्तेः सुमेरुमध्यात् उत्तरदिशास्थं भूगोलार्धं वाममस्ति, दक्षिणादिशास्थं भूगोलार्धं तु अपसव्यं अस्ति, अतः वामभागे देवानां दिनं अपसव्यभागे च रात्रि र्भवति, अपसव्यभागे असुराणां दिनं वामभागे च रात्रि र्भवति ।

अत्र प्रसङ्गान्तर्गतौ - परिधिव्यासौ - आर्षोक्तौ लिखामि

(१)—श्रीविष्णुपुराणे द्वितीये अंशे द्वितीये अध्याये श्रीविष्णूचित्तीयटीकायां टीकाकाराः लिखन्ति—"सर्वत्र हि समवृत्ते व्यासात् त्रिगुणः स्मृतौ भवेत् परिधिः ।"

वायुपुराणानुसारेण व्यासात् त्रिगुणः परिधिः

(२)—वायुपुराणे पूर्वार्धे त्रयोऽधिकपंचशत् प्रमितेऽध्याये निम्नाङ्किता व्यवस्था उपलभ्यतेऽद्यापि......

"नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः ॥६१॥
विस्तारात् त्रिगुणश्चास्य परिणाहोऽथ मण्डलम् ।
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद् विस्तारः शशिनः स्मृतः ॥६२॥

मण्डलशब्दोऽत्र परिधिबोधकोऽस्ति, विस्तारशब्दोऽत्र भूव्यासबोधकोऽस्ति, अतः विस्तारात् - अर्थाद् व्यासात् त्रिगुणः परिधि र्भवतीति वायुपुराणात् अपि सिद्ध्यति ।

वायुपुराणे पूर्वार्धे चतुस्त्रिंशत्प्रमितेऽध्यायेऽपि व्यासात् त्रिगुणस्य परिधेः प्रतिपादनम् उपलभ्यते निम्नाङ्कितप्रकारेण

यदब्जं वैष्णवं कार्यं ततस्तन्नाभितोऽभवत् ।
पद्माकारा समुत्पन्ना पृथिवी सवनद्रुमा ॥४४॥
तदस्य लोकपद्मस्य विस्तरेण प्रकाशितम् ।
वर्णमानं विभागेन क्रमशः श्रणुत द्विजाः! ॥४५॥
महाद्वीपास्तु विख्याता श्चत्वारः पत्रसंस्थिताः ।
ततः कर्णिकसंस्थानो मेरुर्नाम महाबलः ॥४६॥
तरुणादित्यवर्णाभो विधूम इव पावकः ।
चतुरशीतिसाहस्रो उत्सेधेन प्रकीर्तितः ॥४९॥
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद् विस्तृत स्तावदेव हि ।
स शरावस्थितः पूर्वं द्वात्रिंशन्मूर्ध्निविस्तृतः ॥५०॥
विस्तारात् त्रिगुणश्चास्य परिणाहः समन्ततः ॥५१॥
चत्वारिंशत् सहस्राणि योजनानां समन्ततः ।
अष्टाभिरधिकानि स्यु स्त्र्यस्रे माने प्रकीर्तितम् ॥५२॥

कर्णिका तस्य पद्मस्य समन्तात् परिमण्डला ।
योजनानां सहस्राणि नवतिः षट् प्रकीर्तिता ॥५८॥

अत्र वायुपुराणोक्तेषु ५१-५२-५८ संख्याप्रमितेषु पद्येषु-व्यासात् त्रिगुणः परिधिः कथितः, तदनुसारेणैव - षोडषसहस्र - '१६०००' योजनव्यासयुक्तस्य सुमेरोः परिधिमानं अष्टचत्वारिंशत्सहस्रयोजन (४८००० योजन) प्रमितं समुक्तम्, द्वात्रिंशत्सहस्र-योजन = (३२००० योजन) प्रमितस्य सुमेरोः ऊर्ध्वप्रदेशस्य परिधिमानं तु षण्णवति-सहस्रयोजन = (९६००० योजन) प्रमितं समुक्तम् ।

हिमालयपर्वतविस्तारार्धमानहितस्य दशसहस्रयोजन=(१०००० योजन) दक्षिणोत्तरविस्तारयुक्तस्य भारतवर्षस्य षोड़शशतयोजन = (१६०० योजन) प्रमितं यत् केन्द्रमानं प्रतिपादितं तस्य केन्द्रमानस्य तु १६०० × ३ = ४८०० योजन प्रमितं परिधिमानं गणितेन सिद्ध्यति ।

श्रीभास्कस्कराचार्योक्तयोः व्यासपरिधिमानयोः दूषणम्

१— "लीलावती" नामतः प्रसिद्धे स्वरचितग्रन्थे श्रीभास्कराचार्यैः - व्यासमानतः - सूक्ष्मपरिधेः, स्थूलपरिधेश्च - आनयनप्रकारः कथितः, लीलावत्यां विलिखन्ति भास्कराचार्यः——

"व्यासे भनन्दाग्निहते विभक्ते खबाणसूर्यैः परिधिः स सूक्ष्मः ।
द्वाविंशतिघ्ने विहृतेऽथशैलैः स्थूलोऽथवा स्याद् व्यवहारयोग्यः ॥१॥

अस्य श्लोकस्य - अयं भावः......

व्यासमानं भनन्दाग्निभिः - "३९२७"अङ्कैः संगुण्य, - तस्मिन् गुणनफले - खबाणसूर्यैः - "१२५०" अङ्कैः - भागं दत्वा यद् भजनफलं समायाति, तदेव भजनफलं "सूक्ष्मपरिधिः" इति नामतः व्यवह्रियते गणितशास्त्रे, व्यासमाने द्वाविंशत्यङ्कैः "२२ अङ्कैः" गुणिते सति तत्र गुणनफले सप्तभिः "७" अङ्कैः विभक्ते - च सति-यद्-भजनफलं समायाति, तत्तु "स्थूलपरिधिः" इति नामतः कथ्यते गणितशास्त्रे ।

सिद्धान्तशिरोमणौ ग्रहगणिते मध्यमाधिकारे——

"प्रोक्तो योजतसंख्यया कुपरिधिःसप्ताङ्गनन्दाब्धयः - ४९६७ -
तद्व्यासः कुभुजङ्गसायकभुवो - १५८१ - ऽथ प्रोच्यते योजनम् ।
याम्योदक्पुरयोः पलान्तरहतं भूवेष्टनं भांश३६ह्रत् -
तद्भक्तस्य पुरान्तताध्वन इह ज्ञेयं समं योजनम् ॥१॥

अस्मिन् श्लोके - भास्कराचार्यैः - भूव्यासमानं - १५८१, भूपरिधिमानं च ४९६७, योजनप्रमितं कथितम्, सिद्धान्तशिरोमणौ गोलाध्याये भुवनकोशे——

प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धयः - ४९६७ -
तद्व्यासः कुभुजङ्गसायकभुवः सिद्धांशकेनाधिकाः-१५८१ + १/२४ ।
पृष्ठक्षेत्रफलं तथा युगगुणत्रिंशच्छराष्टाद्रयो - ७८५३०३४ -
भूमेः कन्दुकजालवत् कुपरिधिव्यासाहतेः प्रस्फुटम् ॥५२॥

अस्मिन् श्लोके तु - १५८१ + १/२४ योजनात्मकं भून्यासमानम्, ४९६७ योजनात्मकं भूपरिधिमानं समुक्तं भास्कराचार्यैः, अत्र १५८१ तथा च १५८१ + १/२४ आभ्यां भिन्न - भिन्न - योजनात्मकाभ्यां व्यासाभ्यां - परिधियोजनमानेऽपि भिन्नता एव - समागच्छति गणितेन, किन्तु भास्कराचार्यैः - भिन्न - भिन्न - व्यासाभ्यामपि - एकसदृशः एव - सत्ताङ्गनन्दाल्धयः - ४९६७ योजनात्मकः परिधिः कथितः, इत्येतादृशं गणितवैचित्र्यं यत्कृतं भास्कराचार्यैस्तत्तु मन्दगुद्धिमूढानन्दकरमेवेति मध्यस्थमा धिया विवेचनीयं विज्ञैः ।

(क)— व्यासमानतः सूक्ष्मपरिधेः स्थूलपरिधेश्च आनयनगणितमत्र करोमि...

व्यासः = १५८१

$$= \text{१५८१} \times \frac{\text{३९२७}}{\text{१}} \div \frac{\text{१२५०}}{\text{१}}$$

$$= \text{१५८१} \times \text{३९२७} \times \frac{\text{१}}{\text{१२५०}} = \frac{\text{६२०८५८७}}{\text{१२५०}}$$

$$= \text{४९६६}\frac{\text{१०८७}}{\text{११५०}} = \text{सूक्ष्मपरिधिः ।}$$

(ख)— स्थूलरिधेः - आनयनमत्र करोमि......

व्यासः = १५८१

$$\text{१५८१} \times \text{२२} \div \text{७/१}$$

$$= \text{१५८१} \times \text{२२} \times \frac{\text{१}}{\text{७}} = \frac{\text{३४७८२}}{\text{७}} = \text{४९६८}\frac{\text{६}}{\text{७}} = \text{स्थूलपरिधिः ।}$$

(ग)— १५८१ + १/२४ व्यासतः सूक्ष्मपरिधेः - आनयनमत्र करोमि......

$$= \text{१५८१}\frac{\text{१}}{\text{२४}} \times \frac{\text{३९२७}}{\text{१}} \div \frac{\text{१२५०}}{\text{१}}$$

$$= \frac{\text{३७९४५}}{\text{२४}} \times \frac{\text{३९२७}}{\text{१}} \times \frac{\text{१}}{\text{१२५०}}$$

$$= \frac{\text{१४९०१००१५}}{\text{३००००}} = \text{४९६७}\frac{\text{१}}{\text{२०००}} = \text{सूक्ष्मपरिधिः ।}$$

(घ)— १५८१+१/२४ व्यासतः स्थूलपरिधेः - अनयनमत्र करोमि......

$$= १५८१\frac{१}{२४} \times \frac{२२}{१} \div \frac{७}{१}$$

$$= \frac{३७९४५}{२४} \times \frac{२२}{१} \times \frac{१}{७} = \frac{४१७३९५}{८४}$$

$$= ४९६८\frac{८३}{८४} = \text{स्थूलपरिधिः ।}$$

(ङ)— १५८१ व्यासमानतः समागतः सूक्ष्मपरिधिः $= ४९६६\frac{१०८७}{१२५०}$

१५८१ $\frac{१}{२४}$ व्यासमानतः समागतः सूक्ष्मपरिधिः $= ४९६७\frac{१}{२०००}$

२— उभयोः व्यासमानयोः सूक्ष्मपरिधिमानयोश्च - अन्तरम् - अत्र प्रत्यक्षमेव दरीदृश्यते । स्वतन्त्रे सिद्धान्तशिरोमणौ सूक्ष्मसिद्धान्तगणितस्य डिण्डिमघोषं कुर्वद्भिः - अपि स्वतन्त्रैः - भास्कराचार्यैः पृथक् - पृथक् - व्यासमानाभ्यां - पृथक् - पृथक् - समागतयोः सूक्ष्मपरिधिमानयोः - अन्तरे सत्यपि तदन्तरं न स्वीकृतम्, - इति तु-तेषां भास्कराचार्यमहानुभावानां स्वातन्त्र्यपरकः - दुराग्रहः - एव अस्तीति निष्पक्षया शोधधिया विवेचनीयं विज्ञैः ।

श्रीकमलाकरभट्टैः - स्वरचिते- सिद्धान्ततत्वविवेके - बहुषु स्थलेषु - सिद्धान्त-शिरोमणि - कारकस्य - श्रीभास्कराचार्यस्य - यत् खण्डनं कृतम्, तदत्र लिखामि···

३— मध्यमाधिकारे मानाध्याये—

ग्रहाद्युक्तसृष्टिस्तु लङ्कार्धरात्रे -
यथार्थास्ति देवर्षिवह्वागमोक्त्या ।
ततः सृष्टिकालान्तरे कस्य वक्त्रम् -
कथंचिन्न लङ्कोदयेऽर्केऽर्कवारे ॥९०॥

अहो विष्णुधर्मोत्तरं चापि सम्यङ् -
न बुद्धं स्वमूलं महद्ग्रन्थकारैः ।
यतस्तत्र सृष्टिस्तु लङ्कार्धरात्रे
निरुक्ता कथं तन्मते तत्कवक्त्रम् ॥९१॥

श्रीभास्कराचार्यैः - सिद्धान्तशिरोमणौ - मध्यमाधिकारे कालमानाध्याये —

"लङ्कानगर्यामुदयाच्चभानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव ।
मधोः सितादे र्दिनमासवर्षयुगादिकानां युगपत् प्रवृत्तिः" ॥१५॥

इति यदुक्तं तत् खण्डनं भट्टैः- उपर्युक्तयोः- ९०–९१ श्लोकयोः कृतम् ।

इति यदुक्तं तत् खण्डनं भट्टैः- उपर्युक्तयोः- ९०–९१ श्लोकयोः कृतम् ।

४— सिद्धान्तशिरोमणौ मध्यमाधिकारे श्रीभास्कराचार्यैः -

"प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धयः ४९६७–
तद्व्यासः कुभुजङ्गसायकभुवो १५८१ऽथ प्रोच्यते योजनम्" ॥१॥

इत्यस्मिन् श्लोके - भूपरिधि - भूव्यास - मानं यदुक्तं तत्खण्डनं श्रीकमलाकर-भट्टैः सिद्धान्ततत्वविवेके मध्यमाधिकारे - १६३,- १६४ - १६५ श्लोकेषु कृतम्—

"योजनानि शतान्यष्टौ भूव्यासो द्विगुणानि तु ।
नन्देषुखेषवश्चाष्टाग्नयो - ३८५०५९- भूपरिधि र्भवेत् ॥१६३॥

पुराणसौरागमभूः सदैका -
तद्योजनानां किल मानभेदात्।
संख्याविभेदः कथितः स्वतन्त्रैः -
शिरोमणौ तूक्तमिदं विरोधात् ॥१६४॥

यल्लोकभूयोजनकानुपातात् -
नीतं तदार्षं किल भूमिमानात् ।
येऽल्पज्ञतुष्ट्यै प्रवदन्ति तेऽत्र -
जानन्ति नार्षं गणितप्रकारम् ॥१६५॥

५— सिद्धान्ततत्वविवेके - विम्बाधिकारे- ७९–८० श्लोकयोः स्पष्टाधिकारे च- ५००- संख्याप्रमिते श्लोके भास्कराचार्यमतस्य खण्डनं कृतं भट्टैः —

यद्भास्कराचार्यैः सुगमं विहाय -
स्वार्षे विरोधाद् विहितं प्रयासात् ।
स्वत्र्यंशवृद्धिक्षयकल्पनायाम् -
कलादिभौमादिकविम्बमानम् ॥७९॥

तद् युक्तिशून्यं त्विह तन्मतेऽस्ति -
यतोऽत्र तद्योजनलिप्तिकातः ।
भिन्नं सदा तत्कलिकादिविम्वम् -
एवं रवीन्द्वोश्च न सद् यतोऽत्र ॥८०॥

कलासंख्यया यद् भवेत् खेटविम्बम् -
समं चाधिकं चाल्पकं स्यात् तदेव ।
नृदृष्ट्याऽपि नीलाम्बरे दृश्यमित्थम् -
न जानन्ति मूढाः स्वकुज्ञानगर्वात् ॥५००॥

६— सिद्धान्ततत्वविवेके विम्बाधिकारे– ८६–८७–८८ - १२६- १२७-१२८ श्लोकेषु भास्कराचार्यमतस्य खण्डनम्—

सदैकरूप - विम्वीय - व्यासः कक्षाकलावशात् ।
अन्यथा कल्पयित्वा तं प्रतारितमिदं जगत् ॥८६॥

प्रतारितम् = वञ्चितम् - इत्यर्थः ।

नीचोच्चविम्बीयकला यथोक्ताः -
कुभास्करार्यैः क्षितिजादिकानाम् ।
तथा रवीन्द्वो र्न कथं कृताः किं -
रवीन्दुवन्नैव कुजादिकानाम् ॥८७॥
स्फुट - स्वकक्षा - कलिका - प्रमाणात् -
दृग्योग्य - विम्बीयकला - यतः स्युः ।
यत् तद् विरुद्धानयनं विना सद् -
युक्ति- न सत् तत् सुदृशोह्यमार्यैः ॥८८॥
सोन्नतं दिनमध्यर्धं दिनार्धाप्तं फलेन तु ।
छिन्द्याद् विक्षेपमानानि तान्येषामङ्गुलानि तु ॥१२६॥
सम्यक्चापानुपातोऽत्र पूर्वार्योक्तेन्दुशौकल्यवत् ।
ज्यानुपातान्नरैरत्र नाशितं स्वल्पबुद्धितः ॥१२७॥
यथा नाशितं चोत्क्रमज्याविधानाद् -
त्रिधोः शौक्ल्यमस्तीह लल्लप्रमुख्यैः ।
तथा भास्कराद्यैः क्रमज्याविधानात् -
अलं चान्तरं विम्वजं नाशितं हि ॥१२८॥

७— सिद्धान्तशिरोमणौ प्रश्नाध्याये श्रीभास्कराचार्याः लिखन्ति...
"एतद्व्यक्त - सदुक्तियुक्तिवहुलं हेलावगम्यं विदाम् -
सिद्धान्तग्रथनं कुवुद्धिमथनं चक्रे कवि र्भास्करः" ॥६२॥

अस्मिन् श्लोके "कवि र्भास्करः" इति यदुक्तं भास्करैः - तत् खण्डनं कृतं भट्ट-महोदयैः सिद्धान्ततत्वविवेके उपसंहाराधिकारे —
"करणप्रायसिद्धान्ते स्वासद्युक्त्यभिमानतः ।
वयं कवय इत्याहुः स्वोक्तौ प्रौढ्या पुरातनाः ॥१७॥
त एव कवयो येऽत्र गोलतत्वार्थकल्पकाः ।
कुकाव्यपाठका एव कवयो न कथञ्चन ॥१८॥
श्रृङ्गारपदलालित्य - ग्रन्थासक्त्या विषं त्विदम् ।
वासनाशास्त्रमज्ञानां चामृतं तद्विदां सताम् ॥१९॥

८— सिद्धान्तशिरोमणौ गोलाध्याये - भुवनकोशे - अध्यायान्ते श्रीभास्कराचार्याः विलिखन्ति ...
ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा कल्पे ग्रहः क्रामति योजनानि ।
यावन्ति पूर्वैरिह तत्प्रमाणं प्रोक्तं खकक्षाख्यमिदं मतं नः ॥६९॥

अनेन श्लोकेन श्रीभास्कराचार्यैः ब्रह्माण्डस्थितिज्ञानविषये स्वकीयं असामर्थ्यं प्रकटितम् , ब्रह्माण्डान्तर्गत - भूगोल - खगोलयोः - योजनात्मकमानज्ञानशून्यैः एव (ज्ञानविहीनैः एव)भास्कराचार्यैः "सिद्धान्तशिरोमणिः" नामकः सिद्धान्तग्रन्थः विरचितः इति तु— "ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा" इत्युक्तितः एव सिद्ध्यति ।

परिधिज्ञानविषये भास्कराचार्यमतस्य खण्डनं स्वरचितपद्यैः करोमि

९— चन्द्राष्टशरचन्द्रा हि सिद्धांशेन समन्विताः१५८१ $\frac{१}{२४}$ ।

प्रथमो विद्यते व्यासो भास्करोक्तः शिरोमणौ ॥१॥
चन्द्राष्टशरचन्द्राश्च १५८१ द्वितीयस्तु शिरोमणौ ।
द्वैविध्यं स्वीकृतं व्यासे भास्करैः भ्रान्तिदायकम् ॥२॥
उक्तव्यासानुसारेण सप्तषड्नवसागराः ४९६७ ।
शिरोमणौ समुक्तास्तैः परिध्यङ्कास्तु भास्करैः ॥३॥
शिरोमणिस्थिताद्व्यासात् - लीलावत्यनुसारतः ।
सप्तषड्नववेदास्तु ४९६७ चैकस्य द्विसहस्रकैः १/२००० ॥४॥
सहांशैः परिघे र्मानं जायते नात्र संशयः ।
लीलावतीस्थितात् तस्माद् भेदो जात शिरोमणौ ॥५॥
द्वैविध्यं जायते तस्मात् परिधौ भास्करोक्तितः ।
परस्परविरोधस्तु सिद्ध्यति चोभयोक्तितः ॥६॥
व्याघातो वदतश्चात्र भास्करोक्तौ हि दृश्यते ।
लीलावत्यां यदुक्तं तैः स्तदविरुद्धं शिरोमणौ ॥७॥
कृतस्तु भास्कराचार्ये ज्योत्पत्तिविधिना स्फुटः ।
पाटीज्यागणितस्यात्र विरोधो दृष्टिगोचरः ॥८॥
एकस्मादेव व्यासातु द्वौ परिधी समागतौ ।
कतरस्तत्र साधीयान् कोऽसाधीयान् न निर्णयः ॥९॥
स्वीकृतौ भास्कराचार्यैः परिघी द्वौ तु भ्रामकौ ।
प्रत्यक्षतो विरुद्धौ तौ परिधी स्तो न संशयः ॥१०॥
आर्षमतानसारेण करोम्यत्र सुनिर्णयम् ।
व्यासतः परिघे र्ज्ञानं व्यासमानं ततः स्फुटम ॥११॥

व्यासतः परिधिज्ञानप्रकारं परिधितश्च व्यासज्ञानप्रकारं स्वनिर्मितेन पद्येन अत्र लिखामि

१०— व्यासः क्षुण्णस्त्रिभिश्चार्षैः परिधिः परिकीर्तितः ।
परिधिस्तु त्रिभिर्भक्तो व्यासो हि मुनिभिः स्मृतः ॥१२॥
वेदोक्तं हि पुराणोक्तं मयोक्तं चापि खण्डनम् ।
भास्करोक्तस्य हे विज्ञाः! प्रपश्यन्तु निवेदये ॥१३॥
वेदपुराणयोः पुष्टि भास्करोक्तस्य खण्डनम् ।
विचारयन्तु हे विज्ञाः! विनम्रो विनिवेदये ॥१४॥

श्रीभास्कराचार्यैः लल्लाचार्यैश्च "यदि समामुकुरोदरसन्निभा इत्यादि" श्लोकैः ये आक्षेपाः सिद्धान्तशिरोमणौ लल्लकृततन्त्रे च कृताः- तेषां आक्षेपाणां सोत्तरं खण्डनं स्वनिर्मितेषु सरलतमेषु पद्येषु वक्ष्यमाणप्रकारेण मयाऽत्र क्रियते——

पूर्वोक्तप्रथमपद्यतः आरभ्य चतुर्दशप्रमितपद्यान्तं यावततावत् मया व्यासपरिधिविषये आर्षसिद्धान्तानुसारेण यः निर्णयः कृतः सः निष्पक्षया धिया विचारणीयो विज्ञैः

११— समुच्छ्रितं यथा स्तम्भं कलकत्तागतं स्थिरम् ।
नैव पश्यति दिल्ल्यां हि राजधान्यां तु संस्थितः ॥५७॥
ब्रिटेने संस्थितं स्तम्भं दिल्लीस्थो नैव पश्यति ।
अमरीकास्थितं चापि भारतस्थो न पश्यति ॥५८॥
चीन - जापान रूसादि - देशेषु ये हि पर्वताः ।
तान् तथा नैव पश्यन्ति भारतस्थाः स्वचक्षुषा ॥५९॥

१२— दिल्लीतश्चोत्तरस्यां यः सुमेरुः पर्वतो महान् ।
सर्वशास्त्रेषु विख्यातो जम्बूद्वीपस्य मध्यगः ॥६०॥
पञ्चाशद्योजनासन्नैः सहस्रै स्तस्य मीयते ।
दूरी तु भारताद् देशात् - सर्वशास्त्रानुमोदिता ॥६१॥
किलोमीटरसंख्यायां सप्तलक्षाधिका हि सा ।
दूरी तु भारताद् देशात् सुमेरो र्नात्र संशयः ॥६२॥
मानवादिशरीरे यद् विद्यते चक्षुरिन्द्रियम् ।
कृष्णताराग्रवर्तित्वं भवति तेन दर्शनम् ॥६३॥
कुर्वन्ति सर्ववस्तूनां प्रत्यक्षं तेन प्राणिनः ।
विकृते कृष्णविन्दौ हि नायाति वस्तुदर्शनम् ॥६४॥
दूरदर्शनशक्तिस्तु सर्वनेत्रेषु निश्चिता ।
विद्यते हि तया शक्त्या रूपं पश्यन्ति प्राणिनः ॥६५॥
दर्शनशक्तिसीमातः सदा पश्यन्ति प्राणिनः ।
ततोऽधिकं न पश्यन्ति सिद्धान्तः सर्वस्वीकृतः ॥६६॥
सुमेरु भारताद् देशाद् - दूरातिदूरसंस्थितः ।
अत स्तं नैव पश्यन्ति भारतस्थाः स्वचक्षुषा ॥६७॥
नेत्राणां दृष्टिसीमातः सुमेरुर्दूरसंस्थितः ।
भास्कराचार्यवर्यैः स भारतस्थै र्न लोकितः ॥६८॥
दृष्टिदर्शनसिद्धान्तमज्ञात्वैवभास्करैः ।
शिरोमणौ कृताक्षेपो मुनीनां वचनोपरि ॥६९॥
मेरो मूर्ध्नि स्थिता देवा रविं पश्यन्ति चक्षुषा ।
दिव्यदृष्ट्या न सन्देहो मानवानां न दिव्यदृक् ॥७०॥
अतः परिभ्रमन्तं तं दूरस्थं नैव पश्यति ।
तरणिं मानवः कश्चिद् देवानामिव भूस्थितः ॥७१॥

१३— मानसोत्तरगिरे दूं री सार्धैककोटितोऽधिका ।
योजनै विद्यतेऽद्यापि भारतान्नात्र संशयः ॥७२॥
भारताद् बहुदूरस्थो मानसोत्तरपर्वतः ।
समायां भुवि संस्थोऽपि मानवै नैव दृश्यते ॥७३॥

मानसोत्तरपर्वते भ्रमन्तं तरिणं सदा ।
मानवा नैव पश्यन्ति दृष्टिसीमाबहिर्गतम् ॥७४॥

१४— वायुना प्रवहाख्येन दक्षिणस्यां हि मेरुतः
प्रचालितः सदा सूर्यो भारते दिनकारकः ॥७५॥
उत्तरस्यां सुमेरोस्तु वायुना चालितो रविः ।
भारते कुरुते रात्रि भारतस्थै र्न दृश्यते ॥७६॥
जम्बूद्वीपस्य मध्यस्थः सुमेरुः पर्वतः सदा ।
प्रकाशं चाप्रकाशं हि भारते कुरुते रवेः ॥७७॥
अवरोधो यदा नैव मेरुणा जायते रवेः ।
तदा तु भारते वर्षे दिनं भवति सूर्यतः ॥७८॥
अवरोधः प्रकाशस्य यदा भवति मेरुणा ।
रवेस्तु भारते वर्षे रात्रि र्भवति निश्चितम् ॥७९॥
अवरोधः प्रकाशस्य रवे र्भवति मेरुणा ।
तदा तु भारते वर्षे रात्रि र्भवति नान्यथा ॥८०॥
मेरुणा हेतुभूतेन दिवारात्री तु भारते ।
भवतो नात्र सन्देहः कार्यः केनापि हेतुना ॥८१॥
कनकाचलसंज्ञोऽसौ मेरु र्निशाप्रदायकः ।
समुक्तो मुनिभिः सर्वैः पुराणेषु ह्यतः सदा ॥८२॥
सहस्रषोडशव्यासो योजनै द्वीपमध्यगः ।
सुमेरो र्वर्तते तस्य केन्द्रतश्चोत्तरा दिशा ॥८३॥
केन्द्रतश्चोत्तरस्यां या रेखा तु मानसोत्तरे ।
पर्वते विहिता सा तु दक्षिणोत्तरसंज्ञका ॥८४
तद्रेखाग्रे यदा सूर्यो भ्रमति मानसोत्तरे ।
तदा तु भारते वर्षे मध्यरात्रिः प्रजायते ॥८५॥
पूर्वापराख्यरेखाग्रे वायुना प्रेरितो रविः ।
यदा याति तदा सर्वे दिनं पश्यन्ति भारते ॥८६॥

'कथमुदेति स दक्षिणभागके' इत्यस्य सोत्तरं खण्डनम् अत्र करोमि

१५— वलयाकारसंयुक्ते मानसोत्तरपर्वते ।
वायुवेगै र्भ्रमन् सूर्य उदेति याम्यभागके ॥८७॥
गोलाध्याये स्वतन्त्रैस्तु भास्कराचार्यविद्वरैः ।
पुराणेषु कृताक्षेपो न युक्तो भ्रान्तिदो यतः ॥८८॥

उत्तर - दक्षिण - गोलयो - र्व्यवस्थामत्र लिखामि

१६— मेषाद्या राशयो ज्ञेया मानसोत्तरपर्वते ।
सूर्यचक्रभ्रमस्तत्र स्वगत्या विनिगद्यते ॥८९॥

स एव पर्वतः प्रोक्तः क्रान्तिवृत्ताभिधो बुधैः ।
पादविक्षेपकार्यात्तु क्रमुघातो हि क्रान्तिदः ॥९०॥

चक्रेण सह सूर्यस्य मानसोत्तरपर्वते ।
क्रान्तिस्तु जायते नित्यं क्रान्तिवृत्ताभिधो ह्यतः ॥९१॥

मेषादितः समारभ्य कन्यान्ताः षट् तु राशयः ।
उत्तरगोलगाः सन्ति तुलाद्याः षट् तु याम्यगाः ॥९२॥

उत्तरगोलगे सूर्ये चोत्तरगोल उच्यते ।
दक्षिणगोलगे सूर्ये दक्षिणस्तु समुच्यते ॥९३॥

उत्तर - दक्षिणयो - र्व्यवस्थामत्र लिखामि

१७— सूमेरुमध्यगा रेखा दक्षिणोत्तरसंज्ञका ।
तदग्रे चोत्तरस्यां हि कर्कराशि र्व्यवस्थितः ॥९४॥

तदग्रे दक्षिणस्यां तु राशि हि मकरस्थितः ।
मकरात्तु समारभ्य मानसोत्तरपर्वते ॥९५॥

षड्राशिषु भ्रमन् सूर्यः क्रमति चोत्तरायणम् ।
कर्कराशेः समारभ्य षड्राशिषु भ्रमन् रविः ॥९६॥

दक्षिणमयनं याति मानसोत्तरपर्वते ।
दक्षिणोत्तरयोश्चैषा व्यवस्था मुनिसम्मता ॥९७॥

गोलायनव्यवस्था तु मानसोत्तरपर्वते ।
सूर्यभ्रमे सदा प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥९८॥

उत्तरगोलमध्यस्थः कर्कादौ तु रवि र्यदा ।
भवति, तु तदा ज्ञेयं दक्षिणायनसंज्ञकम् ॥९९॥

देवानां चोत्तरस्थानां कर्कादौ सूर्यसंस्थिते ।
दिनार्धं तु सदा देव - दिनार्धाद् दक्षिणायनम् ॥१००॥

दक्षिणगोल - मध्यस्थो मकरादौ रवि र्यदा ।
भवति, तु तदा ज्ञेयं चोत्तरायणसंज्ञकम् ॥१०१॥

रक्षसां दक्षिणस्थानां मकरादौ रवौ गते ।
दिनार्धं तु सदाऽसुरदिनार्धंच्चोत्तरायणम् ॥१०२॥

कर्कादौ मकरादौ च सायनांशगतो रविः ।
सुराणामसुराणां च दिनार्धं कुरुते सदा ॥१०३॥

यदा भवति देवानां दिनार्धं कर्कगे रवौ ।
तदा भवति दैत्यानां रात्र्यर्धं गोलसम्मतम् ॥१०४॥

यदा भवति दैत्यानां दिनार्धं मकरे रवौ ।
तदा भवति देवानां रात्र्यर्धं गोलसम्मतम् ॥१०५॥

यदा भवति, देवानां दिनं रात्रिस्तु रक्षसाम् ।
तदा भवति' ते सर्वे तिष्ठन्ति सम्मुखस्थिताः ॥१०६॥
यदा भवति दैत्यानां दिनं देवास्तु रात्रिगाः ।
तिष्ठन्ति ते सदा सर्वे यतः सम्मुखस्थिताः ॥१०७

१८— दिनरात्रि - व्यवस्थां हि सुमेरुः कुरुते सदा ।
न दृष्टो भास्कराचार्यैं र्दृष्टिदोषस्तु तत्र वै ॥१०८॥
भारतस्थेन केनापि न दृष्टः कनकाचलः ।
मुनीनां तत्र को दोषः सुमेरो नैव दूषणम् ॥१०९॥
सुमेरो विषये प्रोक्तं भास्करै र्यत्तु दूषणम् ।
भ्रान्तिदं, विज्ञवर्यै स्तद् विचिन्त्यं विनिवेदये ॥११०॥
वायुवेगै र्भ्रमन् सूर्यो विलोमतो भपञ्जरे ।
पश्चिमाभिमुखो नित्यं विदधाति दिवानिशम् ॥१११॥
रश्मिजालावरोधस्तु मेरुणा जायते यदा ।
तदा भवति रात्रिस्तु दिनं भवति चान्यथा ॥११२॥
दिनरात्रिव्यवस्था यैरज्ञात्वैव सुधीवरैः ।
आक्षेपो मुनीतन्त्रे च निराधारः कृतस्तु तैः ॥११३॥
प्रज्वलं बैटरीयन्त्रं नीत्वा कश्चिद् भ्रमन् जनः ।
यथाप्रकाशविक्षेपं कुर्वन् याति तथा रविः ॥११४॥
प्रकाशैः प्रज्वलै र्लोकान् प्रकाशयति नित्यशः ।
मध्यस्थमेरुणैवात्र प्रकाशाभाव उच्यते ॥११५॥

श्रीमहाकविकालिदासमहोदयैः - अपि - "ज्योति - र्विदाभरणे" मानप्रकरणे- उत्तरायण- दक्षिणायनयो - र्व्यवस्था- समुक्ता सप्तदशप्रमिते "१७ प्रमिते" श्लोके तामत्र लिखामि

१८ "अथायने कीटमृगादिषटके क्रमेण ते दक्षिणसौम्यसंज्ञे ।
तमीदिने सायनभाग - भास्वदुत्थे स्फुटे नाकसदामुभे स्तः ॥१७॥"

उक्तश्लोकस्य अयं भावः — सायनभागभास्वदुत्थे - अयनांशसहिते स्फुटरवौ उत्थे = दिनार्धस्थिते सति देवानां दिनार्ध-रात्र्यर्धे भवतः , यदा कर्कस्थे रवौ दिनार्धं भवति, तदा - दक्षिणमागे रात्र्यर्धं भवतीति भावः ।

स्वरचितेषु श्लोकेष्वेव श्रीभास्कराचार्यमतस्य समीक्षात्मकं खण्डनमत्रापि - करोमि

१९— सदा मेरुतो दक्षिणस्यां स्थितै स्तै -
र्न दृष्टः सुमेरुः कदाचित् स्वदृष्ट्या ।
न ब्रह्माण्डज्ञानेऽस्ति तेषां गति र्वै
स्वतन्त्रै र्यदुक्तं न युक्तं मतं नः ॥११६॥

न योगाधिरूढ़ाः स्वतन्त्रास्तु ते वै-
न ब्रह्माण्डज्ञानं कृतं तै वरेण्यैः ।
कथं खण्डनं व्यासमूर्यादिकानाम्
स्वतन्त्रे स्वतन्त्रैः कृतं तन्न विद्मः ॥११७॥
न दिव्या हि दृष्टिः सदा भास्कराणाम् -
न तै र्वीक्षितो दूरसंस्थः सुमेरुः ।
अतः क्रान्तिवृत्ताभिधः पर्वतस्तै -
र्न दृष्टस्तु वै सोत्तरो मानसंज्ञः ॥११८॥
न ब्रह्माण्डज्ञानं कृतं तैः स्वतन्त्रै -
र्न भूगोलवोधो कृतो भास्करै स्तैः ।
वृथा खण्डनं त्वार्षपक्षस्य विज्ञैः -
कृतं शोधनीयं सदा तत्सुविज्ञैः ॥११९॥

२०— लक्षैकयोजनसहस्रमितो निरुक्तो -
मान्यैः प्रवीणमुनिभि र्नववर्षयुक्तः ।
जम्बूः सुमेरुसहितोऽष्टगिरीद्रयुक्तः -
तद्भारतं दशसहस्रमितं हि वर्णम् ॥१२०॥

उपर्युक्तस्य विंशतिसंख्याप्रमिताधिकशतसंख्याप्रमितस्य श्लोकस्य अयं भावः... उत्तरप्रदेशीय - लखनऊ "नगरस्थात्" मुन्शी नवलकिशोर सी० आई० ई० प्रेसतः - एकसहस्र - अष्टशत - द्वयुत्तरनवति = "१८९२" ईसवीयाब्दे प्रकाशिते "मत्स्य - पुराणे - त्रयोदशाधिकशत "११३" प्रमिते अध्याये दशप्रमिते "१० प्रमिते" श्लोकेऽपि भारतवर्षस्य - दक्षिणोत्तरव्यासः "भूकर्णः" दशसहस्रयोजन = "१०००० योजन" प्रमितः = एव - वर्णितः - उपलभ्यते - अद्यापि "आयतस्तु कुमारीतो गङ्गायाः प्रवहावधिः । तिर्यगूर्ध्वं तु विस्तीर्णः सहस्राणि दशैव तु" ॥१०॥ मत्स्यपुराणे - ११३ अध्याये दशमोऽयं श्लोकोऽस्ति ।

एकलक्षयोजन - जम्बूद्वीपमानेन - दशसहस्रयोजन - दक्षिणोत्तर-भारत - वर्षमानेन च भारतवर्षस्य व्यासमानानयनव्यवस्थ मत्र लिखामि

२१— लक्षैकयोजनमिते च कुमानमाने
कर्णस्य षोड़शससस्रमितस्य लब्धिः ।
का वे भवेद् दशसहस्रमिते कुमाने -
लब्धिस्तु षोडशशतप्रमितैव लब्धा ॥१२१॥
त्रैराशिकेन मुनिभिः कथितं सुरम्यम् -
श्रीभारतस्य करणं गणितेन सिद्धम् ।
ग्राह्यं तदेव विबुधै र्नितरां हि शुद्धम् -
श्रीभारतस्य करणं मुनिदृष्टिदृष्टम् ॥१२२॥

उपर्युक्तौ १२१,१२२ संख्यांकितौ श्लोकौ - अपि मया निर्मितौ स्तः ।

"करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि" इति अमरकोषोक्तेः "करण" शब्दोऽत्र भारतवर्षस्य दक्षिणोत्तर - क्षेत्रमानस्य बोधकोऽस्तीति मयाऽत्र प्रयुक्तः ।

भारतवर्णस्य - भूव्यासानयनस्य त्रैराशिकगणितस्य निम्नाङ्कित‍ा प्रक्रिया तु मया प्रागेव समुक्ता ।

$$= \frac{१६००० \times १००००}{१०००००} = १६०० = \text{षोडशशतप्रमितः ।}$$

पूर्वोक्तगणितेन सूर्यसिद्धान्तोक्तः - एव - भूव्यासः = "भूकर्णः" साधीयान् सिद्ध्यति, पूर्वोक्तरीत्या त्रैराशिकगणितेन सिद्धः - एव - भारतवर्षभूकर्णः - "भारत-भूव्यासः" श्रीसूर्यसिद्धान्ते परमदयालुना श्रीसूर्यांशपुरुषेण-उपदिष्टः, तदुक्तं सूर्यसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे ...

"योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु"[६]

सूर्यसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे एकोत्तरषष्टि= "६१" संख्याप्रमितोऽयं श्लोकोऽस्ति,

८०० योजनानि × २= १६०० योजनानि, सूर्यसिद्धान्तोक्तः- भारतवर्णस्य भूव्यासः = "भूकर्णः" सर्वशास्त्रसम्मतः सिद्ध्यति ।

श्रीभास्कराचार्यमतस्य खण्डनम्

श्रीसूर्यसिद्धान्तमताद् विरुद्धं -
भूव्यासमानं नितरामशुद्धम् ।
तैरेव चोक्तं तु शिरोमणौ वै -
श्रीभास्कराचार्यवरैः विचित्रम् ! ॥१२३॥

ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा -
प्रोक्तः सुविज्ञैस्तु शिरोमणौ तैः ।
तस्मान्न ज्ञातं विदुषां वरण्यैः -
भूव्यासमानं जगतोऽत्र सिद्धम् ॥१२४॥

पाराशरव्यास- शुकादिभिर्यत् -
सौमेरवं तत् कथितं पुराणे ।
मानं तु तैः रात्रिकरः सुमेरु -
श्चार्षैं निरुक्तो मुनिभि र्वरेण्यैः ॥१२५॥

नैवादृतं तत्तु मतं मुनीनाम् -
भ्रान्त्याकृतस्त्वार्णमताद् विरोधः ।
श्रीभास्करैः विज्ञविदां वरिष्ठैः -
तन्नास्ति युक्तं गणकैः विचिन्त्यम् ॥१२६॥

श्रीभास्करै र्भग्नधिया न ज्ञातम् -
आर्षं मतं तत्वयुतं तु सत्यम् ।
तस्मात् कृतं तत्वविदां वरिष्ठैः -
भट्टैः सदा भास्करतन्त्र - दुष्टम् ॥१२७॥

श्रीसूर्यसिद्धान्तमताद् विरुद्धम्-
भूकर्णमानं कथितं स्वतन्त्रैः।
श्रीभास्कराचार्यवरै र्यदुक्तम्-
तन्नास्ति शुद्धं नितरामशुद्धम् ॥१२८॥
उत्कृष्ट - पाण्डित्य - तरङ्ग - मग्ना -
भग्ना - सुबुद्धि- विबुधाग्रगानाम्।
तस्मान्मति - र्भास्करविद्वराणां -
आर्षाद्विरुद्धा तु शिरोमणौ वै ॥१२९॥
निष्पक्षया धिया धीराः ! भास्कराचार्यखण्डनम्।
मया कृतं, न विद्वेषात् - शोधयैव धिया कृतम् ॥१३०॥

सुन्दरी टीका— १— "आर्षवर्षावायुविज्ञान" के पोषक "पुराणों" पर "सिद्धान्तशिरोमणि" नाम के ग्रन्थ में लल्ल और भास्कराचार्य द्वारा किये गये निराधार आक्षेपों के निराकरणों को "आर्षवर्षावायुविज्ञानम्" नाम के इस शोधग्रन्थ के चौदहवें अध्याय में चारसौ बारहवें पृष्ठ से चारसौ छयालीसवें पृष्ठ तक = (४१२ से ४४६वें पृष्ठ तक) संस्कृत भाषा के माध्यम से संस्कृतवाङ्मय के प्रौढविद्वानों के सन्तोष और प्रमोद के लिये प्रस्तुत किया जा चुका है, संस्कृतभाषा में प्रस्तुत किये गये लल्ल और भास्कराचार्य के आक्षेपों के निराकरणों के सारांश को इस चौदहवें अध्याय की सुन्दरी टीका में प्रस्तुत किया जा रहा है।

२.— पातञ्जलव्याकरण "महाभाष्य" और "योगदर्शन" के प्रणेता त्रिकालदर्शी वैज्ञानिक योगी "पतञ्जलि" ऋषि ने, तथा अष्टाध्यायीसूत्र और शिक्षा के प्रणेता त्रिकालदर्शी वैज्ञानिक पाणिनि ऋषि ने और "योगवासिष्ठ" के प्रणेता त्रिकालदर्शी योगी ऋषि "वसिष्ठ" ने तथा विज्ञान के भण्डार पुराणों के प्रणेता "व्यास, शुकदेव, पाराशर" प्रभृति - त्रिकालदर्शी अतीन्द्रिय ऋषियों ने अपने अपने शोधग्रन्थों में भूगोल खगोल का वर्णन करते हुएं - ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत आकाश के मध्य भाग में ईश्वरीय आकर्षणशक्ति से स्थित भूगोल का विस्तृत विवेचन किया है।

३— योगविद्या के बल से चराचरजगत् की सम्पूर्ण स्थिति को प्रत्यक्ष देखने वाले योगीऋषियों ने वृत्ताकार लोकालोकपर्वत के अन्तर्गत सूर्यरश्मियों ये प्रकाशित भूगोल का मान पच्चीसकरोड़ योजन = (२५००००००० योजन) बताया है, सुमेरु, रैवतक, हिमालय आदि पर्वतों और सात द्वीपों तथा सात समुद्रों और अनेकों उपद्वीपों तथा उपसमुद्रों की स्थिति भी इसी भूगोल पर ही है, समस्त ब्रह्माण्ड की स्थिति का विवेचन छटे अध्याय के चित्रों में किया जा चुका है, सम्पूर्ण भूगोल के व्यास का मान पच्चीस करोड़ योजन और परिधि का पिचहत्तर करोड़ योजन है, तदनुसार वृत्ताकार भूगोल की लम्बाई और चौड़ाई पच्चीस करोड़ योजन है, ब्रह्माण्ड के मध्यवर्ती आकाश के केन्द्र में पच्चीस करोड़ योजन लम्बी चौड़ी और एक लाख योजन=(१०००००यो०) ऊँची वृत्ताकार भूमि सृष्टि के आरम्भ से सृष्टि के अन्त तक स्थिर और "अचल" स्थित रहती है, इस प्रकार का वर्णन संस्कृतवाङ्मय के समस्त 'वेद-पुराण दर्शनादि ग्रन्थों में सूर्यसिद्धान्तादि ज्यौतिषग्रन्थों' में उपलब्ध है।

४—भारत के राजा वीरविक्रमादित्य और शालिवाहन के बाद भारत पर विदेशीय शासकों के शासनकाल में भारतीय भौगोलिक गणित को अस्त-व्यस्त और नष्ट-भ्रष्ट करने में प्रवीण विदेशीय शासकों ने 'अचल भूगोल' को भी चल होने का प्रचार जोर-शोर से करके भूगोल की लम्बाई चौड़ाई और ऊँचाई के मापदण्डों को स्वेच्छानुसार शासन के बलबूते पर बदल कर, अध्ययन अध्यापन के क्षेत्र—स्कूल - कालेजों में स्वनिर्मित नये भूगोल को पढ़ाना प्रारम्भ कराकर संस्कृतवाङ्मय में वर्णित भूगौल को गलत बताने का प्रचार प्रारम्भ कर दिया था।

५—कोर्स में निर्धारित नये भूगोल को पढ़कर विदेशीय शासनकाल में भारत में उत्पन्न हुए 'आर्यभट्ट' ने भी अपने 'आर्यभटीयम्' ग्रन्थ में नये भूगोल के चकाचोंध में भूगोल को चल लिख दिया था।

६—आर्यभट्ट से कुछ काल बाद भारत में उत्पन्न हुए 'लल्ल और भास्कराचार्य ने अपने - अपने ग्रन्थ में आर्यभट्ट के भूगोलचलन, भूव्यासमान, भूपरिधिमान' आदि का खण्डन किया था, 'सिद्धान्तशिरोमणि' में अपनी बुद्धि के अनुसार भास्कराचार्य ने स्वच्छन्दतापूर्वक अपने ढंग से १५८१ योजन = (पन्द्रह सौ इक्यासी योजन) भूव्यास और ४९६७ योजन = (उनन्चास सौ सड़सठ योजन) भूपरिधि को मानकर तथा ४९६७ योजन भूपरिधि और १५८१ + १/२४ योजन भूव्यास को मानकर सूर्य-सिद्धान्तादि आर्षगणितग्रन्थों में वर्णित 'भूव्यास और भूपरिधि' का तथा पुराणग्रन्थों में वर्णित भूव्यास और भूपरिधि का खण्डन कर दिया है।

७—लल्ल और भास्कराचार्य के बाद भारत में उत्पन्न हुए 'श्री कमलाकरभट्ट ने आर्यभट्ट, लल्ल, और भास्कराचार्य' इन तीनों का युक्तिसंगत खण्डन करके 'सिद्धान्त तत्व विवेक' नाम से प्रसिद्ध वृहदाकार अपने ग्रन्थ में भास्कराचार्य को 'आर्षगणितप्रकारानभिज्ञ' = ऋषिप्रणीत सिद्धान्त गणित ग्रन्थों के तौर तरीकों और प्रकारों को नहीं जानने वाला बताकर भास्कराचार्य के प्रति मूढ = (मूर्ख) शब्द को प्रयोग करके लिखा है कि——

"प्रतारितमिदंजगत्" = सिद्धान्तशिरोमणि में वाक्पटुता का प्रदर्शन करके भास्कराचार्य ने सूर्यसिद्धान्तादि आर्षगणितग्रन्थों का और पुराणादिग्रन्थों का खण्डन करके, अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य की धाक जमाने के लिये विचित्र ग्रहगणित के धोखे में डालकर संसार को ठगा है, वेदोक्त और पुराणोक्त तथा सूर्यसिद्धान्तादि आर्षगणित-ग्रन्थोक्त भूमि - सृष्टि के आरम्भ से सृष्टि के अन्त तक सदा एक सी ही रहती है, सृष्टिकर्ता ईश्वर द्वारा निर्मित भूमि की लम्बाई - चौड़ाई - ऊँचाई में कभी कोई भी परिवर्तन = (अधिकता अथवा न्यूनता) नहीं हुआ करता है, सिद्धान्त तत्व विवेक के अनेक स्थलों पर आर्यभट्ट और लल्ल, भास्कराचार्य प्रभृति का दृढ़ता से खण्डन करते हुए "श्रीकमलाकर भट्ट" ने सही स्थिति पर प्रकाश डालने का भरसक प्रयत्न किया है।

१०—ग्रहों के कक्षाक्रम के सम्बन्ध में श्रीकमलाकरभट्ट ने आर्षगणित सूर्यसिद्धान्तादि और पुराणों में वर्णित ग्रहकक्षाक्रम का समन्वयात्मक समाधान करने का भरसक प्रयत्न किया है।

११— इस शोधग्रन्थ के चौदहवें अध्याय के निष्कर्ष को चारसौ चालीसवें पृष्ठ से चारसौ सैंतालीसवें पृष्ठ तक=(४४० से ४४७वें पृष्ठ तक) स्वरचित सरल श्लोकों में श्लोक संख्या एक से एक सौ तीस तक = (१ से १३० तक) शोधग्रन्थ-पाठकों की सुविधा के लिये मैंने लिख दिया है, सर्वसाधारणजनों की समझ में आ सकने के लिये श्लोकों के सारांश को सुन्दरी टीका में लिखना आवश्यक समझा गया है।

श्रीभास्कराचार्य के भूव्यास और भूपरिधि का खण्डन

१२— सुन्दरी टीका—सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय भुवनकोश में बावनवें श्लोक में =(५२वें श्लोक में) भास्कराचार्य ने १५८१ $\frac{१}{२४}$ =(पन्द्रह सौ इक्यासी सही एक बटा चौवीस) योजन भूव्यास और ४९६७ योजन =(उनन्चास सौ सड़सठ योजन) भूपरिधि को कहा है।

(य)— सिद्धान्तशिरोमणि के ग्रहगणित मध्यमाधिकार में भूपरिथिव्यास के प्रथम श्लोक में भास्करचार्य ने भूव्यास १५८१ योजन=(पन्द्रहसौ इक्यासी योजन) और भूपरिधि को ४९६७ योजन = (उनन्चाससौ सड़सठ योजन) कहा है।

(र)— भास्कराचार्यकृत 'लीलावती' गणितग्रन्थ के अनुसार——

१५८१ $\frac{१}{२४}$ योजन व्यास के सूक्ष्मपरिधि का मान ४९६७ $\frac{१}{२०००}$ योजन गणितागत सिद्ध होता है।

(ल)— १५८१ योजन व्यास के सूक्ष्मपरिधि का मान ४९६६ $\frac{१०८७}{१२५०}$ यो० गणितागत सिद्ध होता है।

(व)— पृथक् पृथक् व्यासमानों के सूक्ष्मपरिधिमानों में पृथक् पृथक् अन्तर प्रत्यक्षरूप में दिखाई देने पर भी श्री भास्कराचार्य ने सिद्धान्त शिरोमणि में सूक्ष्म-गणित की घोषणा के विपरीत पृथक् व्यासों के एकमात्र ४९६७ योजन परिधिमान को मानकर लीलावती और सिद्धान्तशिरोमणि में व्यास और परिधि गणित के सम्बन्ध में वर्णित गणितसिद्धान्तों को परस्पर विरोधी बनाकर 'वदतो व्याघात' = (अपने कहे हुए का स्वयं ही खण्डन करना) को ही चरितार्थ किया है।

१३— (त)— लीलावती गणितानुसार - १५८१ व्यास से सूक्ष्मपरिधि-मान =४९६६ $\frac{१०८७}{१२५०}$

(थ)— सिद्धान्तशिरोमणि के अनुसार -१५८१ व्यास से सूक्ष्मपरिधिमान= ४९६७

(द)—लीलावतीगणितानुसार-१५८१ $\frac{१}{२४}$ व्यास से सूक्ष्मपरिधिमान=४९६७ $\frac{१}{२०००}$

(घ)— सिद्धान्तशिरोमणि के अनुसार-१५८१ $\frac{१}{२४}$ व्यास से सूक्ष्मपरिधिमान=४९६७

१४— उपर्युक्त (त) और (द) प्रखण्डों में भास्करीय लीलावती गणित के अनुसार आनीत परिधियों में और (थ,घ) प्रखण्डों में भास्करीय सिद्धान्तशिरोमणि के अनुसार आनीत परिधियों में प्रत्यक्ष अन्तर दिखाई दे रहा है. उक्त परिस्थिति में लीलावती और सिद्धान्तशिरोमणि इन दोनों में से किसके गणित को सही माना जाय, और किसके गणित को गलत मानाजाय,'यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से प्रत्येक समझदार व्यक्ति के अन्तःकरण को डामाडोल वना देता है, श्रीभास्कराचार्योक्त भूव्यास, भूपरिधि और भूमानों की निष्पक्ष समीक्षा करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि गणित के प्रकाण्ड विद्वान् श्रीभास्कराचार्य भूव्यास, भूपरिधि और भूगोल के सही योजनात्मक मानों को स्वयं भी नहीं जान पाये थे, इसी लिये श्री भास्कराचार्य के लीलावती नामक गणितग्रन्थ के और सिद्धान्तशिरोमणि नामक ग्रन्थ के - भूव्यास और भूपरिधि-मानों में अन्तर है,सिद्धान्तशिरमणि में श्री भास्कराचार्य ने "ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नोवा" यह लिखकर स्वयं भी यह स्पष्ट कर दिया है कि ब्रह्माण्ड के योजनात्मकमान की जानकारी मुझे=(भास्कराचार्य को) सही ढंग से नहीं है।

१५— उक्त परिस्थति में श्री भास्कराचार्य और लल्ल द्वारा सूर्यसिद्धान्त और पुराणों में वर्णित भूव्यास और भूपरिधि पर किये गये आक्षेप निराधार और असङ्गत तथा भ्रामक ही हैं। सूर्यसिद्धान्त और पुराणों में वर्णित भूव्यास, भूपरिधि, भूमान और ब्रह्माण्ड का गणित शतप्रतिशत ठीक और वैज्ञानिक है।

पुराणों पर लल्ल और भास्कराचार्य के आक्षेप

१६— लल्ल ने अपने ग्रन्थ में कहा है कि यदि पुराणोक्त समतल भूमि को ही सही मानलिया जाय, तो समतल भूमि पर उगे हुए ऊंचे ऊंचे वृक्ष जो कि अभीष्ट स्थान से बहुत दूरी पर स्थित होते हैं, वे देखने वाले को अभीष्ट स्थान से क्यों नहीं दिखाई पड़ते हैं ?

१७— श्रीभास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय भुवनकोष में लिखा है कि— पुराणों में वर्णन किये गये के अनुसार यदि भूगोल को समतल मान लिया जाय, तो समतल भूमि पर स्थित चौरासीहजारयोजन ऊंचा सुमेरु पर्वत भारत-वर्ष निवासी मनुष्यों को क्यों नहीं दिखाई देता है ?

(प)— दिन और रात्रि के होने में मूल कारण सुमेरुपर्वत को ही मान कर पुराणों में जो यह कहा गया है कि — सुमेरु पर्वत की ओट = (आढ़) में सूर्य के होने पर भारतवर्ष में रात्रि होती है, और ओट में सूर्य के न होने पर दिन होता है, यदि पुराणोक्त यह कथन सत्य है, तो सुमेरु की ओट में अस्त होता हुआ और सुमेरु की ओट से उदय होता हुआ सूर्य भारतवर्ष निवासियों के लिये सुमेरु पर्वत के साथ प्रत्यक्ष रूप में दिखाई क्यों नहीं पड़ता है ?

(फ)— भारतवर्ष से उत्तर दिशा में स्थित सुमेरु पर्वत की ओट से= (आढ़ से) निकलकर के ही यदि सूर्य दिन और रात्रि को करता है, तो फिर हमेशा उत्तर दिशा के पूर्वीय कोण से ही उदय होता हुआ क्यों नहीं दिखाई देता है कभी कभी दक्षिण की ओर हटकर उदय होता हुआ क्यों दिखाई पड़ता है ?।

पुराणों पर लल्ल और भास्कराचार्य द्वारा किये गये आक्षेपों का खण्डन

(१८)— भारत की राजधानी दिल्ली से उत्तरदिशा में लगभग पचास हजार योजन = (लगभग सात लाख किलोमीटर) की दूरी पर लगभग साढ़े बारहलाख किलोमीटर ऊंचा सुमेरु पर्वत इलावृतवर्ष के मध्य में स्थित है, इतनी दूरी पर स्थित सुमेरुपर्वत को अथवा अन्य किसी पदार्थ को ''दूरदर्शन सिद्धियुक्त'' योगी ऋषि ही भारत में स्थित होकर देख सकते हैं, योगियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी व्यक्ति राज - धानी दिल्ली से अथवा भारत के किसी भी स्थान से अपने नेत्रों द्वारा नही देख सकता है ।

(अ)—कलकत्ता, बम्बई, ब्रिटेन, अमरीका, रूस, चीन, जापान आदि स्थानों में बहुत ही ऊंचा लट्ठा, स्तूप, मीनार बनवाकर उसे सीधा खडा कर दिया जाय, भारत की राजधानी दिल्ली में स्थित कोई भी वैज्ञानिक अथवा अन्य कोई भी व्यक्ति किसी भी दूरवीक्षण यन्त्रादि के बिना अपने नेत्रों से उस लट्ठा, मीनार, स्तूप आदि को नहीं देख सकेगा, इसी प्रकार से दिल्ली में स्थित ऊंचे स्तूप, मीनार, लट्ठा आदि को कलकत्ता, बम्बई, ब्रिटेन, अमरीका, रूस चीन, जापान आदि में स्थित कोई वैज्ञानिक अथवा अन्य व्यक्ति दूरवीक्षणयन्त्रादि के बिना अपने नेत्रों से नहीं देख सकेगा।

अधिक दूरी पर स्थित पदार्थ को नहीं देख सकने में वैज्ञानिकता का विवेचन

(१९)— प्राणिमात्र के नेत्रों में दूरदर्शनशक्ति का नियमित मापदण्ड अलग अलग है, प्रत्येक व्यक्ति के नेत्रों में दूरदर्शन शक्ति का पृथक् पृथक् अस्तित्व विद्यमान रहता है, दूरदर्शन सीमा प्रत्येक नेत्र में अलग अलग रहा करती है, तदनुसार प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे की अपेक्षा में कुछ अधिक अथवा कुछ कम दूरस्थ वस्तु को देखने में समर्थ होता है, नेत्र रोगविशेषज्ञ चिकित्सकों के यहां प्रत्येक व्यक्ति के नेत्रों की दूर-दर्शन शक्ति का अङ्कन प्रत्यक्ष रूप में देखने को मिल जाता है ।

(२०)— विश्व का प्रत्येक समझदार व्यक्ति इस बात को अच्छी तरह से समझता है कि — भारत से सातलाख किलोमीटर के लगभग दूरी पर उत्तरदिशा में स्थित सुमेरु आदि पर्वतों को किसी दूरवीक्षणयन्त्र के बिना कोई व्यक्ति अपनी आंख मात्र से नहीं देख सकता है ।

(२१)— उत्तर दिशा में स्थित सुमेरुपर्वत के केन्द्र से लगभग सातलाखकिलो मीटर = (७००००० किलोमीटर) दक्षिणदिशा में भारतवर्ष में उत्पन्न हुए भास्क-राचार्य और लल्ल के पास भारत से सातलाख किलोमीटर उत्तर में स्थित ''सुमेरु - पर्वत'' आदि को देखने के लिये न कोई दूरवीक्षणयन्त्र था, और न इन को योगविद्या का ही ज्ञान था, अत एव- लल्ल और भास्कराचार्य तथा इन के अनुयायी शिष्य तथा अन्य व्यक्ति दूरातिदूरस्थ सुमेरु पर्वत को और ऊंचे वृक्षों को अपनी आंखों से देखने

में यदि असमर्थ रहे हैं, तो इस में भास्कराचार्य और लल्ल आदि का ही दोष है, क्योंकि ये दोनों ओर इन के चले चण्टारे न योगविद्या को प्राप्त कर पाये थे, और न दूरवीक्षण यन्त्र का ही साधन जुटा पाये थे, उक्त परिस्थितियों में पुराणों और ऋषियों का लेशमात्र भी दोष नहीं है, लल्ल और भास्कराचार्य प्रभृति ने भ्रान्ति के वशीभूत होकर ही पुराणों और ऋषियों तथा सुमेरुपर्वत पर आक्षेप किये हैं, जो कि नितान्त असङ्गत अवैज्ञानिक, भ्रामक और अविचारितरमणीय ही हैं। अमरीका आदि के आधुनिक वैज्ञानिकों ने दूरवीक्षण यन्त्रों द्वारा गन्धमादन सुमेरु आदि पर्वतों को और उन पर्वतों पर स्थित ऊँचे-२ वृक्षादि को देखने में सफलता प्राप्त कर ली है, किन्तु ये वैज्ञानिक अज्ञानता के वशीभूत होकर उन ऊंचे पर्वतों को ही चन्द्रलोक समझ कर वायुयानों द्वारा सैर-सपाटे(यात्रा) करके पर्वतीय प्रदेश को ही भ्रान्ति से चन्द्रलोक मान कर चन्द्रलोक की यात्रा का अज्ञानवर्धक और भ्रामक प्रचार कर रहे हैं।

२२—वारह लाख इक्कीस हजार किलोमीटर से भी अधिक ऊँचे और शीर्ष भाग में चार लाख पेंसठ हजार किलोमीटर से भी अधिक चौड़े 'सुमेरु पर्वत' की ओट में=(आढ़ में)घूमता हुआ सूर्य भारतवर्ष निवासियों को जब दिखाई नहीं पड़ता है, तव भारत में रात्रि होती है, और जव सुमेरुपर्वत की ओट से निकलकर घूमता हुआ सूर्य भारतवर्षनिवासियो को दिखाई देने लगता है, तव भारतवर्ष में दिन होता है। लल्ल और भास्कराचार्यादि ने सुमेरुपर्वत के चारों तरफ सूर्यपरिभ्रमण से उत्पन्न हुए रात्रि और दिन की व्यवस्था को यदि नहीं समझा तो इसमें 'सूर्य और सुमेरु' का दोष न होकर लल्ल और भास्कराचार्यादि का ही दोष है।

२३—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, इन छः राशियों पर भ्रमण करता हुआ सूर्य उत्तर गोल में रहता है, अतएव सूर्य का झुकाव उत्तर की ओर प्रतीत होता है, तुला, वृश्चिक, धनुः, मकर, कुम्भ, मीन, इन छः राशियों पर भ्रमण करता हुआ सूर्य दक्षिण गोल में रहता है, अतएव सूर्य का झुकाव दक्षिण की ओर रहता है, अतः 'कथमुदेति च दक्षिणभागके'' यह आक्षेप भी भास्कराचार्य ने अयुक्त और भ्रामक ही कियाहै।

२४—असंख्य अरबों मन वजनीला गोलाकार गेंद के आकार का ठोस कोई भी पदार्थ निराधार आकाश में टिकना अवैज्ञानिक और असम्भव है, अतएव सूर्यसिद्धान्तादि आर्षगणितग्रन्थों में तथा पुराणों में वर्णित एकलाख योजन ऊँचे पच्चीस करोड़ योजन व्यासयुक्त वृत्ताकार भूगोल का निराधार आकाश में टिकना वैज्ञानिक और तर्कसङ्गत है।

अहङ्कार और प्रकाण्डपाण्डित्य की उच्छृङ्खल तरङ्गों में विमग्न भास्कराचार्य की बुद्धि ने सिद्धान्तशिरोमणि में कई स्थलों पर आर्षमतों का निराधार और अयुक्त खण्डन करके, अपने पाण्डित्य के प्रदर्शन में भ्रामक सिद्धान्तों को स्थापित करने का प्रयास किया है, इसीलिये सिद्धान्ततत्वविवेक के निर्माणकर्ता श्री कमलाकर भट्ट ने अपने ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर श्री भास्कराचार्य का खण्डन किया है।

(य)—स्वान्तःकरण में श्री भास्कराचार्य के वैदुष्य का आदर करते हुए भी मैंने निष्पक्ष शोधबुद्धि से ही इस शोधग्रन्थ के कई स्थलों पर श्री भास्कराचार्य का खण्डन किया है, विज्ञजन नीरक्षीर विवेकिनी निष्पक्ष बुद्धि से उचितानुचित पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे।

— इति चतुर्दशाध्यायः —

पञ्चदशाध्यायः

शोधग्रन्थोपसंहार - पञ्चदशाध्यायः

सिंहावलोकनं कृत्वा पूर्वोक्तस्य समासतः ।
शोधग्रन्थोपसंहारोऽध्यायेऽस्मिन् क्रियते मया ॥

"आर्ष - वर्षा - वायु - विज्ञानम्" इति नामकः शोधनिबन्धो मया विलिखितः, आर्ष - वर्षा - वायु - विज्ञान - निबन्ध - शब्दानां व्युत्पत्ति - अर्थं च अत्र लिखामि

"ऋषि" शब्दस्य व्युत्पत्तिम् - अर्थं च-अत्र लिखामि-"ऋषी गतौ" इत्यस्मात्-धातोः - "गुपधात् कित्" इति - उणादिगणपठितसूत्रेण :'इन्' प्रत्यये कित्वे च कृते "ऋष्+इ" इति स्थितौ सत्यां हल्वर्णसंयोगे कृते "ऋषि" शब्दः सिद्ध्यति, ऋषिशब्दस्यार्थस्तु.........

"ऋषि र्वेदे वसिष्ठादौ दीधितौ च पुमानयम्"

इति मेदिनीकोषोक्तेः तथा च "ऋषयः सत्यवचसः" इति अमरकोषोक्तेः एवं च "ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः" इति कोषान्तरोक्तेश्च - 'ऋषिशब्दः' - वसिष्ठ - वाल्मीकि व्यास - शुकदेव - नारद - पराशर - काश्यप - कश्यप - अत्रि - हारीत - ऋषिपुत्र - सिद्धसेन - गर्ग प्रभृति ऋषिगण - बोधकोऽस्ति ।

ऋषयस्तु योगविद्यायां पारङ्गताः - भवन्ति, तेषां पार्श्वे च - अणिमादयः सिद्धयो भवन्ति, श्रीमद्भागवते महापुराणे - एकादशे स्कन्धे पञ्चदशेऽध्याये अष्टादश-सिद्धयः, अवान्तरभेदतश्च त्रयोविंशति - सिद्धयः समुक्ताः - भगवता श्रीकृष्णेन, ताः सिद्धयः मया इतः प्रागेव द्वादशेऽध्याये-३७५ - ३७६, ३९३-३९४ पृष्ठेषु प्रतिपादिताः ।

उपर्युक्तपञ्चदश - "१५" सिद्धियुक्ताः - ऋषयो भवन्ति, उक्तपञ्चदश - सिद्धिविशिष्टैः - योगविद्यानिपुणैः ऋषिभिः दिव्यदृष्ट्या योगबलेन च सर्वं प्रत्यक्षं - अवलोक्य यत् "आर्षवर्षावायुविज्ञानम्" स्वस्वनिबन्धेषु समुक्तम्, तदेव "आर्षवर्षावायु-विज्ञानम्" मयाऽत्र निबन्धे प्रतिपादितम् ।

आर्षशब्दस्य व्युत्पत्ति - अर्थं - च - अत्र - करोमि

ऋषेः ऋषीणां वा - इदम् - इत्यर्थे - 'ऋषि' शब्दात् तस्येदम् "४।३।१२०" इति पाणिनिमुनिसूत्रेण 'अण्' प्रत्यये कृते अनुबन्धलोपे, इकारस्येत् संज्ञायां लोपे च कृते 'ऋष्+अ इति स्थितौ' ऋकारस्य गुणवृद्धी - अरारा - विति वेदभाष्यम् 'इति व्याकरणशास्त्र - नियमानुसारेण "तद्धितेष्वचामादेः" इति सूत्रेण - ऋकारस्य स्थाने आर" वृद्धौ सत्याम् 'आर्+ष्+अ' इति स्थितौ सत्यां हल्वर्णसंयोगे कृते नपुंसकत्व-

विवक्षायाम् 'आर्षम्' इति रूपं सिद्ध्यति ।

'वर्षा' शब्दस्य सिद्धिमत्र करोमि

'वृषु सेचने' इत्यस्मात् - धातोः - वर्षणमत्रास्ति, अथवा वर्षतीति विग्रहे 'अर्श आदिभ्योऽच् ५।२।१२७' इति पाणिनिसूत्रेण 'अच्' प्रत्यये कृतेऽनुवन्धलोपे 'वृष्+अ' इति स्थितौ 'पुगन्यलयूपधस्य च ७।३।८६' इति सूत्रेण उपधायाः - ऋकारस्य स्थाने 'अर्' गुणे कृते 'व्+अर्+ष्+अ' इति स्थितौ सत्याम् हल्वर्णसंयोगे कृते "वर्ष" इति स्वरूपे निष्पन्ने सति स्त्रीत्वविवक्षायाम् 'अजाद्यतष्टाप् - ४।१।४' इति पाणिनि-सूत्रेण 'टाप्' प्रत्यये कृते - अनुबन्धलोपे 'वर्ष+आ' इति स्थितौ 'अकः सवर्णे दीर्घः'-६।१।१०१' इति सूत्रेण दीर्घे कृते स्वादिकार्ये च कृते 'वर्षा इति शब्दः सिद्ध्यति ।

'वायु' शब्दं साधयामि

वातीति विग्रहे - "वा गतिगन्धनयोः" इत्यस्मात् धातोः "कृ - वा - या - निमि - स्वादि - साध्य - शूम्य उण्" इति - उणादिगणपठितसूत्रेण 'उण्' प्रत्यये कृते अनुबन्धलोपे 'आतो युक् चिण् कृतोः ७।३।३३' इति भावकर्मप्रक्रियास्थसूत्रेण 'युक्' प्रत्यये कृतेऽनुबन्धलोपे 'वा+य्+उ' इति स्थितौ हल्वर्णसंयोगे कृते "वायु" शब्दः सिद्ध्यति ।

"विज्ञानम्" शब्दस्य सिद्धिं करोमि

विशिष्टं ज्ञायते - अनेन - इतिविग्रहे— वि - उपसर्गपूर्वकात् "ज्ञा-अवबोधने" इत्यस्मात् धातोः "करणाधिकरणयोश्च - ३ । ३ ।११७" इति उत्तरकृदन्तस्थपाणिनि सूत्रेण "ल्युट्" प्रत्यये कृतेऽनुबन्धलोपे "विज्ञा + यु" इत्यवस्थायाम् "युवोरनाकौ" इति सूत्रेण - "यु" इत्यस्य स्थाने "अन" आदेशे कृते "विज्ञा + अन" इतिस्थितौ "अकः सवर्णे दीर्घः" इति सूत्रेण दीर्घे कृते स्वादिकार्ये च कृते नपुंसकत्वविक्षायां-विज्ञा-नम्" इति शब्दः सिद्धयति ।

"आर्ष - वर्षा - वायु - विज्ञानम्" इति शब्दसमुदायस्य समासं विधाय-अर्थस्य स्पष्टीकरणमत्र करोमि

ऋषीणाम् - इदम् - आर्षं विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानम्, वर्षा च वायुश्च वर्षावायू, तयो र्विज्ञानम् - इति - वर्षावायुविज्ञानम्. आर्षं च तद् वर्षावायुविज्ञानम् - इति आर्षवर्षावायुविज्ञानम्, अर्थात्- पूर्वकथित - "दूरश्रवण - दूरदर्शन - मनोजव - काम-रूप - परकायप्रवेश - त्रिकालज्ञत्व" - प्रभृति - पञ्चदशसिद्धियुक्तैः - तत्वदर्शिभिः प्रत्यक्ष - दर्शिभिश्च - ऋषिभिः - वर्षावायुविज्ञान - विषये - यद् विशिष्टं ज्ञानं प्रति-पादितं तदेव विज्ञानं निबद्धं मयाऽस्मिन् निबन्धे ।

"निबन्ध" शब्दस्य व्युत्पत्तिमर्थं चात्र करोमि

निःशेषेण - अर्थात् - सर्वतो भावेन - बध्नाति विषयं यः सः - निबन्धः - ग्रन्थः, अत्र नि - उपसर्गपूर्वकात् "बन्ध बन्धने" इत्यस्यमाद्धातोः - पचादिराकृति - गणत्वात्" नन्दि - ग्रहि - पचादिभ्यो - ल्युणिन्यचः ३ । १ १३४" इति कृत् प्रक्रिया-

स्थसूत्रेण "अच्" प्रत्यये कृतेऽनुवन्धलोपे "निवन्ध् + अ" इति स्थितौ सत्यां हल् वर्णसंयोगे "निवन्ध" शब्दः सिद्ध्यति ।

अथवा

निवद्ध्यते विषयो येन सः - निवन्धः । अथवा...

निवद्ध्यते विषयो यस्मिन् सः - निवन्धः ।

उपर्युक्तविग्रहें कृते सति "हलश्च ३ ३ । १२१" इति - उत्तरकृदन्तान्तर्गत-सिद्धान्तकौमुदीस्थ - पाणिनिसूत्रेण "घञ्" प्रत्यये कृतेऽनुवन्ध लोपे "निवन्ध् + अ" इत्यव्यवस्थायां हल्वर्णसंयोगेसति "निवन्ध" शब्दः सिद्ध्यति ।

निबन्धशब्दस्य सुस्पष्टमर्थमत्र करोमि

गवेषणापरायेण केन चित् - यस्मिन् विषये सुविस्तारयुक्तः - विवेचनात्मकः लेखः - लिखितः, तेन लेखेन सह येषां अनेकमतमतान्तराणां - अनेकविचाराणां अनेकमत्तव्यानां च ये सम्बन्धाः भवन्ति , तेषां सर्वेषां सम्बन्धानां - अनेकमतमतान्तर-प्रभृतीनां च - समीक्षात्मकं - तुलनात्मकं युक्तियुक्तं - प्रामाणिकं - पाण्डित्यपूर्वं च विवेचनं यस्मिन् लेखे-उपलभ्यते, स एव लेखः "निवन्ध" शब्देन व्यवह्रियते, इत्येतादृशः - अर्थः - निवन्धशब्दस्य अनेकेषु कोषेषु कृतः कोषकारैः ।

निबन्धोपसंहारस्य - पृष्ठभूमि - प्रतिपादनानन्तरमत्र - प्रकृतमनुसरामि

(१)—मया तु "आर्षवर्षा-वायुविज्ञानम्" इति नामकः शोधग्रन्थः लिखितः । शिष्टैः - विलिखितेषु - सर्वेष्वपि - प्राचीन - शोध - निवन्धग्रन्थेषु यथा मङ्गलाचरण-विधानस्य व्यवस्था दृष्टा, तथैव - मयाऽपि - सर्वविधविघ्नविनिवृत्तये शोधग्रन्थारम्भे-एव प्रथमाध्याये - "मङ्गलाचरणम् , गुरुजनाभिवादनम् , शोधनिवन्धाधारमूल - ग्रन्थानी टीकाग्रन्थानां च वर्णनं कृत्वा, - शोधनिवन्धस्य विषयस्य, अधिकारिणः सम्बन्धस्य प्रयोजनस्य च प्रतिपादनं स्वनिर्मितेषु सरलतमेष्वेव पद्येषु कृतम् ।

"आर्षवर्षा - वायुविज्ञान" प्रतिपादकस्य - चन्द्रग्रहस्य चन्द्रलोकस्य च यात्रा न कृता - अमरीकादिदेशस्थै वैज्ञानिकैः - इत्यस्यापि संकेतो मया तत्रैव , प्रथमाध्याये सूत्रपातरूपेण कृतः ।

(२)— द्वितीये अध्याये - श्रीपाणिनि - श्रीपतञ्जलि - श्रीकात्यायन मुनीनां मतानुसारेण श्रीभट्टोजिदीक्षितप्रमृतिविदुषां मतानुसारेण च शब्दप्रयोगविषये श्री - नागेशमहाभागानां दुराग्रहस्य समीक्षात्मकं खण्डनं कृत्वा, शोधग्रन्थप्रयुक्त - प्रचलित - नूतनशब्दानां संस्कृतविधानव्यवस्थां विधाय, पद्यरचनानियमविषयेऽपि छन्दःशास्त्रीय - चर्चा कृता मया ।

(३)— स्वनिर्मितेषु सरलपद्येष्वेव मया तृतीयोऽध्यायो विनिर्मितः, "आर्ष - वर्षा - वायुविज्ञानम्" इत्यस्मिन् शोधग्रन्थे येषां विषयाणां प्रतिपादनं कृतं तेषां वर्णनं तु प्रश्नविधानरूपेणैव कृत्वा, समस्तस्य निवन्धस्य सारांशः तृतीये - अध्यासे - एव - शोधनिवन्धग्रन्थ - पाठकानां सौकर्यार्थं सुविधार्थम् निहितो मया, तृतीयाध्यायस्य -

सरलपद्यानां पाठमात्रेणैव शोधनिवन्धग्रन्थस्थ - मार्मिकतत्वानां सुबोधो जायते पाठ - केभ्यः, इत्येतादृशी शैली प्रश्ननिर्माणावसरे - मया समादृता ।

(क)— अमरीकादिदेशोद्भवैः - आधुनिकैः - वैज्ञानिकैः - चन्द्रलोकस्य यात्रा न कृता, अपितु जम्बूद्वीपस्थ - पर्वतेष्वेव ते वराकाः चन्द्रलोकभ्रमाद् भ्रमन्ति, अतः - अज्ञानप्रदा तेषां वैज्ञानिकानां घोषणा विज्ञेया विज्ञैः, इत्येतादृशोऽपि स्पष्टः सङ्केतो मया प्रश्नाध्याये स्वरचितेषु पद्येष्वेव कृतः ।

(४)— चतुर्थे - अध्याये तु - "योजन - क्रोषादि - परिभाषाविषये "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" इत्युक्तेः - या चरितार्थता साम्प्रतं प्रचलति, तस्याश्चरितार्थतायाः खण्डनं कृत्वा, अनेकैः - आर्णप्रमाणैः - योजन - क्रोशादि मानस्य सुनिश्चिताः परिभाषाः कृताः , आधुनिकशासनकाले व्यवहारे - प्रचलितानां किलोमीटरादीनामपि परिभाषाः — स्वनिर्मितेषु - सरलपद्येष्वेव निबद्धाः मया, दिव्यवर्षादिमानानि विलिख्य, कल्पे समुद्भवानां चतुर्दश-"इन्द्राणाम्" नामानि अपि लिखितानि मया अत्र

(५)— पञ्चमे अध्याये - ऋग्वेद - यजुर्वेद - निरुक्त - पाणिनीयशिक्षा - पातञ्चल - महाभाष्येषु- प्रतिपादितस्य वर्षावायुविज्ञानस्य विवेचनं कृत्वा, आधुनिक-वर्षावायुविज्ञानादपि अधिकं औत्कर्ष्यं आर्षवायुविज्ञानस्य प्रतिपादितं मया ।

६—षष्ठे अध्याये......आर्षवर्षा - वायुविज्ञान - प्रतिपादकानां सप्तद्वीपानां वैज्ञानिकं विवेचनं कृत्वा,चतुर्दशलोकानां स्थितिबोधकानि यौजनात्मकानि मानानि प्रतिपाद्य, जम्बूद्वीपस्य स्थितिबोधकं चित्रम्, तथा सप्तद्वीपानां स्थितिबोधकरं चित्रम्, तथा च - चतुर्दशलोकसहितसमस्तस्य ब्रह्माण्डस्य स्थितिबोधप्रदं - चित्रं अपि समुचितेषु स्थानेषु निवेशितं मया ।

सप्तमे अध्याये......पुराणेषु स्वरशास्त्रेषु च यद् वर्षावायु-विज्ञानमस्ति, तस्य वैज्ञानिकदृष्ट्या विवेचनं कृत्वा, प्रतिपादनं कृतं मया ।

८—अष्टमे अध्याये......आर्षसंहितासु वर्णितानां वृष्टिगर्भधारण- वृष्टिप्रसव-वृष्टिगर्भपात-परिवेष- इन्द्रधनुः ओलावृष्टि-मांसशोणितवृष्टि - मत्स्यवृष्टि - गेसावृष्टि-सर्पवृष्टि -दादुरवृष्टि-(मेंढक-वृष्टि) प्रभृतिविषयेषु वैज्ञानिकं विवेचनं कृत्वा, निराधारे आकाशे मत्स्य-गेसा-मेंढकादिजीवानां समुत्पत्तिः - कथं भवतीत्यपि प्रतिपादितं मया ।

९—नवमे अध्याये......वर्षावायुप्रभृतिविकारैः अन्न - फल - पुष्प - वृक्षेषु ये विकाराः क्रमिप्रभृति-रोगाश्च जायन्ते, तेषां चिकित्साविधानस्य वैज्ञानिकं विवेचनं आर्षोक्तप्रमाणैः कृत्वा, नरकपितृलोकादिस्थितेश्च प्रतिपादनं कृतं मया ।

१०—दशमे अध्याये......आर्षवर्षावायुविज्ञानप्रतिपादको भूगोलः - चलः अचलो वा इत्यत्र सुसमीक्षां कृत्वा, वैज्ञानिकदृष्ट्या - वेदादि - शास्त्रीयप्रमाणदृष्ट्या च भूगोलः स्थिरोऽस्तीति पक्षस्य प्रतिपादनं विधाय,भूगोलचालप्रतिपादकस्य पक्षस्य च खण्डनं कृतं मया ।

११—एकादशे अध्याये......आर्षवर्षावायुविज्ञानप्रतिपादकानां चन्द्रादिग्रह - लोकानाम् यात्रायाः विषये अमरीकादिदेशोत्पन्नैः अन्तरिक्षयात्राशीलैः - आधुनिकैः -

वैज्ञानिकैः कृतानां घोषणानां खण्डनं ब्रह्माण्डीयगणितेन कृतं मया, अमरीकादिदेशोद्भवैः आधुनिकैः जम्बूद्वीपस्थितेषु पर्वतेष्वेव यात्रा कृता, पर्वतशिखराण्येव भ्रान्त्या चन्द्रलोकं मन्यन्ते - आधुनिकाः वराकाः - वैज्ञानिकाः, इत्यपि मया अस्मिन् अध्याये गणितेन प्रतिपादितम् ।

१२—द्वादशे अध्याये......आर्षवर्षा - वायुविज्ञानस्य प्रतिपादकयोः ज्यौतिष-पुराणयोः परस्परं विरोधाभासस्य परिहारः गणितरीत्या, वैज्ञानिक दृष्ट्या, तथा अनेकैः शास्त्रीयप्रमाणैश्च कृतो मया ।

१३—त्रयोदशे अध्याये......आर्षवर्षा - वायुविज्ञान- प्रतिपादकयोः - भूगोल-परिधिव्यासयोः विषये समीक्षात्मकं विवेचनं कृत्वा, प्रत्यक्षसिद्धस्य आर्षपक्षस्य अनुमोदनं मया कृतम्, प्रत्यक्षतो विरुद्धस्य श्रीलल्लभास्कराचार्योक्तपक्षस्य च मया समीक्षात्मकं खण्डनं कृतम् ।

१४—चतुर्दशाध्याये......आर्षवर्षावायुविज्ञान - प्रतिपादकानां पुराणानामु - परिश्रीलल्लेन - श्रीभास्कराचार्यैश्च ये निराधारा - भ्रामकाः - आक्षेपाः कृताः - तेषां समीक्षात्मकं खण्डनं कृत्वा, श्री व्यास - शुकदेव - नारद - वसिष्ठ - पराशर - गर्ग - काश्यप - वाल्मीकि - प्रभृति - मुनीनां मतस्य अनुमोदनं मया निष्पक्षया शोधधिया कृतम् ।

१५—आर्षवर्षा - वायुविज्ञानप्रतिपादके भूगोलखगोलविषये - योगविद्यायां निष्णातैः - अतीन्द्रियैः प्रत्यक्षदर्शिभिः ऋषिभिः - यत् किमपि समुक्तं तत् उपेक्षणीयं नास्तीति सिद्धान्तपक्षः एव रोचते मह्यम्, यतो हि योगविद्यया प्रत्यक्षदर्शिभिः ऋषिभिः समस्तस्य ब्रह्माण्डस्य ब्रह्माण्डस्थितसर्वविधपदार्थानां च यया शैल्या विवेचनं कृतम्, तया शैल्या अन्येन केनापि अमरीकादिराष्ट्रोद्भवेन आधुनिकवैज्ञानिकेन अथवा लल्लेन-भास्कराचार्येण वा विवेचनं न कृतम्, अतएव आर्षमतानुसारेण प्रतिपादितः पक्षः एव गरीयान् साधीयान् च दरीदृश्यते निष्पक्षया शोधदृष्ट्या, इति प्रतिपादनं कृतं मया पञ्चदशे अध्याये ।

भूगोलखगोलस्थितिविषये विचारः आर्षवर्षावायुविज्ञानस्य प्रतिपादनायैव मया कृता

१६—ब्रह्माण्डमाने कतियोजनानि सन्ति, जम्बूद्वीपे च कतियोजनानि सन्ति, भूगोलात् कस्य ग्रहस्य कियन्मितं...औच्च्यं वर्तते, जम्बूद्वीपस्य नवविभागान्तर्गतानि कतियोजनानि सन्ति, भरतखण्डे कतियोजनानि सन्ति, इत्येतादृशो विचारः स्वतन्त्र-निबन्धकारैः-न कृतः कुत्रापि स्वस्वनिबन्धग्रन्थेषु-सिद्धान्तशिरोमणिप्रभृतिषु, "अतः जम्बूद्वीपे भरतखण्डे" इत्येतादृशं शब्दं सन्ध्यादिकर्मणां प्रारम्भे सङ्कल्पावसरे प्रतिदिनं वदन्तोऽपि बहवो विद्वांसो-न जानन्ति-योजनात्मकं कियन्मितं जम्बूद्वीपमानं कियन्मितं च भरतखण्डमानमिति ।

१७— भूव्यास - परिधिविषये - ग्रहोच्छ्रितिविषये च - यत्र कुत्रापि यादृशो विचारः कृतः - आधुनिकैः ग्रन्थकारैः - तादृशे विचारेऽपि तेषां - मतैक्यं नास्ति, अपितु

"मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" इत्युक्तेः - चरितार्थता - एव - सङ्गच्छते तेषामाधुनिकानां निर्णयेषु ।

१८— श्री भास्कराचार्येण तु भूगोलस्य व्यासः 'कुभुजङ्गसायकभुवः=१५८१ योजनात्मकः' एव स्वीकृतः, चन्द्राष्टशरचन्द्रप्रमिते योजनात्मके=(१५८१योजनप्रमिते) भूगोले स्वीकृते सति जम्बूद्वीपस्य नवविभागानां स्थितिः- क्वास्तीति-कुत्रापि शिरोमणौ श्रीभास्कराचार्यैः योजनमानेन सह न प्रतिपादितम् ।

आर्यभट्ट - लल्लाचार्यप्रभृतिभिः अपि विद्वद्भिः - अस्मिन् विषये न कोऽपि निर्णयः कृतः ।

श्रीभास्कराचार्यस्य - कथनानुसारेण-'कुभुजङ्गसायकभुवः=१५८१'योजनात्मके भूगोले स्वीकृते सति-जम्बूद्वीपे स्थितानि किम्पुरुषादीनि-अष्टवर्षाणि = अष्टखण्डानि अपि न सिद्ध्यन्ति, तेषु - असिद्धेषु - सत्सु—

यानि किम्पुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने ।
न तेषु वर्षते देवो भौमान्यम्भांसि तेषु वै ॥"

इत्यत्र - किम्पुरुषादिषु - जम्बूद्वीपाष्टखण्डेषु - इन्द्रकृतवर्षायाः - यः अभावः - समुक्तः सोऽपि न सिद्ध्यति ।

एवं च जम्बूद्वीपमध्यभागस्थित-सुमेरुपर्वतशीर्षप्रदेशे स्थितः इन्द्रो देवः शाकद्वीपे स्थितात् - 'चन्द्र' पर्वतात् - जलानि - नीत्वा भारतवर्षे वृष्टिं करोति, इत्येतादृशी या व्यवस्था सर्वत्र समुक्ता ऋषिभिः सा - अपि न सिद्ध्यति भास्कराचार्योक्तभूव्यास-माने स्वीकृते सति, यतो हि...... यस्मिन् सुमेरुपर्वते - इन्द्रो निवसति - इन्द्रलोके, तस्मात् - इन्द्रलोकप्रदेशात् - शाकद्वीपे स्थितः - चन्द्रपर्वतस्तु - एककोटियोजन = (१०००००००योजन) प्रमितदूरप्रदेशतोऽपि अधिकदूरप्रदेशे स्थितोऽस्ति ।

कुभुजङ्गसायकभुवः=(१५८१ योजनप्रमितः) यदि भूगोलश्चेत्तर्हि 'चन्द्रपर्वतः' कुत्र तिष्ठति, तस्य चन्द्रपर्वतस्य आधारश्च कः इत्येतादृशः - सर्वशास्त्रविरुद्धः प्रश्नः- आर्षवर्षवायुविज्ञानस्य अस्वित्वनष्टकरः समुदेति ।

१९— उपर्युक्तप्रश्नस्य समाधानार्थमेव मया - मत्स्यपुराण - वायुपुराण - विष्णुपुराण - श्रीमद्भागवतमहापुराणानां - तथा - योगदर्शनवैयासिकिभाष्य- अथर्ववेद यजुर्वेद - निरुक्त - योगवासिष्ठ-पातञ्जलमहाभाष्य-अष्टाध्यायी-चरक- प्रभृतिग्रन्थानां समालोडनं विधाय, श्रीमद्भागतमहापुराणे श्रीधरस्वामिकृतां टीकां-मुहुर्मुहुः समलोक्य, विष्णुपुराणे च श्रीधरस्वामिकृतां आत्मप्रकाशटीकां प्राचीनतमां विष्णुचित्तीय-टीकां च समवलोक्य, सप्तद्वीपानां - स्थितिं-समस्तस्य ब्रह्माण्डस्य स्थितिं च - शास्त्रा-नुसारेण ब्रह्माण्डीय - गणितानुसारेण च सुज्ञात्वा, - आर्यभट्ट - लल्ल - भास्कराचार्य-प्रभृतिभिः - आधुनिकैः - विद्वद्भिः प्रतिपादितस्य भूगोलमानस्य समीक्षात्मकं खण्डनं विधाय, आर्षमतानुसारेण - आर्षवर्षावायुविज्ञानस्य - समीक्षात्मकं प्रतिपादनं कृतम् ।

२०— बहुषु स्थलेषु -- हिमालयपर्वतादिस्थितिविषये - प्रचलितस्य - आधु-निकभूगोलस्यापि समीक्षात्मकं खण्डनं निष्पक्षया एव शोधधिया कृतम् , अनेकैः प्रमाणैः

गणितशास्त्रीयसिद्धान्तैश्च वर्षावायुविज्ञानप्रतिपादकयोः भूगोलखगोलयोः स्थितिं सुनिश्चित्यैव मया आर्षवर्षावायुविज्ञानस्य शोधनिबन्धग्रन्थस्य पूर्तिः कृता।

२१— साम्प्रतं भारतादिराष्ट्रेषु- वर्षावायुबोधप्रदाः - याः - वेधशालाः सन्ति, तासु सुप्रचुरमात्रायां-धनजनव्यये कृतेऽपि कस्मिन् प्रदेशे कदा कीदृशी वृष्टि र्भविष्यतीति ज्ञानं न भवति सम्यक्तया तत्र वेधशालास्थैः यन्त्रैः।

२२— वेधशालास्थाः आधुनिकाः वैज्ञानिकाः - डाक्टरास्तु वर्षासमयतः- दिनत्रयप्रागेव - अर्थात् नेत्रसप्त "७२" घण्टा प्रागेव - वर्षावायुविषये - निर्णयं कर्तुं समर्था भवन्ति, किन्तु - आर्षविज्ञानानुसारेण तु वृष्टि - कालतः - सार्धषट्मास = (६ $\frac{१}{२}$ मास) प्रमितभविष्यकालतः प्रागेव वृष्टिगर्भमोक्षस्य वृष्टिसमयस्य च सुस्पष्टं ज्ञानं भवति।

(क)— ग्रहाणां उदयास्त - गणितं ज्ञात्वा, ग्रहोदयास्तकालानुसारेण तु बहुवर्षप्रागपि - वर्षावायुविषये - निर्णयं कर्तुं - समर्थो भवति - आर्षप्रणीत - वर्षावायु - विज्ञानज्ञो दैवज्ञः।

(ख)— अतः स्वल्पव्ययसाध्यस्य प्रभूतहितकारकस्य आर्षवर्षावायुविज्ञानस्य - समृद्धये शासनेन - अपि सुप्रयत्नो विधेयो येन दुर्भिक्षस्य - अन्नाभावस्य च निवृत्तिः - राष्ट्रतो भवेत्।

(२३)— स्वार्थरहितैः - ऋषिभिः - राष्ट्रस्य समृद्धये - सर्वविधप्राणिमात्र - हिताय च - स्वस्वशोधग्रन्थनिबन्धेषु यादृशं - "वर्षावायुविज्ञानम्" प्रतिपादितम्, तादृशस्य वर्षावायुविज्ञानस्य - सदुपयोगः प्रशासनसाहाय्येन भवेच्चेत्तर्हि - सर्वविध - प्राणिनां राष्ट्रस्य च सुमहान् - उपकारो भविष्यतीति - वायुविज्ञानस्य समृद्धये प्रयत्नः विधेयः शासनारूढै र्महानुभावैः।

आशासे च - अद्भुतस्य- अस्य- आर्षवर्षावायुविज्ञानस्य समृद्धये- भारतराष्ट्रस्य अन्तर्गता शासनाधिकारिणः - अपि सुप्रयत्नं करिष्यन्ति।

विद्वद्भ्यो वैज्ञानिकेभ्यश्च विनम्रनिवेदनम्

(२४)— आर्षवर्षावायुविज्ञानस्य . प्रतिपादनाय यद्यपि मया बहुप्रयत्नः कृतः शोधग्रन्थेऽस्मिन्, तथापि - अतः अग्रेऽपि प्रयत्नो विचारश्च विधेयो वैज्ञानिकैः अन्यैश्च विचारशीलैः विद्वद्भिः इति निवेदयेऽहम्।

(२५)— प्रेसप्रूफरीडिङ्ग - प्रभृतिदोषज - त्रुटिपरिहाराय यद्यपि मया प्रूफ - संशोधनादि - सरणिमनुसृत्य सुप्रयत्नः कृतः, तथापि — यत्र तत्र मानव - स्वभाव - सुलभ दोषजाः - अवशिष्टाः याः त्रुटयः भवेयुः, तासां संशोधनं गुणानुरागिभिः विद्वद्भिः विधाय, मह्यं सूचना प्रदेया, इति मुहुर्मुहुः विदुषां वशंवदः डा० गेंदनलालशास्त्री अञ्जलिं बध्वा विनिवेदयेऽहम्।

सुन्दरी टीका १— इस शोध ग्रन्थ के प्रथम अध्याय से चौदहवें अध्याय तक के प्रत्येक अध्याय के निष्कर्ष को इस पन्द्रहवें अध्याय में संस्कृत भाषा के माध्यम से ही लिखना उचित समझा गया है। प्रत्सेक अध्याय के सारांश को उस अध्याय की सुन्परीटीका में लिखा जा चुका हैं, अत एव अब पुनः व्याख्या करना भी अनावश्यक समझा गया है।

२—इस समय भारतादि राष्ट्रों में मौसम की रिपोर्ट देने वाली वेधशालाओं

में पर्याप्त मात्रा में धन और जन की शक्ति का उपयोग करने पर भी यन्त्रों के माध्यम से केवल बहत्तर घन्टा पूर्व= (७२ घन्टा = ३दिन पूर्व) सन्निकट भविष्य में होने वाली वर्षा और वायु की रिपोर्टें वेधशालास्थ डाक्टर दे सकते हैं, ये रिपोर्टें भी पच्चीस या तीस प्रतिशत के लगभग ही सही = (खरी) उतरा करती हैं, पिचत्तर प्रतिशत के लगभग इन वेधशालाओं की रिपोर्टें प्राय:- गलत ही सिद्ध हुआ करती हैं।

३—'आर्षवर्षा वायुविज्ञान" के द्वारा साढ़े छः मास, एक वर्ष तथा कई वर्षों तक की अग्रिम वर्षा और वायु आदि के सम्बन्ध में रिपोर्टें त्यार की जा सकती हैं, जो कि नब्बे और शतप्रतिशत खरी उतरती हैं।

(च)—उत्तर प्रदेश(भारत राष्ट्र) के माननीय राज्यपालमहोदय श्रीविश्वनाथ दास ने राज्यसरकार के व्यय से राजभवन लखनऊ में वर्षावायु विज्ञान के सम्बन्ध में भारत के खगोलशास्त्रविशेषज्ञ विशिष्ट विद्वानों की गोष्ठी का आयोजन ११, १२,१३ अप्रैल सन् १६६६ में तीन दिन तक कराया था, श्रीराज्यपाल महोदय ने मुझे भी गोष्ठी में आमन्त्रित किया था।

(छ)— वर्षा वायु और सूखा आदि की स्थिति को छः मास पूर्व ही मालूम करने के लिये गोष्ठी के निर्णयानुसार राज्यपालमहोदय ने पश्चिमीय उत्तर प्रदेश मेरठ से मुझे चुना था, उत्तर प्रदेश के मध्यमीय और पूर्वीय भागों के लिये अन्य दो विद्वानों का चयन किया था।

(ज)— उक्त राज्यपालमहोदय के कार्यकाल में पश्चिमीय उत्तरप्रदेश में होने वाली वर्षा, वायु, सूखा आदि के सम्बन्ध में वर्षा आदि के होने से छः मास पूर्व ही प्रदेशीय सरकार के लिये मैंने जो रिपोर्टें प्रेषित की थीं, उन रिपोर्टों में वर्षावायु आदि के सम्बन्ध में जो कुछ भी लिखा गया था वह शतप्रतिशत सही रूप से घटित हुआ था।

(झ)— राष्ट्र का विशेष हित करने वाले स्वल्पव्ययसाध्य "आर्षवर्षा - वायुविज्ञान" का उपयोग राज्यसरकारों और केन्द्रीय - सरकारों के माध्यम से करने पर प्रत्येकराष्ट्र का महान् उपकार हो सकता है, अत एव प्रत्येक राष्ट्र के कर्णधारों को चाहिये कि वे राष्ट्र के हितों के लिये "आर्षवर्षा वायुविज्ञान"का उपयोग करने की व्यवस्थायें करें।

४— "आर्षवर्षा वायुविज्ञान" के प्रतिपादन में यद्यपि मैंने बहुत प्रयत्न किये हैं, तथापि विद्वानों और वैज्ञानिकों से मेरा विनम्रनिवेदन है कि वे इस से आगे भी प्रयत्नशील रहेंगे।

५— प्रेसप्रूफरीडिंग आदि की त्रुटियों को दूर करने के लिये मैंने यद्यपि पर्याप्त प्रयत्न किये हैं, तथापि मानवस्वभावसुलभ यदि कुछ त्रुटियाँ शेष रह गई हों तो विज्ञविद्वानों और वैज्ञानिकों से मैं विनम्र निवेदन करता हूँ कि उदार हृदय से त्रुटियों का संशोधन करके मुझे भी सूचित करने की अवश्य कृपा करेंगे।

ज्योतिषविभागाध्यक्ष:—
डा० गेंदनलाल शास्त्री
श्रीविल्वेश्वर- संस्कृतमहाविद्यालय:
मेरठस्थ: (उ० प्र०)

विदुषां वशंवद:—
डा० गेंदनलालशास्त्री,
निर्देशक:—
ज्योति - विज्ञान - अनुसंधान - संस्थानस्थ:,
भारतराष्टोत्तरप्रदेशान्तर्गत - मेरठनगरस्थ:,
फोन नं० ७३०२०

(इति पञ्चदशाध्याय:)

शोधग्रन्थकार-वंशपरिचयः

संस्कृतविद्यासुविद्वांसः पूर्वजा मे विशारदाः ।
शब्दन्यायादिशास्त्रज्ञाः कोविदास्ते प्रकीर्तिताः ॥१॥
विप्रवंशावतंसास्ते भारद्वाजसुगोत्रजाः ।
माध्यन्दिनीप्रशाखायां कात्यायनप्रसूत्रजाः ॥२॥
त्रिप्रवरोद्भवा विज्ञा विश्वविख्यातकीर्तयः ।
वंशजा ये प्रसूता मे तेषां वच्मि परम्पराम् ॥३॥
पवित्रे विदुषां वंशे चेतरामः प्रतापवान् ।
शब्दन्यायपटीयान् मे बभूव प्रतिपामहः ॥४॥
मीमांसाशास्त्रतत्वज्ञो धार्मिको मे पितामहः ।
वैद्यवृन्देषु विख्यातः शिवचरणनामकः ॥५॥
वेदवेदाङ्गतत्वज्ञश्चिकित्साशास्त्रपारगः ।
पिता मे विश्वविख्यातो गङ्गासहायनामतः ॥६॥
सुन्दरी मम माता च वैद्यकर्मविशारदा ।
धार्मिका सत्यनिष्ठा च बभूव विदुषां कुले ॥७॥
ताभ्यां देवस्वरूपाभ्यां वयं हि पञ्चभ्रातरः ।
समुत्पन्ना निरातङ्काः पित्रोराज्ञापरायणाः ॥८॥
मुरारी नामको ज्येष्ठो मे भ्राता सात्विको महान् ।
पञ्चविंशतिवर्षीयो विष्णुलोकमवाप्तवान् ॥९॥
शब्दन्यायादिशास्त्रज्ञश्चिकित्साशास्त्रपारगः ।
आनन्दीलाल शर्मा मे भ्राता ज्ञानप्रदायकः ॥१०॥
रामस्वरूपस्तृतीयः पञ्चमस्तु निरञ्जनः ।
ज्ञाननिष्ठौ गृहस्थस्थौ गृहकर्मपरायणौ ॥११॥
चतुर्थोऽहं पितुः पुत्रो ग्रन्थस्यास्य प्रलेखकः ।
विदुषां ज्ञानशीलानां समक्षं समुपस्थितः ॥१२॥
रामः कृष्णः शिवो विष्णुश्चत्वारस्तनया मम ।
द्रौपदीभार्यया जाता ज्ञानार्जनपरायणाः ॥१३॥
द्रौपदीभार्यया मह्यं ग्रन्थस्यास्य प्रलेखने ।
सहयोगो महान् दत्तः सेवासुश्रूषणादिभिः ॥१४॥
पुत्राभ्यां शिवविष्णुभ्यां ग्रन्थस्यास्य प्रकाशने ।
प्रेसकार्यं कृतं सर्वं सहयोगप्रदायकम् ॥१५॥
सहयोगप्रदातॄणां कल्याणमीशतोऽनिशम् ।
कामये मनसा वाचा कृतज्ञोऽयं मुहुर्मुहुः ॥१६॥

(अ)— "ग्रन्थस्यास्य प्रारम्भे चाध्याये प्रथमे मया ।
जन्मभूप्रभृतीनां हि समुल्लेख स्ततः कृतः" ॥

शुद्धिपत्रम्

शुद्धिपत्रानुसरेण शुद्धिमादौ विधाय वै ।
पठनीयं ततो विज्ञैं विनम्रो विनिवेदये ।।

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठे	पङ्क्तौ
भ्रान्ताज्ञन	भ्रान्ताज्ञान	११	२६
विबादो	विवादो	१५	६
बासुप्यापिशले:	वासुप्यापिशले:	१७	४
निर्बिवाद:	निर्विवाद:	१७	१८
वार्हस्पत्यम्	बार्हस्पत्यम्	१७	२३
वृहस्पतिरिन्द्राय	बृहस्पतिरिन्द्राय	१७	२४
वृहस्पतिश्च	बृहस्पतिश्च	१७	२५
बिनिर्णय:	विनिर्णय:	१८	२०
मध्वर्य	मध्वर्यु	१९	४
बाको	वाको	१९	५
सिद्धानतपक्ष:	सिद्धान्तपक्ष:	१९	१५
ब्यवहरति	व्यवहरति	१९	३४
त्रियते	क्रियते	२०	२
ऽपि	ऽप	२०	६
प्राकिक्कवालो	प्रागिक्कवालो	२०	२२
वृह	बृह	२०	२४
विगतो	वगतौ	२१	२२
यया	यथा	२१	३३
समो	समी	२२	२७
उपर्युक्तं	उपर्युक्त	२३	२१
स्यातम्	स्याताम्	२३	२७
विवेकिन्या	विवेकिन्या	२४	१५
गोगनाम्नाम्	योगनाम्नाम्	२५	१६
शितानां	रितानां	२७	३
थमन्ति	भवन्ति	२८	४
इत्यस्थ	इत्यस्य	२८	२७
अन्त्ये	अन्ये	२९	१२
वार्हस्पत्य	वार्हस्पत्य	३१	२१
वृहस्पति	बृहस्पति	३१	२२
कत्स्यादि	मत्स्यादि	४५	११
क्रिमि	कृमि	४५	१५
क्रिमि	कृमि	४५	१६
क्रिमि	कृमि	४५	२५

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठे	पङ्क्तौ
उदग्धिभवत:	उदग्धिमवत:	४८	२
ताद्दिग्विलोमे	तद्दिग्विलोमे	५८	१६
नात्र	नत्रि	५९	४
साम्प्रम्	साम्प्रतम्	६२	४
पद्	तद्	६३	१४
क्रोशा	क्रोश	६९	२३
रौद्राङ्गुला	रौद्राङ्गुल	७१	२५
योजन	योजनं	७२	६
जालान्तगते	जालान्र्गते	७३	३२
पद्रज:	पद्मरज:	७३	३५
५००० गज:	५०० गज:	८०	९
वर्ष	वर्षं	८९	१०
विपर्ययत्	विपर्ययात्	९०	१
विनिवृत्तय	विनिवृत्तये	९१	२६
जायतु	जायते	९२	८
रत्रौ	रात्रौ	९३	६
तृतीयाध्याय:	चतुर्थाध्याय:	९५	१
मषादौ	मेषादौ	१०४	६
विषुवत	विषुवत्	१०४	२९
पंच	पञ्च	१०६	१
आसचत्	आसचत	१११	७
भहत्व	महत्व	१२१	३५
आत्म	आत्मा	१२८	१
बुद्धया	बुद्ध्या	१२८	२
तेन्	तेन	१२८	२
चतुर्थाध्याय:	पञ्चमाध्याय:	१३९	१
सुवर्णा	सुवर्षा	२४२	२६
देषेषु	देशेषु	१४३	३
स्वादूक	स्वादूदक	१४५	१८
द्वीपौ	द्वीपो	१५१	४
पञ्चाशत्कोटि	पञ्चविंशतिकोटि	१५१	१७
प्रतायन्ते	प्रतीयन्ते	१५१	३३
द्वोपाः	द्वीपाः	१६६	१७
मौलिक	भौगोलिक	१९२	२०
मत्स्पुराण	मत्स्यपुराण	१९५	१
द्वीपोह्यप	द्वीपोह्य प	१९५	१५

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठे	पङ्क्तौ
घातुतोः	घातुतो	२०४	१६
पर्वतादेवः	पर्वतादेव	२०४	२८
प्रिव्रतान्वय	प्रियव्रतान्वय	२०६	२८
एकसप्तीतिः	एकसप्ततिः	२०६	३०
व्यवहृयते	व्यवह्रियते	२१५	१७
दुग्दोहन	दुग्धदोहन	२३३	३२
करने बाद	करने के बाद	२५२	२०
षष्ठाध्यायः	सप्तमाध्यायः	२६५	१
मभि	मपि	२७५	२१
सप्तवर्णाम्	सप्तपर्वणाम्	२६३	६
वराह्व	वराह	३१५	२७
वृष्टिवषये	वृष्टिविषये	३२१	१
वले	वाले	३३८	२६
रोगों	रोगों की	३४६	२३
विज्ञस्तथा	विज्ञैस्तथा	३६१	२
विरोधी	विरोधो	३६२	१०
द्वितीये ऽंशे प्रथमे अध्याये	प्रथमे ऽंशे द्वितीये अध्याये	४३२	३३
तदविरुद्धं	तद्विरुद्धं	४४०	१५
व्यासातु	व्यासात्तु	४४०	१८
स्फुटम	स्फुटम्	४४०	२३
क्रमुघातो	क्रमुघातो	४४३	५
व्यंपस्थितः	व्यंवस्थितः	४४३	१४
भपज्जरे	भपञ्जरे	४४४	११
त्वेंव	त्वैंव	४४४	१५
सौम्य	सौम्य	४४४	२४

न्यूनाधिक्यं पदभ्रष्टं यत्र कुत्रापि शोधगम् ।
सर्वं संशोध्य तद्विज्ञैः पठनीयं प्रयत्नतः ॥२॥

——: शुभम् भूयात् :——